हिमालय का योगी

योग निकेतन ट्रस्ट

हिमालय
का
योगी

योग निकेतन ट्रस्ट

मूल्य रु)

ॐ

हिमालय का योगी

जिसमें

ब्रह्मनिष्ठ योगीप्रवर श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज
(भूतपूर्व राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज) के जीवन
की विशेष घटनाओं और अनुभूतियों का वर्णन है और
जो 'आत्म-विज्ञान', 'ब्रह्म-विज्ञान' तथा
'बहिरङ्ग-योग' के रचयिता हैं

संग्रहकर्ता एवं प्रकाशक

योग निकेतन ट्रस्ट

गंगोत्री, उत्तरकाशी, स्वर्गाश्रम, मुनिकीरेती ऋषिकेश
उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

पुस्तक मिलने का पता :

योगनिकेतन ट्रस्ट

डाकघर--स्वर्गाश्रम, रेलवे स्टेशन--ऋषिकेश

जिला देहरादून, भारत ।

प्रथम संस्करण

१९६६

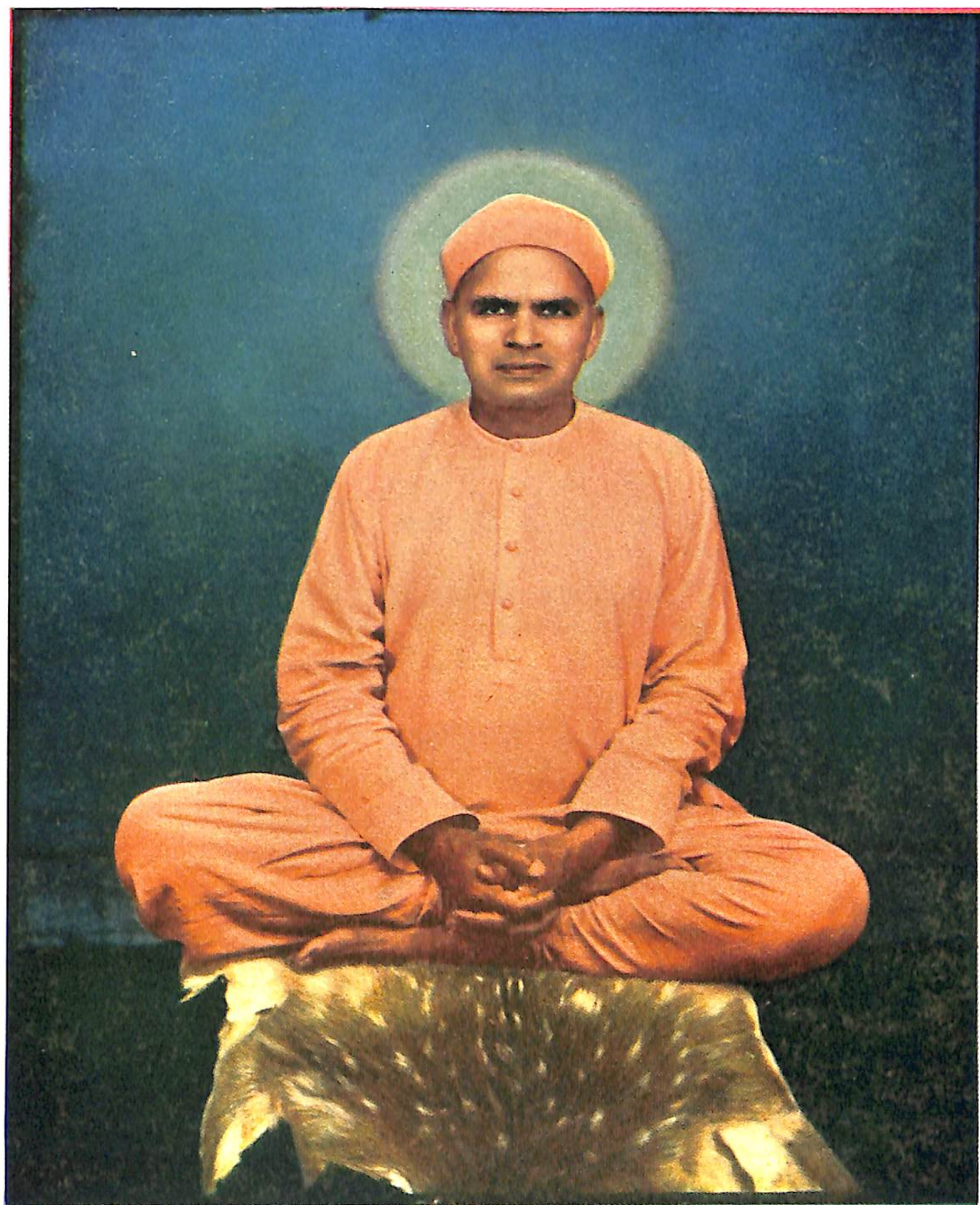
मूल्य : ८) आठ रुपये

मुद्रक :

रायसीना प्रिंटरी

४, चमेलियन रोड, दिल्ली-६

165



राजयोगाचार्य ब्रह्मनिष्ठ योगीप्रवर श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज

ॐ

ईश्वर-वन्दना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ (यजु० २२।२२)

प्रथम ईश्वर को नमस्कार करके, सर्वशक्तिमान् दयामय भगवान् की सेवा में प्रार्थना है कि हे हर प्रकार की विद्या के दाता ! सबसे बड़े परमेश्वर ! आप हम पर कृपा करें कि हमारे राज्य में ब्रह्मविद्या से प्रकाश को प्राप्त, वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाले, आत्मदर्शी ब्राह्मण उत्पन्न होते रहें; अस्त्र जो दूर अति दूर तक मार करने वाले हों उनके चलाने में उत्तम गुणवान्, शत्रुओं को अतीव ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाले महारथी, अत्यन्त बली और वीर, निर्भय राजपुत्र शासक, वाणी द्वारा उपद्रवियों का दमन करने वाले नीतिनिपुण विद्वान्, दूध से पूर्ण करने वाली गौ, भार ले जाने में समर्थ बड़े बलवान बैल, शीघ्र चलने हारे घोड़े, जो बहुत व्यवहारों को धारण करती हैं वे स्त्रियां, हर प्रकार के रथ वा यान बनाने वा स्थिरता से चलाने वाले विशेषज्ञ वा शत्रुओं को जीतने वाले, सभा में उत्तम सभ्य, जवान पुरुष, जो यह विद्वानों का सत्कार करता है वा सुखों की संगति करता है वा सुखों को देता है ऐसे राजा के राज्य में विशेष ज्ञानवान्, शत्रुओं को हटानेवाले पुरुष उत्पन्न हों; हम लोगों के निश्चययुक्त काम में अर्थात् जिस-जिस काम के लिए प्रयत्न करें उस-उस काम में मेघ वर्षें; औषधियां बहुत उत्तम फलवाली हमारे लिए पकें; हमारा अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लखाने वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति समर्थ हो; वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रकट कराइए ।

शुभ-कामना और धन्यवाद

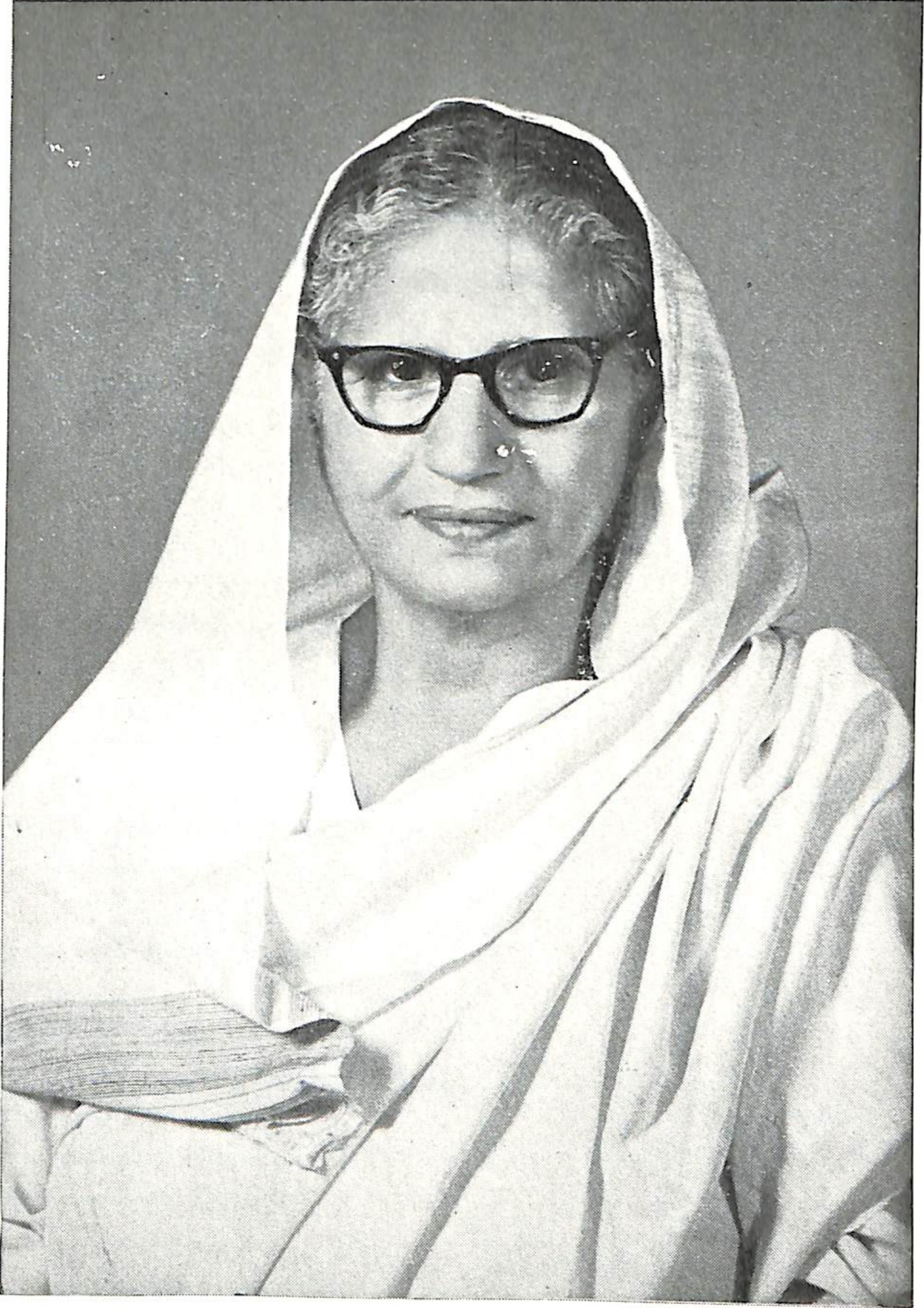
श्रीमती प्रेमदेवी (विहार में धनबाद निवासी स्वर्गीय दीवानबहादुर श्री बलीराम तनेजा की धर्मपत्नी) ने पूज्यपाद श्री गुरुदेव स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के श्रीचरणों में बैठकर अध्यात्म साधना की है। आप विदुषी, कवियित्री, धर्मात्मा, भगवद्परायणा और साध्वी महिला हैं। आप दयालु तथा दानशीला हैं।

आपके पतिदेव भी धर्मात्मा, परोपकारी, उदार तथा दानी थे। समाज-कल्याण के कार्यों में बड़ी उदारता से दान दिया करते थे। इनके सुपुत्र श्री विजय-प्रताप और नन्दकुमारजी भी अपने माता-पिता के समान धर्म, दान और परोपकार परायण हैं।

श्रीमती प्रेमदेवी तनेजा योगनिकेतन की तन, मन तथा धन से सेवा कर रही हैं। इस 'हिमालय का योगी' ग्रंथ के प्रकाशन का सब व्यय इन्होंने देने की कृपा की है। इसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं और भक्तवत्सल भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप तथा आपके सुपुत्र सदैव दान, धर्म और परोपकार के कार्य करते हुए आरोग्य, सुख-समृद्धि तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करें और बढ़ें, फूलें तथा फलें!

व्यवस्थापक

योग निकेतन ट्रस्ट



श्रीमती प्रेमदेवी (धर्मपत्नी स्वर्गीय दीवानबहादुर श्री वलीरामजी
तनेजा तथा माता श्री विजयप्रतापजी और श्री नन्दकिशोरजी)
धनबाद (बिहार)

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

उत्तरार्द्ध

विषय	पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

भूमिका

भारतवर्ष योग की परम्पराओं को भूल चुका था। महर्षि पतंजलि के नाम से भी इने-गिने विद्वान् ही परिचित थे। जो संस्कृत के विद्वान् षड् दर्शन का अध्ययन करके पाण्डित्य प्राप्त करना चाहते थे वे ही इसे पढ़ते थे। पातंजल योग भी एक महत्वपूर्ण दर्शन है। इसके बिना दर्शन-ज्ञान अधूरा है। इस दर्शन को पाण्डित्य के लिए पढ़ा जाता था, योगाभ्यास के लिए नहीं। आधुनिक युग में योगियों का प्रायः अभाव सा ही है। पूज्यपाद श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने योग की प्राचीन परम्पराओं तथा योग की प्राचीन परिपाटी को इस युग में प्रारंभ करके इसका पुनरुद्धार किया है।

श्री योगीराज के संपर्क में बहुत वर्ष तक रहने का पुण्य-लाभ किया है। इनके जीवन की अनेक घटनाएं प्रत्यक्ष देखी तथा सुनी हैं। इनके अद्भुत मनोबल, आश्चर्य-चकित कर देने वाली सिद्धियों, अनुभूतियों और चमत्कारों को देख सहसा विश्वास नहीं होता कि इस पतन के युग में भी ऐसे महान् योगी का जन्म हो सकता है। इनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं तथा यौगिक अनुभूतियों को पढ़कर जनता की योग में आस्था तथा श्रद्धा उत्पन्न होगी, इसके प्रति रुचि में वृद्धि होगी, तथा योगोन्मुख युवक योगियों को मार्ग-दर्शन लाभ होगा, इस उद्देश्य से "हिमालय का योगी" को लिखने का प्रयास किया गया है। इसमें महाराजश्री के जीवन की प्रमुख-प्रमुख घटनाओं तथा योगानुभूतियों का संग्रह किया गया है। आशा है, यह ग्रंथ पाठकों के नैतिक स्तर को उन्नत करने, उनके जीवन को धार्मिक बनाने, उच्चादर्शों को समझने, व्यावहारिक जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने, अतीत की ओर ध्यान आकर्षित करने तथा योग के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए अग्रसर होगा।

मानव मात्र के जीवन का तीन-चौथाई भाग सर्वसाधारण मानव के समान ही होता है। प्रत्येक प्राणी माता के गर्भ से उत्पन्न होता है। माता-पिता से लालित और पालित होकर विकास और वृद्धि को प्राप्त करता है। विद्यालयों तथा महा-विद्यालयों में अध्ययन करके उपाधि ग्रहण करता है या यूं ही साधारण व्यावहारिक ज्ञान का अर्जन करता है। युवावस्था में आजीविका की चिन्ता करता है। विवाह होता है। परिवार बन जाता है। उसका उत्तरदायित्व संभालता है। वार्धक्य को प्राप्त करता है, और इसी प्रकार जीवन संघर्ष करता हुआ अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है। आयु का एक-चौथाई भाग ही ऐसा है जो उसे देव अथवा दानव बना देता है। महाराजश्री ने अपने जीवन के केवल एक-चौथाई भाग की ही रक्षा

नहीं की ग्रपितु सम्पूर्ण जीवन की रक्षा की है। इन्होंने ग्रपना सारा जीवन तपश्चर्या, साधना ग्रौर योग के ग्रर्पण कर दिया, इसीलिए वे युगपुरुष हैं। तप:पूत तपस्वी हैं। महान् योगी तथा सिद्ध महात्मा हैं। राजयोगाचार्यजी ने योग द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त किया है। जिस प्रकार ग्राधुनिक विज्ञानवेत्ता विज्ञान की प्रयोगशाला में विविध लौकिक ग्रनुसंधान करता है, उसी प्रकार से महाराजश्री ने ग्रपनी देहरूपी भगवान् की पुरी को प्रयोगशाला बनाकर ग्रात्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान का ग्रनुसंधान किया है ग्रौर पांचों कोषों के साक्षात् दर्शन करके ब्रह्म-दर्शन लाभ किया है। यह पूज्य महाराजजी की विश्व को एक महान् देन है। इनका यह उपकार वर्तमान तथा भावी सन्ततियों के हृत्पटल पर सदैव ग्रङ्कित रहेगा।

योगीराजजी ग्रन्य बालकों के समान ही एक साधारण बालक थे। ग्रपने परम पुरुषार्थ, तप, त्याग, जाप, साधना तथा योगाभ्यास के द्वारा एक ही जन्म में विद्वान्, योगी, ग्रात्मज्ञानी तथा ब्रह्मज्ञानी बन गए। इनका सारा जीवन ग्राबालवृद्ध सभी के लिए एक महान् उपदेश है। इनके बताए मार्ग पर चलकर मानव ग्रपना कल्याण कर सकता है।

"हिमालय का योगी" पांच ग्रध्यायों में विभक्त है। प्रथम ग्रध्याय में वैराग्योत्पत्ति, बाल्यकाल में गृह-त्याग, संस्कृताध्ययन, कई योगियों के सान्निध्य में रहकर योगाभ्यास, वैराग्य भावना का दृढ़ीकरण, विविध संघर्षों पर विजय तथा योगियों की खोज में इतस्ततः भ्रमणादि का विषद वर्णन है।

दूसरे ग्रध्याय में योगी परमानन्दजी से साक्षात्कार, इनके श्रीचरणों में बैठ कर योग-साधना, उचित मार्ग दर्शन, १२ घण्टे तक की शून्य समाधि का ग्रभ्यास, कई वर्ष तक मौन व्रत धारण करके इसे दृढ़भूमि करना, इनके प्रशिक्षण के ग्राधार पर कई घण्टे तथा कई-कई दिन की शून्य समाधि का ग्रभ्यास, दर्शनोपनिषदादि ग्रंथों का ग्रध्ययन, ग्रनेक सन्तों तथा महात्माग्रों के सत्संग के लाभादि का वर्णन किया गया है।

तीसरे ग्रध्याय में पूर्ण ब्रह्मज्ञानी योगी की खोज, ब्रह्मज्ञानी ग्रात्मानन्दजी महाराज का साक्षात्कार, इनके श्रीचरणों की कृपा से संप्रज्ञात समाधि द्वारा कारण रूप प्रकृति ग्रौर इसके समस्त कार्यों का साक्षात्कार, ग्रौर ग्रात्म-ज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति ग्रौर साक्षात्कार, कई वर्षों का मौन, ग्रनेक उपायों तथा ध्यान-समाधि द्वारा प्राप्त विज्ञान को दृढ़भूमि करने का सविस्तार वर्णन है।

चौथे ग्रध्याय में लगभग २५ वर्ष तक हिमालय में निवास, योग के विद्यार्थियों को योगविद्या का प्रशिक्षण, ग्रष्टांग योग द्वारा ध्यान ग्रौर समाधि से ग्रात्म-

साक्षात्कार करवाना, 'बहिरङ्ग-योग' तथा 'आत्म-विज्ञान' ग्रंथों की रचना, सन् १९६२ में वैशाख की संक्रान्ति के दिन वृहद् यज्ञ करके संन्यास आश्रम में प्रवेश का वर्णन है।

पंचम अध्याय में बद्रीनाथ में ४ मास का काष्ठ मौन तथा 'ब्रह्म-ज्ञान' की रचना, ब्रह्मसाक्षात्कार का अभ्यास कराना, सन् १९६४-६५ में भारत के बड़े-बड़े नगरों का परिभ्रमण, आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान का प्रचार, अनेक व्याख्यानों, नगरों में लोगों में योग के प्रति अभिरुचि और योगाभ्यास के साधनों का प्रचार, पुनः हिमालय-आगमनादि का वर्णन है।

इस ग्रंथ के लेखक के रूप में किसी व्यक्ति विशेष का नाम न देने का कारण किसी व्यक्ति विशेष का लेखक न होना ही है। विभिन्न लेखों का संग्रह करके योगनिकेतन ट्रस्ट ने जनकल्याणार्थ पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश
जिला देहरादून
१६-३-१९६६
वि० संवत् ६ चैत्र २०२३

व्यवस्थापक
योगनिकेतन ट्रस्ट

पूर्वार्द्ध

ॐ

हिमालय का योगी

प्रथम अध्याय

वैराग्य का उदय

महापुरुष सभ्यता, संस्कृति और धर्म के स्रोत होते हैं। वास्तव में ये किसी भी देश अथवा राष्ट्र की अलौकिक निधि हैं। इनके द्वारा ही मानव आत्मा का रक्षण और पोषण होता है। विश्व-कल्याण के लिए वे सदैव चिन्तित रहते हैं। अज्ञान के गहन गर्त में डूबे जीवों की दयनीय दशा को देखकर वे द्रवित होते हैं और अपनी अहैतुकी कृपा की वर्षा वे उन पथभ्रष्टों और किंकर्त्तव्यविमूढ़ प्राणियों पर शाश्वत-रूपेण करते रहते हैं। जब मानव धर्म के प्रति उदासीन हो जाता है, अधर्म की अभिवृद्धि होने लगती है, पापाचरण का समर्थन होता है, भगवद्भक्तों का उपहास और अपमान होने लगता है, तब आर्तों की आर्ति हरण करने तथा दुःखितों के दुःखों को दूर करने और पतितों के परित्राण, धर्म के उद्धार, सभ्यता तथा संस्कृति के सुधार, पावन परम्पराओं की पुनः स्थापना और लोक कल्याण के लिए जगन्नियन्ता अपनी किसी न किसी विभूति को संसार में प्रेषित किया करते हैं। महानात्मा ब्रह्मर्षि प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी उन दिव्य विभूतियों में से एक हैं।

योग का पुनरुद्धार––अनेक विमल धाराओं सहित भक्ति की जान्हवी तो किसी न किसी रूप में हमारे देश में गत कई शताब्दिों से प्रवाहित होती रही। समय-समय पर इसका विभिन्न सहायक धाराओं से परिपोषण और परिवर्धन होता रहा। कबीर, रविदास, नानक, नामदेव, एकनाथ, रामदासादि इसी भक्त परम्परा के प्रतीक थे। किन्तु योग-परम्परा को हमारा राष्ट्र बिल्कुल भूल गया था। भक्ति-मार्ग की सरलता और सुगमता में आकर्षण था। वह बड़ी सुबोध थी और आसानी से समझ में आ जाती थी। सहजगम्य होने से यह लोकप्रिय थी। भक्ति पापात्माओं को भी उल्टा-सुल्टा भगवन्नाम स्मरणमात्र से ही परित्राण की आशा दिलाती थी। अतः यह सर्वाधिक लोकप्रिय बनी रही। योग बड़ा कठिन मार्ग है। इसी के विषय में उपनिषद् ने कहा है "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया"। यह पथ बड़ा दुर्गम है। इसमें साधक को योगाग्नि में अपने को स्वाहा करना होता है। कठिनतम तपस्या करनी होती है, इसकी साधना की समाप्ति किसी एक या दो जन्म में नहीं होती। योग में सिद्धि प्राप्त करने के लिए जन्मजन्मान्तरों तक साधना करनी पड़ती है। इसीलिए यह मार्ग लोकप्रिय नहीं रह सका था। योग भारतवर्ष की अमूल्य निधि है। समस्त विद्याएं योगाभ्यासजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के ही मधुर और मनोहर फल हैं। हमारे शास्त्रों में सभी धर्मों का मुख्य साधन योग माना गया है। वेद, उपनिषद्, गीतादि शास्त्रों में योग के महत्व को यत्र-तत्र बड़ी महत्ता दी गई है। महाभारत तथा पुराणों

में भी योग का विपुल तथा विस्तृत वर्णन पाया जाता है। किन्तु वर्तमान युग में भारतीय अपने महान योग को भूल गए थे। योग का नाम ही लोगों को भयभीत करता था। इसीलिए हमारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा था। इसी पुरातन योग की परम्पराओं की रक्षा और योग का पुनरुद्धार करने के लिए योगीराज योगेश्वरानन्दजी महाराज का आविर्भाव हुआ।

जन्म––योगीराज का पूर्व नाम व्यासदेवजी था। आपने अपने जन्म से एक उच्च कुल को गौरवान्वित किया था। इनके माता-पिता तथा बहिन-भाईयों का इनसे अत्यधिक स्नेह था। ये माता-पिता के दुलारे तथा अपने सहोदरों के प्यारे थे। बड़े लाड और प्यार से आपका लालन-पालन और पोषण हुआ था। यह बालक प्रतिभा-सम्पन्न था। सहन-शीलता, सहानुभूति, आज्ञापालनादि आपके सहज गुण थे। अपने गुणों तथा शिशुस्वभाव सुलभ चाञ्चल्य तथा माधुर्य और सौन्दर्य के कारण वे दिन प्रति दिन सर्वप्रिय बनते गए। पास-पड़ौस के आबाल वृद्ध नर-नारियों के ये बड़े स्नेहभाजन बन गए। जहां कहीं भी ये जाते वहीं सब उनसे प्रेम करते तथा उनकी भोली और मीठी-मीठी बातों से आनन्द लाभ करते। उनकी बाल-लीलाएं बालगोविन्द के बाल्य-काल का सहसा स्मरण दिला देती हैं। इस प्रकार बड़े वात्सल्यपूर्ण वातावरण में बालक व्यासदेव चन्द्रकला की भांति विकास को प्राप्त करने लगा।

विचारशीलता––व्यासदेवजी स्वभाव से ही विचारशील तथा एकान्तप्रिय थे। घर हो या बाहिर, वे किसी न किसी एकान्त स्थान में बैठते थे। समुदाय में रहना उन्हें पसन्द न था। इसीलिये कभी-कभी उन्हें अपने पारिवारिक जनों तथा सह-पाठियों का कोप-भाजन बनना पड़ता था। वे एकान्त में अपने घर के किसी कोने में या उद्यान में, पाठशाला के सुदूर किसी क्रीडाङ्गन में अथवा किसी एकान्त कमरे में बैठे कुछ सोचा करते थे। सदैव विचारमग्न दृष्टिगोचर होते थे। यह किसी को पता नहीं था कि वे क्या सोचते हैं और किन विचारों में डूबे रहते हैं। ग्यारह या बारह साल के बालक से किसी प्रकार की विचारशीलता की आशा भी नहीं की जा सकती थी। बालक क्या सोचता है, किस विचार में डूबा है, किस चिन्ता ने इसे घेरा है, इसे क्या पीड़ा है तथा क्या दुःख है, इसे कोई समझ नहीं सका। यह बात सबके लिए एक पहेलिका थी। माता-पिता बालक के इस प्रकार के रुख से दुःखी थे और कुछ चिंतित से रहने लगे। वे इस बात की कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उनका बारह वर्ष का बालक सृष्टि, उसका स्रष्टा तथा जीवों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में तथा तत्सम्बन्धित अन्य विषयों के विचारों में डूबा रहता है। व्यासदेवजी के सामने यह एक जटिल समस्या थी। इसका समाधान उनके पास न था, इसीलिए वे आतुर तथा व्याकुल रहते थे। माता-पिता को क्या मालूम था कि उनका नन्हा बालक किन जटिल समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त है।

स्वामी रामानन्दजी से संपर्क––जब व्यासदेवजी को ब्रह्म, प्रकृति और जीव तथा संसार, और उसके दुःखों के कारण समझ में न आए तब वह किसी ऐसे महा-पुरुष की खोज करने लगे जो उन्हें जीव, ब्रह्म और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध और संसार के दुःखों की निवृत्ति के विषय में पूर्ण ज्ञान प्रदान कर सके और ऐसा मार्ग बता सके जिसपर चलकर संसार के दुःखों को दूर किया जा सके। जब वे इस खोज में

इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तब एक दिन उन्हें पता चला कि स्वामी रामानन्दजी गिरि उनके नगर में आए हुए हैं। अपने एक मित्र के साथ वे उनके दर्शन करने के लिए गए। स्वामीजी महाराज ने द्वादशवर्षीय बालक व्यासदेव के व्यक्तित्व को तुरंत पहिचान लिया। उन्होंने बालक की तिरोहित शक्तियों को जाना और यह समझ लिया कि यह बालक एक दिन महापुरुष होगा और पथभ्रष्ट लोगों का पथप्रदर्शक बनेगा।

संस्कृताध्ययन की प्रेरणा——व्यासदेव की शिक्षा का प्रारम्भ उर्दू और अंग्रेज़ी से हुआ था। जब वह स्वामी रामानन्दजी महाराज से मिले थे तब उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी और छठी कक्षा में पढ़ते थे। स्वामीजी महाराज के चरणारविन्दों में प्रणाम करके पास बैठ गये। बालक की पढ़ाई-लिखाई के विषय में बातचीत करने के पश्चात् महाराज को विदित हुआ कि बालक केवल अंग्रेज़ी और उर्दू ही पढ़ता है और संस्कृत तथा आर्यभाषा से नितान्त अनभिज्ञ है, अतः उसे ये दोनों भाषाएं पढ़ने की आज्ञा दी। व्यासदेव ने असमर्थता प्रकट करते हुए निवेदन किया कि पाठशाला में अब ये दोनों भाषाएं पढ़ना असंभव है क्योंकि उन्होंने प्रारम्भ से इन दोनों भाषाओं को पढ़ा ही नहीं था। अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तरों से स्वामीजी महाराज ने यह समझ लिया था कि बालक कुशाग्रबुद्धि है, और इसमें महानता के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं, अतः उससे कहा कि अपने खाली समय में हमारे पास आया करो, हम तुम्हें ये दोनों भाषाएं पढ़ाया करेंगे। प्रत्येक आर्य के लिए इन दोनों भाषाओं का पढ़ना अनिवार्य है। संस्कृत देववाणी है। इसी में हमारी सभ्यता और संस्कृति निहित हैं। यही हमारे धर्म का आदिस्रोत है। संस्कृत भाषा के अध्ययन के बिना जीव, ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध तथा संसार के दुःखों से मुक्त होने के बारे में ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसी भाषा में हमारे वेद, दर्शन, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषदादि ग्रंथ लिखे गए हैं। इनके पढ़े बिना निजधर्म को समझना असंभव है।

स्वामीजी से संस्कृताध्ययन——व्यासदेवजी पर स्वामीजी के उपदेश का गहरा प्रभाव पड़ा। वह स्वामीजी से पढ़ने के लिए नित्यप्रति आने लगे। स्वामीजी ने सर्वप्रथम बालक को ब्रह्मचर्य का महत्त्व बताया और ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के लिए कहा। बालक ने उसी दिन आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत धारण किया। स्वामीजी के व्यक्तित्व का व्यासदेवजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। पाठशाला से छुट्टी होते ही वे तुरन्त स्वामीजी के पास पढ़ने के लिए आ जाते। तीन-चार महीने में ही आर्यभाषा की चार-पांच पुस्तकें पढ़ लीं और लिखने का भी बहुत अच्छा अभ्यास होगया। व्यासदेव की इस प्रकार की अद्भुत प्रतिभा से स्वामीजी बड़े प्रभावित हुए और उनके अध्ययन में अधिकाधिक रुचि लेने लगे। इसी काल में व्यासदेवजी की संस्कृत में भी अच्छी गति होगई।

तीन जीवन-चरितों का प्रभाव—स्वामीजी महाराज ने व्यासदेव को स्वामी शंकराचार्य, भगवान् बुद्ध तथा स्वामी दयानन्दजी महाराज के जीवन-चरित पढ़ाए। इन तीनों जीवन-चरितों का व्यासदेवजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने यह निश्चय किया कि वह भगवान् शंकर के समान प्रकाण्ड पडिण्त, भगवान् बुद्ध के समान त्यागशील और ऋषि दयानन्द के समान नैष्ठिक ब्रह्मचारी और महान् योगी बनेंगे।

बुद्ध ने देखा कि संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख है। इस दुःखित तथा पीड़ित संसार के दुःख का क्या कारण है तथा इस दुःख से संसार को कैसे बचाया जा सकता है—इसका पता लगाने के लिए बुद्ध ने गृह-त्याग किया और दुःखार्णव में डूबे हुए संसार को इससे बचने का उपाय बताया। शंकर ने बुद्ध के शून्यवाद तथा अकर्मण्यता-वाद के नाश करने का बीड़ा उठाया और बुद्ध द्वारा प्रचारित अनीश्वरवाद को नष्ट कर ब्रह्मवाद की स्थापना की। ऋषि दयानन्द ने तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दयनीय दशा से द्रवित होकर अज्ञान के गहन गर्त में गिरे हुए भारत के उद्धार के लिए गृह-त्याग किया और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके भारत में नवचेतना का प्रसार किया। प्राचीन पावन परम्पराओं की स्थापना की, अतीत का गौरव बताया, नवीन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की, कुरीतियों रूपी विविध कुष्ठ से पीड़ित समाज को जीवन दान दिया, राष्ट्रीय भावना को जागृत किया और वैदिक ज्ञान की ओर भारत का ध्यान आकर्षित किया। ऋषि दयानन्द के समान नैष्ठिक ब्रह्मचारी और महान् योगी बनकर पथभ्रष्ट समाज का पथ-प्रदर्शन करने के लिए हमारे चरितनायक व्यासदेवजी ने भी १५-१६ वर्ष की आयु में गृह-त्याग किया।

स्वामीजी का प्रभाव—व्यासदेवजी ने स्वामी रामानन्दजी के पास रह कर आर्यभाषा की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और संस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त किया। संध्या और गायत्री के अतिरिक्त विविध सुभाषित तथा श्लोक याद किए। रामानन्दजी का व्यासदेव के हृदय पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। बालक-हृदय बड़ा कोमल, सरल और भावुक होता है। फिर व्यासदेव के प्राक्तन संस्कार उत्तम थे, घर का वातावरण भी ठीक था। अन्तःकरण निर्मल था, अतः स्वामीजी का उपदेश उनके हृदय-पटल पर सदैव के लिए अङ्कित हो गया, स्वामीजी के आदेश से पिताजी ने व्यासदेव का यज्ञोपवीत संस्कार भी करा दिया था। व्यासदेवजी का चित्त अब स्कूल से उपराम होगया। अंग्रेज़ी और उर्दू पढ़ने में अरुचि होगई। कई-कई दिन स्कूल नहीं जाते थे। स्वामीजी महाराज के सत्संग में आनन्दानुभव करते थे और प्रायः उन्हीं के आश्रम में रहते थे। इस पर पिता बड़े क्रुद्ध हुए और बालक व्यासदेवजी की ताड़ना की और धिक्कारा। उसको स्वामीजी के पास जाने से मना किया और नियमानुसार नित्यप्रति स्कूल जाने का कठोर आदेश दिया।

गृह-त्याग तथा योग के प्रति रुचि

व्यासदेव ने जैसे-तैसे बड़ी कठिनाई से छठी कक्षा पास की। अब स्कूल से अरुचि होगई। स्कूल जाना बिल्कुल छोड़ दिया। पिताजी स्वामीजी के पास जाने नहीं देते। संस्कृत सीखने का और कोई साधन नहीं। स्वामीजी के सत्संग तथा उपदेश सुनने के लिए पिताजी ने उनके पास न जाने की कठोर आज्ञा दे दी। पिता ने यह दृढ़ धारणा बना ली थी कि यदि व्यासदेव स्वामी रामानन्दजी के पास जाता रहेगा तो वह पक्का साधु हो जाएगा। व्यासदेवजी के लिए यह स्थिति असह्य हो उठी। वे बड़े आतुर और व्याकुल रहने लगे। जो पुस्तकें स्वामीजी से पढ़ी थीं उनकी पुनरावृत्ति करने तथा गायत्री जाप में समय व्यतीत करने लगे। स्वामीजी ने व्यास-देवजी को बताया था कि गायत्री जाप से शीघ्र कार्यसिद्धि प्राप्त होती है। घण्टों हीगायत्री जाप में व्यतीत करते। खान-पान की चिन्ता भी उन्हें न रहती थी।

माता भोजन के लिए बुलाती तो भोजन करने चले जाते थे। यदि वह न बुलाती तो जाप चलता रहता था। व्यासदेव के पिता के लिए यह बात असह्य थी। बालक को इस मार्ग से हटाने के लिए तथा स्वामीजी का सत्संग छुड़ाने और उस वातावरण से दूर रखने के लिए व्यासदेवजी को उनकी बहिन के पास भेज दिया और उसे आदेश दिया कि वह अपने जीजाजी की दुकान पर दुकान का काम सीखे। गुरु नानकदेव के पिता ने भी उसे भक्ति-मार्ग से हटाने और संसार में आसक्त करने के लिए तथा सन्त-समागम से दूर रखने के लिए उसे उसकी बहिन के पास व्यापारादि सीखने के लिए भेजा था किन्तु इससे उनकी उपरामता में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं आया था। इसी प्रकार व्यासदेवजी को बहिन के घर पर भेजने पर भी उनकी चित्तवृति पूर्ववत् उपराम बनी रही। वहां से पिता ने व्यासदेव को पुनः अपने पास बुला लिया। यह पूर्ववत् गायत्री जाप करने तथा उदासीन वृत्ति से रहने लगे। पारिवारिक सदस्यों से दूर घर के किसी एक कोने में बैठ कर या तो जाप करते या चुपचाप कुछ चिन्तन करते रहते। न तो किसी से अधिक वार्तालाप करते और न किसी के पास बैठते। भाई-बहिन सभी उनका उपहास करते। व्यासदेव ने अब यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि घर पर रह कर न तो संस्कृत पढ़ने की कोई व्यवस्था हो सकती है और न योग ही सीखा जा सकता है। अतः घर से भाग जाने की योजनाएं बनाने लगे। योग सीखने की प्रबल अभिलाषा उन्हें गृह-परित्याग के लिए बार-बार प्रेरित करती थी। तेरह-चौदह वर्ष के बालक में योग की इतनी उत्कट अभिलाषा उसके प्राक्तन संस्कारों के प्रबल प्रभाव के परिणामस्वरूप ही मालूम होती थी। इससे यह स्पष्ट है कि व्यासदेव पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट थे। स्वामी रामानन्दजी उससे प्रायः कहा करते थे कि योग के बिना आत्म-साक्षात्कार असंभव है।

स्वामीजी से सहायता की प्रार्थना—व्यासदेवजी अभी तक अपना भावी कार्य-क्रम निश्चित न कर सके थे। घर से भाग जाने का निश्चय तो कर लिया था किन्तु गन्तव्य स्थान तथा योग सीखने और संस्कृत पढ़ने की व्यवस्थादि के बारे में कोई निर्धारित रूपरेखा न बना सके थे। अतः चिन्तित तथा व्याकुल रहना स्वाभाविक था। एक दिन अत्यन्त आतुरता तथा व्याकुलता के साथ स्वामी रामानन्दजी के पास गए और उनके चरणों पर गिर कर अपनी सारी व्यथा उन्हें कह सुनाई। अपने गृह-परित्याग के विचार से भी उन्हें अवगत किया और सहायता के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने दो चार दिन में विचार करके अपनी सलाह देने का वायदा किया।

माता का उपदेश—व्यासदेवजी की माता उनसे अत्यन्त स्नेह करती थी। एक दिन पास बिठाकर वात्सल्य भाव से उससे पूछने लगी, "बेटा, तुम्हें क्या होगया है? तुमने स्कूल जाना छोड़ दिया। रात-दिन न जाने किस चिन्ता में डूबे रहते हो। भोजन भी तुम रुचिपूर्वक नहीं करते हो। रात-दिन किन्हीं गहरे विचारों में खोए से रहते हो। न तुम अपने बहिन-भाईयों और मित्रों से कभी हंसते-बोलते हो और न कभी उनसे खेलते ही हो। सारा दिन घर के किसी कोने या मन्दिर में बैठे माला लेकर जाप किया करते हो। यह तुम्हारी अवस्था माला फेरने की नहीं है अपितु पढ़ने और भावी जीवन के लिए तैयारी करने की है जिससे तुम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सको।" व्यासदेव ने कहा, "मैं पढ़ना तो माताजी अवश्य चाताह

हूं किन्तु उर्दू और अंग्रेज़ी पढ़ने में मेरी रुचि नहीं है। मैं तो संस्कृत पढ़ना चाहता हूं। इसी में तो हमारे धर्म की बातें लिखी हैं। इसी को पढ़कर वास्तव में मनुष्य अपने जीवन को उन्नत कर सकता है और भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। इसलिए आप मुझे किसी संस्कृत विद्यालय में संस्कृत अध्ययन करने के लिए भेज दो। यदि आप ऐसा न करोगी तो मैं स्वयं ही किसी संस्कृत पाठशाला में पढ़ने चला जाऊंगा और ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके संस्कृत पढूंगा और योग साधन के द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करूंगा।" माता ने स्नेहपूर्वक उसका आलिंगन करके कहा, "पुत्र ! ब्रह्मचर्य-व्रत को आजीवन धारण करना अत्यन्त कठिन है। कोई विरले ही लड़के आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर सकेंगे। इनकी गणना अंगुलियों पर की जा सकती है। यह व्रत बड़ा कठिन है। तुम इसका पालन न कर सकोगे। तुम्हें सदा वनों में रहना होगा। स्त्रियों के दर्शन मात्र से भी दूर रहना पड़ेगा। गद्देदार पलंगों का परित्याग करके तुम्हें ज़मीन पर सोना होगा और मृगचर्म धारण करना होगा। भिक्षाचर्या करनी पड़ेगी और गुरुजी के पास रह कर वेदाध्ययन करना होगा। बेटे ! ब्रह्मचर्य-साधना बड़ी कठिन है। इसको धारण करना तो लोहे के चने चबाना है। तुम इस हठ को छोड़ दो। जिस प्रकार से तुम्हारे भाई हंसते-बोलते और पढ़ते-लिखते हैं तथा बड़े सुख से घर में रहते हैं तुम भी इसी प्रकार से रहो। इससे तुम्हारे पिताजी तुमसे प्रसन्न रहेंगे और सारा परिवार भी इसी में अपना सुख मानेगा। तुम इतने बड़े परिवार में उत्पन्न हुए हो। यहां पर सभी सुख तथा ऐश्वर्य के साधन प्राप्त हैं। तुम क्यों इन सबका परित्याग करके कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहते हो ? तुम अंग्रेज़ी और उर्दू पढ़ना क्यों छोड़ रहे हो ? इनको पढ़कर ही तो तुम राज्य में ऊंचा पद प्राप्त कर सकोगे और अपने भावी जीवन को सुखी बना सकोगे। मेरे दुलारे बेटे ! अपनी प्यारी माता की बात को मानो और अपने हठ को छोड़ो। यह अच्छा नहीं है। तुम्हारे पिताजी ये सब बातें सुनेंगे तो तुमसे बहुत नाराज होंगे। तुम उनके स्वभाव को जानते ही हो। ऐसा काम मत करो जिससे घर में अशान्ति उत्पन्न हो और तुमसे सब नाराज़ हों। किन्तु बालक व्यासदेव अपने विचारों पर हिमालय के समान अटल रहा। माता अपने प्रेमभरे वचनों से उसे अपने निश्चित मार्ग से हटा न सकी। व्यासदेव ने ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके योग साधन करने का जो निश्चय किया था उससे वह उसे डिगा न सकी। उसने माता से निवेदन किया कि वे उसे इस व्रत के पालनार्थ वन में जाने की आज्ञा प्रदान करें किन्तु माता ने कहा कि मैं ऐसी निर्दयी माता नहीं हूं जो अपने प्यारे बेटे को वन में भेजूं। व्यासदेव ने मदालसा का उदाहरण देकर माता को समझाया और कहा कि "इस ब्रह्मवादिनी तथा ब्रह्मवर्चस्विनी माता ने अपने पुत्रों को आत्म-ज्ञान प्राप्त्यर्थ वन में भेजा था। आप भी उस देवी का अनुकरण करें और मुझे योग-साधना द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेज दें। आपके पास आपके चार पुत्र तो रहेंगे ही, केवल एक ही तो नहीं रहेगा। माताजी ! आप अपने पांचवें पुत्र को भगवान् के चरणों में अर्पण कर दो। इसी में सबका कल्याण है।"

व्यासदेव की माता पढ़ाई के प्रति पुत्र की उपरति, जीवन के प्रति उदासीनता और उसकी चिन्तितावस्था को देखकर अत्यन्त दुःखी रहती थीं। उसका मंत्र-जाप

उसे बिल्कुल पसन्द न था। वह अपने पुत्र को साधु या सन्यासी देखना नहीं चाहती थी। वह तो उसे लौकिक दृष्टि से बहुत ऊंचे पद पर देखना चाहती थी। वह उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में देखकर सन्तुष्ट नहीं थी, वह तो उसे ऐश्वर्यवान्, समृद्धिमान और पुत्रवान् देखना चाहती थी। उसे भला व्यासदेव के ऐसे रंगढंग किस प्रकार रूचिकर हो सकते थे ! जब वह किसी प्रकार भी व्यासदेव को समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर न ला सकी तो उसने उसके पिता को सारी स्थिति से अवगत कराया और कहा कि लड़का स्कूल में जाना नहीं चाहता, संस्कृत पढ़ना चाहता है और योग सीखना चाहता है। यदि इसकी व्यवस्था न हो सकी तो वह घर से भाग जाने की धमकी देता है। उस पर कड़ी निगरानी रखने की आवश्यकता है, कहीं सचमुच ही भाग न जाए। पिता को यह सब जानकर महान् दुःख हुआ। व्यासदेव को अपने पास बुलाया और स्कूल जाने की प्रेरणा दी। किन्तु वह स्कूल जाने के लिए तैयार न हुआ और निवेदन किया कि उसे संस्कृत पढ़ने के लिए किसी गुरुकुल में भेज दिया जाए। किन्तु पिता को यह बात पसन्द नहीं आई और उसको बहुत डांटा फटकारा। व्यासदेवजी अपने पिता से बहुत डरते थे अतः एक लम्बी चुप साधकर सामने खड़े रहे, किन्तु अपने निश्चय से पिता उन्हें डिगा नहीं सके।

चार दिन पश्चात् पुनः स्वामी रामानन्दजी के पास गये और अपने घर छोड़ने के निश्चय से अवगत कराकर भविष्य में सहायता करने और मार्ग दर्शन की प्रार्थना की। स्वामीजी ने उन्हें तीन-चार स्थानों के पते बता दिए और परिचय-पत्र लिखकर उन्हें दे दिए।

दृढ़प्रतिज्ञ तथा व्रतशील ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने १५ या १६ साल की आयु में अपने घर से ७०० रु० और एक कम्बल लेकर बैसाख मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को गृह त्याग किया। चन्द्रमा अस्त हो गया था। सारा परिवार निद्राग्रस्त था। बालक व्यासदेव अकेला जागरूक था। माता का वात्सल्य, पिता का प्रेम तथा भाई-बहनों का स्नेह और सौहार्द उसे अपने प्रण से किंचिन्मात्र भी डिगा न सका। संसार के प्रलोभन, परिवार का प्रेम, घर का सुख और आराम उसे पथभ्रष्ट न कर सके। वह गगनचुम्बी हिमालय के समान अचल, अडिग और स्थिर रहा। वह संसार के संघर्षों, घातों तथा प्रतिघातों को सहकर भी अचल चट्टान की भांति स्थिर रहा और उसका चरित्र निखरता रहा। ऐसा मालूम होता था मानो बालक व्यासदेवजी ने "घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्" का जो पाठ स्वामी रामानन्दजी के पास पढ़ा था उसे चरितार्थ कर रहे थे। चन्दन को जितना घिसा जाता है उतना ही वह सुगन्धित होता जाता है। जितना बारीक मेंहदी को पीसा जाता है उतना ही वह अधिक रंगयुक्त हो जाती है। भट्ठी में तप कर ही स्वर्ण कुन्दन बनता है। शोडषवर्षीय बालक व्यासदेवजी ने अपने आपको तपस्या की भट्ठी में तपा-तपाकर अपने चरित्र को चमकाने और योग द्वारा अध्यात्म तत्त्व को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। संसार का कोई ऐसा प्रलोभन न था जो उसे अपने गन्तव्य-पथ से विचलित कर सकता।

सारे परिवार को निद्राविभूत देखकर व्यासदेवजी ने इस अवसर से लाभ उठाया और एक कम्बल, एक लोटा तथा ७०० रुपये के पोण्ड लेकर घर से प्रस्थान

किया। बालक कभी अकेला घर से बाहिर न निकला था। चारों ओर रात्रि का अन्धकार छाया हुआ था इसलिए उसे कभी-कभी भय भी लगता था। सामने बियाबान जंगल था। हिंसक जीवों का भय था किन्तु व्रतशील, दृढ़निश्चयी तथा निज उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दृढ़प्रतिज्ञ व्यासदेवजी को यह भय पथभ्रष्ट नहीं कर सका। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि।" सान्द्रान्धकाराच्छादित भयंकर रात्रि में दृढ़प्रतिज्ञ यह बालक घनघोर जंगल की किंचिन्मात्र भी परवाह न करके निज लक्ष्य पूर्त्यर्थ अग्रसर हो रहा था। भूमि असम थी। कहीं ऊंची थी और कहीं नीची। कहीं खड्डा था और कहीं नाला। जैसे-तैसे गिरते-पड़ते व्यासदेवजी ने इस तिमिराच्छादित घने जंगल को पार किया। गन्तव्य पथ का निर्णय करना कठिन था। किस पथ का अनुसरण करना चाहिए, किस दिशा का अवलम्बन ठीक होगा, इत्यादि के विषय में वह कुछ निश्चय न कर सके।

शोकातुर परिवार—इधर प्रातःकाल व्यासदेवजी के माता, पिता, भाई-बन्धु जब जगे तो व्यासदेव को अपने बिस्तर पर न पाकर एकदम घबरा उठे। बालक की खोज मकान तथा बाग में इधर-उधर सर्वत्र की गई किन्तु कहीं उसका पता न चला। पास-पड़ौस में, हाट-बाजार में, गली-कूचे में सब स्थानों पर उसे ढूंढा किन्तु वह वहां पर था ही नहीं; मिलता कैसे! वह तो प्रातःकाल होने से पूर्व ही नगर से बहुत दूर चला गया था। जब उसका कहीं पता नहीं चला तो सारे परिवार में हाहाकार मच गया। माता अपने लाड़ले बच्चे के लिए करुण क्रन्दन कर रही थी जिसे सुनकर पत्थर भी रोते हुए से प्रतीत हो रहे थे। पिता यद्यपि इस महान आघातजनित दुःख को प्रकट नहीं कर रहे थे किन्तु पुत्र वियोग की वेदना उनके चेहरे से स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। बहिन-भाइयों की दयनीय दशा को देखकर पाषाण-हृदय भी दुःखित हो रहा था। इतना ही नहीं, आसपास के नर-नारी भी मधुर और सरल प्रकृति वाले भोले-भाले शीलवान सीधे-साधे व्यासदेव के गृह-त्याग पर दुःखी हो रहे थे। उसके समवयस्क बालक उसकी बातें याद करके आंसू बहा रहे थे। बड़ा कारुणिक दृश्य था। पिता ने बालक का पता लगाने के लिए इधर-उधर पैदल और गाड़ी से लोगों को भेजा।

गन्तव्य पथ के विषय में किंकर्त्तव्यविमूढ़ व्यासदेवजी ने एक नहर के किनारे-किनारे चलना प्रारम्भ किया। घोर अन्धकार के कारण किनारे के झाड़-झंखाड़ भी कभी-कभी भालू, शेर आदि हिंस्र जीव-से मालूम होते थे और प्रतिपल चोरों और डाकुओं का भी भय बना हुआ था। उनके पास ७००) के पोण्ड थे, उसकी रक्षा की उन्हें बड़ी चिन्ता थी। वे भयभीत थे कि कहीं चोर या डाकू आकर उनको मारकर रुपया न छीन लें। भगवान् का स्मरण करते हुए बड़ी कठिनाई से रात्रि व्यतीत की। रात्रि के लगभग तीन बजे व्यासदेवजी रेल की पटड़ी पर पहुंचे। जंगल के कठिन रास्ते में दयानिधि जगदीश्वर ने ही बालक की रक्षा की। क्यों न करते, यह उनका भक्त जो था। गृहत्याग उनके साक्षात्कार के उद्देश्य से ही तो किया था। भगवान् सदैव भक्तों को आश्रय देते हैं। वही निर्बलों के बल, निर्धनों के धन तथा निर्जनों के जन, और अनाश्रितों के आश्रय हैं। वे असहाय बालक व्यासदेवजी को कैसे भूल सकते थे! अन्धकाराच्छन्न बीहड़ बन में भक्तवत्सल भगवान् ने ही बालक-भक्त

व्यासदेवजी की रक्षा की और उसे इस कठिनाई में बल, शक्ति, साहस और उत्साह प्रदान किया।

एक वृद्धा माता द्वारा आतिथ्य—प्रातःकाल हुआ। देवी उषा ने अपने प्रकाश से वसुन्धरा को प्रकाशित किया। व्यासदेवजी घनघोर अन्धकार में चलते-चलते थक गये थे। जीवनदायिनी उषा का उन्होंने हार्दिक भावों से स्वागत किया। अब उन्हें मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगा। उन्होंने अपनी गति तेज कर दी और लम्बे-लम्बे डग भरने लगे। रेल की पटड़ी के साथ-साथ एक पगडण्डी-सी थी, उसी पर वे द्रुत-गति से चलने लगे। उन्हें यह भय था कि कहीं कोई जान-पहिचान का व्यक्ति न मिल जाए। कहीं पिताजी उन्हें वापिस लौटा ले जाने के लिए किसी को न भेज दें। इस प्रकार के विचार कभी-कभी उन्हें बेचैन-सा कर रहे थे, इसलिए जब स्टेशन आने को होता तो वे पगडण्डी को छोड़कर दूर चले जाते थे और स्टेशन निकल जाने के पश्चात् पुनः पगडण्डी पर आ जाते थे। इसी प्रकार से अट्ठारह मील का रास्ता तय करके वे ६ बजे एक गांव में पहुंचे। सुबह से कुछ खाया पीया नहीं था। थक भी रहे थे। इसलिए किसी ऐसी दुकान की खोज करने लगे जहां कुछ खाने के लिए मिल सके, किन्तु कहीं भी भोजन प्राप्त न हो सका। इतने में ही एक वृद्धा अपने सिर पर दूध का पात्र लेकर जाती हुई दिखाई दी। व्यासदेवजी ने उससे भोजन की दुकान पूछी। वृद्धा ने कहा बेटे, यहां तो कोई ऐसी दुकान है नहीं, तुम मेरे साथ मेरे घर पर चलो, मैं तुम्हें भोजन बनाकर खिलाऊंगी। व्यासदेवजी अत्यन्त क्षुधार्त थे अतः ये वचन सुनकर उनकी जान में जान आई और वे उसके पीछे-पीछे चलने लगे। घर पहुंच कर वृद्धा महिला ने व्यासदेवजी के लिऐ भोजन बनाया और मक्खन और शक्कर के साथ कराया। भोजनोपरान्त जब व्यासदेवजी उसको धन्यवाद देकर चलने लगे तब वृद्धा ने पूछा कि "तुम पैदल क्यों चल रहे हो ? यदि तुम्हारे पास किराये के लिए रुपये नहीं हैं तो इसकी व्यवस्था मैं कर दूंगी, तुम रेलगाड़ी से जाओ।" वृद्धा के ऊपर बालक व्यासदेवजी का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह उन्हें अपने पास ही रखना चाहती थी क्योंकि वह पुत्रहीना थी, पर व्यासदेवजी को कोई भी प्रलोभन अपने पथ से विचलित न कर सकता था। उन्होंने अपनी माता का त्याग इसलिए नहीं किया था कि वह किसी अन्य मातृतुल्या महिला को अपनी माता बनाकर उसके पास रहें। एक महान् आदर्श की पूर्ति के लिए उन्होंने गृह त्याग किया था और जबतक वे उस आदर्श को प्राप्त नहीं कर लेते तबतक वे न तो कहीं शान्ति पा सकते थे न विश्राम। उस वृद्धा माता ने कई दिनों तक उन्हें अपने पास रखा। नित्यप्रति स्वादिष्ट भोजन उन्हें खिलाती। उन्हें अपने पास रखने के लिए अनेक प्रलोभन देती। कभी धन का प्रलोभन, कभी खेती-बाड़ी का और कभी जमीन और जायदाद का, कभी विवाह का और कभी सुख और आराम का। व्यासदेव ने उसे समझाया और कहा, "माताजी ! ये सभी सुख के साधन मेरे घर पर भी हैं, मेरे पिताजी भी बड़े आदमी हैं और सम्पन्न हैं। मैंने एक उद्देश्य से अपना घर छोड़ा है। उस उद्देश्य की पूर्ति मेरे घर पर नहीं हो सकती थी इसीलिए उसका परित्याग करके हरिद्वार जा रहा हूं, अतः आप मुझे क्षमा करें। मैं यहां आपके पास न रह सकूंगा। आपकी कृपा के लिए मैं आपका आभारी हूं।" यह बातचीत हो ही रही थी कि वृद्धा के पतिदेव भी बाहर से आ

गए। वृद्धा ने व्यासदेवजी की उनसे बड़ी प्रशंसा की और निवेदन किया कि इसे हरिद्वार का टिकट दिलवाकर गाड़ी में बिठा दीजिए और व्यासदेवजी से कहा, "तुम पढ़-लिखकर मेरे पास आना। तुम मुझे बहुत प्यारे लगते हो। जब कभी रुपये की आवश्यकता हो तो मुझे लिखना, मैं तुरन्त भेज दूंगी। तुम किसी प्रकार का कष्ट मत पाना।" व्यासदेवजी ने कृतज्ञता प्रकट की और धन्यवाद देकर और प्रणाम करके वहां से विदा हुए।

हरिद्वार में संस्कृताध्ययन और योगसाधन

मोहन आश्रम में निवास—जिस रेलगाड़ी से व्यासदेवजी यात्रा कर रहे थे उसी में तीन चार साधु भी उनके डिब्बे में बैठे थे और हरिद्वार ही जा रहे थे। जब व्यासदेवजी से वार्तालाप करने के पश्चात् उन्हें मालूम हुआ कि वे संस्कृत पढ़ने और योगाभ्यास सीखने हरिद्वार जा रहे हैं तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें कंवलदास की कुटिया में अपने साथ ले गए और तीन चार दिन तक उन्हें अपने पास ही रखा। इन सन्तों ने व्यासदेवजी का परिचय स्वामी तेजनाथजी योगी से करवाया। स्वामी तेजनाथ पातञ्जलाश्रम में रहते थे। व्यासदेवजी के विचार और भावनाएं देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें योग सिखाना सहर्ष स्वीकार किया। इसके पश्चात् ये ही सन्त व्यासदेवजी को मोहन आश्रम में स्वामी हितानन्दजी के पास ले गए। ये उनसे मिलकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके संस्कृत पढ़ने की सब व्यवस्था कर दी। यहां पर एक संस्कृत विद्यालय था, जिसमें नानूरामजी शास्त्री संस्कृत पढ़ाते थे। स्वामी हितानन्दजी इस संस्कृत विद्यालय के अधिष्ठाता थे। श्री सेठ बलदेवसिंह देहरादून वालों ने अपने पुत्र मोहन के नाम पर इस मोहन आश्रम का निर्माण किया था।

योगी तेजनाथ से संपर्क—व्यासदेवजी ने सर्वप्रथम योगी तेजनाथ से योग सीखना चाहा। परिचय हो जाने के पश्चात् दूसरे दिन समित्पाणी हो उनके पास पहुंचे और योग सिखाने के लिए प्रार्थना की। स्वामी तेजनाथ व्यासदेवजी की लगन, निष्ठा और प्रखर बुद्धि और व्यवहार को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सहर्ष योग सिखाना स्वीकार किया, किन्तु एक शर्त ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के सम्मुख रखी कि वे सर्वप्रथम उनके संप्रदाय की मंत्र-दीक्षा लें, तभी उन्हें योग सिखाया जा सकता है। ब्रह्मचारीजी ने संप्रदाय की गतिविधि, रीति-ढंग और व्यवस्थादि से परिचित होने के उपरान्त संप्रदाय की मंत्र-दीक्षा लेने के लिए निवेदन किया। तेजनाथजी बड़े विद्वान और योगी थे और व्यासदेव कभी-कभी उनके सत्संग में जाया भी करते थे, किन्तु नाथ प्रथा के अनुसार कान फड़वाकर मुद्रा पहिनना उन्हें पसन्द नहीं था, इसीलिए नाथ संप्रदाय की दीक्षा उन्होंने नहीं ली।

मोहन आश्रम के विद्यालय में प्रवेश

स्वामी हितानन्दजी की आज्ञा से ब्रह्मचारी व्यासदेवजी विद्यालय में प्रविष्ट हो गये और पंडित नानूरामजी से लघुकौमुदी पढ़ना प्रारंभ कर दिया। इस विद्यालय में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी विद्याध्ययन किया करते थे।

योग-शिक्षा—व्यासदेव की योग में अत्यधिक रुचि देखकर स्वामी हितानन्द ने ब्रह्मचारी सत्यव्रत को उन्हें योग सिखाने की आज्ञा दी। बहुत शीघ्र ही ब्रह्मचारी

सत्यव्रतजी को व्यासदेवजी से बड़ा स्नेह हो गया। वे नित्यप्रति गंगाजी के किनारे पर लेजाकर उन्हें योग-साधना करवाने लगे। प्रातः आसन और प्राणायाम सिखाते और गायत्री मंत्र का जाप करवाते। इस प्रकार व्यासदेवजी प्रातः योगाभ्यास करते तथा दिन में ५-६ घण्टे संस्कृताध्ययन करते। लघुकौमुदी, संस्कृत साहित्य तथा अनुवादादि सीखते। योग सीखने की इतनी उत्कट अभिलाषा थी कि रात के दो बजे ही गंगाजी के तट पर अभ्यास करने चले जाते थे। अभ्यास करते-करते कभी-कभी निद्रा आ दबाती थी, इस विघ्न को दूर करने के लिए व्यासदेवजी अपनी लम्बी चोटी को एक रस्सी से उस वृक्ष की शाखा से बांध देते थे जिसके नीचे बैठकर वे अभ्यास किया करते थे। ज्यों ही नींद आती और सिर नीचे को झुकता तो रस्सी के झटके से नींद खुल जाती थी और मेरुदण्ड भी इससे सीधा रहता था। रात्रि के दो बजे से आठ बजे तक नित्यप्रति योगाभ्यास करते थे और इसके पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर आश्रमवासी ब्रह्मचारियों के साथ मिलकर यज्ञ करते। यज्ञ के बाद स्वामी हितानन्द अथवा अन्य जो भी सन्त वहां उपस्थित होते उनके उपदेश का श्रवण करते और इसके उपरान्त पण्डित नानूरामजी से संस्कृताध्ययन करते। व्यासदेवजी का यूं तो धीरे-धीरे आश्रमवासी सभी ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों से परिचय हो गया किन्तु उनका विशेष परिचय स्वामी वेदानन्द, स्वामी शिवानन्द भारती, स्वामी विज्ञान भिक्षु, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी चिदानन्द, ब्रह्मचारी सत्यव्रत, मनुदत्त, हुक्मचन्दादि से था। इस अभ्यासकाल में सत्यव्रत और व्यासदेवजी दोनों ब्रह्मचारी एक ही समय भोजन करते थे। रात्रि को ये भोजन नहीं करते थे। अब सायंकाल भी ६ बजे से १० बजे तक गंगाजी के किनारे योगाभ्यास प्रारंभ कर दिया था। ये दोनों १० बजे के बाद गंगाजी के किनारे से मोहन आश्रम में आते थे। केवल चार घण्टे ही सोते थे। प्रातः दो बजे ही उठकर योगाभ्यास के लिए चले जाते थे। गंगाजी मोहन आश्रम से केवल तीन सौ या चार सौ फुट की दूरी पर ही थी अतः बहुत दूर जाना नहीं पड़ता था। व्यासदेवजी ने कई महीनों तक अपनी शिखा को अभ्यास के समय पेड़ की टहनी से नींद रोकने के लिए बांधा था, अतः अब उन्हें निद्रा पर विजय प्राप्त हो गई थी। अब अभ्यास के समय कभी निद्रा नहीं आती थी। लगभग १० घण्टे योगाभ्यास करते थे और ६ घण्टे संस्कृत पढ़ते थे। दो साल में संस्कृत में व्यासदेवजी की बड़ी गति हो गई थी। लघुकौमुदी संपूर्ण पढ़ ली थी, साहित्य के भी कई ग्रंथ समाप्त कर लिए थे और संस्कृत पढ़ने, लिखने और बोलने का बहुत अच्छा अभ्यास हो गया था।

एक योगी से समागम

ब्रह्मचारी व्यासदेवजी सदैव उत्कृष्ट योगियों की खोज में रहा करते थे क्योंकि इस विषय में उनकी बड़ी रुचि थी। वे स्वयं भी आठ-दस घण्टे तक योगाभ्यास किया करते थे। एक दिन इनका ब्रह्मचारी सत्यदेव से साक्षात्कार हुआ। ये ब्रह्मचारीजी गंगा पार कजली बन में रहकर योगाभ्यास किया करते थे। व्यासदेवजी का इनसे योग के विषय में गंगा के तट पर चिरकाल तक वार्तालाप हुआ। सत्यदेव के त्याग और वैराग्य, साधना तथा श्रद्धा, तितिक्षा और एकान्तसेवन तथा निष्ठापूर्वक योगाभ्यास का व्यासदेवजी के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

कजली वन में योगाभ्यास का निश्चय—सत्यदेवजी के साथ कजली वन में रहकर योगाभ्यास का निश्चय किया। युवक योगी सत्यदेवजी ने जंगल में एकान्तसेवन की अनेक कठिनाइयों से व्यासदेवजी को अवगत किया और कहा : कजली वन में रहकर कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। वहां खाने को अन्न का सर्वथा अभाव है अतः केवल बिलों को खाकर ही निर्वाह करना होगा। इस वन में बाघों, चीतों, शेरों तथा हाथी आदि हिंस्र जीवों का बाहुल्य है। मचान बनाकर पेड़ों पर ही रहना पड़ता है। रात्रि को शयन भी इसी पर करना होगा। व्यासदेवजी इन बातों से तनिक भी भयभीत नहीं हुए और साहसपूर्वक निर्भय होकर कहा : मैं विधिपूर्वक यम-नियमों का पालन करता हूं, अतः मुझे किसी भी हिंस्र जीव से भय नहीं है। अहिंसा में मेरी पूरी निष्ठा है। मेरा किसी से वैर-भाव नहीं है, मैं मनसा वाचा कर्मणा अहिंसा का पालन करता हूं, फिर मुझे किसी से भय होना ही क्यों चाहिए! फिर आप भी तो वहां रहते हैं। जब आपको वहां कुछ भय नहीं तो मुझे ही भय क्यों होगा! ऐसा मालूम होता है कि अभी आपकी अहिंसा में प्रतिष्ठा नहीं हुई। यदि हो गई होती तो आप पेड़ पर मचान बनाकर निवास न करते। भूमि पर ही कुटिया बनाकर रहते। सत्यदेवजी ने उत्तर दिया कि अभी अहिंसा में मेरी पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा नहीं हुई है। प्राणीमात्र के प्रति अभी सख्यभाव सम्पादित नहीं कर सका हूं, इसीलिए थोड़ा भय शेष है। दिन में तो मैं नीचे ही रहता हूं किन्तु रात्रि के समय सोने के लिए तथा योगाभ्यास के लिए मचान पर चला जाता हूं।

सत्यदेवजी व्यासदेवजी की बातचीत और योगनिष्ठा से तो बहुत प्रसन्न हुए किन्तु वन में एकान्तसेवन की कठिनाइयों पर विचार करके वे उन्हें अपने साथ ले जाना नहीं चाहते थे। व्यासदेवजी ने बड़ा आग्रह किया। इस पर वे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गए। जब स्वामी हितानन्दजी को व्यासदेवजी के कजली वन में जाने का विचार मालूम हुआ तो वे बड़े दुःखित हुए। वे व्यासदेवजी से बड़े प्रसन्न थे और अपने विद्यालय का उन्हें अलंकार समझते थे। इनके रहन-सहन, व्यवहार, आचरण, अध्ययन के प्रति रुचि और योगनिष्ठा का आश्रमवासी विद्यार्थियों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता था। इसलिए वे नहीं चाहते थे कि यह बालयोगी कहीं अन्यत्र जाए पर उसके दृढ़ निश्चय को देखकर उसे कजली वन जाने की आज्ञा दे दी। सत्यदेवजी के यह कहने पर कि तुम प्रथम वार वन में जा रहे हो और तुम्हें अन्न खाने की आदत है इसलिए कुछ सत्तू अपने साथ ले चलो, व्यासदेव ने जौं और गेहूं भुनवा कर पिसवा लिए, कुछ गुड़ तथा नमक भी साथ रख लिया और उनके साथ चल दिए।

सत्यदेवजी तथा व्यासदेवजी दोनों ने मामूली-सा सामान साथ लिया और नील गंगा को पार करके कजली वन पहुंच गए। व्यासदेव के निवास के लिए सत्यदेव ने अपने मचान के समान ही एक वृक्ष पर मचान बना दी। मचान के पास ही एक जलाशय था जिसमें दोपहर को बाघ, चीते तथा हाथियों के झुण्ड पानी पीने आया करते थे। इसलिए सत्यदेवजी ने उसे समझाया कि किसी वन्य पशु से कभी छेड़-छाड़ मत करना और उसके पास भी कभी मत जाना और यदि कोई जानवर स्वयं ही पास आ जाए तो उसके प्रति उदासीन रहना, भयभीत भी मत होना, हिंसा की

भावना भी मन में मत लाना, सख्यभाव रखना। ऐसा करने पर कोई भी हिंस्र जीव आक्रमण न करेगा। व्यासदेवजी तो पहिले से ही अहिंसा व्रत का पूरी तरह से पालन करते थे इसलिए निर्भीक वृत्ति से रहते थे।

व्यासदेवजी ने बिल कभी-कभी खाए तो थे पर उन पर कभी निर्वाह नहीं किया था, अतः बिल खाकर ही क्षुधा की शान्ति करने की आदत डालने के लिए वह सत्तुओं के साथ-साथ बिल भी नित्यप्रति खाने लगे। कुछ दिनों के बाद व्यासदेवजी ने सत्तू खाना बिल्कुल छोड़ दिया और बिलों से ही अपनी क्षुधापूर्ति करने लगे। बिल अभी पूरी तौर पर पके नहीं थे अतः वे कनस्तर में डालकर उन्हें उबाल लेते और गूदा निकाल कर खा लेते थे। उबाल लेने पर बिलों का गूदा आसानी से निकाला जा सकता था।

व्यासदेवजी आवश्यक कार्य के लिए ही मचान पर से उतरते थे। छः बजे से दस बजे तक अपना सारा कार्य कर लिया करते थे क्योंकि इसके बाद हिंस्र जीव जलाशय में पानी पीने आते थे। वन से लकड़ी लाने के लिए वे सत्यदेव के साथ जाया करते थे। मार्ग में हाथियों के झुण्ड प्रायः मिला करते किन्तु सत्यदेवजी कभी भयभीत नहीं हुए और व्यासदेवजी को भी निर्भीक भाव से रहने का आदेश दिया। कभी-कभी बाघ, हिरण, सूअर भी देखने में आते थे।

सत्यदेवजी का उपदेश—सत्यदेवजी बड़े विद्वान् थे। शास्त्री पास कर लेने के पश्चात् उन्हें वैराग्य हो गया था और घर छोड़ कर योगाभ्यास के लिए कजली वन में रहते थे। वे बड़े साहसी और पराक्रमशील थे। प्रसिद्ध विद्वानों में आपकी गणना थी। दर्शन-शास्त्र तथा वैदिक साहित्य के आप पण्डित थे। उच्च कोटि के वैराग्यवान् थे। ब्राह्मण वंश में आपका जन्म हुआ था और जम्बू स्टेट के रहने वाले थे। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही ३२ वर्ष की आयु में आपको वैराग्य हो गया था। आपका शरीर बड़ा सुगठित था। गौर वर्ण था। आपका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। संस्कृत भाषण करने का आपका व्रत था। वे स्वयं १६ घण्टे तक योगाभ्यास करते थे। इन्होंने व्यासदेवजी को वैराग्यजनक विविध उपदेश देकर उनके वैराग्य को दृढ़तर कर दिया था। वे प्रेय तथा श्रेय मार्ग की व्याख्या करके प्रायः व्यासदेवजी को सुनाया करते थे और कहा करते थे कि सांसारिक लोग भोग-विलास तथा इन्द्रियों की दासता का मृत्युपर्यन्त त्याग नहीं करते। वे वृद्ध हो जाते हैं किन्तु उनकी तृष्णा सदैव युवती बनी रहती है, किन्तु योगीजन जीवन काल में ही साधिकार इन्द्रिय-सुख को विष्टावत् त्याग देते हैं। ये बड़े जितेन्द्रिय थे। रसनेन्द्रिय बड़ी दुर्जयी है। इस पर विजय पाने के लिए बड़े-बड़े साधकों को भी कठिन तपस्या करनी पड़ती है। इस इन्द्रिय के दमन करने के लिए ही आपने नमक और चीनी तथा गुड़ादि का परित्याग कर दिया था। केवल कन्द, मूल, आंवले और बिलादि खाकर ही निर्वाह करते थे। इनके गुरुदेव ने इन्हें उत्तराखण्ड में तपस्या करने के लिए भेजा हुआ था।

ये व्यासदेवजी के साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे। बड़ी तत्परता के साथ उन्हें योगाभ्यास करवाते थे। इन्होंने व्यासदेवजी के लिए १२ घण्टे योगाभ्यास के लिए नियत कर दिए थे। इनका भी नमक तथा चीनी छुड़वा दी गई थी। सत्यदेवजी के व्यक्तित्व

का बालयोगी व्यासदेवजी पर बड़ा प्रभाव था। वे जैसे उन्हें करते देखते वैसे ही करने लगते थे। गीता, छः दर्शन तथा ११२ उपनिषदों का एक गुटका ही सत्यदेवजी का पुस्तकालय था। ये सभी ग्रंथ मूलमात्र थे। छः दर्शन भी गुटके के रूप में ही थे। दो कनस्तर, एक कमण्डल, एक छोटा-सा पतीला, दो कौपीन और एक धोती ही उनकी लौकिक सम्पत्ति थी। व्यासदेवजी इनकी तपस्या से बड़े प्रभावित थे। सत्यदेवजी इन्हें दर्शनों और उपनिषदों को कथा के रूप में सुनाया करते थे। योग-दर्शन के सूत्र भी व्यासदेवजी को कण्ठस्थ करवा दिए थे। कभी-कभी वे विनोदपूर्ण ढंग से व्यासजी से पूछा करते थे कि क्या कभी स्वादिष्ट पदार्थों को खाने के लिए भी तुम्हारा मन करता है। उस समय व्यासजी बड़ा सुन्दर उत्तर दिया करते थे। वे कहा करते कि जब यहां वन में कुछ मिलता ही नहीं, यहां पर कन्द-मूल के अतिरिक्त और कोई भोज्य पदार्थ है ही नहीं तो भला चित्त करे भी क्या। चित्त की परीक्षा तो तब हो जब खाने के पदार्थ तो पास हों और उनको खाने के लिए कभी मन न करे। तब तो मन की कुछ विशेषता भी है। उपभोग्य पदार्थों के सुलभ होने पर भी इन्द्रियां उधर आकृष्ट न हों तभी जितेन्द्रियता मानी जा सकती है। आजकल तो इनके अभाव में ही मुझे योगी की संज्ञा मिल रही है। सत्यदेवजी व्यासदेवजी से प्रायः कहा करते थे कि स्वाद और काम पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। योगी को सर्वप्रथम इन दोनों पर विजय-लाभ करनी चाहिए। जो इन्द्रियों का दास है वह कभी योगी नहीं बन सकता। जितेन्द्रियता योग का प्रथम पाठ है।

मचान पर निवास—सत्यदेवजी ने अपने बालयोगी के लिए एक बड़े मोटे और ऊंचे वृक्ष पर एक बड़ा-सा मचान निवासार्थ बना दिया था क्योंकि उस वन में हाथी, शेर, बाघ, चीता, नीलगायादि हिंस्र जीव बहुत रहते थे। मचान पर नर्म-नर्म पत्ते और घास बिछा दी गई थी। इस मचान को वृक्षों के पत्तों और टहनियों से आच्छादित कर दिया गया था जिससे वर्षा के पानी से यत्किंचित् बचाव हो सके। मचान के नीचे एक बड़ी धूनी लगी रहती थी जिससे वन्य पशु वृक्ष के समीप न आने पाएं। व्यासदेवजी इस धूनी में बिलों को भून कर खाया करते थे। वन में हाथियों की जलक्रीड़ा देखना ही हमारे बालयोगी का एकमात्र विनोद था। प्रायः हाथियों के झुण्ड इस वन में घूमा करते थे। एक झुण्ड का सरदार प्रायः भूरे रंग का होता था। सारे हाथी उसका अनुगमन करते थे। ये प्रायः व्यासदेवजी की मचान के पास वाले जलाशय में पानी पीने जाया करते थे। सरदार हाथी के पानी पी चुकने के पश्चात् अन्य हाथी अपनी प्यास बुझाया करते थे। इस वन में कई छोटी-छोटी पहाड़ियां थीं। जब कभी हाथी इनमें से किसी ढालू पहाड़ी पर से फिसल कर नीचे आ गिरते तो इन्हें देखकर हमारे चरित्रनायक बड़े प्रसन्न हुआ करते। रात के समय शेरों की गर्जना तथा हाथियों की चिंघाड़ से वन के सारे पशु-पक्षी भयभीत हो जाते थे किन्तु अहिंसा में प्रतिष्ठित हमारे बालयोगी वन में निर्भीक भाव से विचरण करते थे।

व्यासदेव कई मास तक योगी सत्यदेव के पास रहे। प्रतिदिन के अभ्यास से इनका आसन दृढ़ हो गया था। योगाभ्यास करते-करते जब श्रान्त हो जाते थे तब गायत्री तथा प्रणव जाप किया करते थे। भ्रूमध्य-ध्यान से एकाग्रता लाभ करते तथा सदैव अपने मन को शान्त रखते थे।

सत्यदेवजी ने एक बार दो-तीन दिन के लिए हरिद्वार में भीमगोडे जाने का विचार व्यासदेवजी पर प्रकट किया क्योंकि वहां पर उनके गुरुदेव का कभी-कभी पत्र उनके नाम पर आदेश रूप में आया करता था। व्यासदेवजी को भी हरिद्वार से आए कई मास हो गए थे और वे स्वामी हितानन्दजी से कुछ दिनों के लिए ही आज्ञा लेकर आए थे, अतः उन्होंने भी हरिद्वार जाने की इच्छा प्रकट की। इसलिए सत्यदेवजी इन्हें भी अपने साथ भीमगोडे ले गए।

कजली वन से पुनः मोहन आश्रम गमन

सत्यदेवजी तथा व्यासदेवजी कजली वन से ग्यारह मास में हरिद्वार पहुंचे। सत्यदेवजी ने भीमगोडे वाले हलवाई से अपने पूज्य गुरुदेव का पत्र प्राप्त किया जिस में आदेश दिया गया था कि अब कठोर तपश्चरण से इन्द्रियों और अन्तःकरण की पवित्रता साध लेने के उपरान्त तुम मुझसे विज्ञान सीखने के अधिकारी बन गए हो, अतः तुम तुरन्त चले आओ, जिससे तुम्हें आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त हो सके। यह पत्र सत्यदेवजी ने व्यासदेवजी को भी पढ़ाया। इन्हें आत्म-विज्ञान सीखने की उत्कट अभिलाषा थी। इसी उद्देश्य से अपने पारिवारिक सुख, भोग और आराम को तिलाञ्जलि दी थी। इन्होंने हाथ जोड़ कर साथ चलने की आज्ञा मांगी किन्तु सत्य-देव ने अपने गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त किए बिना ब्रह्मचारी जी को अपने साथ ले जाना उचित नहीं समझा। इन्हें बड़ी निराशा हुई।

स्वामी हितानन्दजी से भेंट—व्यासदेवजी निराश होकर अब मोहन आश्रम चले गए। कठोर तपस्या के कारण इनका शरीर बड़ा कृश हो गया था। गाल पिचक गए थे। आंखों में खड्डे पड़ गए थे। बाल बढ़ गए थे। उन्हें इस अवस्था में देखकर आश्रमवासियों को महान् आश्चर्य हुआ। व्यासदेव अध्ययन छोड़कर योग सीखने चले गए थे अतः अध्ययनशील विद्यार्थियों ने उनका बड़ा उपहास किया किन्तु, योगानुरा-गियों ने उनके तप और योगाभ्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा की। व्यासदेव विद्यालय के अधिष्ठाता हितानन्दजी के पास गए। सादर प्रणाम करके विद्यालय में पुनः प्रवेशार्थ प्रार्थना की। वे इनसे बड़े प्रसन्न थे। इनकी योग-निष्ठा, अध्ययन-शीलता, तपश्चर्या, वैराग्य-भावना तथा सत्यपरायणतादि गुणों से बड़े प्रभावित थे। अतः उन्हें विद्यालय में सहर्ष प्रविष्ट कर लिया और नानूरामजी को उन्हें रुचिपूर्वक पढ़ाने का आदेश दिया। स्वामी हितानन्दजी ने व्यासदेवजी को ब्रह्मचारी सत्यव्रत के पास ठहरा दिया। व्यासदेवजी ब्रह्मचारी जी से पहिले से ही परिचित थे। इनके साथ ही योगाभ्यासादि किया करते थे। अब फिर मोहन आश्रम में आने के बाद इनके साथ गंगा के किनारे जाकर पूर्ववत् कई-कई घण्टे योग-साधना करने लगे। सत्यव्रत से लघुकौमुदी तथा पंचतंत्र विचारना प्रारम्भ कर दिया। नानूरामजी उस समय सिद्धान्तकौमुदी तथा साहित्य में जो ग्रंथ विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे वही व्यासदेवजी भी पढ़ने लगे।

स्वामी रामानन्दजी का पत्र—व्यासदेवजी ने संस्कृताध्ययन तथा योग सीखने के उद्देश्य से जबसे गृह-त्याग किया था तबसे स्वामी रामानन्द तथा अन्य किसी को अपना कोई समाचार नहीं दिया था। यह अपनी लक्ष्यपूर्ति पर डटे हुए थे। चट्टान के सदृश अटल थे। उनके माता-पिता को यदि उनके निवास का पता लग जाता तो

वे आकर इन्हें वापिस घर ले जाते। इसी भय से इन्होंने अपना परिचय किसी को नहीं दिया। यही कारण था कि इन्होंने अपने प्रारम्भिक गुरु स्वामी रामानन्दजी महाराज को कभी कोई पत्र नहीं लिखा। स्वामीजी महाराज बालक व्यासदेवजी की धर्मनिष्ठा, संस्कृत के प्रति रुचि, परिश्रमशीलता, सहानुभूति, समवेदना, कर्त्तव्य-पालन और जापादि से बड़े प्रसन्न थे और उससे बड़ा स्नेह करते थे। जबसे इन्होंने गृह-परित्याग किया था तब से ही वे इनका पता लगाने के लिए बड़े चिन्तित रहा करते थे। इन्होंने इधर-उधर सर्वत्र उनकी खोज की। कई स्थानों पर पत्र लिखे। बहुत परिश्रम के पश्चात् वे अपने प्यारे शिष्य व्यासदेवजी का पता लगाने में सफल हो गए। उन्होंने मोहन आश्रम के पते से इन्हें पत्र लिखा और उनकी योग-निष्ठा, संस्कृताध्ययन, स्वास्थ्य और निवासादि के विषय में सब हाल पूछा और आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भेजने के लिए लिखा। ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने संस्कृत, व्याकरण और साहित्य का पर्याप्त अध्ययन कर लिया था। संस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास खूब हो गया था। अतः अपने गुरुदेव के पत्र का उत्तर संस्कृत में ही दिया। अपना सारा वृत्तान्त लिखने के पश्चात् निवेदन किया कि मुझे इस समय आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। मेरी केवल एक ही प्रार्थना है कि आप ऐसा उपाय करें जिससे मेरे माता-पिता, सम्बन्धियों तथा अभिभावकों को मेरे विषय में कुछ भी ज्ञात न हो सके। यदि उन्हें मेरे हरिद्वार रहने का किसी तरह पता चल गया तो वे मुझे तंग करेंगे। मेरे अध्ययन और योगाभ्यास में बाधा डालेंगे और संभव है मुझे वापिस घर ही ले जाएं।

व्यासदेवजी के पिता का हरिद्वार आगमन—भ्रमण करते हुए स्वामी रामानन्दजी एक दिन व्यासदेवजी के पिताजी के घर पहुंच गए। माता ने स्वामीजी को प्रणाम किया और आतुर तथा व्याकुल होकर अपने पुत्र के लिए करुण-क्रन्दन तथा विलाप करने लगी। अनेक उलाहने देकर उसने कहा :—

"महाराज मैंने सदैव महात्माओं को दयालु और सहानुभूतिपूर्ण पाया है किन्तु आपका हृदय बड़ा कठोर है। आपने मेरे दुलारे पुत्र को मुझसे छीना है। आपने पुत्र को माता से विलग किया है। आप इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि पुत्र के विछोह में माता को कितना दुःख होता है। आप मातृ-हृदय से परिचित नहीं। आपसे प्रेरणा पाकर ही मेरे प्यारे पुत्र ने गृह-परित्याग किया है। आपने मेरे बच्चे को मेरी गोद से छीना है। उसे दर-दर का भिखारी बनाया है। न जाने वह कहां है! क्या खाता है! कहां रहता है! शीतकाल में कुछ ओढ़ने-बिछाने के लिए भी उसके पास कुछ नहीं है। हाय! किस प्रकार से सर्दी की रातें मेरा बच्चा बिताता होगा! जब से वह गया है मैंने कभी पेट भर कर भोजन नहीं किया और अब भी जब तक आप उसे मुझे लाकर नहीं देंगे मैं अन्न नहीं खाऊंगी और विलाप करके मर जाऊंगी, पाषाण-हृदय स्वामी जी! आप जाओ और मेरे बालक को मुझे लाकर दो।"

स्वामीजी माता का विलाप सुनकर द्रवीभूत हो गए और उसे विश्वास दिलाया कि तुम्हारा पुत्र सकुशल और सानन्द है और संस्कृताध्ययन कर रहा है। तुम व्यथित और व्याकुल मत हो।

माता की दयनीय दशा को देखकर स्वामीजी महाराज का हृदय दयार्द्र हो गया और उसके बार-बार प्रार्थना करने पर व्यासदेवजी के पिता और दो अन्य सज्जनों को साथ लेकर स्वामी रामानन्द हरिद्वार पहुंचे। मोहन आश्रम में जाकर स्वामी हितानन्दजी से व्यासदेवजी के विषय में पूछ-ताछ की। यह जानकर कि ब्रह्मचारी व्यासदेवजी साधना के लिए गंगा के तट पर गए हुए हैं वे सब वहां पहुंचे। गंगा के तट पर ब्रह्मचारी जी एक वृक्ष के नीचे नेत्र बन्द करके ध्यानावस्थित होकर बैठे हुए थे। स्वामी रामानन्द, व्यासदेवजी के पिता और अन्य दो सज्जन ध्यानावस्थित व्यासदेवजी को देखकर उनके पास ही खड़े होकर वार्तालाप करने लगे किन्तु इस कोलाहलपूर्ण वार्तालाप से व्यासदेवजी की समाधि नहीं टूटी। यह देखकर स्वामीजी ने व्यासदेवजी के पिता से कहा कि देखो कैसी कड़ी समाधि है। कैसे एकान्त स्थान में साधना करने आया है। भगवदाराधना में कैसा मग्न है। वातावरण का इस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ रहा। इस समय यह संसार के भोगों को हेय समझ रहा है। प्रभु के प्रेम और आनन्द में विभोर हो रहा है। यह अब लौकिक नश्वर भोग-विलास में नहीं फंस सकता। आप इसे घर ले जाने की चेष्टा मत करो। आप इस पुत्र को भगवदर्पण कर दें। आपके अन्य कई पुत्र हैं, आप उन्हीं से सन्तोष करें। इसी अवसर पर आसपास से बड़ा जन-कोलाहल होने लगा। इससे बालब्रह्मचारी जी की समाधि तो टूट गई किन्तु समाधि का समय पूरा नहीं हुआ था। अभी आठ नहीं बजे थे, अतः आंखें बन्द करके समाधिस्थ अवस्था में बैठे रहे। जब स्वामीजी ने देखा कि बालक की समाधि भंग नहीं हो रही है तो उसके पिता को ज्ञान और वैराग्य के सम्बन्ध में उपदेश देना प्रारंभ कर दिया। समाधिस्थ बालक भी उस उपदेश का श्रवण करता रहा। जब आठ बज चुके तब व्यासदेवजी अपने आसन से उठे और पास खड़े हुए अपने गुरुदेव तथा पिता को प्रणाम किया। गुरु तथा पिता दोनों ने उसको आलिंगन करके प्यार किया और आशीर्वाद दिया। पुत्र को देखकर पिता ने बड़ा विलाप किया। उसकी अश्रुधारा बह निकली। पिता और पुत्र के मिलाप ने एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया। सारा वातावरण द्रवीभूत हो गया। ऐसा मालूम होता था मानो सारी प्रकृति पिता के साथ मिलकर रुदन कर रही है और उसके साथ समवेदना प्रकट कर रही है।

गंगाजी के किनारे से पुत्र को लेकर सभी मोहन आश्रम में स्वामी हितानन्द के पास पहुंचे। स्वामी रामानन्दजी ने उनसे कहा कि व्यासदेवजी घर से भाग आये हैं उनके पिता उन्हें लेने आए हैं। हितानन्दजी ने कहा, "यहां पर जो विद्यार्थी आते हैं उनके भोजन, वस्त्र और निवासादि की यहां पर पूरी व्यवस्था की जाती है। उन्हें विद्याभ्यास करवा कर विद्वान् बनाने का प्रयत्न किया जाता है। उनके नैतिक धरातल को उन्नत किया जाता है। हम किसी को यहां पर घर से निकाल कर नहीं लाते हैं आप इसे ले जाना चाहते हैं तो ले जाइए। व्यासदेवजी जो पास ही खड़े थे विनयपूर्वक बोले, "मैं घर जाना नहीं चाहता। वहां पर संस्कृत पढ़ने और योगाभ्यास करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि होती तो मैं घर से भागता ही नहीं।" स्वामी रामानन्द और व्यासदेवजी के पिता ने विश्वास दिलाया कि वे एक संस्कृत पाठशाला खोलेंगे और संस्कृत पढ़ने की सब व्यवस्था कर देंगे। इस पर व्यासदेवजी उनके साथ चलने को तैयार हो गए। आश्रम का एक

और विद्यार्थी भी व्यासदेवजी के साथ हो लिया। हरिद्वार से धर्मदेव नामक एक संस्कृत के विद्वान् को ४०) मासिक पर संस्कृत पढ़ाने के लिए वे साथ ले गए।

व्यासदेवजी का घर पर पुनरागमन

व्यासदेवजी ने विवश हो कर इस पुनरावर्तन को स्वीकार तो कर लिया था किन्तु सदैव मानसिक चिन्ता में डूबे रहते थे। उन्होंने अपने पिताजी से हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि वह घर पर नहीं रहेंगे। या तो वह स्वामी रामानन्दजी के पास रहेंगे या अपने उद्यान में। पिताजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और कहा, "तुम यहां से तो चलो, जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसा ही सब प्रबन्ध कर दिया जाएगा। व्यासदेवजी और उनके पिताजी आदिक सबने स्वामी हितानन्दजी से जाने की आज्ञा प्राप्त की और उन्हें कुछ रुपये भेंट रूप से प्रदान किए। स्वामीजी ने सम्मान-पूर्वक सबको विदा किया। हरिद्वार से चलकर सब तीन दिन में घर पहुंचे। व्यासदेवजी की माता उन्हें देखकर फूट-फूटकर रोई, बड़ी आतुर और व्याकुल हुई। चिरकाल तक रुदन करती रही। बालक को गोद में लिया, उसका आलिंगन किया और बार-बार मुख चुम्बन किया। उसके साधना और तप के परिणामस्वरूप कृश शरीर को देखकर बड़ी दुःखी हुई। पास-पड़ौस के लोगों को जब व्यासदेव के आगमन का समाचार मिला तब सब अपना-अपना कार्य छोड़कर वहां एकत्रित हो गए। उनमें से किसी ने उसकी भर्त्सना की, किसी ने उसे डांटा फटकारा, किसी ने सहानुभूति का प्रदर्शन किया, किसी ने आलिंगन करके प्यार किया, किसी ने कहा कि अब जाने का नाम मत लेना और बहुतों ने उसका उपहास किया। इसके अतिरिक्त किसी ने कहा, "अब यह वेदों का विद्वान् बनकर आया है।" किसी ने कहा कि अब व्यासदेव बड़ा योगी बन गया है। व्यासदेवजी बड़े लज्जित हुए और मूकवत् सब बातें सुनते रहे। इन लोगों के बहुत समझाने-बुझाने पर माता ने कई दिनों बाद पुत्र के आने पर भोजन किया।

स्वामी रामानन्द के आश्रम में अध्ययन की व्यवस्था––व्यासदेवजी स्वामी रामानन्दजी के पास गए और निवेदन किया कि घर पर मुझे लोग बहुत तंग करते हैं अतः मेरा अध्ययन वहां नहीं हो सकता। आपसे प्रार्थना है कि आप पण्डित धर्मदेवजी शास्त्री को अपने पास बुला लें और यहीं पर एक पाठशाला की व्यवस्था कर दें। स्वामी रामानन्दजी ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपने आश्रम पर ही एक पाठशाला की स्थापना कर दी। चार अथवा पांच अन्य विद्यार्थी भी वहां आकर व्यासदेवजी के साथ अध्ययन करने लगे। लगभग बीस दिन तक यह कार्यक्रम सुचारुरूपेण चलता रहा। एक दिन पण्डितजी ने स्वामीजी से १४ या १५ दिवस के लिए हरिद्वार जाकर अपने परिवार की व्यवस्था करने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की और विश्वास दिलाया कि वे घर का पूर्ण प्रबंध करके यहां आकर स्थायी रूप से रहने लगेंगे। पण्डितजी के चले जाने के पश्चात् से पठन-पाठन बन्द हो गया। व्यासदेवजी को बड़ी चिन्ता हुई पर कर क्या सकते थे। अब उन्होंने अपना सारा समय साधना, अभ्यास, जाप और ध्यान में लगाना प्रारम्भ कर दिया।

माता को उपदेश––व्यासदेवजी की माता स्वामी रामानन्दजी के आश्रम में प्रातः नित्य ही उनसे मिलने आया करती थीं और कहा करती थीं, "बेटा, तुम्हारे

पढ़ने की व्यवस्था तुम्हारी इच्छा के अनुरूप कर दी गई है। अब तुम घर से भागकर कहीं अन्यत्र मत जाना। तुम तीन वर्ष के बाद घर आए हो। यह समय तुम्हारे वियोग में विलाप करके व्यतीत किया है। तुम बड़े पाषाण-हृदय हो। तुम्हें अपनी माता, पिता तथा भाई-बहिनों के प्रेम का कभी स्मरण नहीं हुआ। मेरी आतुरता तथा व्याकुलता, मेरे रोने और चिल्लाने और मेरे दुःख तथा दर्द का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं आता। मेरे और भी सन्तान हैं किन्तु जितना मोह और ममता मेरी तुझमें है इतनी अन्य किसी में नहीं है। बेटा ! अब मुझे तुम छोड़कर कभी मत जाना।"

माता प्रायः इसी प्रकार की बातें नित्य व्यासदेवजी को सुनाया करतीं। व्यासदेवजी ने इन बातों से तंग आकर एक दिन माता से कहा, "आप नित्यप्रति यहां न आया करें। इससे मेरे कार्य में विक्षेप होता है और पढ़ने में भी बाधा उपस्थित होती है। मेरी संस्कृताध्ययन तथा ईश्वर-भक्ति में बड़ी रुचि है। घर में रहकर ये दोनों ही कार्य असंभव थे क्योंकि पिताजी को ये पसन्द न थे। यदि मेरे संस्कृताध्ययन की ठीक-ठीक व्यवस्था हो जाती, मुझे स्वामी रामानन्दजी के सत्संग से न रोका जाता, और मुझे यथानियम जाप तथा ध्यान की आज्ञा मिल जाती तो संभवतः मैं गृह-त्याग कर अन्यत्र न जाता। यह कोई निन्दनीय कार्य तो था नहीं। मैं तो अपना अधिक समय पढ़ने और जाप तथा ध्यान में ही व्यतीत करता था। इससे तो परिवार की प्रतिष्ठा में वृद्धि ही होती। अपने पुत्र को भगवदाराधन में तत्पर देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिए था और कुल को गौरवान्वित समझना चाहिए था। मैं अपने कल्याण के लिए प्रयत्नशील हूं। आपको भी इसमें अपना कल्याण समझना चाहिए। यह संसार नाशवान है। इसके विषयोपभोग मनुष्य को पतन की ओर ले जाने वाले हैं। ये सब अनित्य हैं। शाश्वत रहने वाले नहीं हैं। अनित्य विषयों से अनुराग श्रेयस्कर नहीं है। इनका परित्याग करना ही उचित है। प्रायः सभी महानात्माओं ने गृह-परित्याग करके साधना तथा तपस्या और अपनी विद्वत्ता से संसार का कल्याण किया और स्वयं अमरत्व को लाभ किया है। महात्मा बुद्ध, महावीर, स्वामी शंकराचार्य तथा महर्षि दयानन्दादि महापुरुषों ने घर तथा परिवार के ममत्व का परित्याग करके ही संसार का उद्धार किया है। नवीन चेतना का प्रसार किया है। धर्म, देश और जाति की रक्षा की है। संसार को नई विचारधारा और नया संदेश दिया है। मनुष्य वह है जो किसी उच्च लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीवित रहता है और जो इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त करता है, अन्यथा माताजी 'मृतो को वा न जायते।' सदैव श्रेय-मार्ग ही श्रेयस्कर है, प्रेय नहीं। आप मुझे प्रेय-मार्ग पर घसीटकर ले जा रही हो। मुझे कल्याणकारी श्रेय-मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध होने दो। आप देवी मदालसा को क्यों भूल गईं जिसने अपने पुत्र को पालने में अध्यात्म का पाठ पढ़ाया था और जब वह अपने बाल-स्वभाव के कारण रोया तो उसने कहा था, 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसारमायापरिवर्जितोऽसि।' माताजी, आज मैं आपसे इसी प्रकार के उपदेश की इच्छा करता हूं। आप भी माता मदालसा की तरह मुझे अध्यात्म का उपदेश देकर इस पथ पर अग्रसर करें। मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करने की प्रतिज्ञा की है और श्रेय-पथ पर चलने का मेरा दृढ़ निश्चय है। इसी पथ का पथिक बनने में मेरा और आपका कल्याण साधन होगा। यदि आपका आशीर्वाद

इस कार्य में मुझे प्राप्त हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूंगा । मैं जानता हूं यह मार्ग कठिन है । इसी के लिए उपनिषद में कहा है, 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गमं पथस्तत् कवयो वदन्ति ।' पर आपका आर्शीवाद सब कठिनाइयों को दूर कर देगा और मेरा पथ प्रशस्त हो जाएगा" ।

अपने पुत्र के वार्तालाप से माता बड़ी प्रभावित हुई और उसे आलिंगन करके आशीर्वाद दिया और उसके मार्ग में कंटकरूप न बनने के लिए वचन दिया । किन्तु उससे कहा कि वह वहीं रहकर संस्कृत पढ़े और ईश्वर-भक्ति करे । व्यासदेवजी ने दुःखी माता को ढाढस बंधाया और कहा कि जब तक कोई विशेष विघ्न उपस्थित न होगा तब तक वह गृह-त्याग नहीं करेगा ।

इसके बाद व्यासदेवजी ने माता को भगवदाराधना का उपदेश दिया और निवेदन किया कि उनकी और पिताजी की अब वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की आयु है । इस आश्रम में प्रवेश पाकर आप दोनों को ईश्वरभक्ति में संलग्न रहना चाहिए । पुत्र की उपदेशप्रद बातों को सुनकर माता बड़ी प्रफुल्लित हुई और घर लौट गई ।

घर जाकर उसने अपने पुत्र-पुत्रियों तथा बन्धुओं और पास-पड़ोस से व्यासदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन सबसे उससे मिलने जाने की प्रेरणा दी ।

पारिवारिक स्त्रियों का दर्शनार्थ आगमन——ब्रह्मचारी व्यासदेवजी रात्रि के दो बजे ही उठकर ध्यान में बैठ जाया करते थे । लगभग ग्यारह घण्टे तक ध्यान, जाप तथा योगाभ्यास किया करते थे । इनके बागीचे में एक बहुत बड़ा आम का वृक्ष था । इसकी शाखाएं और प्रशाखाएं भूमि तक फैली हुई थीं । इनसे एक गुफा-सी बन गई थी । धूप इसमें नहीं आती थी और वायु भी कम आती थी, जिससे व्यासदेवजी के ध्यान और अभ्यास में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती थी । वे प्रायः सारा दिन इसी गुफा में रहते थे, केवल स्वामी रामानन्दजी के सत्संग में और पढ़ने के लिए जाते थे और रात्रि को सोने के लिए भी मकान पर चले जाते थे । ये केवल चार घण्टे ही शयन करते थे । यह बालयोगी जी अपने बाल्यकाल से ही एकान्तप्रिय थे । जन-संपर्क से ये बड़े घबराते थे । सारा समय चिंतन और ध्यान में ही व्यतीत करते थे । इसीलिए घर से दूर एक बागीची में रहते थे जिससे अभ्यास में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो । एक दिन सुबह के दस बजे इनके परिवार की कुछ महिलाएं इनके दर्शन करने के लिए बागीची में आईं । उस समय ये ध्यानावस्थित थे । इन देवियों के कोलाहल से उनका ध्यान भंग हो गया । यह इस अचानक शोर से घबरा उठे किन्तु ध्यान की स्थिति में ही बैठे रहे । इनकी सम्बन्धिनी महिलाओं ने इनका बड़ा उपहास किया और अनेक उलाहने दिए, किन्तु व्यासदेवजी पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । वे निस्तब्ध भाव से बैठे रहे । कुछ समय के पश्चात् व्यासदेवजी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना के मंत्र पढ़े और भगवान् से प्रार्थना करके अपना अभ्यास समाप्त कर दिया । जो देवियां बागीची में आई थीं वे सब चुपचाप व्यासदेवजी की प्रार्थना सुनती रहीं और वे बड़ी प्रभावित होकर वहां से गईं ।

आगन्तुक देवियों को उपदेश——इनमें से कई देवियों ने व्यासदेवजी से भक्ति, ईश्वर तथा गृहस्थ धर्म तथा ईश्वर के प्रति गृहस्थियों के कर्त्तव्यादि के सम्बन्ध में

अनेक प्रश्न पूछे । सबके प्रश्न पूछ लेने के पश्चात् उन्होंने सबके प्रश्नों का एक साथ उत्तर दिया । ईश्वर सर्वव्यापक है । सभी स्थानों पर उसे प्राप्त किया जा सकता है । यदि तुमसे पूछा जाए कि दूध में मक्खन किस स्थान पर निहित है तो आप में से कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकती कि वह कहां पर है, किन्तु दूध में मक्खन है अवश्य । वह दीखता नहीं क्योंकि उसको पाने के लिए जिस साधन की आवश्यकता है उसका प्रयोग नहीं किया गया है । मक्खन को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम दूध को जमाया जाता है, फिर उसका मंथन किया जाता है। तब मक्खन की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से सर्वव्यापक भगवान् को पाने के लिए बड़ी साधना, तप, तितिक्षा और निष्ठा की आवश्यकता है । पहिले ध्यान और समाधि करो, तभी उसे प्राप्त कर सकोगी । राजा भर्तृहरि ने राजसी ठाठबाठ, सुखसमृद्धि, भोगविलास और गगनचुम्बी प्रासादों का परित्याग करके परमयोगी बनकर पारब्रह्म को प्राप्त किया था । आचार्य शंकर, महर्षि दयानन्द, गुरु नानकदेव, एकनाथ, नामदेवादि महापुरुषों ने अपना सर्वस्व त्यागकर, घर के सब सुखों को तिलांजलि देकर चिंतन और समाधि के द्वारा भगवद्प्राप्ति की । तुम्हें मीरा का नाम तो स्मरण होगा । वह उदयपुर की रानी थी । राज-महलों में उसका पालन-पोषण हुआ था और राजमहलों में ही रही थी, किन्तु उसने ईश्वर की प्राप्ति के लिए महलों के सभी सुखों का हंसते-हंसते परित्याग किया । राजसी सुख-समृद्धि और धनैश्वर्य की किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं की । वह गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से बाहिर निकली और वृन्दावन के कुंजों और गलियों का राज-प्रासादों की अपेक्षा अधिक मान किया और अपने लक्ष्य को प्राप्त किया । घर में तुम लोगों से सदा घिरे रहने के कारण साधना में बाधा उपस्थित होती थी इसीलिए मैंने घर का त्याग किया था। एक महिला ने पूछा था कि गृहस्थियों का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है। इसका उत्तर देते हुए व्यासदेवजी ने कहा कि गृहस्थियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए । उत्तरदायित्व को समझना चाहिए । सब सुखों के दाता जगदीश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए । सब सुखोपभोग को उसका प्रसादरूप मानकर भोगो । यह संसार नाशवान् है । इसके सब पदार्थ नश्वर हैं । यह शरीर अनित्य है । जिसने इस संसार में जन्म लिया है उसका मरण भी अवश्यम्भावी है । इसीलिए भगवान् कृष्ण ने "जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्" का उपदेश दिया है । तुम लोग संसार में अत्यधिक आसक्ति मत रखो । सायं-प्रातः भगवद्भजन और साधना करो। पंच महायज्ञों का यथावत् अनुष्ठान करो । पतिव्रत धर्म का सदा पालन करो । यह उपदेश सुनकर वे बड़ी प्रभावित हुईं और उन्होंने उनका जो उपहास और भर्त्सना की थी उसपर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ । व्यासदेवजी के लिए जो भोजन वे लाई थीं उसे देकर क्षमा-याचना करती हुईं वहां से चली गईं। व्यासदेवजी ने उन्हें आदेश दिया कि अब वे भविष्य में वहां आने की कृपा न करें क्योंकि इससे उनकी साधना और अभ्यास में बाधा उपस्थित होती थी ।

व्यासदेवजी का पुनः गृह-त्याग

सांसारिक पाशों में न फंसना––एकान्तप्रिय, योगनिष्ठ और तपश्चर्यापरायण व्यासदेवजी का संसारी लोगों में निवास करना असंभव था । माता-पिता उसे संसार के मायाजाल में फंसाना चाहते थे । लौकिकता के कड़े पाश में बांधकर उसे एक

संसारी जीव बना देना चाहते थे । भाई-बंधुओं तथा सगे सम्बन्धियों की ममता में फंसा देने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी । महात्मा बुद्ध के तीव्र वैराग्य के प्रवाह में बांध लगाने के लिए महाराजा शुद्धोधन ने उन्हें विवाह के बंधन में बांधना चाहा था किन्तु यह बंधन उन्हें बांध न सका और वे अपनी पत्नी यशोधरा और बालक राहुल को रात में सोता छोड़कर, संसार में दुःख क्यों है, इस दुःख का कारण क्या है, तथा इसका नाश करके प्राणी-मात्र को किस प्रकार से सुखी बनाया जा सकता है, इसके अन्वेषण के लिए चल पड़े थे । महर्षि दयानन्द के पिता भी उन्हें इसी प्रकार के बंधन में बांधकर उनसे सांसारिक जीवों की भांति जीवन व्यतीत करवाना चाहते थे, किन्तु वे उन्हें इस जटिल पाश में फंसाने में सफल न हो सके थे । आचार्य शंकराचार्य, कुमारिलभट्ट तथा महावीर वर्धमान के अभिभावक भी उन्हें संसार के कल्याण के मार्ग से च्युत नहीं कर सके थे । हमारे चरितनायक व्यासदेव, जो आगे चलकर नवीन पावन परम्पराओं के प्रवर्तक, नूतन दार्शनिक विचारधाराओं के संस्थापक और धार्मिक क्षेत्र में नवयुग के निर्माता बने, उन्हें मायाजाल में फंसाना असंभव था । दुःखनिवृत्यर्थ संसार को योगनिष्ठ बनाना, योग-परम्पराओं की स्थापना करना, तथा किंकर्त्तव्यविमूढ़ तथा पथभ्रष्ट संसार के कर्त्तव्य की रेखाओं को प्रकाशित करके उन्हें कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ करना जिन्होंने अपना जीवन-लक्ष्य बना लिया हो, भला वे बालक किस प्रकार से सांसारिक सुखों को महत्ता दे सकते थे और माता-पितादि की ममता में फंस सकते थे । व्यासदेवजी के पिता उन्हें संस्कृताध्ययन तथा साधनादि का प्रलोभन देकर घर पर ले आए थे । संस्कृत पढ़ाने के लिए एक शास्त्री अध्यापक की व्यवस्था भी कर दी गई थी और उनकी इच्छा के अनुरूप ही उनके निवास का प्रबन्ध घर से दूर अपने उद्यान में कर दिया गया था । किन्तु धर्मदेव शास्त्री छुट्टी लेकर अपने घर की व्यवस्था करने गया । कितने ही दिन व्यतीत होगए, वह लौटा ही नहीं । संस्कृताध्ययन बन्द होगया । उद्यान में भी कोई न कोई भाई-बहिन तथा परिचित लोग आकर साधना-जापादि में बाधा पहुँचाते रहते थे । इससे वे घबरा उठे और इस बंधन से मुक्त होकर पुनः गृह-त्याग की योजना बनाने लगे ।

स्वामी रामानन्दजी से परामर्श––एक दिन भोजन करने के उपरान्त व्यासदेवजी स्वामी रामानन्दजी के पास गए और निवेदन किया कि आपकी आज्ञा से मैं घर आ गया था । मुझे यह विश्वास दिलाया गया था कि मेरे संस्कृताध्ययन तथा साधना की व्यवस्था सन्तोषप्रद रूप से कर दी जाएगी किन्तु पंडित धर्मदेवजी का यहां पर मन नहीं लगता । उन्हें अपने पारिवारिक जनों की चिन्ता घेरे रहती है । उनकी छुट्टी भी अब समाप्त हो गई है किन्तु वे अभी तक लौटे नहीं हैं । उनका लौटना कुछ अनिश्चित सा ही मालूम होता है । मुझे अब विश्वास नहीं है कि संस्कृत पढ़ने की कोई और व्यवस्था हो सकेगी । प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यानादि की साधना में नित्य नई बाधाएं उपस्थित हो रही हैं । सारा दिन कोई न कोई उद्यान में मिलने के लिए आता रहता है । कभी-कभी बहुत से लोग मिलकर भी आ जाते हैं और सारे उद्यान में इतना कोलाहल मचाते हैं कि मेरी साधना भंग हो जाती है । ये लोग घंटों ही वहां पर बातें करते रहते हैं । जब मैं उनसे बातचीत नहीं करता तो वे परस्पर बातें करने लगते हैं और जब मैं उनसे जाने के लिए निवेदन करता हूं तो वे नाराज़ हो जाते हैं । इस

प्रकार मेरे अमूल्य समय का एक बहुत बड़ा भाग प्रतिदिन व्यर्थ जाता है। इसलिए मेरा विचार अब पुनः गृह-परित्याग का हो रहा है। मैं तो केवल आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए आ गया था। मैं पहिले से ही इस बात को समझ गया था कि पिताजी केवल मुझे वापिस घर ले जाने के लिए पढ़ाई और साधना की व्यवस्था करने की बातें करते हैं किन्तु उनसे यह बन न सकेगा। स्वामीजी को व्यासदेवजी के विचार सुनकर प्रथम तो दुःख हुआ और कहने लगे मैं तो मोहन आश्रम में तुम्हारे अध्ययन तथा साधना की व्यवस्था देखकर बड़ा सन्तुष्ट था किन्तु तुम्हारी माता ने बहुत दिनों से तुम्हारे वियोग में अन्न छोड़ रखा था। अहर्निश तुम्हारी चिन्ता करती थी, आतुर और व्याकुल रहती थी, सदा विलाप करती रहती थी, बड़ी कृश हो गई थी। उसकी दयनीय दशा को देखकर मेरा दिल द्रवित हो गया और मैं तुम्हारे पिता के साथ तुम्हें लेने के लिए हरिद्वार चला गया। लोग तुम्हारे योगाभ्यास की साधना में बाधा उपस्थित करते हैं यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मेरी यह अभिलाषा है कि तुम एक महान् योगी बनकर दुनिया को दुःख से मुक्त करो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं और तुम्हारे श्रेय की प्रभु से प्रार्थना करता हूं। यदि संस्कृत पढ़ाने की कोई व्यवस्था दूसरी हो भी जाए तो भी यहां तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकेगी। तुम्हारे माता-पिता को यह शंका है कि कहीं तुम साधु न बन जाओ, इसीलिए तुम्हारी साधना में विभिन्न बाधाएं उपस्थित की जा रही हैं और सभी तुम्हारे गृहस्थ में प्रवेश के लिए प्रयत्नशील हैं। तुम्हारी उन्नति घर के वातावरण से दूर रहकर ही हो सकती है।

स्वामी रामानन्दजी से आज्ञा प्राप्त करके व्यासदेवजी ने उनसे निवेदन किया कि अब वह आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए कठिन साधना करेंगे और योगाभ्यास में मार्गदर्शन लाभ करने के लिए किसी महान् योगी की तलाश करेंगे। उनके सहपाठी मनुदत्त ने भी वापस मोहन आश्रम जाने का विचार किया।

व्यासदेवजी का पुनः हरिद्वार के लिए प्रस्थान

व्यासदेवजी ने अपने गृह-त्याग के विचार को किसी पर भी प्रकट नहीं किया। केवल स्वामी रामानन्दजी तथा उनके सहपाठी मनुदत्त ही को इनके इरादे का पता था। एक दिन रात को छिपकर स्टेशन पर आए और हरिद्वार का टिकट लेकर वहां पहुंच गए। मनुदत्त तो पूर्ववत् मोहन आश्रम में रहने लगा किन्तु व्यासदेवजी को अपने पिताजी के वहां उनकी तलाश में आ जाने का भय था। अतः उन्होंने मोहन आश्रम में रहना उचित नहीं समझा। व्यासदेवजी ने मनुदत्त को समझा दिया था यदि उनके पिता उन्हें ढूंढने आएं तो वह उनका पता न बताए। व्यासदेवजी ने अब हरिद्वार से कुछ मील दूर सप्तसरोवर जाकर कठिन तपस्या, साधना और योगाभ्यास करने का निश्चय किया।

व्यासदेव की खोज––व्यासदेव के चले आने के बाद घर में पूर्ववत् आतुरता और व्याकुलता छा गई। सारा वातावरण शोक से आच्छादित हो गया। घर आया बेटा पुनः हाथ से निकल गया यह विचार सबको दुःखित कर रहा था। माता-पिता, भाई-बंधु सभी परस्पर एक दूसरे को उलाहना दे-देकर रुदन कर रहे थे। अब पिता ने पुनः हरिद्वार तथा उसके आसपास व्यासदेव को ढूंढकर घर वापिस लाने का दृढ़ विचार किया। बालयोगी व्यासदेवजी इस बात को जानते थे इसीलिए इच्छा होने पर भी वे अबकी वार मोहन आश्रम नहीं ठहरे और सप्तसरोवर चले गये थे। पिता

व्यासदेवजी के गृह-परित्याग से दूसरे या तीसरे दिन ही उन्हें ढूंढने के लिए मोहन आश्रम पहुंचे। वहां मनुदत्त से उनका पता लगाया पर व्यासदेवजी के आदेश के अनुसार उसने उनका कुछ भी पता नहीं बताया और निवेदन किया कि व्यासदेवजी तो किसी दिन बड़े भारी विख्यात योगी बनेगें। वह किसी प्रसिद्ध योगी से योग सीखने के लिए उसकी तलाश में कहीं गए हैं। अब उनका पता लगाना बड़ा कठिन है। हिमालय में रहकर योगाभ्यास करने का उनका विचार है। आप उनके विचारों और उनकी स्थिति से परिचित ही हैं। अब आप उनको छोड़ दीजिए। वह आपके पास घर पर नहीं रहेंगे। उन्होंने संसार के बंधन काट दिए हैं। किसी प्रकार का ममत्व अब उन्हें बांध नहीं सकता। वह सांसारिक प्रलोभनों से बहुत ऊंचे उठ चुके हैं, अतः आप लौट जाइए और शान्तिपूर्वक अपने गृहस्थ धर्म का पालन कीजिए। मनुदत्त ने पिता के आने की सूचना व्यासदेवजी को सप्तसरोवर पहुंचा दी और वे सतर्क और सावधान होगए।

कठिन तपश्चर्या का प्रारम्भ

ब्रह्मचारी व्यासदेवजी किसी बड़े योग्य योगी की खोज में थे। सप्तसरोवर में कुछ दिन वास करने के पश्चात् वे इस खोज में निकल पड़े। सप्तसरोवर से ऋषिकेश की ओर गंगा के किनारे-किनारे प्रस्थान किया। दस-पन्द्रह दिन तक हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच में ही घूमते रहे। अभी घर से निकले तीन-चार वर्ष ही हुए थे। इसलिए भिक्षाचर्या करने में संकोच होता था। उनके पास कुछ रुपये थे जो वे अपने घर से ही साथ लाए थे। उन्हींसे अपना निर्वाह करते थे। भोजन केवल एक ही समय करना प्रारम्भ कर दिया था। अभी गेरुए वस्त्र धारण नहीं किए थे। उनके पास केवल एक कटिवस्त्र, एक कम्बल तथा दो पात्र थे। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच भ्रमण करते हुए कई सन्तों तथा महात्माओं के दर्शन लाभ हुए। इनमें से कइयों से योग-सम्बन्धी विज्ञान के विषय में वार्तालाप हुआ किन्तु इनमें से कोई भी व्यासदेवजी की परीक्षा की कसौटी पर पास नहीं हुआ। इनमें से प्रत्येक इन्हें अपना चेला बनाना चाहता था पर व्यासदेवजी चेला बनना स्वीकार न करते थे। भला ऐसे-वैसे साधारण से सन्तों का चेला बनना उन्हें कैसे पसन्द आ सकता था! अब व्यासजी ने वीरभद्र के मंदिर के पास अपना आसन जमा लिया और गंगा के किनारे योगाभ्यास करने में तत्पर होगए। उन दिनों ऋषिकेश की आबादी बहुत कम थी। इसलिए यत्र-तत्र हाथी, बाघादि वन्य जानवर फिरा करते थे। सन्त और महात्मा लोग कोयल घाटी और झाड़ियों में निवास करते थे। व्यासदेवजी इनके दर्शन करने के लिए कभी-कभी वहां जाया करते थे किन्तु इन्हें कोई ऐसा योगी नहीं मिला जो इनका पथप्रदर्शन कर सकता। अब व्यासदेवजी ने वस्त्र पहिनना बहुत कम कर दिया। केवल कौपीन धारण किया करते थे। कभी आटा, दालादि लेने यदि बस्ती में जाना पड़ता तो कटि-वस्त्र धारण कर लेते थे। देहाध्यास को कम करने का प्रयत्न करते थे। बाल बहुत बढ़ गए थे। अब उनकी अवस्था एक अवधूत के समान होगई थी। चित्त में उदासीनता और वैराग्य की भावना सदैव बनी रहती थी। सारा समय जाप और ध्यान में ही लगे रहते थे। गंगा के किनारे पर घास और पत्तों की एक छोटी-सी कुटिया बना ली थी, उसी में रहा करते थे। पढ़ने-लिखने की यहां कोई विशेष व्यवस्था न

थी। केवल वैराग्यशतक ही पढ़ा करते थे। अब दाल-शाकादि बनाना भाररूप-सा मालूम होने लगा, अतः केवल दो रोटी बनाकर दोपहर के समय खा लेते थे। इन दिनों अधिकतर मौन ही रहते थे और आध्यात्मिक मस्ती के आनन्द में विभोर रहते थे। इस प्रकार एक वर्ष व्यासदेवजी ने जाप और ध्यान तथा योगाभ्यास में व्यतीत किया।

नीलकंठ गमन——इधर-उधर भ्रमण करते हुए तीन-चार महात्माओं के साथ व्यासदेवजी नीलकण्ठ महादेव चले गए। यह स्थान स्वर्गाश्रम से छः या सात मील की दूरी पर है। यह स्थान बड़ा एकान्त था और यहां का वातावरण भी बहुत शांत था। यहां पहुंचने का मार्ग बड़ा दुर्गम था। यहां पर हाथी, शेर, बाघ, चीते आदि हिंस्र जीव बहुत रहते थे। अकेले भ्रमण करना अत्यन्त कठिन था। जो सन्त इनके साथ नीलकण्ठ महादेव गए थे वे वापिस लौट गए परन्तु व्यासदेवजी निर्भय होकर वहीं रहने लगे। यहां पर इन्होंने आकार मौन धारण कर लिया था और तीव्र तपस्या प्रारंभ कर दी थी। इन दिनों बाल इतने बढ़ गए थे कि इनकी जटाएं-सी बन गई थीं। अब बदन पर विभूति भी लगाने लग गए थे। यह आवश्यक भी थी क्योंकि वस्त्र धारण करना प्रायः त्याग ही दिया था। शीतकाल में विभूति लगाने से शीत से रक्षा हो जाती थी। अब इनका देहाध्यास बहुत कम हो गया था किन्तु वैराग्य अभी पूर्णतया दृढ़भूमि नहीं हुआ था क्योंकि अभी भी भिक्षाचर्या करने में संकोच होता था और इसी लिए अपने पास भोजनार्थ कुछ रुपये रखे हुए थे।

पुनः कजली वन गमन—कजली वन में आबादी बहुत कम थी इसलिए व्यासदेवजी ने इस स्थान को प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि के लिए उपयुक्त समझा और यहीं आकर रहने लगे। स्वर्गाश्रम और नीलकण्ठ से लेकर गुरुकुल कांगड़ी तक का सारा प्रदेश निर्जन-सा ही था। इस बीहड़ वन में घूमते-फिरते व्यासदेव कभी-कभी भयभीत हो जाया करते थे। किन्तु यहां रहने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था। वे सोचा करते थे कि मृत्यु तो एक न एक दिन आएगी ही लेकिन वह आएगी तब जब जीवन की अवधि समाप्त हो जाएगी, उससे पूर्व नहीं। यदि किसी हिंस्र जीव के द्वारा मृत्यु ही प्रारब्ध में है तो फिर इससे भयभीत होने से भी क्या लाभ! इसलिए इसी वन में रहकर तपश्चर्या का अनुष्ठान क्यों न किया जाए! इन दिनों बिल पकने प्रारंभ होगए थे। कन्द-मूल तरड़ भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते थे और कुछ थोड़े से सत्तू भी उनके पास थे। यहां पर चण्डी मन्दिर और चिल्ला के बीच में एक जलस्रोत बहता था। उससे थोड़ी-सी दूर एक पेड़ के नीचे व्यासदेवजी ने टहनियों और पत्तों की एक छोटी-सी कुटिया बना ली और उसके पास में धूनी लगा दी। अभी यहां निवास करते कुछ ही दिन हुए थे, एक रात्रि को जब वे समाधिस्थ होकर धूनी के पास बैठे थे तब उन्हें बड़े जोर की हाथी की चिंघाड़ सुनाई दी। उनकी आंख खुल गई। उन्होंने धूनी तेज कर दी और सामने से आते हुए हाथी को देखा। वह स्रोत से पानी पीकर आया और व्यासदेवजी की ओर बढ़ने लगा। धूनी से थोड़ी दूर पर आकर खड़ा हो गया।

हाथी से सामना—यह हाथी बड़ा बलवान था। वह अपनी सूंड से पानी निकालकर धूनी की ओर फेंकने लगा। व्यासदेवजी भी उससे लोहा लेने के लिए तैयार होगए और निर्भीक भाव से उसके विरुद्ध डटे रहे। इन्होंने तुरन्त धूनी में से एक

जलती हुई लकड़ी उठाकर बलपूर्वक हाथी की सूंड पर मारी। इससे हाथी कुछ पीछे हट गया और वहां से पुनः अपनी सूंड से धूनी पर पानी फैंकने लगा। इस पर व्यासदेवजी ने धूनी पर से दो लकड़ी और उठाकर हाथी की ओर फैंकी। वह वहां से भागकर पानी के स्रोत की ओर गया। व्यासदेवजी ने सोचा कि अब हाथी कहीं अन्यत्र चला गया है किन्तु वह थोड़ी ही देर में पुनः वहां आया और पूर्ववत् धूनी पर पानी फैंकने लगा। इस पर व्यासदेवजी एक लम्बी-सी जलती हुई लकड़ी लेकर खड़े होगए और दूसरे हाथ से कई पत्थर हाथी पर मारे। पर छोटे-छोटे पत्थरों का हाथी पर क्या असर होता ! वह बराबर पानी फैंकता ही रहा। अब व्यासदेवजी की धूनी आधी से भी अधिक बुझ चुकी थी। अब वह चिन्तित हुए और हाथी द्वारा अपनी मृत्यु निश्चित समझ ली। व्यासदेवजी विपत्ति में धैर्य रखना जानते थे और बड़े प्रत्युत्पन्नमति थे। जब हाथी की सूंड का पानी समाप्त होगया और वह तीसरी बार पानी लेने गया तब सुअवसर देखकर व्यासदेव सब सामान नीचे छोड़कर एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ गये। हाथी सूंड में पानी भरकर लाया। सारी धूनी बुझा दी। जो सामान उसे नीचे दिखाई दिया सब तोड़-फोड़ दिया। जिस कपड़े में सत्तू बंधे हुए थे उसे भी फाड़ दिया और सत्तू खागया। कम्बल और धोती को फाड़कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिए किन्तु अभी भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। जिस वृक्ष पर व्यासदेव ने आश्रय लिया था हाथी उसकी टहनियां तोड़-तोड़कर उसे मारने लगा। अब व्यासदेवजी पेड़ की चोटी पर चढ़ गये। जब पेड़ की सब शाखाएं और प्रशाखाएं समाप्त होगईं तब वह क्रुद्ध होकर पेड़ को ही बड़े वेग से बलपूर्वक हिलाने लगा। उसकी टक्करों से सारा वृक्ष कम्पायमान होगया पर व्यासदेवजी बड़ी दृढ़ता से उसपर बैठे रहे। प्रातःकाल जब कुछ प्रकाश-सा हुआ तब वह हाथी उस वृक्ष को छोड़ दूर जंगल में चला गया। व्यासदेव प्रातः छः बजे पेड़ से नीचे उतरे और सारा सामान टूटा-फूटा पाया। अब व्यासदेवजी बचे-खुचे सामान को लेकर पुनः कुनाऊं की ओर चले गये और वहीं पर आबादी से थोड़ी दूर निवास करके कई मास तक साधना की।

योगी स्वरूपानन्द से भेंट——वर्षा बीत चुकी थी। शीतकाल का समागम होने ही वाला था। कुनाऊं से व्यासदेवजी चण्डी पर्वत पर कुछ दिनों के लिए चले गए और वहां से गुरुकुल कांगड़ी को देखने गए। इसको स्थापित हुए अभी थोड़े ही वर्ष हुए थे। इस भ्रमण के पश्चात् वह कनखल आकर चेतनदेव की कुटिया में रहने लगे। इस कुटिया के पास ही स्वामी स्वरूपानन्दजी रहा करते थे। व्यासदेवजी ने इनका सत्संग करना प्रारंभ कर दिया। इन दिनों यह दिन में तीन घण्टे तक आसन और प्राणायाम करते थे तथा रात्रि को ध्यान योग का अभ्यास करते थे। स्वरूपानन्दजी ने व्यासदेवजी को ३-४ घण्टे प्रतिदिन अपने पास आने की प्रेरणा दी और कहा कि योग साधना के लिए युवावस्था सर्वोत्तम काल है। इसका सदुपयोग करो। व्यासदेवजी ३ घण्टे प्रतिदिन इनके पास जाकर आसन, प्राणायाम, और ध्यानयोग का अभ्यास किया करते। स्वरूपानन्दजी हठ-योग की बहुत-सी क्रियाएं जानते थे। ये क्रियाएं भी व्यासदेवजी ने इनसे सीखीं और ४ मास तक प्रतिदिन इनसे योगाभ्यास सीखते रहे। इसके बाद स्वामीजी कहीं अन्यत्र कार्यार्थ चले गए और व्यासदेव को लौटने पर योगाभ्यास करवाने का वचन दे गए।

पुनः सप्तसरोवर गमन––यहां पर सन्त रामदासजी रहते थे। ये बड़े पहुंचे हुए साधु थे। इनका शरीर पंजाब का था। व्यासदेवजी ने इनकी ख्याति सुनी थी, अतः उनके दर्शनार्थ ये पुनः सप्तसरोवर आए थे। सन्त रामदासजी लगभग १२ साल से एक पैर पर खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। ये कई स्थानों पर रहकर कठिन तपस्या कर चुके थे। आजकल सप्तसरोवर में आकर तपश्चर्या प्रारंभ की थी। इन्होंने अपना एक पैर रस्सी में रखकर उसके दूसरे सिरे को ऊपर वृक्ष से बांधकर लटका रखा था और दूसरे पैर के सहारे भूमि पर खड़े थे। जिस पैर को वृक्ष से लटकाया हुआ था वह सूखकर एक पतली लकड़ी के समान हो गया था और दूसरा जिसके सहारे से वे खड़े रहते थे सूज कर बहुत मोटा हो गया था। व्यासदेवजी पर इनकी कड़ी तपस्या का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके चित्त में उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति हो जाना स्वाभाविक ही था। इसलिए व्यासदेवजी ने इनके थोड़ी दूर ही जंगल में एक छोटी-सी कुटिया अपने निवास के लिए बना ली और नित्यप्रति इनके दर्शन और सत्संग के लिए आना प्रारंभ कर दिया। सन्त रामदासजी विद्वान् तो न थे किन्तु इनका वैराग्य बड़ा तीव्र था और ये बड़े अनुभवशील तपस्वी थे।

उत्तराखण्ड के चारों धाम की यात्रा

जमनोत्री-यात्रा––किसी योग्य योगी की खोज में व्यासदेवजी ने हरिद्वार, सप्तसरोवर, ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम तथा नीलकण्ठ महादेवादि अनेक स्थानों का भ्रमण किया था किन्तु इसमें उन्हें सफलता लाभ न हो सकी। उनकी योग सीखने की प्रवृत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी अतः इस उत्कट योग-पिपासा को प्रशान्त करने के लिए एक सच्चे गुरु की तलाश करने के लिए उत्तराखण्ड की यात्रा का निश्चय किया। भगवती प्रकृति तथा स्रष्टा की सृष्टि के सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त करने की भी इच्छा थी और साथ ही चारों धामों की यात्रा से पुण्य-लाभ करने की अभिलाषा भी थी। इन भावनाओं के साथ व्यासदेवजी हरिद्वार से ऋषिकेश पहुंचे। यहां से टिहरी लगभग ५० मील है। सर्वप्रथम यह वहीं गए और वहां पर दो-तीन दिवस ठहरे। इसके पश्चात् गंगा के किनारे-किनारे धरासू गए। यहां से जमनोत्री लगभग ५० मील है। व्यासदेवजी ने सर्वप्रथम जमनोत्री जाने का निश्चय किया। मार्ग में शिमली, गंगनाणी, यमुना, हनुमान आदि चट्टियों में ठहरते हुए लगभग १५ दिन में जमनोत्री पहुंचे। यहां पर एक छोटी-सी धर्मशाला के अतिरिक्त और कोई ठहरने के लिए स्थान न था। अतः व्यासदेवजी इसी धर्मशाला में ठहरे। यहां पर एक छोटा-सा मन्दिर है और तीन-चार गर्म जल के कुण्ड हैं। इनका जल इतना गर्म होता है कि यदि कपड़े में बांधकर आलू इनके जल में लटका दिए जाएं तो वे भी पक जाते हैं। यहां से दो मील की दूरी पर यमुनाजी का वास्तविक उद्गम स्थान है। लगभग दो मील के फासले पर बहुत ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं जो सदा बर्फ से आच्छादित रहते हैं। यहीं से यमुना का उद्गम है। इन पहाड़ों के नीचे जहां पर गर्म कुण्ड हैं इसी स्थान को जमनोत्री कहते हैं। जब कभी हिम-जल का प्रवाह अत्यधिक बढ़ जाता है तो ये गर्म जल के कुण्ड नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं तथा धर्मशालादि भी गिरकर पानी में बह जाते हैं। जब कभी ग्लेशियर का कोई भाग टूटकर यमुनाजी

में गिर जाता था और यमुना का प्रवाह रुकने से बांध टूट जाता था तो बाढ़ आ जाती थी और मन्दिर, धर्मशाला, गर्म जल के कुण्डों आदि को नष्ट कर देती थी। व्यासदेवजी लगभग चार-पांच दिन तक जमनोत्री रहे। वहां अन्य कोई साधु न रहता था, केवल चार-पांच यात्रार्थ आए हुए साधु ही वहां अस्थायी रूप से रहते थे। व्यासदेवजी ने अब वहां से उत्तरकाशी जाने का विचार किया।

उत्तरकाशी में १५ दिन तक निवास––उत्तरकाशी यमुनोत्री से लगभग ४३ मील है। इस यात्रा में तीन-चार और सन्त भी व्यासदेवजी के साथ थे। इसलिए यह यात्रा अधिक कष्टदायक नहीं थी। मार्ग में फूलचट्टी, गंगनाणी, सिंगोट तथा नाकौरी चट्टियों पर ठहरते हुए व्यासदेवजी तथा उनके साथी उत्तरकाशी पहुंचे। इस यात्रा में एक बड़ी रोचक घटना हुई। व्यासदेवजी तथा उनके साथियों में से दो सन्त प्रातः चार बजे से पूर्व ही चल दिए। मार्ग एक सघन वन में से जाता था। जब ये इस मार्ग से जा रहे थे तब एक भयानक व्याघ्र उनका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। व्यासदेवजी घबराए तो नहीं किन्तु उन्हें इस घटना से कजली वन में उनका हाथी से जो संघर्ष हुआ था उसका स्मरण हो आया और बड़े विनोदपूर्ण ढंग से उस लड़ाई का वृत्तान्त अपने साथी सन्तों को सुनाया। उन दोनों सन्तों को तो अपनी जान के लाले पड़ रहे थे अतः उन्होंने रुचिपूर्वक व्यासदेवजी की लड़ाई की कहानी को नहीं सुना। व्याघ्र वास्तव में बड़ा खूंखार था। उसने आस-पास के कई आदमियों को मार डाला था। व्यासदेवजी ने जिस प्रकार से कजली वन में हाथी से लड़ाई की थी उसी प्रकार से अब इस बाघ के साथ भी पत्थरों से लड़ाई करने लगे। हाथी से धूनी की जलती लकड़ियों से लड़ाई की थी और इस बाघ के साथ पत्थरों से। व्यासदेवजी ने बाघ पर डट कर निर्भीक भाव से पत्थरों की वर्षा की। इसी बीच में यह देखकर कि बेचारा युवक साधु अकेला ही बाघ से भिड़ रहा है, कुछ यात्री लोग डण्डे हाथ में लेकर भाग आए। उन्होंने जोर से हाहुल्लड़ और शोर मचाया जिससे भयभीत होकर वह बाघ भाग गया। चार दिन की यात्रा के पश्चात् व्यासदेवजी तथा दोनों सन्त उत्तरकाशी पहुंच गए। यहां ये सब विश्वनाथजी के मन्दिर में ठहरे। यह मन्दिर पत्थरों का बना हुआ है और बहुत प्राचीन है। पूर्वकाशी (बनारस) के समान ही यह तीर्थस्थान भी विविध मन्दिरों से अलंकृत है। उत्तरकाशी भी पूर्वकाशी के समान ही बड़ा तीर्थ माना जाता है। प्रतिवर्ष हजारों यात्री यहां पर यात्रा करने आते हैं। उत्तरकाशी से लगभग दो मील पर गंगाजी और वरुणा नदी का अत्यन्त रमणीय संगमस्थान है। और यहां से तीन मील की दूरी पर अस्सी और गंगा का संगम है। पूर्वकाशी में भी अस्सी और गंगा का संगम है। पूर्वकाशी के समान ही यहां पर भी गंगा पर किदार घाट, जड़ भरत तथा मणिकरणादि प्रसिद्ध घाट बने हुए हैं। यहां पर व्यासदेवजी को कई सन्तों का समागम तो प्राप्त हुआ किन्तु बड़ी खोज के बाद भी किसी महान् योगी के दर्शन-लाभ न हो सके।

गंगोत्री-यात्रा––व्यासदेवजी ने अब अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान बहुत उंचाई पर है। उनका विचार था कि इस

स्थान पर अनेक योगी योगाभ्यास करते होंगे क्योंकि ध्यान और समाधि के लिए शीतप्रधान प्रदेश अधिक उपयुक्त होते हैं।

उत्तरकाशी से चलकर मनेरी होते हुए व्यासदेवजी भटवाड़ी पहुंचे। यहां आकर एक मन्दिर में ठहरे। यहां से गंगनाणी गए और वहां एक ब्रह्मचारी के पास तीन दिन तक निवास किया। यहां पर तीन प्रसिद्ध तप्त कुण्ड हैं जिनका जल बड़ा उष्ण है। यह स्थान बड़ा रमणीक है अतः व्यासदेवजी जब तक यहां रहे नित्य इन कुण्डों में घण्टों ही स्नान करते थे। इसके पश्चात् सुक्खी और झाला चट्टियों के पास से चलकर हर्सिल पहुंचे। यहां पर व्यासदेवजी के परिचित एक सज्जन रहते थे। ये ब्रह्मचारी थे किन्तु हर्सिल आकर इन्होंने गृहस्थ में प्रवेश कर लिया था। ये जम्बू के निवासी थे। इनका नाम राजाराम था। यहां पर व्यासदेवजी राजाराम के पास ठहरे। राजाराम ने इनसे हर्सिल में ही स्थायी रूप से निवास करने का आग्रह किया किन्तु व्यासदेवजी ने वहां रहना पसन्द नहीं किया। उसके सहवास में वे रहना ही नहीं चाहते थे। वे राजाराम के विवाह कर लेने से प्रसन्न नहीं थे। उसने ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर उसको भंग कर दिया था। वे इसमें राजाराम का बड़ा पतन समझते थे, इसलिए स्थायी रूप से तो भला ठहरना ही क्या था, वहां से दो दिन में ही गंगोत्री के लिए प्रस्थान कर दिया। यहां से चलकर व्यासदेवजी धराली ठहरे। यह स्थान हर्सिल से केवल दो ही मील की दूरी पर था। यह एक बड़ा रमणीक स्थान है। गंगाजी के किनारे बसा हुआ है। अच्छा सुन्दर गांव है। यहां पर गंगोत्री से आते-जाते सन्त ठहरा करते थे। यहां के निवासी सन्तों-महात्माओं के लिए भोजनादि की व्यवस्था करते थे और उनका बड़ा सम्मान करते थे। यहां प्राचीन मन्दिर पत्थरों से बना हुआ शंकरजी का है। और भी पहले कई मन्दिर यहां थे। यहां पर सन्तों और महात्माओं के रहने के लिए गुफाएं भी बनी हुई थीं। सन्त खुदासिंह जब कभी गंगोत्री और गोमुख से आते तो यहीं ठहरा करते थे। यहां से चलकर व्यासदेवजी गंगोत्री पहुंच गए। यहां आकर वह एक धर्मशाला में रहने लगे। यहां एक छोटा-सा गंगाजी का मन्दिर था। व्यासजी के गंगोत्री आने के कई वर्ष पश्चात् जयपुरनरेश ने दो-तीन लाख रुपया व्यय करके इस मन्दिर को एक विशाल रूप दे दिया था। उस समय यहां पर न कोई आश्रम था और न कोई कुटिया। सभी सन्त और महात्मा गुफाओं में रहा करते थे। व्यासदेवजी ने यहां पर गंगाजी के मन्दिर के दर्शन किए। गंगा-स्नान किया और भगीरथ शिला, गौरी कुण्ड तथा पटांगना देखने के लिए गए। उन्हें किसी योगी का दर्शन या सत्संग प्राप्त न हो सका। किसी अन्य साथी के न मिलने के कारण अभी गोमुख की यात्रा भी न कर सके। कुछ दिन यहीं ठहरना पड़ा। जब व्यासदेवजी को गोमुख यात्रा के लिए तीन साथी मिल गए तब उन्होंने इस यात्रा के लिए प्रस्थान किया। एक पण्डा भी इनके साथ हो लिया।

गोमुख-यात्रा—व्यासदेवजी तथा इनके तीनों साथी प्रातः ८ बजे गोमुख के लिए चल दिए। गोमुख का मार्ग बड़ा विकट था। सड़क तो क्या कोई पगडण्डी भी वहां न थी। ऊबड़-खाबड़ इधर-उधर पड़े हुए पत्थरों पर चलना पड़ा। सायंकाल चीड़वासा में पहुंच गए। अत्यधिक शीत था अतः धूनी लगाकर उसके पास बैठकर

शीत को थोड़ा शान्त किया। दूसरे दिन लगभग १२ बजे गोमुख पहुंचे और गंगाजी के उद्गम स्थान पर स्नान किया। बर्फ गल-गलकर बर्फ के पहाड़ के नीचे से बह रहा था। जल का वेग अति तीव्र था। इस तीव्र वेग में हाथी भी बह सकता था। पण्डा से विदित हुआ कि जिस 'ग्लेशियर' से गंगाजी निकली हैं वह प्रतिवर्ष कम होता जा रहा है। गंगाजी के उद्गम के स्थान पर एक बर्फ का ग्लेशियर है जो लगभग सौ फुट ऊंचा और आधा मील चौड़ा था। इसकी लम्बाई का अनुमान लगाना कठिन था क्योंकि यहां से ऊपर हिमाच्छादित बड़े-बड़े विशाल पर्वत खड़े थे। ये विशालकाय पर्वत एक ओर बद्रीनाथ से जा मिले थे और दूसरी ओर केदार-नाथ से। यहां से बद्रीनाथ १५ मील है और केदारनाथ केवल १२ या १५ मील है। बद्रीनाथ तो यहां से जाया जा सकता था किन्तु केदारनाथ का मार्ग मिलना अत्यन्त कठिन था क्योंकि सामने मार्ग रोककर हिमालय खड़ा है। व्यास-देवजी के साथी यात्रियों को प्राकृतिक दृश्य देखने की बड़ी उत्सुकता थी। उन्होंने पण्डे को कुछ रुपये दिए और उसे साथ चलने को कहा। यहां से तपोवन और नन्दन-वन जाने की अब तैयारी की। भोजनोपरान्त चलने का विचार किया। मार्ग के लिए कुछ पाथेय साथ ले लिया और तपोवन के लिए प्रस्थान किया। यहां से तपोवन केवल तीन-चार मील था। रात्रि तपोवन में व्यतीत करने का संकल्प किया क्योंकि दूसरे दिन प्रातः नन्दनवन जाने का निश्चय था। दोपहर के दो बजे तपोवन पहुंचे। यहां पर वृक्ष नाममात्र को भी न थे। केवल एक छोटा-सा मैदान था जो आधा मील लम्बा और इससे कुछ कम चौड़ा था। इसके उत्तर भाग में गंगाजी का ग्लेशियर है और दक्षिण भाग में शिवलिंग पर्वत है। इसकी ऊंचाई लगभग इक्कीस हजार फीट है। इसके सामने एक नदी है जो केदारनाथ की ओर से आ रही है। इसके किनारे भी एक बड़ा विशाल पर्वत है। यह हिम से आच्छादित है। इसी पर्वत के दूसरी ओर केदारनाथ है। इस नदी को पार करके गंगाजी के ग्लेशियर के किनारे-किनारे लगभग दो मील जाना पड़ा। यहां से वापिस लौटकर तपोवन में ही आगए। रात एक पत्थर के नीचे गुफा में व्यतीत की। लकड़ियां वहां पर बिल्कुल उपलब्ध न हो सकीं। भूमि से कुछ जड़ें-सी उखाड़कर आग जलाई और जैसे-तसे कठिनाई से रात व्यतीत की। तपोवन की ऊंचाई लगभग तेरह हजार तथा गोमुख की बारह हजार नौ सौ फीट है।

दूसरे दिन गंगाजी के ग्लेशियर को देखने के लिए चल दिए। बड़ी कठिनाई से इसे पार किया। इसकी चौड़ाई लगभग आधा मील थी। कहीं-कहीं बर्फ गल गई थी और वहां एक प्रकार का तालाब-सा बन गया था। ये लोग लगभग दोपहर के बारह बजे नन्दनवन में पहुंचे। इसके एक ओर एक नदी है तथा दूसरी ओर चौखम्भा पर्वत। यह पर्वत सदा ही हिम से आच्छादित रहता है। इस पर सारा साल बर्फ पड़ती रहती है। नन्दनवन की ऊंचाई लगभग चौदह हजार फीट है। ये लोग दो घण्टे तक यहां रहे। इस समय आषाढ़ का महीना था, अतः आसमान स्वच्छ था। नन्दनवन से गोमुख और तपोवन सामने ही दिखाई देते थे। गंगाजी के ऊपर लग-भग आध मील तक बर्फ जमी हुई थी। बड़ी कठिनाई से इस मार्ग को पार किया। व्यासदेवजी तो एक स्थान पर बर्फ की दरार में फंस गए। उनके साथियों ने बड़ी

कठिनाई से इन्हें बाहर निकाला। तपोवन से हिमालय का दृश्य अत्यन्त मनोहर दिखाई देता है। सामने हिमाच्छादित बड़े-बड़े विशाल पर्वत दृष्टिगोचर होते हैं।* यहां के दृश्यों की अनुपम सुन्दरता और मोहकता वर्णनातीत है। इसकी आनन्दानुभूति तो स्वयं यात्रा करके ही प्राप्त करनी चाहिए। सायंकाल व्यासदेवजी अपने साथियों सहित गोमुख लौट आए और गोमुख के पास ही एक गुफा में निवास किया। इधर-उधर से भोजपत्र की लकड़ियां बीनकर इकट्ठी कीं और उनकी धूनी बनाई। रात भर वहां विश्राम किया। प्रातःकाल गोमुख से निकली हुई धारा में स्नान किया। इस गोमुख के विषय में इधर कई प्रकार की किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। कई लोगों ने बताया कि गंगा की हिमधारा के ऊपर जो पर्वत हैं इन सबको मिलाकर गाय के मुख के समान एक आकृति-सी बनी हुई है। इसे ही गोमुख कहते हैं। कोई कहते थे कि बर्फ के पहाड़ से जहां से गंगाजी निकली है उसकी आकृति गाय के मुख से मिलती-जुलती है, इसलिए यह गोमुख कहलाता है। कइयों का विचार था कि जिस स्थान से गंगाजी निकली हैं वहां गोमुख की आकृति-सी बनी हुई है। किन्तु व्यासदेवजी को इन सब बातों में कोई तथ्य मालूम नहीं पड़ा। इनके विचार से तो वेद में गो नाम पृथिवी का है। निघण्टु में इसके २२ पर्याय दिए हैं। इनमें गो शब्द भी आता है। इसलिए गो नाम पृथिवी का है। पृथिवी के मुख को फाड़कर गंगाजी का उद्गम हुआ है। गंगा के ऊपर का भाग लगभग आधा मील तक हिम से आच्छादित है। इसे हिम की धारा भी कह सकते हैं। इसका सम्बन्ध निश्चितरूपेण आसपास के हिमाच्छादित पर्वतों से है। ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु गंगा के वास्तविक उद्गम स्थान का आज तक किसी को पता नहीं लग सका है। जहां कहीं भी इसका उद्गम होगा वह अदृश्य है, प्रत्यक्ष नहीं। गंगाजी के ऊपर जो बर्फ है इसका सम्बन्ध एक ओर बद्रीनाथ से है और दूसरी ओर केदारनाथ से। इतना बड़ा ग्लेशियर कहीं पर भी किसी नदी के ऊपर नहीं है। बद्रीनाथ की ओर से इसी ग्लेशियर से अलखनन्दा, ऋषिगंगादि नदियां निकलती हैं और दूसरी ओर से केदारगंगादि कई नदियां निकल रही हैं।

गोमुख स्नान करने के पश्चात् सायंकाल गंगोत्री लौट आए। तीन-चार दिन तक यहां रहे। यहां पर सन्तों-महात्माओं के दर्शन किए और अनेक दर्शनीय स्थानों का अवलोकन किया। गंगोत्री में केदारगंगा और गंगा का संगम है। इसमें स्नान करने का बड़ा महत्त्व माना जाता है। यहां से लगभग एक मील की दूरी पर रुद्र-गंगा का गंगा के साथ संगम होता है। पकोड़ी गंगा भी लगभग एक मील की दूरी पर गंगा से मिलती है। आधे मील की दूरी पर लक्ष्मी वन है जिसे गंगाजी का बागीचा भी कहते हैं। मंदिर के पास भगीरथ शिला है। यहां पर महाराजा भगीरथ ने तपस्या की थी। गौरी कुण्ड का दृश्य वास्तव में दर्शनीय है। यहां पर बहुत ऊंचे से गंगाजी

---

*(१) मेरु शिखर २१८५० फीट ऊंचा, (२) शिवलिंग २१४०० फीट, (३) कीर्ति-स्तम्भ २०५७० फीट, (४) चतुरंगी हिमधारा (केदारनाथ का शिखर) २२९९० फीट, (५) सुमेरु पर्वत २०९९० फीट, (६) भगीरथी पर्वत (इसके नीचे से गंगाजी निकल कर बह रही है) २२४९५ फीट, (७) बासुकी शिखर २२२५८ फीट, (८) चन्द्र पर्वत २२०७३ फीट, (९) कालिन्दी १९५७० फीट, (१०) चौखम्भा पर्वत—इसके चार शिखर :—(क) २३४२०, (ख) २३१९०, (ग) २२२८०, (घ) २२४८५, (११) मन्थरी पर्वत २०३२० फीट, (१२) नीलकण्ठ २२१४० फीट।

इस कुण्ड में गिरती हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि भगवान् शंकर का वरण करने के लिए पार्वतीजी ने यहां घोर तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरुप शंकर उसकी तपस्या से और दृढ़ निश्चय से प्रभावित होकर स्वयं यहां आए थे। गंगोत्री का मंदिर शीताधिक्य के कारण छः मास तक बन्द रहता है। मूर्ति को पण्डे मुखवा में ले जाते हैं, और वहां इसकी स्थापना कर देते हैं। यहीं पर गंगाजी की पूजा छः मास तक होती रहती है। यह स्थान बड़ा एकान्त है। वातावरण बड़ा शान्त और आध्यात्मिक है। तपश्चर्या के लिए बहुत उत्तम स्थान है।

केदारनाथ की यात्रा—भटवाड़ी के पास मल्ला नामक एक स्थान है। यहां से केदारनाथ को रास्ता जाता है अतः व्यासदेवजी ने भटवाड़ी जाने का निश्चय किया। गंगोत्री से प्रस्थान करके ये मुखवा पहुंचे। मुखवा पण्डों का गांव है। यहां मार्कंडेय का मंदिर है। यहां पर मार्कंडेय ऋषि ने तपस्या की थी। मातंग ऋषि ने भी यहीं आकर साधना की थी। इसलिए इसका नाम मुखवा पड़ा है। इसे मुखीमठ भी कहते हैं। यहां के ब्राह्मण सन्तों-महात्माओं की खूब सेवा तथा आदर करते हैं इसलिए कोई न कोई सन्त यहां निवास किया ही करते हैं। व्यासदेवजी ने मार्कंडेय के मंदिर में एक रात तथा एक दिन व्यतीत किया। दूसरे दिन हर्सिल, झाला, सुक्खी, लुहारीनाग, गंगनाणी, भटवाड़ी होते हुए मल्ला पहुंचे। यहां से बूढ़ा केदार लगभग ३० मील है। मार्ग में छोटी-छोटी कई चट्टियां आती हैं। व्यासदेवजी ने ३० मील के मार्ग को दो दिन में तय किया। इस मार्ग में देवदार के बहुत बड़े-बड़े पेड़ हैं। यहां एक बड़ा भारी वन है। इसमें आबादी बहुत कम है। व्यासदेवजी ने बूढे केदार पहुंचकर एक दिन विश्राम किया। यहां पर धर्मनदी का गंगाजी के साथ संगम होता है। बूढे केदार का मंदिर बड़ा सुन्दर है। एक धर्मशाला बनी हुई है। अत्यन्त मनोरम स्थान है। यहां से एक मार्ग घुनू से त्रियुगीनारायण होकर केदारनाथ जाता है। इस मार्ग से चढ़ाई बहुत है। दूसरा मार्ग गुप्तकाशी की ओर से होकर जाता है। यह मार्ग कुछ लम्बा है, किन्तु चढ़ाई नहीं है। जंगल का मार्ग है। आबादी बहुत कम है। किसी-किसी स्थान पर तो बिल्कुल ही आबादी नहीं है। इसलिए इधर से यात्री बहुत कम जाते हैं। व्यासदेवजी ने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। इस मार्ग से जाने वाला साथी व्यासदेवजी को कोई नहीं मिला। वर्षा की ऋतु थी इसलिए यात्रियों का आना-जाना कम हो गया था। लगभग ७-८ मील चल पाए थे कि एक स्थान पर दो पगडण्डियां दिखाई दीं। अब उनके सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई। वे यह निश्चय नहीं कर पाए कि कौन से मार्ग से जाना चाहिए। व्यासदेवजी ने जिस रास्ते से जाना निश्चय किया उसमें जंगली जानवर बहुत रहते थे। मार्ग बड़े बीहड़ जंगल में से गुजरता था। कोई यात्री उस मार्ग में व्यासदेवजी को नहीं मिला। कुछ दूरी पर व्यासदेवजी को एक छोटी सी नदी दिखाई दी। इसके ऊंचे किनारे की एक खोह में पत्ते आदि बिछाकर अपना आसन लगा लिया, और यहीं पर रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। थोड़ी खाद्य सामग्री व्यासदेवजी के पास थी। इसे ही कई दिनों से खा रहे थे। आज भी इसमें से थोड़ा खाया। जिस वस्त्र में यह भोजन सामग्री बंधी हुई थी उसे ही पत्तों पर बिछा कर सो गए। इस खोह में आने के लिए दो मार्ग थे। एक मार्ग बड़ा था जिससे आदमी आसानी से भीतर बैठ कर प्रवेश कर सकता था, किन्तु दूसरा केवल एक फुट चौड़ा

था। व्यासदेवजी ने दोनों ही द्वार भली प्रकार मे बन्द कर दिए थे। चारों ओर जब अंधेरा छा गया तब वह सो गये।

चोर-भालू से रक्षा—अर्धरात्रि में छोटे मार्ग से किसी ने उनके नीचे बिछे हुए वस्त्र को खींचना प्रारंभ किया। व्यासदेव अंधेरे में ही कुछ आवाज़ करके उसे भगाने का प्रयत्न करते रहे। जब उसने बड़े-बड़े बालों का उनके पांवों पर स्पर्श किया तब मालूम हुआ वह कोई हिंस्र-जीव है, अतः उसे भगाने के लिए कई दियासलाइयां जलाईं और पुनः आत्मरक्षार्थ बहुत-सी दियासलाइयां जला कर उसके ऊपर फेंक दीं। दियासलाइयों के प्रकाश में उन्हें पता लगा कि यह भालू था। अग्नि एकदम भालू के सारे बालों में फैल गई। वह जितना ही इधर-उधर भागकर उसे बुझाने का यत्न करता था उतना ही वायुवेग से अग्नि उसके शरीर पर फैलती गई। उसका सारा शरीर झुलस गया और अब उसने एक ऊंची-सी पहाड़ी पर से नीचे नदी में छलांग लगा दी। व्यासदेवजी अपनी खोह में चले गए किन्तु नींद नहीं आई। सारी रात बैठकर ही व्यतीत की। उन्हें भालू के झुलस जाने पर पश्चात्ताप हो रहा था लेकिन उनका कार्य कुछ अनुचित न था। जो कुछ भी किया वह आत्मरक्षार्थ था।

दिशा-भ्रम—प्रातःकाल उन्हें कुछ समझ नहीं आया कि किधर जाना चाहिए। मार्ग भूल गए थे। दिशा की भी भ्रांति-सी होगई थी। केदारनाथ किस दिशा में है इसका भी ज्ञान नहीं रहा था, वरना वहीं वापिस लौट जाते। पास ही एक पहाड़ी थी, उस पर चढ़कर आबादी का पता लगाया, किन्तु कहीं मनुष्य का पता ही न चला। एक पगडण्डी-सी पास से ही जा रही थी। उसी पर चल दिए। मध्यान्ह तक उस पहाड़ी के शिखर पर पहुंच गए। इसके आगे एक और पहाड़ी दृष्टिगोचर हुई, किन्तु आबादी कहीं नाम-मात्र को भी दिखाई न दी। बहुत थक गए थे अतः धूप में ही सो गए। बड़ी गहरी नींद आई। बहुत देर तक सोते रहे क्योंकि गतरात्रि को भालू के आने के कारण सो नहीं सके थे। सायंकाल हो चला था अतः आस-पास से लकड़ियां एकत्रित करके धूनी रमा कर बैठ गए। रात को अत्यधिक वर्षा हुई थी और ओले भी बहुत पड़े थे। तपस्वी युवक ने धूनी के सहारे जैसे-तैसे रात काटी। प्रातःकाल उठकर सामने एक पहाड़ी दिखाई दी, इसी पर चढ़ना प्रारम्भ कर दिया और दोपहर तक इसके शिखर पर पहुंच गए। यहां से चारों ओर दृष्टिपात करने पर सुदूर पहाड़ी के नीचे धूंआ-सा दिखाई दिया। यह धूंआ दूर तो बहुत था किन्तु भूले-भटके युवक के लिए यह एक आशा की किरण थी, इन्होंने उसी दिशा की ओर चलना प्रारंभ किया। मार्ग में एक हिरणों और बारहसींगों का बड़ा झुण्ड दिखाई दिया। इसे भगाने का व्यासदेवजी ने बड़ा प्रयत्न किया किन्तु वे वहीं डटे रहे, अतः उन्होंने अब दूसरे मार्ग से जाना प्रारंभ किया। इस ओर कोई पगडण्डी न थी। बड़े घने वृक्षों के बीच में से जैसे-तैसे निकले। कुछ दूर जाने के बाद एक बहुत बड़ी चट्टान दिखाई दी। इसी पर चढ़कर विश्राम करने का विचार किया किन्तु इसके नीचे से बड़ी दुर्गन्ध आरही थी। नीचे झुककर देखने से मालूम हुआ कि यहां पर बहुत हड्डियां, मांस तथा खालें पड़ी हुई हैं। व्यासदेवजी ने अनुमान लगाया कि यहां परकोई हिंस्र-जीव अवश्य होना चाहिए जिसने इन जानवरों को मारा है। इधर-उधर देखा और खूब शोर किया, पत्थर भी उठा-उठा कर नीचे फेंके। पत्थरों की चोट खाकर एक बाघ सामने आया और उसने जोर-जोर

से गर्जना प्रारंभ किया। उस वन के सब जीव-जन्तु भयभीत होगए। व्यासदेवजी उस चट्टान के ऊपर खड़े होकर बाघ से लड़ते रहे। वह थोड़ी देर बाद नीचे उतरकर कहीं चला गया। व्यासदेवजी सूर्यास्त से किंचित् पूर्व आबादी में पहुंच गए। इस आबादी का नाम घुनूचट्टी था। यह केदारनाथ के मार्ग पर ही थी। मार्ग का ठीक-ठीक पता न चल सकने के कारण व्यासदेवजी तीन दिन तक भूखे, प्यासे तथा हिंसक जानवरों से लड़ते हुए भटकते रहे। इस प्रकार लगभग ४० मील चले होंगे। घुनू से त्रियुगीनारायण केवल १४ मील ही था। यदि सीधा मार्ग मिल जाता तो यह एक दिन में पहुंच सकते थे। किन्तु मार्ग भूल जाने के कारण इस कठिनाई का सामना करना पड़ा। किन्तु इससे इन्हें एक बड़ा लाभ हुआ। जंगली हिंस्र-जानवरों का मुकाबिला करते-करते अब ये इनसे संघर्ष करने में सिद्धहस्त और निपुण हो गए थे। अब वे इन जानवरों को कुत्ते बिल्ली के समान समझने लग गए थे। वन में बिल्कुल निर्भीक भाव से विचरते थे। घुनूचट्टी पर व्यासदेवजी ने पूरा एक दिन विश्राम किया क्योंकि वनों में इधर-उधर भटकने के कारण अत्यधिक थक गए थे।

त्रिगुणीनारायण-गमन—यहां से त्रिगुणीनारायण १४ मील था किन्तु चढ़ाई बड़ी विकट थी। व्यासदेवजी एक ही दिन में इस चढ़ाई को पार करके त्रिगुणीनारायण पहुंच गए और वहां धर्मशाला में विश्राम किया। यहां पर त्रिगुणीनारायण का विशाल मंदिर है। मूर्ति की नाभि में से गंगा और सरस्वती की दो धाराएं निकल रही हैं। यहां पर कई जल के कुण्ड भी हैं। एक छोटा-सा बाजार है। एक यज्ञशाला है जिसमें सदा अग्नि प्रज्वलित रहती है। ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि यहां पर शंकर और पार्वती का विवाह हुआ था। ब्रह्मकुण्ड तथा विष्णुतीर्थ भी यहीं पर हैं। पास ही हरिदा नदी बहती है। इस स्थान से केदारनाथ १२ मील था। अब व्यासदेवजी ने केदारनाथ के लिए प्रस्थान किया। दो घण्टे में गौरीकुण्ड पहुंच गए। यह मन्दाकिनी नदी के तट पर है। यहां पर दो जल के गर्म कुण्ड हैं। सायंकाल व्यासदेवजी केदारनाथ पहुंचे। यहां पर पत्थर का बना हुआ एक विशाल मंदिर है। इससे दो फर्लांग पर भैरों का मंदिर है। इससे कुछ ही दूरी पर एक स्रोत है जिसमें से मन्दाकिनी निकली है। केदारनाथ के मंदिर से पांच या छः मील की दूरी पर एक ब्रह्मगुफा है जिसमें ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। केदारनाथ से एक मार्ग भृगु पथ को जाता है। यह सदा हिमाच्छादित रहता है। ऐसा कहा जाता है कि शंकराचार्यजी महाराज ने इसी पथ पर गमन किया था और फिर वहां से नहीं लौटे थे। यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि लोग यहां जाकर प्राण त्यागने में बड़ा पुण्य समझते थे। व्यासदेवजी ने केदारनाथ में एक सप्ताह ठहर कर सारे दर्शनीय स्थान देखे। केदारनाथ ११७०० फीट की ऊंचाई पर है। यहां शीत बहुत होता है। वायु बहुत ठण्डी चलती है। आस-पास के सारे पर्वत बर्फ से ढके रहते हैं, इसलिए यात्री यहां बहुत कम ठहरते हैं।

बद्रीनारायण की यात्रा—अब ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने बद्रीनारायण के लिए प्रस्थान किया। प्रातः केदारनाथ से चलकर दोपहर को नारायण कोटी पहुंच गए। यहां से गुप्तकाशी केवल दो मील है अतः प्रथम उसे देखने गए। यहां पर एक कुण्ड है। गंगा और यमुना इस कुण्ड के नीचे से गुप्तरूपेण इसमें गिरती हैं। यहां शिवजी का एक मंदिर है और कुछ दुकानें भी हैं। यहां पर व्यासदेवजी ने एक दुकान पर दूध

पीया था। उनके पास ही एक युवक खड़ा था जिसने ब्रह्मचारीजी को दूध के दाम चुका कर शेष रुपये रखते हुए ध्यानपूर्वक देखा था। इसका नाम कर्मसिंह था। यह व्यासदेवजी के पास आया और कहा कि वह भी बद्रीनारायण जा रहा है। एक पगडण्डी से जाने में मार्ग छोटा पड़ता है। आप भी इसी मार्ग से चलें। व्यासदेवजी पगडण्डी से चलने को तैयार हो गए। कर्मसिंह के मन में क्या पाप छिपा था इसे वे समझ नहीं सके। कर्मसिंह और उसका साथी फूलसिंह व्यासदेवजी को मन्दाकिनी गंगा के किनारे एक घने जंगल में ले गए और उनका रुपया छीनने लगे। व्यासदेवजी इनसे भयभीत होने वाले व्यक्ति न थे। उनमें ब्रह्मचर्य का ओज, बल और शक्ति थी। जब जंगली हिंस्र जानवरों से भी वे कभी भयभीत नहीं हुए, जहां कोई जानवर मिला वहीं उसे पछाड़ देते थे, तो भला इन दुबले-पतले शक्तिहीन पहाड़ी व्यक्तियों से भयभीत होने का अवसर ही क्या था! कर्मसिंह ने जब यह देखा कि व्यासदेवजी रुपया चुपचाप नहीं देगें तब उसने छीना-झपटी प्रारंभ करने की कोशिश की और अपनी सोटी व्यासदेवजी के सिर पर मारी। किन्तु व्यासदेवजी ने स्कूल में लाठी गतका चलाना सीखा था और ब्रह्मचर्य के बल से वह सम्पन्न थे, अतः तुरन्त उन्होंने वार को रोककर अपनी सोटी कर्मसिंह की कनपटी पर ऐसे जोर से मारी कि वह बेहोश होकर गिर गया। यद्यपि वह पापी था और चोर था किन्तु व्यासदेवजी पाप से घृणा करते थे पापी से नहीं, अतः कर्मसिंह को बेहोश देखकर उन्होंने उसके सिर पर ठण्डे जल के छींटे दिए। बड़े प्रयत्न से उसे होश दिलाया। यह सब देखकर फूलसिंह तो भाग गया। व्यासदेवजी कर्मसिंह को बांधकर ओखी मठ ले गए और वहां उसे पुलिस के सुपुर्द कर दिया। पुलिस वालों ने उनका बड़ा सम्मान किया।

ओखी मठ में निवास—व्यासदेवजी यहां पर तीन दिन ठहरे। ओखी मठ में श्रीकेदारनाथजी की गद्दी है। गद्दी पर पंचमुखी स्वर्ण मुकुट रखा रहता है। यहां का मंदिर बड़ा विशाल है। इसके पास ही राजा मान्धाता की काले पत्थर की मूर्ति है ओंकारेश्वर के मंदिर में अनेक मूर्तियां हैं। यह स्थान बड़ा सुन्दर, मनोहर और दिव्य है। अब व्यासदेवजी ने यहां से प्रस्थान किया। मार्ग में कई चट्टियों के पास से होते हुए वाणियाकुण्ड पहुंचे। यहां से तुंगनाथ केवल दो मील था। यहां पर एक दिन ठहरकर गोपेश्वर भगवान् के दर्शन करने गोपेश्वर गए। यहां से चमोली गए। इसे लालसांगा भी कहते हैं। अलखनन्दा गंगा के किनारे पर है और बड़ा सुन्दर स्थान है। यहां से बद्री-नारायण ४८ मील रह जाता है। यहां पर पुलिस की चौकी है और डिप्टी कलक्टर भी यहां रहता है। डाकखाना और अस्पताल भी यहां पर हैं। यहां पर एक दिन ठहरकर पीपल कोटी पहुंचे और फिर गरुड़ गंगा और पाताल गंगा की बड़ी कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद ज्योतिर्मठ पहुंचे। मार्ग में सैंकड़ों यात्रियों से समागम हुआ किन्तु व्यासदेवजी जन-संपर्क से बचकर दूर भागते थे। उनको यात्रियों से कोई प्रयोजन नहीं था। वे विचार और चिंतन करते हुए अकेले ही चलते थे। ज्योतिर्मठ में नारायण का मंदिर है। शीतकाल में बद्रीनारायण की प्रतिमा को यहां पधराया जाता है और यहीं उसकी पूजा होती है। इसमें अनेक मंदिर हैं। शंकराचार्यजी महाराज ने जब भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी तब उत्तर में ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी। बद्रीनारायण यहां से केवल १९ मील रह जाता है। यहां से प्रातः चलकर विष्णुप्रयाग पहुंचे। यहां

पर अलखनन्दा गंगा और धौली गंगा का संगम है। इस संगम पर स्नान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है। केदारनाथ और बद्रीनाथ की यात्रा के मार्ग में पांच प्रयाग आते हैं :—देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, नन्दप्रयाग तथा विष्णुप्रयाग। यहां से चलकर पाण्डुकेश्वर पहुंचे। इस स्थान पर योगबद्री और वासुदेव भगवान् के मंदिर हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि पाण्डुराजा ने यहां पर अपनी दोनों रानियों कुन्ती और माद्री के साथ निवास किया था। इसी कारण से यह स्थान पाण्डुकेश्वर कहलाता है। हनुमान चट्टी से बद्रीनारायण तक लगातार कठिन चढ़ाई है। बद्रीनाथ से एक मील इधर कंचन गंगा है। इसके आगे अलखनन्दा गंगा का पुल पार करके ऋषिगंगा आती है। इसके पश्चात् बद्रीनारायण का बाजार प्रारंभ हो जाता है। बाजार केअन्तिम भाग में बद्रीनारायणजी का मंदिर है। यहां पर धर्मशाला में व्यासदेवजी ठहरे। बद्रीपुरी चौथा धाम है और यह अलखनन्दा गंगा के किनारे मन्दराचल पर्वत पर बसा हुआ है। यहां के मकान प्रायः पक्के दो मंजले बने हुए हैं। इसमें लगभग ढाई-तीन-सौ मकान और दूकानें हैं। जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं प्रायः मिल जाती हैं। बद्रीनाथजी का मंदिर बड़ा विशाल है। यह लगभग ४५ फीट ऊंचा है। ध्यानावस्थित बद्रीनारायण की मूर्ति काले रंग की है। इसके मस्तक पर बड़ा चमकदार हीरा लगा हुआ है। श्री शंकराचार्यजी महाराज ने इस मूर्ति को नारद कुण्ड से निकलवाकर इस मंदिर में स्थापित किया था। मंदिर के सामने ही अलखनन्दा गंगा बहती है। मंदिर और गंगा के बीच में गर्म जल के कुण्ड हैं। मंदिर के उत्तर की ओर ब्रह्मकपाल नामक शिला है। यहां आकर यात्री पिंडदान करते हैं। इससे थोड़ी-सी दूर माता का मंदिर है। यहां पर प्रतिवर्ष मेला लगता है। इसके थोड़ा आगे माणागांव है। यहीं पर वह व्यासगुफा है जिसमें बैठकर श्री व्यास भगवान् ने महाभारत और १८ पुराणों की रचना की थी। माणागांव से ही कैलाश तथा मानसरोवर को मार्ग जाता है। ऋषिगंगा के किनारे-किनारे जाने से आगे बड़े-बड़े विशाल पर्वत बर्फ से ढके रहते हैं, इसलिए आगे जाने का मार्ग बन्द हो जाता है। यहां पर ब्रह्मकमल बहुत होते हैं जिनसे बड़ी मधुर सुगंध आया करती है। बद्रीनाथ में ४ मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा मैदान है। श्रावण तथा भाद्रपद मासों में विभिन्न प्रकार के पुष्प खिलते हैं किन्तु इस मैदान में वृक्ष नहीं हैं। बद्रीनाथ की ऊंचाई दस हजार तीन सौ फीट है। गंगोत्री की अपेक्षा यहां वर्षा अधिक होती है। यहां पर ब्रह्मचारी व्यासदेवजी दो मास तक रहे थे। बद्रीनाथ के आस-पास और भी कई तीर्थ-स्थान हैं। इनमें शतपथ और स्वर्गारोहण मुख्य हैं। व्यासदेवजी ने इन तीर्थों की यात्रा करने का भी संकल्प किया। एक अन्य महात्मा भी इनके साथ चलने के लिए तैयार होगए किन्तु वह इन तीर्थों का मार्ग नहीं जानते थे अतः किसी जानकार की खोज में इधर-उधर फिरते रहे। अन्त में माणागांव का ही एक व्यक्ति व्यासदेवजी के साथ जाने के लिए तैयार हो गया।

शतपथ और स्वर्गारोहण की यात्रा

वसुधारा-गमन—ब्रह्मचारी व्यासदेव, शिवानन्द गिरी तथा माणागांव के धर्मसिंह ने चार-पांच दिन का भोजन साथ लेकर प्रस्थान किया। माणागांव से मार्ग जाता था। इस गांव से थोड़ी दूर वसुधारा है जो एक बहुत ऊंचे पहाड़ से निकलती है। इसके पास ही सरस्वती गंगा का अलखनंदा गंगा से संगम होता है। इसके पास

ही अलकापुरी का पहाड़ है। इसका रंग धूसर है। यहां से थोड़ी-सी दूरी पर हिमाच्छादित हिमालय पर्वत दिखाई देने लगता है। बद्रीनाथ से शतपथ केवल १८-१६ मील ही था। बद्रीनाथ से प्रस्थान करके सर्वप्रथम माता मूर्ति के मंदिर के दर्शन किए और उसके बाद वसुधारा पहुंचे। कुछ मील तक यात्रा करने के पश्चात् एक गुफा में विश्राम किया क्योंकि दूसरे दिन का सारा मार्ग बर्फ से ढका हुआ था। इसलिए इस गुफा में एक दिन तक विश्राम करना उचित समझा। आगामी दिवस एक अत्यन्त वेगवती नदी को बड़ी कठिनाई से पार किया। व्यासदेवजी तथा इनके दोनों साथियों ने परस्पर एक दूसरे के हाथ पकड़कर इस नदी में प्रवेश किया। यहां से आगे का मार्ग चारों ओर हिमाच्छादित था। अलखनन्दा सारी बर्फ से ढक गई थी और बर्फ में ही लुप्त-सी हो गई थी। उसका कहीं कोई चिह्न भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। व्यासदेवजी के साथी कुछ आगे निकल गए और ये पीछे रह गए। व्यासदेवजी को बर्फीले मार्ग पर चलना था। सर्वत्र ही बर्फ बिछी हुई थी।

बर्फ की दरार में फंसना—बर्फ में एक स्थान पर एक दरार फट गई थी, किन्तु इसके ऊपर पतली-सी एक तह बर्फ की छा गई थी। व्यासदेवजी को इस दरार का पता न चल सका और वे बर्फ के ऊपर से चलते-चलते इस दरार में फंस गए और कटिभाग तक बर्फ के नीचे चले गए। बड़े घबराए। ज्यों-ज्यों बर्फ से बाहिर निकलने का प्रयत्न करते थे त्यों-त्यों अधिकाधिक नीचे डूबते जाते थे। बर्फ के कारण उनका शरीर निश्चेष्ट-सा होता जा रहा था। उनके पैर बर्फ में बिल्कुल दब गए थे। ऊपर निकलने की शक्ति उनमें न रही थी। बर्फ के अन्दर से ही उन्होंने अपने साथियों को जोर-जोर से आवाजें लगाईं, पर वे कुछ दूर निकल गए थे अतः वे सुन न सके। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने देखा कि व्यासदेवजी उनके पीछे नहीं आ रहे हैं, तो वे घबराए और पीछे लौटे। जब वह बर्फ की दरार के पास पहुंचे तब उन्हें व्यासदेवजी की आवाज़ सुनाई दी। धर्मसिंह भाग कर आया पर ज्योंही वह व्यासदेवजी के समीप पहुंचा त्योंही वह भी बर्फ में धंसने लगा। तब वह ठहर गया। उसने अपनी धोती उतार कर ब्रह्मचारीजी के पास दरार के नीचे फेंकी किन्तु वह नीचे तक नहीं पहुंची। फिर उस धोती के साथ एक बड़ी रस्सी बांध कर नीचे लटकाई और जब व्यासदेवजी ने इसे पकड़ लिया तब धर्मसिंह और शिवानन्द ने खींच कर उन्हें ६-१० फीट गहरी बर्फ से बाहिर निकाला। इनके शरीर में उष्णता का अभाव-सा होगया था, और बिल्कुल निश्चेष्ट हो गए थे। दोनों साथियों ने मिलकर इनके शरीर को दबाया और अपने हाथों से रगड़ा, तब कहीं इसमें गर्मी आई। यदि ये दोनों व्यासदेवजी को बाहिर न निकालते तो ये भी पाण्डवों के समान ही बर्फ में गल जाते। जैसे-तैसे ये तीनों शतपथ के पास जाकर एक गुफा में ठहरे। सर्वत्र बर्फ ही बर्फ थी अतः वहां लकड़ी नाममात्र को भी न थी। इसलिए अग्नि जलाकर शरीर को उष्ण करने का कोई साधन वहां न था। जिन स्थानों पर बर्फ नहीं थी उनको तथा उनके आसपास के सरोवरों को इधर-उधर भ्रमण करके देखा। पाण्डवों में से जो-जो इस बर्फ में गल गया था उस-उसके नाम से यहां पर ताल बने हुए हैं। किसी ताल का नाम भीमताल तथा किसी का अर्जुनताल तथा किसी का द्रौपदीताल आदि था। स्वर्गारोहण विष्णुताल से लगभग ३ मील था, और यहीं से ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनी हुईं थी।

किन्तु बर्फ के कारण स्वर्गारोहण पर चढ़ना अत्यन्त कठिन था। मार्ग भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। शतपथ के मार्ग हिमाच्छादित थे। तीन दिन तक विष्णुताल में रहे। यहां के सौन्दर्यपूर्ण दृश्य का अवलोकन करके बड़ा आनन्द-लाभ किया। शतपथ के दाईं ओर स्वर्गारोहण के पार गोमुख है, और बाईं ओर केदारनाथ। इन तीनों अर्थात् स्वार्गारोहण, केदारनाथ और गोमुख के बीच हिमालय स्थित है। महाराजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण की सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर हिमालय पर जाकर या तो अपने शरीर को बर्फ में गला दिया होगा या स्वर्गलोक को पधार गए होंगे। शेष पाण्डव तो शतपथ की हिम में ही गल गए थे। व्यासदेवजी तथा उनके साथी प्रातःकाल ही यहां से लौट आए। मार्ग देखा हुआ ही था। इसके अतिरिक्त अब उतराई भी थी, अतः कोई कष्ट प्रतीत नहीं हुआ और सायंकाल ४ बजे के लगभग बद्रीनाथ पहुंच गए। यहां पर गर्म कुण्ड में स्नान करके सारी थकावट दूर हो गई। व्यासदेवजी योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहते थे, इसीलिए किसी अनुभव प्राप्त बड़े योगी की खोज में इस प्रकार की महान् कठिनाइयां उठाईं, किन्तु उन्हें किसी भी योगी के दर्शन न हो सके।

अलखनन्दा के किनारे गुफा में अभ्यास—व्यासदेवजी ने अलखनन्दा के पुल को पार करके एक गुफा को घास-फूस बिछाकर निवास के योग्य बना लिया और इसमें योगाभ्यास करने लगे। यह स्थान अत्यन्त एकान्त था। नित्य कई-कई घण्टों तक यहां पर व्यासदेवजी साधना करते रहे। ये क्षेत्र से भोजन लेने नहीं जाते थे। स्वय ही गुफा के बाहिर भोजन बनाया करते थे। एक दिन कलकत्ते के मारवाड़ी सेठ वृजमोहन व्यासदेवजी से मिलने आए। ब्रह्मचारीजी प्रातः ६ बजे से १२ बजे तक ६ घण्टे एक ही आसन पर बैठ कर साधना किया करते थे। सेठ वृजमोहन जब आए तब अभी केवल ८ ही बजे थे। व्यासदेवजी समाधिस्थ थे। सेठजी उनकी प्रतीक्षा करते रहे। जब व्यास-देवजी समाधि से उठे तब सेठ ने उनके चरण पकड़ लिए और प्रश्न किया कि आपके सांसारिक सुख और समृद्धि, भोग और विलास के परित्याग का क्या कारण है और किस देव तथा शक्ति की उपासना ने आपको इस महान् त्याग के लिए प्रेरित किया है। व्यासदेवजी ने उत्तर दिया कि सर्व सृष्टि के स्रष्टा, धर्ता, संहारकर्त्ता, पालक-पोषक और रक्षक भगवान् ही मेरे परमदेव हैं। मैं उन्हीं की उपासना और भक्ति करता हूं। सर्वदुःखहर्ता वे ही भगवान् हैं। इन्हीं की प्राप्ति के लिए मैं विरक्त होकर साधना कर रहा हूं। इस समय मैं किसी विद्वान् आत्मवित् योगी की खोज में इस हिमालय में घूमता फिर रहा हूं जिससे अन्तर्यामी भगवान् से मिलने का सीधा और छोटा मार्ग उपलब्ध हो सके। व्यासदेवजी के उत्तरों से सेठजी बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने ब्रह्म-चारीजी को भोजन के लिए आमंत्रित किया किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि ये नगर में नहीं जाते थे। स्वयं ही भोजन बनाकर खा लिया करते थे। दूसरे दिन सेठजी अपनी पत्नी और बच्चों को साथ लेकर साढ़े ग्यारह बजे भोजन लेकर व्यासजी की गुफा में उपस्थित होगए। व्यासजी ने और सेठजी के परिवार ने इकट्ठे बैठकर भोजन किया। व्यासदेवजी ने सेठ तथा उसके परिवार को बड़ा सारगर्भित उपदेश दिया। सेठजी ने व्यासदेवजी को ५०० रुपये भेंट करना चाहा। बहुत अनुनय और विनय की। किन्तु उन्होंने यह धनराशि लेना स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे बड़े विरक्त थे और सच्चे साधु थे।

पुनः सप्तसरोवर आगमन

व्यासदेवजी बद्रीनाथ के पट बन्द होने तक तो उस गुफा में साधना करते रहे, किन्तु पट बन्द होने पर शीत की मात्रा अत्यधिक हो जाती है अतः वे वहां से नीचे उतर आए। किसी योगी की उपलब्धि न हो सकने के कारण वे बड़े निराश थे। मार्ग में श्रीनगर चट्टी पर दो दिन ठहरकर वहां से तीसरे दिन ऋषिकेश पहुंच गए। यहां पर एक साधु की कुटिया खाली थी, इसीमें कुछ दिन निवास करने के पश्चात् सप्तसरोवर पहुंच गए। यहां पर साधना करने के लिए एक कुटिया बना ली। यहां पर तीन-चार महात्मा और भी रहते थे। यहां से लगभग आधे मील की दूरी पर सन्त रामदास एक पैर खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। व्यासदेवजी इनसे सुपरिचित थे। पहिले जब ये सप्तसरोवर में रहकर तपस्या कर रहे थे तब भी ये सन्त इसी प्रकार से एक पैर पर खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। व्यासदेवजी प्रायः इनके सत्संग में जाया करते थे। रामदासजी की एक शिष्या थी। इसका नाम रामप्यारी था। यह नित्यप्रति अपने नौकर के साथ इनके लिए भोजन लाया करती थी। नित्य कई-कई घण्टे तक यह देवी इनके पास बैठी रहती थी। इनका पारस्परिक संसर्ग बहुत बढ़ गया। व्यासदेवजी ने इसके अनौचित्य के बारे में सन्त रामदासजी को बहुत समझाया। मर्यादाहीनता के दोषों को दिखाया। सन्तों के उच्च आदर्श का उन्हें बोध करवाया। उनकी अपनी कठोर तपस्या की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। उनकी भूल का अनेक ऐतिहासिक तथा पौराणिक उदाहरण देकर दिग्दर्शन कराया। पर उनके कान पर जूं न रेंगी। उन पर किंचिन्मात्र भी इन उपदेशों का असर नहीं हुआ। परिणामस्वरूप कुछ दिनों बाद यह सुनने में आया कि सन्त रामदास ने रामप्यारी से विवाह कर लिया है और वे दोनों पेशावर चले गए हैं। रामप्यारी पेशावर की एक धनाढ्य विधवा महिला थी। हरिद्वार में भक्तिपूर्वक अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिए आई थी। व्यासदेवजी को जब रामदास के पतन का पता चला तो वे उससे मिलने गए। उनकी दशा देखकर उन्हें बहुत धमकाया और फटकारा। उनकी बड़ी भर्त्सना की : "क्या आपकी १६ साल की तपस्या का यह परिणाम है ? इतनी कठोर तपस्या के पश्चात् भी आप हाड़-मांस के पुतले के प्रलोभन को रोक न सके। हीरे के भ्रम से कांचमणि पर ही मुग्ध होगए। आपके इस पतन ने आपके सब सेवकों और भक्तों का सिर नीचा कर दिया है। आपने हमें कहीं मुंह दिखाने के योग्य भी नहीं छोड़ा। आप दोनों को इस पवित्र भूमि को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए।" सन्त रामदास लज्जित होकर व्यासदेवजी की भर्त्सना को चुपचाप नीचा सिर करके सुनते रहे। व्यासदेवजी दुःखी होकर वहां से लौट आए।

पुनः उत्तरकाशी गमन—सन्त रामदासजी के पतन का व्यासदेवजी के हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा था और अब उनका मन हरिद्वार में नहीं लगता था। इसलिए वे यहां से देहरादून, मसूरी, धमोटी, कानाताल और धरासू होते हुए उत्तरकाशी पहुंच गए। यहां पर तेखला में जाकर एक गुफा में निवास करने लगे। व्यासदेवजी गायत्री-जाप के महत्व को खूब समझते थे। हमारी सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार वेद हैं। गायत्री चारों वेदों का सार है। यह वेद माता है। योगीराज भगवान्

कृष्ण ने इसी मंत्र के लिए कहा है "गायत्री छन्दसामहम्"। इसलिए व्यासदेवजी अपनी गुफा में अब दस हजार गायत्री-जाप प्रतिदिन करते थे। वे चार मास तक बराबर जाप करते रहे। केवल खाद्य-सामग्री लेने के लिए उत्तरकाशी जाते थे। आटे में नमक डालकर केवल दो मोटी रोटियां बनाकर एक समय दोपहर को खा लेते थे। प्रायः मौन ही रहते थे। जब कभी आटा, नमक और घी लेने बाजार जाते थे तभी थोड़ा दुकानदार से बोलते थे। बड़ी उपराम-वृत्ति से रहते थे। सन्त रामदासजी के पतन से उनके चित्त को बड़ी ठेस पहुंची थी और इसीलिए बड़े उदासीन से रहा करते थे। इधर बड़ी खोज के पश्चात् भी कोई योग्य योगी न मिल सका था इसलिए भी बड़े निराश हो गए थे।

पुनः हरिद्वार गमन—वेदव्यासजी दीवाली तक उत्तरकाशी में रहे। उसके बाद टीहरी के रास्ते से ऋषिकेश आगए और शीतकाल में वीरभद्र में रहने का विचार किया। यहां से व्यासदेवजी स्वामी स्वरूपानन्द के दर्शन करने कनखल गए। किन्तु उनके दर्शन न हो सके क्योंकि वे कहीं अन्यत्र गए हुए थे। जब वे हर-की-पौड़ी पर स्नान कर रहे थे तब वहां पर उन्हें स्वामी हितानन्दजी के दर्शन हुए। व्यासदेवजी ने इनके चरण स्पर्श किए। स्वामीजी ने उनकी बढ़ी हुई जटाएं देखकर आश्चर्य किया और पूछा, "किसी योगी का समागम लाभ हुआ या नहीं ?" व्यासदेवजी ने बड़ा निराशापूर्ण उत्तर दिया। स्वामीजी ने बहुत स्नेह और प्यार से व्यासदेवजी का आलिंगन किया और मोहन आश्रम में चलने के लिए आदेश दिया और कहा कि वहां पर वार्तालाप करके तुम्हें ठीक मार्ग बताऊंगा। व्यासदेवजी स्वामी हितानन्द के साथ मोहन आश्रम चले गए। स्वामीजी उन्हें भोजन करवाकर गंगाजी के किनारे ले गए और कहा, "महर्षि दयानन्द सरस्वती के मैंने ५-६ उपदेश सुने थे। उनका मेरे जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और मैंने संन्यास ले लिया। मेरे अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। मैंने शास्त्राध्ययन नहीं किया इसका मुझे बड़ा पश्चात्ताप है। शास्त्र ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान ही रहता है। जिसके पास ज्ञान-चक्षु नहीं है वह अंधे के समान है। शास्त्राध्ययन के बिना अध्यात्म-विज्ञान समझने की योग्यता भी तो प्राप्त नहीं होती। इस दीपक के बिना अन्धकार के गर्त में गिरने की प्रतिपल सम्भावना रहती है। जो महापुरुष विद्वान् है वही अपना तथा मानव जाति का उद्धार कर सकता है। तुम युवक हो। कई वर्ष तुम्हें जंगलों और वनों में भटकते हो गए हैं। अनेक प्रकार के कष्ट तुमने सहे हैं और कठिन तपस्या की है। तुम अब तक न तो पूर्ण योगी बन सके और न शास्त्राध्ययन ही किया। यह बात उचित नहीं है। यदि तुम विद्वत्ता-लाभ कर लोगे तो तुम्हें आत्म-विज्ञान प्राप्त करने में विलम्ब नहीं लगेगा। योगियों की तो हमारे देश में कमी नहीं किन्तु उनकी परख बड़ी कठिन है। उनके विज्ञान को समझने के लिए किसी भाषा विशेष पर या संस्कृत पर तो अधिकार होना चाहिए। तुम्हें न अभी अच्छी हिन्दी आती है, न संस्कृत और न उर्दू, न अंग्रेजी। इसलिए मेरा आदेश है कि तुम संस्कृताध्ययन करो, शास्त्र पढ़ो और फिर योगी बनो।" हितानन्दजी ने व्यासदेवजी की जटाएं कटवा दीं और विद्यालय में आए एक देहली के विद्यार्थी रामचन्द्र द्वारा उनके पढ़ने तथा निवासादि का प्रबन्ध देहली में करवा दिया।

देहली में विद्याध्ययन

देहली में निवासादि की व्यवस्था—पं० रामचन्द्र ने व्यासदेवजी के पढ़ने और निवास का प्रबन्ध ज्योति पाठशाला में कर दिया तथा दो-चार समृद्ध व्यक्तियों से कहकर उनके खानपानादि की व्यवस्था भी कर दी। व्यासदेवजी ने पण्डितजी से पुनः लघुकौमुदी तथा प्राज्ञ परीक्षा के ग्रंथ पढ़ने प्रारम्भ कर दिए। कुछ काल के पश्चात् वे पण्डितजी किसी कारण से पाठशाला छोड़कर चले गए। कोई दूसरा प्रबन्ध कई मास तक नहीं हो सका। पाठशाला बन्द हो गई। अब व्यासदेवजी ने रामजस हाई स्कूल में पढ़ना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि वहां पर संस्कृत परीक्षाओं की तैयारी करवाई जाती थी। व्यासदेवजी रहते तो ज्योति पाठशाला में ही थे किन्तु पढ़ने स्कूल में जाते थे। ये इन दिनों विशारद परीक्षा के ग्रंथ पढ़ा करते थे। पाठशाला में नए अध्यापक की नियुक्ति हो गई। पाठशाला चिरकाल तक बन्द रही थी अतः इसमें केवल दो-चार विद्यार्थी ही पढ़ने आते थे। अतः पण्डितजी छात्र-संख्या बढ़ाना चाहते थे जिससे पाठशाला चलती रहे और उनको भली प्रकार से वृत्ति मिलती रहे। इन्होंने व्यासदेवजी से इसी पाठशाला में पढ़ने का आग्रह किया किन्तु उनकी पढ़ाई रामजस स्कूल में ठीक-ठीक चल रही थी अतः उन्होंने पाठशाला में आना स्वीकार नहीं किया। इस पर यह अध्यापक व्यासदेवजी को बहुत तंग करने लगा। लड़कों से इन्हें तंग करवाता और वे इनकी चीजें चुरा लेते। इन्होंने पाठशाला के मंत्री तथा नारायणदास ठेकेदार से इस कष्ट के निवारण के लिए प्रार्थना की। उन्होंने व्यासदेवजी को अपने निवास का कहीं अन्यत्र प्रबन्ध कर लेने की सम्मति दी। उन्हें भय था कि कहीं यह अध्यापक भी छोड़कर न चला जाए और पाठशाला पुनः बन्द हो जाए। अब व्यासदेवजी ने अपने निवास की व्यवस्था चावड़ी बाजार में एक पुस्तकालय में कर ली और लगभग दो-तीन वर्ष इसमें रहे।

व्यासदेवजी द्वारा पीड़ितों की सहायता

देहली में कांग्रेस का बड़ा बोलबाला था। यही एकमात्र ऐसी संस्था थी जो विदेशी सत्ता द्वारा देश को शोषण से बचाने और इसकी पराधीनता की बेड़ियों को काटने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु व्यासदेवजी को राजनैतिक कार्यों में रुचि नहीं थी। उनका ध्यान तो अहर्निश योग सीखने में लगा रहता था। योग सीखने के लिए ही वे संस्कृताध्ययन करने दिल्ली आए थे। इन दिनों प्रथम महायुद्ध चल रहा था। इधर स्वराज्य प्राप्ति का आन्दोलन भी जोरों पर था। इन्हीं दिनों देहली में बड़े जोर का प्लेग फैला। सैकड़ों आदमी प्रतिदिन इसका शिकार बनकर मृत्यु का ग्रास बन रहे थे। बाजार और गलियों में शव इधर-उधर पड़े रहते थे। स्कूल और कालेज बन्द हो गए थे। व्यासदेवजी का कोमल हृदय इस दयनीय दृश्य को देखकर द्रवित हो उठा और उन्होंने सेवार्थ विद्यार्थियों की एक समिति बनाई और घरों, गलियों और बाजारों में जो लावारिस शव पड़े रहते थे उनके दाहकर्म की व्यवस्था की। एक बैलगाड़ी इसके लिए किराए पर खरीदी। इस कार्य के लिए चन्दा एकत्रित किया। दिन-रात घूम-घूमकर देहली की जनता की सेवा की। अपने शरीर और स्वास्थ्य का किंचिन्मात्र भी ध्यान न कर अनेक प्रकार के कष्ट सहकर भी दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे।

जिस पुस्तकालय में व्यासदेवजी ने अपने रहने की व्यवस्था की थी उसमें और भी कई विद्यार्थी रहते थे। इसमें एक विद्यार्थियों की सभा होती थी जिसमें विद्यार्थी व्याख्यान देने का अभ्यास किया करते थे। व्यासदेवजी ने भी व्याख्यान देने का अभ्यास किया। यहां पर एक विद्यार्थी अष्टाध्यायी पढ़ा करता था। इन्होंने भी अष्टाध्यायी कंठाग्र कर ली। कोई पढ़ाने वाला वहां था नहीं इसलिए बिना समझे ही उसे रट डाला। गणपाठ, धातुपाठ, उणादिकोष और निघण्टु आदि कई ग्रंथ कंठस्थ कर लिए।

व्यासदेवजी घरबार छोड़ चुके थे, अतः माता-पिता का शासन उन पर नहीं रहा था। किसी बड़े विद्यालय या ऋषिकुल में भी वे नहीं पढ़े थे और न किसी आचार्य के शासन में ही रहते थे। ऐसे विद्यार्थी प्रायः उच्छृंखल और स्वेच्छाचारी हो जाते हैं और यदि उनके धार्मिक संस्कार न हों तो वे प्रायः कुमार्गगामी भी हो जाया करते हैं। व्यासदेवजी पर शासन किसी का भी नहीं था किन्तु उनकी भावनाएं और प्रवृत्तियां बहुत ऊंची थीं। वे पूर्ण ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय थे। ज्ञान और वैराग्य की भावना थी। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि मैं पढ़-लिखकर विद्वान् बनूं और आत्म-विज्ञान प्राप्त करूं। परीक्षा देने का कोई विचार नहीं था, किन्तु विद्वान् बनने का अवश्य था। व्यासदेवजी को तीन वर्ष दिल्ली में विद्याध्ययन करते हो गए थे।

पारिवारिक सदस्यों का आगमन––इनके परिवार वालों को कहीं से व्यासदेवजी के वहां रहने का पता चल गया, और वे लेने के लिए आ गए। जब व्यासदेवजी ने जाने से इन्कार कर दिया तब उन्होंने कहा कि तुम ६-७ मास में एक बार हमें मिलने तो आ जाया करो और आवश्यकतानुसार हमसे अपने व्यय के लिए रुपये भी मंगवा लिया करो। किन्तु व्यासदेवजी अपने परिवार से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। पारिवारिक बंधनों से वे दूर ही रहना चाहते थे, क्योंकि इससे ममता के पाश उत्तरोत्तर अधिक कठोर होते जाते हैं और फिर इनको काटना असंभव हो जाता है। इतना ही नहीं, अब वे यह भी समझने लगे थे कि ममता के कर्कश कोलाहल में अध्यात्म की वीणा का मधुर संगीत श्रवण नहीं किया जा सकता। अतः वे ऐसी कोई बात नहीं करना चाहते थे जिससे ममता के बन्धन में वृद्धि हो।

काश्मीर-प्रस्थान

दिल्ली से भागकर कहीं अन्यत्र जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय इस बंधन से बचने का उन्हें नहीं सूझा। एक अन्य ब्रह्मचारी, जिसका नाम राम था, उनके साथ चलने को तैयार होगया। दोनों ने मिलकर काश्मीर जाने का निश्चय किया। माघ का महीना था। मैदानों में ही इस मास में अत्यधिक शीत होता है। यह काश्मीर जाने का समय नहीं था किन्तु अबकी बार वे इतनी दूर चले जाना चाहते थे जहां उनके पिता तथा परिवार वाले कभी भी उन्हें ढूंढ नहीं सकें और उनकी उद्देश्य-प्राप्ति में बाधक न हो सकें, अतः वे अपने काश्मीर जाने के निश्चय पर दृढ़ रहे। उन्हें किसी ने यह भी बताया था कि काश्मीर में अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाने वाले एक बड़े विद्वान् पण्डित रहते हैं। उनके काश्मीर प्रस्थान करने के विचार में यह भी एक बड़ा कारण था। इन्होंने रेलगाड़ी के समय से बहुत पहिले ही दो टिकट मंगवा लिए और थोड़ा-बहुत जो कुछ सामान वहां पर जरूरी उनके पास था वह भी स्टेशन पर भिजवा

दिया। बाजार से दूध खरीदने का बहाना करके एक लोटा लेकर निवास-स्थान से बाहर चले गए। जब दो घण्टे हो चुके और वे नहीं आए तब उनके पिताजी को बड़ी चिन्ता हुई। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था त्यों-त्यों उनकी आतुरता और व्याकुलता बढ़ती जाती थी। इसलिए अब उन्होंने पूछताछ प्रारंभ कर दी। एक विद्यार्थी ने उनके भाग जाने का समस्त वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। वे दो-चार और आदमियों को साथ लेकर स्टेशन पर पहुंचे। सारी रेलगाड़ी के १०-१२ चक्कर लगाए किन्तु उन्हें व्यासदेवजी कहीं भी दिखाई न दिए। देते भी कैसे! यह समझकर कि पिताजी उनकी तलाश करने स्टेशन पर अवश्य आएंगे, वे पहिले से ही रेलगाड़ी की एक बैंच के नीचे छिपकर लेट गए थे। यह भी तब किया जब गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर नहीं आई थी। रेलगाड़ी के डिब्बों में अभी बिजली नहीं जलाई गई थी, इसलिए उनके बैंच के नीचे छिपकर लेटने का किसी भी यात्री को पता नहीं लग सका था। व्यासदेवजी के पिताजी तथा उनके साथी निराश होकर वापस लौट गए। जब कई स्टेशन निकल चुके और गाड़ी को दिल्ली से चले ३-४ घण्टे होगए तब व्यासदेवजी और उनके मित्र राम बैंच के नीचे से निकलकर ऊपर बैठ गए। उन्हें देखकर यात्रियों ने बहुत बुरा-भला कहा, गालियों की बौछार की, किन्तु ब्रह्मचारीजी ने मौन धारण कर लिया। उनकी किसी भी बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् रेलगाड़ी रावलपिंडी पहुंची। दोनों ब्रह्मचारी स्टेशन पर उतरे और अपना-अपना सामान कंधों पर रखकर पैदल यात्रा प्रारंभ कर दी। प्रथम दिन १५ मील की यात्रा की। इसके आगे कोहमरी पर्वत तक बर्फ पड़ी हुई थी। सारी सड़क बर्फ से आच्छादित थी। दोनों नंगे पैर थे। बड़ी कठिनाई से नंगे पैर ही बर्फ पर चलना प्रारंभ कर दिया। व्यासदेवजी को बर्फ पर चलने की कठिनाई का अनुभव था। जब इन्होंने उत्तराखण्ड के चारों धामों की और स्वर्गारोहणादि स्थानों में पर्यटन किया था तब इन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था, पर राम इस कठिनाई से बिल्कुल अनभिज्ञ था। उसे बर्फ पर चलने का बिल्कुल अनुभव नहीं था। चलते-चलते मार्ग में उन्हें एक सिक्ख युवक मिल गया। इसका नाम शिवसिंह था।

व्यासदेवजी के रुपयों की चोरी—व्यासदेवजी ने मार्ग में एक स्थान पर दूध पिया था और इसके दाम शिवसिंह के समक्ष दुकानदार को दिए थे। शेष रुपयों को इसके सामने ही इन्होंने अपनी धोती के एक पल्ले में बांधा था। रुपये देखकर शिवसिंह के मन में पाप आया और उसने रुपये चुराने की योजना बनाना प्रारंभ कर दिया। रात हो जाने पर दोनों ब्रह्मचारी और शिवसिंह एक दुकान पर ठहरे और वहीं रात्रि व्यतीत की। दोनों के पास केवल दो-दो कम्बल थे। इनसे शीत का निवारण नहीं हो सकता था। दिनभर के थके हुए थे, पैरों में फफोले पड़ गए थे, अतः रातभर उन्हें नींद नहीं आई। चुपचाप लेटे रहे। शिवसिंह ने सोचा कि ये सो गए हैं, अब रुपये चुराने का अच्छा अवसर है। वह चुपके से उठा और व्यासदेवजी के कम्बल के ऊपर धीरे-धीरे हाथ का स्पर्श करके रुपये ढूंढने लगा। व्यासदेवजी तो जग ही रहे थे। झट चिल्लाकर बोले—कौन है? शिवसिंह भयभीत होकर झट पीछे होगया। व्यासदेवजी समझ गए कि शिवसिंह रुपये चुराने के लिए चेष्टा कर रहा है। अब वह सचेत होकर लेट गए

और नींद का बहाना करके जोर-जोर से खुर्राटे भरने लने। शिवसिंह ने सोचा कि इस स्वर्णावसर को हाथ से नहीं खोना चाहिए, अतः वह धीरे से उठा और शनैः-शनैः व्यासदेवजी के बिस्तर के पास पहुंचकर इधर-उधर रुपये टटोलने लगा। ज्योंही उसने अपना हाथ कम्बल के भीतर डाला कि ब्रह्मचारीजी ने अपने दोनों हाथ कम्बल से बाहर निकाल कर एक हाथ से शिवसिंह की दाढ़ी जोर से पकड़ ली और दूसरे से उसके सिर के बाल पकड़कर उसे खूब झकझोरा और धक्के-मुक्के लगाकर नीचे गिरा दिया। शिवसिंह ब्रह्मचारीजी के बल को आंक नहीं सका। वह समझ रहा था कि दुबला-पतला सा व्यक्ति है, वह उसका मुकाबला नहीं कर सकेगा। उसको यह नहीं मालूम था कि यह युवक केवल ऊपर से देखने में ही कृश और कमजोर मालूम होता है, वास्तव में इसके अन्दर ब्रह्मचर्य का बल, तेज और वर्चस्व है। आस-पास के लोगों के बीचबचाव करने पर ब्रह्मचारीजी ने उस चोर को छोड़ा।

धर्मशाला में निवास—जैसे-तैसे रात व्यतीत करके प्रातःकाल कुहाले के लिए प्रस्थान किया। मार्ग हिमाच्छादित था। रात को नींद न आने के कारण विश्राम नहीं किया था, अतः थकान दूर नहीं हुई थी। पैर भी नंगे थे। बड़ी कठिनाई का सामना था पर हिम्मत नहीं हारी और साहसपूर्वक उस मार्ग पर चल दिए। कभी-कभी पैर बर्फ में धंस जाते थे और वृक्षों पर से बर्फ के बड़े-बड़े ढेले उनके शरीर पर आकर गिर जाते थे। शीत के कारण पैर निश्चेष्ट हो रहे थे। शरीर में मानो उष्णता नाममात्र को भी न रह गई थी। बड़ी कठिनाई से कुहाले का रास्ता तय किया। इसके बाद जैसे-तैसे बारहमूला पहुंचे। यहां आते-आते पैरों में घाव होगए थे और उनसे रुधिर स्रवित हो रहा था। बारहमूला से आगे का मार्ग सीधा था। अब किसी प्रकार की चढ़ाई तथा उतराई नहीं थी। दोनों ब्रह्मचारी नौवें दिन रात्रि के आठ बजे श्रीनगर पहुंचे और अमीराकदल सिक्ख धर्मशाला में ठहरे। चौकीदार ने इनके लिए एक अच्छा-सा कमरा खोल दिया और उनकी सब व्यवस्था ठीक-ठाक कर दी।

चौकीदार की मूर्खता—ब्रह्मचारी व्यासदेवजी बड़े रूपवान थे। शरीर बड़ा सुडौल था। मुख पर कान्ति थी। गौर वर्ण थे। शरीर में ब्रह्मचर्य का तेज था। अनेक कठिनाइयों के सहने और अत्यन्त परिश्रमशील होने के कारण शरीर में चर्बी बढ़ने का अवकाश ही नहीं था, अतः शरीर कृश था। इस सौन्दर्य की साकार प्रतिमा को देखकर भला कौन उनकी ओर आकृष्ट न होता होगा! दोनों ही युवक केश नहीं रखते थे। मूर्ख चौकीदार ने सोचा कि ये दोनों हिन्दु साधनियां हैं! इसलिए वह उन्हें माईजी कहकर पुकारने लगा। जब वह इन्हें इस प्रकार से सम्बोधन करता तो दोनों ब्रह्मचारी मन ही मन में खूब हंसते। ये दोनों उसे मूर्ख समझते थे, अतः इस सम्बन्ध में उससे कुछ न कहकर चुप रहते थे। इस धर्मशाला में एक और नौकर भी था। चौकीदार ने इसे बुलाया और कहा कि ये दोनों महिलाएं हिन्दू साधनियां प्रतीत होती हैं। इनमें से जो अधिक सुन्दर है उससे मैं विवाह कर लूंगा और दूसरी से तू कर लेना। हम दोनों के घर बस जाएंगे और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे। इस भ्रम का कारण केवल इन ब्रह्मचारियों का सौन्दर्य ही नहीं था किन्तु उनके वस्त्र धारण करने का ढंग भी था। पुरुष प्रायः धोती की लांग लगाते हैं किन्तु ये ब्रह्मचारी लांग नहीं लगाते थे और शीत के कारण अपना मुंह और सिर ढांपे रहते थे। केवल

आंखें खुली रहती थीं। जब चौकीदार उन्हें माई कहकर सम्बोधन करने लगा तब वे विनोद में आकर अपने को अधिकाधिक स्त्रीवत् दर्शाने लगे। इसलिए यह भ्रम और अधिक पक्का होता गया। इनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए दोनों नौकर इनकी खूब सेवा करते। उनके लिए सब सामान बाजार से लाकर देते। इसके दाम भी उनसे नहीं लेते थे। व्यासदेवजी दाम चुकाने के लिए बहुत प्रयत्न करते पर वे सदैव लेने से इन्कार कर देते थे। चार-पांच दिन तक पूरी खाते रहे, अतः अब इनसे चित्त कुछ उपराम-सा होगया था। इसके अतिरिक्त यह भी विचार आया कि चौकीदार हमें ४-५ दिन से पूरियां खिला रहा है। हमसे दाम नहीं लेता है। हमें वह स्त्रियां समझ रहा है। संभव है इसके चित्त में कोई विकार पैदा होगया हो। यदि इसको पता लग गया कि हम स्त्रियां नहीं, पुरुष हैं, तो इसका शेखचिल्ली के समान बना-बनाया खेल सब समाप्त हो जाएगा और यह अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप करेगा। अतः कहीं अन्यत्र जाने का विचार किया।

तारासिंह से परिचय—दोनों ब्रह्मचारी दस बजे के लगभग धर्मशाला से बाहिर निकले। बाजार में सर्वत्र बर्फ जमी हुई थी। बड़ी कठिनाई से माई सेवां नामक बाजार में गए और कोई ऐसा होटल या दुकान ढूंढने लगे जहां पर निरामिष भोजन प्राप्त हो सके। उन्हें धर्मशाला के चौकीदार ने बताया था कि श्रीनगर में सभी होटलों और रेस्टोरेंटों में मांस पकता है। इसलिए वे बड़े चिन्तित भाव से बाजार में घूम रहे थे। दो घण्टे बाजार में घूमते होगए किन्तु कहीं भी निरामिष भोजन प्राप्त न हो सका। अत्यन्त क्षुधार्त होकर एक दुकान से दूसरी दुकान पर जाते थे किन्तु निराश होकर लौट आते थे। गत रात्रि को दुग्ध-पान नहीं किया था और थक भी बहुत गए थे क्योंकि इधर-उधर भ्रमण करते रहे थे और धर्मशाला में आकर सो गए थे। चौकीदार ने दूध पीने के लिए बहुत अनुनय विनय की किन्तु इन्होंने दूध पीने से सर्वथा इन्कार कर दिया। दिन के बारह बजे तक उनकी भोजन की समस्या सुलझ नहीं सकी। किसी दुकान, ढाबे, होटल अथवा रेस्टोरेंट में भोजन करना पसन्द नहीं किया क्योंकि प्रत्येक दुकान और होटल आदि में मांस बनाया जाता था। बाजार में चिन्तित भाव से दोनों मित्र खड़े थे। इतने में पास ही एक सज्जन आ पहुंचे और इन दोनों नवयुवकों को चिन्तित और उदासीन देखकर उत्सुकतापूर्वक उनकी चिन्ता और उदासीनता का कारण पूछने पर मालूम हुआ कि ये दोनों भूख से व्याकुल थे और श्रीनगर की दुकानों पर भोजन करना नहीं चाहते थे क्योंकि उनमें निरामिष भोजन प्राप्य नहीं था। इस सज्जन का नाम तारासिंह था। यह आर्यसमाजी था अतः इसने विश्वास दिलाया कि इसके घर में मांस नहीं बनता है और दोनों ब्रह्मचारियों से निवेदन किया कि वे उसके साथ उसके घर पर चलें और भोजन करें। यह भी कहा कि उसके पास केवल उसकी माता रहती है इसलिए मकान में स्थान खाली है, उसीमें वे दोनों निवास भी कर सकते हैं। दोनों ब्रह्मचारी बड़े प्रसन्न हुए और तारासिंह के साथ हो लिए। इनकी माता ने दोनों को बड़े प्रेम से भोजन करवाया। इनके पास ये दोनों कई दिनों तक रहे। तारासिंह ने बड़े आग्रह से इनके लिए जूते और गर्म वस्त्र बनवा दिए तथा ओढ़ने बिछाने के लिए भी पर्याप्त वस्त्र खरीद कर दे दिए। एक दिन तारासिंह इन्हें आर्यसमाज में अपने साथ ले गए और प्रायः सभी सदस्यों से इनका परिचय करवा

दिया। इस आर्यसमाज में आर्य कुमार सभा प्रति रविवार को सायंकाल लगा करती थी। यहां कुछ विद्यार्थियों ने व्यासदेवजी से इस सभा में भाषण देने की प्रार्थना की। इनके पाण्डित्यपूर्ण भाषण की सब ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और सब लोग इनका सम्मान करने लगे। कई विद्यार्थी इनके मित्र बन गए जिनमें केशवदेव, योगेन्द्र, महेन्द्र, ताराचन्द, जानकीनाथ, माधोराम आदि प्रमुख थे। इनमें से केशवदेव एक धनाढ्य परिवार का लड़का था। उसने तारासिंह से कहा कि इन ब्रह्मचारियों के दूध का प्रबंध मैं करूंगा और वह नित्यप्रति दो सेर दूध इन दोनों के लिए भेजने लगा। एक दिन व्यासदेवजी ने संस्कृत के विद्वान् पण्डितों से मिलने की इच्छा तारासिंह से प्रकट की। वह इन्हें पंडित सुखानन्द और नित्यानन्द के पास ले गए। व्यासदेवजी को संस्कृत में भाषण करने और लिखने का खूब अभ्यास था। इन्होंने इन पण्डितों से संस्कृत में ही सम्भाषण किया। सुखानन्दजी संस्कृत में इनके वार्तालाप को सुनकर गद्गद् हो गए। उनसे पता चला कि उस समय काश्मीर में कोई अष्टाध्यायी और महाभाष्य को पढ़ाने के लिए योग्य विद्वान् नहीं है और यह सलाह दी कि बनारस में हरनारायण तिवारी नाम के सभी प्रकार के व्याकरण ग्रंथों के परम विद्वान् पण्डित रहते हैं, आप उन्हीं के पास जाकर इन दोनों ग्रंथों का अध्ययन करो।

शालामार बाग में एक अंग्रेज से मुठभेड़—ब्रह्मचारी व्यासदेवजी बड़े निर्भीक व्यक्ति थे। सदा न्यायपथ पर निर्भय होकर डटे रहते थे और अन्याय के प्रतिशोध के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे। जिन दिनों ये काश्मीर में थे उन दिनों अंग्रेज़ सरकार का भारतवर्ष में, विशेषकर पंजाब में, बड़े जोरों का दमन चक्र चल रहा था। इसके द्वारा वह स्वतंत्रता के आन्दोलन का समूलोन्मूलन करना चाहती थी। पंजाब में सैनिक कानून लगा दिया गया था। जितना ही दमन किया जाता था उतना ही विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड रूप धारण करती जाती थी। इसकी ज्वालाएं यत्र-तत्र-सर्वत्र फैलती जा रही थीं। अमृतसर में जलियांवाले बाग के हत्याकाण्ड का दुःखद स्मरण आज भी दिल को दहला देता है। राष्ट्र के बड़े नेताओं को कारावास में बन्द कर दिया गया और सत्याग्रह आन्दोलन को बुरी तरह से कुचला गया। अंग्रेजी सरकार का सर्वत्र आंतक छा गया था। सभी रियासतों में कांग्रेस का दमन किया गया। प्रमुख नेताओं को कैद किया गया। कांग्रेस के सम्बन्ध में रेजिडेंटों ने रियासतों में बड़े कड़े कानून जारी किए थे। काश्मीर इससे अछूता कैसे रह सकता था! यहां पर भी महाराजा प्रतापसिंह ने किसी भी कांग्रेस के नेता को सिर नहीं उठाने दिया। किन्तु प्रजा में भीतर ही भीतर विद्रोह की अग्नि सुलगती रही।

एक दिन व्यासदेवजी अपने मित्र राम के साथ शालामार बाग देखने के लिए गए। जब वे एक सड़क पर घूम रहे थे तब एक अंग्रेज और उसकी पत्नी भी उसी सड़क पर सामने से आ रहे थे। उन्हें देखकर इन दोनों ने सड़क को छोड़ दिया और एक तर्फ को होकर खड़े होगए, लेकिन उन दिनों के अंग्रेज अपने को भगवान् के बेटे नहीं समझते थे बल्कि अपने को भगवान् का बाप समझते थे। उस अंग्रेज युवक को इन ब्रह्मचारियों को देखते ही क्रोध आ गया और जान-बूझकर इन दोनों को नीचे बाग की एक क्यारी में धक्का दे दिया। भला व्यासदेवजी इस अपमान और अन्याय को किस प्रकार सहन कर सकते थे! उन्होंने तुरन्त उस अंग्रेज को धर दबाया और

उसे नीचे गिराकर घूसों और लातों से खूब पीटा। अंग्रेज महिला ने अपने पति के बचाव के लिए उनसे बड़ी अनुनय और विनय की, तब कहीं उन्होंने इसे छोड़ा। अंग्रेज़ दम्पति ने श्रीनगर जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दी कि महाविद्यालय (प्रताप कालेज) के दो विद्यार्थियों ने उनका शालामार बाग में घोर अपमान किया और मारा है। सारे नगर में अग्नि के समान यह समाचार फैल गया और महाविद्यालय में तो विशेष रूप से आंतक छा गया। विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों से नित्यप्रति इस दुर्घटना के सम्बन्ध में पूछताछ होती थी। अंग्रेज़ युवक नित्य महाविद्यालय के विद्यार्थियों में से अपने अपमानकर्ता को पहिचानने के लिए जाता किन्तु पहिचानता तो तब जब वह वहां होता। वह तो कालेज का विद्यार्थी ही नहीं था तो भला वहां मिलता ही कैसे! व्यासदेवजी तो वहां के प्रताप महाविद्यालय के विद्यार्थी ही नहीं थे। अमृतसर में जलियांवाले बाग में गोली चले कुछ दिन ही हुए थे।

महाराजा प्रतापसिंह से भेंट, कि महाराजा तो सर्व प्रकार से सुखी होंगे—व्यासदेवजी की काश्मीर-नरेश से भेंट करने की चिरकाल से इच्छा थी। केशवदेव ने एक काश्मीरी पंडित के द्वारा महाराजा से निवेदन करवाकर मिलने का समय निश्चित करवा दिया। नरेश ने प्रातः दस बजे पूजागृह में ही मिलने के लिए बुला लिया। प्रणाम करके सम्मानपूर्वक पास बिठाया। विविध विषयों पर वार्तालाप हुआ। इसी बीच में व्यासदेवजी के राजपरिवार तथा प्रजा की प्रसन्नता और सुख के विषय में पूछने पर महाराजा ने निवेदन किया, "मुझे इस समय दो प्रकार के दुःख पीड़ित कर रहे हैं। मैं अब तक पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सका हूं। दूसरा दुःख काश्मीर के भावी शासन का है। जब तक ये दो महान् चिन्ताएं मुझे सता रही हैं मैं अपने को कैसे सुखी मान सकता हूं? राजकुमार हरिसिंह मेरे भाई के लड़के हैं। यदि वे सिंहासन पर बैठ भी जाते हैं तो उनमें शासन की योग्यता नहीं है। और उनसे मैं पितृ-ऋण से उऋण भी नहीं हो सकता। ये दो चिन्ताएं मुझे घुण की तरह से भीतर ही भीतर खा रही हैं।" राजा की ये सब बातें सुनकर व्यासदेवजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। यदि यह महती सुख-सम्पत्ति, धन, वैभव, गगनचुम्बी प्रासाद, असंख्य धनराशि, सैकड़ों दास-दासियां, महान् प्रभुत्व और विस्तृत राज्य पाकर भी सुख नहीं है तो फिर संसार के सर्वसाधारण व्यक्तियों को तो सुखी कहा ही कैसे जा सकता है! इन्होंने सुख और दुःख के सम्बन्ध में महाराजा को बड़ा सारगर्भित उपदेश देकर समझाया कि :—

न चेन्द्रस्य सुखं किंचिद् न सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तवासिनः॥

सुख और दुःख पदार्थ नहीं हैं। इस संज्ञा में वे आते ही नहीं। ये दोनों तो केवल अन्तःकरण की वृत्तियां हैं। वृत्ति और चित्त उसके साथ तादात्म्य भाव ही सुख और दुःख का कारण है। कभी दुःख सुख-रूप में प्रतीत होने लगता है और जिसे हम सुख समझने लगते हैं वह भी परिणाम भाव को प्राप्त होकर दुःख में ही परिणत हो जाता है। ये दोनों ही एक-दूसरे के सापेक्ष हैं। इन दोनों का अभाव चित्तवृत्ति के निरोध से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। जिस प्रकार समुद्र की सतह से बुलबुले और लहरें उठती हैं इसी प्रकार से चित्त-समुद्र से ये वृत्तियां उठती हैं। जैसे सूर्य से किरणें निकलती हैं उसी प्रकार चित्तरूपी सूर्य से वृत्तिरूपी किरणें निकलती रहती हैं। जिस

प्रकार अस्ताचल को जाते समय सूर्य अपनी किरणों को समेट लेता है उसी प्रकार आप भी सुख और दुःख दोनों से ऊपर उठने के लिए अपनी किरणों रूपी चित्त-वृत्तियों को समेटने की कोशिश करें। भय उपस्थित होने पर कछुआ अपने हाथों और पैरों को समेटकर निर्भय हो जाता है, उसी प्रकार आप भी चित्त में सैकड़ों प्रकार की जो वृत्तियां उठा करती हैं इनका संवरण कर लीजिए। इन्हें उठने तक का अवकाश ही कभी न दें तभी आप सुख और दुःख रूपी महान् द्वन्द्व से मुक्त हो सकते हैं। चित्त ही वास्तव में सुख और दुःख का उपादान कारण है। ये इसी से उत्पन्न होते हैं। अन्तःकरण से पृथक् हो जाने पर अथवा इसके नाश हो जाने पर सुख और दुःख दोनों का अभाव हो जाता है।

काश्मीर-नरेश सुख और दुःख के विषय में विद्वत्ता और विवेकपूर्ण वार्तालाप सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उनका इस विषय में सारा भ्रम नष्ट होगया। महाराजा ने व्यासदेवजी को बड़ी अमूल्य भेंट देनी चाही किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं की और निवेदन किया कि मैं तो सदैव उपराम वृत्ति से रहता हूं। विरक्त ब्रह्मचारी के लिए इस भेंट की कोई आवश्कता नहीं। मैं तो भारत की प्राचीन पावन परम्पराओं में पूर्ण विश्वास करता हूं। हमारे देश ने तपस्या और त्याग और वैराग्य को सदैव ऊंचा स्थान दिया है और 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' के उच्च आदर्श का सदैव पालन किया है।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ में
'वैराग्य का उदय' नामक
प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय अध्याय

प्रारम्भिक योग साधना

परम विद्वान् योगी की खोज—व्यासदेवजी अपने बाल्यकाल से ही एकान्त-प्रिय तथा विचारशील थे। उन्हें जनसम्पर्क कभी भी रुचिकर नहीं था। स्वामी रामानन्दजी महाराज के उपदेशों से उनकी तिरोहित वैराग्यभावना एकदम प्रस्फुटित हो गई और प्रतिदिन के सत्संग ने उसे अधिकाधिक दृढ़ बना दिया। इनकी आयु इस समय केवल १२ या १३ साल की ही थी। इस छोटी-सी आयु में ही उन्हें तीव्र वैराग्य हो गया था और १६ साल की आयु में इन्होंने गृह-परित्याग कर दिया था। इनके जीवन की अनेक घटनाएं इस बात को सिद्ध करती हैं कि ये अपने प्राक्तन जीवन में कोई बड़े सिद्ध योगी रहे होंगे। ऐसे ही महान् योगियों के विषय में गीता में कहा गया है "शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते"। सम्पन्न गृह में जन्म लेने के अतिरिक्त अन्य अनेक बातें ऐसी हैं जो इसकी पूर्णतया पुष्टि करती हैं। आपके अन्दर योग द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा बाल्यकाल से ही थी। योग सीखने के लिए योग्य गुरु की खोज के लिए इन्होंने अनेक प्रकार की कठिनाइयां उठाईं। बीहड़ वनों में भ्रमण किया। हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वतमालाओं पर नंगे पैर केवल मात्र एक कम्बल कंधे पर डालकर इधर-उधर खोज की, किन्तु उन्हें इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। अब वे किसी छोटे-मोटे साधारण योगी से योग सीखना नहीं चाहते थे। इसके लिए वे किसी परम विद्वान् योगी की शरण में ही जाना चाहते थे। साधारण योगियों से तो वे इससे पहले ही बहुत कुछ सीख चुके थे। हरिद्वार में मोहन आश्रम में निवास किया और गंगा के किनारे घण्टों ही जाप और योगाभ्यास करते थे। कजली वन में ग्यारह घण्टे तक प्रतिदिन आसन, प्राणायाम तथा योग साधना की। उत्तराखण्ड में पहाड़ों की गुफाओं में वर्षों तक निवास किया और योग साधना में अहर्निश संलग्न रहे। पर वे इतने मात्र से सन्तुष्ट नहीं थे क्योंकि वे एक महान् योगी बनना चाहते थे। इसके लिए एक मार्गदर्शक की बड़ी आवश्यकता थी और इसी की खोज में वे व्यस्त थे। उस दिन की बड़े चाव से प्रतीक्षा कर रहे थे जब उन्हें योग में निपुण गुरु की प्राप्ति हो। वह दिन दूर नहीं था जिस दिन उन्हें एक योग्य योगी की प्राप्ति हुई।

अवधूत परमानन्दजी से भेंट—व्यासदेवजी जब काश्मीर में रहते थे तब प्रायः हजूरी बाग में जाया करते थे। वहां पर गुलाब के पौधों के पास बैठकर अष्टाध्यायी आदि का पाठ किया करते थे। एक दिन उन्होंने एक परमहंस महात्मा को कौपीन बांधे और एक कम्बल कंधे पर डाले आते देखा। व्यासदेवजी तथा उनके मित्र राम ने उठकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। स्वामीजी ने दोनों ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद

दिया और उनके हाथ में अष्टाध्यायी देखकर पूछा, "आप इसे क्यों पढ़ रहे हो ? इसे पढ़कर क्या करना चाहते हो ?" व्यासदेवजी ने उत्तर दिया कि हम इसे पढ़कर वेद-शास्त्रों के अध्ययन द्वारा आत्म-विज्ञान प्राप्त करेंगे। यह उत्तर सुनकर अवधूत परमानन्दजी ने उन्हें समझाया कि केवल शास्त्राध्ययन से ही ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं किया जा सकता। ध्रुव, प्रह्लाद और नचिकेतादि को तो बाल्यकाल में ही आत्मविज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्होंने किसी वेद या शास्त्र का अध्ययन नहीं किया था। श्रुति भी इसी का प्रतिपादन करती है, "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन।" आत्मज्ञान लाभ के साधन तो कुछ और ही हैं। वे हम तुम्हें बताएंगे। वे दोनों ब्रह्मचारियों को हरि पर्वत की ओर ले गए। मार्ग में व्यास-देवजी के तर्क-वितर्क तथा ऊहापोह से बड़े प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देते हुए उन्हें आलिंगन किया। ये दोनों ब्रह्मचारियों को गान्धरबल ले आए और नहर के किनारे चुंगी की चौकी के पास चनार के पेड़ के नीचे ठहर गए। इस चौकी के चपड़ासी से भोजन बनवाया और स्वयं तथा इन ब्रह्मचारियों को भी खिलाया। व्यासदेवजी तथा राम दोनों के लिए बिछाने और ओढ़ने के लिए कम्बलों की व्यवस्था की। दोनों ने चनार के पेड़ के नीचे शयन किया। अवधूतजी सौ फीट की दूरी पर अपना आसन जमाकर बैठ गए। जाते समय ब्रह्मचारियों को उनके पास प्रातः आठ बजे तक न आने का आदेश दे गए। वे रात्रि को आठ बजे साधना में बैठे और प्रातः ६ बजे तक एक ही आसन से बैठे रहे। रात्रि में केवल दो घण्टे अर्थात् छः से आठ बजे तक ही उन्होंने शयन किया। दोनों विद्यार्थी रात्रि में शनैः-शनैः उठकर उन्हें देखते रहे। उनके हृदय में यह जानने की बड़ी उत्सुकता थी कि स्वामीजी महाराज रात्रि में क्या साधना करते हैं और कितने समय तक करते हैं। अवधूतजी की इस साधना का ब्रह्मचारियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इससे इनके हृदय में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो गई। प्रातः लगभग ९ बजे सबने गांधरबल से सोनमर्ग के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में सिंधु नदी के किनारे एक गुफा में ठहरे। भोजनो-परान्त व्यासदेवजी ने भावी कार्यक्रम के विषय में स्वामीजी से निवेदन किया। स्वामीजी ने आदेश दिया कि शीघ्र ही तुम दोनों के लिए प्रतिदिन का कार्यक्रम निश्चित कर दिया जाएगा और उसी के अनुसार तुम कार्य प्रारम्भ कर देना।

योग शिक्षा ग्रहण—अवधूतजी के माता-पिता का बाल्यकाल में ही स्वर्गवास हो गया था। तभी से तीव्र वैराग्य की भावना जागृत हो गई थी, इसलिए गृह-त्याग कर दिया था। कई वर्ष तक संस्कृत तथा वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया और तत्पश्चात् एक योगी की शरण में चले गए और उनसे योग सीखा। उन्हीं से दीक्षा भी प्राप्त की। इनका शरीर पंजाबी था और ये उदासीन सम्प्रदाय के थे। इनका रहन-सहन, बोल-चाल तथा सारा व्यवहार जीवन्मुक्तों के समान था और वे सदैव अवधूत-वृत्ति से रहते थे। बहुत बड़े योगी थे। भूत, वर्तमान और भविष्य की सब बातें जानते थे। इन ब्रह्मचारियों को देखते ही वे समझ गए कि ये कई वर्षों से किसी योग्य योगी की खोज करते फिर रहे हैं किन्तु अभी तक इन्हें कोई उचित मार्गदर्शक उपलब्ध नहीं हो सका है। इनकी योगनिष्ठा, भक्ति, श्रद्धा और योग्यता को देखकर प्रसन्न हुए। भगवत्प्रेरणा से इन्होंने इन दोनों को योग सिखाने का निश्चय कर

लिया। व्यासदेवजी ने स्वामीजी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और निवेदन किया कि मेरी योग सीखने की चिरकाल से अभिलाषा थी। आप जैसे महानात्मा परम विद्वान् योगी को पाकर आज यह उत्कट अभिलाषा पूर्ण हुई। आज हमारे किसी प्राक्तन पुण्य का उदय हुआ है। आपकी इस अहेतुकी कृपा के लिए हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे। आपके समान कृपालु गुरु संसार में बहुत कम हैं। आप हमारा मार्ग-दर्शन कीजिए। आज हम आपको गुरु मानकर आपके चरणों में आत्मसमर्पण करके आपसे दीक्षा लेने की प्रार्थना करते हैं। अवधूतजी ने कहा, "तुम लोग मेरे पास रहकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक जो कुछ सीख सकोगे वही मेरी दीक्षा होगी। इस सम्बन्ध में जिस-जिस बात की आवश्यकता होगी वह सब तुम्हें समझा दी जाएगी।" दोनों ब्रह्मचारी धूनी जलाकर गुफा में रहने लगे और यहीं पर एक मास तक इन्होंने योगसाधना की। इनके लिए एक मास की दिनचर्या अवधूतजी ने बना दी। यह दिनचर्या प्रति सप्ताह निम्न प्रकार से बदलती रही, यह स्थान कंगण के पास सिन्ध नाले के किनारे गुफा में था।

प्रथम सप्ताह—६ घण्टे शयन। ६ घण्टे निरन्तर एक आसन पर बैठकर गायत्री जाप। इसमें केवल दो बार टांगें बदल लेने की आज्ञा थी। २ घण्टे तक योग दर्शन का अध्ययन। २ घण्टे पठित पाठ को कण्ठस्थ करना। २ घण्टे हठयोग के अनुसार आसन, प्राणायाम तथा क्रियाएं। २ घण्टे शौच, स्नान तथा वस्त्र-प्रक्षालनादि। २ घण्टे सायंकाल को पास में ही इधर-उधर भ्रमण। २ घण्टे भोजन विश्रामादि। भोजन में चावल, नमक, मक्खन।

दूसरा सप्ताह—इसमें भ्रमण का समय निकाल दिया गया। शेष कार्यक्रम प्रथम सप्ताह के समान ही रहा। इस सप्ताह में तीन व्याहृतियों का जाप आठ घण्टे तक करने का आदेश दिया गया। यह जाप एक ही आसन से बैठकर करने की आज्ञा दी। थकान होने पर केवल एक बार ही टांगें बदली जा सकती थीं।

तीसरा सप्ताह—इस सप्ताह का कार्यक्रम द्वितीय सप्ताहवत् ही रहा, किन्तु अब १० घण्टे लगातार ओंकार जाप करने की आज्ञा हुई। अब टांगें बदलना बिल्कुल निषेध कर दिया गया। इस काल में जाप कई बार बन्द हो जाता था और कई घण्टों तक एक प्रकार की शून्यता सी छा जाती थी। कई-कई घण्टों तक व्यासदेवजी को अपनी भी सुध न रहती थी।

चौथा सप्ताह—अब अवधूतजी ने १२ घण्टे तक शून्य-समाधि लगाना सिखा दिया। इसमें संकल्प-विकल्पों का नितान्त अभाव रहता था। रात के १२ बजे से लेकर दिन के १२ बजे तक एक ही आसन से समाधि लगाई जाती थी। इस सप्ताह में केवल चार घण्टे तक सोने की आज्ञा थी। शेष दिनचर्या पूर्ववत् ही थी।

इस १२ घण्टे की समाधि में व्यासदेवजी को न तो अपना ही कुछ भान रहता था और न जगत् के अस्तित्व का। इस एक मास में अवधूतजी ने दोनों को ४० प्रकार के प्राणायाम, १८४ प्रकार के आसन, षटकर्म (नेति, धोती आदि) सिखाए और व्याख्या सहित सारा योगदर्शन भी कण्ठस्थ करवा दिया। १२ घण्टे की समाधि इस थोड़े से काल में लगाना सिखा देना उन्हीं नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मनिष्ठ तेजोमूर्ति महायोगीजी की कृपा का ही परिणाम था।

इस एक मास में अवधूतजी की कई विभूतियां देखने का अवसर लाभ हुआ। एक दिन दोनों ब्रह्मचारियों की वन-भ्रमण की इच्छा हुई और योगीराज से इस विषय में निवेदन किया। वे उन्हें अपने साथ लेकर पास ही एक पर्वत पर भ्रमणार्थ गए। वे अपनी साधारण गति से चल रहे थे। पर व्यासदेवजी तथा राम को इनके साथ दौड़ना पड़ रहा था। ये थोड़ी ही दूर गए होंगे कि इनको एक रीछ आता दिखाई दिया। वह एक झाड़ी से बाहिर निकला और ब्रह्मचारियों पर झपटा। भयभीत होकर इन दोनों ने अपने हाथों में डण्डे उठा लिए थे। अवधूतजी ने तुरन्त इनके डन्डे फिकवा दिए और रीछ को हाथ का संकेत करते हुए कहा "जाओ बेटा, जाओ"। वह इनको छोड़कर कूदता फांदता दूर चला गया। यह उनकी प्रथम यम, अहिंसा की सिद्धि का परिणाम था। इसे ही "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः" कहा गया है।

ये योगीजी बड़े दयालु तथा वात्सल्यपूर्ण थे। एक बार युवक योगियों की मिष्ठान्न खाने की इच्छा हुई। पर उन्होंने संकोच और भयवश गुरुदेव से इस सम्बन्ध में निवेदन नहीं किया। किन्तु उनसे कोई बात छिपाई न जा सकती थी। वे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की बात को अनायास ही जान लिया करते थे। उन्होंने इनसे पूछा, "क्यों, मिठाई खाना चाहते हो ? कौनसी मिठाई खाओगे ? किस स्थान की मिठाई खाने के लिए इस समय तुम्हारी रुचि है ?" व्यासदेवजी जिन दिनों दिल्ली में संस्कृताध्ययन करते थे उन दिनों चांदनी चौक में घण्टाघर वाले की मिठाई कई बार खाने का अवसर उन्हें मिला था, इसलिए झट निवेदन किया कि चांदनी चौक में घण्टेवाले की मिठाई उत्तम होती है। वे मुस्कराए और चुपचाप बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने दोनों को नदी पर जाकर आचमन करने की आज्ञा दी। गुफा से निकलते ही उन्हें एक भालू दिखाई दिया अतः वे बड़े भयभीत हुए और बड़ी शीघ्रता से आचमन करके झटपट भागकर वापस आ गए। योगीराज के हाथ पर मिठाई का एक बड़ा थाल देखकर वे बड़े आश्चर्यान्वित हुए। उन्होंने उसमें से बहुत-सी मिठाई इन्हें खाने के लिए दी। वह इतनी अधिक मात्रा में थी कि इसे खाते-खाते अघा गए। यह मिठाई ठीक घण्टेवाले की मिठाई जैसी ही थी। इससे वे बड़े चकित हुए। जब तक इन्होंने मिठाई खाई तब तक यह थाल योगीराज के हाथ में रहा। खा लेने के बाद उन्हें नदी में जाकर हाथ-मुंह प्रक्षालन की आज्ञा दी गई। ये दोनों कुछ ठिठक गए क्योंकि जब वे आचमन करने नदी पर गए थे तब उन्होंने एक बड़ा रीछ देखा था। अवधूतजी ने कहा, "जाओ, भय की कोई बात नहीं है।" दोनों गुफा से निकलकर चले किन्तु उनके मन में रीछ का भय बना रहा। जब वे गए तो वहां उन्हें कोई रीछ दिखाई नहीं दिया और जब वे लौटकर आए तो उन्होंने गुफा में मिठाई के थाल को न पाकर बड़ा आश्चर्य किया। ये दोनों ही बातें उनके लिए बड़े आश्चर्य में डुबा देने वाली थीं। इनके सत्संग से युवक योगियों ने अपूर्व सुख-लाभ किया। गुरुदेव जिस पण्डित की दुकान से चावल, मक्खन, नमक लाते थे दोनों ब्रह्मचारियों ने उनके साथ जाने का आग्रह किया।

एक दिन की बात है, दोनों ब्रह्मचारियों को साथ लेकर गये। योगीजी ने वहां नदी स्नान किया। इन दोनों ने भी स्नान किया और आकर किनारे पर बैठ गए। किन्तु स्वामीजी महाराज गहरे जल में उतर गए और एक बड़े जोर की डुबकी लगाई। जब वे एक घण्टे तक बाहिर नहीं निकले तब इन दोनों को बड़ी चिन्ता हुई। प्रतिपल

उनके डूब जाने की आशंका बढ़ने लगी। एक काश्मीरी मुसलमान गोताखोर को बुलाकर उन्हें जल से निकलवाया गया। जब वे निकले तो वे बद्धपद्मासन अवस्था में थे। थोड़ी देर के पश्चात् उन्होंने एक लम्बा श्वास लिया और आंखें खोलीं। उनकी आंखें अंगारों के समान लाल थीं। इन्हें देखकर सभी लोग बड़े भयभीत हुए। वे दोनों ब्रह्मचारियों से नाराज हुए और कहा, "तुमने हमें क्यों निकाला ? तुम तो जानते हो कि हम स्वयं ही जलसमाधि लेने के पश्चात् निकल आया करते हैं। इसके दण्ड-स्वरूप आज तुम्हें भोजन नहीं मिलेगा।" उस दिन इन तीनों ने भोजन नहीं किया। इन्होंने चार दिन तक ब्रह्मचारियों को निराहार रखा और साथ ही स्वयं भी निराहार रहे। तीनों ही चार दिन तक ध्यान-समाधि रत रहे। पांचवें दिन अपने समक्ष बिठाकर रात्रि के ११ बजे से लेकर २ बजे तक उपदेशामृत की वर्षा की। इसके पश्चात् शयन करने की आज्ञा हुई। दोनों ब्रह्मचारियों को नींद नहीं आई और एक घंटे बाद ही साधना का समय समझकर उठे, नदी में हाथ-मुंह धोने के लिए चले गए। जब लौटे तो क्या देखते हैं कि उनके गुरुदेव अपने आसन पर विराजमान नहीं हैं। ये दोनों अपनी गुफा में चले गए। अपने-अपने आसन पर बैठकर अभ्यास प्रारंभ किया किन्तु ध्यानावस्थित न हो सके। मन ही नहीं लगा। जब प्रातः होने पर भी वे कहीं दिखाई न दिए तो इन्हें महान् दुःख हुआ। तीन महीने तक अहर्निश उनकी खोज करते रहे पर उनका कहीं भी पता न चला।

बड़े पुण्य कर्मों से उन्हें यह अवसर मिला था। यह उन्हें सदैव स्मरण रहा। उनकी जितेन्द्रियता, तपश्चर्या, योगनिष्ठा, द्वन्द्वरहितता और रागद्वेषहीनता सदैव युवक योगियों के लिए स्मरणीय रही। इनके महान् उपकार, इनकी दया और वात्सल्य भाव को याद करके दोनों के नेत्रों से अनवरत अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। वे उनको सिन्ध नाले से निकलवाने की अपनी गलती का अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। सोनमर्ग तक इन्हें ढूंढा किन्तु इनका कहीं भी पता न चला। सिंधु नदी के किनारे दोनों निराश होकर घूमते-फिरते मई गांव में पहुंचे। वहां पर नदी के किनारे कई दिनों तक रहे। कोई खाद्य-सामग्री उपलब्ध न हो सकी अतः शहतूत खाकर निर्वाह किया। महीनों तक नदी का किनारा ही उनका निवास स्थान था और शहतूत भोजन। इसके बाद मई गांव में चनार के पेड़ के नीचे नहर के किनारे भगवती के मन्दिर में रात्रि को सोने लग गए थे किन्तु अंधेरे में ही उठकर नदी के किनारे चले जाया करते थे।

भगवती देवी की विशेष कृपा

महेश्वरनाथ नामक ब्राह्मण नित्यप्रति भगवती को आधा सेर खीर का भोग लगाया करता था। एक दिन व्यासदेवजी और राम ने सोचा कि देवता तो केवल भावना, भाव और भक्ति से प्रसन्न होते हैं। भक्त लोग मूर्ति के आगे भोजन रखकर स्वयं ही देवी का प्रसाद मानकर उसे खा लिया करते हैं। देवी तथा देवता तो किसी प्रकार का भोग खाते नहीं। इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। वे दोनों आजकल शहतूतों पर ही निर्वाह कर रहे थे अतः देवी के प्रसाद रूप में उस खीर को दोनों ने बांट कर खाना प्रारंभ कर दिया। खीर खाने के बाद मिट्टी की तश्तरी को चनार के पेड़ के नीचे जड़ के पास रख दिया करते। रात को वहीं पर शयन करके प्रातः ४ बजे ही उठकर नदी पर साधना के लिए चले जाते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल जब

महेश्वरनाथ मन्दिर में आया और खीर की तश्तरी खाली देखी तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि भगवती ने उसके भोग को ग्रहण किया है। वह इसी प्रकार खीर का भोग देवी को पहिले की अपेक्षा अधिक लगाता रहा और उस भोग को दोनों ब्रह्मचारी नित्यप्रति खाते रहे। कई दिनों तक यही क्रम चलता रहा। एक दिन अचानक महेश्वरनाथ इन दोनों से नदी के किनारे मिला। इसने दोनों से निवेदन किया कि वे उसके मकान पर भोजन किया करें। जब व्यासदेवजी ने इसे स्वीकार नहीं किया तो उसने भोजन को नदी तट पर ही पहुंचाने के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। अब महेश्वरनाथ नित्यप्रति दोनों के लिए भोजन बनवाकर स्वयं ही देने के लिए आने लगा। एक दिन उसने व्यासदेवजी से कहा कि आप और भगवती दोनों मेरे अन्न को ग्रहण करके मुझपर बड़ी कृपा करते हैं, इसके लिए मैं आप दोनों का बड़ा कृतज्ञ हूं। इस पर वह बड़े जोर का कहकहाटा लगाकर हंसे और खीर के भोग का सारा वृत्तान्त सविस्तार कह सुनाया। एक दिन उन्होंने पूछा कि तुम किस उद्देश्य से भगवती की और हमारी सेवा इतनी श्रद्धा और भक्ति से करते हो। इस प्रश्न को सुनकर महेश्वर-नाथ ने अपना सारा हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया। उसके कोई सन्तान नहीं थी। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अपुत्र की मरने के बाद गति नहीं होती। इसीलिए वह बड़ा चिन्तित रहता था। पुत्र-प्राप्ति की उसे बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। व्यास-देवजी ने कहा, "तुम जैसे अनन्य भक्त की मनोकामना अवश्य पूरी होनी चाहिए। जाओ, तुम्हारे एक ही पुत्र नहीं किन्तु इतने पुत्र होंगे कि तुम उनका पालन-पोषण करते थक जाओगे। परन्तु एक बात है, आजसे हम तुम्हारा भोजन ग्रहण नहीं करेंगे क्योंकि तुम सकाम-भाव से सेवा करते थे। तुम्हारी सेवा के फलस्वरूप तुम्हें पुत्रप्राप्ति का वरदान मिल गया है अतः अब तुम किसी प्रकार का कष्ट मत उठाओ और अपना कार्य करो।" कुछ वर्षों के पश्चात् व्यासदेवजी घूमते-फिरते पुनः मई गांव में आ निकले। महेश्वरनाथ का पता लगाया और उसके घर गए। वहां पर बालकों से भरा-पुरा परिवार देखकर बड़े प्रसन्न हुए। क्यों न होते, युवक योगी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ था। होता भी क्यों नहीं! वे गत कई वर्षों से यम और नियमों का बड़ी कठोरता से पालन कर रहे थे। असत्य-भाषण उन्होंने कभी किया ही नहीं। ऐसे ही सत्यनिष्ठ योगियों को सत्यसिद्धि प्राप्त होती है। उनकी वाणी अमोघ हो जाती है। उनकी वाणी से शाप, वरदान तथा आशीर्वाद जो निकलते हैं वे सब सत्य होते हैं। इन्हीं योगियों के लिए कहा गया है कि "सत्यप्रतिष्ठयां क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

मुफ्ती बाग में निवास

संयमजयी तथा तपःपूत व्यासदेवजी की धवल यशःपताका सर्वत्र फहराने लगी। इन्होंने यम और नियमों का निष्ठापूर्वक अनुष्ठान किया था। उनकी वाणी अर्थवती होगई थी। वे जो अपनी वाणी से उच्चारण करते थे वह सत्य का रूप धारण कर लेता था। उनके वरदान सदैव सफल होते थे। महेश्वरनाथ को पुत्रवान् होने का वरदान उन्होंने दिया था। इस वरदान के फलस्वरूप उसके कितने ही पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख यहां नहीं किया जा सकता। इनके वरदानों की सफलता की बातें काश्मीर में सर्वत्र वायु के समान फैल गईं। लोग सदा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के

लिए इच्छुक रहते थे । उनके प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा ग्रौर भक्ति उत्पन्न होगई थी । यद्यपि यम ग्रौर नियम में वे प्रतिष्ठित थे ग्रौर इसके परिणामस्वरूप उन्हें ग्रनेक सिद्धियां भी प्राप्त थीं, किन्तु वे इनका प्रदर्शन कभी नहीं करते थे । यदि उनसे ग्राशीर्वाद प्राप्त करके किसी को कार्य-सिद्धि प्राप्त हो जाती ग्रौर वह हार्दिक भावों से उनकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करता तो वे सदैव विनम्रभाव से यही कहा करते थे कि यह सब प्रभुकृपा का प्रसाद है, हमारे में ऐसी कोई विशेष शक्ति नहीं जिसके परिणामस्वरूप ग्रापको इष्ट प्राप्ति हुई हो । परमात्मा की कृपा के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ।

मई गांव से खीरभवानी को व्यासदेवजी ने प्रस्थान किया । यह स्थान गांधरबल के समीप ही है । यहां भगवती का मन्दिर है, इसके दर्शन किये । यहां से वे गांधरबल ग्राए ग्रौर फिर वहां से हार्वन झील चले गए । यहां पर पूर्णसिंह नाम का एक सिक्ख चौकीदार रहता था । इसने ग्रादरपूर्वक व्यासदेवजी को प्रणाम किया ग्रौर सेवा के लिए ग्राज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना की । उन्होंने कहा कि यह स्थान हमें बहुत पसन्द ग्राया है । यदि कोई एकान्त-सा स्थान हमें यहां मिल जाए तो हम यहां पर कुछ दिन तक निवास करना चाहते हैं । उसने उन्हें ग्रपने भाई रंगीलसिंह के पास जाने के लिए कहा । यह पिस्सू के बाग में चौकीदारी करता था । यह भी बड़ा एकान्त स्थान था । वे रंगीलसिंह के पास गए ग्रौर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । वह इन दोनों ब्रह्मचारियों को मुफ्ती बाग में ले गया । यह बाग हार्वन झील से लग-भग ग्राधा मील दूर था । यह बाग पण्डित मुकुन्दजू की जागीर में था । वे यहां पर सपत्नीक रहते थे । दोनों ने वानप्रस्थाश्रम धारण किया हुग्रा था । रंगीलसिंह दोनों ब्रह्मचारियों को लेकर इनके पास गया ग्रौर निवेदन किया कि ये दोनों कुछ दिन तक यहां निवास करके साधना ग्रौर ग्रभ्यास करना चाहते हैं । यह सुनकर पण्डित मुकुन्दजू को ग्रपार हर्ष हुग्रा ग्रौर तुरन्त ग्रपने कुठार के ऊपर का एक बड़ा कमरा निवास के लिए उन्हें दे दिया । इन पण्डितजी के दो लड़के थे । दोनों ही शहर में रहते थे । एक पटवारी था तथा दूसरा हरिपर्वत पर मंदिर में नौकर था । मुकुन्दजू के बहुत ग्राग्रह करने पर व्यासदेवजी ने उनके पास भोजन करना स्वीकार कर लिया । दोनों ग्रानन्दपूर्वक वहां रहने लगे । मुकुन्दजू ने इनके रहने के कमरे में दरी कालीन ग्रादि बिछवा दिए ग्रौर ग्रोढ़ने-बिछाने के लिए भी पर्याप्त वस्त्र दे दिए । दोनों ब्रह्मचारी प्रतिदिन हार्वन झील पर भ्रमणार्थ जाया करते थे । यहां से एक मील की दूरी पर महाराजा काश्मीर की एक बड़ी शिकारगाह थी । इसमें विभिन्न प्रकार के वन्य पशु रहते थे, जिनमें बाघ, रीछ, सूग्रर, बारहसींगे ग्रादि प्रमुख थे । यह शिकारगाह सैंकड़ों मीलों तक विस्तृत थी । हार्वन झील से लेकर लगभग पहलगांव तक फैली हुई थी । इस शिकारगाह में तारसर, मारसर, चन्द्रसर तथा विवेकसर ग्रादि ग्रनेक झीलें थीं । तारसर झील हार्वन झील से ३० मील दूर थी, तो भी इतनी दूर से उसका पानी इसमें ग्राता था । सारे श्रीनगर में पीने का पानी यहीं से जाता था । इस हार्वन झील का जब निर्माण किया गया था तब इसके ऊपर से ८-१० गांव उठाए गए थे । ब्रह्मचारीजी जब इस झील पर भ्रमण के लिए जाते तब लोगों से प्रायः ग्रपने गुरुदेव के विषय में पूछा करते थे । उनके पुनः दर्शन करने की इन्हें

उत्कट अभिलाषा थी। इस सम्बन्ध में इन्होंने पण्डित मुकुन्दजू तथा रंगीलसिंह से भी बातचीत की थी।

तारासिंह से पुनः समागम

प्रति रविवार को प्रायः श्रीनगर निवासी हार्वन भील पर सैर करने के लिए आया करते थे। दैवयोग से एक दिन तारासिंह भी अपने साथियों सहित वहां आ निकले। ये व्यासदेवजी तथा राम की खोज में थे। तारासिंह ने इनकी बड़ी सहायता की थी। अपने पास इन्हें रखा था। इनके रहने की व्यवस्था की थी। ये दोनों इन्हें सूचित किए बिना ही अवधूत परमानन्दजी के साथ सोनमर्ग की ओर चले गए थे। तभी से तारासिंह इनकी खोज कर रहे थे। वे प्रायः लोगों से इनके विषय में पूछा करते थे। अबकी बार जब वह हार्वन भील पर आए तब यहां के चौकीदार पूर्णसिंह से इन दोनों ब्रह्मचारियों के बारे में पूछताछ करने पर विदित हुआ कि वे इधर ही रहते हैं। व्यासदेवजी तथा राम दोनों हार्वन भील पर एक एकान्त स्थान पर समाधि लगाने आया करते थे। इस रविवार को भी वे आए और एकान्त में एक पेड़ के नीचे समाधिस्थ होकर बैठ गए। पूर्णसिंह ने यह सब समाचार तारासिंह को सुना दिया और एक मुसलमान लड़के को जहां वे दोनों बैठे थे वहां जाकर बुला लाने के लिए कहा। उसने आकर सूचित किया कि वे दोनों आखें बन्द करके बैठे हैं। मेरे पुकारने पर भी उन्होंने आंखें नहीं खोलीं और न मेरी बात का कुछ उत्तर ही दिया। उस मुसलमान लड़के को लेकर तारासिंह समाधिस्थ ब्रह्मचारियों के पास चले गए और जब तक उनका समाधि से उत्थान नहीं हुआ तब तक वहीं बैठे रहे। सूर्यास्त होने पर दोनों युवक-योगाभ्यासियों की समाधि टूटी और वे उठकर भील पर भ्रमण करने के लिए चल दिए। तारासिंह और उनके साथी सामने से आकर उन्हें मिले। सबने दोनों को प्रणाम किया। तारासिंह ने विनम्र भाव से निवेदन किया कि आप तो यहां समाधिस्थ होकर बैठे हैं और हम लोग कई मास से आपकी खोज कर रहे हैं। आप बिना ही सूचना दिए चले गए, इसलिए हमें बड़ी परेशानी रही। आजतक आपका कुछ भी पता न लग सका। आज अचानक ही आपको यहां समाधिस्थ देखकर चित्त को बड़ा सन्तोष हुआ। अब तो आप योग-पारंगत होगए हो। कई-कई घण्टे की समाधि का आपको अभ्यास होगया है। ऐसी छोटी आयु में ही आप एक बड़े योगी बन गए हो। आपकी चिराभिलाषा पूर्ण हुई, इसकी हमें बड़ी प्रसन्नता है। तारासिंह ने उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए निवेदन किया, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया और रात हो जाने के कारण उन्हें श्रीनगर जाने का आदेश दिया और कहा कि हमारे भागने का कारण और इस समय तक रहने के स्थानों के विषय में फिर कभी बताया जाएगा। तारासिंह ने कहा कि वह आगामी रविवार को तांगा लेकर आएगा, तब आप लोग हमारे साथ चलने के लिए तैयार रहें। पूर्व निश्चयानुसार तारासिंह तांगा लेकर दोनों ब्रह्मचारियों को लिवा लाने के लिए आया। वे दोनों उसके साथ चल दिए। व्यासदेवजी ने दो-तीन घण्टे बैठकर साढ़े चार मास का अपना सारा विवरण तारासिंह को सुनाया। वह सब घटनाएं सुनकर बड़ा अचम्भित हुआ। उससे व्यासदेवजी को मालूम हुआ कि उसने अवधूत परमानन्दजी को दूध-गंगा के किनारे भ्रमण करते हुए देखा था किन्तु उसके बाद कभी उनके दर्शन-लाभ नहीं हुए। वे तीन-चार दिन तक

तारासिंह के पास ठहरे किन्तु अब उन्हें अपने गुरुदेव की तीव्र स्मृति हो आई और उन्होंने इन्हें ढूंढने का पुनः निश्चय किया। तारासिंह के पास आने के बाद वे एक दिन पुनः हार्वन झील पर गए। वहां उन्हें एक महाराजगंज का पंजाबी दुकानदार मिला। उससे बहुत देर तक वार्तालाप करने के बाद व्यासदेवजी के उससे अपने गुरुदेव अवधूतजी के विषय में पूछने पर विदित हुआ कि आषाढ़ मास में उसने इन्हें दूधगंगा के किनारे रहते हुए देखा था। वे प्रायः मौन रहते थे। जन-सम्पर्क उन्हें रुचिकर न था। सदा एकान्त में रहते थे। बड़े मिताहारी थे। रुपया पैसा कुछ अपने पास नहीं रखते थे। एक कौपीन तथा एक फटी-सी लोई ही उनकी सम्पत्ति थी। इसी मास में मैंने उन्हें किराया देकर बस में बिठाया था। उन्होंने कहा था कि वे अब गंगोत्री जाएंगे और उधर ही कहीं निवास करेंगे। गुरुदेव के विषय में यह सब समाचार सुनकर व्यासदेवजी का मन पुनः उद्विग्न-सा होगया। एक बार फिर अपने गुरु की खोज करने का निचश्य किया। तारासिंह को अपने विचारों से सूचित करके जम्बू पैदल ही जाने का संकल्प कर लिया।

अमृतसर में निवास

व्यासदेवजी और राम श्रीनगर से चलकर पामपुर, काजीकुण्ड, बनिहाल, रामवन, बटोतादि स्थानों पर होते हुए ऊधमपुर पहुंचे। यहां पर श्री रघुनाथजी के मंदिर में १५ दिन तक निवास किया। इसके बाद वैष्णवदेवी की यात्रा की। कटरे में कुछ दिन तक ठहरे। इसके पश्चात् जम्बू पधारे और यहां पर भी एक मंदिर में ही निवास किया। लगभग एक सप्ताह तक यहां ठहरे। दिवाली के पश्चात् रेलगाड़ी द्वारा अमृतसर पहुंचे। यहां पर लोगड़ आर्यसमाज में ठहरे। यह सार्वजनिक स्थान था अतः अध्ययन और साधन में बड़ी बाधा उपस्थित होती थी। किसी विद्वान् पण्डित से अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पढ़ने की बड़ी अभिलाषा थी। काश्मीर जाने का भी प्रधान कारण यही था किन्तु वहां पर किसी वैयाकरण विद्वान् के न मिलने के कारणवश उनकी व्याकरण पढ़ने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी थी। इन्होंने लाला मैयादास से अपने निवासादि का प्रबंध करने तथा किसी योग्य संस्कृत के विद्वान् से परिचय करवा देने के लिए निवेदन किया। लालाजी दूसरे दिन प्रातः ९ बजे के लगभग इन दोनों ब्रह्मचारियों को लेकर स्वांक मण्डी में पण्डित हरिश्चन्द्रजी के पास गए। बाजार नरसिंहदास में मैयादास की लाला शिवसहायमल महेश्वरी से भेंट हुई। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि लालाजी दो ब्रह्मचारियों के निवास और अध्ययन की व्यवस्था करने जा रहे हैं तब उन्होंने कहा कि इन्हें हमारी बैठक में, जो अहलूवाले कटरे में है, ठहरा दो। ये दोनों भोजन भी मेरे मकान पर ही कर लिया करेंगे।

लाला शिवसहायमल से संपर्क—व्यासदेवजी के निवास तथा भोजन की व्यवस्था लाला शिवसहाय के मकान पर करके लाला मैयादास पण्डित हरिश्चन्द्र से मिलाने के लिए ले गए। उनसे वार्तालाप करने से विदित हुआ कि इधर तो कोई अष्टाध्यायी और महाभाष्य का विद्वान् नहीं है और न कोई विद्यार्थी इन ग्रंथों को पढ़ता ही है। मैं तो आजकल दर्शनों का अध्ययन कर रहा हूं। मेरे भाई पण्डित कन्हैयालालजी व्याकरण पढ़ाते हैं। किन्तु वे इन दो ग्रंथों को नहीं पढ़ाते। वे सिद्धान्तकौमुदी पढ़ाते हैं। व्यासदेवजी को इससे बड़ी निराशा हुई। शिवसहायजी के पास

लौट आए। इन्होंने इनके निवास का प्रबंध अपनी बैठक में और भोजन की व्यवस्था अपने घर पर कर दी।

अहलूवाले कटरे में इन लालाजी ने एक दुकान पर एक बैठक किराये पर ले रखी थी। यहां पर वे केवल दो घण्टे के लगभग प्रतिदिन बैठते थे। इन्होंने अपना सब कारोबार छोड़ दिया था, केवल हुंडियों द्वारा रुपया व्याज पर दिया करते थे। इनके कोई लड़का नहीं था। केवल दो लड़कियां थीं जिनका विवाह होगया था और अपने श्वसुर-गृह में रहती थीं। ये अपने घर में अकेले ही रहते थे। एक नौकर था जो इनके लिए भोजन बना दिया करता था। ये अच्छे पढ़े-लिखे थे। अच्छे धनाढ्य थे। अच्छे संभ्रान्त व्यक्ति थे। इनके दादा रायबहादुर नरसिंहदास महाराजा रणजीतसिंह के कोषाध्यक्ष थे। ब्रह्मचारियों को अभी लाला शिवसहायमल के पास रहते केवल ३-४ दिन ही हुए थे। वे सोचने लगे कि इन ब्रह्मचारियों के विषय में बिना ही कुछ जाने-बूझे इन्हें पास रखना उचित नहीं था क्योंकि 'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कर्हिचित्'। अतः इन विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने अपनी पेटी में से पचास रुपये निकालकर बाहर रख दिए और उसे खुली छोड़कर स्वयं अन्यत्र चले गए। जब ब्रह्मचारी बैठक से लालाजी के घर पर भोजन करने चले तो उन्होंने पेटी को खुला पाया। उन्होंने पेटी को बन्द करके चाबी अपने पास रख ली और घर जाकर चाबी लालाजी को दे दी और बाहर जो पचास रुपये पड़े थे वे भी उन्हें दे दिए। लालाजी ने चाबी ले ली और बैठक में जाकर पेटी खोलकर देखा तो रुपये पूरे मिले। तब से उन्हें इन दोनों ब्रह्मचारियों पर पूर्ण विश्वास होगया। उन पर सन्देह करने के कारण उन्होंने बड़ा पश्चात्ताप किया। अब ये इन दोनों से बड़ा प्यार करने लगे और उनके लिए वस्त्रादि सब बनवा दिए। यज्ञ के लिए घृत तथा सामग्री की भी व्यवस्था कर दी और इनसे कहा कि जब कभी आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे निःसंकोच भाव से कहा करो, मैं तुरन्त उसकी व्यवस्था कर दिया करूंगा। कम्पनी बाग तथा नहर पर कभी-कभी भ्रमण के लिए जाया करते थे। यहां पर इनकी सन्त बुद्धिप्रकाश से भेंट हुई। इस प्रकार से लाला शिवसहायमल के पास पांच मास तक व्यासदेवजी तथा राम ने निवास किया।

श्री अवधूत परमानन्दजी की पुनः खोज

व्यासदेवजी ने लाला शिवसहायमल से एक दिन धन्यवाद देते हुए कहा कि हमने पांच मास आपके पास बड़े सुख से व्यतीत किए हैं। हमारे गुरु अवधूत परमानन्दजी हमें छोड़कर कहीं अन्यत्र चले गये हैं अतः अब हम उन्हें ढूंढने के लिए गंगोत्तरी की ओर जाना चाहते हैं। सर्दी समाप्त होगई है। हिमालय में जाने के लिए उपयुक्त मौसम है। लालाजी व्यासदेवजी की तपस्या, तितिक्षा, भगवद्भक्ति, स्वाभाविक सरलता, योगनिष्ठा, अध्ययनरुचि, सत्यपरायणतादि गुणों पर बड़े अनुरक्त थे। जब उन्हें व्यासदेवजी ने अमृतसर से अन्यत्र जाने की अभिलाषा व्यक्त की तो वे बड़े उद्विग्न से हो गए। उन्हें इनका अमृतसर से कहीं और जाना रुचिकर नहीं लगा। वे इनसे बड़ा स्नेह करते थे। उनके दृढ़ निश्चय को देखकर उन्हें जाने की अनुमति तो दे दी किन्तु उनसे कहा कि आप दोनों के भोजन, वस्त्र, पुस्तक, यात्रादि का सारा व्यय मैं करूंगा। अभी आप छः मास का व्यय अपने साथ ले जाइए। इसके पश्चात् आप जहां भी हों

मुझे एक पत्र लिख दीजिएगा, मैं तुरन्त रुपया भेज दिया करूंगा। मेरे पास प्रभु की कृपा से पर्याप्त रुपया है। व्यय बहुत थोड़ा है। मेरे पुत्र तो कोई है नहीं। दो लड़कियां हैं जिनका विवाह बड़े धनाढ्य परिवारों में किया है। वे अपने-अपने घरों में बड़ी सुखी हैं। इसलिए आपका व्यय वहन करने में मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। लाला शिवसहाय के बहुत आग्रह करने पर व्यासदेवजी ने अपना तथा राम का व्यय उनसे लेना स्वीकार कर लिया।

अमृतसर से प्रस्थान—दोनों ब्रह्मचारी अमृतसर से रेलगाड़ी में सवार होकर हरिद्वार पहुंचे। वहां जाकर एक धर्मशाला में निवास किया। राम ने हिमालय पर स्वामी परमानन्दजी अवधूत की खोज करने के लिए जाने की अनिच्छा प्रकट की और व्यासदेवजी से कहा कि वह हरिद्वार से नीचे के प्रदेशों में अवधूतजी की खोज करेगा। व्यासजी ने अपने हिमालय-गमन का निश्चय दृढ़ रखा। इस प्रकार दोनों मित्र हरिद्वार पर आकर अलग होगए। व्यासजी उत्तराखण्ड की ओर चले गए और राम ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया। स्वामी परमानन्दजी के विषय में दोनों में यह निर्णय हुआ कि उन दोनों में से जिस किसी को भी वे मिलें वह उन्हें अपने साथ लेकर अमृतसर में लाला शिवसहायजी के मकान पर ले जाए। यदि यह संभव न हो तो इसकी सूचना उनके पास अवश्य पहुंचा दे।

व्यासदेवजी ने राम से विदा लेकर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। लगभग सारे ही हिमालय का पर्यटन ये प्रथम ही अपने प्रारंभिक साधना काल में कर चुके थे। जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ तथा बद्रीनाथ चारों धामों की यात्रा भी आपने कर ली थी। उधर के सभी रास्तों से सुपरिचित थे। उन दिनों इन धामों की यात्रा की महान् कठिनाइयों को वे जानते थे किन्तु परमानन्दजी अवधूत योग-शिक्षा में उनके प्रथम गुरु थे। उनके प्रति उनकी बड़ी निष्ठा, भक्ति तथा श्रद्धा थी। वे उन्हें एक दिन अचानक ही अकेले छोड़कर सूचित किए बिना ही कहीं चले गए। इसका उन्हें महान् दुःख था। बड़े चिन्तित रहते थे। उनको ढूंढने के लिए कई योजनाएं बनाईं और उन्हें कार्यरूप में परिणत भी किया किन्तु अभी तक उन्हें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसीलिए हिमालय के दुर्गम-मार्गों, गगन-चुम्बी चोटियों तथा हिमाच्छादित पथों और खानपानादि की कठिनाइयों की किंचिन्मात्र भी परवाह न करके गुरु की खोज के लिए चल पड़े। पांच महीने तक जंगलों, बीहड़ वनों, पर्वतों, गिरिकंदराओं आदि सभी स्थानों पर उन्हें ढूंढा किन्तु कहीं पर भी उनका पता न लग सका। अतः हताश हो कर लौट आए। यह शायद आश्विन का महीना था। हरिद्वार आकर आप कनखल गए। यहां आकर स्वामी चेतनदेव की कुटिया में ठहरे। यहां पर एक युवक सन्त से समागम हुआ। प्रतिदिन के मेलजोल से दोनों को ही एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो गया। जब व्यासदेवजी ने सहारनपुर जिले में गंगा की नहर के किनारे जाने का अपना निश्चय प्रकट किया तो वह भी इनके साथ जाने के लिए समुद्यत होगया।

मधुकरी का प्रथम अनुभव—व्यासदेवजी अपना भोजन सदैव स्वयं ही बनाया करते थे। व्यय के लिए रुपए भी उनके पास रहते थे। अब लाला शिवसहाय ने स्वयं ही आग्रह करके उनके सारे व्यय का उत्तरदायित्व ले लिया था और छः मास का पूरा व्यय उन्हें दे दिया था। इसलिए भिक्षा-याचना का कभी उन्हें अवसर ही नहीं

मिला। रुपया पास होते हुए भिक्षा मांगना, अपना किसी प्रकार का भार समाज पर डालना, किसी की कृपा के भिखारी बनना वे महान् पाप समझते थे। एक दिन चलते-चलते एक गांव में जा निकले। जब भोजन का समय हुआ तो उस गांव में आटे की दुकान ढूंढ़ने लगे किन्तु वहां पर कोई परचूनी की दुकान ही नहीं थी। दो-तीन दिन तक इसी प्रकार भूखे रहकर व्यतीत किए। इनका साथी सन्त भूख से व्याकुल हो उठा और गांव में भिक्षा याचना के लिए चल दिया। उसको जाता देखकर व्यासदेवजी भी उसके साथ हो लिए। दोनों ने मिलकर गांव की एक गली में प्रवेश किया। एक गृहस्थी के मकान पर गए। व्यासजी तो बाहिर द्वार पर खड़े रहे और दूसरे सन्त ने भीतर जाकर आंगन के द्वार के समीप वाले किनारे पर खड़े होकर भिक्षा-याचना की। उस समय लगभग पैंतीस साल की एक महिला घर में भोजन बना रही थी। उसका स्वभाव बड़ा क्रोधी था। बात-बात पर क्रुद्ध हो जाया करती थी, चिढ़ जाती थी और मरने-मारने को तैयार हो जाती थी। सन्त की आवाज़ सुनते ही वह क्रोध से लाल होगई और जलती हुई लकड़ी चूल्हे में से निकालकर अपने हाथ में लेकर तुरन्त रसोई से बाहिर निकलकर आंगन में आ गई और भिक्षुक सन्त को मारने के लिए समुद्यत होगई। घर से बाहिर निकलकर दोनों पर गालियों की बौछार की। इस दुःखद दृश्य को देखकर सब लोग गली में एकत्रित होगए। सभी बड़े दुःखित हुए। उस अशिष्ट, धर्मविहीन और क्रोधी महिला के निन्दनीय कार्य के लिए उनसे क्षमा-याचना की। इतने में ही वहां एक सज्जन कंधे पर हल रखे हुए आ निकला। जब उसे सारा वृत्तान्त विदित हुआ तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और बड़े विनम्रभाव से उसने व्यासदेवजी को अपने घर भोजन करने के लिए निमंत्रित किया। उन्होंने उसके घर पर जाना स्वीकार नहीं किया। इस पर उसने उन्हें निवेदन किया कि वे सामने वाले कूएं पर बैठें। व्यासदेवजी तथा उनका साथी सन्त दोनों गांव से बाहिर कूएं पर जा बैठे। थोड़ी देर बाद उस किसान की धर्मपत्नी भोजन लेकर आई और बड़े आदर और शिष्टता से उसने दोनों को भोजन करवाया। भिक्षा-याचना करने पर एक देवी तो सन्तों को जलती लकड़ी से मारने के लिए समुद्यत हुई तथा दूसरी ने उन्हें श्रद्धापूर्वक भोजन करवाया। यह संसार विभिन्नताओं का संगम है। इसमें कोई स्वार्थी है तो कोई परमार्थी, कोई विद्वान् है तो कोई मूर्ख, कोई इन्द्रियलोलुप है तो कोई तितिक्षु, कोई विलासी है तो कोई तपस्वी और कोई भगवद्भक्त है तो कोई नास्तिकादि। अब दूसरे सन्त ने इनका साथ छोड़ दिया और वह वापस कनखल लौट गया। व्यासदेवजी ने इस घटना के पश्चात् यह निश्चय किया कि वे कभी भी भिक्षाचर्या नहीं करेंगे। जीवन में प्रथम बार ही इस गांव में भिक्षा मांगी थी और वह भी तीन-चार दिन भूखे रहने के बाद। यदि गांव में परचून की कोई दुकान होती तो भिक्षा मांगने का मौका ही न आता, आटा मोल लेकर वे स्वयं भोजन बना लेते। उस महिला द्वारा अपमानित होने के कटु अनुभव से उन्होंने शिक्षा ली और भविष्य में कभी भिक्षा-याचना नहीं की।

बेहट में नहर के किनारे साधना—अपने साथी सन्त के कनखल लौट जाने के पश्चात् वे बेहट (सहारनपुर) चले गए और वहां पर एक नहर के किनारे साधना करने लगे। वहां पर एक परचूनी की दुकान से आटा दालादि लेने के लिए गए। दुकानदार का नाम कबूल था। जब इसने देखा कि ग्राहक एक ब्रह्मचारी है तब उसने कहा कि

आप निश्चिन्त भाव से अपनी साधना करें। भोजन बनाने के झंझट में न पड़ें। मैं आपके भोजन की पूरी व्यवस्था अपने घर पर कर देता हूं। आप स्वयं वहां आकर भोजन कर जाया करें अथवा नहर के किनारे जहां पर आप साधना करते हैं वहां पहुंचा दिया जाया करेगा। कबूल नित्यप्रति यथासमय व्यासदेवजी के लिए नहर पर भोजन भेजने लगा। दुकानदार की इस प्रार्थना को बड़ी कठिनाई से इन्होंने स्वीकार किया था।

जिस नहर पर ब्रह्मचारीजी साधना कर रहे थे वह गंगा की नहर से निकाली गई थी, अतः छोटी-सी ही थी। इसका जल नीला था। व्यासदेवजी ने इसके नीले जल पर आंखें खोलकर त्राटक करना प्रारम्भ कर दिया। कई-कई घण्टे तक निर्निमेष नेत्रों से त्राटक किया करते थे। इससे इनकी दृष्टि इतनी तेज होगई थी कि दिन के समय भी ये तारे देख सकते थे। यहां पर दो मास तक रह चुकने के पश्चात् ये रुड़की चले गए। शास्त्राध्ययन के प्रति इनकी बड़ी रुचि थी क्योंकि ये एक विद्वत्तापूर्ण तथा सर्वशास्त्रपारंगत योगी बनना चाहते थे, एक साधारण योगी नहीं। इसलिए अमृतसर जाकर विद्याध्ययन करने का पुनः संकल्प किया।

पुनः अमृतसर में निवास

व्यासदेवजी के प्रारंभिक तपस्या तथा योगाभ्यास के काल के साथ अमृतसर नगर का बड़ा सम्बन्ध है। धन्य है यह नगरी जिसमें अखण्ड ब्रह्मचारी व्यासदेवजी ने वर्षों ही तपस्या की और एक महान् योगी बने। शीतकाल में ये अमृतसर में योगाभ्यास तथा विद्याध्ययन करते थे और ग्रीष्म ऋतु में प्रायः काश्मीर चले जाया करते थे। आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए शीतप्रधान प्रदेश की आवश्यकता होती है क्योंकि इनके अभ्यास से मस्तिष्क में उष्णता की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए योगी और तपस्वी प्रायः गिरिकन्दराओं में निवास करते हैं।

पुनः लाला शिवसहायमल की बैठक में निवास—साधना काल में शिवसहायमल से व्यासदेवजी का विशेष सम्बन्ध रहा। इन्होंने इनकी बड़ी सहायता की। अपने मकान में रखा और वर्षों तक इनके सारे व्यय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। व्यासदेवजी पूर्ववत् अब भी इनकी अहलूवाले कटरे वाली बैठक में रहने लगे। यहां पर शिवसहायजी से मिलने के लिए अनेक व्यापारी तथा धनाढ्य दुकानदार आया करते थे। ब्रह्मचारीजी के ब्रह्मचर्य, साधना, तप, त्याग, योग, विरक्ति तथा शास्त्राध्ययन आदि के विषय में प्रायः बातें हुआ करतीं थीं। इनमें से कइयों ने व्यासदेवजी से घनिष्ठ परिचय कर लिया। इनमें से काह्लचन्द, रामभज, हंसराज, मायाराम आदि मुख्य हैं। यहां रहते हुए अभी कुछ ही दिवस हुए थे। इनकी प्रसिद्धि सारे नगर में फैल गई। लोग दर्शनार्थ नित्य आने लगे। धीरे-धीरे दर्शकों का एक तांता-सा बंधने लगा। इससे इनके अध्ययन तथा साधना में बाधा उपस्थित होने लगी, अतः अब इन्होंने नहर के किनारे किसी एकान्त स्थान में निवास करके अध्ययन और साधना करने का निश्चय किया। जब इस निश्चय से शिवसहायमल को सूचित किया तो उनके तथा अन्य कई श्रद्धालुओं के समझाने पर इस विचार को स्थगित कर दिया क्योंकि शीतकाल में नहर के किनारे शीत बहुत होता है। ग्रीष्म ऋतु में वहां आराम रहता है।

अब व्यासदेवजी ने पण्डित हरिश्चन्द्र से योगदर्शन तथा उस पर व्यास-भाष्य का अध्ययन पुनः प्रारंभ कर दिया। दो-तीन विद्यार्थी और भी इनके साथ पढ़ने के लिए आने लगे। योगदर्शन के अध्ययन के साथ ही पण्डित कन्हैयालाल से सिद्धान्तकौमुदी भी पढ़ना प्रारंभ कर दिया। इनके भोजन की व्यवस्था शिवसहायमल तथा काहनचन्दजी ने की थी। व्यासदेवजी भोजन शिवसहायमलजी के पास ही करते थे किन्तु काहनचन्द भी व्यासदेवजी के व्यक्तित्व, धर्मनिष्ठा, भगवद्भक्ति तथा कठिन तपस्या से बड़े प्रभावित थे, अतः इन्हें भोजन करवाकर वे भी पुण्य-लाभ करना चाहते थे, इस लिए उन्होंने भी भोजन-व्यवस्था का भार अपने ऊपर लेने का निश्चय कर लिया था।

सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची में साधना—ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ में ही नहर के किनारे सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची में एक घास की कुटिया व्यासदेवजी ने अपने लिए बनवा ली। यह कुटिया बहुत छोटी-सी थी। इसमें केवल एक तख्त ही बिछाया जा सकता था। इसके बाद इसमें चलने फिरने के लिए भी स्थान न रहता था। इसके आगे जो भूमि थी उस पर एक यज्ञशाला का निर्माण किया गया और आसपास फूलों के पौधे लगा लिए गए। यहां पर निवास करके ब्रह्मचारीजी ने बड़ी कठिन साधना का प्रारंभ किया। ग्यारह बजे से दो बजे तक योगदर्शन, सिद्धान्तकौमुदी आदि पढ़ने के लिए नगर में जाते थे और शेष समय योगाभ्यास किया करते थे। प्रायः कड़ी धूप में बैठकर जाप करते थे। घण्टों ही धूप में बैठने से पसीना बह निकलता था और जब शीतकाल होता तो नहर के जल में बैठकर जाप करते थे। जल उनके गले तक रहता था। द्वन्द्वों से मुक्तिलाभ करना उनका उद्देश्य था। देहाध्यास का परित्याग भी इसका एक कारण था। सर्दी की मौसम में कपड़ा नहीं पहिनते थे और रजाई कम्बल आदि भी नहीं ओढ़ते थे। जब कभी अधिक शीत होता था तो विविध प्राणायामों के द्वारा शरीर को गर्म कर लिया करते थे। आसन और प्राणायाम का अभ्यास शीतकाल में अधिक करते थे। प्राणायाम का अभ्यास इतना बढ़ा लिया था कि कभी-कभी प्राणायाम करके छाती पर तख्त रखवाकर उस पर ५-६ आदमियों को बिठा लिया करते थे। इन्हीं दिनों प्राणायाम करके अपने वक्षस्थल पर लोगों से जोर-जोर से मुक्के लगवाया करते, तथा दोनों भुजाओं पर रस्सी बंधवा कर खिंचवाया करते थे। सन्त बुद्धिप्रकाशजी के ४-५ नवयुवक शिष्य भी प्राणायाम तथा कुश्ती आदि में रुचि रखते थे। व्यासदेवजी ये चीजें इन्हें प्रायः सिखाया करते थे।

व्यासदेवजी ने इस बगीची में रहकर बड़ी कठिन साधना की। नित्यप्रति रात्रि के दो बजे जग जाते थे और प्रातः आठ बजे तक अभ्यास करते थे। जब कभी गर्मी अधिक होती थी तो नहर पर पानी की ठोकर के पास जाकर अभ्यास किया करते थे। योगाभ्यास के साथ-साथ शास्त्राध्ययन भी बराबर चलता रहता था। एक बार एक विद्यार्थी ने व्यासदेवजी से कहा कि तीतरी सहारनपुर की तहसील में एक ग्राम है। वहां पर प्यारेलाल नाम के एक ब्रह्मचारी रहते हैं। उन्हें अष्टाध्यायी का अच्छा ज्ञान है। यह सुनते ही वे तीतरी अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए चले गए। वहां जाकर कुछ मास तक इस ग्रंथ का प्यारेलालजी से अध्ययन किया किन्तु वे स्वयं ही बनारस पढ़ने के लिए चले गए, अतः अन्य कोई प्रबंध वहां पर पढ़ने का न देखकर व्यासदेवजी अमृतसर वापस आगए।

पं० हरिश्चन्द्रजी से व्यासदेवजी ने दर्शन, निरुक्त तथा उपनिषदें पहिले ही पढ़ ली थीं। पण्डितजी का जन्म एक धनाढ्य परिवार में हुआ था। आजन्म ब्रह्म-चर्य-व्रत को धारण करके विद्यार्थियों को पढ़ाने का व्रत धारण किया था। इसीलिए व्यासदेवजी का इनसे बड़ा स्नेह था। जिनके गुण, कर्म तथा स्वभाव समान होते हैं उनमें मैत्रीभाव का उदय होना स्वाभाविक ही है। हरिश्चन्द्रजी बड़े प्रेमभाव से व्यासदेवजी को पढ़ाते थे और योग तथा विज्ञान सम्बन्धी अति गूढ़ रहस्यों की विशद व्याख्या करके विषय को हृदयंगम करवाया करते थे।

व्यासदेवजी ने सन्त बुद्धिप्रकाशजी की बगीची में अपने लिए एक पर्णकुटि बनाली थी। इसी में रहकर अपनी साधना और अभ्यास किया करते थे। इस कुटिया में इन्हें बड़ी असुविधा थी, विशेषकर वर्षाकाल में। इसी कुटिया में कई साल तक ये रहे। जब मोतीराम आटेवाले ने इस बगीची के पास ही एक अच्छा बड़ा उद्यान बनवाकर उसमें सन्तों और महात्माओं के निवास के लिए १६ कुटियाएं बनवा दीं, तब उन्होंने व्यासदेवजी से उद्यान में अपने पसन्द की एक कुटिया में आकर निवास करने के लिए आग्रह किया तो वे वहां जाकर रहने लगे।

सर्प ने ब्रह्मचारी व्यासदेवजी की चोर से रक्षा की—व्यासदेवजी प्रायः ज्येष्ठ मास में किसी न किसी पहाड़ पर चले जाया करते थे क्योंकि गर्मी में साधना और अभ्यास में बाधा उपस्थित होती थी। ये सात मास अमृतसर में रहते थे और पांच मास प्रायः काश्मीर रहा करते थे। कभी-कभी किसी अन्य पर्वत पर भी चले जाते थे। एक बार गर्मी में किसी पर्वत पर जाने की सुविधा प्राप्त न हो सकने के कारण अमृतसर में ही रहना पड़ा। गर्मी के आधिक्य के कारण नहर पर पानी की ठोकर के पास रात्रि में आकर योगाभ्यास किया करते थे। आस-पास कई स्थानों पर सर्पों ने अपने बिल बना रखे थे। वहां पर एक बड़ा घातक, लम्बा, काला सर्प रहता था। जब व्यासदेवजी नहर पर अभ्यास करने के लिए आते तब यह भी प्रायः अपने बिल में से निकलकर उनके पास आ बैठता था और उनके अभ्यासकाल तक वहीं बैठा रहता। ऐसा प्रतीत होता है मानो वह उनकी रक्षार्थ ही वहां आता था। जब व्यास-देवजी उठकर अपनी कुटिया में चले जाते तो यह भी धीरे-धीरे अपने बिल में प्रविष्ट हो जाता था। पानी की ठोकर के पास ही नहर पर एक छोटा-सा पुल बना हुआ था। इस पर गाड़ियां नहीं चल सकती थीं। केवल आदमी ही इसके ऊपर से जा सकते थे। एक दिन की बात है कि रात्रि के लगभग ग्यारह बजे छः सात चोर चोरी की तलाश में इधर-उधर घात लगाते फिर रहे थे। वे वहां आ निकले। व्यासदेवजी के पास एक मुरादाबादी लोटा देखकर उसको चुराने के लिए उनका जी ललचाया और उनमें से एक झट उठाने आ गया किन्तु पास ही वही कृष्णनाग बैठा था। जब उसने देखा कि व्यासदेवजी की यह बिना आज्ञा प्राप्त किये आया है और चोरी करना चाहता है तो उसने बड़े जोर से फुंकार मारी और उसकी ओर झपटा। चोर भय से कांपने लगा और जमीन पर गिर पड़ा। बड़ी कठिनाई से उठकर जान बचाने के लिए भागा। इन चोरों ने नगर में खूब चक्कर लगाए किन्तु कहीं पर भी चोरी करने का अवसर नहीं मिला। प्रातः होते जब लौटने लगे तो एक खरबूजों के खेत पर छापा मारा और बहुत से खरबूजे बांधकर ले चले। जब व्यासदेवजी के पास पहुंचे

तो उनकी ओर विनोद से कई खरबूजे फेंके किन्तु सर्प के भय से पास जाने का साहस नहीं हुआ।

इन दिनों अमृतसर में चोरियों की दुर्घटनाएं प्रायः प्रतिदिन होती थीं। अमीर, गरीब, साधु तथा सन्त कोई भी इनसे न बच सका था। एक दिन रात्रि के तीन बजे जब व्यासदेवजी भजन में तल्लीन थे तब तीन-चार चोरों ने मोतीराम की बगीची की दीवार को फांदकर उनकी कुटिया का दरवाजा खटखटाया। वे ध्यान-मग्न थे अतः उन्हें किसी प्रकार की आवाज सुनाई नहीं दी। जब चोरों ने मिलकर खूब जोर से शोर किया और किवाड़ों को तोड़ देने की धमकी दी तब उनकी समाधि भंग हुई और उन्होंने दरवाजा खोला। चोर भीतर घुस आए और ललकार कर कहा, "जो तुम्हारे पास है सब यहां रख दो, अन्यथा तुम्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।" व्यासदेवजी ने बड़े धैर्य से मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "जो कुछ मेरे पास है वह आपके सामने है। आप जो चाहें सहर्ष ले जा सकते हैं।" चोरों ने सारी कुटिया में इधर-उधर खोजा किन्तु उनके मनपसन्द का कोई सामान उन्हें दिखाई न दिया। वे एक-दो चीजें लेकर चलते बने।

व्यासदेवजी ने चोरों को भोजन बनाकर खिलाया—एक बार रात्रि के दस बजे के लगभग बारह चोर उद्यान में आए। व्यासदेवजी की कुटिया में लालटेन का प्रकाश हो रहा था किन्तु वे समाधिस्थ थे। उनके शोर से उनकी समाधि टूट गई और उन्होंने दरवाजा खोल दिया। उन्होंने व्यासदेवजी से भोजन की प्रार्थना की। इन्हें उनकी दशा देखकर बड़ी दया आई। उनके पास ५-६ सेर आटा, मूंग की दाल और थोड़ा-सा घी था। उन्होंने इनके लिए भोजन तैयार किया और उनको खिलाया। वे सब बड़े प्रसन्न हुए। उनमें से एक वयोवृद्ध ने व्यासदेवजी से आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की किन्तु वे भला पापियों को उनके पाप कर्म के लिए आशीर्वाद क्यों देते! वे पापी से घृणा नहीं करते थे। उनके सुधार का पूरा प्रयत्न करते थे, किन्तु उनके पाप से उन्हें बड़ी घृणा थी, अतः उन्होंने इससे साफ इन्कार कर दिया। तब उस वृद्ध चोर ने व्यासदेवजी का हाथ पकड़कर बलपूर्वक सबकी पीठ पर थापी देकर हाथ फिरवाया और चलते बने। अमृतसर में अफीम की दुकान में जा चोरी की।

कुछ दिनों बाद वे चोर पुनः व्यासदेवजी की कुटिया में आए और एक थान मलमल का तथा एक सौ एक रुपया उनकी भेंट करना चाहा, किन्तु व्यासदेवजी इस पापपूर्ण भेंट को स्वीकार करने के लिए कभी भी समुद्यत न थे अतः वहां से उठकर नहर की ओर चल दिए। पापात्माओं में भी कभी-कभी सद्वृत्तियां तिरोहित रूप में रहती हैं। उस दिन तो ये चोर निराश होकर चले गए किन्तु चार-पांच दिन के पश्चात् पुनः वे व्यासजी को भेंट देने के लिए आए। उस समय व्यासजी कुटिया में नहीं थे। पास ही कहीं ध्यानमग्नावस्था में बैठे थे। कुटिया खाली देखकर वे एक मलमल का थान, एक सौ एक रुपये तथा बहुत-सी मिठाई कुटिया में रखकर चले गए। कुटिया में लौटने के बाद व्यासदेवजी यह सब सामान देखकर चकित हुए। यह समझकर कि यह सब चीजें उन चोरों ने ही यहां भेंटरूप में रखी हैं उन्होंने वे सब आस-पास के दीन-दुःखी तथा दरिद्र लोगों को बांट दीं।

पुलिस के सिपाहियों से मुठभेड़—इन दिनों व्यासदेवजी पं० हरिश्चन्द्र से सांख्यदर्शन तथा न्यायदर्शन पढ़ा करते थे। उनसे पढ़ने के पश्चात् एक दिन वे लाला शिवसहायमल के पास उनके मकान पर चले गए। वहां बातें करते-करते लगभग १० बज गए। उन्होंने उनसे रात्रि को वहीं शयन करने के लिए आग्रह किया किन्तु इससे साधन तथा अभ्यास में बाधा की आशंका करके उन्होंने वहां ठहरना पसन्द नहीं किया। मोतीराम की बगीची में पहुंचने के लिए मार्ग में लगभग एक मील तक निर्जन जंगल आता था। इस जंगल में बहुत चोरियां तथा हत्याएं हुआ करती थीं। व्यासदेवजी को भी यह जंगल पार करना पड़ा। उस रात्रि को छः-सात सिपाही उस जंगल में चोरों की घात लगाए बैठे थे। व्यासदेवजी की खड़ाऊं के शब्द को सुनकर उन्होंने जोर से चिल्लाकर कहा, "ठहरो, कौन जा रहा है?" व्यासदेवजी ने इन्हें चोर समझा। उन्हें भय था कि कहीं उनकी घड़ी ये न छीन लें, अतः वे और भी तीव्रगति से चलने लगे। सिपाहियों ने यह देखकर पुनः आवाज दी। इससे व्यासदेवजी खड़ाऊं उतारकर जोर से भागे और बुद्धिप्रकाशजी की बगीची में प्रविष्ट हो गए। इस बगीची के चारों ओर कांटेदार तार की बाड़ लगी हुई थी। व्यासदेवजी इसको फांदकर अन्दर चले गए। सिपाहियों ने इनका पीछा किया किन्तु वे उन्हे पकड़ न सके और बगीची में घुसने लगे तो तार में फंसकर गिर पड़े और घायल हो गए। सन्त तेजप्रकाशजी ने जोर से चिल्लाकर कहा, "इधर मत आना, वरना मार दिए जाओगे।" सिपाहियों ने कहा, "सन्तजी! आपकी बगीची में एक चोर भागकर आया है, उसे हमारे सुपुर्द कर दो।" जब उन्हें मालूम हुआ कि भागने वाला भी एक सन्त है तो वे बड़े हंसे। व्यासदेवजी ने कहा कि "तुम एक सन्त को भी नहीं पकड़ सके, तुम चोरों को कैसे पकड़ते होगे और किस प्रकार उनका सामना करते होगे?" सिपाहियों ने कहा, "हमारा काम सन्तों को पकड़ना नहीं है, चोरों को पकड़ना है। यदि हमें पता होता कि आप सन्त हैं तो हम आपके पीछे न दोड़ते।"

उपरोक्त घटनाओं के कारण व्यासदेवजी के वैराग्य ने और भी तीव्र रूप धारण कर लिया। उनको तत्कालीन समाजसंगठन दोषपूर्ण दिखाई देने लगा। यदि सब को जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्य हो तो इस प्रकार की चोरियों की संख्या बहुत कम हो सकती है। जिनके पास खाने को भोजन, शीत, गर्मी और वर्षा से बचाव के लिए मकान, पहनने को कपड़े, रोग से बचने के किए औषध नहीं है, तो भला वे चोरी नहीं करेंगे तो क्या करेंगे! "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।"

आकार-मौन तथा गायत्री-पुरश्चरण—शीतकाल का समय था। ब्रह्मचारीजी ने आकार-मौन धारण करके सवा लाख गायत्री मन्त्र का पुरश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया। अब इन्होंने मोतीरामजी की बगीची वाली पक्की कुटिया में रहना छोड़ दिया। वहां पर जाप और ध्यान में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाया करते थे और चोर भी पक्की कुटिया में निवास के कारण समझते थे कि इस सन्त के पास बहुत रुपया होना चाहिए। उसे चुराने के लालच से प्रायः चोर आकर तंग किया करते थे, पर उन्हें दो-चार सेर आटे, मूंग की दाल, थोड़े घी और दो वस्त्रों के अतिरिक्त कभी कुछ भी इस कुटिया में दिखाई नहीं दिया और वे निराश होकर चले जाते थे।

इसलिए व्यासदेवजी अब सन्त बुद्धिप्रकाशजी की बगीची में अपनी पुरानी पर्णकुटि में आकर रहने लग गए। यहां आकर चैत्र मास की संक्रान्ति के दिन इन्होंने आकार मौन व्रत और गायत्री पुरश्चरण की समाप्ति की।

ब्रह्मचर्य-व्रत की परीक्षा—अभी व्यासदेवजी ने अपना आकार-मौन समाप्त भी नहीं किया था कि उनके सामने एक बड़ा भारी संकट आकर उपस्थित हो गया। अमृतसर के लाला काहनचन्द ब्रह्मचारीजी के अनन्य भक्त थे और इनके प्रति इनकी अत्यन्त श्रद्धा, निष्ठा तथा विश्वास था। वे इनसे प्रेम भी बहुत करते थे। एक दिन उन्होंने अपने साले दीवानचन्द से इनके स्वभाव, तप, व्रत, साधना, जप तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य की बड़ी प्रशंसा की। इन्होंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया, क्योंकि मनुष्य एक बन्द बोतल है। ऊपर से यह बोतल बड़ी सुन्दर दृष्टिगोचर होती है किन्तु इसके भीतर कैसा विष भरा है इसे कोई समझ नहीं सकता। लिफाफा कितना ही सुन्दर हो पर इसके अन्दर क्या मजमून लिखा हुआ है इसे जानना असम्भव है। इसी प्रकार से मनुष्य के बाह्यरूप से उसका वास्तविक स्वरूप नहीं समझ में आ सकता है। प्रायः मनुष्य दीखने में कुछ और होते हैं और भीतर कुछ और। उन्होंने इन ब्रह्मचारीजी की गणना भी ऐसे ही लोगों की कोटि में की और इनके ब्रह्मचर्य की परीक्षा लेनी चाही। साला और बहनोई दोनों में इस विषय पर एक शर्त ठहर गई। दीवानचन्द ने काहनचन्द से कहा कि यदि ये ब्रह्मचारीजी परीक्षा में सच्चे उतरे तो मैं आपको ४०० रुपये दूंगा और यदि ये असफल रहे तो आप मुझे २०० रुपये देना। इन्होंने ब्रह्मचारीजी की परीक्षा लेने के लिए अमृतसर की दो प्रसिद्ध वैश्याओं को उनकी कुटिया में भेजा। व्यासदेवजी उस समय अपनी कुटिया में बैठकर जाप कर रहे थे। कुटिया के सामने एक बड़ी यज्ञशाला बनी हुई थी। इसमें वे नित्यप्रति यज्ञ किया करते थे। यज्ञ किए बिना वे भोजन नहीं करते थे। यह उनका अचूक व्रत था। इसी यज्ञशाला में बैठकर इन कुलटा-स्त्रियों ने ब्रह्मचारीजी को ब्रह्मचर्य से पतित करने के लिए योजना बनाना प्रारम्भ किया। अतः उन्होंने उन पर अपना जादू चलाने का प्रयत्न किया। जब व्यासदेवजी ने इनकी ओर किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं दिया तो वे बड़े जोर-जोर से कोलाहल करके कामोद्दीपक वार्तालाप करने लगीं। आकार-मौन के कारण ब्रह्मचारीजी बोल तो सकते ही न थे अतः इशारे से इन्हें वहां से चले जाने के लिए कहा। डण्डा उठाकर मारने की धमकी भी दी किन्तु ये टस से मस न हुईं। तब उनका मन्यु कुछ जागृत हो आया और वे पास ही एक उद्यान में गए जहां पर कारीगर लोग एक चारदिवारी बना रहे थे। इन्होंने अपने हाथ की एक अंगुली से जमीन पर गुरमुखी भाषा में उन्हें लिखकर समझाया कि मेरी कुटिया में दो वैश्याएं आई हुई हैं और वे मुझे बड़ा परेशान कर रही हैं तथा मेरे भजन में विघ्न उपस्थित कर रही हैं। तुम लोग वहां चलो और उन्हें वहां से भगाओ। वे अपने फावड़े लेकर तुरन्त वहां गए और उन्हें बहुत गालियां दीं। जब वे ढीठ बनकर निर्लज्जतापूर्वक वहीं बैठी रहीं तब उन्होंने मारने की धमकी दी। वे इससे बड़ी भयभीत हुईं और लज्जित होकर वहां से भाग गईं।

जब दीवानचन्द और काहनचन्द को यह समाचार मिला तो वे बड़े प्रसन्न हुए और साथ ही लज्जित भी। उन्होंने ब्रह्मचारीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

काहनचन्द की उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति में और भी अधिक वृद्धि हो गई। इस परीक्षा से अमृतसर के नर-नारियों में उनके प्रति निष्ठा बढ़ी और वे अब उनका अधिक सम्मान करने लगे। वे दोनों उनके पास गए और लज्जित होकर वेश्याओं के सम्बन्ध में सारी कथा उन्होंने सुनाई और साष्टांग करके विनम्र भाव से उनसे क्षमा-याचना की। व्यासदेवजी कभी क्रोध तथा आवेश में नहीं आते थे। वे समुद्र के समान गम्भीर, चन्द्रमा के समान सौम्य, सूर्य के समान तपःपूत और हिमालय के समान धीर और अटल थे। वे सदैव शान्त तथा गम्भीर मुद्रा में रहते थे। उनकी मनःशान्ति कभी भंग नहीं होती थी। दीवानचन्द तथा काहनचन्दजी से सारी कथा सुनकर उनकी मुखमुद्रा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। वे किंचित् मुस्करा भी दिए। ये दोनों बड़े लज्जित हुए।

काष्ठ मौन तथा सवा करोड़ गायत्री पुरश्चरण

बुद्धिप्रकाशजी की बगीची में व्यासदेवजी ने मौन तथा सवा लाख गायत्री पुरश्चरण की समाप्ति चैत्र मास की संक्रान्ति के दिन की और उसी दिन काष्ठ-मौन ले लिया और सवा करोड़ गायत्री जाप का व्रत धारण किया। केवल प्रत्येक मास की संक्रान्ति के दिन एक-दो घण्टे बोला करते थे क्योंकि उस दिन वे बाजार से खाद्य-सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामान मंगवाया करते थे। इस पुरश्चरण को महाराजजी ने चार वर्ष में समाप्त किया। त्याग, व्रत और वैराग्य भावना तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। अब अध्ययन के प्रति भी कोई विशेष रुचि नहीं रही थी। इधर-उधर कहीं जाना बन्द कर दिया था। जनसंपर्क बिल्कुल पसन्द नहीं था। नितान्त एकान्त में रहना अधिक रुचिकर होगया था। पुरश्चरण के प्रारंभिक काल में तो बारह हज़ार गायत्री का जाप प्रतिदिन करते थे। इन दिनों दैनिक चर्या निम्न प्रकार से थी :—

प्रातः ४ से ७ बजे तक	ध्यान
७ से दोपहर के २ बजे तक	गायत्री जाप
२ से ३ बजे तक	भोजन बनाना तथा खाना
३ से ४ बजे तक	विश्रामादि
४ से ७ बजे तक	गायत्री जाप
सायं ७ से ८ बजे तक	भ्रमणादि
८ से १० बजे तक	गायत्री जाप
१० से ११ बजे तक	दुग्धपानादि
रात्रि ११ से ३ बजे तक	शयन

उपरोक्त दिनचर्या से स्पष्ट है कि ब्रह्मचारीजी केवल चार घंटे सोते थे, एक घंटा दिन में विश्राम करते थे, एक घंटा भोजन बनाने और खाने में व्यय होता था, एक घंटा भ्रमण तथा दुग्धपानादि में लगाते थे। दिन के २४ घण्टों में से केवल नौ घण्टों के अतिरिक्त उनका सारा समय अर्थात् १५ घंटे ध्यान तथा गायत्री के जाप में ही प्रतिदिन व्यतीत होते थे। इन दिनों भोजन के रूप में केवल साबुत मूंग ही खाते थे। मूंग को उबालकर उसमें थोड़ा-सा घी डालकर खा लिया करते थे। इसके बनाने में समय बहुत थोड़ा व्यय होता था। साथ ही यह सात्विक भोजन भी माना

जाता है। रात्रि को केवल आधा सेर दुग्धपान करते थे। शारीरिक सुख का ध्यान बिल्कुल छोड़ दिया था। देहाध्यास नितान्त न्यून हो रहा था। इन दिनों जब भ्रमण के लिए जाते तो मुंह ढांपकर जाते थे, जिससे न किसी को वे देखें और न कोई उनको देख सके। मानसिक विक्षेप से बचने के लिए ऐसा करते थे। किसी के साथ इशारे से भी बात नहीं करते थे। अनेक साधु-सन्त मौन व्रत रखकर प्रायः इङ्गित से अथवा स्लेट पर या जमीन और हाथ पर लिखकर अपने भावों को व्यक्त कर दिया करते हैं, किन्तु यह काष्ठ-मौन की संज्ञा में नहीं आ सकता। ब्रह्मचारीजी किसी पर भी अपने भाव किसी प्रकार से भी प्रकट नहीं करते थे। ग्रीष्म काल में आषाढ़ की गर्मी में धूप में बैठकर ४-५ घण्टे तक जाप करते तथा शीतकाल में नहर के पानी में बैठकर। पानी उनके गले तक रहता था। शरीर, मन तथा इन्द्रियों के प्रति अनासक्ति की भावना को दृढ़ करना ही इनका ध्येय था।

पुरश्चरण-काल में चोरों द्वारा अपहरण--जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, व्यासदेवजी रात्रि को ७ बजे से ८ बजे तक भ्रमणार्थ जाया करते थे। प्रायः नहर की पटड़ी पर चला करते थे। इधर लोग बहुत कम आते थे और बड़ा एकान्त स्थान था। जब बाहिर जाते तो मुंह को भली प्रकार से ढांपकर चलते थे, जिससे काष्ठ मौन में किसी प्रकार की कोई बाधा उपस्थित न कर सके। एक दिन मार्ग में उन्हें पांच नवयुवक मिले। इन्होंने मदिरा पान की हुई थी। उनकी टांगें लड़खड़ा रही थीं और वे मदोन्मत्त होकर पागलों की तरह प्रलाप कर रहे थे। उन्होंने मौन तथा पुरश्चरण का कभी नाम भी न सुना था। सन्तों के प्रति न उनकी किसी प्रकार की श्रद्धा थी और न विश्वास। व्यासदेवजी को आते देखकर वे बड़े विस्मित हुए। वे इस बात का निश्चय नहीं कर पाए कि यह पुरुष है या स्त्री। उन्हें आकार-प्रकार तथा गति तो इनकी नवयुवकों के समान दिखाई देती थी किन्तु उनके मुंह ढकने पर उनके स्त्री होने का सन्देह होता था। वे इन्हें पहिचान नहीं सके कि ये मोतीरामजी की बगीची वाले सन्त हैं, अतः इनसे छेड़-छाड़ करनी प्रारंम्भ कर दी। नवयुवकों ने इनसे पूछा कि तुम कहां जा रहे हो, कहां रहते हो, तथा क्या करते हो। व्यासजी ने काष्ठ मौन धारण कर रखा था। कैसे बोलते! अतः उन्होंने अनेक प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उन मदोन्मत्तों ने समझा कि यह व्यक्ति बड़ा दम्भी है इसीलिए नहीं बोलता है। वे मदिरा के मद में यथार्थता तक नहीं पहुंच सके, अतः क्रोध के मारे वे आगबबूला होगए और व्रतनिष्ठ मौनी व्यासदेवजी के हाथ बांध कर उन्हें अपने पीछे-पीछे ले चले। ब्रह्मचारीजी ने काष्ठ-मौन धारण कर रखा था अतः अपने भाव कैसे व्यक्त करते! जैसे उन्होंने कहा वैसे ही उनके पीछे चलने लगे। वे न तो बोले और न किसी प्रकार की प्रतिशोध भावना को अपने हृदय में स्थान दिया। वे निश्चल और निश्चिन्त थे। उन्हें न तो गन्तव्य दिशा का ज्ञान था और न उन्हें यही पता चला कि वे शराबी उन्हें कहां और क्यों ले जा रहे हैं। किन्तु उनके मन में इससे कोई विक्षेप या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। धन्य हो दृढ़व्रती ब्रह्मचारीजी! आप धन्य हो। आश्चर्यान्वित कर देने वाली है आपकी यमनियमोपासना, आपकी जितेन्द्रियता, और आपका शम, दम तथा देहाध्यास की क्षीणता!

वे उद्दण्ड और उद्धत शराबी युवक उन्हें अपने गांव में ले गए। पास ही एक गुरुद्वारा था। वहां के ग्रंथी के पास इन्हें ले जाकर कहा कि इसको एक कमरे में बन्द करके रखो, हम सुबह आकर सब फैसला करेंगे। वे चले गए।

ग्रंथी ने दीपक जलाया और जब व्यासदेवजी को पहिचाना तो वह बड़ा दुःखी हुआ। उसका हृदय कांप उठा। उसने क्षमा याचना की और उन युवकों को गालियां देकर उनकी बड़ी निंदा की। उनसे निवेदन किया कि आप यहां बैठिए, मैं गांव से आपके लिए दुग्ध लेकर आता हूं। उन दुष्टों को भी उनके घर जाकर उनके निन्दनीय कार्य के लिए बड़ी ताड़ना करूंगा। वह बन्तासिंह के घर गया। यह युवक बड़ा उद्धत और चोर था। ग्रंथी ने पूछा कि तुम इस बगीची वाले सन्त को अपने साथ क्यों लाए? इन्होंने काष्ठ-मौन का व्रत लिया हुआ है। केवल वाणी का काष्ठ-मौन ही नहीं इनका मानसिक मौन भी है, इसीलिए इन्होंने अपना मुंह ढांप रखा था। तुमने अज्ञान से इतने बड़े सन्त का अपमान किया है। यह तुम्हारा बड़ा निन्दनीय और पाप-कर्म है। लाओ, उनके लिए दूध दो। बन्तासिंह अपनी माता के पास गया और दूध लाकर ग्रंथीजी को दे दिया। महाराजजी ने दूध पीकर गुरुद्वारे में ही विश्राम किया और प्रातः ही उठकर अपनी कुटिया में चले गए जिससे उनके व्रत में कोई बाधा उपस्थित न हो। उन दुष्ट युवकों के प्रति न तो उनके मन में किसी प्रकार की ग्लानि उत्पन्न हुई और न कोई प्रतिशोध की भावना। वे पूर्ववत् शान्त और गंभीर रहे। उनकी इस प्रकार की मुख-मुद्रा सहसा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी के मुखारविन्द का ध्यान दिलाती है, जो—

> प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
> मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य भवतु मे मंजुलमंगलप्रदा ॥

ये तपोनिष्ठ ब्रह्मचारीजी साधना के बड़े धनी थे। सर्दी के मौसम में जब नहर के जल में बैठकर जाप करते थे, तो शरीर प्राणहीन-सा हो जाता था। सर्वत्र शून्यता छा जाती थी, किन्तु उन्हें देहाध्यास नहीं रहा था, अतः इस पीड़ा को कभी अनुभव ही नहीं किया। इस लम्बी साधना के परिणामस्वरूप उनमें बल-वृद्धि हुई और प्राण-निरोध की शक्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। संकल्प-सिद्धि लाभ होगई तथा बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म होगई।

वैशाखी के दिन बड़े समारोहपूर्वक इस पुरश्चरण की समाप्ति की। एक बृहद् यज्ञ का आयोजन किया गया जो कई दिनों तक चलता रहा और कई दिन सन्तों और महात्माओं को भोजन करवाया। इस यज्ञ और भण्डारे में ब्रह्मचारीजी के सैकड़ों भक्त अमृतसर के सम्मिलित हुए। ब्रह्मचारीजी ने गायत्री पुरश्चरण और मौनव्रत के अनेक लाभ अपने उपदेश में जनता को बताए। चार वर्ष के काष्ठ-मौन और यज्ञ की पूर्णाहुति करके व्रत समाप्त कर दिया।

काश्मीर-यात्रा

स्थायी रूप से तो व्यासदेवजी का साधना-स्थल वर्षों तक अमृतसर ही रहा किन्तु प्रायः ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठमास में काश्मीर तथा अन्य शीतप्रधान प्रदेशों में चले जाया करते थे। लगभग सात मास अमृतसर में निवास करते थे और पांच मास काश्मीर

तथा अन्य पर्वतीय प्रदेशों पर। काश्मीर में प्रायः हार्वन झील के पास मुफ्ती बाग में निवास करना उन्हें अधिक पसन्द था। सन्त बुद्धिप्रकाश की बगीची में वे एक छोटी सी घास की कुटिया में रहते थे। जब लाला मोतीराम ने अपने उद्यान में महात्माओं की साधना और निवास के लिए १५-१६ कुटियाएं बनवाईं तो इनसे भी वहां रहने के लिए आग्रह किया था और ये वहां पक्की कुटिया में पुनः निवास करने लगे थे। वहां कुछ मास रह चुकने के बाद गर्मी की तीव्रता के कारण काश्मीर चले गए और मुफ्ती बाग में निवास किया। प्रातःकाल शिकारगाह में भ्रमणार्थ जाते थे और सायंकाल हार्वन झील के तट पर।

काश्मीरी पण्डितों से समागम--एक बार सायंकाल के समय जब हार्वन झील पर भ्रमण कर रहे थे तब कई काश्मीरी पण्डित उन्हें मार्ग में मिल गए। विविध विषयों पर वार्तालाप होने लगा। जब अमरनाथ की चर्चा चली तब इन पण्डितों ने कहा कि वहां पर शिवलिंग की मूर्ति पन्द्रह दिन तक क्षीण होती है और पन्द्रह दिन तक वृद्धि को प्राप्त होती है। ब्रह्मचारीजी किसी भी बात को स्वीकृत करने से पूर्व उसे तर्क तथा बुद्धि की कसौटी पर कसते थे। जो बात बुद्धिसंगत तथा तर्कसंगत होती थी वही उनके लिए ग्राह्य होती थी, अन्य नहीं। उन्होंने पण्डितों की इस बात को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि यह तर्क तथा बुद्धिसंगत नहीं थी। उन्होंने तुरन्त कहा कि जड़ पदार्थों में इस प्रकार घटना और बढ़ना धर्म नहीं हो सकता। वृद्धि और क्षय चेतन सत्ता के संयोग से ही संभव है, अन्यथा नहीं। क्योंकि वहां पर चेतन के संयोग का अभाव है अतः शिवलिंग की वृद्धि और क्षय असंभव है। अमरनाथ की प्रतिमा बर्फ से बन जाती है। जिस प्रकार पहाड़ों पर शीतकालीन वर्षा में मकानों की छतों से जो पानी नीचे गिरा करता है वह प्रायः शीत के आधिक्य से जमता जाता है और बर्फ के बड़े-बड़े शिवलिंग-से बन जाया करते हैं और जब गर्मी पड़ने लगती है तो ये शिवलिंग-से पिघल जाते हैं। कुछ तो बिलकुल पिघल जाते हैं और कुछ का आकार बहुत सूक्ष्म सा हो जाता है। यही बात अमरनाथ की गुफा में स्थित शिवलिंग के विषय में भी कही जा सकती है। काश्मीरी पण्डित आग्रहपूर्वक अपने मन्तव्य पर डटे रहे। पण्डित मुकुन्दजी कौल ने भी पण्डितों की बात की ही पुष्टि की। अब उन्होंने अमरनाथ जाकर स्वयं इस बात की जांच करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

अमरनाथ की यात्रा--शीतकाल के प्रारंभ होते ही श्री ब्रह्मचारीजी अमृतसर पधार गए। नियमानुसार योगाभ्यास, तप, जप तथा साधना पूर्ववत् अपनी कुटिया में नहर के किनारे करते रहे। ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ होते ही पुनः काश्मीर पधारे क्योंकि चैत्र मास में अमरनाथ जाने का निश्चय कर लिया था। सोनमर्ग के मार्ग से जाने का विचार किया क्योंकि इस मार्ग से अमरनाथ केवल ७० मील के लगभग था और श्रीनगर से यह स्थान लगभग ८६ मील था। व्यासदेवजी महाराज जितना सामान आसानी से अपने आप उठाकर ले जा सकते थे उतना ही सामान लेकर चल दिए। सोनमर्ग के पोस्टमास्टर माधोराम ने व्यासदेवजी को अमरनाथ जाने की अनेक कठिनाइयां बताईं। सोनमर्ग से बालतल लगभग नौ मील था और वहां से आगे १० मील तक बर्फ पर ही चलना पड़ता था। इन्होंने पोस्टमास्टर से चार कुली अमरनाथ की गुफा तक सामान ले जाने के लिए मज़दूरी पर कर देने के लिए कहा।

तीन रुपया प्रतिदिन पर तीन मजदूरों को साथ ले जाना तय पाया। कुछ सामान ब्रह्मचारीजी ने भी उठाया। बालतल पहुंचकर एक डाकबंगले में ठहरे। दूसरे दिन प्रातःकाल आठ बजे वहां से प्रस्थान किया। यह मार्ग बड़ा कठिन था। अमरनाथ से जो नदी सोनमर्ग जाती थी वह सारी हिमाच्छादित थी। उसी के किनारे-किनारे बर्फ पर चलना था। शीत का आधिक्य था। बर्फ पर चलते-चलते पैर संज्ञा-हीन से हो गए थे। उनमें चेष्टा करने की शक्ति नाममात्र को भी शेष नहीं रही थी। इसलिए पैर बार-बार लड़खड़ाते थे। इस नदी की ऊंचाई की ओर चढ़ाई बड़ी भयावह थी। पैरों में शून्यता छा जाने के कारण से व्यासदेवजी का पैर बर्फ पर से फिसल गया, लाठी हाथ से छूट गई और लगभग आधा मील ऊंची बर्फ की पहाड़ी से फिसलते हुए नीचे उस स्थान पर आ गिरे जहां बर्फ पिघलने के कारण नदी में एक कूआं सा बन गया था। फिसलते हुए अनेक चोटें आईं थीं अतः लगभग आध घण्टे तक चेतना-हीन रहे। जब संज्ञोपलब्धि हुई तब उठकर बैठ गए और इंगित करके मज़दूरों को बुलाया। दो मजदूर आए और अपने हाथों की रगड़ से उनके शरीर को उष्णता पहुंचाने का प्रयत्न किया। जहां व्यासजी गिरे थे वहां से बर्फ का कूआं केवल ३-४ फुट ही दूर था। भगवान् ने ही उनकी रक्षा की। ब्रह्मचारीजी का ब्रह्मवर्चस्व असीम था। उनके साहस, हिम्मत और पराक्रम की कोई सीमा न थी। उन्होंने साहसपूर्वक कुलियों से कहा कि मैं नदी के ऊपर बर्फ की कितनी मोटी तह जमी हुई है इसे देखना चाहता हूं। तुम मेरे पैर धोती से बांधकर यहीं बैठ जाओ, मैं पेट के बल लेटकर सरक-सरक कर आगे जाकर देख आऊंगा और अगर मैं गिरने लगूं तो तुम धोती खींच कर मुझे खींच लेना। नदी में झांककर देखने से मालूम हुआ कि उस पर लगभग एक सौ फुट बर्फ जमी हुई थी और उसके नीचे जल बह रहा था। यदि कहीं इसमें गिर जाते तो फिर निकलने का कोई उपाय न था। वहां से उठकर धीरे-धीरे ऊपर आए और अमरनाथ का मार्ग लिया। सारा दिन चलने के पश्चात् लगभग चार बजे अमरनाथ की गुफा में पहुंचे। कुलियों ने महाराज से कहा कि आप यहां पर उच्चस्वर से न बोलिएगा, यदि बोलेंगे तो बर्फ गिरने लगेगी। उन्हें इस बात का पता नहीं था अतः उन्होंने कुलियों की बात नहीं मानी और गुफा से बाहिर निकलकर बड़े ऊंचे स्वर से 'हरि ओ३म्' के नारे लगाने लगे। उनका नारे लगाना था कि थोड़ी ही देर में चारों ओर से बादल घिर आए और लगभग आध घण्टे के पश्चात् हिमपात होने लगा। कुली बड़े नाराज हुए और इस आशंका से कि न जाने कब तक बर्फ पड़ना अब जारी रहेगा और ताजी बर्फ पड़ जाने से मार्ग का पता लगाना भी कठिन हो जाएगा, पांच बजे ही अमरनाथ की गुफा से भाग गए। व्यासदेवजी को अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वास्तव में बात यह थी कि जोर का शब्द होने से आसमान में आकर्षण सा पैदा हो जाता है और बादल बन जाते हैं और ऊंचाई अधिक होने के कारण बर्फ गिरने लग जाती है। पहलगांव से जब हत्यारे तालाब पर जाते हैं तो वहां भी कभी-कभी ऐसा हो जाया करता है। गुफा के आसपास दो-तीन दिन तक बादल छाए रहे और रुक-रुक कर बर्फ भी पड़ती रही। इन दिनों में अमरनाथ की गुफा में हजारों मन बर्फ थी। इसमें प्रायः सारा साल बर्फ का जल टपकता रहता है और अत्यन्त शीत होने के कारण यह जल जमता रहता है। इस समय गुफा में एक इंच भर भी सूखी ज़मीन न थी। गुफा के बाहिर पहाड़ के समीप कुछ थोड़ा सा स्थान सूखा था। यहीं आकर ब्रह्मचारीजी

ने अपना आसन लगाया। चारों ओर बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर हो रही थी। इस थोड़े से सूखे स्थान पर ही इन्हें एक मास व्यतीत करना था। अग्नि जलाकर शरीर को जैसे-तैसे गर्म करने का भी कोई साधन न था। लकड़ियां बर्फ से गीली थीं, जो थोड़ी बाहिर थीं वे भी सब गीली थीं। दियासलाई भी भीगी हुई थी। अनेक उपाय किए किन्तु अग्नि न जलाई जा सकी। जब शरीर को गर्म करने का कोई साधन दृष्टि-गोचर नहीं हुआ तो ब्रह्मचारीजी ने प्राणायाम के द्वारा अपने शरीर को गर्म किया और तब कहीं जाकर शरीर का कम्पन यत्किंचित् कम हुआ।

अमरनाथ में एक मास तक निवास--अमरनाथ की गुफा में महाराजजी ने अत्यन्त कठिनाई के साथ एक मास व्यतीत किया। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए वे किसी भी संकट का सामना करने के लिए समुद्यत हो जाते थे। उनकी ज्ञान-पिपासा के सामने सभी कठिनाइयां, चाहे वे कितनी ही कठोर क्यों न हों, पानी के समान पिघल जाती थीं। वे कभी कातरता से उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए प्रार्थना नहीं करते थे। वे केवल यही याचना करते थे कि उन संकटों और विपत्तियों को वीरतापूर्वक साहस के साथ सहन करने तथा उनका मुकाबला करने के लिए वह उन्हें बल, शक्ति और शौर्य प्रदान करें।

इस गुफा में केवल तीन या चार कबूतर रहते थे। ये दिन में इधर-उधर चले जाया करते थे और रात्रि में इसमें आ जाया करते थे। आसपास न तो अन्य कोई पक्षी दृष्टिगोचर होता था, न पशु और न कोई मनुष्य। ज्ञान-पिपासु व्यासदेवजी के अतिरिक्त वहां और कोई न था। रात्रि में शीत की अधिकता के कारण उन्हें नींद न आती थी। इसलिए सारी रात जाप तथा ध्यान में ही व्यतीत होती थी। जब थक जाते थे तब सिकुड़ कर लेट जाते थे। दिन में रात्रि की अपेक्षा शीत कुछ कम रहता था अतः दिन में सोने और रात्रि में जगने का एक नियम-सा बना लिया था। अमर-नाथ के पास दो नदियां बहती हैं--अमर गंगा तथा एक और बड़ी नदी। ये दोनों बर्फ से ढकी हुई थीं। इसलिए वहां स्नान करने तथा पीने के लिए भी पानी अप्राप्य था। बर्फ से ही प्यास बुझाई जाती थी तथा अन्य सब कार्यों के लिए भी इसी प्रकार काम चलाया जाता था। बर्फ को गलाकर इन आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती थी पर बर्फ को पिघलाने का कोई साधन ही पास न था क्योंकि अग्नि जलाने के लिए न पास सूखी लकड़ी थी और दियासलाई बिलकुल भीग गई थी। भोजन बनाने का कोई साधन नहीं था अतः जो कुलचे, आटा, चावल आदि साथ लेकर आए थे उन्हें ही खाकर निर्वाह किया। पँन्द्रह दिन तक तो कुलचे खाकर भूख शान्त की। अब केवल आटा और चावल ही शेष रहे थे। आटा खाना प्रारंभ किया किन्तु यह मुंह में जाकर जम जाता था और जब गीला करके खाना प्रारंभ किया तब उसके खाने से छाती में पीड़ा होने लगती थी। आटा छोड़कर अब कच्चे चावल खाना प्रारंभ किया। ये पेट में जाकर जम जाते थे और इससे कोष्ठबद्धता होने लगी। अतः ये दोनों चीजें खाना त्याग दिया। शरीर अतिकृश होगया और शक्ति क्षीण होगई। परन्तु व्यासदेवजी अपनी धुन के पक्के थे, दृढ़व्रती थे, अपने निश्चय से डिगने वाले न थे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अपने शरीर को भी तृणवत् समझा। उनकी यह धारणा थी "कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पात-

यामि।" अतः वे हिमालय की तरह अपने व्रत में अटल रहे। अपने पूर्व निश्चयानुसार उन्हें एक मास तक गुफा में रहना था, भले ही उनके सामने कितनी ही कठिनाइयां क्यों न आएं। उनके पास अब कोई भी ऐसी वस्तु न थी जिससे वे अपनी क्षुधा को शान्त करते और शक्ति प्राप्त करते। जब कभी मुख सूख जाता तो बर्फ को चूसकर प्यास बुझाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार बड़े कष्ट के साथ जैसे-तैसे आठ दिन व्यतीत किए, किन्तु अभी तो उन्हें वहां पर इसी कष्ट में तीन सप्ताह और व्यतीत करने थे।

गुफा के भीतर मैदान में हजारों मन बर्फ जमी हुई थी। इस बर्फ के ऊपर दस या बारह शिवलिङ्ग की पिण्डियां बनी हुई थीं। शीतकाल में अमर गंगा का जल गुफा के ऊपर से होकर जाता है। इसी का जल अमरनाथजी की गुफा में टपकता रहता है। शीतकाल में तो यह जम जाता है और जब गर्मी आती है तो यह पिघलकर बह जाता है। शीतकाल में जब जल जमना प्रारंभ हो जाता है तब ये पिण्डियां बनना प्रारंभ हो जाती हैं। गुफा में टपकते हुए जल को जमते हुए व्यासजी ने अपनी आंखों से देखा। ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती त्यों-त्यों बर्फ भी गलती जाती। इसके परिणामस्वरुप शिवलिङ्ग की पिण्डियां भी घटती जातीं और ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास तक ये शिवलिङ्ग तथा गुफा की सारी बर्फ पिघल कर बह जाती। जब यात्रा प्रारंभ होती तो पण्डे लोग यात्रियों के दर्शनार्थ आने के पूर्व ही पास वाली जमी हुई नदी से लगभग सौ मन बर्फ का ढेर लगाकर शिवलिङ्ग बना दिया करते थे। व्यासदेवजी ने चार-पांच शिवलिङ्गों को अपने सामने गलते हुए और बनते हुए देखा। इस सत्य का अन्वेषण करके उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। इसके लिए उन्होंने अनेक कठिनाइयां उठाईं, भूखे तथा प्यासे रहे, एक मास तक बर्फ में ही निवास किया और अपने जीवन को भी खतरे में डाला, किन्तु अपने निश्चय को पूरा करके ही उन्हें सन्तोष हुआ। जब एक मास व्यतीत होने में केवल ३-४ दिन ही अवशेष रह गए तब उनके भूख और प्यास से मुर्झाए हुए शरीर में कुछ बल, शक्ति, उत्साह और धैर्य-सा उत्पन्न होगया और निराशा में आशा की झलक दृष्टिगोचर होने लगी। गुफा के कबूतर भी कभी-कभी इनके पास आकर बैठ जाते थे। इस प्रकार के कबूतरों को व्यासदेवजी ने गंगोत्री और गोमुख में भी देखा था। ये इन कबूतरों को प्रायः चावल खिलाया करते थे। उनके पास चावल तो बहुत थे, पर कच्चे चावलों के खाने से उन्हें कोष्ठबद्धता हो जाती थी और टट्टी में खून आने लगता था, इसलिए उन्होंने खाए नहीं और कबूतरों को ही डाल दिए। ये ब्रह्मचारीजी से स्नेह करने लग गए थे और इन्हें बड़े प्रेम और कृतज्ञता की दृष्टि से देखा करते थे। कभी-कभी एक-दो काली चिड़िया भी आ जाती थीं। यात्रा प्रारंभ होने से पूर्व बस यही इनके मित्र थे। पूरे ३० दिन बीत जाने के बाद इन्होंने नीचे उतरने की तैयारी की। जो कुछ थोड़ा सामान था उसे बांधकर कंधे पर रखा किन्तु उसे उठाने की शक्ति उनमें नहीं थी। माधोरामजी ने कुली भेजने का वचन दिया था किन्तु उन्होंने नहीं भेजा, क्योंकि उनको यह समाचार कुलियों ने दिया था कि ब्रह्मचारीजी तो बर्फ में दब गए होंगे। सोनमर्ग के लोगों ने इनके अनिष्ट का निश्चय कर लिया था क्योंकि अमरनाथ में कोई जीवन का साधन न था।

सोनमर्ग के लिए प्रस्थान—व्यासदेवजी ने कंधे पर अपने कम्बल और दो-तीन बर्तन जो साथ थे रखे और चलना प्रारंभ किया। दुर्बलता तथा शीत के कारण उनके

पैर कांपते तथा लड़खड़ाते थे। मार्ग में कई बार गिर भी गए थे। सारा शरीर काला पड़ गया था ग्रौर कृश होगया था। बाल बहुत बढ़ गए थे। शरीर में शक्ति केवल नाममात्र को ही शेष रह गई थी, किन्तु हिम्मत ग्रौर साहस की कमी न थी। मार्ग में भोजपत्र की पतली-सी दो लकड़ियां मिल गई थीं। इन्हीं के सहारे से मार्ग पर चलते रहे।

भालू से मुकाबला तथा व्यासदेवजी का प्रत्युत्पन्नमतित्व—ग्रभी व्यासदेवजी केवल छः या सात मील ही चले होंगे कि उनको सामने से एक भूरे रंग का बड़ा बलवान् ग्रौर शक्तिमान् भालू ग्राता दिखाई दिया। उसका सामना करने के लिए डटकर खड़े होगए। किन्तु एक मास से ग्राहार बिलकुल नहीं किया था। बड़ी विपत्ति में थे। ग्रत्यन्त कृश होगए थे। शरीर शक्तिहीन होगया था। किन्तु ग्रात्मिक बल में किसी प्रकार की न्यूनता न ग्राई थी। इसी के बल पर भालू का सामना करने के लिए कटिबद्ध होगए पर शरीर ने साथ नहीं दिया। न पैरों में वहां से भाग जाने की शक्ति थी ग्रौर न हाथों में उससे लोहा लेने की। इससे पूर्व कई बार रीछों, हाथियों से ग्रपने ब्रह्मचर्य के बल से सफलतापूर्वक लड़ाई कर चुके थे किन्तु इस समय शरीर बिलकुल शक्तिहीन था। उन्हें ग्राशंका हुई कि कहीं उन्हें निर्बल जानकर यह भयंकर भालू उन पर ग्राक्रमण न कर दे। इस भय के उपस्थित होते ही उन्हें एक उपाय सूझा। तुरन्त दोनों लकड़ियों के ऊपर ग्रपने कम्बल को कुछ ढील देकर मजबूती से पकड़ लिया। दोनों लकड़ियों को ग्रपने दोनों हाथों से ऊपर को उठाकर स्वयं उस कम्बल के नीचे ग्राकर ग्रौर ग्रपने को उसमें छिपाकर जोर-जोर से शोर-गुल मचाकर नाचने, कूदने ग्रौर छलांगे मारने लगे। भालू इससे बड़ा भयभीत होगया ग्रौर नदी की ग्रोर भाग गया, टट्टी करते हुए।

भूत का भय—निर्बलता के कारण व्यासदेवजी बहुत धीरे-धीरे चलते हुए रात्रि में बालतल पहुंचे। इन्होंने डाकबंगले के चौकीदार को उच्चस्वर से पुकारा। वह उस समय भोजन बना रहा था। उसे उस समय किसी के वहां ग्राने की संभावना न थी ग्रतः शान्तिपूर्वक भोजन बनाने में व्यस्त था। ग्रचानक ग्रपना नाम सुनकर वह भय-भीत होगया ग्रौर जब बाहिर निकल कर ग्राया तो वह व्यासदेवजी को पहिचान नहीं सका। उनका शरीर ग्रत्यन्त कृश तथा दुर्बल था। मुख काला तथा कान्तिहीन था। केवल शरीर का ढांचा ही रह गया था। जब व्यासजी ने ग्रपना परिचय चौकीदार को दिया तब वह ग्रौर भी ग्रधिक भयभीत हुग्रा ग्रौर कांपने लगा। उसने सुन रखा था कि ब्रह्मचारीजी ग्रमरनाथ की बर्फ में गल गए हैं, ग्रतः उसे उनको देखकर भी यह विश्वास नहीं हुग्रा कि वे जीवित हैं। उसके मन में झट यह विश्वास उत्पन्न हुग्रा कि यह सोनमर्ग वाले बाबा का भूत है जो मुझे भक्षण करने के लिए यहां ग्राया है। वह 'भूत' 'भूत' कहकर चिल्लाने लगा। व्यासजी के बार-बार समझाने पर भी उसे कुछ समझ नहीं ग्राया ग्रौर भयभीत होकर ग्रपनी रोटी तवे पर छोड़कर ही सीधा सोन-मर्ग भाग गया।

व्यासदेवजी ग्रत्यन्त क्षुधार्त थे ग्रतः उस मुसलमान की रसोई में ही उसीका मकई का ग्राटा लेकर चार मोटी-मोटी रोटी बनाकर खाईं। एक मास से ग्रन्न खाया ही नहीं था ग्रतः मकई की रोटी ने पेट में जाकर बड़ा विकार किया। वे उदर पीड़ा

से व्याकुल हो उठे। झट गर्म पानी किया और उसमें कुछ नमक मिलाकर पीया। थोड़े ही समय में उन्हें कई वमन हुए और इसके पश्चात् उनके कष्ट का निवारण हुआ। रात भर चौकीदार की रसोई में ही शयन किया। प्रातःकाल उठकर पास ही एक वृक्ष के नीचे बैठकर जाप और ध्यान करने के लिए बैठ गए। चौकीदार शाबाना के आने पर ही व्यासदेवजी ने आगे चलने का विचार किया था। दिनभर उन्होंने वहीं विश्राम किया और दिनभर शाबाना के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल चौकीदार पांच अन्य आदमियों के साथ बालतल आया। जब वे डाकबंगले से चौथाई फर्लांग रह गए तब वे सब भयभीत होकर खड़े होगए और भूत के विषय में अपनी-अपनी आशंकाएं और विचार एक दूसरे से प्रकट करने लगे। काश्मीरी लोग स्वभाव से ही भीरू होते हैं। उनमें आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं थी। वे स्वनिर्मित भूत के भय से अपनी मूर्खतावश भयभीत हो रहे थे।

इधर व्यासदेवजी ने सोचा कि ये पांचों कहीं आत्मरक्षार्थ मुझपर आक्रमण ही न करदें, अतः वे पास वाले एक पेड़ पर चढ़ गए। इन लोगों ने सोचा कि भूत उनके भय के कारण पेड़ पर चढ़ गया है। इससे उनमें हिम्मत तथा साहस बढ़ा तो, किन्तु भय ने उनका पीछा नहीं छोड़ा, इसलिए उस वृक्ष के समीप आने का साहस नहीं हुआ। दूर खड़े होकर ही भूत के विषय में बातें करते रहे। व्यासदेवजी उनके भय को भगाने तथा उनको शान्ति देने के उद्देश्य से पेड़ पर से उतरे। उन्हें उतरते देखकर ये लोग बड़े जोर से भागे। उन्होंने सोचा कि उन्हें भक्षण करने के लिए भूत पेड़ पर से उतरा है। ब्रह्मचारीजी ने जोर-जोर से चिल्लाकर उन्हें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया और कहा कि मैं कोई जिन्न या भूत नहीं हूं। मैं तो वही महात्मा हूं जो एक मास पूर्व वहां से अमरनाथ गया था, पर उन मूर्खों को किसी प्रकार से भी विश्वास नहीं आया और वे उन्हें भूत ही समझते रहे। उन भागते हुए आदमियों का व्यासदेवजी ने इस आशय से पीछा किया कि वे उन्हें पकड़कर यथार्थता समझाएंगे, क्योंकि ऐसे तो वे उनके पास आते न थे। जब वे भाग रहे थे तो उनमें से कोई मार्ग में गिर गया, और किसी की लकड़ी हाथ से छूट गई। शाबाना चौकीदार भी भागते-भागते गिर गया। उन्होंने तुरंत पास जाकर उसे उठाया। वह कांप रहा था। उसके शरीर से पसीना टपक रहा था। भय के कारण उसने अपनी आंखें बन्द कर ली थीं और जोर-जोर से रो रहा था। व्यासदेवजी ने इसे बहुत पुचकारा, प्यार किया, ढाढस बंधाया और तब कहीं बड़ी देर में उसे होश आया। जब उसकी बुद्धि ठिकाने आई तब कहीं जाकर उसे विश्वास हुआ कि यह भूत नहीं किन्तु वही महात्मा हैं जो एक मास पूर्व सोनमर्ग से अमरनाथ गए थे। वह बड़ा लज्जित हुआ और उसने बहुत पश्चात्ताप किया। जब ये सब बंगले पर पहुंचे तब इन सबने एक दूसरे से खूब हंसी मजाक किया। व्यासदेवजी ने अपने लिए चावल बनाए और भोजन किया। इसके पश्चात् उन्होंने इनका सामान उठाया और सब सोनमर्ग की ओर चल दिए। शनैः-शनैः चलकर सायंकाल ५ बजे सोनमर्ग पहुंचे। ब्रह्मचारीजी को देखकर सबको हार्दिक प्रसन्नता हुई और सबने मिलकर उनका बड़ा स्वागत किया। इनका शरीर दुर्बल तथा शक्तिहीन था अतः यहीं पर पण्डित माधोरामजी के पास पन्द्रह दिन तक निवास किया। पण्डितजी ने इनका पूरा आतिथ्य किया और खूब सेवा की। जब व्यासजी कुछ सशक्त हुए और

थकान दूर हुई तब वहां से मुफ्ती बाग के लिए प्रस्थान किया। वहां पर मुफ्ती बाग में पंडित मुकुन्दजू के पास कुछ दिन तक रहे। ब्रह्मचारीजी ने मुकुन्दजू को बड़े रोचक तथा विनोदपूर्ण ढंग से अपनी यात्रा का विवरण सुनाया। उनकी कठिनाइयों को सुन कर वे दुःखी हुए किन्तु भालू तथा शाबाना की कहानी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। व्यासजी पुनः अमरनाथ दो बार गए थे। एक बार श्रावण में तथा दूसरी बार आश्विन में। इनका उद्देश्य अमरनाथ की गुफा में स्थित शिवलिङ्ग की प्रतिमा, जिसके लिए कहा जाता था कि वह पन्द्रह दिन में बढ़ती तथा पन्द्रह दिन तक घटती है, के विषय में तथ्य और यथार्थता का पता लगाना था। दोनों यात्राओं में उन्होंने सत्य का अन्वेशण किया और यह सिद्ध कर दिया कि यह प्रतिमा न तो क्षय को प्राप्त होती है और न वृद्धि को ही। ये दोनों यात्राएं इन्होंने पंडित मुकुन्दजू के निवासस्थान से ही प्रारंभ की थीं। इन दोनों यात्राओं का व्यय भी इन्हें पंडितजी ने ही प्रदान किया था। ये बड़े उदार सज्जन थे और व्यासदेवजी का बड़ा आदर करते थे तथा उनके ब्रह्मचर्य, योग, समाधि तथा व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित थे। कुछ दिन तक इनके पास निवास करने के पश्चात् इन्होंने अमृतसर जाने की इच्छा प्रकट की। अभी इनकी कमजोरी पूरी तरह से गई नहीं थी। शरीर भी अभी कृश ही था, अतः पण्डितजी ने उन्हें अमृत-सर जाना स्थगित करने के लिए बहुत आग्रह किया, किन्तु इन्होंने उनकी प्रार्थना को स्वीकार न किया और प्रस्थान कर दिया। यहां पर व्यासदेवजी ने चार साल में गायत्री का सवा लाख तथा सवा करोड़ पुरश्चरण किया तथा आकार मौन और काष्ठ मौन के कठिन व्रत को धारण किया और सवा करोड़ गायत्री के पुरश्चरण की बड़े समारोह के साथ बृहद यज्ञ तथा भोज करके समाप्ति की। इसके पश्चात् ज्येष्ठ मास में काश्मीर के लिए प्रस्थान किया। यहां आकर पुनः मुफ्ती बाग में ही ठहरे। पूर्ववत् अपनी दिन-चर्या के अनुरूप साधना, ध्यान तथा योगाभ्यास प्रारंभ कर दिया। शिकारगाह में प्रतिदिन चार-पांच मील की सैर किया करते थे। स्नान, संध्या, प्राणायामादि भी प्रायः वहीं किया करते थे। इस शिकारगाह में विविध प्रकार के भालू, चीते, हिरण, बारहसिंगे आदि का आधिक्य था। इन्हें इन हिंस्र जीवों को देखने का बड़ा शौक था। काश्मीर आने से पूर्व ही कई बार इनकी भिड़न्त हाथियों, भालुओं तथा सूअरों से हो चुकी थी और अपने बल, शक्ति, साहस और शौर्य से सदैव ये उनको भगाते रहे थे। इस शिकारगाह के चौकीदारों, जमादारों तथा अन्य राजकीय सेवकों से इनका घनिष्ठ परिचय होगया था। इसलिए ये लोग इन्हें इस शिकारगाह में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करने देते थे। वे इनसे जाप, ध्यान, प्राणायामादि के सम्बन्ध में प्रायः बातें सुना करते थे और इनसे उपदेश ग्रहण करते थे। ब्रह्मचारीजी वैद्यक भी जानते थे। इन लोगों में से जब कोई रोगी हो जाता था तो ये अपने पास से औषध देते और उन्हें रोग मुक्त कर देते थे, इसलिए ये सभी सेवक इनका बड़ा सम्मान करते थे।

शिकारगाह में भालुओं से कई बार तथा सूअरों से दो बार मुकाबला—एक दिन प्रातःकाल व्यासदेवजी शिकारगाह में एक शुद्ध और स्वच्छ नाले के किनारे पर बैठे दातुन कर रहे थे। आसपास कई झाड़ियां थीं। कुछ दूरी पर कई झाड़ियां कुछ जोर से हिल रही थीं। जब इन्होंने आवाज दी तो इनका हिलना बन्द हो गया किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् वे फिर हिलने लगीं। झाड़ियों में कौन छिपा है यह जानने के

लिए इन्होंने उनमें एक पत्थर बड़े जोर से फेंका। उन झाड़ियों में एक भालू छिपकर इनके फल खा रहा था। पत्थर के लगते ही एक भूरे रंग का भालू क्रोध से गुर्राता हुआ बाहिर निकल आया। वह इनके ऊपर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गया। ये बड़े प्रत्युत्पन्नमति तथा साहसी थे। इन्होंने तुरन्त अपना बल्लम उठाया और उसकी छाती में जोर से भोंक दिया। भालू ने इन के दोनों हाथ पकड़ लिए और बार-बार अपने पंजे से उनकी आंखों पर प्रहार करने का प्रयत्न करता रहा पर जब वह पंजा उठाता तभी व्यासदेवजी तुरंत अपना मुंह पीछे कर लेते थे। इस प्रकार कई मिनट तक लड़ाई होती रही। पास ही एक पत्थरों की बुर्जी-सी बनी हुई थी। इन पत्थरों में चूना नहीं लगाया गया था। व्यासदेवजी भालू को अपने बल्लम से धकेलते हुए इस बुर्जी के पास लेगए और बड़े जोर से भालू को इस बुर्जी से धक्का दिया। धक्का लगते ही बुर्जी के पत्थर धड़ाधड़ नीचे गिर गए। इनकी आवाज को सुनकर भालू भयभीत होकर छोड़कर भाग गया।

व्यासजी ने हिंस्र जीवों से भयभीत होना कभी सीखा ही न था। उनसे बच कर दूर जाना उन्हें पसन्द न था। उनका वीरतापूर्वक सामना करना, उन्हें छेड़ कर उन्हें भगाने में इन्हें बड़ा आनन्द आता था और कभी-कभी तो स्वयं ही उनसे लड़ाई मोल ले लेते थे। एक दिन एक बड़ी रोचक घटना हुई। उस दिन कई काश्मीरी पण्डित इनके साथ इस जंगल में भ्रमणार्थ गए। इस जंगल में सेबों के पेड़ बहुत थे। ये सब इन पेड़ों पर चढ़ कर सेब खाने लगे। व्यासदेवजी ने अपनी धोती को फटने के भय से उतार कर एक झाड़ी पर रख दिया और स्वयं सेब खाने के लिए पेड़ पर चढ़ गए। दैवयोग से एक भालू वहां पर सेब खाने के लिए आ निकला। शायद इसने व्यासदेवजी की भालुओं को परास्त करने की बात सुन ली थी अतः वह डर के मारे भागते हुए उनकी धोती उठाकर ले गया। उसका पीछा इन्होंने बहुत दूर तक किया किन्तु वह भागकर एक ऊंची पहाड़ी पर चढ़ गया और व्यासजी के हाथ नहीं आया।

जहां व्यासदेवजी जाएं वहीं भालुओं को भी जाने में मज़ा आता था। एक दिन की बात है कि रंगीलसिंह और ये अखरोट खाने के लिए गए। यहां के अखरोट बड़े मीठे और काग़ज़ी होते हैं। इन्हें ये बड़े अच्छे लगते थे। जब ये अखरोट खाने के लिए पेड़ों पर चढ़े तब उन्होंने कई भालू पेड़ों पर अखरोट खाते हुए देखे। इनसे छेड़ करने के लिए व्यासदेवजी के दिल में गुदगुदी उठने लगी। वे तुरन्त पेड़ पर से उतरे और नीचे से भालुओं के ऊपर पत्थर फेंकना प्रारंभ कर दिया। एक-एक करके वे सब भाग गए। जंगलों में रहते-रहते ब्रह्मचारीजी वनैले पशुओं के स्वभाव को समझने लग गए थे। वे जानते थे कि भालू कभी एकत्रित होकर सामूहिक रूप से आक्रमण नहीं करते। इनमें से कई तो वृक्षों पर से कूदे और अपने हाथ-पैर तुड़ाकर भागते बने।

इन भालुओं के लिए व्यासदेवजी का नाम ही भयोत्पन्न कर देता था। जहां कहीं वे इनको देख लेते वहीं से तुरन्त भाग जाया करते थे। एक बार होशियापुर निवासी ठाकुर मोतीसिंह के साथ ये भ्रमण के लिए उपरोक्त वन में से जा रहे थे। एक भालू वृक्ष पर चढ़ कर सेब खा रहा था। व्यासजी को देखते ही इसने पेड़ पर

से छलांग लगाई और बेतहाशा भागता डरता चला गया। ये उससे मनोरंजन करना चाहते थे किन्तु उनके मन की उनके मन में ही रह गई। यही नहीं, एक और भालू भी इसी प्रकार से व्यासदेवजी को देखकर भय के मारे कांपने लगा और टट्टी फिरता भाग गया था। सरदार पूर्णसिंह शिकारगाह का जमादार था और उसके आधीन १०-१२ नौकर थे। ये सभी ब्रह्मचारीजी का बड़ा सम्मान करते थे। एक दिन व्यासदेवजी को दाधी गांव जाना था। पूर्णसिंह अपने कंधे पर बंदूक रखकर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उस जंगल में एक झाड़ियों के समूह में से एक भालू निकला और पूर्णसिंह को जोर से धक्का देकर उसे चित जमीन पर पटक दिया और बन्दूक छीनने लगा, किन्तु व्यासदेवजी को लकड़ी हाथ में लेकर आते हुए देखकर उसके भय के मारे प्राण निकलने लगे और वह दुलक्की लगाता हुआ भाग गया।

एक दिन महाराजा हरिसिंहजी शिकारगाह में शिकार खेलने के लिए आए। राजकर्मचारियों ने शिकार का पूरा-पूरा प्रबंध किया। एक मचान बनाई गई जिस पर बैठकर महाराजा साहिब शिकार मारेंगे। फिरायती लोग भालू को आवाज देकर उसे घेरकर मचान के सामने लाएंगे और तब महाराजा ऊंची मचान पर से उसको गोली मारेंगे। युद्धप्रिय क्षत्रिय जाति के महाराजा की रक्षा के लिए कितना भारी प्रबंध किया गया, किन्तु हमारे व्यासदेवजी जंगल के पेड़ों की टहनियां तोड़कर ही इन भालुओं को बात की बात में भगा दिया करते थे। इन्हें ब्रह्मचारीजी से इतना भय लगने लग गया कि उनको देखने मात्र से भाग खड़े होते थे। महाराजा कैसे शिकार खेलते हैं, इसे देखने के लिए ये भी शिकारगाह गए और सारा तमाशा देखकर खूब हंसे। जमादार ने इनकी रक्षा के लिए कई कर्मचारी नियत कर दिए थे, यद्यपि इन्होंने आग्रहपूर्वक कहा था कि उन्हें किसी प्रकार के रक्षकों की आवश्यकता नहीं है। शिकारगाह में इधर-उधर घूमते हुए वे एक पंचगांव के चश्मे में पानी पीने के लिए चले गए। इनमें से एक आदमी के पास शहनाई थी। जल पी चुकने के पश्चात् व्यासजी ने उससे शहनाई बजाने के लिए कहा। उसने बजाना प्रारंभ किया। उसी समय एक भालू झाड़ियों में से वहां निकल आया और शहनाई की धुन पर उसने नाचना, कूदना, उछलना प्रारंभ कर दिया और बड़ी मस्ती में आकर कुछ देर तक नाचता ही रहा। वे सब यह नज़ारा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। व्यासजी का तो हंसते-हंसते सांस फूल गया और पेट दुःखने लगा। थोड़ी देर नाच चुकने के बाद वह भालू पहाड़ी पर भाग गया।

व्यासदेवजी को इस शिकारगाह के जंगली जानवरों को देखकर हर्ष, मनोरंजन तथा कौतूहल होता था। कभी-कभी अपने मनोरंजन के लिए जानबूझकर भी छेड़छाड़ किया करते थे। इनको कभी भय तो इनसे लगता ही नहीं था। ये तो एक प्रकार से इन्हें अपना सहचर समझने लग गए थे। नित्यप्रति कोई न कोई जानवर इन्हें अवश्य मिल जाया करता था। इनकी निर्भयता को देखकर आसपास के लोगों का विश्वास होगया था कि ब्रह्मचारीजी ने इन जानवरों को अभिमंत्रित कर रखा है और ये सब इनके वशीभूत हो रहे हैं, क्योंकि ये अकेले ही वनों में घूमते थे पर कोई जानवर इन्हें तकलीफ नहीं पहुंचाता था। नगर के कई लोग व्यासजी के साथ इन जंगली जानवरों को देखने के लिए जाया करते थे। जब व्यासदेवजी साथ होते थे तो कोई भी

हिंस्र जानवर किसी पर आक्रमण नहीं करता था। जंगली जानवरों से आपूर्ण इस शिकारगाह में किसी की भी अकेले जाने की हिम्मत नहीं होती थी। इसमें केवल राजे-महाराजे, रेजिडेंट तथा वायसराय आदि बड़े-बड़े आदमी ही शिकार खेलने के लिए आते थे। व्यासदेवजी ने इस शिकारगाह में बारहसिंगों के सैंकड़ों ही झुण्ड देखे थे। इसमें महाराजा हरिसिंह ने मछलियां पालने के लिए एक बहुत बड़ा तालाब बनवाया था। इसकी चारदीवारी पांच फुट ऊंची थी और इसमें एक बड़ा फाटक लगवाया गया था। अभी इसमें मछलियां रखी नहीं गई थीं। एक दिन की बात है कि इस अहाते में कुछ जंगली सूअर चर रहे थे। व्यासदेवजी ने विनोद में आकर फाटक बन्द कर दिया। इन्होंने मनोरंजनार्थ इनको तीन-चार पत्थर मारे। सूअर भयभीत होकर फाटक की ओर भागे पर निकल न सके क्योंकि फाटक बन्द था, अतः वे अहाते के भीतर ही इधर-उधर भागते रहे। इनमें से एक बड़ा शक्तिशाली सूअर था। उसने अहाते की दीवार में बड़े जोर से टक्कर दी, दीवार को तोड़ दिया और ये सब बाहिर भाग गए। इनमें से जो अधिक शक्तिशाली थे वे एकत्रित होकर व्यासदेवजी पर आक्रमण करने के लिए आए। दीवार पर अपने आगे के पैर रखकर ये जोर-जोर से फुंकारे मारने लगे। इन्होंने अपनी बल्लम इनकी तर्फ की और पत्थर भी उठा-उठाकर मारे पर वे वहां से किंचिन्मात्र भी न हटे और धक्के दे-देकर दीवार को तोड़ने का प्रयत्न करते रहे। अब व्यासदेवजी को एक उपाय सूझा। वे तुरन्त फाटक पर चढ़ गए और वहां जाकर जमकर बैठ गए। तब वे सूअर तुरन्त भयभीत होकर भाग गए। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हीं सूअरों का झुण्ड पुनः व्यासदेवजी को दिखाई दिया। इनमें से सर्वाधिक शक्तिशाली सूअर ने सामने से भागकर इन पर आक्रमण करना चाहा। वह गोली की तरह सीधा भागकर इनकी तर्फ आया पर व्यासदेवजी तुरन्त एक पेड़ पर चढ़ गए। शीघ्रतावश ये अपनी बल्लम नीचे ही छोड़ गए थे। यह सूअर बहुत देर तक नीचे खड़ा रहा और व्यासदेवजी पेड़ की टहनियां तोड़-तोड़कर उसके ऊपर फेंकते रहे। अन्त में निराश होकर वह वहां से भाग गया। ये घटनाएं कुछ आगे की और कुछ पीछे की हैं अतः इन्हें एक जगह लिख दिया है।

पंडित मुकुन्दजू के पोते शंभुनाथ का विवाह था, इसलिए वे अब नगर में जाकर रहने लग गए थे। इन्होंने अपने पुत्र गोपीनाथ को व्यासदेवजी को निमंत्रित करने के लिए भेजा। ये वर और वधू को आशीर्वाद देने के लिए उनके मकान पर गए और एक सप्ताह वहां ठहरे।

अमृतसर के लिए प्रस्थान

पं० मुकुन्दजू के पोते के विवाह के पश्चात् व्यासदेवजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। यहां मोतीरामजी की बगीची में अपनी कुटिया में निवास किया। अब पुनः दर्शनशास्त्र पढ़ने की रुचि जागृत हुई और पं० हरिश्चन्द्रजी से न्यायदर्शन और वैशेषिक पढ़ना प्रारंभ किया। निरुक्त भी पढ़ना शुरू कर दिया और साथ न्यायमुक्तावली भी। ये दोपहर के बारह बजे से पांच बजे तक इनका अध्ययन करते थे। लगभग छः मास तक इनका अध्ययन करते रहे।

एक योगी से समागम—एक दिन मोतीरामजी की बगीची में खद्दर की एक चादर ओढ़े, नंगे पैर तथा कृश शरीर एक योगी सन्त आए। व्यासदेवजी को योग में

अत्यधिक रुचि थी और सदा ही किसी योग्य योगी की तलाश में रहते थे। इस योगी को देखकर इन्हें बड़ी प्रसन्ता हुई और उनका बड़ा स्वागत किया। ये महात्मा हिसार की ओर के रहने वाले तथा बड़े विद्वान् वीतराग और त्यागी योगी थे। द्वन्द्वों को सहन करने का इन्होंने खूब अभ्यास किया था। दो कौपीन तथा एक खद्दर की चादर ही इनकी सम्पत्ति थी। ये योग और सांख्य में पारंगत तथा बड़े सिद्ध पुरुष थे। अपना नाम इन्होंने योगीराज बताया था। व्यासदेवजी ने इनसे योग सीखने का विचार किया। योगीराज ने इनसे दो छटांक मूंग की दाल और एक छटांक घी की व्यवस्था करने के लिए कहा। इसके लिए मनीआर्डर से रुपया मंगवाकर देने का वायदा किया। उन्होंने अपनी यह भी इच्छा प्रकट की कि जो व्यक्ति दाल बनाएगा उसको वेतनरूप में कुछ दे दिया जाएगा। कहा कि मैं २४ घण्टे में केवल यही खाता हूं क्योंकि योगी के लिए यही सर्वोत्तम भोजन है। व्यासदेवजी योग की सिद्धियों आदिक के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते थे अतः उनकी सेवा का संपूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। इन्होंने उनसे योगसूत्र वर्णित अणिमादि सिद्धियों के बारे में जिज्ञासा की और निवेदन किया कि कुछ सिद्धियां प्रत्यक्षरूप से दिखाने की कृपा की जाए। योगीराज नवयुवक योगी व्यासदेवजी की योग के प्रति जिज्ञासा और रुचि देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए, वचन दिया कि अष्ट सिद्धियों में से एक सिद्धि आपको अवश्य दिखाई जाएगी। योगीराज अढ़ाई मास तक मोतीराम के बगीचे में रहे। दोनों योगियों में योग सम्बन्धी वार्तालाप प्रतिदिन होता था। जब योगीराज के वहां से जाने में केवल थोड़े से ही दिन रह गए तब सिद्धि प्रत्यक्षरूप से दिखाने के लिए व्यासदेवजी ने आग्रह किया। इन्होंने उनकी इच्छा पूर्ति के लिए उन्हें पूरा विश्वास दिलाया। ये योगीराज किसी से आवश्यकता से अधिक वार्तालाप नहीं करते थे। दिन-रात अपनी कुटिया के दरवाजे बन्द करके उसमें रहा करते थे। प्रायः चारपाई पर लेटे रहते थे। लगभग दस-ग्यारह बजे स्नानादि नित्य कर्म करने के लिए कुटिया से बाहर निकलते थे। एक दिन योगीराज ने सिद्धि दिखाने की इच्छा प्रकट की और व्यासदेवजी से एक कुटिया तैयार करने, एक कुशा का आसन उसमें बिछाने, एक लोटा जल का उसमें रखने, कुटिया के झरोखे-रोशनदानादि को बन्द करवाने आदि के लिए कहा और साथ ही चार दिन के लिए कुटिया पर पहरेदारों के प्रबन्ध के लिए भी कहा। इसमें योगीराज समाधि लगाना चाहते थे। उन्होंने व्यासजी को समझाया कि जब वे भीतर जाकर समाधि लगा लें तब कुटिया में ताला लगा देना, उस पर सील लगा देना, एक व्यक्ति को सावधानतापूर्वक पहरा देने के लिए तैनात कर देना। व्यासदेवजी को यह सब सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि तीन-चार दिन की समाधि तो वे प्रायः लगाया करते थे किन्तु कभी किसी पहरेदार की आवश्यकता उन्होंने अनुभव नहीं की। इन्होंने योगीराजजी की आज्ञानुसार सब प्रबंध कर दिया। इस समाधि में क्या विलक्षणता थी इसे समझ न सके। योगीराज ने स्नानादि करके ८ बजे कुटिया में प्रवेश किया और ९६ घंटे की समाधि प्रारंभ कर दी। उस समय वहां पर पन्द्रह-बीस आदमी उपस्थित थे। इस समाधि की धूम सारे अमृतसर में फैल गई। ९६ घण्टे के पश्चात् जब समाधि खुलने का समय आया तो वहां पर सैकड़ों नर-नारी एकत्रित होगए। जब ताला खोला गया तो उसमें योगीराज नहीं थे। वे अन्तर्ध्यान हो चुके थे। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् योगीराजजी के दर्शन-लाभ कभी नहीं हुए।

पुनः काश्मीर प्रस्थान

गर्मी का पंजाब में बड़ा प्रकोप रहता है। योग साधना के लिए शीतप्रधान प्रदेश उपयुक्त रहता है, अतः व्यासदेवजी ने काश्मीर के लिए प्रस्थान कर दिया। अपनी प्रारंभिक साधना का प्रारंभ इन्होंने यहीं से किया था इसलिए इस स्थान से उन्हें विशेष अनुराग था। जब ये काश्मीर पहुंचे तो पंडित मुकुन्दजू के पुत्र पंडित गोपीनाथजी इनके पास आए और उन्हें मुफ्ती बाग में ही निवास करने के लिए निवेदन किया और विश्वास दिलाया कि आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। आपकी सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था कर दी जाएगी। इनके पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था इसीलिए इन्हें यह सब बातें कहने की आवश्यकता हुई थी। पण्डित मुकुन्दजू का व्यासदेवजी से बड़ा स्नेह था। उनका बड़ा आदर करते थे और उनसे विविध विषयों पर प्रायः उपदेश सुना करते थे। पण्डित गोपीनाथ के आग्रह करने पर ब्रह्मचारीजी ने मुफ्ती बाग में ही ठहरने का निश्चय किया। महात्माओं के विशेष सम्पर्क से व्यासदेवजी को रसायन बनाने का बड़ा शौक था। वैद्यक का भी इन्होंने अध्ययन किया था। सभी रोगों की औषधियां अपने पास रखा करते थे। गरीबों को औषधियां वितरण किया करते थे। उनसे दाम नहीं लेते थे। इसलिए निर्धनों में ये सर्वप्रिय थे। पहाड़ों पर, झरनों, झीलों और नदियों के किनारे प्रायः जड़ी-बूटियां तथा औषधियां एकत्रित करने जाया करते थे।

तारसर, मारसर आदि झीलों पर भ्रमण--श्रावण मास में व्यासदेवजी ने औषधियां बनाने के लिए तारसर, मारसर आदि झीलों के किनारों पर से बूटियां ढूंढने का विचार किया। जिन दो मज़दूरों ने इन झीलों को पहिले से देख रखा था उन मज़दूरों को मज़दूरी पर करके उनके ऊपर वस्त्र, बिस्तर तथा भोजन-सामग्री लदवा कर प्रस्थान किया। तीनों एक नदी के किनारे-किनारे चल दिए। इस नदी का पानी हार्वन झील में गिरता था। यह नदी तारसर झील से निकलती है। मारसर झील से पहलगांव की नदी निकलती है। तारसर से कुछ मील की दूरी पर चन्द्रसर नामक झील है। इस झील से भी एक नदी का निकास होता है जो गांधरबल चली जाती है। इन झीलों में तारसर सबसे बड़ी तथा विवेकसर सबसे छोटी है जिसका जल सोनमर्ग की ओर जाता है। ये झीलें प्रायः तेरह-चौदह हजार फीट की ऊंचाई पर हैं। इनके एक तर्फ हार्वन, दूसरी ओर पहलगांव, तीसरी ओर अमरनाथ तथा सोनमर्ग और चौथी ओर गांधरबल तथा कंगण हैं। व्यासदेवजी हार्वन से चलकर दूसरे दिन तारसर झील पर पहुंच गए। इसके किनारे पर तो कोई वृक्ष नहीं थे। इसके नीचे कुछ वृक्ष अवश्य थे। यहीं पर एक देवदार के वृक्ष के नीचे ठहर गए। चारों ओर जड़ी-बूटियों तथा पुष्पों से परिपूर्ण ऊंची-ऊंची पहाड़ियां दृष्टिगोचर हो रही थीं। रात्रि के समय उस स्थान से लगभग आध मील की दूरी पर इन्हें दीपक की ज्योति के समान प्रकाश दिखाई दिया। इन्होंने एक कुली से, जिसका नाम अकबर था, पूछा कि सामने की पहाड़ी पर कैसा प्रकाश हो रहा है। जब उसने कहा कि यह बूटियों का प्रकाश है तब व्यासजी तथा अकबर दोनों उन्हें तोड़ने के लिए चल दिए। ज्यों-ज्यों ये आगे बढ़ते थे त्यों-त्यों प्रकाश कम होता जाता था और जब उन बूटियों के पास पहुंचे तब वह प्रकाश बिलकुल लुप्त होगया। इसलिए इन्हें कुछ पता न चल

सका कि ये बूटियां क्या थीं और इनके नाम क्या थे। प्रातः ६ बजे तारसर झील के किनारे गए। यह झील कई मील लम्बी चौड़ी है और इसके किनारे बड़ी-बड़ी पहाड़ियों पर बड़े विस्तृत मैदान हैं जिन पर जड़ी-बूटियों और पुष्पों का आधिक्य है। इसके आसपास की मिट्टी में क्षार था, इसे खाने के लिए बारहसिंगों के झुण्ड के झुण्ड आया करते थे। इसे खाकर वे नमक की पूर्ति कर लिया करते थे। इनकी क्रीड़ाएं तथा लीलाएं, उछल-कूद, फुदकना और फांदना देखकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता लाभ हुई। इस झील पर से बहुत सी जड़ी-बूटियां एकत्रित कीं। एक दिन घूमते-फिरते इसके किनारे दो बड़े चमकदार बिलोर पत्थर उपलब्ध हुए। इनका प्रकाश हीरे के समान था। एक पत्थर में दो स्थानों पर चमक थी और दूसरे पर एक स्थान पर। ऐसा प्रतीत होता था कि एक पत्थर में दो हीरे तथा दूसरे में एक हीरा तिरोहित था। इन हीरों को अमृतसर जाकर निकलवाने के विचार से अपने पास संभालकर रख लिया। मारसर झील बहुत दूर थी इसलिए ये वहां नहीं गए। तारसर से ऊपर महादेव पर्वत है जो शिवलिंग के आकार का है। काश्मीर से लोग यहां यात्रा करने आया करते हैं। यहां से भी कई औषधि उपयोगी जड़ी-बूटियां एकतित्र कीं। यहां पर भी अनेक भालू, बाघादि दृष्टिगोचर हुए। अट्ठारह दिन तक विविध प्रकार की बूटियां और जड़ें लेकर वापस लौट आए। यह स्मरण नहीं रहा कि तारसर का पानी झील में आता है या मारसर का।

होतीमर्दान के नवाब को आशीर्वाद––सैयद जवांशाहपीर नामक एक मुसलमान नवयुवक पर व्यासदेवजी के चरित्र का बड़ा प्रभाव था। सायंकाल जब ये भ्रमणार्थ जाते तो वह उनके साथ जाता था। इसको साधु-महात्माओं का संग बड़ा प्रिय था। यह घण्टों ही इनके पास बैठकर उपदेश सुना करता था। यह इन्हें अपना गुरु मानता था और इनकी बड़ी सेवा करता था। इनके प्रति इसकी बड़ी श्रद्धा थी। धीरे-धीरे यह अपने साथ अन्य मुसलमानों को भी लाने लगा। ये सभी इन पर बड़ी श्रद्धा और विश्वास रखने लगे और इनके बड़े सेवक और भक्त बन गए। हिन्दुओं में तो इनकी ख्याति थी ही, अब मुसलमानों में भी इनकी कीर्ति होने लगी। ये इनमें भी सर्वप्रिय बन गए।

एक दिन सैयद जवांशाहपीर व्यासदेवजी के साथ सैर करने गया। मार्ग में होतीमर्दान के नवाब अपनी मोटरगाड़ी में सैर करते हुए उधर आ निकले। इन्होंने सैयद को अपने नौकर के द्वारा अपने पास बुलाया और व्यासदेवजी के विषय में पूछताछ की। उसने इनकी बड़ी प्रशंसा की और जब नवाब को पता चला कि ये बालब्रह्मचारी बड़े विद्वान् महात्मा और महान् योगी हैं तथा सैयद के गुरु हैं तब उसने इससे कहा कि इनको बड़ी सिद्धियां प्राप्त होंगी। अपने केवल ध्यान मात्र से ये जो चाहते होंगे कर लेते होंगे। ये देश, काल और अवस्था से बंधे नहीं हैं। ये जहां चाहें जा सकते हैं, जब चाहें वहां पहुंच सकते हैं और जिस रूप में इच्छा हो उसी रूप में जा सकते हैं। इनके लिए कोई बात असम्भव नहीं। तुम मेरा परिचय इनसे करवा कर मेरा एक काम इनसे करवा दो। गुलज़ार बेगम नामक एक युवती इसकी प्रेमिका थी। वह लाहौर में रहती थी। यह उससे विवाह करना चाहता था किन्तु वह इस बात को स्वीकार नहीं करती थी। नवाब यह चाहता था कि किसी

प्रकार से व्यासदेवजी उसका मन इसकी ओर मोड़ दें और वह इससे विवाह कर ले। सैयद ने नवाब का परिचय तो व्यासदेवजी से करवा दिया किन्तु उसकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए प्रार्थना नहीं की। उस प्रकार की बात करने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई। नवाब ने उनसे हाथ जोड़कर और बड़े अदब के साथ झुककर प्रणाम किया। व्यासदेवजी अपने योगबल से दूसरों के हृदय के भावों को जान लेते थे। नवाब के मन में उस समय जो कुछ भी भाव थे वह तुरन्त समझ गए और "तुम्हारी मनोकामना सिद्ध हो" यह आशीर्वाद देकर उसे विदा किया। इस आशीर्वाद के परिणामस्वरूप लगभग एक-दो मास के भीतर ही गुलज़ार बेगम ने नवाब से विवाह कर लिया। ये दोनों महाराजजी का आशीर्वाद लेने के लिए अमृतसर गए और बड़ी कृतज्ञता प्रकट की।

सत्यनिष्ठ सिद्धों के वाक्य कभी व्यर्थ नहीं होते, उनकी वाणी से जो बात निकलती है वह सदैव सत्य होती है। यद्यपि अभी व्यासदेवजी नवयुवक ही थे किन्तु योगाभ्यास और यमनियमपालन और बड़ी-बड़ी लम्बी समाधियों द्वारा इन्हें बड़ी शक्ति तथा योगबल प्राप्त हो गया था। अपने आशीर्वादों तथा वरदानों से इन्होंने सैकड़ों नर-नारियों की कामनाओं को पूर्ण किया था। दुखियों का दुःख हरण, पीड़ितों की पीड़ा को दूर करना, आर्तों की आर्ति को मिटाना इनका स्वभाव था।

पुनः अमृतसर के लिए प्रस्थान

विजयादशमी के उपरान्त व्यासदेवजी अमृतसर पधारे और पूर्ववत् मोतीराम की बगीची में अपनी कुटिया में रहकर योगाभ्यास करने लगे। इस बार इन्होंने उपनिषदों का शांकरभाष्य पण्डित हरिश्चन्द्रजी से पढ़ना प्रारम्भ किया। नित्य ही पांच-छः घंटे इनके पास पढ़ने के लिए जाया करते थे और शेष समय स्वाध्याय और अभ्यास में व्यतीत करते थे।

हिन्दू-मुसलमानों के दंगे—व्यासदेवजी को पण्डित हरिश्चन्द्रजी से विदित हुआ कि नगर में हिन्दू-मुसलमानों ने दंगा कर दिया है। कटरा आहलूवालिया में बहुत से हिन्दू मारे गए हैं। नगर के लगभग सारे बाजार बन्द हो गए हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों में बड़ी तनातनी और खिचाव हो रहा है। पण्डितजी ने ब्रह्मचारियों को जब तक यह दंगा और फिसाद बन्द न हो जाए तब तक अनध्याय रखने का आदेश दिया और जहां पर हिन्दुओं की संख्या कम है और मुसलमानों की अधिक वहां जाकर हिन्दुओं की रक्षा का प्रबन्ध करने और जहां पर हिन्दुओं की संख्या अधिक है वहां पर उन्हें आत्मसम्मान, अपनी सम्पत्ति और बहू-बेटियों की रक्षा के लिए साहसपूर्वक तैयार रहने का आदेश दिया। व्यासदेवजी को आज्ञा दी गई कि वे सब बाजारों में घूम-घूमकर क्रूर वस्तुस्थिति से पण्डितजी को अवगत करें। इन्होंने आकर सूचना दी कि भाई के कटरे और लोगढ़ के कटरे में मुसलमान अधिक रहते हैं इसलिए यहां के हिन्दू बड़े भयभीत हो रहे हैं और निवेदन किया कि मैं नहर पर जाकर हिन्दुओं की रक्षा करूंगा क्योंकि भाई के कटरे के एक हजार मुसलमान एकत्रित होकर फूलों के चौक में हिन्दुओं पर आक्रमण करने की तैयारी में लगे हुए हैं। इन्होंने फूलों के चौक में जाकर काहनचन्द, डाक्टर

मनोहरलाल, हकीम निक्कामल, साहबदयाल इत्यादि प्रतिष्ठित लोगों की एक सभा की और इन सबको आत्मरक्षार्थ तैयार किया। हिन्दुओं की रक्षा के लिए तत्काल एक योजना बनाई। महिलाओं और बच्चों को मकानों के अन्दर रहने का आदेश दिया गया। मकानों की छतों के ऊपर पत्थर, ईंटें रख दी गईं और महिलाओं को समझाया गया कि जब भी मुसलमान हल्ला बोलें तभी उनके ऊपर पत्थरों की बौछार करें और जब वे ऊपर को देखें तो तुरन्त उनकी आंखों पर मिर्चें फेंक दें जिससे वे घंटों ही अपनी आंखें मसलते रह जाएं और हिम्मत हार जाएं। सब नवयुवकों तथा पुरुषों में कुल्हाड़ियां, बर्छियां, छुरे और सोटियां वितरित करदी गईं और छुरा तथा भाला चलाने की शिक्षा का प्रत्येक घर में प्रबन्ध किया गया। इस कार्य के लिए मुहल्ले का प्रत्येक मकान एक प्रशिक्षण केन्द्र बन गया। ४६ नवयुवकों की एक कमेटी बनाई गई जिसका काम मुहल्लों में जाकर सबको आत्मरक्षार्थ उत्तेजित करना और जहां हिन्दुओं का पक्ष कमजोर देखें वहीं जाकर उनकी सहायता करना था। इनमें ६ नवयुवकों ने यह प्रण किया था कि मर जाएंगे पर पीठ नहीं दिखाएंगे। व्यासदेवजी इन नवयुवकों के प्राण थे। ये ही इनको प्रेरणा देने वाले पथप्रदर्शक थे और नगर की रक्षा के लिए प्राणप्रद संजीवनी शक्ति का इनमें संचार कर रहे थे। श्रीमद्भगवद्गीता के आत्मा की नित्यता के विषय के श्लोकों को सुना-सुनाकर देह की अनित्यता तथा आत्मा की नित्यता का बार-बार उपदेश करते थे और उन्हें जनरक्षा और जनकल्याण तथा समाजसेवा के लिए कटिबद्ध करते थे। जहां हिन्दुओं में कमज़ोरी आते हुए देखते वहीं "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" का घोष सुना कर उन्हें उत्साहित करते थे। 'मरो या मारो' का नारा बुलन्द हो रहा था। इनसे प्रेरणा पाकर हिन्दुओं ने डटकर मुसलमानों का मुकाबला किया। कई मुहल्लों में दंगा हुआ, सैंकड़ों हिन्दू और मुसलमान घायल हुए और मृत्यु का ग्रास बन गए। हिन्दुओं की वीरता और साहस को देखकर मुसलमानों की पीठ टूट गई। लगभग एक सप्ताह तक यह मारकाट जारी रही और इसके बाद शान्ति स्थापित हुई।

सन्त रामदासजी का सत्संग—सन्त रामदासजी अमृतसर में बड़ी नहर के किनारे कठिन तपस्या का जीवन व्यतीत कर रहे थे। शीशम के एक पेड़ के नीचे इन्होंने एक चबूतरा बनवा लिया था। वे सदैव इसी चबूतरे पर बैठे रहते थे। गर्मी, सर्दी, धूप तथा वर्षा में यही उनका मकान था। दो खद्दर की मैली-सी चादरों के अतिरिक्त कोई अन्य सम्पत्ति उनके पास न थी। दियासलाई के अतिरिक्त वे कभी किसी से कुछ नहीं मांगते थे। अन्न का इन्होंने सर्वथा परित्याग किया हुआ था। प्रायः मौन रहते थे। गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, रागद्वेष, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वों से रहित थे। यदि कोई सेवक या श्रद्धालु भक्त इन्हें फल आदि देने जाते तो वे इसे कभी स्वीकार नहीं करते थे। बड़े ऊंचे दर्जे के तपस्वी थे। इनका वैराग्य बड़ा तीव्र था। ये सदा वृक्षों के पत्ते उबालकर खाया करते थे। जंगली अंजीरों के पत्तों पर प्रायः निर्वाह करते थे। वर्षों तक ये नहर के किनारे पर रहे। व्यासदेवजी को इनका सत्संग बड़ा पसन्द था। वे प्रायः इनके पास जाया करते थे और जब कभी इन्हें दियासलाई की आवश्यकता होती थी तो उन्हें झट जाकर दे आया करते थे।

ब्रह्मचारीजी साढ़े ग्यारह बजे अध्ययन के लिए पंडित हरिश्चन्द्रजी के पास जाया करते थे। एक दिन सन्त रामदासजी भी उनके पीछे-पीछे चल दिए। जब ये लक्ष्मणसर बाजार में पहुंचे तो उन्होंने एक हलवाई को गर्म-गर्म जलेबी घी में से निकालते हुए देखा। सन्त रामदासजी उस हलवाई की दुकान के सामने खड़े होगए। इनका सब लोग बड़ा सम्मान करते थे। हलवाई ने सन्तजी से पूछा कि आप जलेबी खाओगे। सन्तजी चुप रहे और उसकी बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया। जब हलवाई किसी काम से भीतर चला गया तब इन्होंने जलेबियों से भरे थाल में मुंह डालकर इन्हें खाना प्रारंभ कर दिया। जब दुकानदार बाहिर आया और सन्तजी को थाल में मुंह डालकर जलेबी खाते हुए देखा तो वह क्रोध के मारे आगबबूला होगया और झट झरना उठाकर उनकी पीठ पर मारने लगा। इसने न आव देखा न ताव, मारता ही गया। व्यासदेवजी ने जब हलवाई को सन्तजी को मारते हुए देखा तो उससे कहा कि सन्तजी को मत मारो, जितनी जलेबी ये खाते हैं खाने दो, सारे थाल के दाम चुका दिए जाएंगे, और रामदासजी से कहा कि आपने जलेबी खाने की कभी इच्छा प्रकट नहीं की। आप मुझे आज्ञा देते तो मैं आपको जितनी आवश्यकता थी उतनी जलेबियां लाकर दे देता। आपने दुकानदार का सारा थाल क्यों झूठा कर दिया? सन्तजी ने उत्तर दिया कि यदि आप ही सब कुछ कर देते तो इस सन्त को मार कैसे पड़ती और जिह्वा को वश में न रख सकने के कारण दण्ड कैसे मिलता। ये २६ साल से अपने मन को जलेबियां खाने से रोक रहे थे। उसके ऊपर बड़ा नियंत्रण रखते थे। वर्षों तक जलेबियां खाई थीं किन्तु इनकी भूख शान्त नहीं हुई थी। ज्ञानेन्द्रियों में रसना बड़ी बलवती है। काम और रसना पर विजय पाना बड़ा दुस्साध्य है। भोग भोगने से कभी शान्त नहीं होते और यदि विषयों से मन तथा इन्द्रियों को रोका भी जाए तो इनका रस बना रहता है। इनका स्वाद नष्ट नहीं होता। जो प्रकट रूप से तो इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं किन्तु मन में उनका ध्यान करते रहते हैं, ऐसी स्थिति को भगवान् श्रीकृष्ण ने मिथ्याचार की कोटि में रखा है। भर्तृहरिजी ने भी ऐसे ही व्यक्तियों के लिए कहा है "भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।" सन्तजी के मन को हलवाई ने बड़ा भारी दण्ड दिया। इस मार से वे प्रसन्न थे क्योंकि उनका विश्वास था कि इस भारी मार को खाने के बाद अब जलेबी देखकर मुंह में पानी नहीं भरेगा। इसे दण्डित करने के लिए ही सन्तजी ने हलवाई के जलेबियों से भरे थाल में मुंह डाला था। जानबूझकर ही इन्होंने ऐसा किया था। इन्होंने हलवाई पर किसी प्रकार का क्रोध नहीं दिखाया। उसकी प्रशंसा की और इस दण्ड के लिए उसे धन्यवाद दिया। हलवाई ने उनके पैरों में सिर रखकर क्षमा-याचना की। रामदासजी हलवाई को आशीर्वाद देते हुए नहर के किनारे अपने स्थान पर चले गए।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् व्यासदेवजी सीधे सन्त रामदासजी के पास गए और बाजार में जो कुछ हुआ था उसके लिए बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया। २६ साल तक कठिन तपस्या करने पर भी ये एक इन्द्रिय पर विजय प्राप्त न कर सके तो शेष ६ इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए तो अनेक जन्म धारण करने की आवश्यकता होनी चाहिए। जो सन्त वर्षों से केवल पत्ते उबालकर खा रहा हो, जो सर्दी, गर्मी, धूप, वर्षा एक चबूतरे पर बैठकर काट रहा हो, जो कभी न भिक्षा मांगता हो

और न किसी से किसी प्रकार की भेंट स्वीकार करता हो और जो पूर्ण रूप से अपरिग्रही हो, यदि उसकी यह स्थिति हो सकती है तो फिर छोटे-मोटे साधुओं की क्या हालत होती होगी ! सन्तजी ने व्यासदेवजी से सब बात सविस्तार कही। वे हठपूर्वक कई वर्षों से शम और दम का अभ्यास कर रहे थे। पर उनमें ज्ञान और वैराग्य की न्यूनता थी। प्रबल ज्ञान और वैराग्य के बिना इन्द्रियों पर विजय पाना असंभव है। सर्वप्रथम इन्द्रियों और इनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, तब आत्मविज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना सब साधनाएं व्यर्थ हैं। सन्तजी को रसनेन्द्रिय के जीतने में इतने वर्ष लगे तो शेष इन्द्रियों की तो बात ही बहुत दूर है। व्यासजी ने कहा कि षट् रस का आस्वादन करना रसना का धर्म है, इसे आप कैसे हटा सकते हैं ? इसीलिए तो गीता में भगवान् ने कहा है कि "प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।" इसका बड़ा सुन्दर उत्तर सन्तजी ने दिया : "जलेबी खाने में रस की बात नहीं थी। वहां तो आसक्ति की बात थी। शरीर की आवश्यकता की पूर्ति तो गुड़ और चीनी खाकर भी की जा सकती थी। आसक्तिपूर्वक किसी भी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण करना राग है। भोग में आसक्ति ही तो बन्धन का कारण है।" इस घटना के पश्चात् सन्तजी अमृतसर में नहीं रहे। सट्टोरे लोग इन्हें बहुत तंग किया करते थे। श्रद्धालुओं, भक्तों और सेवकों की संख्या भी बहुत होगई थी। प्रायः सारा दिन कोई न कोई आते ही रहते थे। इससे इनकी साधना और भजन में क्योंकि विघ्न उपस्थित होता था अतः ये वहां से कहीं अन्यत्र चले गए।

व्यासदेवजी की रसनेन्द्रिय में आसक्ति—व्यासदेवजी ने जब से गृह-परित्याग किया था तब से वे स्वयंपाकी थे और अभ्यास करते-करते भोजन बनाने में सिद्धहस्त होगए थे। आलू और मटर का मौसम अभी प्रारंभ ही हुआ था कि इन्होंने इन दोनों को मिलाकर सब्जी बनाई। वह अत्यधिक स्वादिष्ट बनी। खाते-खाते पेट तो भर गया किन्तु रसनेन्द्रिय की शान्ति नहीं हुई। वह अधिकाधिक खाना चाह रही थी। इन्हें तुरन्त सन्त रामदासजी की स्मृति हो आई। इनका संयम असीम था। वृक्षों के पत्तों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाते थे। अपनी रसनेन्द्रिय को इन्होंने बहुत धिक्कारा और कहा, "सन्त रामदासजी की रसनेन्द्रिय तो पत्ते खाकर ही सन्तुष्ट हो जाती थी किन्तु तू आलू मटर तथा अन्य विविध प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करके भी शान्त नहीं होती। इन आलू मटरों में नमक, मसाला, दही इत्यादि ही तो हैं। अब तुम्हें कल से ये सब अलग-अलग खिलाए जाएंगे।" दूसरे दिन से ही इन्होंने मटर और आलू, नमक, मिर्च तथा मसाले के बिना ही बनाने प्रारंभ कर दिए। इनको खाया किन्तु कुछ भी स्वाद नहीं आया। बस, इसी दिन से नमक, मिर्च, मसाला तथा चीनी खाना सर्वथा त्याग दिया। अब दाल शाक आदि सब बिना नमक ही खाना प्रारंभ कर दिया और दूध में चीनी डालना भी बन्द कर दिया। तीन साल तक नमक और चीनी बिलकुल नहीं खाई। इससे इनके हृदय में दर्द रहने लग गया था। अनेक उपाय किए किन्तु इस पीड़ा को आराम नहीं आया। जब नमक और चीनी खाना प्रारंभ किया तो स्वतः ही दो तीन दिन में आराम आगया और एक सप्ताह में औषधोपचार किए बिना ही यह पीड़ा जाती रही। आयुर्वेद का यह सिद्धान्त है कि षड् रस के नियमानुसार नित्य सेवन करने से मनुष्य नीरोग रह सकता है और सब

धातुओं की वृद्धि समानरूपेण होती रहती है तथा वात, पित्त और कफ भी विषम होकर कुपित नहीं होने पाते।

सन्त झण्डू से वार्तालाप--सन्त झण्डू बहुत सालों से नहर पर नारायणसिंह की बगीची में रहा करते थे। ये सिक्ख धर्म के अनुयायी थे और बहुत शान्त प्रकृति के थे। सदैव वाहगुरु के नाम का जाप किया करते थे। इनका खर्चा केवल छः पैसे प्रतिदिन होता था। इन छः पैसों के लिए ये नित्य नमक मण्डी में मजदूरी करने जाया करते थे। जब मजदूरी करके छः पैसे कमा लेते तो इनका आटा मोल ले आते और रोटी बनाकर खा लेते। दाल और शाक ये बहुत कम खाते थे। लकड़ी ये स्वयं बीन लाते थे। एक खद्दर की चादर, एक कच्छ, एक बनियान, एक छोटी-सी मिट्टी की थाली, एक तवा मिट्टी का और पानी पीने के लिए एक मिट्टी का पात्र ही बस इनकी सम्पत्ति थी। व्यासदेवजी इनकी दशा देखकर नित्य ही इनसे बातचीत करने का अवसर ढूंढा करते थे। एक दिन ये इन सन्तजी के पास आए और दोनों में निम्न वार्तालाप प्रारंभ हुआ :—

व्यासदेवजी—आपके पास केवल एक फटी पुरानी चादर है। शीत बहुत पड़ रहा है। यदि कहो तो मैं आपके लिए कपड़े, चादर और कम्बल की व्यवस्था कर दूं।

सन्त झण्डूजी—आपकी बड़ी कृपा है, किन्तु क्षमा करें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं।

व्यासदेवजी—सर्दी बहुत पड़ रही है। आपको शीत तो सताता ही होगा।

सन्त झण्डूजी—जंगल के पशु-पक्षी, कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस आदि जीवों को ठण्ड क्यों नहीं लगती ? वे क्या शीतकाल में गर्म वस्त्र धारण करते हैं ? आवश्यकतानुसार मेरे पास पर्याप्त वस्त्र हैं।

व्यासदेवजी—किन्तु महाराज ! वे पुराने हो गए हैं, फट गए हैं, और मैले हैं।

सन्त झण्डूजी—लेकिन इस शरीर से तो अच्छे हैं। इसमें मांस, मज्जा, चर्बी, टट्टी और पेशाब के अतिरिक्त और है ही क्या ?

व्यासदेवजी—आपको छः पैसे का आटा लाने के लिए नित्यप्रति मजदूरी करने के लिए नमक मंडी जाना पड़ता है। कष्ट होता होगा। मैं आपको नित्यप्रति दो आने का आटा मंगवा दिया करूं ?

सन्त झण्डूजी—महाराज ! आप की कृपा के लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूं, किन्तु क्षमा करें, मैं लूला, लंगड़ा, रोगी तथा अपाहज नहीं हूं जिससे मैं अपने लिए दो रोटी का आटा भी न कमा सकूं।

व्यासदेवजी—आप केवल दो ही आने की मजदूरी नित्यप्रति क्यों करते हैं ?

सन्त झण्डूजी—क्योंकि मुझे इतने की ही जरूरत है।

व्यासदेवजी—यदि कभी बीमार हो जाओ अथवा मजदूरी न मिले तो बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाए।

सन्त झण्डूजी—अब तक तो कभी ऐसा अवसर आया नहीं, फिर व्यर्थ में ही भविष्य के लिए चिन्ता क्यों करूं और इस कल्पना से लाभ भी क्या है ?

व्यासदेवजी—आपको यह सन्तोष कैसे प्राप्त हुआ ?

सन्त भण्डूजी—सन्तों के सत्संग और वाहगुरु की कृपा से ।

व्यासदेवजी का दृढ़ विश्वास था कि सत्संग से शुद्ध भावनाएं, पवित्र विचार और आध्यात्मिक साधन, ध्यान, जाप तथा त्याग आदि दृढ़भूमि होते हैं। इसलिए नवयुवक होने पर भी कभी वे साधारण गृहस्थियों से अधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। सुदूर किसी एकान्त स्थान पर वास करना उन्हें अधिक रुचिकर था । सदैव साधुओं, सन्तों, महात्माओं तथा योगियों के साथ निवास करते तथा उनके साथ वार्तालाप तथा उनका सत्संग किया करते थे । अपने गन्तव्य पथ से विचलित न होने, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिमगिरि के समान अटल रहने तथा संसार के आघातों और प्रतिघातों को वीरतापूर्वक सहने में सन्तों का संपर्क इनका बड़ा सहायक रहा है ।

सन्त दासुरामजी का समागम—दासुराम एक सिंधी सन्त थे । इन्होंने गेरुए वस्त्र धारण नहीं किए थे । सदैव श्वेत वस्त्र ही धारण किया करते थे। एक बार ये कहीं बाहर से आए और व्यासदेवजी के पास वाली कुटिया में आकर रहने लग गए। ये प्रातःकाल ही जंगल में किसी एकान्त स्थान पर अथवा नहर के किनारे साधना करने के लिए चले जाया करते थे । दोपहर में भिक्षा मांगने के लिए जाते थे और सायंकाल बगीची में आ जाते थे । ये बड़े धनाढच कुल के सज्जन थे । इनके लड़के शिकारपुर में व्यापार करते थे । इनको तीव्र वैराग्य होगया था, अतः गृह-परित्याग करके चले आए थे । प्रायः रात्रि के नौ बजे ये बराण्डे में व्यासदेवजी के पास बैठ जाते और ज्ञान, ध्यान, साधना और वैराग्य आदि के सम्बन्ध में वार्तालाप किया करते थे । उनके बाल्यकाल से ही वैराग्य ले लेने और घर तथा परिवार के सब सुखों को ठोकर मारकर गृह-त्याग, उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य, शास्त्राध्ययन, ज्ञानपिपासा, एकान्त सेवन से वे बड़े प्रभावित थे । उन्हें देखकर इनका भी वैराग्य दृढ़तर होता जाता था । दासुरामजी अपने पास रुपया पैसा नहीं रखते थे । एक दिन उनका लड़का व्यापार सम्बन्धी किसी कार्यवश अमृतसर आया । इन्होंने उसे व्यासदेवजी को चार सौ रुपये भेंट रूप में देने की आज्ञा की । ये शब्द सुनते ही इन्होंने कहा कि मुझे रुपये की बिलकुल आवश्यकता नहीं है । दासुराम ने अपने लड़के से पूछा कि कुसुमलता अब कितने वर्ष की होगई है। पुत्र ने कहा कि १७-१८ वर्ष की होगई है, उसके लिए वर की बड़ी खोज कर रहा हूं किन्तु अभी सफलता नहीं मिल सकी है । दासुराम ने व्यासदेवजी को बुलाया और एक आम के वृक्ष के नीचे ले गए। दोनों में निम्न वार्तालाप हुआ :—

दासुराम—ब्रह्मचारीजी ! जबसे मेरा आपसे परिचय हुआ है तब से कई बार मेरी ऐसी इच्छा हुई है कि मैं कुसुमलता का विवाह आपके साथ करवा दूं और लड़कों से आपको खूब बड़ी धनराशि दिलवा दूं जिससे आप दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें । यदि आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर लें तो मैं आपका चिर ऋणी रहूंगा और कुसुमलता का जीवन भी सफल हो जाएगा ।

व्यासदेवजी—(हंसकर) इस बात का उत्तर रात के नौ बजे दूंगा । इन्होंने पिता और पुत्र दोनों को बुलाया और कहा, "दासुरामजी ! मैं तो आपको बहुत ऊंचा सन्त समझता था और आपकी भक्ति, श्रद्धा और साधना की सदैव सराहना

किया करता था । आपने मेरे ब्रह्मचर्य, वैराग्य और साधना की भूरि-भूरि पचासों बार प्रशंसा की है, किन्तु आज आप मुझे पतन के गहन गर्त में गिराने के लिए समुद्यत हो रहे हैं । क्या जाप, तप, ध्यान, पूजा, ज्ञान और वैराग्य का यही फल है जो आज आप मुझे देना चाहते हैं ? यह तो सांसारी लोगों को भी प्राप्य है ।"

दासुराम—गृहस्थी बनना क्या पतन के मार्ग पर चलना है ? क्या ऋषि-मुनियों ने प्राचीन काल में गृहस्थ धर्म का पालन नहीं किया था ? क्या वे पतन के मार्ग पर चल रहे थे ? क्या उन्होंने वेद और शास्त्रों के विरुद्ध आचरण किया था ?

व्यासदेवजी—मेरे जैसे आत्मविज्ञान और ब्रह्मविज्ञान के जिज्ञासु के लिए तो यह पतन का मार्ग ही सिद्ध होगा । कहां तो इतनी ऊंची ज्ञान, ध्यान, समाधि और वैराग्य की बातें और कहां अब विवाह की चर्चा ! मेरे तीव्र वैराग्य और गृहत्याग की इच्छा को देखकर मेरी माताजी ने कहा था, बेटा ! संसार में तीन बड़े-बड़े प्रलोभन हैं—धन, स्त्री और भूमि । ये तीनों परम सुख के साधन माने जाते हैं और ये तीनों मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं । जो इनके प्रलोभन में फंस जाता है उसका पतन अवश्यम्भावी है । अतः बेटे ! तुम इनसे सदैव बचना । जिन सुखों की ओर दासुरामजी आप मुझे आकर्षित कर रहे हैं वे सब मुझे घर पर भी मिल सकते थे । मैंने घर का त्याग आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए किया है । यही मेरा उद्देश्य है । आप मुझे मेरे पथ से विचलित कर रहे हैं । आज के पश्चात् आप कभी मुझसे विवाह या गृहस्थ की चर्चा न करें ।

दासुराम—महाराज ! मैं बड़ा लज्जित हूं । आप इस प्रकार के दृढ़व्रती हैं, इसका मुझे पता न लग सका । आप मुझे क्षमा करें । मैंने बड़ा पाप किया है, यह कहते-कहते इन्होंने ब्रह्मचारीजी के पांव पकड़ लिए ।

ब्रह्मचारीजी को अनेक प्रलोभन देकर पथभ्रष्ट करने का यत्न किया गया पर इस बालयोगी को कोई भी प्रलोभन अपनी ओर आकृष्ट न कर सका । हिमगिरि के समान अडिग रहे । आपकी निष्ठा, आपका व्रत, आपका तप, आपकी साधना तथा आपका योग वर्णनातीत है । धन्य हो बालयोगी, तुम धन्य हो !

डलहौज़ी, चम्बा और पाङ्गी भ्रमण

व्यासदेवजी ग्रीष्म ऋतु में अमृतसर नहीं ठहरा करते थे क्योंकि वहां अत्यधिक गर्मी पड़ती है । गर्म स्थान योग साधना के लिए उपयुक्त नहीं होते । इस बार वे काश्मीर नहीं गए और डलहौज़ी, चम्बा तथा पाङ्गी जाने का विचार कर लिया । ज्येष्ठ मास के प्रारम्भ होते ही वे गाड़ी में सवार होकर पठानकोट पहुंचे । यहां पर ये अपने एक सुपरिचित व्यापारी नारायणदास के पास ठहरे । नारायणदासजी के सांझीदार मलावामल कुलदीपचन्द भी व्यासदेवजी से बड़ा स्नेह करते थे तथा उनके प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा थी । यहां तीन-चार दिन ठहरने के पश्चात् ये मोटरगाड़ी द्वारा डलहौज़ी पहुंच गए । यहां पर आर्यसमाज

मन्दिर में पांच दिन ठहर कर सभी दर्शनीय स्थानों को देखा। यहां से चम्बा तक पैदल का मार्ग था। इस रास्ते पर एक बड़ा ही सुन्दर स्थान है। इसका नाम खजयार है। इसमें पहाड़ियों के बीच में एक छोटी झील है। इस झील में जमीन के दो-तीन छोटे-छोटे टुकड़े पानी पर तैरते रहते हैं। इसके ग्रास-पास बड़े विशाल देवदार के वृक्ष हैं। यह स्थान लगभग ग्राठ या नौ हजार फीट की ऊंचाई पर है। यह बड़ा मनोहर स्थान है। यहां पर तीन-चार उपाहारगृह तथा दुकानें भी हैं। यहां पर एक दिन ठहरे। यहां से चम्बे तक कई मील की उतराई है। एक दिन में चम्बे जा पहुंचे। यहां पर इनका कोई परिचित नहीं था ग्रतः ग्रार्यसमाज मन्दिर में जाकर ठहर गए।

चम्बा पंजाब की एक पहाड़ी रियासत थी। शहर रावी के किनारे बसा हुग्रा है। बीच में एक बड़ा सुन्दर ग्रौर चौड़ा मैदान है। श्रावण मास में इस चौगान में एक बड़ा भारी मिजरों का मेला भरता है। इस ग्रवसर पर रावी नदी में बहुत ऊंचे स्थान से एक भैंसा गिराया जाता है। यदि वह भैंसा किसी प्रकार से बच कर जीवित निकल ग्राता है तो इसे बड़ा ग्रशुभ माना जाता है ग्रौर यदि वह डूबकर मृत्यु का ग्रास हो जाए तो ग्रत्यन्त शुभ माना जाता है। हजारों नर-नारी ग्राबाल-वृद्ध इस दृश्य को देखने के लिए ग्राते हैं। चम्बे से लगभग साठ या सत्तर मील पर एक मनीमहेश नामक झील है। यहां से रावी नदी निकलती है। यहां पर भी एक बड़ा मेला लगता है ग्रौर हजारों नर-नारी इसे देखने ग्राते हैं। यह एक तीर्थ-स्थान है जहां प्रतिवर्ष लोग यात्रा करने जाया करते हैं।

एक दिन व्यासदेवजी जब चम्बे के चौगान में बैठे हुए थे तब जवाहर नाम का एक नवयुवक भी उनके पास ग्राकर बैठ गया। पांगी की यात्रा के विषय में दोनों में वार्तालाप होने लगा। उस नवयुवक ने भी वहां जाने का ग्रपना विचार प्रकट किया ग्रौर कहा कि मैं भी ग्रापके साथ चलूंगा। चलने की तारीख भी निश्चित कर ली गई। जवाहर का घर पांगी जाते हुए मार्ग में ही चम्बे से केवल ग्राठ मील की दूरी पर था। सर्वप्रथम जवाहर के गांव पुखरी में पहुंचे। यहां पर तीन-चार दिन ठहरे। इसके बाद प्रस्थान किया। यहां से केवल इतना ही सामान ग्रपने साथ लिया जो दोनों मिलकर स्वयं उठा सकें। पुखरी से चलकर तिस्सा पहुंचे। इसका दूसरा नाम चुराहा है। यह स्थान चम्बा से २५ मील है ग्रतः ये उसी दिन सायंकाल को वहां पहुंच गए। वहां पर एक छोटे से उपाहारगृह में ठहरे। यहां पर एक खूंटी पर एक बालों का गुच्छा-सा टंगा हुग्रा था। ये कटी हुई जटाग्रों का गुच्छा लग रहा था। व्यासदेवजी इसे देखकर बड़े ग्राश्चर्यान्वित हुए ग्रौर दुकानदार से पूछा कि यह बाल से कैसे टंग रहे हैं। दुकानदार ने मुस्कराते हुए कहा कि ये मेरी जटाएं हैं। व्यासदेवजी ने ग्राश्चर्यचकित होकर पूछा, ग्रापकी जटाएं, क्या यह ग्रापकी जटाएं हैं? इससे ग्रापका क्या ग्रभिप्राय है? दुकानदार ने कहा, "मैं भी पहिले ग्रापके समान ही एक सन्त था। जटाएं धारण करता था ग्रौर उदासी मत का साधु था। बाल्यकाल से ही सन्त बन गया था। मैंने सातवीं-ग्राठवीं कक्षा तक पढ़ाई की थी। मैं एक उदासी निर्वाण सन्त का चेला बन गया था। ऊपर से तो मैं बड़ी विरक्त वृत्ति से रहता था किन्तु युवावस्था में ब्रह्मचर्य पालन बड़ा कठिन होगया। काम-वासना ने सताना प्रारंभ

कर दिया। घर लौट कर जाने तथा विवाह करने में बड़ी लज्जा प्रतीत होती थी। मैंने अपने एक परिचित सन्त से सुन रखा था कि चम्बा तथा कुल्लु के लोग बड़े भोले भाले होते हैं। वे अपनी लड़कियों का विवाह पंजाबियों से करके दामाद को अपने घर पर ही रख लेते हैं। मैं यहां चला आया और एक लड़की से विवाह कर लिया। खेती-बाड़ी का काम बड़ा परिश्रमसाध्य होता है। वह तो मुझसे हो नहीं सकता था, अतः एक दुकान खोल ली। कुछ जमीन तो श्वसुर से मिल गई थी, और कुछ मैंने स्वयं खरीद ली। यहां पर जमीन की काश्त का कार्य प्रायः स्त्रियां ही करती हैं। इसलिए एक विवाह और कर लिया जिससे दूसरी पत्नी खेती-बाड़ी का सब काम संभाल ले। इससे भी जब काम न चला तब एक तीसरी शादी कर ली। इस समय यह स्त्री जिसे आप देख रहे हैं मेरे पास दुकान पर काम करती है। भोजन भी यही बनाती है और बर्तनादि भी साफ कर लेती है। दूसरी मकान पर रहती है और खेती-बाड़ी का सब काम करती है और तीसरी भी खेत पर जाकर उसकी सहायता करती है। केवल हल चलाने के लिए एक नौकर रखा हुआ है। मैं दुकान पर काम करता हूं और यह मेरी पत्नी होटल का काम चलाती है।'' व्यासदेवजी इसकी बातें सुनकर खूब हंसे। इसी दुकानदार से उन्हें यह पता चला कि यहां पर कई ऐसे सन्त रहते हैं जिन्होंने यहां आकर विवाह कर लिया और गृहस्थी बन गए। दुकानदार ने ब्रह्मचारीजी से पूछा कि यदि आप भी इसी उद्देश्य से यहां आए हों तो मैं आपके विवाह की सब व्यवस्था कर सकता हूं। जब दुकानदार को यह मालूम हुआ कि उनके वहां आने का यह उद्देश्य नहीं था और उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत धारण किया हुआ है तो उसने उन्हें वहां से शीघ्र चले जाने की सलाह दी क्योंकि वहां के लोग नीचे से आने वाले नवयुवकों को प्रायः अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर विवाह के जाल में फंसा लिया करते थे। व्यासदेवजी को वहां पर और भी कई ऐसे दुकानदार तथा काश्तकार मिले जो अपनी पूर्वावस्था में साधु थे किन्तु आगे चलकर गृहस्थी बन गए और व्यापार, काश्तकारी तथा नौकरी करने लग गए। यहां पर उन्हें यह पता चला कि यहां की स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रमशीला, स्वस्थ और सुन्दर होती हैं। यहां पर दुकान तथा हल चलाने का कार्य और नौकरी तो पुरुष करते हैं, शेष सारा कार्य स्त्रियां ही करती हैं। यहां के लोग पंजाबियों के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि ये बड़े हृष्ट-पुष्ट, व्यवहारकुशल तथा समझदार होते हैं। इनके साथ अपनी लड़कियों का विवाह करके घर-जवाई रख लेते हैं किन्तु अपनी लड़कियों को पंजाब नहीं भेजते। शायद इसका कारण पंजाब में गर्मी का आधिक्य ही होगा। महाराजा चम्बा ने अपनी रियासत के लिए कानून भी ऐसा ही बना रखा था। यहां की किसी लड़की के साथ विवाह करके कोई उसे चम्बा से बाहिर नहीं ले जा सकता था। उसे चम्बे में ही रहना होता था। इसीलिए उष्ण-प्रदेशों के कई लोग यहां विवाह करके यहीं बस गए और अपना कारोबार करने लग गए। यहां पर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है क्योंकि पुरुषों का जीवन बड़ा आलसी और प्रमादी होता है, इसीलिए वे बड़े दुर्बल और शक्तिहीन होते हैं और शीघ्र ही वे काल द्वारा कवलित कर लिए जाते हैं। इस प्रदेश में विधवा-विवाह का बड़ा प्रचलन है। पति का देहान्त होने के कुछ काल पश्चात् ही स्त्री का पुनर्विवाह हो जाता है। व्यासदेवजी तथा जवाहर ने उस दिन रात्रि में उसी होटल में विश्राम किया। रात्रि के लगभग दस बजे कई

नवयुवतियां उस होटल में आईं और इन दोनों का उपहास करने लगीं। व्यासदेवजी ने इनकी बड़ी भर्त्सना की और समझाया कि वे साधु हैं। उनकी भावनाएं बहुत ऊंची हैं। और बड़े सदाचारी और ब्रह्मचारी हैं, वहां यात्रा के लिए आए हैं और ये सब देवियों को माता, बहिन और पुत्री के समान समझते हैं। इतना समझाने पर भी वे नवयुवतियां वहां से नहीं हटीं और विवाह के लिए उन्हें प्रेरित करने लगीं। उन्होंने बताया कि यहां कई ब्रह्मचारी और साधु आए हैं जिन्होंने यहां आकर विवाह कर लिए, ससुराल में रहने लग गए और यहीं अपना कारोबार प्रारंभ कर दिया। इनमें से रुक्मणी नाम की लड़की बहुत सुन्दर थी। ये सभी यह चाहती थीं कि इससे व्यासदेवजी का विवाह जैसे-तैसे हो जाए। उन्होंने रुक्मणी की ब्रह्मचारीजी से बहुत प्रशंसा की। बार-बार उसके सौंदर्य का वर्णन किया। उसके बाप से बहुत-सी जमीन दिलाने के वचन दिए। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में विविध कठिनाइयां समझाईं। कलियुग का बखान किया। वहां आकर जिन साधुओं ने विवाह करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया और सांसारिक बन गए उनमें से ही एक साधु की लड़की रुक्मणी थी। इन्होंने उनसे विवाह करने का बार-बार अनुरोध किया और कहा, आप ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करें और फिर यदि इच्छा साधु बनने की शेष रहे तो साधु भी बन जाना। व्यास-देवजी ने इन्हें बहुत समझाया और फटकारा। रात्रि के ग्यारह बज चुके थे। उन्हें वहां से चले जाने को कहा। पुलिस को बुलाने की धमकी दी, पर वे वहां से टस से मस न हुईं। जब पुलिस चौकी पर जाने के लिए ये उठे तो इन निर्लज्ज युवतियों ने उनका दरवाजा रोक लिया। व्यासदेवजी जैसे-तैसे धक्का देकर बाहिर निकल गए और पुलिस चौकी पर जाकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने कोई कार्रवाई नहीं की और केवल इतना ही कहा कि यह देश ही ऐसा है, आप यहां चौकी पर आकर विश्राम करो। वे लोग इनका सब सामान दुकान पर से उठा लाए। इसी झमेले में बारह बज गए। इन्होंने शेष रात्रि चौकी में ही व्यतीत की। प्रातःकाल उठे और स्नान तथा ध्यान किया और इसके पश्चात् तरेला के लिए प्रस्थान किया। यहां पर इन्हें पांगी के एक जमींदार मिल गए। इनका नाम कर्मदास था। ये कुछ व्यापार भी करते थे। व्यासदेवजी ने पांगी में अपने ठहरने की व्यवस्था करने के लिए कहा क्योंकि वहां पर उनका कोई परिचित न था। कर्मदास ने अपनी पत्नी के नाम एक पत्र लिख दिया और उसे उन्हें देकर कहा कि इसे वहां ले जाकर मेरी पत्नी को दे देना, वह आपकी सारी व्यवस्था कर देगी। वह पंजाबी भी थोड़ी-थोड़ी जानती है। आपको किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। आप निश्चिंत रहें।

नीलम की प्राप्ति—तरेले से कुछ आगे काश्मीर रियासत का इलाका आ जाता है। इस इलाके को वहां के लोग पाडर कहते हैं। वहां के लोगों से पता चला कि यहां पर नीलम की खान है। मार्ग में एक स्थान पर एक झरना बह रहा था। व्यासदेवजी यहां स्नानादि करने के लिए ठहर गए और जवाहर को आगे चलने का आदेश दिया। एक गाय इसी झरने पर पानी पीने के लिए आई। यह लंगड़ा कर चल रही थी। इसे देखकर व्यासदेवजी को बड़ी दया आई। उसका पांव ऊपर उठा कर देखने से मालूम हुआ कि उसके खुरों के बीच में एक पत्थर घुस गया है, इसलिए पैर में घाव-सा होगया है। इन्होंने अपनी सोटी की सहायता से उस कंकर को

निकालकर बेचारी गाय का संकट दूर किया। कंकर खून से लथपथ था और नीला सा प्रतीत होता था। व्यासदेवजी ने उसे अच्छी तरह से धोया तो वह चमकने लगा और उसका रंग नीला-सा निकल आया। इन्हें यह नीलम-जैसा लगा इसलिए इसे संभाल कर रख लिया। इसका जिक्र जवाहर से भी नहीं किया। मार्ग में एक गांव आया। इसमें तीन-चार मनुष्यों से जाकर व्यापारियों से नीलम दिखाने के लिए कहा, किन्तु किसी के पास नहीं निकला। केवल एक दुकानदार के पास छोटा-सा नीलम दिखाई दिया। इसे खरीदने की बातचीत हुई किन्तु उसने कीमत बहुत मांगी, अतः इसे खरीदा नहीं और आगे चल दिए। व्यासदेवजी ने इस नीलम की अपने पास वाले नीलम से तुलना की तो इन्हें मालूम हुआ कि उनका नीलम दुकानदार के नीलम से आकार में बहुत बड़ा है और इसमें चमक भी उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। इसे इन्होंने सम्भालकर अपने पास रख लिया। अब पांगी तक कोई गांव इन्हें मार्ग में नहीं मिला। तरेले से आगे पांगी तक अत्यधिक चढ़ाई थी। थोड़ी चढ़ाई चढ़ने के पश्चात् इनका सांस फूलने लगा और थकान भी अधिक मालूम होने लगी। यहां की ऊंचाई अधिक थी, अतः वायु भी अधिक सूक्ष्म थी, इसलिए इनका दम घुटने लग गया था। इस चढ़ाई पर कई प्रकार की नशैली बूटियां लगी हुई थीं। उनमें श्वास लेने से इन्हें कुछ नशा सा भी होगया था और श्रांत भी बहुत थे, अतः कुछ देर के लिए विश्राम करने के लिए बैठ गए। इसके बाद थोड़ा-सा लेटे कि नींद आगई।

अज्ञात देवी के दर्शन--जिस समय व्यासदेवजी और जवाहर पांगी की आधी चढ़ाई चढ़कर एक स्थान पर निद्राभिभूत सो रहे थे, उस समय उन्हें एक विशाल-काय देवी ने आकर जगाया। ये दोनों बड़ी कठिनाई से आंखें मसलते-मसलते जगे। जब आंखें खोलीं तो सामने एक देवी को खड़े पाया। यह अत्यन्त सुन्दर थी। इसके नेत्र बड़े विशाल थे। इसका कद लगभग छः फीट होगा। यह बड़ी सुडौल तथा स्वस्थ थी। इसका रंग गोरा था। मुख पर कान्ति थी। इसने अपने सिर पर लगभग एक मन भार उठाया हुआ था। इसने मुस्कराते हुए कहा, "आपको बूटियों का नशा चढ़ गया है। इसीलिए आपको नींद आगई है। किन्तु यहां पड़े रहने से मंजिल तय नहीं होगी और आप अपने निर्दिष्ट स्थान पर न पहुंच सकोगे। आओ, मेरे साथ चलो।" व्यासदेवजी ने थोड़ा और आराम कर लेने के पश्चात् चलने की इच्छा प्रकट की। इसने उनके निवास स्थान और गन्तव्य स्थान के विषय में पूछा। जब उसे मालूम हुआ कि ये पांगी जाएंगे तब उसे आश्चर्य हुआ, क्योंकि ये लोग आधी चढ़ाई से कम चढ़ाई चढ़कर ही हांफने लग गए थे। उसने इनसे कहा, तुमसे यह विकट चढ़ाई नहीं चढ़ी जाएगी। उठो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगी। उसने यह कह कर व्यासदेवजी को नीचे झुककर हाथ पकड़ कर उठा लिया और शेरनी के समान उस पहाड़ी पर चढ़ गई। थोड़ी दूर चलने के बाद इसने एक बूटी तोड़ कर दी और उसे सूंघने के लिए कहा। इस बूटी को सूंघने से चढ़ाई चढ़ते समय तबीयत खराब नहीं होती और इससे नशा भी उतर जाता है। यह देवी व्यासदेवजी का हाथ पकड़ कर उस पहाड़ी पर छः मील तक ले गई। इसके शिखर पर इस देवी के परिवार का डेरा लगा हुआ था। यह देवी गूजर जाति की थी। इस पहाड़ी के शिखर पर एक बड़ा मैदान था। उस समय इसी पर ये लोग रहते थे। इनके पास लगभग २००

भैंसें थीं। इन्हीं को चराने के लिए इन्होंने यहां डेरा लगा रखा था। इस देवी का नाम राधा था। इसने महात्माजी का सारा वृत्तान्त अपने भाई को सुनाया और कहा कि इनमें पांगी जाने की शक्ति नहीं है; इन्हें दूध, पनीर, मक्खन तथा दूध की रोटी खिलाकर सशक्त बनाकर यहां से पांगी भेजेंगे। राधा के भाई ने एक पतीले में ८-१० सेर दूध उबाला। दूध गर्म होता रहा और दोनों बहिन-भाइयों ने महात्माजी का सर्व वृत्तान्त उनसे पूछा। जब उनको यह विदित हुआ कि ये ब्रह्मचारी साधु हैं तो वे बड़े प्रसन्न हुए। जब दूध को उबाल आगया तब उन्होंने व्यासदेवजी और जवाहर को दो-दो सेर दूध बड़े-बड़े कटोरों में डालकर दे दिया। जब इन्होंने कहा कि वे इतना दूध नहीं पी सकते तो सबने उनका बड़ा उपहास किया और दूध पीने के लिए बाध्य किया। राधा ने उनका बड़ा मज़ाक उड़ाया और कहा, दूध पीकर मोटे ताजे और हृष्ट-पुष्ट हो जाओगे, तभी पांगी की चढ़ाई चढ़ सकोगे। मैं खूब दूध पीती हूं, इसीलिए मुझमें इतना बल है कि मैं आपको हाथ पकड़कर इस पहाड़ी पर शीघ्रता से चढ़ा लाई। इसी बीच में परिवार के अन्य सदस्य भी वहां आ पहुंचे। वे सब तुरन्त ही महात्माजी से स्नेह करने लग गए। रात्रि के समय जब सब अपने-अपने काम से निवृत्त हो जाते तो व्यासदेवजी सबको उपदेशात्मक कहानियां सुनाते थे। इन लोगों को इनका व्यक्तित्व और उपदेश इतने आकर्षक लगते थे कि इन्होंने उन्हें १६ दिन तक जाने नहीं दिया। राधा ने कहा कि महात्माजी आपने हमें बहुत सुन्दर उपदेश दिए हैं, इसके लिए हम सब आपके बड़े कृतज्ञ हैं। मेरा आपसे निवेदन है कि आप एक उपदेश मेरा भी मान लो, वह यह कि आप प्रतिदिन एक-दो घण्टे व्यायाम किया करो। तभी आपको दूध, दही और मक्खन आदि पच सकेगा और आप बलवान तथा शक्तिमान हो सकोगे। एक दिन राधा की माता ने महाराजजी से निवेदन किया कि राधा की आयु बड़ी होती जाती है। हम लोग इसके लिए वर की खोज कई सालों से कर रहे हैं। कोई योग्य वर और घर उपलब्ध नहीं हो सका। इसकी हम सबको बड़ी चिन्ता रहती है। इन्होंने विश्वास दिलाया कि खोज जारी रखो, एक साल तक विवाह हो जाएगा। इस पहाड़ी की ऊंचाई लगभग दस हजार फीट से अधिक थी, अतः इस पर वृक्ष नहीं थे। राधा के भाई रामू तथा शामू ने मिलकर ब्रह्मचारीजी के लिए एक छोटी सी झोंपड़ी सी बना दी और उसके पास धूनी लगा दी। ये इसमें रहने लगे। इस परिवार ने इनकी बड़ी सेवा की। १५ दिन में ही व्यासदेवजी और जवाहर का चेहरा बदल गया। मुखों पर लालिमा छा गई और थोड़े-थोड़े मोटे भी होगए। अब उनके शरीर पुष्ट प्रतीत होने लगे और उनमें शक्ति का संचार होगया। १५ दिन के पश्चात् व्यासदेवजी ने पांगी जाने के लिए आग्रह किया। इस परिवार को उनके आग्रह के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा और उनके प्रस्थान की पूरी तैयारी करके शामू को उनके पहुंचाने के लिए साथ भेजा। इन्होंने शामू के साथ ८ सेर मक्खन ४ सेर दूध और ८-१० कलाड़ियां देकर इनके साथ जाने का आदेश दिया। विदाई के समय सारे परिवार को ही बड़ा दुःख हुआ। राधा और उसका छोटा भाई रामू तो विह्वल होकर रुदन ही करने लग गए। चलते समय एक बार पुनः व्यासदेवजी ने इस परिवार को अपने उपदेशामृत का पान कराया। रामू ने भी साथ जाने का बड़ा हठ किया, अतः रामू और शामू दोनों ने मिलकर महात्माजी का सामान उठाया और साथ हो लिए।

पांगी में कर्मदास के घर पर निवास—रामू और शामू ने व्यासदेवजी को कर्मदास के घर पर पहुंचा दिया। बहुत कहने पर भी वे वहां ठहरे नहीं। कर्मदास की गणना यहां के अच्छे धनाढ्य व्यक्तियों में की जाती थी। इनके यहां पर कई मकान थे। तीन इनके स्त्रियां थीं। बड़ी स्त्री के नाम कर्मदास ने पत्र दिया था। जब यह पत्र उसे दिया गया तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। व्यासदेवजी के चरणस्पर्श करके वह उन्हें मकान की दूसरी मंजिल पर ले गई। बिस्तर बिछाकर उन्हें उस पर बिठा दिया। पांगी में सर्दी बहुत पड़ती है। साल में ७-८ मास तक बर्फ पड़ती रहती है। इसलिए इनके लिए चाय और सेब मंगवाकर उनके सम्मुख आदरपूर्वक रखे। कर्मदास की बड़ी पत्नी का नाम सुभद्रा था। इसने तुरन्त इनके सोने, बैठने, ध्यान करने आदि की व्यवस्था कर दी। यहां के रिवाज के अनुसार अपनी एक लड़की को आसपास की सब महिलाओं को अतिथि के स्वागत के उपलक्ष्य में गायन और नृत्य के लिए आमंत्रित करने के लिए भेज दिया। सुभद्रा के पूछने पर महाराजजी ने आदेश दिया कि हम पहाड़ी भोजन करेंगे, पंजाबी नहीं। यह आदेश पाकर वह मांस और शराब की तैयारी करने लगी क्योंकि पांगी में मांस और शराब से ही प्रतिष्ठित अतिथियों का आतिथ्य किया जाता था। जब सुभद्रा को मालूम हुआ कि महात्माजी ने कभी शराब का स्पर्श भी नहीं किया और मांस स्वयं तो क्या खाते, उस मकान तथा परिवार में भी कभी भोजन नहीं किया जहां पर मांस पकाया जाता हो, तो वह अत्यन्त दुःखी हुई। महात्माजी के चरण स्पर्श करके उनसे विनम्र भाव से क्षमा याचना की और बड़ी लज्जित हुई। अब उसने महाराजजी को विश्वास दिलाया कि वह स्नान करके वस्त्र बदलकर चौका लगाकर सारे बर्तन आदि मांज-धोकर उनके लिए भोजन तैयार करेगी। उसने अब पंजाबी भोजन बनाया। उड़द की दाल तथा परांठे बना कर उनको परोसा और इस प्रकार भोजन करते-करते नौ बज गए। इसके उपरान्त निमंत्रित महिलाएं नृत्य और गायन के लिए उपस्थित होगईं। सुभद्रा ने महाराजजी को आंगन में गायन सुनने और नृत्य देखने के लिए बुलाया। व्यासदेवजी जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तपःपूत योगी को भला यह कैसे पसन्द हो सकता था! उन्होंने सुभद्रा से कहा कि देवी, हम तो महात्मा हैं, साधु हैं, हमें ये सब बातें रुचिकर नहीं हो सकतीं। तुम यह सब आयोजन बन्द कर दो। सुभद्रा के बहुत आग्रह करने पर जो कुछ हो रहा था वह सब उन्होंने होने दिया, किन्तु स्वयं वहां से ऊपर चले गए। इन देवियों ने कृष्ण-भक्ति के भजन गाए। अतिथि को लक्ष्य करके भी कुछ गीत गाए और इसके बाद सब यथास्थान चली गईं। तीन दिन के पश्चात् व्यासदेवजी ने वहां से जाने के लिए इच्छा प्रकट की। सुभद्रा ने जब तक उसके पतिदेव लौट न आएं तब तक वहीं रहने का और उसका आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। तब व्यासदेवजी ने यह कहा कि सामान हम आपको ला दिया करेंगे और भोजन आप बना दिया करें। उनके बार-बार कहने पर इस बात को सुभद्रा ने स्वीकार कर लिया।

व्यासदेवजी जैसे महान् महात्मा कभी किसी भी परिवार पर भाररूप नहीं होना चाहते थे, विशेषकर उस स्थिति में जब गृहपति घर में उपस्थित न हो।

कर्मदासजी की आयु इस समय ६० वर्ष की थी। इनकी माताजी भी जीवित थीं। इनकी आयु सौ वर्ष से ऊपर मालूम होती थी। यह वृद्धा माता चौरी गाएं

चराने जाती थी। उसने एक दिन व्यासदेवजी से कहा, "महात्माजी, पंजाबियों ने हमारा देश यहां आकर खराब कर दिया है। हमारी लड़कियों से विवाह करके ये इन्हें अपने देश में ले जाते हैं। दुराचार की मात्रा अधिक बढ़ गई है। छोटी-छोटी लड़कियां विवाह की बातें करती हैं। मेरी पोती बेग मोहनी अभी बहुत छोटी आयु की है किन्तु वह भी अभी से विवाह के विषय में बातें करती रहती है। घोर कलि-युग आ गया है।" व्यासदेवजी ने कहा कि आपने अपने पुत्र कर्मदास के तीन विवाह क्यों किए ? यह भी एक बड़ा भारी पाप है। इस पर वृद्धा ने निवेदन किया कि सुभद्रा के कोई सन्तान नहीं थी। ये पति-पत्नी इसलिए बड़े चिन्तित रहते थे। सुभद्रा के बहुत आग्रह से इसने दूसरा विवाह किया है। अपने पिता के परिवार में से ही इसने एक लड़की से कर्मदास का विवाह किया है। एक बात यह भी है कि हमारे यहां इधर खेती-बाड़ी का सब कार्य स्त्रियां ही करती हैं। बड़े घरानों में एक विवाह से काम नहीं चलता क्योंकि उनके यहां कृषि कार्य बहुत होता है। दूसरी शादी से भी कर्मदास के कोई सन्तान जब नहीं हुई तब तीसरा विवाह करना पड़ा। अब तीसरी बहू को ७० साल की आयु में कर्मदास के घर यह बेग मोहनी पैदा हुई है और एक तीन वर्ष का बच्चा है। मेरे चार लड़के पैदा हुए थे जिनमें से तीन की मृत्यु होगई, केवल कर्मदास ही आपके चरणों की कृपा से बचा है। इसके पिता का स्वर्ग-वास हुए ८० वर्ष होगए हैं। इस देश में स्त्रियां पति के मरने पर दूसरा विवाह कर लेती हैं। यहां पर ऐसा रिवाज है, किन्तु महाराज जी ! मैंने तो दुबारा विवाह नहीं किया।

कर्मदास की माता का बेग मोहनी के साथ विवाह का आग्रह—बेग मोहनी की आयु इस समय बीस वर्ष की थी। उसके विवाह की चर्चा प्रायः घर में चला करती थी। इसके योग्य घर और वर की खोज हो रही थी, किन्तु अभी इस विषय में सफलता नहीं मिल पाई थी। वृद्धा माता ने इसके विवाह का प्रस्ताव व्यासदेवजी के समक्ष रखा और निवेदन किया कि यदि आप इस बालिका को स्वीकार करलें तो हमारे परिवार का बड़ा गौरव बढ़ जाए और हम अपने को धन्य समझें और आपका बड़ा उपकार मानेंगे। बेग मोहनी भी इनके रूप, लावण्य, स्वास्थ्य और व्यक्तित्व पर बड़ी मुग्ध हो रही थी। वह बार-बार अपनी मां और दादी से इनके साथ विवाह करने के लिए आग्रह कर रही थी, इसीलिए दादी ने विवाह का प्रस्ताव व्यासदेवजी के सामने रखा था। इस सम्बन्ध में जब इन्होंने इन्कार किया तब बेग मोहनी को बड़ा क्रोध आया और वह तुरन्त बोल उठी, "यदि विवाह नहीं करना था तो आप यहां आए ही क्यों ? आपके यहां आने का मतलब ही क्या था ?" बेग मोहनी की बात और हाजरजवाबी को सुनकर सुभद्रा और उसकी दादी खूब ज़ोर-ज़ोर से हंसीं। व्यासदेवजी ने कहा, "क्या इस देश में आने के लिए मुझे यही सज़ा मिलेगी ? विवाह करना तो अपनी इच्छा पर निर्भर है। कोई चाहे तो विवाह करे और न चाहे तो न करे। यह कोई जबरदस्ती की बात तो नहीं। मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया हुआ है। मैं कभी विवाह नहीं करूंगा। तू भी मेरी तरह ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करके ब्रह्मचारिणी क्यों नहीं बन जाती ?" बेग मोहनी ने उत्तर दिया, "हां, मैं ब्रह्मचारिणी बनकर आपकी सेवा करूंगी। आपको मुझे अपने साथ रखना

होगा। मैं सदा आपके साथ देश-देशान्तरों का भ्रमण करूंगी और आपसे पढ़ूंगी भी।" व्यासदेवजी ने कहा, "तू जानती भी है, शिष्या पुत्रीवत् होती है। तू मेरी पुत्री बनकर मुझसे विद्या पढ़ सकती है।" यह लड़की कुछ उद्दण्ड स्वभाव की थी और अत्यधिक लाड़ और प्यार के कारण उसके मनमें संकोच और लज्जाशीलता नहीं थी जो स्त्री में सहज ही होती है। वह तुरन्त बोली, क्या पत्नी बन कर मैं आप से नहीं पढ़ सकती ? आपने अपने बचपन में आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत बिना समझे बूझे ले लिया है। बाल्यकाल के व्रत का कुछ महत्व नहीं होता। अब आप युवा हो गए, आप इस पर पुर्नविचार कर सकते हैं। उस व्रत को छोड़ गृहस्थ में प्रवेश कर सकते हैं। उसकी अनर्गल और उच्छृंखल बातें सुनकर ब्रह्मचारीजी को बड़ी झुंझलाहट आई और उससे कहा, जाओ, तुम घर में कुछ काम करो या बाहिर जाकर खेलो। उसकी माता और दादी से कहा कि मैं बड़ा दृढ़व्रती हूं। मेरा आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत चट्टान की तरह से अटल है। इसमें किसी प्रकार का कोई हेर-फेर नहीं हो सकता। वह थोड़ा लज्जित होकर कहने लगीं, "न जाने इस लड़की को इस प्रकार की बातें कैसे करनी आ गई हैं ! बहुत बकवास करती है। समझाने पर भी नहीं मानती। हम इसे घर से बाहिर बहुत कम जाने देते हैं। इसको किसी स्कूल में पढ़ने के लिए भी नहीं भेजा। इसकी बड़ी मां ने ही इसे कुछ थोड़ी हिन्दी पढ़ा दी है। पर महाराजजी, कभी-कभी यह बड़े ज्ञान की बातें करती है जो हमारी भी समझ में नहीं आतीं।

पन्द्रह दिन के बाद कर्मदास चम्बे से आगए। व्यासदेवजी को प्रणाम करके पूछा कि आपको यहां कुछ कष्ट तो नहीं हुआ। मेरी बड़ी पत्नी आतिथ्य सत्कार में बड़ी प्रवीण है। वह हिन्दी भी थोड़ी जानती है, इससे आपको भाषा-सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं हुई होगी। इन्होंने उनकी धर्मपत्नी की बड़ी प्रशंसा की, उसके आतिथ्य के लिए बहुत धन्यवाद दिया और पांगी में कहीं अन्यत्र जाकर रहने का विचार व्यक्त किया, क्योंकि उन्हें वहां रहते हुए पन्द्रह दिन होगए थे। कर्मदास ने उन्हें वहीं निवास करने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु उन्होंने वहां ठहरने में कई कठिनाइयां बताईं। एक तो साधु को किसी गृहस्थी के यहां बहुत दिन तक निवास नहीं करना चाहिए और दूसरे बेग मोहनी सदैव उनके साथ विवाह करने की चर्चा करती रहती थी। जब कर्मदास को विवाह की बात का पता चला तो उसने ब्रह्मचारीजी से हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि आपको मेरी लड़की के साथ विवाह करने में क्या आपत्ति है ? लड़की कुछ पढ़ी-लिखी है। मेरे पास जायदाद भी बहुत है। इसमें से आधी आपको दे दूंगा। आप विवाह करके यहां पर आनन्द से जीवन व्यतीत करना। यदि आप बेग मोहनी से विवाह कर लें तो मैं इसे अपना बड़ा सौभाग्य समझूंगा और इस लड़की का जीवन भी सुधर जाएगा। आप बेग मोहनी को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करें। ब्रह्मचारीजी ने इससे साफ इन्कार कर दिया क्योंकि उन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का दृढ़ संकल्प किया हुआ था। इसलिए कर्मदास को डांटते हुए कहा, आप विवाह के विषय में किसी प्रकार की कोई भी बात न करें। मैं इसे सुनने के लिए तैयार नहीं। कर्मदासजी घबरा गए पर इन्होंने उन्हें अपने पास ठहरने का बहुत आग्रह किया और विश्वास दिलाया कि वह बेग मोहनी को समझा देंगे। इस सम्बंध में अब कोई चर्चा नहीं होगी। इस देश की प्रथा ही कुछ ऐसी है। यहां पर लड़कियों

को विवाह के सम्बंध में पूर्ण स्वतंत्रता है। वे जिसे अपने अनुकूल तथा अपने योग्य समझें उससे विवाह कर सकती हैं। जिसे चाहें अपना जीवन साथी बना सकती हैं। यहां पर जाति-पांति का भी विवाह के विषय में कुछ विचार नहीं किया जाता। क्षत्रियों की लड़कियों का विवाह ब्राह्मणों के साथ हो जाता है। आयु का भी कोई बंधन नहीं है। मेरी तीसरी शादी ६५ साल की आयु में हुई थी। यहां पर धनिक लोग कई-कई शादियां कर लेते हैं। मैं मोहनी को डाटूंगा और समझा दूंगा कि भविष्य में वह इस प्रकार की कोई चर्चा न करे। किन्तु व्यासदेवजी ने किसी प्रकार भी उनके माकन पर रहना अब पसन्द नहीं किया। इन्हें विवाह का ध्यान कभी स्वप्न में भी नहीं आया, फिर भला जागृतावस्था में तो आ ही कैसे सकता था! इन्होंने वहां जो कुछ देखा और सुना उससे इनको बड़ी ग्लानि और घृणा होगई थी, इसलिए अब वे वहां पर एक क्षण भी रुकना नहीं चाहते थे। बेग मोहनी की बातें सुनने के दूसरे दिन ही वे जा कर एक मील के फासले पर अपने लिए एकान्त में एक स्थान ढूंढ आए थे, केवल कर्मदास के लौटने की प्रतीक्षा में थे। इनके घर आते ही इन्होंने उस स्थान पर जाने का अपना विचार प्रकट कर दिया और उनके बार-बार आग्रह करने पर भी न रुके। ब्रह्मचारीजी सर्वसाधारण व्यक्ति न थे। वे ब्रह्मनिष्ठ थे। तपोपूत थे और अपने व्रत के पक्के तथा यशोधन थे। उनके मार्ग में यही एक प्रलोभन नहीं आया था, इससे पूर्व कई प्रलोभन इन्हें दिए जा चुके थे, किन्तु वे इन तुच्छ प्रलोभनों में आकर अपने पथ से विचलित होने वाले व्यक्तियों में से न थे। बड़े से बड़े प्रलोभन को एक कंकर की भांति ठुकरा दिया और अपना मस्तक गौरव से उन्नत करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए डटे रहे। इस ब्रह्मनिष्ठ ने अपने जन्म से भारतवसुंधरा को गौरवान्वित किया है।

कर्मदास ने बड़े विनयपूर्वक इनसे इनका गन्तव्य मार्ग पूछा। वह स्थान इनके मकान से केवल एक मील दूर था। कर्मदास ने वहां जाकर यथायोग्य सब प्रबन्ध कर दिया। दूसरे दिन ही व्यासदेवजी उस स्थान पर चले गए। इनके चले जाने के बाद बेग मोहनी ने भोजन करना त्याग दिया और सारा दिन रोती रही। अपनी माता तथा दादी से बार-बार ब्रह्मचारीजी को बुलाने के लिए आग्रह करती रही। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया; वे महातमा हैं। उनके देश का पता नहीं, जाति का पता नहीं और न कुल का ही पता है। रमते राम हैं। इनके न रहने का कोई ठिकाना न खाने का। ऐसों से विवाह करना मूर्खता है। अज्ञात पुरुष के साथ विवाह करना अपनी अक्ल का दिवाला निकालना है। कोई समझदार लड़की ऐसे व्यक्ति से कभी विवाह नहीं कर सकती। माता-पिता के समझाने के पांच-छः दिन के बाद उसने अपने मुंह में अन्न डाला।

व्यासदेवजी कई मास तक पांगी में रहे। आश्विन के अन्त में जब हिम-पात प्रारंभ होगया तब पांगी से चम्बा के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में कुछ दिन तक पुखरी में जवाहर के घर पर रहे। कुछ दिन तक चम्बा में भी निवास किया। इसके बाद डलहौज़ी चले गए। मार्ग में दो पंजाबी नवयुवक इनके साथ हो लिए। इनके पास भोजन के लिए खर्चा नहीं था। ब्रह्मचारीजी ने प्रबन्ध कर दिया। ये डलहौज़ी भी इनके साथ ही रहे। वहां पर रात्रि में जब व्यासदेवजी सो गए तब इन्होंने उनकी एक पुस्तक में रखे हुए उस नीलम को चुरा लिया जो इन्होंने गाय के खुर में से निकाला था। ये दोनों नवयुवक उसे कहीं दूर जाकर छिपा आए। व्यासदेवजी ने उन्हें बहुत धमकाया

किन्तु उन्होंने अपराध स्वीकार नहीं किया और नाराज होकर वहां से चलते बने। ब्रह्मचारीजी ने भी अब अमृतसर के लिए प्रस्थान किया और दीवाली के अवसर पर वहां पहुंच गए।

कई-कई दिन की समाधि का विशेष अभ्यास

जब पहाड़ों पर हिमपात प्रारंभ होगया और शीत का आधिक्य होगया तब व्यासदेवजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया और दीवाली के अवसर पर वहां पहुंच गए। वहां जाकर मोतीराम की बगीची वाली अपनी कुटिया में रहने की सब व्यवस्था कर ली। दीवाली के ४-५ दिन पश्चात् से ही पूर्ववत् शून्य-समाधि के लिए विशेष प्रयास प्रारंभ कर दिया। इस वर्ष सारी सर्दी के मौसम में अध्ययन करने का विचार छोड़ दिया था, क्योंकि समाधि में कई-कई घण्टे व्यतीत हो जाते थे, अध्ययन के लिए समय ही शेष न रहता था। समाधि के लिए शीतकाल ही उपयुक्त होता है। नित्यप्रति एक ही आसन पर बैठकर कई-कई घण्टे अभ्यास किया करते थे। नित्यप्रति १०-१५ मिनट आसन बढ़ाने लगे थे। संकल्प-विकल्प का अभाव कर देने का तो इन्हें कई सालों से अभ्यास था। नित्यप्रति नेति, धोती, वस्ती आदि यौगिक क्रियाओं के द्वारा इन्होंने अपने शरीर को हलका और सात्विक बना लिया था। दो तीन मास में ही इनका अभ्यास इतना बढ़ गया था कि कई-कई घण्टे की शून्य-समाधि में स्थिर हो जाया करते थे। इसके पश्चात् तो ऐसा अभ्यास इनको होगया था कि ये जितने घण्टे समाधिस्थ होने का निश्चय करते उतने ही घण्टे समाधिस्थ हो जाया करते थे और निश्चित समय पर ही समाधि से व्युत्थान होता था। व्युत्थान के समय नेत्र खोलने पर भी नहीं खुलते थे। हाथ और पांव ऐसे जकड़ जाते थे कि आसन खोलने में बहुत समय लग जाता था। कानों की भी ऐसी ही स्थिति हो जाती थी। कोई पास बैठकर बातें करे तो यह पता नहीं लगता था कि वह क्या बातें कर रहा है। शरीर को पूर्ववत् स्थिति में लाने के लिए कम से कम आधा घण्टा लग जाता था। इसके पश्चात् इन्होंने इतना अभ्यास बढ़ाया कि अब ये कई-कई दिन समाधिस्थ रहने लगे। जिन दिनों कई-कई दिनों की समाधि में बैठते थे उन दिनों परिचित लोग आकर बड़ा तंग करते थे। दरवाज़ा अन्दर से बंद होता था। उसे खुलवाने के लिए बार-बार दरवाज़े को खटखटाया करते। इससे समाधि में विघ्न पड़ता था, इसलिए इन्होंने भाई हरनामसिंह से बाहिर से कुटिया को ताला लगवाना प्रारंभ कर दिया। ये सज्जन मोतीराम की बगीची में पास ही रहते थे। व्यासदेवजी जिस समय ताला लगाने के लिए कहते थे उसी समय ये ताला लगा दिया करते थे और जिस समय और जिस दिन खोलने का आदेश होता उस दिन खोल दिया करते। ताला खोलने का समय और दिन प्रायः लिखकर दिया जाता था। जब कई-कई दिन की समाधि लगाते थे तब ये प्रथम नेति, धोती, कुंजर, वस्ति, बज्रौली आदि क्रियाएं शरीर शुद्धि के लिए कर लिया करते थे जिससे व्युत्थान के पश्चात् कोई विकार उत्पन्न न होने पाए और शरीर स्वस्थ रहे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी योगीजी की समाधियों की धूम यत्र, तत्र, सर्वत्र फैल गई। सभी लोग एक स्वर से इनके ब्रह्मचर्य, तपस्या, त्याग और योगाभ्यास की प्रशंसा करते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी की गणना तत्कालीन बड़े प्रसिद्ध योगियों में थी। जब इन्होंने सुना कि एक नवयुवक योगी कई-कई दिनों की

समाधि लगाते हैं तो वे भी इनसे मिलने के लिए आए। ये अपने साथ कई शिष्यों को भी लाए थे। ब्रह्मचारीजी तथा स्वामीजी में चिरकाल तक योगसम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप होता रहा। व्यासदेवजी की पाण्डित्यपूर्ण बातें सुनकर और उनकी योग में इतनी गति को देखकर उन्होंने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। नवयुवक योगी की कई-कई दिन की समाधियों ने स्वामीजी को आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने कहा कि मैंने तो आज तक किसी भी योगी को सात आठ घण्टे तक एक ही आसन पर बैठने वाला नहीं देखा और आप तो इतनी छोटी सी आयु में ही तीन-तीन चार-चार दिन की समाधि लगा लेते हो। मैं तो कई वर्ष तक साधना करने के पश्चात् केवल ३ घण्टे तक ही एक आसन से बैठने का अभ्यास कर पाया हूं। इससे अधिक बैठा ही नहीं जाता।

व्यासदेवजी—संभव है, आपने आसन बढ़ाने का जो क्रम है उसके अनुसार अपना आसन न बढ़ाया हो।

स्वामीजी—क्या आप आसन बढ़ाने का कोई सुगम क्रम या साधन बता सकते हैं?

व्यासजी—सर्वप्रथम अपने अभ्यस्त आसन पर बैठ जाना चाहिए। जब थकावट मालूम होने लगे तब आसन से उठ जाना चाहिए। बिना थकान के कितने घण्टे या मिनट का आसन स्थिर रहा है इसे घड़ी देखकर निश्चित कर लेना चाहिए। दूसरे दिन दो मिनट पहिले दिन की अपेक्षा अधिक बैठो। इसी प्रकार एक सप्ताह तक दो-दो मिनट बढ़ाते जाना चाहिए। इसके पश्चात् ५-७ दिन तक इसी काल तक आसन को दृढ़ करना चाहिए। इसके दृढ़ हो जाने के बाद फिर दो-दो मिनट आसन में वृद्धि करके एक सप्ताह के बाद फिर इसे ४-५ दिन तक दृढ़ करें। इस विधि से आप जितना चाहें अपनी इच्छानुरूप आसन में वृद्धि कर सकते हैं।

स्वामीजी—मैं तो आपका आसन देखने आया हूं।

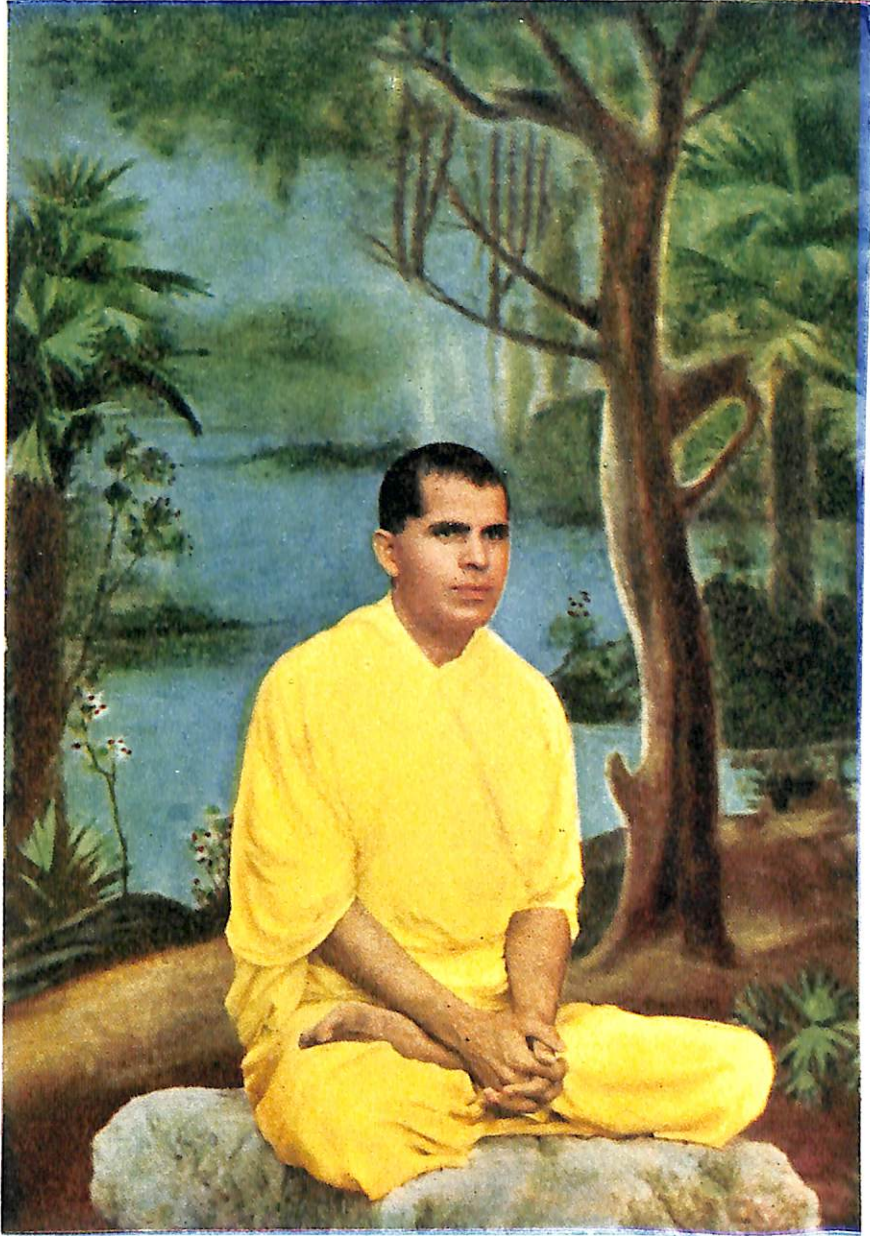
व्यासजी—मुझे तमाशा दिखाने या किसी प्रकार के प्रदर्शन में विश्वास नहीं और न मैं आपको अपनी परीक्षा ही देना चाहता हूं।

स्वामीजी—मैं न तो किसी प्रकार का प्रदर्शन करवाना चाहता हूं और न मैं आपकी परीक्षा ही लेना चाहता हूं। मेरी तो बड़े विनम्र-भाव से आपसे प्रार्थना है कि आप आसन के सम्बन्ध में मेरी भ्रांति को दूर कर दें। जब तक मेरे संशय का निवारण आप न करेंगे मैं यहीं बैठा रहूंगा।

व्यासजी—आप कल सायंकाल पांच बजे तैयार होकर आ जाएं।

स्वामी विशुद्धानन्द दूसरे दिन नियत समय पर अपने शिष्यों को साथ लेकर वहां पहुंच गए। इन्होंने अपने शिष्यों की तीन-तीन घण्टे की बारी लगा दी और आदेश दिया कि जब तक व्यासदेवजी आसन पर से न उठें तब तक तुम बारी-बारी से उनका निरीक्षण करते रहना। जब वे उठें तो तुम मुझे इसकी सूचना दे देना। स्वामीजी पास वाले एक कमरे में ठहर गए।

व्यासदेवजी ने आसन बिछाया। लालटैन जलाई। दरवाज़ा खोल दिया। शिष्यों को दरवाज़े पर बिठा दिया। सिद्ध आसन से निश्चेष्ट होकर स्थिर भाव से बैठ



राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेवजी महाराज
(युवावस्था)

गए और अपनी आंखें बन्द कर लीं। इससे पूर्व शिष्यों को सूचित कर दिया कि मैं कल दस बजे आसन पर से उठूंगा। ये लोग पास बैठकर बराबर देखते रहे। व्यास-देवजी १७ घण्टे तक समाधि में बैठे रहे। दूसरे दिन समाधि से व्युत्थान हुआ और लगभग आधा घण्टा आसन से उठने में लगा। विशुद्धानन्दजी को यह सब देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होंने युवक योगी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इनके प्रति स्वामीजी की बड़ी श्रद्धा होगई। वे इनसे बड़ा प्रेम करने लगे और दोनों में मैत्री सम्बन्ध स्थापित होगया।

श्री राजयोगाचार्य ब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज की युवावस्था का चित्र, जो इस समाधि की समाप्ति के पश्चात् लिया गया था, सामने है।

कुल्लू में चार मास तक निवास

ज्येष्ठ मास का प्रारंभ होगया था। उष्णता बहुत बढ़ गई थी, अतः सदैव की भांति पहाड़ पर जाने का विचार किया। किन्तु इस बार कुल्लू जाने का निश्चय किया। अमृतसर से रेलगाड़ी में सवार होकर पठानकोट पहुंच गए। वहां पर नारायणदास के पास ८ दिन तक निवास किया। इसके पश्चात् कांगड़े चले गए और वहां से ज्वाला-देवी की यात्रा करने के लिए चल दिए।

ज्वालादेवी के दर्शन—यहां आकर एक धर्मशाला में ठहर गए। इस मंदिर की देवी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। कोई कहते थे, रात्रि के समय देवी साक्षात् रूप से आती है। दूध का कटोरा पीती है। दातुन करती है और पलंग पर सोती है। इन सब बातों को प्रत्यक्षरूपेण देखने के लिए व्यासदेवजी ने यहां पर एक मास तक रहने का विचार कर लिया। प्रातः सायं दोनों समय आरती में सम्मि-लित होना प्रारंभ कर दिया। इस मंदिर के प्रवेश-द्वार के पास बाएं हाथ की ओर तीन या चार फीट ऊंचा एक कुण्ड बना हुआ था। इसमें से २४ घण्टे अग्नि की लाट भक-भक शब्द करती हुई निकला करती थी। आस-पास और भी ज्वालाएं निकलती थीं। यात्री लोग इस कुण्ड की अग्नि में दूध, घी, मिठाई आदि की आहुतियां दिया करते थे। व्यासदेवजी ने बड़ी चतुरता से कई पंडों और पुजारियों से मेल-जोल कर लिया। जब मेल-जोल मित्रता के रूप में परिणत होगया, तब इन्होंने देवी के साक्षात् दर्शन करवाने के लिए उनसे कहा। उन्होंने निवेदन किया कि आरती के बाद मंदिर के पट बन्द हो जाते हैं। आपको देवी के साक्षात् दर्शन होना असंभव है। व्यासदेवजी ने जब देवी के आने पर सन्देह प्रकट किया तो उन्होंने विश्वास दिलाया कि हम नित्य-प्रति देवी का साक्षात्कार करते है। उनके लिए दातुन रखी जाती है, वे दातुन करती हैं। दूध का कटोरा भर कर रखा जाता है, वे उसे पीती हैं। उनके लिए शय्या बिछाई जाती है, वे उस पर सोती हैं। हमें दातुन तोड़ी हुई मिलती है। दूध का कटोरा खाली होता है और शय्या सोने के कारण अस्त-व्यस्त हुई मिलती है।

व्यासदेवजी अब चिन्ता में डूब गए और वास्तविकता का पता लगाने के उपाय सोचने लगे। इन्होंने प्रातः आरती में सम्मिलित होना छोड़ दिया। अब केवल सायंकाल को ही आरती में जाया करते थे। धीरे-धीरे यात्रियों का आना कुछ कम होगया। अब केवल १०-१२ व्यक्ति ही रात्रि की आरती में सम्मिलित होते थे। एक रात्रि को

व्यासदेवजी ने एक पंडे को भीतर जाते हुए तो देखा किन्तु आते हुए नहीं देखा और मंदिर के पट बन्द होगए। इन्होंने पट बन्द करने वाले पंडे से बहुत कहा कि एक पंडा भीतर रह गया है और पट बन्द कर दिए गए हैं किन्तु उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। व्यासजी का संदेह बढ़ता ही गया। इसे दूर करने का उपाय बड़ी तत्परता से सोचने लगे। इन पुजारियों में से एक पुजारी से इनकी मित्रता कुछ अधिक होगई थी। एक दिन उससे इन्होंने अपना संदेह प्रकट किया और यथार्थता का पता लगाने के लिए आग्रह किया। जब ब्रह्मचारीजी ने विश्वास दिलाया कि वे किसी से इस बात की चर्चा नहीं करेंगे तब उसने इन्हें एकान्त में ले जाकर इस सारी बात का रहस्योद्घाटन कर दिया। उसने बताया कि कोई देवी साक्षात् रूप से यहां नहीं आतीं। न वे दूध पीती हैं, न दातुन करती हैं। और न इस पलंग पर शयन ही करती हैं। हम में से एक पुजारी भीतर रह जाता है। वही यह सब कुछ करता है। इस मंदिर और देवी के महत्व की वृद्धि और प्रसिद्धि के लिए यह सब बातें की जाती हैं। यहां पर कभी किसी ने आकर आपके समान जिज्ञासा नहीं की और न किसी प्रकार की छानबीन ही की है। इस यथार्थता का पता लगाकर व्यासदेवजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी पुजारी ने एक घटना सुनाई। महाराजा पटियाला एक बार देवी पूजन के लिए वहां पर आए। वे देवी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने वहां के पुजारियों और पंडों के समक्ष एक प्रस्ताव रखा। वे ८-९ वर्ष की एक कुमारी ब्राह्मण-कन्या की देवी के रूप में पूजा करना चाहते थे। वे शास्त्रविधि से सब कुछ करना चाहते थे। उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि जब उस कन्या का विवाह होगा तो मैं विवाह का सारा व्यय दूंगा। कन्या लावण्यमयी तथा सौन्दर्यपूर्ण होनी चाहिए। रुपये के प्रलोभन में आकर कई पंडे और पुजारी अपनी-अपनी कन्या इस कार्य के लिए देने को तैयार होगए। इस पूजा में विचित्रता यह थी कि कन्या को नग्न करके पूजा की जाती थी। जिस ससय पूजा होती थी उस समय पुजारी के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति वहां नहीं रह सकता था। व्यासजी को ये बातें भला कैसे पसन्द आ सकती थीं! उनका मन बड़ा खिन्न हुआ और भारतीय अंध-विश्वासों, उनकी अज्ञानता तथा रूढ़िवादिता की बड़ी निन्दा की। अब वे ज्वालादेवी से धर्मशाला चले गए। एक सप्ताह तक यहां निवास किया। यहां से भागसूनाथ के चश्मे को देखने के लिए गए। यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। दो शेरों के मुंह से पानी की बड़ी मोटी-मोटी धाराएं निकल रही हैं। अनेकों पंजाबी यहां गर्मियों में आते हैं। यहां ठण्ड बहुत होती है। वर्षा भी खूब होती है। इसके बाद पालमपुर देखने के लिए गए। फिर बैजनाथ और पपरोला के बिजलीघर को देखा। यहां से सारे पंजाब को बिजली पहुंचाई जाती है। मण्डी, सुकेत और रिवालसर देखने के लिए चले गए। रिवालसर के पानी पर भूखण्ड तैरते हुए देखकर बड़ी प्रसन्नता लाभ की। यहां पर एक मंदिर भी है। यहां पर बौद्ध यात्री दर्शनार्थ आया करते थे। यहां से कुल्लू के लिए प्रस्थान किया और वहां पर चार मास तक ठहरे।

कुल्लू में निवास—कुल्लू में भी मलावामल कुलदीपचन्दजी की दुकान थी। इन्होंने व्यसादेवजी की ठहरने की व्यवस्था कर दी थी। कुछ दिन यहां पर रहे और इसके बाद एक एकान्त स्थान में जाकर रहने लग गए। व्यास नदी के पार एक कुटिया

में निवासादि की सारी व्यवस्था कर दी गई थी। इसी कुटिया में रहकर इन्होंने अपनी समाधि के अभ्यास में वृद्धि की। भोजन दोपहर के समय स्वयं ही बनाते थे। यहां पर इन्होंने अपने समाधि-काल में बहुत उन्नति कर ली थी और अभ्यास करते-करते बहुत ऊंची अवस्था तक पहुंच गए। ये स्थितप्रज्ञ थे और इनकी बुद्धि बड़ी निश्चयात्मक थी। जिस कार्य में एक बार लग जाते थे उसे पूरा करके छोड़ते थे।

वशिष्ठ कुण्ड और व्यास कुण्ड की यात्रा—आश्विन मास तक महाराजजी कुल्लू में रहे। वर्षा इस मास के प्रारम्भ में ही बन्द होगई थी। यहां से २५ मील पर मनाली अत्यन्त रमणीक और शीत-प्रधान प्रदेश है। बगीचों में पेड़ सेबों तथा अन्य विविध फलों से लदे रहते हैं। इस मनोहर स्थान को देखने के लिए आश्विन मास के प्रारम्भ में ही प्रस्थान किया क्योंकि यहां का जलवायु कुल्लू की अपेक्षा अधिक अच्छा था। मनाली से लगभग १५ मील की दूरी पर व्यास कुण्ड है। यह एक पहाड़ी के शिखर पर है। इसी जलस्रोत से व्यास दरिया निकलता है जो कुछ मील पर जाकर एक बड़ा दरिया बन जाता है। इसमें अनेक नदी-नाले मिल जाते हैं जो इसके आकार में वृद्धि कर देते हैं। व्यास कुण्ड के आस-पास एक बहुत ऊंची पहाड़ी है। इस पर ऊंचाई के कारण कोई वृक्ष नहीं उगता। एक बहुत बड़ा मैदान अवश्य है। वर्षा ऋतु में यहां पर विविध जड़ी-बूटियों और पुष्पों की बड़ी बहार रहती है। इस मैदान के आस-पास हिमाच्छादित बड़े विशाल पर्वत हैं। यहां पर ठहरने का कोई प्रबन्ध न होने के कारण वापस लौटना पड़ा। इसी प्रकार से वशिष्ठ कुण्ड में भी वे अधिक देर नहीं ठहरे थे, यद्यपि यह बड़ा रमणीक स्थान था। यह कुण्ड मनाली में ही है। व्यास कुण्ड से लौट कर फिर मनाली आ गए और यहां पर १५ दिन तक ठहरे। इन दिनों फल पक चुके थे और उनका बड़ा आधिक्य था, इसलिए वे बहुत सस्ते बिकते थे। कुल्लू का दशहरे का मेला बड़ा प्रसिद्ध है। इसे देखने की अभिलाषा से यहां पर दशहरे तक ठहरने का विचार किया और अपनी उसी कुटिया में रहने की व्यवस्था कर ली। कुल्लू में दशहरे का मेला लगभग १० दिन तक मनाया जाता है। व्यापारी लोग अपनी-अपनी दुकानें यहां लगाते हैं। ये लोग दूर से अपना आकर्षक और जीवनोपयोगी तथा विविध प्रकार का विलासिता का सामान यहां पर बेचने के लिए लाते हैं। मेले की ठीक-ठीक व्यवस्था सरकारी अफसर करते हैं। दुकानों को उत्तम तथा आकर्षक ढंग से सजाया जाता है। इस मेले के समारोह को देखने के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं। व्यास नदी के किनारे एक बड़ा भारी मैदान है। इसी में प्रति वर्ष यह मेला लगा करता है। इस नदी के किनारे ही पुराने ढंग का एक लम्बा बाजार भी है।

कुल्लू के मेले पर व्यभिचार रोकने का उपाय—कुल्लू के मेले के अवसर पर व्यभिचार पराकाष्ठा को पहुंच जाता था। नगर के गण्यमान्य तथा प्रतिष्ठित लोगों का एक प्रतिनिधि-मण्डल व्यासदेवजी से इसकी रोक-थाम के विषय में मिलने आया। पठानकोट आर्यसमाज के प्रधान लाला कुलदीपचन्दजी भी इस सम्बन्ध में मिलने आए। इन्होंने ब्रह्मचारीजी को कई स्थानीय स्वयंसेवक देने का वचन दिया। बीस स्वयंसेवक इस कार्य के लिए भर्ती किए गए। मेले में एक शिविर लगाया गया, जिसमें तीन घण्टे सायंकाल व्यासदेवजी स्वयं ब्रह्मचर्य, सदाचार, चरित्र-निर्माण,

धर्मानुष्ठान, गृहस्थ धर्म, सुखी परिवार, कर्त्तव्य पालन, मानव के पतन के कारण, सन्तान के प्रति माता-पिता का कर्त्तव्य, सुखी जीवन, पतन की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तियां, कर्म-मीमांसा, जगद्गुरु भारतवर्ष, भारतवर्ष की दार्शनिकता, भारतवर्ष के सन्त, वर्णाश्रम-व्यवस्थादि विविध विषयों पर व्याख्यान देते थे। सैकड़ों की संख्या में लोग इन उपदेशों को सुनने के लिए आते थे। सदाचार तथा कुरीति निवारण सम्बन्धी भजन गाए जाते थे। रात्रि के समय स्वयंसेवक सारे मेले में घूमा करते थे। जहां-जहां पर व्यभिचार के प्रसिद्ध अड्डे थे वहां पर विशेषरूप से खड़े रहते थे। दुराचारी स्त्री और पुरुषों को पकड़ कर पुलिस थाने में ले जाते थे। पुलिस ने भी इस कार्य में व्यासदेवजी को बड़ा सहयोग दिया। पुलिस दुराचारियों को हवालात में रखती थी और उन्हें डांटती-फटकारती और शर्मिन्दा करके छोड़ देती थी। इस प्रकार १५ दिन तक ब्रह्मचारीजी ने ब्रह्मचर्य और सदाचार के प्रचार तथा दुराचार के निरोध के लिए अनथक परिश्रम किया।

कुल्लू के आस-पास देहातों में लुगड़ी नाम की एक प्रकार की शराब बहुत बनाई जाती थी। प्रायः सभी देहात के लोग इसे पीते थे। दशहरे के मेले के समय भी इसकी खूब बिक्री होती थी। पुरुष और स्त्रियां अपनी टोलियां बना कर इस मदिरा का पान करके इधर-उधर मेले में घूमा करते थे तथा विविध प्रकार के नृत्य किया करते थे। मदिरा-पान के विरुद्ध भी व्यासदेवजी ने बड़ा आन्दोलन किया था और इसमें उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

इस मेले के अवसर पर ग्रामीण लोग कम्बल, गर्म चादरें तथा पट्टी आदि बेचने के लिए आते थे। अमृतसर तथा अन्य नगरों के व्यापारी गर्म कपड़े को खरीदने के लिए आते थे। लाखों का व्यापार इस मेले में होता था।

मणीकरण की यात्रा—दशहरे का मेला समाप्त होने के पश्चात् श्री ब्रह्मचारीजी ने मणीकरण के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान कुल्लू से २४ मील की दूरी पर है। यहां पर गंधक के कई चश्मे हैं जिनमें से सदैव गर्म जल निकला करता है। यह जल इतना गर्म होता है कि यात्री लोग इसमें चावल तथा आलू उबालते थे। वे आलुओं को पोटली में बांधकर चश्मे में डाल दिया करते थे और थोड़ी देर बाद ही वे उबलकर तैयार हो जाते थे। जब ये पक जाते तो इनमें से गंधक की थोड़ी खुशबू आया करती थी, किन्तु जो पतीले में दूसरा पानी डालकर उसमें इच्छानुसार चावल डालकर कुण्ड के जल में रख देते थे वे चावल उबल जाते थे और उनमें किसी प्रकार की गंध नहीं आती थी। इसी प्रकार दाल भी बहुत जल्दी पककर तैयार हो जाती थी। रोटियां बेल-बेलकर इस जल के अन्दर रखने से ये रोटियां भी पक जाती थीं किन्तु उनमें गीलापन रह जाता था। पर उनके पकने में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती थी।

मणीकरण की यात्रा करने के पश्चात् व्यासदेवजी भूनित्तर लौट आए और यहां से मण्डी को प्रस्थान किया। यहां पर ये दो दिन तक ठहरने के बाद सुकेत, बिलासपुर और अर्की की यात्रा के लिए चले गए। ये चारों रियासतें थीं और मण्डी इन सब में बड़ी रियासत थी। अर्की में कांग्रेस के दो कार्यकर्ताओं से भेंट हुई। इनमें से एक मेरठ के निवासी थे और दूसरे लाहौर के अखबार वन्देमातरम् के सम्पादक थे। ये दोनों सज्जन

बड़े देशभक्त और क्रान्तिकारी दल के थे। भारत को स्वतन्त्र करवाने की इनमें बड़ी लगन थी। अहर्निश यही धुन उन्हें लगी रहती थी। स्वतन्त्रता की बलिवेदि पर ये अपना सर्वस्व निछावर करने को कटिबद्ध थे और अपनी जान को हाथ की हथेली पर रखकर अपने आपको इस कार्य के लिए जूझ दिया था। अर्फी में एक बड़ा बुद्धिमान लुहार रहता था। यह नई-नई चीजें बनाने की खोज किया करता था। इसने एक प्रकार से देशी पिस्तौल का आविष्कार किया था। इस पिस्तौल के तीन टुकड़े किए जा सकते थे। जब उसके तीन टुकड़े कर दिए जाते थे तो कोई यह नहीं पहिचान सकता था कि यह पिस्तौल है या अन्य कोई वस्तु। एक पिस्तौल को यह १६) में बेचता था। गोलियां बनाना भी वह जानता था। क्रान्तिकारी देशभक्त इससे प्रायः पिस्तौल और गोलियां खरीदा करते थे। यह लुहार इनको पिस्तौल और गोलियां चोरी से बेचा करता था, क्योंकि ब्रिटिश सरकार का सदा भय बना रहता था। ये क्रान्तिकारी सज्जन इस लुहार को अपने साथ ले जाना चाहते थे और इसी उद्देश्य से ये यहां अर्फी में आए थे। इन सज्जनों से व्यासदेवजी को पता चला कि वे इस लुहार को भारी वेतन पर कहीं अन्यत्र ले जाना चाहते थे जिससे वह गोलियां और पिस्तौल बना कर सैकड़ों की संख्या में देता रहे। उनका उद्देश्य एक भारतीय सेना का निर्माण करके ब्रिटिश सरकार से लोहा लेना था। उन्होंने इस कार्य के लिए एक बहुत बड़ी योजना बनाई थी। उन नवयुवकों को देखकर ब्रह्मचारीजी के मन में भी पराधीनता की कड़ी शृङ्खलाओं से जकड़ी हुई भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिए जो आन्दोलन चल रहा था उसमें योग देने की भावना जागृत हुई किन्तु वे इसमें सक्रिय योग न दे सके क्योंकि वे साधना, तप तथा योगाभ्यास में निरत थे। इन्होंने भी सोलह रुपये में एक पिस्तौल उस लुहार से खरीदा और उसे अपने साथ अमृतसर ले गए। वहां जाकर उसे एक मिट्टी की हांडी में रखकर जमीन में गाड़ दिया। वहां पड़े-पड़े उसमें जंग लग गई और किसी काम का न रहा। अर्फी से ये शिमला चले गए और वहां पर अमृतसर के रायसाहब गंगा-रामजी की कोठी में कुछ दिवस तक निवास किया। दीवाली के अवसर पर ये अमृतसर पहुंच गए। यहां पर थोड़े ही दिन ठहरे क्योंकि अब इनका विचार कलकत्ते जाने का होगया जिससे वहां जाकर नव्य-न्याय का अध्ययन किया जाए और फिर वहां से दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

बंग देश की यात्रा

पशमीने के कई व्यापारियों के आग्रह पर श्री व्यासदेवजी ने शीतकाल में कलकत्ते जाने का विचार किया और नवम्बर के अन्त में कलकत्ता पहुंच गए। यहां पर खिंगरा-पट्टी में लाला रामभज काहनचन्द पशमीने वालों के पास ठहरे। यहां आकर इनका अमृतसर निवासी लाला मूलराज से बहुत परिचय होगया था। ये ईश्वरदास श्यामल के हिस्सेदार थे। यह बनारसी कपड़े की बड़ी भारी फर्म थी। इनकी प्रेरणा से सन्त महात्माओं के दर्शनार्थ नवद्वीप चले गए। नवद्वीप का दूसरा नाम नदिया-शान्ति था। यहां पर लगभग एक मास तक एक प्रसिद्ध धर्मशाला में निवास किया। इस नदिया-शान्ति में बहुत से भजनाश्रम हैं जिनमें सैकड़ों की संख्या में महिलाएं प्रतिदिन ४-५ घण्टे तक कीर्तन किया करती हैं। ये प्रायः विधवा होती हैं। यहां पर कीर्तन करने के पश्चात् इन्हें दाल, चावल, घी, लकड़ी आदि सामान प्राप्त होता है। यह कीर्तन

इन बेचारी विधवाओं के लिए आजीविकोपार्जन का एक साधन था। इनके निवास की व्यवस्था भी आश्रम की ओर से की जाती थी। यह व्यवस्था आश्रम में नहीं परंतु कहीं अन्यत्र की जाती थी। यहां पर अनेक बंगाली सन्त भी रहते थे जिन्होंने अपने निवास के लिए कुटियाएं प्रायः गंगा के किनारे बनाई हुई थीं। ये सन्त और महात्मा गौरांगप्रभु के अनुयायी तथा अनन्य भक्त थे। भगवतनाम स्मरण और कीर्तन इनका परमोद्देश्य था। यहां पर कई संस्कृत पाठशालाएं थीं किन्तु नव्य-न्याय के कोई विद्वान् यहां पर इस समय नहीं थे। ये सब इन पाठशालाओं को छोड़कर बनारस चले गए थे। ललितासखि नाम के एक सन्त बड़े उच्चकोटि के विद्वान् थे। ये सखीभाव से कृष्ण की भक्ति करते थे तथा स्त्रीवेश में रहते थे। इनके साथ प्रायः शास्त्र-चर्चा हुआ करती थी। व्यासदेवजी की प्रतिभा, त्याग, ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास से बड़े प्रसन्न थे और इनसे बड़ा स्नेह रखते थे। एक दिन ब्रह्मचारीजी मूलराज और चरणदास को लेकर गंगा के किनारे भ्रमण के लिए चले गए। वहां पर एक बगीचा था जिसमें एक सुन्दर मकान और गुफा बनी हुई थी। इन्होंने इन दोनों को समाधि में बिठाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु उन्होंने निवेदन किया कि दुकानदारी और समाधि में मेल नहीं है। महाराजजी ने विनोदपूर्ण ढंग से मुस्कराते हुए कहा कि आज इन दोनों में मेल करवा देंगे। मूलराज तथा चरणदास समाधि के लिए तत्पर होगए। योगीराज ने इन दोनों को समाधि का तरीका बताया और गुफा में बिठा दिया और स्वयं उनके सन्मुख बैठ गए। पांच सात मिनट में ही दोनों के मन, चित्त तथा इन्द्रियां शांत और स्तब्ध होगईं। तीन घण्टे तक ये समाधिस्थ रहे। प्रातः ९ बजे ये समाधि में बैठे थे और दोपहर को १२ बजे उठे। तीन घण्टे तक इन्हें कुछ भी पता न रहा। इनकी उस समय की अवस्था अनिर्वचनीय थी। ये निरन्तर आनन्दानुभव करते रहे। तीन घण्टे के पश्चात् बड़ी कठिनाई से योगीराजजी ने इन्हें समाधि से उठाया। मूलराज ने उठ कर तुरन्त महाराजजी के चरण पकड़ लिए और उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। वे आनन्द-विभोर होगए थे। उन्होंने चरण स्पर्श करते हुए कहा कि वर्षों की खोज के पश्चात् आज सच्चे गुरु की उपलब्धि हुई है। आज जिस अपरिमेय तथा अद्वितीय आनन्द की प्राप्ति हुई है ऐसी आज तक कभी उपलब्ध नहीं हुई। मुझमें तो आध घण्टे तक भी बैठने की क्षमता न थी किन्तु आपने मुझे तीन घण्टे तक एक प्रकार से बांध कर बिठा दिया। मुझे तो दीन-दुनिया का कुछ भी ज्ञान न रहा। मुझे अपनी बिलकुल सुध-बुध न रही। आत्म-विस्मृति-सी होगई। महाराजजी, आप धन्य हैं, आज हमारा जीवन सफल होगया। आपके इस महान् उपकार का बदला कैसे चुका सकते हैं! भोजन की व्यवस्था इसी उद्यान में की गई और सारा दिन वहीं व्यतीत किया।

सन्तों का बाजार—नवद्वीप में एक बाजार था जिसमें सब सन्त महात्मा ही रहते थे। कई गुफा बनाकर रहते थे। कइयों ने तख्तों पर कील ठुकवा रखे थे और उन पर बैठकर तपश्चर्या करते थे। कइयों ने अपनी कोठड़ियों के दरवाज़ों को सीखें लगवा कर बन्द करवा दिया था और भीतर बैठकर ध्यान लगाते थे। ध्यानावस्थित सन्तों के सामने श्रद्धालु लोग आकर रुपये-पैसे चढ़ा जाते थे। इस बाजार के एक बराण्डे में एक युवक ब्रह्मचारी रहता था। इसके विषय में यह प्रसिद्धि थी कि यह

दो दिन तक समाधिस्थ रहता था। एक दिन व्यासदेवजी इसके दर्शन के लिए गए और २२ घण्टे तक निरन्तर उसके पास बैठे रहे। इसका आसन स्थिर था। पास बैठे हुए व्यक्ति को इनकी श्वास-प्रश्वास की गति का भी कुछ पता नहीं लगता था। केवल कौपीन बांधकर ही समाधि में बैठा था। इसकी आयु लगभग २४-२५ साल की होगी। इससे बातचीत करने का अवसर कभी नहीं मिला क्योंकि जब ये जाते थे तब वह समाधिस्थ ही मिलता था। एक सन्त ऐसे थे जो एक फुट चौड़े रोशनदान से ही 'हरि बोल' कहकर दर्शन दिया करते थे। इस प्रकार से यहां पर इन्होंने कई सन्त महात्माओं दर्शन किए और कइयों से वार्तालाप करने का भी सुअवसर लाभ हुआ।

भजनाश्रमों में प्रायः ग्यारह बजे तक भजन तथा कीर्तन होता था। अन्त में महिलाएं खड़ी होकर कीर्तन करती थीं। इनमें से कई भावावेश में आकर बेहोश हो जाती थीं और कई-कई घण्टे तक अचेत पड़ी रहती थीं। बहुत-सी महिलाएं भक्ति-रस में इतनी विभोर हो जाती थीं कि उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा बह निकलती थी और रुदन करती हुई ही कीर्तन करती थीं। प्रेम, श्रद्धा और आनन्द से आप्लावित होकर जब ये कीर्तन करती थीं तो दर्शकों तथा श्रोताओं के हृदय में अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का संचार होता था और भगवान् के प्रति अनुराग की भावना जागृत होती थी।

व्यासदेवजी अपने दोनों भक्तों के साथ नित्यप्रति गंगाजी के किनारे भ्रमण के लिए जाते थे। यहीं स्नान, ध्यान, व्यायाम, प्राणायाम तथा योगाभ्यास किया करते थे। इस प्रकार यहां एक मास तक निवास करके ये कलकत्ता लौट गए।

कलकत्ते में लाला काहनचन्द खन्ना रफल के व्यापारी थे। ये व्यासदेवजी से बड़ा स्नेह करते थे और इनके प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा थी। इनका रफल का व्यापार फ्रांस की एक कम्पनी से चलता था। इनको इस वर्ष इस व्यापार में बहुत घाटा पड़ा था। इन्होंने सोचा कि ब्रह्मचारीजी बड़े भारी योगी और त्यागी सन्त हैं। यदि इनके नाम से व्यापार किया जाए तो शायद जो घाटा पड़ा है उसकी पूर्ति हो जाए। इस-लिए इन्होंने व्यासदेवजी के नाम से रफल का सौदा किया। इसमें इन्हें पांच हजार का लाभ हुआ और काहनचन्दजी को २० हजार का। काहनचन्दजी यह रुपया लेकर इनके पास गए और रुपया इनकी भेंट किया और निवेदन किया कि रफल की कुछ गांठों का व्यापार आपके नाम से किया था, उसमें पांच हजार रुपये का लाभ हुआ है। यह रुपया आपका है। आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें। महाराजजी ने इसे उचित नहीं समझा और उन्हें समझाया कि साधु-सन्तों के नाम पर व्यापार नहीं करना चाहिए। यह उनके लिए कोई शोभा और सम्मान की बात नहीं है। इन्होंने यह धनराशि लेने से इन्कार कर दिया।

गंगा सागर की यात्रा—शीतकाल में व्यासदेवजी ने गंगा सागर की यात्रा करने का विचार किया। मूलराजजी भी इनके साथ चलने को तैयार होगए। एक जलपोत में सवार होगए। यह जलपोत सायंकाल को रवाना हुआ। रात भर चल कर प्रातः गंगा सागर पहुंचा। यहां पर गंगाजी समुद्र में मिलती हैं। यहां पर समुद्र में स्नान करने का बड़ा महत्त्व माना जाता है क्योंकि इसमें गंगा आकर मिलती है। हज़ारों की संख्या में यात्री यहां स्नान करने आते हैं। वे यहां एक दिन ही ठहरते

हैं। स्नान तथा मंदिर दर्शन के पश्चात् चले जाते हैं। समुद्र के किनारे झाड़ियों से सटा हुआ एक छोटा-सा मैदान है। इस मैदान में कपिलदेवजी का मंदिर है। इसके पास ही एक और मंदिर है जिसमें ब्रह्माजी की चतुर्मुखी प्रतिमा है। व्यासदेवजी तथा लाला मूलराज चौथे दिन गंगा सागर से कलकत्ता लौट आए।

दार्जिलिंग और शिलांग भ्रमण

ग्रीष्मकाल में कलकत्ते में रहकर साधना करना अत्यन्त कठिन था। इसलिए व्यासदेवजी ने बंगाल के उत्तरी भाग में स्थित दार्जिलिंग और आसाम के उत्तरी प्रदेश में स्थित शिलांग जाने का विचार किया। इन दोनों प्रान्तों के गवर्नर ग्रीष्म ऋतु में इन स्थानों में जाकर निवास किया करते थे। लाला मूलराज अपनी दुकान से अवकाश प्राप्त करके इनके साथ चलने को तैयार होगए। ये महाराजजी के सत्संग तथा उनके उपदेशों को सुनकर संसार से कुछ उपराम से होते जा रहे थे, इसलिए जहां ये जाते वहीं उनके साथ चलने को तैयार रहते थे। ये निःसन्तान थे। इनकी पत्नी को कुछ मस्तिष्क का विकार होगया था अतः वह अपनी माता के पास जालंधर में रहा करती थी। मूलराज के पास लगभग एक लाख रुपया था और उनका अपना मासिक व्यय बहुत कम होता था। व्यासदेवजी ने उन्हें सलाह दी कि तुम्हारे पास रुपये की कमी नहीं है। तुम अपना सारा समय ईश्वर-भक्ति में लगा सको तो बड़ा उत्तम हो। मूलराज ने उनकी इस बात को मान लिया और इस पर विचार करना प्रारंभ कर दिया। दार्जिलिंग पहुंचकर एक मकान में दो कमरे किराये पर लिए गए। यहां पर रहकर इधर-उधर दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए चले जाते थे। यहां पर दो मास तक निवास करने का निश्चय किया।

टाइगर हिल पर सूर्योदय दर्शन—दार्जिलिंग में टाइगर हिल नाम का एक बड़ा सुन्दर स्थान है। यहां पर सूर्योदय का अलौकिक दृश्य देखने के लिए बहुत दूर-दूर से लोग आया करते थे। इन दिनों वर्षा ऋतु प्रारंभ होगई थी। दार्जिलिंग में वर्षा अन्य पर्वतीय स्थानों की अपेक्षा होती भी अधिक है। व्यासदेवजी तथा मूलराज ने टाइगर हिल पर इस अद्वितीय दृश्य को देखने का विचार किया। ये दोनों प्रातःकाल ही इस पहाड़ी पर जा पहुंचे। कई दिन से वर्षा हो रही थी किन्तु उस दिन दैवयोग से यह बन्द होगई। सैकड़ों व्यक्ति इस दृश्य को देखने के लिए इस पहाड़ी पर जाते थे किन्तु वर्षा के कारण सूर्यदेव के दर्शन नहीं हो पाते थे। व्यासदेवजी जिस दिन गए उस दिन गगनमण्डल बिलकुल साफ होगया। मार्ग में २५-३० यात्री व्यासदेवजी के साथ हो लिए। जब ये लोग पहाड़ी के ऊपर मैदान में पहुंचे तो इन्हें जर्मनी के बहुत से लोग मिले। ये भी सूर्योदय के दृश्य को देखने के लिए कई दिनों से आ रहे थे किन्तु वर्षा के कारण निराश होकर लौट जाते थे। बहुत दिनों के पश्चात् उस दिन इन्हें अवसर मिला। व्यासदेवजी का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् उन्होंने इनके पास आकर कहा, "आज ऐसा मालूम होता है कि आपने अपने योगबल से नभ में आच्छादित मेघ-मंडल को छिन्न-भिन्न करके तितर-बितर कर दिया है। आप मनुष्य नहीं किन्तु आप मनुष्य रूप में देवता हैं। आपकी कृपा से आज हम सूर्योदय के अपूर्व दृश्य को देख सकेंगे।" इस पहाड़ी के पूर्व की ओर एक बड़ा भारी मैदान है। यहीं से सूर्योदय देखा जाता था। जब सूर्य उदय होता था तो ऐसा प्रतीत होता था मानो यह पर्वतीय भूमि

के आंचल से निकलकर चला आ रहा है। प्रतिक्षण यह नया-नया रूप धारण करता था। पल-पल में अपना रंग बदलता था। इसमें एक प्रकार का अननुभूत सा स्पन्दन तथा हलचल सी प्रतीत होती थी। इसके कंपन और क्षोभ स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। यह परिवर्तनरूप क्रिया प्रातः ४ बजे से लेकर डेढ़ घण्टे तक रहती है। इस चित्ता-कर्षक दृश्य को देखने के लिए किसी-किसी दिन तो सैंकड़ों की संख्या में लोग एकत्रित हो जाते हैं। सूर्योदय की यह छटा देखते ही बनती है। यह वाणी का विषय नहीं है। यहां का सूयर्दोय तथा आबू पर्वत का सूर्यास्त दोनों ही अनुपम दृश्य हैं। टाइगर हिल पर जाने के लिए पक्की सड़क बनी हुई है। प्रातः सूर्योदय के दृश्य को देखने के लिए यात्रियों को रात्रि में ही वहां पहुंचना होता था। व्यासदेवजी तथा मूलराज ने इस भव्य दृश्य को कई बार देखा।

दार्जिलिंग में चाय के कई बाग हैं। ये लोग इन्हें भी प्रायः देखने के लिए जाया करते थे। यहां पर चाय बनाने के कई कारखाने हैं। यहां पर मच्छर और मक्खी बहुत कम होते हैं। ध्यानाभ्यास के लिए यह स्थान उपयुक्त था। योगीराज ने इस कार्य के लिए एक एकान्त-स्थान नियत किया हुआ था।

शिलांग के लिए प्रस्थान—दार्जिलिंग में दो मास निवास करने के बाद व्यासदेवजी तथा मूलराज ने शिलांग जाने का निश्चय किया। दार्जिलिंग से प्रस्थान करके ये सर्वप्रथम गोहाटी पहुंचे। यहां पर कामाक्षा देवी का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। यह एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है। यहां पर एक धर्मशाला में निवास किया। ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान किया और तत्पश्चात् कामाक्षा देवी के दर्शन किए। जब ये दूसरे दिन स्नान करने के लिए गए तब वहां दो महिलाएं स्नान करने के लिए आई हुई थीं। ये दोनों युवतियां संन्यासी के वेश में थीं। दोनों की आयु २०-२५ वर्ष के अन्तर्गत थी। इनमें से एक गुरु तथा दूसरी शिष्या थी।

संन्यासिनी देवी से परिचय—दो संन्यासिनी देवियां ब्रह्मपुत्रा नदी के तट पर महाराजजी को मिली थीं। उनमें जो गुरु थी वह इनके व्यक्तित्व से बड़ी प्रभावित थी। उसने इनके पास जाकर स्वयं इनका परिचय प्राप्त किया। उसे मालूम हुआ कि इनका शरीर पंजाब प्रान्त का है। ये कलकत्ता से आए हैं। दार्जिलिंग में दो मास ठहरकर गोहाटी आए हैं और यहां एक धर्मशाला में ७-८ दिवस रहने के पश्चात् शिलांग जाने का विचार है। उसने सादर प्रणाम करके निवेदन किया कि वे उसके ही आश्रम में ठहरें। वहां उनके लिए सब उनकी सुख सुविधा के अनुरूप व्यवस्था कर दी जाएगी। व्यासदेवजी ने वहां जाने से पूर्व उनके आश्रम को देखने की इच्छा प्रकट की। उनका आश्रम वहां से २-३ फर्लांग पर ही था। ये उनके साथ उनके आश्रम में पहुंचे। वहां जाकर देखा कि एक बड़ा सुन्दर बंगला एकमंजला बना हुआ था। इसमें बहुत बढ़िया चार कमरे थे। इस बंगले के आसपास और भी कई बंगले बने हुए थे। व्यासदेवजी ने घूम-फिर कर सारा मकान देखा किन्तु उन्हें कहीं कोई भी पुरुष दिखाई न दिया, अतः उन्हें धर्मशाला से यहां आने में बड़ा संकोच अनुभव होने लगा। जब इन्होंने अपना संकोच गुरु देवी पर प्रकट किया तो वह मुस्कराई और कहा कि आप इतने ऊंचे महात्मा हैं, अभी भी आपको पुरुष और स्त्री का भेद बना हुआ है। आप यहां ठहरें, मैं आपकी रक्षा के लिए जितने पुरुष आप चाहें उतने मंगवा देती हूं। ये

सब बातें सुनकर व्यासदेवजी ने अपने सुन्दर भाव व्यक्त किए कि जब तक पूर्णरूपेण ज्ञान और वैराग्य नहीं हो जाता और स्वरूप स्थिति नहीं हो जाती तब तक भेदभाव बना ही रहता है और यह आवश्यक भी है। इन्होंने अनेक प्रकार से उसे समझाया किन्तु कोई भी बात उस देवी के गले नहीं उतरी। उसने एक आदमी को भेजकर तुरन्त महाराजजी का सामान धर्मशाला से अपने आश्रम में मंगवा लिया और उनके तथा मूलराजजी के रहने की सारी व्यवस्था कर दी। गुरु देवी की शिष्या ने भोजन बनाया और बड़ी श्रद्धा और भक्ति से दोनों को भोजन करवाया।

उपनिषदों की कथा--सायंकाल ४ बजे बराण्डे में चटाइयां बिछा दी गईं। आस-पास के सब लोग वहां पर एकत्रित होगए। महाराजजी ने योग के सम्बन्ध में एक सारगर्भित उपदेश दिया। इससे एकत्रित सभी सज्जन बड़े प्रभावित हुए। लगभग दो घण्टे तक सत्संग होता रहा। इसी अवसर पर एक मारवाड़ी सेठ वहां आए। गुरु देवी ने महाराजजी से इनका परिचय करवाया। यह सेठ इन दोनों देवियों को सब खर्च देते थे। बंगला भी इन्होंने ही बनवा कर दिया था और वहां पर जितने भी सन्त और महात्मा आते थे उन सबका खर्चा भी यह ही करते थे। श्री ब्रह्मचारीजी सात दिन तक यहां ठहरे और सातों ही दिन उपनिषदों की कथा सायंकाल के समय करते रहे। इनकी कथा ने वहां के निवासियों में आध्यात्मिक नव-चेतना का संचार किया। पथभ्रष्टों का मार्ग दर्शन किया और कर्त्तव्य-विमुखों को कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ किया।

गोहाटी से प्रस्थान का विचार--सारे दर्शनीय स्थानों को देखने के पश्चात् व्यासदेवजी ने गोहाटी से प्रस्थान करने का विचार किया। यहां रहते बहुत दिन हो गए थे। नवयुवती संन्यासिनियों के पास अधिक दिन तक निवास को वे उचित नहीं समझते थे। उनके आतिथ्य तथा अत्यधिक उपचार को भी वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। एक नीति वाक्य भी इस विषय में इनके रुख का समर्थन करता है "अत्युपचारः शंकनीयः"। इन्होंने यहां की महिलाओं के विषय में अनेक प्रकार की किंवदन्तियां सुनी हुई थीं, इसलिए भी अब वे वहां से शीघ्र ही गमन करना चाहते थे। इन्होंने अपने प्रस्थान का विचार गुरु देवी से प्रकट किया। इस देवी ने उन्हें ठहराने के लिए बड़ा आग्रह किया क्योंकि एक सप्ताह तक उनके सत्संग से जनता ने बड़ा लाभ उठाया था। जब वह बार-बार हठ करने लगीं तब व्यासदेवजी ने उन्हें भली प्रकार से समझाया कि "जब एक सप्ताह हमारे यहां ठहरने से आपको मोह होगया है तो हम यदि और अधिक यहां ठहरेंगे तो यह मोह का बंधन और भी अधिक दृढ़ हो जाएगा। आप लोग संन्यासिनियां हो, अपने परिवार की ममता का परित्याग करके यहां आई हो और गेरुए वस्त्र धारण किए हैं। आपको वीतराग होना चाहिए और उपरामवृत्ति से रहना चाहिए। आपको जड़ अथवा चेतन किसी भी पदार्थ से राग नहीं होना चाहिए। युवावस्था में ब्रह्मचारी को स्त्रियों के पास अधिक नहीं रहना चाहिए और युवती संन्यासिनियों के लिए भी पुरुषों के संसर्ग में रहना अनुचित है। एक नीति-वाक्य मेरी बात की बलपूर्वक पुष्टि करता है, "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्।" गुरु देवी ने जबसे व्यासदेबजी को घाट पर देखा था तभी से उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनमें गुरु भावना करने लग गई थी। उसके गुरुजी का देहावसान तीन साल पूर्व हो चुका था। वे बड़े विद्वान् और

सिद्ध पुरुष थे । उन्होंने ही इस देवी को बाल्यकाल से शिक्षा दी थी । उनके देवलोक गमन पश्चात् यह बड़ी दुःखी-सी रहने लगी । जो सेठजी महाराजजी की कथा सुनने ग्राते थे वे इसके गुरु-भाई थे । ये सब प्रकार से इन दोनों देवियों का विशेष ध्यान रखते थे ग्रौर ग्रब भी सब प्रकार की उनकी व्यवस्था ये ही करते थे । इन्हें ग्रपनी पुत्रियों के समान समझते थे । यह देवी व्यासदेवजी की गुरु भावना से ही सेवा कर रही थी ग्रौर उनके सत्संग से लाभ उठा रही थी । यद्यपि इस देवी के गुरुजी ने इसे ही ग्रपने बाद ग्रपनी गद्दी पर बिठाने का निर्णय दे दिया था तो भी यह व्यास-देवजी को ग्रपना गुरु बनाना चाहती थी ग्रौर सेठजी ने भी इसकी ग्रनुमति दे दी थी क्योंकि वे यह चाहते थे कि इसकी प्रवृत्ति धर्म, ध्यान ग्रौर भक्ति की ग्रोर जमी रहे । यह बड़ी निष्ठावती, श्रद्धालु ग्रौर भगवद्भक्ता थी । जब इसे ज्ञात हुग्रा कि महाराजजी दो-तीन मास के लिए शिलांग जा रहे हैं तो उसने भी इनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की जिससे वह इनके सत्संग से लाभ उठा सके ग्रौर ग्रभ्यास भी करती रहे । इन्हें यह बात पसन्द नहीं ग्राई ग्रौर कहा कि ग्रभी हमारे ठहरने ग्रादि की वहां पर कोई ठीक व्यवस्था नहीं है, ग्रतः ग्रापका हमारे साथ जाना उचित नहीं है । जब गुरु देवी ने यह विश्वास दिलाया कि वहां पर निवास ग्रादि का सारा प्रबंध सेठजी करवा देंगे तब ब्रह्मचारीजी ने वहां जाकर स्वयं ही सब प्रबंध करने का तथा सब व्यवस्था हो जाने पर सब समाचार लिखने का विश्वास दिलाया । इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़ी कठिनाई से ग्रपना पीछा छुड़ाया । दूसरे दिन प्रातःकाल विदाई के समय गुरु देवी ने इन्हें हार पहिनाया ग्रौर २०० रुपये भेंट रूप में देना चाहा किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह संन्यासिनी थी । यद्यपि गुरु देवी ने इन्हें गुरु मान लिया था तो भी इन्होंने रुपयों को नहीं लिया ।

शिलांग के लिए प्रस्थान

टैक्सी में यात्रा––प्रातःकाल ठीक ग्राठ बजे टैक्सी ग्रा गई । पाथेय का पूरा सामान सेठजी ने व्यासदेवजी के साथ रख दिया । मार्गव्यय तथा शिलांग में निवास ग्रादि के लिए भी उन्हें एक बड़ी धन राशि देनी चाही किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं की ग्रौर सेठ मूलराज की ग्रोर संकेत करते हुए कहा, "मेरे साथ ये सेठजी हैं । ये ही सारा व्यय कर रहे हैं । मुझे रुपये की कोई चिन्ता नहीं है । ये ही सब कुछ कर रहे हैं ।" विदाई के समय बहुसंख्या में नर-नारी वहां पर एकत्रित होगए । इन सभी को इनका गोहाटी से प्रस्थान ग्रच्छा नहीं लगा । ये सभी चाहते थे कि ये कुछ दिन ग्रौर वहां विराजें ग्रौर वहां की जनता को ग्रपने उपदेशामृत का पान करवाएं । गुरु देवी की ग्रांखों से ग्रश्रुधारा बह निकली । वह बार-बार महाराजजी से उसे शिलांग बुलाने के लिए ग्रनुरोध कर रही थी । इन्होंने उसे धीरज बंधाया ग्रौर सान्त्वना दी । सेठ मूलराज ग्रौर ये दोनों टैक्सी में सवार हुए ग्रौर शिलांग के लिए प्रस्थान कर दिया ।

मार्ग में दुर्घटना––कुछ ही मील की यात्रा की होगी कि टैक्सी खराब होगई । कई घण्टे इसे ठीक करने में लगे । सायंकाल को यदि प्रस्थान वहां से कर भी लेते तो उसी दिन शिलांग पहुंच नहीं सकते थे, ग्रतः मार्ग में ही कहीं ठहरने का निश्चय किया । मार्ग में ही रात्रि के ग्राठ बज गए । ड्राईवर भली प्रकार से गाड़ी चला रहा

था। मार्ग में एक बड़ा विशालकाय तथा मदमस्त हाथी खड़ा हुआ था। उसको सड़क पर से हटाने के लिए इसने बीसियों बार हार्न दिया, उसके ऊपर प्रकाश भी डाला, कोलाहल भी किया, किन्तु वह वहां से तनिक भी न हटा, वहीं डटा रहा। ड्राईवर बड़ा चिन्तित हुआ। हाथी प्रायः हार्न या प्रकाश से भयभीत होकर भाग जाया करते हैं किन्तु इस पर इन दोनों का ही कुछ असर नहीं हुआ। जिस वन में से गुजर रहे थे उसमें बहुत हाथी रहते थे। झुण्डों के झुण्ड उस वन में विचरा करते थे। इस हाथी ने इससे पूर्व भी एक लारी को सड़क पर रोक लिया था और कई घण्टे तक सड़क पर से नहीं हटा था। जब पीछे से कई लारियां आईं तब कहीं जाकर उसने इन्हें जाने दिया था। हाथी को वहां से हटाने का इनके पास कोई साधन नहीं था। गाड़ी भी छोटी थी और आदमी भी कुल पांच ही थे, अतः टैक्सी को वहीं खड़ा करके वन के किसी सुरक्षित भाग में जाकर रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। ड्राईवर ने टैक्सी की बत्तियां बुझा दीं और इसे थोड़ा हटाकर खड़ा कर दिया। सब लोग चुपके से वन में चले गए और एक बड़े मज़बूत वृक्ष पर चढ़ कर बैठ गए। पन्द्रह बीस मिनट के अन्दर ही हाथी ने अपनी सूण्ड से टैक्सी को पकड़ लिया और उसको झटके देने लगा और एक पत्थर से टकरा-टकरा कर उसे तोड़ डाला। इंजन सारा चकनाचूर कर दिया। वृक्ष पर बैठे लोग कर भी क्या सकते थे! विवश होकर सब क्षति को अपनी आंखों से देखते रहे। हाथी ने गाड़ी के शीशों तथा कई पुर्जों को तोड़-फोड़ डाला था। गद्दियां फाड़ दी थीं। गाड़ी में जो सामान था वह सब तोड़ कर इधर-उधर फेंक दिया था। सूर्योदय होने पर ब्रह्मचारीजी तथा उनके साथी वृक्ष पर से उतरे और टैक्सी की दशा देखकर दुःखित हुए। कई घण्टे तक खड़े-खड़े शिलांग की ओर जाने वाली लारियों की प्रतीक्षा करते रहे। इतने में तीन-चार वनवासी कुली उधर से निकले और हाथियों तथा अजगरों से होने वाले कष्टों का वर्णन किया। एक बार एक हाथी के बच्चे को एक अजगर ने निगल लिया। जंगलात के सरकारी नौकरों ने उस अजगर को मारकर हाथी के बच्चे को उसके पेट में से निकाला था। ड्राईवर ने योगीराजजी तथा मूलराजजी आदि को तो एक-एक, दो-दो करके लारियों में बिठवा दिया और स्वयं टैक्सी को एक ट्रक से बान्धकर वापस गोहाटी चला गया।

शिलांग में निवास—यहां आकर महाराजजी एक बड़ी धर्मशाला में ठहरे किन्तु यहां पर केवल दो-तीन दिन तक ही रहे। इसके पश्चात् एक छोटा-सा मकान किराए पर ले लिया। इस मकान से थोड़ी-सी दूर एक जल-स्रोत था। यह बड़ा सौंदर्यपूर्ण था और इसका जल बड़ा स्वच्छ और मधुर तथा पाचक था। इसके जल-पान से भूख बहुत लगती थी। जो खाया जाता था तुरन्त पच जाता था। योगीराजजी तथा मूलराजजी दोनों के स्वास्थ्य की वृद्धि हुई और शक्ति तथा बल सम्पन्न होगए। यहां पर योगीराजजी सेठजी को गीता और भागवत पढ़ाया करते थे। इनके लिए योगाभ्यास करने का छः घण्टे का कार्यक्रम बना दिया गया था। और ब्रह्मचारीजी स्वयं भी बारह घण्टे तक प्रतिदिन अभ्यास करते थे।

चिरापूंजी गमन—यह स्थान शिलांग से पच्चीस या तीस मील की दूरी पर है। यहां पर भारतवर्ष में सर्वाधिक वर्षा होती है। अच्छा रमणीक स्थान है। यहां पर व्यासदेवजी एक सप्ताह तक रहे और इसके बाद शिलांग लौट आए।

शिलांग के रीति-रिवाज—कुछ वर्ष पूर्व यहां की आबादी लगभग दस लाख थी। यहां पर खसिया क्षत्रियों की संख्या अधिक है। ईसाई धर्म सदैव से ही भारतीय धर्म के लिए घातक सिद्ध होता रहा है। भारत का कोई कोना इनके प्रचार और अत्याचार से अछूता नहीं बचा। यहां पर भी इन्होंने अपना प्रचार-कार्य किया और विविध प्रलोभन देकर यहां की जनता को ईसाई बनाया। इन्होंने स्थान-स्थान पर स्कूल तथा अस्पताल खोले और कहीं पर रुपया बांट कर, कहीं पर औषधियों को वितरण करके और कहीं वस्त्र देकर तथा कहीं पर नौकरियों का लालच देकर खसिया जाति को ईसाई बना लिया। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इनका सिद्धान्त था। ईसाई पादरियों को मनचाही धनराशि इंगलैंड, अमेरिका तथा फ्रांसादि देशों से ईसाई धर्म के प्रचार के लिए प्राप्त होती थी, जिसके आधार पर ये पादरी विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे और इसाई धर्म का प्रचार करते थे। भारत की भोली-भाली और विदेशी शासन के कारण शोषित और पीड़ित जनता को गुमराह करते थे। दस लाख में से केवल दस हजार ही खसिया हिन्दू शेष रहे थे, और सबने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। ये ईसाई भारतवर्ष के लिए एक बड़ा अभिशाप हैं। यहां पर मूर्तियों को खंडित किया गया, उन्हें तोड़ कर अपमानित किया गया और मन्दिरों को गिरा कर उनके स्थान पर गिर्जे बनाए गए। कहीं-कहीं पर मन्दिरों का रूपान्तर करके गिर्जे बनाए गए। कोई हिन्दू साधु महातमा अथवा पण्डित खुले-आम हिन्दू शास्त्रों की न कथा कर सकता था और न किसी प्रकार का भाषण दे सकता था। कहीं-कहीं किसी-किसी मन्दिर में हिन्दू धर्म की चर्चा हुआ करती थी अथवा कोई धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने निवास-स्थान पर व्यक्तिगत रूप से कथा या भाषण करवा लेता था। एक मारवाड़ी व्यापारी ने महाराजजी के भाषण का प्रबन्ध एक मन्दिर में करवाया था। उन्होंने भागवत के एकादश स्कंध की कथा की थी। इससे लोगों ने बड़ा लाभ उठाया किन्तु श्रोतागणों की संख्या कम ही आती थी। खसिया जाति के लोगों के घरों में प्रायः भागवत-पुराण की कथा हुआ करती थी। यहां का सब व्यापार मारवाड़ियों के हाथ में था। ये लोग बड़े धनवान थे किन्तु यहां की जनता बड़ी निर्धन तथा दरिद्र थी।

यहां पर पिता की उत्तराधिकारिणी छोटी लड़की होती है। व्यापार तथा दुकानदारी प्रायः स्त्रियां करती हैं। कहीं-कहीं पर सप्ताह में एक नियत दिन पर विशेष बाजार लगाया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार की उत्तम और सुन्दर वस्तुएं बिकने के लिए आती हैं। खरीदने वालों की बड़ी भीड़ लग जाती है। एक प्रकार का मेला-सा लग जाता था। यहां पर लड़कियां अपना वर स्वयं चुनती हैं। प्रायः फुटबॉल के मैचों में यह कार्य सम्पन्न होता है। इन मैचों का यहां पर बड़ा रिवाज है।

पुनः कलकत्ता गमन

मूलराज जी कलकत्ते में दुर्गापूजा का उत्सव महाराजजी को दिखाना चाहते थे। यह उत्सव वहां पर बड़ी धूम-धाम से तथा समारोहपूर्वक मनाया जाता है। ये वहां जाने के लिए बहुत उत्सुक न थे क्योंकि वहां पर इन्हें योगाभ्यास के लिए कहीं एकान्त स्थान न मिलता था। वहां इन्हें काहनचन्दजी के परिवार में ही रहना पड़ता था। सेठ मूलराज के यह विश्वास दिलाने पर कि वहां एक एकान्त-स्थान में एक कमरा किराए पर ले लिया जाएगा, ये कलकत्ता जाने के लिए तैयार हुए। कलकत्ता पहुंच

कर खिङ्गरापट्टी के पास एक मकान किराए पर लिया गया। इस बार सारा शीत-काल महाराजजी ने कलकत्ता में ही व्यतीत किया या नदिया-शान्ति में।

बुरे स्थान का मन पर प्रभाव—नए किराए के कमरे में महाराजश्री ने प्रवेश किया। दैनिक ध्यान और अभ्यास के पश्चात् रात्रि में शयनार्थ अपने बिस्तर पर लेट गए किन्तु नींद नहीं आई और मन में बर्बस अवांछनीय विचार उत्पन्न होने लगे। बार-बार ऐसे विचार आकर तंग करने लगे जिनका इन्हें जागृत में तो क्या कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया था। इन विचारों से युद्ध करते-करते ग्यारह बज गए। ये तुरन्त अपने कमरे से निकल कर बाजार में चले गए। वहां जाते ही विचारों में परिवर्तन होगया और मन भी शान्त होगया। थोड़ी देर बाद पुनः कमरे में आकर सोने का प्रयत्न करने लगे, पर नींद नहीं आई। तब १२ बजे उठकर सेठ मूलराज की दुकान पर गए। नौकर को जगाकर उसे अपने कमरे से बिस्तर उठाकर लाने का आदेश दिया। उसके बिस्तर लाने पर दुकान पर ही सोए, तब नींद आई। व्यासदेवजी को इसका कारण समझने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगा। वे समझ गए कि इस कमरे में अवश्य ही कोई कुत्सित विचारों का व्यक्ति रहता होगा जो निन्दनीय कार्य करता होगा। उसके कुसंस्कारों तथा कुविचारों से उस कमरे का वातावरण दूषित हो रहा था और उन विचारों का प्रभाव इन पर पड़ रहा था। प्रातःकाल इन्होंने सारी स्थिति से सेठ मूलराज को अवगत किया और टेलीफोन से मालिक मकान से यह पूछने का आदेश दिया कि पहिले इस कमरे में कौन किराये पर रहता था। पूछने पर विदित हुआ कि इसमें एक वैश्या सात वर्ष तक रही थी। एक सेठ इसके पास आया जाया करते थे। यह कमरा उसके लिए छोटा था अतः उसने यह खाली कर दिया।

मनुष्य विचारों का पुतला है। उसके विचारों के अनुरूप उसका व्यक्तित्व बनता है। उसके विचारों पर दूसरे के विचारों का तथा वातावरण, परिस्थितियों और संगति का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के भले और बुरे विचार आकाश में मंडराते रहते हैं और लोगों को प्रभावित करते रहते हैं। सद्विचारों का अच्छा प्रभाव तथा असद्विचारों का बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। इसीलिए जप, तप, साधना तथा योगाभ्यासादि के लिए आध्यात्मिक रुचि के लोग प्रायः उत्तराखण्ड में जाकर निवास करते हैं क्योंकि हिमालय प्रदेश हजारों वर्षों से ऋषियों और मुनियों की तपोभूमि रहा है। इनकी विचारधाराओं से यहां के सारे वायुमण्डल तथा भूमि का एक-एक कण ओत-प्रोत है। उनकी आध्यात्मिक विचारधाराओं का प्रभाव उन पर पड़ता है और उनकी साधना में सहायक होता है। सदैव शुद्ध, स्वच्छ और पावन वातावरण में रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्री ब्रह्मचारीजी के प्रभाव से पद्मा को वैराग्य

लताकुंज में समाधि—श्री ब्रह्मचारीजी रविवार को कभी-कभी कम्पनी बाग में गंगा के किनारे सैर करने जाया करते थे। वहीं स्नानादि करके एक लताकुंज में समाधि में बैठा करते थे। कई घण्टे तक वहीं रहा करते थे। पद्मा ने बाग में समाधिस्थ अवस्था में दर्शन किये थे।

रानी साहिबा की सेविका का निवेदन—एक दिन श्री ब्रह्मचारीजी जगन्नाथ सड़क पर से अपने निवास स्थान पर जा रहे थे। एक देवी वहां आई, आगे बढ़ी और

प्रणाम करके निवेदन किया कि हमारी रानी साहिबा आपके दर्शन करना चाहती हैं। व्यासदेवजी ने उसे रानी साहिबा का परिचय देने के लिए कहा क्योंकि वे उसे जानते न थे। यदि वे दर्शनार्थ आना चाहती हैं तो मुझे मेरे निवास स्थान पर मिलें, मैं खिड्गरापट्टी में रहता हूं। जब उस देवी से विदित हुआ कि वे कहीं बाहिर नहीं जाती हैं तब इन्होंने कहा, "मैं भी किसी अज्ञात देवी को दर्शन देने उसके मकान पर नहीं जाता।" वह निराश होकर चली गई। २-४ दिन के पश्चात् वही देवी ब्रह्मचारीजी को पुनः उसी मार्ग पर मिली और प्रणाम करके निवेदन किया कि रानीजी ने हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना की है कि आप उनके निवास स्थान पर भोजन करने की कृपा करें।

व्यासदेवजी—नहीं, मैं किसी भी अपरिचित के मकान पर वास्तव में कभी भोजन करने के लिए नहीं जाता। अतः क्षमा करें।

देवी ने कहा—सन्तों और महात्माओं के लिए भला परिचय करने-कराने की क्या आवश्यकता है? जो उन्हें श्रद्धा और भक्ति से अथवा प्रेम से भोजन करवाए उसीका भोजन उन्हें दया की भावना से स्वीकार करना चाहिए।

व्यासदेवजी—रानीजी का आपसे क्या सम्बन्ध है?

देवी ने कहा—मैं उनकी सेविका हूं।

व्यासदेवजी—वे इतना आग्रह कर रही हैं? क्या वे मुझे पहिले से जानती भी हैं?

सेविका—महाराज! उन्होंने आपके दर्शन किए हैं।

व्यासदेवजी—यदि पहिले दर्शन किए हैं तो अब भी मुझे मिलने आ सकती हैं, जहां मैं निवास करता हूं।

सेविका—आजकल वे कुछ अस्वस्थ सी हैं, अतः उनका आना नहीं हो सकता। आपही वहां पधारने की कृपा करें।

व्यासदेवजी—अच्छा! चलो, चलते हैं। जो होगा देखा जाएगा।

रानी की अवस्था के कारण दर्शनार्थ आने में विवशता पर व्यासदेवजी को दया आगई और उस सेविका के साथ रानी के निवास स्थान के लिए चल दिए। सेविका इन्हें एक गली में ले गई और एक मकान की दूसरी मंजिल पर लेकर चढ़ गई तथा एक छोटे से कमरे में बिठा दिया। यह कमरा बड़ा सुसज्जित था। इसकी सजावट एक मन्दिर के समान थी। श्रीकृष्ण भगवान् की एक मूर्ति यहां पर रखी हुई थी। उसके समक्ष पूजा की सब सामग्री रखी हुई थी। सेविका ने उस कमरे में प्रवेश करते ही बिजली जला दी और एक आसन पर इन्हें बिठा दिया। वह रानी साहिबा को बुलाने चली गई और सीढ़ियों का दरवाजा बाहिर से बन्द कर गई। ये १५-२० मिनट तक तो प्रतीक्षा करते रहे, जब वहां कोई भी नहीं आई तो इन्होंने 'देवी' कहकर जोर से पुकारा। इतने में ही पास वाले कमरे से आवाज़ आई, "महाराज, ठहरिए, मैं अभी आ रही हूं।" लगभग आध घण्टे के बाद वे आईं। प्रणाम करके ईषत् हास्य किया और आसन बिछाकर कमरे के बाहिर दरवाजे के पास बैठ गईं। इन्होंने बहुत अधिक शृङ्गार किया हुआ था। व्यासदेवजी इसके हाव-भाव को देखकर चकित हुए और

कुछ घबराए भी। इन्हें यह सदाचारिणी महिला नहीं दिखाई दी। सदाचार के कोई चिह्न उसमें नहीं थे। इसकी आयु लगभग तीस साल की होगी। उससे पूछने पर व्यासदेवजी ने उसके जीवन-वृत्त से परिचय प्राप्त किया। उसका जीवन उत्थान और पतन, चढ़ाव और उतार, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष, आत्मक्षोभ और आत्मग्लानि की एक लम्बी कहानी थी। यह एक राजकुमारी थी और राजा के साथ ही इसका पाणिग्रहण हुआ था। राजसी ठाठ-बाठ में इसका लालन-पालन हुआ था और श्वसुर गृह में भी बड़े ऐश्वर्य के साथ विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किया था। यह सौन्दर्य तथा लावण्य की साक्षात् प्रतिमा थी। किन्तु दुर्दैव को इसका सुख, इसका ऐश्वर्य और इसकी विलासिता फूटी आंख भी न भाई और उसके ऊपर एक महान् वज्रपात कर दिया। जब वह केवल २० साल की ही थी तभी उस पर वैधव्य का महान् संकट आ पड़ा। दैव उसके हास्य को सहन नहीं कर सका। उसने इसे रुलाया और ऐसा रुलाया कि आजीवन उसके आंसू सूख नहीं सके। वैधव्य हिन्दू समाज पर एक बड़ा कलंक है। हमारे देश में आज भी विधवाओं की कैसी दुर्दशा है, यह किसी से छिपी नहीं। विधवा का समाज में कोई स्थान नहीं। उसके अपमान की कोई सीमा नहीं। विधवा रानी हो या रंक, कुलीन हो या अकुलीन, शिक्षित हो या अशिक्षित, उसके लिए परिवार में तथा समाज में कहीं भी स्थान नहीं है। यही स्थिति इस रानी की थी। राजपरिवार में से विधवा होते ही इसका सम्मान उठ गया। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी इसको खर्चा अप्राप्य था। सारा दिन काले कपड़े, जो राजघरानों में वैधव्य का चिह्न माना जाता है, पहिनकर एक कमरे में बैठे-बैठे रुदन करना ही एकमात्र इसका काम था। युवती थी, राजप्रासाद में पली होने के कारण पर्दे में रहती थी। कभी किसी प्रकार का सत्संग करने का अवसर लाभ न हुआ था। धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से भी वंचित थी। किसी भी प्रकार का ज्ञान और विवेक उसमें न था। ऐसी विधवाओं के पतन में कुछ विलम्ब नहीं लगा करता। जब घर में उन्हें प्रेम, आश्वासन, सहारा तथा सान्त्वना नहीं मिलती तो जहां भी उन्हें ये चीजें प्राप्य होती हैं उधर ही झुक जाया करती हैं। पद्मा भी विधवा थी। दुःखी थी। अपमानित थी। उसे कहीं से भी राजपरिवार से प्रेम तथा सहानुभूति की आशा नहीं रही थी। अतः जहां उसे मनुष्यता का व्यवहार मिला, जहां उसे मानवता दिखाई दी, उधर ही वह लुढ़क गई। एक मारवाड़ी सेठ राजमहलों में अपने व्यापार के सम्बन्ध में आया जाया करता था। अन्तःपुर में भी उसकी गति थी। यह सेठ पद्मा को अपहरण कराके कलकत्ता ले आया। विधना का विधान ऐसा ही था। इसने उसके लिए एक मकान किराये पर ले दिया और बड़े सुख, आराम से उसे वहां रखा। विलासिता के सभी साधन उसके लिए जुटा दिए। किसी बात की कमी नहीं रखी। प्रतिमास हज़ार डेढ़ हज़ार रुपया वह पद्मा पर व्यय करता था। पर पद्मा इस पतन से सुखी न थी। वह पश्चात्ताप की भट्टी में अहर्निश जला करती थी। अपने आपको कोसती थी। आत्मग्लानि उसे खाए जा रही थी। इस निन्दनीय कर्म से वह दुःखी थी। यह जघन्य पाप सदा उसके सामने मुंह खोले खड़ा रहता था। भगवान् पतितपावन हैं। वे दीन-बन्धु और दयालु हैं। पतितों का उद्धार करने वाले हैं। उन्होंने पद्मा की पुकार को सुना। उस पर द्रवित हुए और इस पतिता का उद्धार करने के लिए अपनी विभूति के रूप में अखण्डब्रह्मचारी व्यासदेवजी को उसके पास

भेजा। इससे पूर्व ही ये सैकड़ों पतितों तथा पथभ्रष्टों का परित्राण कर चुके थे। पद्मा ने महाराजजी से अपनी आन्तरिक स्थिति का वर्णन किया और वहां से कहीं अन्यत्र चले जाने की इच्छा प्रकट की। इसने ब्रह्मचारीजी को कम्पनी बाग में एक लताकुंज में पीताम्बर धारण करके समाधिस्थावस्था में बैठे देखा था। उनके तपः पूत और तेजस्वी, और ब्रह्मवर्चस्वपूर्ण मुखारविन्द को देखकर वह बड़ी प्रभावित हुई। कुछ काल तक लताकुंज के पास खड़ी रही। बातचीत करना चाहती थी किन्तु ये समाधिस्थ थे अतः वह निराश होकर लौट गई। वह सेठ के साथ उस ओर भ्रमण के लिए गई थी। निवास स्थान पर पहुंचकर उसने अपनी सेविका को इनको आमंत्रित करने के लिए भेजा था। महाराजजी को किसी भी महिला का, चाहे वह परिचित हो अथवा अपरिचित, संपर्क पसन्द नहीं था। यूं तो किसी भी प्रकार का जन-संपर्क रुचिकर न था पर महिलाओं से तो वे कभी भी मिलते-जुलते न थे। यहां तक कि गोहाटी में दो संन्यासिनी देवियों के पास भी उन्हें ठहरने में अत्यधिक संकोच हुआ था। पद्मा के अत्यन्त आग्रह, अनुनय, विनय तथा अनेक प्रार्थनाओं के पश्चात् ही उन्होंने निवास स्थान पर जाना स्वीकार किया था। इन्हें समाधिस्थावस्था में देखकर पद्मा ने सेठ से कहा था, "देखो, यह तपस्वी युवक साधु कैसे एकान्त में समाधि लगाकर अपने प्रभु का स्मरण कर रहे हैं! इनको तो भक्ति के लिए एकान्त की आवश्यकता है किन्तु हम कामी कुत्तों को भी एकान्त चाहिए, भगवान् के भजन के लिए नहीं किन्तु अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए। धिक्कार है हमारे जीवन को, और धन्य हैं ये तपस्वी जो अपने तेज, तप, व्रत, साधना, ध्यान और योग से विश्व का कल्याण कर रहे हैं। हम पृथ्वी पर भार रूप हैं और इन्होंने पापों के भार से दबी पृथ्वी के भार को हल्का करने के लिए और हम जैसे पापियों के परित्राण के लिए अवतार लिया है।"

पद्मा में परिवर्तन--पद्मा ने जिस दिन से महाराजजी के दर्शन किए थे उसी दिन से उसकी अन्तरात्मा में एक महान् परिवर्तन का प्रारंभ हुआ था। तभी से उसको अपने जीवन से घृणा होगई थी। उसका एक-एक पाप और जघन्य कर्म उसके सामने भीषण रूप धारण करके भयानक नृत्य कर रहा था। उसको अपनी सुध-बुध नहीं रही थी। वह प्रकम्पित हो रही थी और पश्चात्ताप से जल रही थी। वह ब्रह्मचारीजी को अपने निवास स्थान पर पाकर अपने को धन्य मान रही थी और इसे अपने किसी प्राक्तन पुण्यकर्म का परिणाम समझती थी। लगभग एक घण्टा तक व्यासजी वहां ठहरे। संध्याकाल होगया था। यह अभ्यास का समय था अतः जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु पद्मा नहीं चाहती थी कि वे जाएं। उसने कहा, आप हाथ मुंह धो लीजिए और यहीं पर संध्या कर लीजिए। पर वे उठे और चलने को तैयार होगए, किन्तु सीढ़ियों का दरवाजा बन्द देखकर वापस बैठ गए। करते भी क्या, अन्य कोई चारा ही नहीं था। रानी ने हाथ जोड़कर उनके चरण स्पर्श करते हुए अश्रु-जल भरकर वहां से न जाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी को अब एक क्षण के लिए भी वहां ठहरना अच्छा नहीं लगा। वहां आने के विषय में उनको बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। रानी का ऐसा व्यवहार इनको बिल्कुल पसन्द न था। वे फिर उठ खड़े हुए। रानी ने कहा, दरवाजा बन्द है। सेविका के पास इसकी चाबी है। वह बाहर गई है।

अभी आती ही होगी। जब तक वह आकर दरवाजा खोलती है तब तक आप संध्या कर लें। महाराजजी पद्मा के आग्रह और दरवाजा बन्द करवाने को बड़ी सन्देहात्मक दृष्टि से देख रहे थे, किन्तु कुछ उपाय वहां से जाने का उन्हें नहीं सूझ रहा था, अतः वहीं पर ध्यान करने बैठ गए।

पतिता पद्मा के लिए भगवान् से प्रार्थना—महाराजजी जब ध्यान में बैठे तो सर्वप्रथम भगवान् से उसके उद्धार और उसके सुधार तथा परित्राण के लिए प्रार्थना की—"हे पतितपावन परमेश्वर ! आप इस पद्मा को सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे वह कुमार्ग का परित्याग करके सुमार्ग पर चले। दुराचार को छोड़े और सदाचारिणी बने। पतितावस्था से निकलकर सती-साध्वी बने। प्रेय मार्ग का परित्याग करे और श्रेय मार्ग पर चले। हे मेरे पूज्यदेव ! आपने पिंगला जैसी वैश्याओं का उद्धार किया है। क्या आप पद्मा का उद्धार न करेंगे ? हे अन्तर्यामिन् ! आपने बड़े-बड़े पापियों का परित्राण किया है, आप इस पतिता का भी परित्राण करो। हे वन्दनीय भगवान् ! आप पद्मा पर दया की दृष्टि करें। इसे पाप कर्म से हटाएं। अपनी भक्ति का दान इसे प्रदान करें। हे सर्वज्ञ ! आपने बड़ी-बड़ी पापात्माओं को तारा है। आप इस पद्मा को भी भव-पाश से मुक्त करो। हे सर्वदुःखहर्ता भगवान् ! आप इसके मलिन मन को शुद्ध करो। इसे अपनी भक्ति दो जिसके द्वारा यह पाप-कर्म से मुक्त हो जाए। हे सर्वाधार सर्वेश्वर ! मैं आपसे हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना करता हूं कि आप पद्मा को विलासिता के नर्क कुण्ड से निकालकर अपनी शरण प्रदान करें।"

पद्मा के घर पर १५ घण्टे तक निर्विकल्प समाधि—पद्मा के परित्राण के लिए उस करुणासिंधु दीनबन्धु और दयालु भगवान् से प्रार्थना करते-करते महाराजजी समाधिस्थ होगए। १५ घण्टे की समाधि का संकल्प कर लिया था क्योंकि रात्रि भर उस पतिता पद्मा के मकान पर रह कर जलकमलवत् निर्मल रहने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय था। पद्मा की पाप-वृत्ति में परिवर्तन करने का भी उद्देश्य था। उस महिला के मकान को महाराजजी अपने लिए एक कारागार समझ रहे थे। शीतकाल का समय था, अंधेरा होगया था और आठ बज चुके थे। इन्हें कुछ समय तो मन के संकल्प-विकल्पों के अभाव करने में लगा। इसके कुछ मिनट बाद ही सारा शरीर और मस्तिष्क शून्य होगया और जड़ता सी छा गई। सारा शरीर पर्वत के समान भारी होगया और इन्हें अपनी कुछ भी सुध-बुध न रही।

समाधि के प्रभाव से पद्मा के जीवन में परिवर्तन—महाराजजी ने एक पद्मा ही क्या सैकड़ों पतितों का परित्राण किया था, अज्ञान के गहन गर्त में गिरे हुओं को अपने अध्यात्म बल से पकड़कर उठाया था, पथभ्रष्टों की बांह पकड़कर उन्हें पथ पर चलाया था, सान्द्रान्धकार में डूबे हुए प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश दिखाया था, कर्तव्य-च्युत लोगों को कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ किया था। महाराजजी समाधिस्थ होगए। पद्मा अपने कमरे में चली गई। वहां जाकर इनके समाधि से उठने की उत्कट प्रतीक्षा करती रही। ये कृष्ण मंदिर में समाधि लगाकर बैठे हुए थे। वह बार-बार इस मंदिर में आकर उन्हें देखती रही। दो घंटे व्यतीत होगए किन्तु उनकी समाधि भंग न हुई। पद्मा को उन्हें समाधि से उठाने का साहस नहीं होता था। बड़ी भयभीत तथा व्याकुल और परेशान थी। रात्रि के दस बज गए, पर वे अभी तक समाधिस्थ थे। वह अब इस बात पर बड़ा

पश्चात्ताप कर रही थी कि उसने एक महापुरुष को कष्ट दिया है, एक महात्मा को संकट में डाला है। इस महानात्मा को मैंने अकारण ही दुःख दिया। इनके मुखारविन्द पर कैसा तेज और ओज है ! कैसी अलौकिक शान्ति इनके चेहरे से टपक रही है ! अपने प्यारे भगवान् में कैसे विलीन से हो रहे हैं ! महाराजजी को ऐसी लम्बी समाधि में देखकर उसे अपने कुकर्मों पर और अपने पतन पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने इस महान् सन्त को अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न किया था। इसके लिए उसे बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी और बार-बार अपने को धिक्कार रही थी। सेविका को भी अपनी स्वामिनी की यह बात पसन्द नहीं आई थी। वह भी उसे भला बुरा कह रही थी। आपने इस महात्मा को यहां रोककर इनके साथ बड़ा अन्याय किया है। वे जाना चाहते थे, उनको जाने देना चाहिए था। इनके दर्शन कर लेने के पश्चात् इन्हें रोकना बड़ी भारी भूल थी। फिर कभी जब दर्शनाभिलाषा होती तो आप इन्हें बुला सकती थीं और स्वयं भी इनके निवास स्थान पर जा सकती थीं। सेविका की इन बातों को सुनकर उसके पश्चात्ताप की अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया और अब वह फूट-फूटकर रोने लगी और सारी रात सिसकियां भरते हुए व्यतीत की। कभी मंदिर में जाती, कभी अपने कमरे में जाती। इसी प्रकार आतुरता तथा व्याकुलता में ताना-वाना बुनते प्रभात होगया। इस पश्चात्ताप की भट्टी में तप कर उसकी बुद्धि निर्मल होगई और उसने दृढ़ संकल्प किया कि अब वह कभी भी दुराचार का जीवन व्यतीत नहीं करेगी। प्रतिपल उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो महाराजजी से अध्यात्म की धाराएं निकल-निकल कर उसके हृदय में प्रविष्ट होकर उसका उद्बोधन कर रही हों, जगा रही हों, कुपथ से हटा रही हों, पाप के कूएं में से निकाल रही हों, पतिव्रत धर्म का संदेश दे रही हों और उसे अपने सर्व पापों को प्रायश्चित्त की अग्नि में दग्ध करके सन्मार्ग पर चलने का आदेश दे रही हों। उसके मन में महान् अन्तर्द्वन्द्व तथा संघर्ष हो रहा था। वह यह अनुभव कर रही थी जैसे उसे कोई बलपूर्वक पाप से खींच कर दूर ले जा रहा हो। वह घबरा रही थी। भयभीत थी। किंकर्त्तव्यविमूढ़ थी। उसके पाप भीषण रूप धारण करके उसके सामने आ रहे थे। उसे कल नहीं पड़ रही थी। चैन उससे कोसों दूर भाग गई थी। आत्मग्लानि उसके समक्ष मुंह खोले खड़ी थी। अब उसे सेठ से अत्यन्त घृणा होगई। इसी ने उसे राजमहल से निकलवाया था और कलकत्ता ले आया था। यह उसे बार-बार कोस रही थी। पाप से कमाए धन और विलासिता की सामग्री से तथा सेठ से अब उसका मन फिर गया। वह एक-एक वस्तु को उठा-उठाकर फेंकने लगी। प्रातः ६ बजे के लगभग इसने सेठ बृजमोहन को बुला भेजा। ये बड़े धनाढ्य व्यक्ति थे और इनकी दुकान वहां पर धर्मतल्ला में थी। ये राजस्थान के रहने वाले थे। इनके कोई सन्तान न थी। ये १० बजे पद्मा के निवास स्थान पर पहुंचे। इसने सारा वृत्त सेठजी को सुनाया। वे सुनकर चिन्ता में डूब गए। इन्होंने उसे बहुत समझाया बुझाया, अनेक प्रलोभन दिए, पर उसने एक न सुनी और जो कुछ भी धन-सम्पत्ति, वस्त्राभूषण उसके पास थे वे सब उनके सामने फेंक दिए। पद्मा की सेविका बार-बार महाराजजी को मंदिर में देखने जाती थी। लगभग ११ बजे इनका समाधि से व्युत्थान हुआ। सेविका ने तुरन्त जाकर इसकी सूचना पद्मा को दी। इसके नेत्रों से पश्चात्ताप और आत्मग्लानि के आंसू प्रवाहित हो रहे थे। वह सेठजी को लेकर मंदिर में गई और करुण क्रन्दन करती हुई महाराजश्री के चरणों

पर गिर पड़ी । सेठजी ने भी सम्मानपूर्वक इनके चरण स्पर्श किए । पद्मा को यह दृढ़ निश्चय होगया था कि योगीराजजी की कृपा से ही उसका उद्धार होगा, उसके सब पापों का प्रक्षालन हो जाएगा और उसको सन्मार्ग सूझेगा । जबसे ये मंदिर में समाधिस्थ हुए थे तभी से महाराजश्री की अध्यात्म-धाराओं के उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाने के कारण से उसे ऐसा अनुभव होने लगा था मानो उसके पापों का अन्त होगया है। उसने ब्रह्मचारीजी को नतमस्तक हो और हाथ जोड़कर विश्वास दिलाया कि अब वह कभी पाप-कर्म नहीं करेगी और दुराचार से बचेगी । पतिव्रत-धर्म का पालन करेगी, सदाचारपूर्वक रहेगी, और अपना शेष जीवन भगवद्भक्ति तथा भगवदाराधना में व्यतीत करेगी । सेठजी बड़े दु:खी थे, चिन्तित थे और व्याकुल थे । उन्हें अपना सारा खेल बिगड़ता हुआ दीख रहा था । वे समझते थे कि महाराजजी ने पद्मा पर कोई जादू कर लिया है जिससे इसकी मनोवृत्ति में महान् अन्तर आ गया है, उसके मन की दशा और से और ही होगई है । इन्होंने विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई बात नहीं हुई है । पद्मा ने ही इन्हें धोखा देकर बुलाया था । इनका उससे कोई परिचय नहीं था । दर्शन के निमित्त उसने बुलाया । बाहर से सारे दरवाजे बन्द कर दिए । यहां से भागने का प्रयत्न किया किन्तु जाते कैसे, कोई दरवाजा खुला नहीं पाया । मुझे तो इसने एक प्रकार से कैद कर लिया था । पारब्रह्म परमात्मा ही मेरे उस समय रक्षक थे । मैं आठ बजे से ही समाधि में बैठ गया था और अभी ११ बजे के लगभग समाधि से उठा हूं । मैं १९ घण्टे से पद्मा के बन्दीगृह में रहा, अब मैं शीघ्र ही इससे मुक्त होना चाहता हूं। पद्मा ने तुरन्त हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराजजी, मैं भी आपके साथ चलूंगी और अब आपके समान ही साधु बनकर भगवान् की भक्ति करूंगी । मैंने कई वर्षों से बड़ा निन्दनीय जीवन व्यतीत किया है । मुझे अब अपने इस जघन्य जीवन से अत्यन्त घृणा होगई है । मुझे अब गंगाजी में डूबकर प्राण त्याग देना स्वीकार है किन्तु दुराचार का जीवन नहीं । सेठजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया है। अब मैं इनके पास न रहूंगी। इन्होंने ही मेरा जीवन पतित किया है । अब मैं जहां भी आप जाएंगे वहीं आपके साथ जाऊंगी और आपकी शिष्या बनकर आपसे आत्म-ज्ञान प्राप्त करूंगी और आपकी सेवा करके पुण्य लाभ करूंगी ।"

नदिया शान्ति में पद्मा का प्रबन्ध—श्री महाराजजी ने पद्मा को बहुत समझाया कि तुम्हारा वैराग्य क्षणिक है । तुम भली प्रकार से विचार कर लो । साधु बनना बड़ा कठिन है । यह मार्ग बड़ा दुर्गम है । अहर्निश सजग और सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है । मैं ब्रह्मचारी हूं, किसी भी देवी को, चाहे वह पुत्री, शिष्या, बहन या माता बनकर ही क्यों न रहे, मैं सदा अपने साथ नहीं रख सकता ।

पद्मा—आप मुझे स्त्री न समझें। आप तो मुझे अपनी पुत्री व शिष्या समझें।

महाराजजी—१९ घण्टे पूर्व आपकी क्या भावना थी ? इतनी जल्दी आपकी भावना में कैसे परिवर्तन हो सकता है ? यदि परिवर्तन हो भी जाए तो इसका स्थायी और दृढ़ रहना अत्यन्त कठिन है ।

पद्मा—महाराजजी ! पिंगला वैश्या में भी तो एक रात्रि में ही परिवर्तन होगया था।

महाराजजी--पर मेरे साथ आपका रहना नितान्त असम्भव है।

पद्मा--तब मैं अपने प्राण गंगा के अर्पण कर दूंगी।

महाराजजी--आप गंगा में न डूबें। मेरी एक बात मान लें। इसमें आपका भी कल्याण है और मैं भी बन्धनमुक्त हो जाऊंगा। आप कुछ दिन नदिया शान्ति में जाकर तपस्या करें, जिससे आपके अन्तःकरण की शुद्धि हो जाए और वैराग्य में दृढ़ता आ जाए। तब हम आपको ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देकर मोक्ष का मार्ग बता देंगे। आपने कई वर्षों तक भोग और विलास का जीवन व्यतीत किया है। इसके संस्कार दूर होने में समय लगेगा। अभी आपके कथन पर हमें विश्वास भी नहीं होता है। आप भली प्रकार से विचार कर लो। शीघ्रता मत करो, क्योंकि "सहसा विदधीत न क्रियाम्।" शीघ्रकारिता से मनुष्य अनेक विपत्तियों से घिर जाता है और दुःख उठाता है। प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए, अतः आप अभी नवद्वीप में रहकर साधना करके देख लो।

सेठजी ने भी पद्मा के साथ नवद्वीप जाने की इच्छा प्रकट की किन्तु उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर चुकी थी। अब वह उनसे घृणा करती थी क्योंकि ये ही उसके पतन के प्रमुख कारण थे। महाराजजी ने उसे समझाया कि जब तक नवद्वीप में उसका कोई उचित प्रबन्ध न हो जाए तब तक वहां सेठजी का जाना आवश्यक है। जब वहां पर निवासादि की व्यवस्था हो जाएगी तब ये लौट जाएंगे। पद्मा ने सेठजी से किसी भी प्रकार की सहायता लेने से इन्कार कर दिया। इस बात की उसने प्रतिज्ञा करली थी कि यह सेठजी से एक पाई भी अब न लेगी। महाराज ने उसे समझाया कि पहले तुम सेठजी से रुपया पाप की भावना से लेती थी अब धर्म-दान की भावना से लेना, किन्तु वह किसी प्रकार भी इस बात पर राज़ी न हुई। महाराजजी के पास इतना रुपया न था कि वे इसके व्यय का भार जीवनपर्यन्त निभा सकते। सेठजी से वह लेना नहीं चाहती थी और महाराजश्री के पास था नहीं। बड़ी समस्या उपस्थित होगई। पद्मा भीख मांग कर तथा मजदूरी करके निर्वाह करने के लिए उद्यत थी किन्तु सेठ से सहायता लेना नहीं चाहती थी। यहां तक कि नदिया शान्ति जाने के मार्ग व्यय के लिए भी महाराजजी से ही प्रार्थना कर रही थी। महाराजजी, सेठजी तथा पद्मा तीनों नदिया शान्ति पहुंच गए और भजनाश्रम के पास एक धर्मशाला में ठहर गए। महाराजजी ने मूलराजजी को पद्मा की सब व्यवस्था करने के लिए बुला लिया। यह गंगा के किनारे एक फूस की कुटिया बनवा कर रहना चाहती थी। किन्तु उस युवती के लिए यह उचित नहीं समझा गया। सभी किसी अधिक सुरक्षित स्थान पर उसके रहने के प्रबन्ध की चिन्ता में थे। मूलराज ने पद्मा को अपनी गुरुबहिन समझ लिया था और इसलिए उसकी सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। उन्होंने इसके लिए सब आवश्यक सामान खरीदा। अब पद्मा में महान् परिवर्तन होगया था। अत्यन्त साधारण मोटे वस्त्र पहनना प्रारम्भ कर दिया। गंगा के किनारे एक बंगाली महात्मा के आश्रम में उसके रहने की व्यवस्था कर दी गई। अब पद्मा रानी साहिबा नहीं थी, अब वह एक तपस्विनी और भक्ता बन गई। सेठ

बृजमोहन इस परिवर्तन से बड़े दुःखी थे। उन्होंने इसे बड़े सुख तथा ऐश्वर्य से रखा था। कभी ये रानी थी। सेविकाएं इनकी सेवा करती थीं। किन्तु आज यह एक भिखारिन बन गई थी। उनका दुःख स्वाभाविक ही था।

सेठ बृजमोहन को उपदेश—संसार में सुख और दुःख मनुष्य के मन की भावना पर निर्भर है। एक व्यक्ति जिसे सुख समझता है दूसरा उसे दुःख समझता है। एक पदार्थ एक व्यक्ति के लिए सुख का हेतु होता है, वही दूसरे के लिए दुःख का हेतु बन जाता है। पद्मा ने क्या त्याग किया है! केवल १४०० रु० मासिक छोड़कर ही तो विरक्त हुई है। किसी ने बलपूर्वक उसे विरक्त नहीं किया। स्वयं ही उसके हृदय में वैराग्य की उत्पत्ति हुई है और अपने वर्तमान जीवन से घृणा। उस अवस्था की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक ही सुख अनुभव करती होगी, फिर आप क्यों दुःखी होते हैं? आपने पद्मा से विवाह तो किया ही नहीं था। आप और वह कुछ अच्छा कर्म तो करते नहीं थे। उसने दुराचार के जीवन का ही तो त्याग किया है। आपको तो प्रसन्नता होनी चाहिए कि पद्मा की भगवान् के चरणों में अनन्य भक्ति उत्पन्न हो गई है। आप दोनों का पारस्परिक व्यवहार बड़ा निन्दनीय था जिससे आपकी समाज में बड़ी निन्दा थी। आप भी पद्मा के समान अपने कुकर्मों पर पश्चात्ताप करें और उसी के समान विरक्त होकर शेष जीवन यापन करें। आप धनवान् हैं। सन्तान आपके कोई है नहीं। दान-पुण्य की ओर आपकी प्रवृत्ति नहीं। फिर व्यापार द्वारा और अधिक रुपया कमाकर क्या करोगे? आज तक जो पाप किए हैं, यहां नदिया में बैठकर उनका पश्चात्ताप करो। अब वार्धक्य ने आपको घेर लिया है। अपने पाप कर्मों पर पश्चात्ताप करो और सदाचारी बनो। इस पुण्यधाम में रहकर भगवद्भजन करो। सेठजी बड़े लज्जित हुए, आत्मग्लानि हुई और पश्चात्ताप भी किया, किन्तु महाराजजी से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि वह पद्मा के समान तुरन्त घर छोड़कर नहीं आ सकते। बड़ा भारी कारोबार है। उसको नौकरों के हाथ में छोड़कर यहां आ गया हूं। उसकी सारी व्यवस्था किए बिना यहां ठहरना उचित नहीं है। फिर मुझे यह भी अभी निश्चय नहीं है कि पद्मा की तरह मेरा भगवद्भजन में मन भी लगता है या नहीं। अभी मैं १०-१५ दिन कलकत्ता रहकर फिर आऊंगा।

पद्मा का नवद्वीप में निवास—लाला मूलराज ने पद्मा के लिए एक पर्णकुटी गंगा के किनारे बंगाली भजनाश्रम के पास बनवा दी थी। मूलराजजी पद्मा को अपने साथ ले जाकर वहां छोड़ आए थे। वहां पर और भी दो-तीन देवियां रहती थीं जो भजन और कीर्तन किया करती थीं। इनमें से एक देवी ने पद्मा का भोजन बनाना स्वीकार कर लिया था। अब यह अपनी कुटिया में बैठकर अहर्निश भगवान् का भजन करने लगी। मूलराजजी ने ४०० रुपये बंगाली भजनाश्रम के बड़े अधिकारी के पास पद्मा के व्यय के लिए जमा करवा दिए थे और उनसे कह दिया था कि उसे आवश्यकता अनुसार वस्तुएं बाजार से मंगवा दिया करें। पद्मा का सारा उत्तरदायित्व इन्होंने अपने ऊपर ले लिया था।

पद्मा के लिए श्री महाराजजी का उपदेश—पद्मे! यह मानव जीवन बड़ा अमूल्य है। यह बड़े पुण्य कर्म से लाभ होता है। तुमने अब तक इसे भोग और

विलास का साधन बनाया हुआ था। भोग बुद्धि तो पशु-पक्षियों में भी होती है। कहा भी है कि :—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च
समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

जब खान, पान, निद्रा और भय आदि मनुष्य और पशुओं में समान रूप से हैं तो फिर इन दोनों में अन्तर ही क्या हुआ ? वास्तव में जो भगवद्भक्ति, सदाचार, धर्म और पुण्य से विहीन है वह नर पशु तुल्य है। यही तो मनुष्य की विशेषता है और यही उसको पशुओं से पृथक् करती है और इसी कारण से मनुष्य मनुष्य कहलाता है। इसी विशेषता को तुमने अब तक ताक पर रखे रखा था। अब शेष जीवन में इस विशेषता को तुम्हें प्राप्त करना है। मानव देह का उद्देश्य यही है। अब तुम गत जीवन की सब स्मृतियों को भूल जाओ। उनका स्वप्न में भी कभी ध्यान मत करो। तुम अब पतिरूप में भगवान् की आराधना करो। उनकी सर्व-व्यापकता में विचरण करो। वही भव-पाश से मुक्त करने वाले हैं। संसार नाशवान् है। विषय अनित्य हैं। भोग और विलास पतन की ओर ले जाने वाले हैं। मृत्यु के समय ये सब छूट जाते हैं। मरने पर सभी भोग-सामग्री छोड़कर परलोक गमन करना पड़ता है। मनुष्य बाल्यकाल खेल-कूद, यौवन विषय-भोग, वार्धक्य रोग में व्यतीत कर देता है, इसीलिए अन्तकाल में दुःखी होता है, रोता है और विलाप करता है। भोगेच्छा कभी स्वतः शान्त नहीं होती। एक भोग दूसरे भोग को जन्म देता है। भोग कभी पूरे नहीं होते हैं। जितना उन्हें भोगा जाता है उतना ही वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वृद्धनृप ययाति ने अपनी भोग-तृष्णा को शान्त करने के लिए अपने पुत्र से उसका यौवन मांगा था। अपनी सारी आयु भोग-विलास में व्यतीत की, फिर भी शान्ति प्राप्त न होने के कारण अपने पुत्र का यौवन मांगा और फिर भी भोगों के प्रति उसकी तृष्णा शान्त नहीं हुई। मनुष्य का शरीर जर्जरित हो जाता है किन्तु "तृष्णैका तरुणायते।" मनुष्य बूढ़ा हो जाता है पर उसकी तृष्णा सदा युवती रहती है, इसीलिए स्वामी शंकराचार्यजी महाराज ने कहा है कि :—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डम्,
दशन-विहीनं जातं तुण्डम्॥
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्,
तदपि न मुंचत्याशा पिण्डम्॥

देवि ! भोगों की समाप्ति नहीं होती, मनुष्य स्वयं ही समाप्त हो जाता है। एक न एक दिन मृत्यु आएगी, उस समय ये विषय विवश होकर छोड़ने पड़ेंगे। जब कोई वस्तु छीनी जाती है तो महान् दुःख होता है, किन्तु यदि स्वतः ही उसका परित्याग कर दिया जाए तो दुःख नहीं होता है। चोर धन चुरा कर ले जाता है तो बड़ा कष्ट होता है और यदि उस धन को स्वयं दान कर दिया जाता है या किसी शुभ-कार्य में लगाया जाता है तो प्रसन्नता होती है। कोई हाथ से छीने तो कष्ट, किन्तु स्वयं दे दो तो कष्ट नहीं होता। इसलिए विषय-भोगों को स्वयं ऐसे छोड़ देना चाहिए जिस

प्रकार से सर्प अपनी केंचुली को छोड़ देता है। उसकी केंचुली को कोई खींचकर उतारे तो उसको दुःख होता है और वह काटने को दौड़ता है किन्तु जब वह स्वयं उसको अपने शरीर से उतार कर फेंक देता है तो उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। तुमने स्वयं इन विषय भोगों पर लात मारी है। यह तुमने बड़ा शुभ कार्य किया है। अब तुम प्रण करो कि जिसका तुमने विष्टावत् परित्याग कर दिया है उन विषयों की कभी इच्छा न करोगी। थूक कर चाटने का जघन्य कार्य करने का कभी स्वप्न में भी ध्यान न करोगी। सांसारिक भोगों को भोगकर कभी कोई आज तक तृप्त नहीं हुआ। केवल सन्तोष कर लेने से ही तृप्ति होती है। सन्तोष ही परम धन है और जो सन्तोषी है वह सदा सुखी है। जन्म-जन्मान्तरों में अनेक बार विषयोपभोग किया है। उनसे जब अब तक तृप्ति नहीं हुई तब अब तृप्ति होने की क्या आशा हो सकती है! संसार में वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो कीर्तिमान् तथा यशस्वी है। अपकीर्ति के जीवन से तो मरना ही उत्तम है। भगवान् के साथ अपना संपर्क बढ़ाओ। उनके सन्निधान से अन्तःकरण के सब मल क्षीण हो जाएंगे। तुम जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाओगी। अहर्निश भगवान् का भजन करो। उसके चरणों में आत्म-समर्पण करो। यह देह प्रभु का मंदिर है। सर्वव्यापक भगवान् हमारे हृदयों में भी विराजमान हैं। इसलिए इसे सदैव शुद्ध और पवित्र रखो। जिस प्रकार से घर में बुहारा लगाकर सफाई की जाती है उसी प्रकार से तुम अपने अन्तःकरण में ज्ञान का बुहारा लगाओ और सारे विषय-भोग, कषाय, कुसंस्कार झाड़कर बाहर फेंक दो जिससे यह निर्मल हो जाए और तुम उस दीनबन्धु, दयालु, करुणासिंधु भगवान् के समीप पहुंच सको। इस बात को सदा स्मरण रखो कि वे निर्बल के बल, निर्धन के धन, निराश्रितों के आश्रय और असहायों के परम सहायक हैं। तुम अपना सारा उत्तरदायित्व उनपर छोड़कर सुखी और शान्त हो जाओ। निर्भय होकर विचरो और किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम मीरा बनो। जानती हो मीरा ने राजसी धन-दौलत, सुख-समृद्धि और वैभव, और गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का परित्याग करके अपने गिरिधर को पाने के लिए वृन्दावन की कुंज गलियों में "मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई रे प्रभु" का गायन करना अधिक मंगलमय माना था। उसने वृन्दावन की गलियों, लताओं, कुंजों में, वन और पर्वतों पर फिर-फिरकर अपने गोविन्द को खरीद लिया था। जानती हो कैसे? अपने त्याग और भक्ति के बल से। तुम भी ऐसा ही करो। तुम अवश्य भगवद्-कृपा प्राप्त करोगी। भगवान् तुम पर अवश्य कृपा करेंगे।

महाराजजी तथा दोनों सेठों का प्रति सायंकाल पद्मा से मिलना—श्री महाराजजी, सेठ मूलराज तथा सेठ बृजमोहन नित्य सायंकाल पद्मा से मिलने जाया करते थे। पद्मा ने महाराजजी से निवेदन किया कि वे सेठ बृजमोहन को अपने साथ न लाया करें। महाराजजी ने पूछा, इनके आने में तुम्हें क्या आपत्ति है? उसने पुनः निवेदन किया कि गत सात-आठ वर्ष से इनका और मेरा सम्बन्ध रहा है। मुझे सन्देह है कि ये पुनः मेरे ऊपर डोरे डालने प्रारम्भ कर देंगे क्योंकि वैराग्य मुझे हुआ है इनको नहीं। आपके सामने ये कुछ नहीं कहते पर आप तो नवद्वीप में सदा रहेंगे नहीं, इसलिए मैं चाहती हूं कि इनका मेरे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहे। इनकी शुद्ध तथा पवित्र भावना कभी मेरे प्रति नहीं हो सकती। लोभ और मोह की जड़ें इनके अन्दर

बहुत गहरी गड़ी हुई हैं। इन्होंने ही मेरे जीवन को बर्बाद किया है अतः मैं नहीं चाहती कि ये मेरे समक्ष आएं। इस पर सेठजी ने न आना स्वीकार कर लिया किन्तु उसका कुल खर्चा भेजने के लिए आग्रह किया। उसने नाराज होकर कहा, "नहीं, मैं आपसे एक पैसा भी नहीं लेना चाहती।" महाराजजी ने आज्ञा दी कि तुम्हारे प्रति मातृ-भावना रखकर तो ये आ सकते हैं और तुम्हारे व्यय के लिए रुपया भेज सकते हैं। पद्मा ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा, इनमें इस भावना का उदय होना असंभव है। मैंने आपके दर्शन कम्पनी बाग में किए। मुझमें जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है यह सब महाराजश्री के चरणों की कृपा का ही परिणाम है। इन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इनके विचारों में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ। अतः मैं आपसे नतमस्तक हो प्रार्थना करती हूं कि आप इन्हें आज्ञा दें कि ये कल से यहां न आएं। आपके मार्ग-दर्शन के अनुसार जीवन यापन करने के लिए अब मैं कटिबद्ध होगई हूं। आपकी सब आज्ञाओं का पालन करूंगी। आप मेरे सच्चे पथप्रदर्शक गुरु हैं, पिता हैं। आपने मुझ पथभ्रष्टा को सुपथ पर लाकर खड़ा कर दिया है। पतन के गहन गर्त में से बाहिर निकाला है। मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके इस महान् ऋण से उऋण नहीं हो सकूंगी। आप मुझ पर इतनी कृपा और करें कि अपनी एक फोटो मुझे प्रदान करें और वर्ष में कम से कम एक बार अपनी इस अधम शिष्या तथा पुत्री की सुध अवश्य लेने की कृपा करें।

पद्मा का आश्रम में निवास तथा कार्यक्रम--पद्मा अब रात-दिन कीर्तन और भजन करती रहती थी और कीर्तन करते-करते उसकी आंखों से अश्रुधारा बह निकलती थी। केवल एक समय भोजन करती थी। वह भी थोड़ी-सी खिचड़ी, अन्य कुछ नहीं। अपना सब काम स्वयं करती थी। बड़ी सादगी से रहती थी। गंगा स्नान के अति-रिक्त कभी आश्रम से बाहिर न जाती थी। अब वह बहुत मितभाषिणी बन गई थी। अधिक संपर्क भी उसे अब पसन्द न था। घण्टों ही भगवान् कृष्ण की फोटो के सामने बैठी रहती थी। उसका कोमल शरीर अब मुर्झा गया था और कृश होगया था। तेल और साबुनादि सब लगाना छोड़ दिया था। खद्दर पहिनती थी। केवल दो जोड़ी कपड़े अपने पास रखती थी। तख्तपोश पर सोती थी और बहुत मामूली-सा बिस्तर उसके पास था। घी और दूध का बिलकुल परित्याग कर दिया था। उसके चित्त में भगवान् ने एकदम तप और त्याग की महान् भावना भर दी थी। ऐसा मालूम होता है कि यह पूर्व जन्म की कोई योगभ्रष्टा महिला थी जो वर्तमान जन्म में अपने शेष पाप-कर्मों के फल को भोगने के लिए आई थी। पाप-कर्म का भोग अब समाप्त हो गया था। इसी कारण से भोग और विलासिता के जीवन से एकदम घृणा होगई थी। भगवान् के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न होगया था और गुरु के प्रति पूर्णरूप से श्रद्धा और भक्ति की भावना जागृत होगई थी। रोते-रोते कहा करती थी, मुझ पतिता और दुराचारिणी को अपनाकर गुरुदेव ने मेरा परित्राण किया है। अपनी शरण में मुझे लिया है। मेरा उद्धार किया है। धन्य है ऐसे गुरुदेव जो मुझ जैसे सहस्रों पतित प्राणियों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। भगवान् ने अपना प्रतिनिधि बनाकर गुरुदेव को संसार में भेजा है। ये मेरे लिए तरन-तारन बनकर आए हैं। गुरुदेव के व्यक्तित्व, तप, त्याग, योग और ब्रह्मनिष्ठा ने मेरे ऊपर जादू का सा काम किया है। कम्पनी बाग

में समाधिस्थावस्था में केवल एक बार दर्शनमात्र से मेरे मन में महान् परिवर्तन हो गया है। मुझे अपने जीवन और कुकर्मों पर बड़ी घृणा होगई है। मेरा मन सेठ से बिल्कुल उपराम होगया था। मैं किसी ऐसे महात्मा की तलाश में थी जिसके सामने मैं अपनी व्यथा रख सकती। अपने मन को उनके सामने खोलकर रख देती और उनसे उपदेश ग्रहण करती। उनके समक्ष अपने पापकर्मों के लिए पश्चात्ताप करती। महाराजजी का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा था इसीलिए मैंने अपनी सेविकाओं के द्वारा उन्हें अपने निवास-स्थान पर बुलाया था। किवाड़ इसलिए बन्द करवाए थे कि कहीं महाराजजी मेरी व्यथा सुने बिना ही न चले जाएं। यदि ये उस दिन समाधिस्थ न होते तो न जाने मेरे उद्धार में और कितना समय लगता। इनकी समाधि ने मेरे जीवन में महान् परिवर्तन कर दिया। मैं इनके उपकार को कभी नहीं भूल सकती। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो भगवान् कृष्ण मेरे लिए गुरु का अवतार धारण करके आए हैं। कितना ही अच्छा होता कि मेरे भगवान्, मेरे गुरुदेव यहां नवद्वीप में रहते और मैं नित्यप्रति उनके चरणामृत का पान करके अपने मन में तिरोहित पाप की मलिनता का प्रक्षालन कर सकती, किन्तु उन्हें तो मुझ जैसे अनेक पतित प्राणियों का उद्धार करना है, केवल मेरे लिए यहां कैसे सदैव रह सकते हैं!

श्री महाराजजी का कलकत्ता आगमन—एक मास तक नवद्वीप में रहने के पश्चात् महाराजजी ने पद्मा से वहां से प्रस्थान की इच्छा प्रकट की और कहा, "देवि! तुम्हें भगवद्भक्ति का मार्ग बता दिया है। अब तुम इस मार्ग पर दृढ़ रहना, विचलित मत होना। ईश्वर-भक्ति ही जीवन का सार है। नर तन बड़े पुण्य से उपलब्ध होता है, इसे वृथा खोना महान् पाप है। हमारी बात को गांठ बांध लो। हमने समय-समय पर जो तुम्हें उपदेश दिए हैं उन्हें सदैव स्मरण रखना। हमने तुम्हें भगवान् के अर्पण कर दिया है। तुम इन्हीं की बनकर रहना। भगवान् की तुम पर विशेष कृपा है। इसीलिए तुम पतन के गहन गर्त में से निकल सकी हो। उन्होंने ही तुम्हारा उद्धार किया है। अपना सारा समय जाप, उनके नाम के संकीर्तन, भजन, ध्यान तथा प्रार्थना में व्यतीत करना। भगवान् से मिलने का प्रयत्न करो। वे बड़े भक्तवत्सल हैं, कृपा के सिन्धु हैं। श्रद्धा और भक्ति से उनकी उपासना करो। उन्हें पाने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यता नहीं। वे तुम्हारे पास हैं। तुम्हारे हृदय में विराज रहे हैं। पर इनके दर्शन के लिए दिव्य नेत्रों की आवश्यकता है, उनसे ही इनके दर्शन-लाभ होते हैं। तप, ज्ञान, ध्यान तथा भक्ति और उपासना से इन दिव्य नेत्रों की प्राप्ति होती है। अपनी इन्द्रियों को बहिर्मुख मत होने दो। उन्हें अन्तर्मुखी करो। भगवान् ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है किन्तु तुम इन्हें अन्तर्मुखी बनाओ। जब-जब ये बाहिर भागने के लिए प्रयत्न करें तब-तब तुम इन्हें खींचकर अन्तर्मुखी करो। देवि! तुमने कछुआ देखा होगा। जब उसके सामने कोई भय उपस्थित होता है तो वह अपने हाथ-पैरादि को समेट कर भीतर खींच लेता है और तब निर्भय होकर बैठ जाता है। उस समय कितने ही प्रहार किए जाएं पर उस पर कुछ असर नहीं होता। तुम्हें भी कछुए का अनुसरण करना चाहिए। जब तुम सारी इन्द्रियों को भीतर खींच लोगी और बाहिर नहीं जाने दोगी तो तुम निर्भीक होकर विचरोगी। संसार का कोई भी प्रलोभन तुम्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकेगा। कोई भी तुम्हें अपने श्रेष्ठ पथ से विचलित

न कर सकेगा। तुम अडिग रहोगी। प्रभु कृपालु हैं। तुम पर अमृत की वर्षा करेंगे और तुम परम धाम को जाओगी। सेठ मूलराजजी तुम्हें मिलते रहेंगे और तुम्हारे सारे व्यय का भार वहन करेंगे। ये तुम्हारे भाई हैं। मेरे शिष्य हैं। जब कभी कोई कठिनाई उपस्थित हो तो तुम निःसंकोच इनसे निवेदन करना, ये तुम्हारी समस्या को अवश्य सुलझाएंगे।"

पद्मा के नेत्रों से गुरुदेव के प्रति भक्ति और प्रेम की अश्रुधारा बह निकली और उसने अवरुद्ध कण्ठ से महाराजजी से निवेदन किया, गुरुदेव ! अपनी दासी की संभाल करने की कृपा करते रहें। मेरा जीवन-सूत्र आपके ही हाथों में है। इस जीवन नैया के खिवैया आप ही हैं। महाराजजी ! सागर गहरा है, उत्ताल तरंगें इसमें उठ रही हैं, तट दूर है, नाव मंझधार में है, मेरी भुजाओं में बल नहीं है, मैं इसे कैसे किनारे पर ले जाऊंगी। मेरे भगवान् ! मेरे गुरुदेव ! आप ही इसके चप्पू संभालें, आपके अतिरिक्त और कोई इसे पार नहीं ले जा सकता। जहां भी, महाराजजी ! मेरे देवता ! आप रहें मुझे सहारा देते रहना, मेरी सुध लेते रहना। कहीं ऐसा न हो कि भगवान् का दामन मेरे हाथ से छूट जाए। इसे बलपूर्वक पकड़े रहने के लिए बल और शक्ति आप ही से प्राप्त होगी। आप ही भगवान् ! मेरे बल हैं, शक्ति हैं, मुझ निर्धन के धन भी आप ही हैं और निराश्रित के आश्रय भी आप ही हैं। इस दासी की महाराजजी ! खबर लेते रहना और उपदेश लिखकर भेजने की कृपा करते रहिएगा।

सेठ बृजमोहन का संन्यास लेना—महाराजजी ने इन सेठजी से कलकत्ता जाने के बारे में पूछा। वे बड़े दुःखी हुए और निवेदन किया, महाराज ! मेरा तो बसा बसाया सारा घर उजड़ गया। मेरे लिए कलकत्ता अब उजाड़ तथा सुनसान बीहड़ वन के समान है। वहां जाकर अब मैं क्या करूंगा ! जिस पद्मा को मैं अपना समझे बठा था, जिस पर मैंने अपना तन, मन तथा धन न्योछावर कर दिया था, वह मेरे प्रति अब उदासीन होगई है। वह विरक्त होकर साधु बन गई है। उसे मेरा मुख देखना भी पसन्द नहीं। वह मुझ से बात तक नहीं करती। मेरा अब कलकत्ते में कौन है जिसके पास मैं जाऊं ! मैं भी अब सिर मुड़ाकर जोगी बन जाऊंगा। महाराजजी ने उनकी इस भावना की बड़ी प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया। नदिया में आने के पश्चात् पद्मा केवल चार साल तक जीवित रही। उसने पश्चात्ताप और तपश्चर्या से अपना सारा शरीर सुखा दिया था और अहर्निश भगवन्नाम स्मरण करती रहती थी। महाराजजी उसे पत्रों द्वारा अपने उपदेश भेजते रहते थे।

श्री महाराजजी का बनारस प्रस्थान

कलकत्ता में कुछ दिवस रहने के पश्चात् महाराजजी ने बनारस के लिए प्रस्थान किया। वहां पर पंडित ब्रह्मदत्त तथा शंकरदेवजी भोलानाथ के उद्यान में रहते थे। वहां पर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और साथ ही प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पंडित नारायणजी तिवारी से महाभाष्य का अध्ययन भी करते थे। तिवारीजी कचौड़ी गली में निजी तौर पर कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। ये क्वीन्स संस्कृत कालिज में प्राध्यापक थे। एक बार एक अंग्रेज़ अफसर इस कालिज का निरीक्षण करने आया। वह इनके व्यवहार तथा अध्यापनकार्य और पाण्डित्य से बड़ा प्रभावित हुआ। पंडितजी ने उनसे निवेदन किया कि मेरा घर बहुत दूर है, आने-जाने में समय की बड़ी हानि होती

है, अतः विद्यार्थियों को मेरे घर पर भेजने की व्यवस्था कर दी जाए। मैं वहीं उन्हें पढ़ा दिया करूंगा। अफसर महोदय ने उनके निवेदन को स्वीकार किया और विद्यार्थियों को उनके घर पर पढ़ने की आज्ञा दे दी। महाराजजी ने भी भोलानाथ के उद्यान में ही निवास करना प्रारंभ कर दिया और दूसरे विद्यार्थी जो कुछ पढ़ रहे थे वे ही ग्रंथ तिवारीजी से पढ़ने लगे। इस समय पं० ब्रह्मदत्त विद्यार्थियों को काशिका अष्टाध्यायी की द्वितीय वृत्ति पढ़ा रहे थे। इन्होंने भी उनसे यही पाठ सुनना प्रारंभ कर दिया। पं० ब्रह्मदत्तजी स्वयं तिवारीजी से नवाह्निक महाभाष्य पढ़ा करते थे, इन्होंने भी उनके साथ इस ग्रंथ को पढ़ना शुरू कर दिया। पं० टूण्डीराजजी वैशेषिक पढ़ाया करते थे। ये भी इनके पास इस ग्रंथ को पढ़ने जाते थे। इस प्रकार सारा दिन पठन का कार्यक्रम चलता रहता था।

पं० तिवारीजी की प्रेरणा—एक दिन तिवारीजी ने अध्यापन कराते समय श्री व्यासदेवजी को सलाह दी कि आप व्याकरण के शब्दजाल में क्यों फंस गए? आप अपना योग पथ इस कार्य के लिए क्यों छोड़ रहे हैं? मैं ३५ वर्ष से व्याकरण पढ़ा रहा हूं। शब्दाडम्बर के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगा। किसी प्रकार की मानसिक शान्ति व्याकरण से मुझे नहीं प्राप्त हुई। वृद्धावस्था मृत्यु की घण्टी बजा रही है पर व्याकरण के पठन-पाठन के अतिरिक्त मैं शान्ति प्राप्ति के लिए कुछ भी न कर सका। सारी आयु इस शब्दजाल में ही व्यतीत होगई, कुछ तत्त्व लाभ नहीं हुआ। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति, मन की शान्ति तथा मोक्ष-साधन के लिए योग ही यथार्थ मार्ग है। आप क्यों हीरे को छोड़कर कांच मणि के पीछे भाग रहे हैं? जाओ, आप हिमालय में जाकर योग-साधन द्वारा समाधि से लाभ उठाओ। हम लोग तो गहस्थी हैं। मोह-माया के जाल में फंसे हुए हैं। कहीं आ जा भी नहीं सकते। आप ब्रह्मचारी हैं, गृह तथा परिवार का आपने परित्याग कर दिया है। मोह और ममता से रहित हैं। आपने जो कुछ पढ़ लिया है यही पर्याप्त है। बात तो सारी पढ़े हुए को जीवन में चरितार्थ करने की है। आप जान-बूझकर व्याकरण के झंझट में क्यों फंस रहे हैं? व्यासदेवजी ने कहा, आप यथार्थ कह रहे हैं। किन्तु मैं एक साल तक और पढ़ना चाहता हूं। बस, गुरुमुख से पढ़ने का आप यह अन्तिम साल ही समझिए। मुझे यहां की जलवायु भी अनुकूल नहीं है। यहां की प्रचण्ड गर्मी बड़ी असह्य प्रतीत होती है। व्यासदेवजी ने बड़े परिश्रमपूर्वक पढ़ना प्रारंभ किया। सारा समय पढ़ने में ही लगाते थे। एक घण्टा भोजन बनाने में व्यतीत होता था। वह भी इन्हें बहुत अखरता था, इसलिए पास ही विद्यार्थियों के अन्न-क्षेत्र में भोजन करना प्रारंभ कर दिया। १५ मिनट में ही भोजन करके निवास स्थान पर आ जाया करते थे। कभी-कभी मणि-करण घाट पर स्नानार्थ जाया करते थे।

श्री महाराजजी का ठगे जाना—एक दिन की बात है। महाराजजी गंगा स्नान करके लौट रहे थे। इन्होंने पीताम्बर धारण किया हुआ था। गीली धोती कंधे पर डाल रखी थी और लोटा हाथ में था। इन्हें मार्ग में एक देवी मिली। इसकी आयु लगभग ३४-३५ वर्ष की होगी। इसने हाथ जोड़कर इनको भोजन के लिए निमंत्रित किया। इन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु उसके विशेष आग्रह से इन्होंने भोजन करना स्वी-कार कर लिया। वह इन्हें एक हलवाई की दुकान पर ले गई और उसे ब्रह्मचारीजी

को खूब मिठाई खिलाने का ग्रादेश दिया। जब ये भोजन करने बैठ गए तब उसने यह कहकर कि लोटे में जो गंगाजल है उसमें कुछ मिट्टी है, लोटा उठाया ग्रौर नल में से पानी लाने का बहाना करके चलती बनी। इन्हें प्यास लगी तो इधर-उधर ताकने लगे। बहुत प्रतीक्षा की किन्तु वह देवी लौटी ही नहीं। तब इन्होंने हलवाई से ग्राश्चर्य प्रदर्शित करते हुए पूछा, वह देवी पानी लेकर ग्रब तक नहीं ग्राई। हलवाई ने सहास्य कहा, महाराज ! ऐसी बातें तो यहां ग्राए दिन होती हैं। वह महिला ग्रब वापस नहीं ग्राएगी। ग्रापका लोटा चुराने के लिए ही उसने ग्रापको भोजन करवाने का जाल रचा था। व्यासदेवजी को बड़ा ग्राश्चर्य हुग्रा ग्रौर किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होकर खड़े रहे। हलवाई ने भोजन के दाम मांगे। ये देते कहां से ! उनके पास कुछ था ही नहीं, गंगा-स्नान के लिए ग्राए थे। साथ में रुपये बांधकर तो लाए नहीं थे। इन्होंने कहा, पैसे इस समय हमारे पास नहीं हैं। वास्तव में तो भोजन के दाम उस देवी को ही चुकाने चाहिए थे पर वह दाम तो क्या चुकाती मेरा लोटा ही ठगकर ले गई। ग्राप मेरी धोती ग्रपने पास रख लें। मैं ग्राज सायंकाल या कल दाम चुकाकर धोती ले जाऊंगा। हलवाई को इन पर विश्वास तथा भरोसा होगया ग्रौर इनकी सत्यता ग्रौर ईमानदारी का भरोसा करके इनकी धोती ग्रपने पास नहीं रखी ग्रौर कहा कि जब ग्राप स्नान करने ग्राएं तब दाम चुका देना।

ग्राम की दावत—एक दिन एक सेठ ने कई ब्रह्मचारियों को ग्राम खाने के लिए निमंत्रण दिया। श्री व्यासदेवजी भी इनमें सम्मिलित थे। सेठजी ने बनारसी ग्रामों के कई टोकरे मंगवाए। विद्यार्थियों ने खूब खाए। जब सब खाते-खाते ग्रघा गए तब सेठ ने कहा, जो विद्यार्थी ग्रब ग्राम खाएंगे उन्हें प्रति ग्राम चार ग्राना दिया जाएगा। ग्रामों के लालच में ग्राकर विद्यार्थियों ने खूब ग्राम खाए। सेठ ने ग्रब प्रति ग्राम एक रुपया देने के लिए कहा। जब विद्यार्थी पुनः ग्राम खाने लगे तब इन्होंने उन्हें समझाया कि ग्रधिक ग्राम खाने से बीमार होने की ग्राशंका है, ग्रतः ग्रब ग्राप लोगों को ग्रौर ग्रधिक लालच नहीं करना चाहिए। सेठ से भी निवेदन किया कि ग्राप लालच देकर ग्राम खिलाकर पुण्य के स्थान पर पाप कमा रहे हैं। ये सब ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं। ये यदि ग्रधिक ग्राम खा जाएंगे तो इनके रुग्ण हो जाने की संभावना है, ग्रतः ग्रापको जितने रुपये देने हों बिना ग्राम खिलाए ही दे दीजिए। इस प्रकार से ग्रापका पुण्य भी होगा ग्रौर ये लोग रोग से बचेंगे। ग्रापको भी ग्रामों पर खर्च नहीं करना पड़ेगा। इनकी बात सुनकर फिर सेठजी ने ग्राम खाने के लिए इनाम देना बन्द कर दिया।

रुग्णावस्था में धैर्य—बनारस में एक बनारसी साड़ियों की दुकान थी। यह पन्नालाल सालग्राम की थी। ये ग्रमृतसर-निवासी थे। ये व्यासदेवजी को जानते थे। बनारस में ग्राकर इनसे परिचय बहुत बढ़ गया था। लाला शिवसहायमल इन्हीं की मारफत ब्रह्मचारीजी के लिए रुपया भेजा करते थे। बनारस में भाद्रपद में मलेरिए का बड़ा प्रकोप हो जाया करता था। ग्रब भी इसमें कुछ कमी नहीं है। व्यासदेवजी पर भी इसका प्रहार हुग्रा। वे कई दिन तक भोलानाथ के उद्यान में ज्वर-पीड़ित रहे। साथी ब्रह्मचारियों ने इनकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की ग्रौर इलाज करवाया किन्तु जब किसी प्रकार भी ज्वर शान्त नहीं हुग्रा तब इन्हें रामकृष्ण मठ के हस्पताल में

भर्ती करवा दिया। वहां पर बड़ा अच्छा प्रबन्ध था। इलाज भी भली प्रकार से हुआ किन्तु ज्वर का प्रकोप वैसा ही बना रहा। सरसाम होगया। दिन-रात बेहोशी में पड़े रहते थे। अब डाक्टरों को इनके बचने की आशा नहीं रही। जिस वार्ड में असाध्य रोग के रोगी रहते थे इन्हें वहां पहुंचा दिया गया। वहां पर वे कई दिन तक संज्ञाहीन रहे। एक दिन एक जमादार वहां पर सफाई करने आया तो उसने व्यासदेवजी का कराहना सुना। उसने तुरन्त इसकी सूचना डाक्टरों को दी। पांच-छः डाक्टर फौरन आए और छः दिन के बाद व्यासदेवजी को होश आने पर बहुत प्रसन्न हुए। रोगी भी इन डाक्टरों को अपने पास खड़े हुए देखकर आश्चर्य में पड़ गए। डाक्टरों ने व्यासदेवजी को सान्त्वना दी और विश्वास दिलाया कि अब आप खतरे से बाहर निकल आए हैं। अब आपको औषध देना प्रारम्भ करेंगे और आप ठीक हो जाओगे। डाक्टर अब उन्हें ऊपर के कमरे में ले गए और विधिवत् उपचार करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् ज्वर जाता रहा। इन तीन माह की बीमारी से ये बड़े कृश होगए और शरीर शक्तिहीन होगया। धीरे-धीरे हस्पताल में कमरे के भीतर चलना फिरना प्रारम्भ कर दिया। शक्तिवर्धक ओषधियों के सेवन करने से थोड़ी शक्ति आनी प्रारम्भ होगई। डाक्टरों ने इन्हें बनारस से कहीं अन्यत्र जाने की सम्मति दी क्योंकि वहाँ का जलवायु इनके अनुकूल न था और उनका विश्वास था कि वहां ये स्वस्थ नहीं रह सकेंगे। परमात्मा की परम कृपा से महाराजजी ने स्वास्थ्य लाभ किया। डाक्टरों की सलाह के अनुसार अब ये सोचने लगे कि बनारस से कहां जाना चाहिए। इस शारीरिक दुर्बलता के कारण प्रथम बार इन्हें अपने घर तथा परिवार का स्मरण हो आया। देहाध्यास तथा पारिवारिक ममता के जागृत होने का यह पहला ही अवसर था। जब से गृह परित्याग किया था तब से कभी घर की स्मृति नहीं हुई थी। पर बहुत विचार करने के पश्चात् इन्होंने अपने घर जाने का संकल्प छोड़ दिया और अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। वहां जाकर मोतीराम की बगीची में ठहरे। अमृतसर का जलवायु इनके अनुकूल था। दो मास में ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लिया। लाला शिवसहायमल तथा अन्य परिचितों ने अपने घर पर ले जाने के लिऐ बहुत आग्रह किया किन्तु ये बड़े एकान्तप्रिय थे, अतः कहीं भी नहीं गए। २-३ मास में अमृतसर में स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात् हरिद्वार चले गए।

तीन मास तक हरिद्वार में निवास

हरिद्वार पधारकर महाराजश्री मोहन आश्रम में ठहरे। वहां पर बलदेवसिंह ने ब्रह्मचारियों के पढ़ने के लिए एक विद्यालय खोला हुआ था। किन्तु उनके देवलोक हो जाने के पश्चात् यह बन्द होगया था। इसका इन्हें बड़ा दुःख हुआ। यह स्थान बड़ा एकान्त था, अतः यहीं रहकर योग-साधना का कार्यक्रम बना लिया। ग्रीष्म ऋतु में सैकड़ों परिवार हरिद्वार में आया करते थे। महाराजजी नित्यप्रति घण्टाघर के सामने उपदेश दिया करते थे। आपके उपदेशामृत का पान करने के लिए वहां सैकड़ों नर-नारी एकत्रित होते थे और आध्यात्मिक लाभ उठाते थे।

सन्त रामदासजी का गृहस्थी के रूप में मिलाप——एक दिन ब्रह्मचारीजी कुछ सत्संगियों को उपदेश दे रहे थे। उस समय वहां एक सज्जन आए। अपनी पोशाक से ये पंजाबी मालूम होते थे। इनके साथ एक देवी तथा एक ७-८ वर्ष का बालक

था। ये सज्जन भीड़ चीरते हुए आगे आए और महाराजजी को दण्डवत् प्रणाम किया। ये बहुत देर तक ज़मीन पर से नहीं उठे। उपदेश में विक्षेप हो रहा था अतः कथा बन्द करके इन्होंने उसे उठाया, किन्तु ये उसे पहिचान नहीं सके। उस सज्जन ने स्वयं ही अपना परिचय देते हुए कहा, "महाराजजी! मैं वही पापात्मा रामदास हूं जो सप्त-सरोवर पर एक पैर पर खड़ा होकर तपस्या किया करता था। यह मेरे साथ वही रामप्यारी है जिसने मेरा लोक और परलोक बिगाड़ा है। आपने मुझे बहुत समझाया था कि रामप्यारी का मेरे पास अधिक काल तक रहना अनुचित है। लोकापवाद से डरना चाहिए। यदि उस समय मैं आपकी नसीहत और चेतावनी को मान लेता तो मेरी यह दशा न होती। यदि मैं कहीं अन्यत्र चला जाता अथवा इसका अपने पास आना बन्द कर देता तब मेरा यह पतन न होता। मैं कई दिन से आपके उपदेश सुन रहा हूं किन्तु अपने पाप से बड़ा लज्जित हूं, इसीलिए आपके समक्ष आने का साहस नहीं हुआ। परन्तु आज मुझसे रहा नहीं गया और इस भीड़ में आकर आपकी चरणवन्दना की। पहिले आप मेरे चरण छूआ करते थे, आज मैंने आपको दण्डवत् की है। आप तो तपस्या करते-करते उन्नति के शिखर पर पहुंच गए। महान् योगी, सिद्ध पुरुष तथा विद्वान् वक्ता बन गए। किन्तु एक मैं हूं जो पतन के गहन गर्त में पड़ा हूं। मुझे बड़ा दुःख है कि भीमगोडे आकर आपने जो मुझे उपदेश दिया था और मेरी जो भर्त्सना की थी उस पर मैंने उस समय ध्यान नहीं दिया। मैं अब अपने जीवन को बहुत धिक्कारता हूं। मैं स्वर्ग को लात मार इस घोर नरक में पड़ा हूं। मेरी मानसिक कमज़ोरी का रामप्यारी ने अनुचित लाभ उठाया है। मेरे कारण साधु-समाज कलंकित हुआ है। मुझे सब लोग अब घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कई सन्त तो सामने आकर मुझ पर गालियों की बौछार करते हैं। आज अपने इन पापों का अन्त करूंगा। पतितपावनी इस गंगा ने ही मुझे ठुकराया था। वही आज मुझे अपनी गोद में बिठाकर पार करेगी। बातें करते-करते उसकी आंखों से अनवरत अश्रुपात होने लगा। इन शब्दों के साथ वे गंगा में कूद गए और तैरकर परले पार चले गए। रामप्यारी ने २-३ मास तक उनकी खोज की। जब कहीं भी उनका कुछ पता न चला तब अपने लड़के को साथ लेकर वापस पेशावर चली गई किन्तु रामदास ने अपने पाप का घनघोर प्रायश्चित्त किया। पश्चात्ताप की भट्टी में अपने पापों को जला देने का प्रयत्न किया। कृपासिंधु और दयालु भगवान् से अपने पापों के लिए क्षमा याचना की और पूर्ववत् तप और भक्ति में लीन होगए और अब वे पुनः सन्त रामदास बन गए।

काश्मीर प्रस्थान

ज्येष्ठ मास का प्रारंभ था। हरिद्वार में ज़ोरों की गर्मी पड़ने लगी थी। इसलिए महाराजजी ने अमृतसर होते हुए काश्मीर जाने का निश्चय किया। रावलपिंडी में उन दिनों स्वामी विशुद्धानन्दजी रामबाग में ठहरे हुए थे। ये ब्रह्मचारीजी के सुपरिचित थे। इनके कई-कई दिन समाधिस्थ रहने की बातें ये प्रायः लोगों से किया करते थे। इनकी योगसाधना से ये बड़े प्रभावित थे। सत्संग के अभिप्राय से योगीराज भी इनके पास ही रामबाग में ठहर गए। इन्हीं के साथ ये भी योगी अमरनाथजी के मकान पर नगर में जाया करते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी के कई भक्तों से भी परिचय हो

गया था । इनमें से प्रमुख ये थे:––वैद्य धर्मचन्द, रामदित्तामल, मदनलाल, कृपाराम ब्रदर्स, पंडित मुक्तिराम, वैद्य सत्यव्रत, गोविन्दराम, सुन्दरदास, इत्यादि ।

४८ घण्टे की समाधि—रावलपिण्डी में एक दिन योगीराजजी षट् कर्म करने के पश्चात् ४८ घण्टे के लिए समाधिस्थ हुए। अपनी कुटिया का ताला स्वामी विशुद्धानन्दजी से लगवाया। इस समाधि की ख्याति नगर में सर्वत्र फैल गई। हाट में, बाज़ार में, गली में, कूचे में, विद्यालयों और देवालयों में सर्वत्र ४८ घण्टे की समाधि के विषय में लोग बातचीत करते थे । रामबाग में प्रायः सारा दिन भीड़ लगी रहती थी। जब ४८ घण्टे के पश्चात् कुटिया का ताला खोला गया तो योगीराजजी के दर्शन के लिए सैकड़ों की संख्या में लोग रामबाग में एकत्रित हुए । इस समाधि के विषय में कई दिनों तक बातें होती रहीं । महाराजजी ने यहां पर पन्द्रह दिन तक निवास किया, इसके पश्चात् ये काश्मीर चले गए । श्रीनगर में पंडित गोपीनाथ के पास कई दिन तक निवास किया और फिर मुफ्ती बाग के लिए प्रस्थान किया ।

मुफ्ती बाग में ३ मास का काष्ठ मौन––श्री महाराजजी ने इस बाग में आ कर तीन मास का काष्ठ मौन रखा । केवल अमावस और पूर्णिमा के दिन बातचीत किया करते थे और सायंकाल एक घण्टे के लिए हारवन झील पर भ्रमणार्थ जाया करते थे । मुफ्ती बाग में गोपीनाथजी का एक मुसलमान नौकर देखभाल के लिए रहा करता था। इसका नाम अकबरा था। जिस मकान में योगीराजजी रहा करते थे और योगाभ्यास करते थे उसमें जब ये ध्यानस्थ होते थे तब एक सर्प आकर इनके पास कुण्डली मार कर बैठ जाया करता था । मकान की खिड़की के पास एक आलूबुखारे का पेड़ था । उस पर चढ़कर खिड़की में से भीतर आ जाता था । किसी से कभी कुछ नहीं कहता था। चुपचाप महाराजश्री के पास बैठा रहता था। यह भी एक संस्कारी जीव मालूम होता था। योगीराजजी के सामने ऐसी स्थिति में बैठता था मानो वह भी ध्यान में बैठा हो। अकबरा इस सर्प को देखकर बड़ा भयभीत होगया । यह सर्प कई-कई घंटे तक जब महाराजजी समाधिस्थ होते तो इनके पास बैठा रहता और फिर चला जाता । अकबरा इस सर्प पर दृष्टि रखने लगा । एक दिन इसने इसे घड़े में बंद करके रख दिया । इसका आशय महाराजजी के मौनव्रत के पश्चात् इस सर्प को उन्हें दिखाने का था । मौन खुलने पर उसने सब समाचार इनसे निवेदन किया । उन्होंने अकबरा को आदेश दिया कि इसका वध न किया जाए, इसे ४-५ मील की दूरी पर किसी वन में छोड़ दिया जाए । यह सांप भी महाराजजी का भक्त था । वह ३-४ दिन के पश्चात् पुनः वहां आगया और पूर्ववत् उस समय इनके पास आकर बैठता जिस समय ये समाधिस्थ होते । अकबरा ने फिर यह समाचार इन्हें दिया । वह इसे मारना चाहता था किन्तु महाराजजी ने आज्ञा दी कि इसे किसी वन में ले जाकर छोड़ने की आवश्यकता अथवा पकड़ने की आवश्यकता नहीं । वह सांप नियमानुसार समाधिस्थ योगीराजजी के पास आकर बैठा रहता था । मनुष्य तो इनके भक्त थे ही किन्तु सर्प जैसे विषैले जीवों की भी इनके प्रति बड़ी भक्ति थी ।

भक्त मामकोलू––प्रायः सभी जातियों और संप्रदायों के लोगों की महाराजश्री के प्रति आस्था और श्रद्धा थी। मामकोलू एक बड़ा प्रतिष्ठित धनाढ्य मुसलमान था । श्रीनगर के उच्चस्तर के लोगों में इसकी गणना थी । वह बागों के ठेके लिया करता

था। इसने अपने बागों के रक्षकों के लिए एक आम आज्ञा निकाल रखी थी कि महाराजजी को जो फल पसन्द हों वे सब उनकी आवश्यकतानुसार नित्यप्रति उनके पास भेजे जाया करें। महाराजजी महीने में केवल दो दिन मौन खोला करते थे। सैकड़ों नर-नारी इन दिनों में इनके दर्शनार्थ मुफ्ती बाग में आते थे और योगीराजजी इन सबको विविध विषयों पर भाषण दिया करते थे।

मथुरा तथा वृन्दावन यात्रा

श्रीनगर से योगीराजजी अमृतसर पधारे। वहां कुछ मास तक मौन व्रत धारण किया। इसके पश्चात् मथुरा, वृन्दावन पधारे। आर्यसमाज तथा सनातनधर्म में बड़े जोरदार शास्त्रार्थ हुआ करते थे। जब दो दलों में वादविवाद होता है, उनमें से जिस दल को दूसरे दल की दलील का जवाब देना नहीं आता या उस समय नहीं सूझता तो वह खिसियाकर गालियां देने लगता है, निन्दा करता है और मरने-मारने को तैयार हो जाता है। प्रायः यही बात इन शास्त्रार्थों में देखने को मिलती थी। मथुरा में एकबार आर्यसमाजियों का नगरकीर्तन निकला था। तब एक कालिज के विद्यार्थियों और मथुरा के पण्डों में झगड़ा होगया और इसने भद्दा रूप धारण कर लिया। इसकी चर्चा यत्र, तत्र, सर्वत्र फैल गई और नगरवासियों में एक प्रकार का आंतक-सा फैल गया था। एक-दो दिन में इस स्थिति में सुधार होगया था परन्तु फिर भी आर्यसमाजियों से चौबे और पण्डे बहुत चिढ़ते थे। एक दिन व्यासदेवजी मथुरा से वृन्दावन जा रहे थे, तब कई पण्डों ने इनका तांगा रोक लिया और पूछने लगे :—

पण्डे—क्या आप आर्यसमाजी हो? इन आर्यसमाजियों ने यहां के चौबों और पण्डों को बहुत मारा था।

व्यासदेवजी—हमारे आर्यसमाजी होने का आपके पास क्या प्रमाण है?

पण्डे—आपने पीले वस्त्र जो धारण किए हुए हैं!

व्यासदेवजी—क्या आर्यसमाजी ही पीत वस्त्र धारण करते हैं?

पण्डे—हां। आर्यसमाज के गुरुकुलों में पढ़नेवाले विद्यार्थी ही पीत वस्त्र पहिनते हैं।

व्यासदेवजी—पीत वस्त्र तो भगवान् कृष्णचन्द्रजी महाराज भी पहिनते थे। क्या वे भी आर्यसमाजी थे?

यह बात सुनकर उनका क्रोध शान्त हुआ और ये खूब कहकहा लगाकर हंसे। श्री महाराजजी की सूझ और प्रत्युत्पन्नमतित्व से पंडों का क्रोध शान्त हुआ और उनका पीछा छोड़ा।

श्री व्यासदेवजी नन्दगांव, बरसाना, गोवर्धन पधारे और वृन्दावन तथा इन सब स्थानों के मंदिरों के दर्शन किए। बाद में सहारनपुर चले गए और वहां पर शान्ति प्रिंटिंग प्रेस के मालिक लाला शीतलप्रसाद के पास एक मास तक ठहरे।

दक्षिण के तीर्थों की यात्रा

उत्तर भारत के सभी तीर्थों की यात्रा श्री महाराजजी कर चुके थे। अब दक्षिण भारत भ्रमण का विचार किया। बनारस, प्रयाग, गया आदि होते हुए कलकत्ता पहुंचे। यहां पर चार दिन ठहरने के बाद ये पद्मा से मिलने नवद्वीप गए। वह बहुत

कृश होगई थी किन्तु तप, त्याग और ईश्वरभक्ति में लगी हुई थी। उसको बड़ा तीव्र वैराग्य होगया था और उसकी तपस्या पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी। इसने रुदन करते हुए श्री महाराजजी की चरण-वन्दना की और निवेदन किया, मैं पथ भ्रष्ट होगई थी, अपने कर्त्तव्य को भूल गई थी, जीवन के उद्देश्य को आंखों से ओझल कर दिया था और सब मर्यादाएं तोड़कर पतन के गर्त में जा पड़ी थी। आपने मुझे सत्पथ पर लाकर खड़ा किया है। अब मैं शान्त हूं, सुखी हूं और भगवान् के श्रीचरणों में अहर्निश मेरा ध्यान लगा रहता है। महाराजजी ने पूछा, आपको यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मंगवा दी जाए। पद्मा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, महाराजजी! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो केवल भगवान् के चरणों की भक्ति चाहिए, अन्य कुछ नहीं! महाराजजी के यह पूछने पर कि तुम्हें कलकत्ते से खर्चा तो नियमानुसार मिलता रहता है, पद्मा ने जवाब दिया कि मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं। मुझे तो भोजन-वस्त्र मिल जाता है, अतः मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए। मैंने तो रुपये का स्पर्श करना भी त्याग दिया है। पद्मा को ज्ञान, ध्यान का उपदेश देकर महाराजजी कलकत्ता लौट गए। यहां पर केवल एक दिन ठहरकर जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान किया। यहां पर तीन दिन तक निवास करके पुरी तथा अन्य अनेक आसपास के मंदिरों के दर्शन किए। यहां से भुवनेश्वर पधारे और वहां से विजवाड़ा में पन्ना नरसिंह के दर्शन के लिए गए। इसके बाद मदुरा पधारे और यहां पर एक धर्मशाला में निवास किया। यहां पर मीनाक्षी देवी का एक बड़ा विशाल मंदिर है। यह मंदिर बहुत सुन्दर बना हुआ है। प्राचीन भारत की कारीगरी का एक अत्युत्तम उदाहरण है। इस मंदिर को देखने के लिए भारतीय तथा विदेशी यात्री दूर-दूर से आते हैं और इसकी अद्वितीय कला को देखकर आश्चर्य से दान्तों तले अंगुली दबाते हैं। यहां से कन्याकुमारी लगभग १५० मील है। तीन दिन तक मदुरा में ठहर कर कन्याकुमारी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में सर्वप्रथम नोदादरी में ठहरे। यहां पर एक मंदिर है जिसमें तेल चढ़ाया जाता है। यह तेल एकत्रित होकर एक कुण्ड में जमा होता रहता है। कुष्ठ के रोगी इसे औषधि के रूप में प्रसाद समझकर ले जाते हैं। इसकी मालिश करने से कई रोग मिट जाते हैं। कभी-कभी कुष्ठ रोग से भी रोगी मुक्त होते देखे गए हैं।

जिस प्रकार पूर्वकाशी (बनारस) के समान उत्तर में एक उत्तरकाशी है, इसी प्रकार के दक्षिण में एक दक्षिणकाशी भी है। नोदादरी से महाराजजी दक्षिणकाशी पधारे। यहां पर भी पूर्वकाशी तथा उत्तरकाशी के समान विश्वनाथ का एक बड़ा विशाल मंदिर है। यहां पर और भी अनेक मंदिर हैं। एक ऊंचे पर्वत से एक बड़ा झरना गिरता है। उसका दृश्य बड़ा सुहावना है। यहां पर प्रायः यात्री आकर स्नान करते हैं। दक्षिणकाशी पूर्वकाशी का प्रतिद्वन्द्वी मालूम होता है। बड़ा विस्तृत नगर है। भूमि शस्यश्यामला है। दक्षिणकाशी को यहां के लोग 'उत्तालम' कहते हैं। महाराजजी कई दिन तक यहां ठहरे। झरने के ऊपर एक बहुत बड़ा मैदान है। इसमें केले बहुत होते हैं। इस मैदान में से एक नदी बहती है। कदाचित् यही झरने के रूप में पर्वत से गिरती है। इस वन में एक योगी सन्त के दर्शन हुए। ये थोड़ी हिन्दी बोलना जानते थे। ये केलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते थे। ये भी कई वर्षों

से किसी विद्वान् योगी की तलाश में थे। इनके आग्रह से महाराजजी भी इनके पास ही ठहर गए और इनको हठयोग की क्रियाएं तथा विविध प्रकार के प्राणायामादि सिखाए। इनकी महाराजजी के प्रति धीरे-धीरे बड़ी श्रद्धा और भक्ति होगई। इसके बाद महाराजजी जनार्दन मंदिर के दर्शन करने पधारे। इसके पश्चात् त्रिवेन्द्रम गए। वहां पर पद्मनाभजी के मंदिर के कुछ ही दूर एक छोटे से उद्यान में एक कुटिया में ठहरे। नित्यप्रति पद्मनाभजी के दर्शन करते थे। यह मंदिर बड़ा भव्य है। इसमें पद्मनाभजी की एक विशाल प्रतिमा है जो क्षीरशायी भगवान के समान लेटी हुई है। महाराजजी जितने दिन यहां पर रहे खिचड़ी बनाकर खाते रहे। इस उद्यान में एक दक्षिणी पण्डित आया करते थे। ये बड़े सज्जन थे और संस्कृत के विद्वान् थे।

लम्बे नारायण तथा छोटे नारायण के मंदिरों के भी दर्शन किए किन्तु ये जीर्ण तथा शीर्ण अवस्था में थे। इन मंदिरों के निर्माता कारीगरों ने इनके निर्माण में अपनी कारीगरी का बड़ी निपुणता से परिचय दिया है। दक्षिण के सभी मंदिर भारत की प्राचीन कला के बड़े सुन्दर नमूने हैं। यहां के विशाल, कलापूर्ण तथा सुन्दर मंदिरों के समान मंदिर किसी भी प्रान्त में उपलब्ध नहीं हैं। थोड़ी सी दूरी पर सुन्दर महादेवजी का एक विशाल मंदिर है जो अपनी महानता और गौरव का स्वयं ही द्योतक है। इसके आगे कुछ मील पर कन्याकुमारीजी का मंदिर है। वहां पर महाराजजी चार दिन तक ठहरे और चारों ही दिन इस मंदिर में दर्शनार्थ जाते रहे। मूर्ति के आभूषणों में बड़े-बड़े हीरे लगे हुए थे जिनकी चमक रात्रि में बहुत दूर तक जाती थी। इनकी आभा से मूर्ति बड़ी देदीप्यमान रहती थी। कन्याकुमारी भारत की दक्षिणी सीमा है। हिन्द महासागर इसके पांव धोता है। यहां से ये वापस मदुरा आ गए और एक धर्मशाला में निवास किया। मीनाक्षी देवी के मंदिर के सौन्दर्य से ये बड़े प्रभावित थे। उसका प्रत्येक भाग सौन्दर्यपूर्ण था, विशेषकर स्तम्भ। कई एक बड़े स्तम्भ और कई छोटे स्तम्भ काटकर और तराश कर बनाए गए थे। ये नित्य इस मंदिर में दर्शनार्थ जाते और घण्टों ही इसके सौन्दर्य का अवलोकन किया करते थे।

धनराजजी से परिचय--श्री महाराजजी नित्यप्रति मीनाक्षी के मन्दिर में एक एकान्त स्थान में बैठकर ध्यानाभ्यास किया करते थे। मन्दिर का वातावरण शान्त था इसलिए इसी स्थान को इन्होंने अभ्यास के उपयुक्त समझा। धनराजजी, उनकी पत्नी तथा लड़की कृष्णा नित्यप्रति इनको समाधिस्थावस्था में देखा करते थे। इससे इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इनका आकर्षण योगीराज के प्रति दिन प्रति दिन बढ़ता गया। एक दिन माता और पुत्री चिरकाल तक महाराजजी के सामने खड़ी होकर इनको देखती रहीं और प्रशंसा करती रहीं। माता इन्हें भोजनार्थ निमंत्रित करना चाहती थी। गृहकार्यवशात् स्वयं तो घर चली गई। कृष्णा को इन्हें समाधि से व्युत्थान होने पर भोजन के लिए अपने साथ लाने के वास्ते वहां छोड़ गई। कृष्णा २२-२३ साल की युवती थी। महाराजजी ने जब आंखें खोलीं तो उसे अपने समक्ष खड़ा पाया। उसने झुककर प्रणाम किया और भोजनार्थ उसके साथ उसके घर जाने की प्रार्थना की। एक अपरिचित देवी के साथ इन्होंने जाना उचित नहीं समझा। जब वह बार-बार आग्रह करने लगी तब महाराजजी ने कहा कि अपने पिताजी को भेजो, हम उनके साथ जाएंगे। वह घर गई और अपने पिता को भेजा। इनका

नाम धनराज था। ये उनके साथ गए और इस परिवार में भोजन किया। भोजनोपरान्त कृष्णा की माता ने निवेदन किया कि जब तक आप मदुरा में हैं तब तक आप यहीं भोजन किया करें। उसने कहा कि हम लोग पंजाब के रहने वाले थे। धनराजजी के पिता दक्षिण में आकर बस गए थे और यहीं पर अपना कारोबार प्रारम्भ कर दिया था। हमारे विवाह-सम्बन्ध अभी भी पंजाब और दिल्ली में ही होते हैं। कृष्णा के विवाह का प्रबन्ध करने के लिए हम पंजाब जाने का विचार कर रहे हैं। वर्षों से यहां रहने के कारण पंजाब से सम्बन्ध कुछ टूट-सा गया है। मेरे पीहर में कोई शेष नहीं रहा और यहां पर भी हम अकेले ही हैं। रात-दिन इस लड़की की चिन्ता मुझे खाए जा रही है। क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आ रहा। यहां पर हमारी दुकान है, उसे छोड़कर भी नहीं जा सकते। क्या करें, न हम दक्षिणी ही बने और न पंजाबी ही रहे। ये सब बातें सुनने के बाद महाराजजी धर्मशाला में चले गए। दूसरे दिन कृष्णा बुलाने आई तो उसके साथ पुनः भोजन करने के लिए चले गए। कृष्णा की माताजी के अनुरोध से महाराजजी ने प्रातःकाल ८ से ६ बजे तक उनके मकान पर कथा करना प्रारम्भ किया। प्रतिदिन गीता पर प्रवचन होता था। यह प्रवचन लगभग १५ दिन तक चलता रहा। एक दिन धनराजजी के आग्रह करने पर योगीराजजी ने अपनी आत्मकथा संक्षेप में सुनाई। जब धनराजजी को यह पता लगा कि ये ब्रह्मचारी हैं तब तो वे इनकी ओर और भी अधिक आकर्षित होगए और तुरन्त उनके मन में कृष्णा के विवाह के विचार आने लगे। कृष्णा की माताजी ने बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से कृष्णा के विवाह का प्रस्ताव रखा और ब्रह्मचर्य ब्रत की महती कठिनाइयों का प्रदर्शन किया। चारों आश्रमों के धर्मपालन की महत्ता बताई। धन, ऐश्वर्य, सुख और आराम के कई प्रकार के प्रलोभन दिए, किन्तु इनके जीवन में अनेक ऐसे अवसर पहले भी आ चुके थे। सभी अवसरों पर ये अपनी उद्देश्यपूर्ति के लक्ष्य पर हिमालय के समान अटल रहे। किसी प्रकार का आकर्षण तथा प्रलोभन इन्हें पथ-विचलित नहीं कर सका। नारद मुनि का उपाख्यान सुनाकर कहा कि मैं इनके समान मूर्ख नहीं हूं। मैं अपने जीवन के लक्ष्य को कभी आंखों से ओझल नहीं कर सकता। मुझे यदि ये सब कुछ ही करना था तो भला मैं अपने घर और परिवार को छोड़ता ही क्यों? आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान इनका जीवन का चरम लक्ष्य था। इन्होंने कभी प्रेय-मार्ग की ओर अपना झुकाव नहीं होने दिया। सदैव श्रेय-मार्ग का अनुसरण किया। जिस महापुरुष ने अपना सारा जीवन तपश्चर्या, ध्यान, साधना, योगाभ्यास और समाधियों में व्ययीत किया हो, भला वह हाड-मांस के नश्वर पुतले और चांदी-सोने के टुकड़ों पर कैसे आसक्त हो सकता था! इस प्रकार के भोग तो पूर्व जन्मों में भी भोगे हैं। जब अब तक इनसे तृप्ति नहीं हुई तो अब क्या होगी! विषय कभी भोग से शान्त नहीं होते, तो भी मनुष्य इनके प्रति तृष्णा का परित्याग नहीं कर सकता। मनुष्य का वार्धक्यावस्था में शरीर जीर्ण हो जाता है किन्तु 'तृष्णैका तरुणायते'। इस बात को ब्रह्मचारीजी ने भली प्रकार से पिछले कई वर्ष से अपने हृदय पर अंकित किया हुआ था, अतः वह भोग और विलासिता की ओर ले जाने वाली बातों को एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते थे। अब इन्होंने मदुरा में रहना उचित नहीं समझा। वहां से कहीं अन्यत्र जाने में ही अपना कल्याण समझा।

रामेश्वर के लिए प्रस्थान--ब्रह्मचारीजी ने रामेश्वर जाने का निश्चय किया। रात्रि की गाड़ी से चलकर प्रातः रामेश्वर पहुंच गए। वहां एक धर्मशाला में निवास किया। वहां पर इन्होंने सात दिन तक निराहार रह कर प्रायश्चित्त किया। ऐसा इसलिए किया कि लोग बार-बार इन्हें मायाजाल में फंसाने का यत्न क्यों करते हैं। उनके श्रेय-मार्ग में क्यों बार-बार बाधाएं उपस्थित होती हैं। इन विघ्नों के निवारण के लिए सर्वशक्तिमान भगवान् से प्रार्थना की। अपराध किया धनराज और उसकी धर्मपत्नी ने, किन्तु उनके अपराध के लिए प्रायश्चित्त किया श्री महाराजजी ने। दस दिन तक ये रामेश्वर में ठहरे। दर्शनार्थ नित्य मन्दिर में जाते थे। इस मन्दिर की परिक्रमा में मधुर जल के कूएं थे। इसके चारों कोनों पर वेदपाठ होता था। यहां पर इन्होंने अनेक प्राचीन इमारतों को देखा। यहां से धनुषकोटि गए। इसके पश्चात् मद्रास पहुंचे और यहां पर तीत दिन तक रहकर यहां के दर्शनीय स्थानों को देखा। यहां से श्रीरंगपुरम् गए। यहां पर एक बड़ा विशाल मन्दिर है जिसके चारों ओर प्रकोटा खिचा हुआ है। इस प्रकोटे में बड़े विशाल दरवाजे बने हुए हैं। इसके घेरे में बहुत बड़ा बाजार बना हुआ है। मन्दिर में एक छोटी-सी मणिमय मूर्ति है। इसी मन्दिर में एक दिन लाहौर तथा अमृतसर के कई सुपरिचित पुरुषों तथा देवियों से साक्षात्कार हुआ। इनकी संख्या लगभग तीस चालीस थी। इन सबने मिल कर महाराजश्री से अनुरोधपूर्वक इकट्ठे यात्रा करने की प्रार्थना की। इन्होंने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और सबने इकट्ठे होकर आगे की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। जिस-जिस स्थान पर एक से अधिक दिन तक ठहरते वहीं महाराजजी उपनिषद् की कथा किया करते थे। इनमें से कइयों ने पहिले भी इनकी कथाएं सुनी थीं। इस उपनिषद् की कथा ने यात्रा को और भी अधिक आकर्षक और मधुर बना दिया था। रेलगाड़ी में, बस में, पैदल, सभी जगह अध्यात्म चर्चा बराबर होती रहती थी और जहां ठहरते थे वहां उपनिषदों की कथा होती थी। अन्य यात्री भी इस कथा में आकर लाभ उठाते थे। शिवकांची, विष्णुकांची, कुमाकोनम, आरकोनम तथा पक्षीतीर्थादि के दर्शन कर बालाजी पहुंच गए। बालाजी का मन्दिर एक बहुत ऊंचे पहाड़ पर स्थित है। सहस्रों सीढ़ियां चढ़कर मन्दिर में जाना पड़ता है। यहां पर अधिक न ठहर कर किष्किंध्या, तथा पम्पा सरोवर गए। पम्पा सरोवर पर यात्रियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। यहां पर मच्छरों का बड़ा बाहुल्य था और उनके डंक भी बड़े तीक्ष्ण थे। चादर अथवा कम्बल ओढ़ने पर भी उनके ऊपर से डंक भीतर घुसाकर काटते थे। यात्री इनके कारण रात भर सो न सके। बड़ी बेचैनी रही। यहां से विट्ठलपुर गए और विट्ठलपुर से शोलापुर होते हुए बम्बई पहुंच गए। यहां पर कालबा देवी रोड पर लाला विशनदास वृजलाल के पास ठहरे। ये माता विशनदेवी के पुत्र थे। दोनों बड़े सज्जन थे। ये देवी महाराजजी की सुपरिचित थीं। इनके मकान पर इन्होंने एक बार कई दिनों तक कथा की थी। सेठ तुलसीदासजी तथा इनके परिवार से इस यात्रा में कुछ विशेष परिचय होगया था। इनकी पत्नी बड़ी धार्मिक तथा सेवापरायण थी। इन्होंने कई बार भोजन के लिए निमंत्रित किया था। कुछ दिन बम्बई में निवास करके प्रायः सभी दर्शनीय स्थान देखे।

इसके उपरान्त द्वारिका की यात्रा करने का विचार किया। बम्बई से भी बहुत से यात्री साथ हो लिए। मार्ग में जूनागढ़ ठहरे। यहां पर एक बड़े ऊंचे पर्वत

पर दत्तात्रेयजी महाराज की चरणपादुका के दर्शन करने गए। रास्ते में जैनियों के कई विशाल मन्दिर देखे। इन मंदिरों को देखते-देखते सायंकाल होगया। लौटते समय रात्रि होगई। आसपास के वनों से शेरों की गर्जना सुनकर सब भयभीत हो रहे थे। केवल योगीराजजी ही निर्भीक भाव से चल रहे थे और अन्य यात्रियों को हिम्मत बंधा रहे थे। इसके पश्चात् सर्वप्रथम सारे संघ ने मूलद्वारिका जाने का निश्चय किया। यहां का मंदिर समुद्र के किनारे है। सभी यात्रियों ने पहिले समुद्र स्नान किया और फिर मंदिर में दर्शनार्थ गए। दर्शन करके आसपास के अन्य कई स्थानों को देखकर सारा संघ समुद्र के किनारे आकर बैठ गया और महाराजजी से व्याख्यान देने के लिए निवेदन किया। इस संघ में ७० नर-नारी थे और इतने ही इधर-उधर से आकर और एकत्रित होगए थे। सबने बड़े प्रेम से महाराजश्री के वचनामृत का पान किया। कथा की समाप्ति पर सभी श्रोताओं नें इन्हें घेर लिया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आपने कई बार कई लोगों को समाधि का आनन्द प्रदान किया है। हम भी आपके अनन्य भक्त हैं, भमें भी इस आनन्द-रस का आस्वादन करवाने की कृपा की जाए। समुद्र का किनारा है, बड़ा उत्तम स्थान है, एकान्त भी है, अतः हमें भी आप समाधिस्थ करने का अनुग्रह करें। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चालीस व्यक्ति तैयार हुए। महाराजजी ने इन सबको समाहित होकर बैठ जाने का आदेश दिया और कहा कि वे अपने मनोबल से जब तक चाहेंगे इन्हें समाधिस्थ रखेंगे। स्थान बहुत शान्त तथा एकान्त था। केवल समुद्र की लहरों की आवाज़ सुनाई देती थी। इतनी बड़ी संख्या में लोगों का समाधि के प्रति उत्साह देखकर ये बड़े प्रसन्न थे। इन्होंने अपने मनोबल से तथा विशेष शक्ति के प्रयोग से इन सबको तीन घण्टे तक समाधिस्थ रखा। सब एक ही आसन से समाहित होकर अडोल बैठे रहे। सात बजे इन्हें बिठाया गया और रात्रि के दस बजे इनका समाधि से व्युत्थान हुआ। महाराजजी का आदेश पाकर सबने अपनी आंखें खोलीं। जब इन सबको भोजन करने के लिए कहा गया तो सबने एक स्वर से कहा कि उन्हें किसी प्रकार भी इस समय भूख तथा प्यास नहीं है और न कुछ खाने-पीने की इच्छा ही है। सब लोग उठे और धर्मशाला में चले गए। मूलद्वारिका में तीन दिन तक निवास करके सब भेंटद्वारिका गए। यहां पर भी तीन दिन तक ठहरे। यहां का मंदिर बड़ा विशाल तथा सुन्दर है। यहां पर मंदिर-प्रवेश से पूर्व ही भेंट ले ली जाती है। जो भेंट नहीं देते उन्हें मंदिर-प्रवेश की आज्ञा नहीं मिलती। इसीलिए इसे भेंटद्वारिका कहते हैं। महाराजजी ने यहां के पुजारी से संस्कृत में वार्तालाप किया। इन्होंने कहा कि बलपूर्वक भेंट लेने का तरीका तो ठीक नहीं है। भेंट लिए बिना मंदिर में प्रवेश से रोकना अनुचित है। अपनी श्रद्धा, भक्ति और सामर्थ्य के अनुसार जो यात्री जितनी भेंट मंदिर में चढ़ाए उसे ही स्वीकार करना चाहिए। यह भेंट नहीं, यह तो एक प्रकार का टैक्स है। इसका मतलब तो यह हुआ कि जो निर्धन हैं वे भगवान के दर्शन ही नहीं कर सकते। विशेषकर भगवान् कृष्ण के जो गरीब ग्वालों के सखा थे, जो सन्तों के परित्राता, दुःखियों के दुःखहर्ता तथा निर्धनों के धन थे। दर्शकों से टैक्स लेना उनके साथ अन्याय करना है। ब्रह्मचारी और सन्यासी जो कभी अपने पास रुपया पैसा रखते ही नहीं, वे तो कभी भी दर्शन न कर सकेंगे। पुजारी ने इन्हें तो भीतर जाने की आज्ञा दे दी किन्तु उनके साथी अन्य यात्रियों में से किसी को भी भेंट दिए बिना भीतर नहीं जाने दिया। इसीलिए इसे भेंटद्वारिका कहते हैं।

जब सब यात्री दर्शन करके लौट आए तब पुजारी ने महाराजजी को एक ओर बुलाया और कहा, आप ठहरिए, आपको विशेषरूपेण दर्शन करवाए जाएंगे। वह उनको एक गद्दी के पास ले गया और उनसे निवेदन किया कि आप तो यहीं ठहर जाइए। यहां की गद्दी पर बैठकर सुख से जीवन व्यतीत कीजिए। यहां के महन्त को देवलोक हुए कुछ ही मास हुए थे। मंदिर के अधिकारी एक योग्य ब्रह्मचारी को गद्दी पर बिठाने के लिए खोज कर रहे थे किन्तु अभी तक उन्हें सफलता लाभ न हो सकी थी। इस गद्दी पर बालब्रह्मचारी ही बैठ सकता था। पुजारी तथा यहां के अधिकारीवर्ग सब महाराजजी के व्यक्तित्व, तेज, ओज और संस्कृत संभाषण से बड़े प्रभावित थे। अध्ययन काल में ये सब विद्यार्थियों से संस्कृत में ही वार्तालाप करते थे और दक्षिण यात्रा में तो जहां भी गए वहां पर मंदिरों के पुजारियों तथा अधिकारियों से सदैव संस्कृत में ही बातचीत करते थे। भेंटद्वारिका के अधिकारियों ने इनसे गद्दी पर बैठने का आग्रह किया, तब इन्होंने उनको बड़ा सुन्दर उत्तर दिया कि मैं एकदेशी भगवान् की सेवा नहीं करना चाहता। मैं तो ऐसे भगवान् की गद्दी या सेवा चाहता हूं जो सब जगह मौजूद है। जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वकर्ता, सर्वधर्ता, सर्वत्र वर्तमान, तीनों कालों में समान, सर्वरक्षक, सर्वपालक, सर्वव्यापक, निराकार, निरवयव, तथा निष्क्रिय हो। यदि आप उसकी गद्दी दिलाना चाहते हो तो मैं तत्पर हूं। यह सुनकर सब अधिकारी चुप होगए। इसके पश्चात् प्रभास क्षेत्र आदि के दर्शन किए। यह वही क्षेत्र है जहां पर यादव वंशी परस्पर युद्ध करके समाप्त होगए थे। यहीं पर व्याध ने भगवान् श्रीकृष्ण के पैर में घातक तीर मारा था।

इसके पश्चात् राजपूताने में तीर्थाटन किया। यहां पर नाथद्वारा, एकलिङ्ग, कांकरौली आदि स्थानों में स्थित मंदिरों के दर्शन किए। चित्तौड़ का किला भी देखा। अब यात्रा करते-करते थक गए थे, गर्मी भी अधिक होगई थी, अतः मथुरा, वृन्दावन होते हुए अमृतसर चले गए।

अमृतसर में लाला शिवसहाय के मकान पर ही निवास किया। अब की बार मोतीराम की बगीची में नहीं ठहरे। यहां कुछ दिन निवास करके गर्मी के कारण काश्मीर चले गए।

तीन मास का काष्ठ मौन

काश्मीर में प्रायः सभी स्थान महाराजजी के देखे हुए थे, किन्तु इन्हें सबसे अधिक मुफ्ती बाग ही निवास के लिए पसन्द था, अतः यहीं ठहरे। यहां रहने में कई सुविधाएं थीं। सबसे बड़ी सुविधा भ्रमण की थी। हारवन झील मुफ्ती बाग के पास ही थी। वहां कुछ एकान्त भी था। इसी झील के किनारे भ्रमणार्थ जाया करते थे। मुफ्ती बाग में अबकी बार इन्होंने ३ मास तक काष्ठ मौन रखा। इस व्रत को समाप्त करके कुछ दिवस तक श्रीनगर में निवास किया। तत्पश्चात् अमृतसर के लिए प्रस्थान किया।

अमृतसर में निवास

अमृतसर में लाला मोतीराम की बगीची में ठहरे। लाला मोतीरामजी का स्वर्गवास होगया था। दीवाली के अवसर पर जो सन्त महातमा आते थे उनके लिए

वे क्षेत्र खोला करते थे । यह क्षेत्र लगभग एक मास तक चलता था । इस बार व्यवस्था की कमी होने के कारण क्षेत्र अब तक नहीं खुल सका था । मोतीरामजी की पत्नी तथा उनका दामाद गुरुदयाल महाराजजी के अमृतसर पधारने की प्रतीक्षा कर रहे थे जिससे उनकी व्यवस्था तथा निरीक्षण में क्षेत्र खोला जाए । इन दोनों ने इनसे क्षेत्र की सब व्यवस्था करने के लिए निवेदन किया । इन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी । क्षेत्र के लिए सब सामान मंगवा लिया गया और सन्तों-महात्माओं के भोजन की पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी गई । यह लंगर दीवाली के अवसर पर एक मास तक चला करता था । मोतीरामजी के देहान्त के कारण उनकी पत्नी मानकौर की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं रही थी अतः महाराजजी ने अपने श्रद्धालु भक्त देवीदासजी से प्रति वर्ष इस क्षेत्र का सारा खर्चा देने के लिए कहा और उन्होंने इनकी आज्ञा का पालन किया ।

भक्त देवीदासजी—भक्त देवीदास बड़े धनवान थे और साथ ही दानी, धर्मात्मा तथा ईश्वर के अनन्य भक्त थे । वे दिन में तीन बार साधना करते थे । प्रातः ३ बजे से ५ बजे तक, फिर ६ बजे से १० बजे तक तथा सायंकाल सूर्यास्त के बाद एक घण्टा । ये केवल मानसिक जाप तथा ध्यान किया करते थे । ये देश में हों अथवा विदेश में, रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे हों या मोटरगाड़ी से, कभी अपने जाप और ध्यान का समय नहीं चूकते थे । कई बार ये महाराजजी के साथ कई-कई महीनों तक रहे हैं किन्तु कभी अपने अभ्यास में पांच मिनिट का भी विलम्ब नहीं होने दिया । इनके बड़े पुत्र को डाकुओं ने घेर लिया था और पिस्तौल से उनकी हत्या कर दी थी । जब उनकी अन्त्येष्टी की तैयारी हो रही थी, पारिवारिक सदस्य विलाप कर रहे थे, घर में चारों ओर करुण क्रन्दन हो रहा था, हाहाकार मचा हुआ था और सभी आतुर तथा व्याकुल हो रहे थे, उस समय भी लाला देवीदास पूजा, जाप तथा ध्यान में बैठे हुए थे । इसे कहते हैं स्थितप्रज्ञता ! महाराजजी के संपर्क से उनके भक्तों में अलौकिक परिवर्तन हो जाता था । उनका नैतिक स्तर एकदम ऊंचा उठ जाता था और उनकी भगवान के प्रति आस्था तथा भक्ति हो जाती थी । लाला देवीदास प्रयाग में कुम्भ तथा अर्धकुम्भी के अवसर पर सदा ही महात्माओं के लिए शीतकाल में दो तीन मास के लिए अन्न-क्षेत्र खोला करते थे । कोट बाबा दयाराम के स्थान पर इस क्षेत्र को खोला जाता था । इस स्थान पर कई गुफाएं हैं जिनमें सन्त महात्मा निवास किया करते हैं । कोट बाबा दयाराम में स्वामी पूर्णानन्द तथा सन्त पंजानन्द रहा करते थे । ये दोनों बड़े त्यागी सन्त थे ।

अमृतसर से महाराजजी हरिद्वार चले गए । वहां पर मोहन आश्रम में ३ मास तक ठहरे, फिर जालंधर गए और डा० नारायणसिंह के पास ठहरे । इनकी पत्नी डा० विद्यावती बड़ी योग्य गृहिणी हैं । ये बड़ी ईश्वरभक्ता और दानशीला हैं । नित्य नियमानुसार जाप, ध्यान तथा यज्ञादि करती हैं ।

चम्बा यात्रा

जालंधर से महाराजजी होशियारपुर चले गए और वहां पर डाक्टर मोतीसिंह के पास ठहरे । उन्होंने ही इन्हें निमंत्रण देकर जालंधर से बुलाया था । वहां से चौधरी ज्योतिसिंह के साथ चम्बा के लिए प्रस्थान किया । यह स्थान महाराजजी का देखा

हुआ था किन्तु उनके आग्रह से ये उनके साथ जाने को तैयार होगए। यहां पर चौधरी ज्योतिसिंह के मित्र डाक्टर मेलाराम चीफ मैडीकल अफसर थे। इनकी कोठी रावी नदी के किनारे पर थी। यह स्थान बड़ा सुहावना था अतः यहीं पर ठहरने का निश्चय किया। श्री महाराजजी चौधरी ज्योतिसिंह के साथ चम्बा नहीं गए थे क्योंकि उन्हें अमृतसर में कुछ काम था, अतः होशियारपुर से ये अमृतसर चले गए थे। चौधरी ज्योतिसिंह इनसे पहिले चम्बा चले गए थे और ये कई दिन पीछे पहुंचे थे। जब डा० साहब की कोठी पर गए तो वहां चौधरी साहब नहीं दिखाई दिए। पूछने पर मालूम हुआ कि डाक्टर मेलाराम और चौधरी साहब में बातचीत करते-करते कुछ नाराजगी होगई, चौधरी साहब ने अपना बड़ा अपमान समझा और वे वापस चले गए। महाराजजी ने भी अब यहां ठहरना अनुचित समझा, अतः एक दो दिन यहां ठहरने के पश्चात् कांगड़ा, धर्मशालादि स्थानों पर जाने का निश्चय कर लिया। इसी बीच में चम्बा आर्यसमाज के कुछ परिचित सज्जनों ने महाराजजी से आर्यसमाज के उत्सव पर भाषण देने की प्रार्थना की और महाराजजी को पास ही एक कोठी में ठहरा दिया। सायंकाल जब डाक्टर मेलारामजी महाराजजी से मिलने आए तो ईश्वर के सम्बन्ध में तथा वेदों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। डाक्टरजी न तो ईश्वर को, न पुनर्जन्म को और न वेदों को ही मानते थे। साधु और सन्तों में उनका विश्वास नहीं था। महाराजजी ने उन्हें वेद और शास्त्रों के प्रमाण देकर समझाया, किन्तु उनके कोई भी बात समझ में नहीं आई। ये बड़े दम्भी, अभिमानी, हठी और वितण्डावादी थे। इनकी उद्दण्डता को देखकर महाराजजी ने कहा, भगवान की कृपा है कि तुम एक ऊंचे पद पर हो, उसका धन्यवाद करो। इस पर डाक्टर ने कहा कि मैंने तो अपनी योग्यता से यह पद प्राप्त किया है, यदि मुझमें योग्यता न होती तो यह पद मुझे किस प्रकार मिल सकता था! महाराजजी ने कहा, देखो प्रभु से डरो। अभिमान का सिर नीचा होता है। मुझे ऐसा भास रहा है कि दो चार मास में ही तुम यहां से अपमानित होकर निकाल दिए जाओगे। ऐसा ही हुआ भी। इनका राजमंत्री माधोरामजी से झगड़ा होगया और डाक्टरजी को बरखास्त कर दिया गया और चम्बा स्टेट से निकाल दिया गया। कई मास बाद जब कभी महाराजजी होशियारपुर गए तो डाक्टर मेलाराम इनसे मिले। बड़ा पश्चात्ताप किया और बताया कि अढ़ाई महीने बाद ही अपमानित होकर उन्हें चम्बा छोड़ना पड़ा। अब उनकी भगवान में आस्था होगई थी और भजन करना प्रारम्भ कर दिया था।

धर्मशाला, कांगड़ा तथा कुल्लू के लिए प्रस्थान--आर्यसमाज चम्बा के वार्षिकोत्सव पर चार व्याख्यान देने के पश्चात् महाराजजी ने कांगड़ा के लिए प्रस्थान किया। यहां से एक मार्ग धर्मशाला के लिए नजदीक पड़ता था किन्तु यह था बड़ा दुर्गम। इस मार्ग में कई ऊंचे पहाड़ आते थे जिन्हें पार करके जाना पड़ता था। ब्रह्मचारीजी ने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। अपना कुछ सामान चम्बा में ही छोड़ आए थे। थोड़ा-सा ही सामान साथ लाए थे। दो दिन तक पहाड़ों पर चलने के पश्चात् १० बजे के लगभग एक निर्जन वन में पहुंचे। वहां एक भालू से सामना करना पड़ा। भालुओं का महाराजजी से बड़ा प्रेम था। उन्हें इनके हाथों पिटने और घायल होने में बड़ा मजा आता था। यह भालू इनका मार्ग रोककर खड़ा होगया। इधर-उधर से

पत्थर इकट्ठे करके उसे मारना प्रारंभ किया जिससे वह मार्ग से हट जाए, पर वह हटा नहीं। तब इन्होंने अपना चाकू निकाला और उचित अवसर देखकर उसकी नाक पर बलपूर्वक मारा। उसकी नाक फट गई और रुधिर की धारा बह चली। वह कराहता हुआ दूर चला गया। कुछ काल तक इसी वन में विश्राम किया। यहां से चलकर पांचवें दिन धर्मशाला पहुंच गए। यहां पर आर्यसमाज मंदिर में ठहरे। यहां के दर्शनीय स्थान इससे पूर्व ही देख चुके थे, फिर दुबारा भी उन्हें देखने के लिए पधारे। यहां से कांगड़ा, पालमपुर, बैजनाथ तथा मण्डी होते हुए कुल्लू पहुंचे। यहां पर व्यास नदी के पार एक बगीचा था। उसमें एक कुटिया में निवास किया। यहां से दशहरे के बाद पठानकोट चले गए और वहां कुछ दिन तक अपने भक्त नारायण दास के पास ठहरकर अमृतसर के लिए प्रस्थान किया।

पुनः अमृतसर में निवास

यहां आकर पूर्ववत् मोतीरामजी की बगीची में निवास किया। लाला काहन चन्द खन्ना महाराजजी के बड़े भक्त थे। उन्हें पता चला कि ये मौन व्रत लेने वाले हैं, अतः निवेदन किया कि इस बार अधिक लम्बा मौन व्रत न किया जाए क्योंकि उनका विचार कलकत्ता से तीर्थाटन के लिए एक विशेष रेलगाड़ी चलाने का था। इसका सब प्रबंध होगया था। जनवरी से यात्रा प्रारंभ होगी और ७२ तीर्थों के दर्शन इसमें किए जाएंगे। महाराजजी से भी साथ चलने का आग्रह किया।

भारत के मुख्य-मुख्य बहत्तर तीर्थों की यात्रा

महाराजजी तथा अमृतसर से जो लोग तीर्थाटन के लिए विशेष रेलगाड़ी से जाने वाले थे, दिसम्बर १९३० को कलकत्ता पहुंच गए। इस गाड़ी को ३१ दिसम्बर को कलकत्ता से चलना था। सारी यात्रा २ मास और १० दिन की थी। इसमें यात्रा करने वालों की संख्या लगभग ४०० थी। १५० रुपया थर्ड क्लास का टिकट था और ४०० रुपया सैकंड क्लास का था। भोजन व्यय भी इसी में शामिल था। रेलगाड़ी में ही भोजन की सब व्यवस्था की गई थी। दिन में तीर्थों के दर्शन किए जाते थे और रात्रि में सफर किया जाता था। कलकत्ते से सायंकाल ५ बजे रेलगाड़ी रवाना हुई और प्रातः ९ बजे जगन्नाथ पुरी पहुंची। एक दिन यहां ठहरे। समुद्र स्नान किया, भगवान कृष्णचन्द्रजी के दर्शन किए तथा घूम फिर कर अन्य छोटे-छोटे देवस्थानों को देखा। इसके पश्चात् बिजवाड़ा में पन्ना नरसिंह और भुवनेश्वर के मंदिरों के दर्शन किए। मदुरा में मीनाक्षी देवी के दर्शन किए और यहां से चलकर कन्याकुमारी पहुंचे। इस ओर मुख्य तीर्थस्थान १० हैं :—नोतादरी, लंबे नारायण, छोटे नारायण, जनार्दन, दक्षिण काशी, पद्मनाभ, सुन्दर महादेव, कन्याकुमारी, आदि। मदुरा से रेलगाड़ी रामेश्वर गई। महाराजजी रामेश्वर में यह तीसरी बार आए थे और जगन्नाथ पुरी में चौथी बार। यहां से श्रीरङ्गपुर और मद्रास गए। इसके पश्चात् शिवकांची, विष्णु कांची, पक्षी तीर्थ, बालाजी, किष्किन्धा, विठ्ठलनाथ, शोलापुर, नासिक, बम्बई, जामनगर, जूनागढ़, दत्तात्रेय, मूलद्वारिका, भेंटद्वारिका, आदिद्वारिका, प्रभास क्षेत्र, आबू, चित्तौड़, उदयपुर, कांकरौली, एकलिंग, नाथद्वारा, जयपुर, मथुरा, वृन्दावन, आगरा, देहली, हरिद्वार, ऋषिकेश, अमृतसर, लाहौर, लखनऊ, प्रयाग, बनारस, गया, बैजनाथ

होते हुए कलकत्ता पहुंचे। सभी यात्रियों की धर्म में निष्ठा थी। सभी विचारशील थे। परस्पर एक दूसरे का ध्यान रखते थे और स्नेहपूर्वक व्यवहार करते थे।

दरभंगा गमन

बालेश्वरप्रसाद चौधरी इसी लम्बी यात्रा में महाराजजी के बड़े श्रद्धालु भक्त होगए थे। ये चौधरीजी १५० गांवों के मालिक थे। जहां-जहां विशेष गाड़ी ठहरती थी वहां-वहां चौधरीजी और उनकी पत्नी इन्हें तीर्थों के दर्शन करने के लिए अपने साथ ले जाते थे। इन्होंने महाराजजी को अपने स्थान क्योटा (दरभंगा) चलने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अभी तो चलने से इन्कार कर दिया किन्तु कुछ दिन बाद वहां जाने का वचन दिया। श्री महाराजजी तीन दिन तक कलकत्ता में ठहरने के बाद नदिया शान्ति गए और वहां से वापस कलकत्ता आकर दरभंगा के लिए प्रस्थान किया। इसकी सूचना चौधरीजी को दे दी गई थी। वे अपने मित्रों सहित दलसिंह सराय पर स्वागतार्थ उपस्थित हुए। वहां से इन्हें क्योटा ले गए और अपनी ही कोठी में ठहराया। इनकी कोठी बड़ी सुन्दर थी और इनका रहन-सहन राजसी ढंग का था। कई हाथी और मोटरें थीं। कोठी के चारों ओर बड़ा सुन्दर बगीचा था। अतिथि-गृह कोठी से कुछ दूरी पर बनाया हुआ था। इनके पास २०६ सेवक थे जो इनका सब कारोबार करते थे। इनकी सम्पत्ति और गांवों का सब काम इन्हीं के हाथों में था।

चौधरीजी कभी-कभी महाराजजी को हाथी की सवारी करवाया करते थे और भ्रमण के लिए प्रायः इसी पर जाते थे। चौधरीजी ने बड़े रईसी ढंग से श्री योगीराजजी का आतिथ्य किया। किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। ब्रह्मचारीजी प्रायः नित्य ही इन्हें तथा इनके परिवार को उपदेशामृत का पान कराया करते थे।

पालतू शेर से बालिका की रक्षा--महाराजजी क्योटा में प्रायः बरांडे में बैठ कर स्वाध्याय किया करते थे। एक दिन एक सेविका चौधरीजी की सबसे छोटी पुत्री को गोद में लेकर महाराजजी के पास आशीर्वाद के लिए लाई। उसी समय एक सेवक शेर को सैर करवा रहा था। चौधरीजी को शिकार खेलने तथा जंगली जानवरों को पालने का बड़ा शौक था। जब यह शेर छोटा-सा ही था तब इसे पकड़कर ले आए थे। इसे मांस नहीं खिलाया जाता था। यह पूरा शाकाहारी था, मांसाहारी नहीं। अब यह बड़ा होगया था। सेविका की गोद में बालिका को देख कर मांस के प्रति उसकी सहज प्रवृत्ति जागृत होगई और नौकर के हाथ से सांकल छुड़ाकर उस बालिका पर झपटने के लिए भागा और एक झटका मारा। सेविका गिर पड़ी। उसने अपनी छाती के नीचे बालिका को झट से दबा लिया। इधर महाराजजी भी झट भागकर आए और अपने दोनों हाथों से शेर का गला पकड़ लिया और उसे धक्का देकर बहुत दूर गिरा दिया। बालिका तथा सेविका की रक्षा की और नौकर शेर को सांकल से खींचकर दूर ले गया और उसे बांध दिया। इन्होंने बालेश्वरप्रसादजी को समझाया कि हिंस्र जानवरों को इस प्रकार से खुला नहीं रखना चाहिए। इनका कोठी में रखना उचित नहीं है। यदि रखना ही हो तो पिंजरे में रखना चाहिए।

चौधरीजी की महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। ये अपने हाथों से इनकी सेवा करने में बड़ा गौरव मानते थे। इसमें ये बड़ा आनन्द अनुभव करते थे।

दरभंगा नरेश से भेंट—दरभंगा में एक बार एक सर्कस ग्राया था। चौधरीजी ने इसे देखने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इन्हें सर्कस, सिनेमा तथा खेल तमाशे देखने का बिलकुल शौक नहीं था। इस रुचि का इनमें नितांत ग्रभाव था। ग्रतः इन्होंने बात को टाल दिया। पर चौधरीजी के बार-बार ग्राग्रह करने पर जाने के लिए तैयार होगए। विशेष ग्राकर्षण तो दरभंगा जाने का दरभंगा नरेश से भेंट करने का था। चौधरीजी मैथिल ब्राह्मण थे ग्रौर दरभंगा भी ब्राह्मण राज्य था, ग्रतः ब्राह्मणत्व के नाते इनका दरभंगा नरेश से घनिष्ठ परिचय था ग्रौर दरभंगा नरेश की इन पर बड़ी कृपा थी। ये महाराजजी को उनके दर्शन करवाने के लिए ग्रपने साथ ले गए। नरेश इनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए ग्रौर ग्रपने राज्य का सारा इतिहास इन्हें सुनाया। दरभंगा वंश राजपूत नरेशों के पुरोहित हैं। राजपूताने के राजकुमारों को यज्ञोपवीतादि संस्कार ये ही करवाते हैं ग्रौर दान-दक्षिणादि प्राप्त करते हैं। दरभंगा राज्य बड़ा धनाढ्य तथा सम्पन्न राज्य था। शासन-प्रबन्ध भी यहां का उत्तम था। शासक बड़े विद्वान् ग्रौर सदाचारी थे। दरभंगा नरेश के साथ महाराजजी तथा चौधरीजी सर्कस देखने के लिए पधारे ग्रौर उसकी समाप्ति पर क्योटा चले गए। यहां पर कुछ दिवस निवास कर चुकने के पश्चात् महाराजजी ने नैपाल जाने की इच्छा प्रकट की। चौधरीजी इन्हें ग्रौर ग्रधिक ठहराना चाहते थे किन्तु इन्होंने महाराजजी के प्रस्थान की सारी तैयारी कर दी ग्रौर ग्रपने इष्ट-मित्रों तथा सेवकों सहित बड़े सम्मानपूर्वक ग्रमूल्य भेंट देकर ग्रौर पुष्पों के हार पहिनाकर दलसिंह सराय के स्टेशन से विदा किया।

नैपाल यात्रा

नैपाल जाने के लिए पासपोर्ट प्राप्त करना ग्रावश्यक होता था किन्तु शिवरात्री के ग्रवसर पर यह बंधन नहीं रहता था। महाराजजी के लिए चौधरीजी ने समुचित रूप से यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी थी। दलसिंह सराय से रेलगाड़ी में सवार होकर ब्रह्मचारीजी रिकसोल पहुंचे। इससे ग्रागे नैपाल राज्य प्रारंभ होता था। रिकसोल से तीस मील तक एक छोटी-सी रेलगाड़ी में सवार होकर नैपाल की राजधानी काठमण्डू से २० मील इधर तक पहुंचे। इससे ग्रागे बीस मील पैदल चलकर काठमण्डू पहुंचे। शिवरात्री के ग्रवसर पर ही ये यहां पहुंचे। शिवरात्री का पावन पर्व नैपाल में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था। सहस्रों सन्त महात्मा तथा गृहस्थी यात्री पशुपति मंदिर में इनके दर्शनार्थ जाते हैं। रिकसोल में मथुरा के चौबे किशनलाल से परिचय हुग्रा ग्रौर उसने महाराजजी के साथ ही यात्रा करने के लिए निवेदन किया। यह इनके व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुग्रा ग्रौर इन्हें ग्रपना गुरु मानने लग गया। इनके प्रति बड़ी श्रद्धा ग्रौर भक्ति होगई। गाड़ी का मार्ग समाप्त होने पर ये दोनों साथ ही चल दिए। किशनलाल ने इनका सामान उठा लिया ग्रौर ग्रावश्यकतानुसार भोजन भी इनके लिए यही बनाया करता था। काठमण्डू पहुंचने के लिए मार्ग एक बीहड़ वन में से जाता था। हनुमान गढ़ी के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई विशेष बस्ती मार्ग में नहीं थी। हनुमान गढ़ी पहुंचने से पूर्वही सूर्य नारायण ग्रस्ताचल को चले गए। एक बाघ इनके मार्ग को रोककर खड़ा होगया। एक बड़ी समस्या खड़ी होगई। महाराजजी के पास तो एक बड़ी मजबूत सोटी थी किन्तु किशनलालके पास कुछ न था

किन्तु वह बलवान तथा हृष्टपुष्ट और साहसी आदमी था। वह नित्य व्यायाम करता था। अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाता था। कई अखाड़े इसने जीते थे। वह पत्थर अथवा सोटी की सहायता के बिना ही बाघ के साथ जूझ गया। बाघ गुर्राता हुआ दोनों पंजों पर खड़ा होकर उसपर लपका। किशनलाल ने इसके दोनों पंजे पकड़ लिए और जोर से इसके पेट में लात मारी जिससे वह धड़ाम से भूमिसात् होगया। चौबेजी ने बाघ के मुंह में उसका पंजा दे दिया। यह उसके पेट पर बैठ गए और दोनों पंजे उसके मुंह में देने का प्रयत्न करने लगे। इतने में महाराजजी भागकर आए और उसके मुंह में अपनी सोटी डालकर उसे भीतर घुमा दिया। इससे उसका मुंह भीतर से घायल होगया और रुधिर की धारा बहने लगी। वह आध घण्टे में मृत्यु का ग्रास बन गया। किशनलाल ने इसे धकेलकर नीचे गिरा दिया। महाराजजी स्वयं अकेले ही इसका सामना करना चाहते थे किन्तु चौबेजी इन्हें गुरु मानते थे, इनमें बड़ी भक्ति रखते थे, अतः उन्होंने इन्हें बाघ के समीप जाने नहीं दिया। ब्रह्मचारीजी मार्ग में इन्हें उपनिषदों की कथा सुनाते रहे जिसका उनके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। दो दिन में ये काठमण्डू पहुंच गए।

शिवरात्रि महोत्सव—काठमण्डू में बाघमती नदी के किनारे हज़ारों साधु, सन्त और महात्मा ठहरे हुए थे। ये सब शिवरात्रि के महोत्सव में भाग लेने तथा दर्शन करने के लिए आए हुए थे। नैपाल सरकार की ओर से इस पर्व पर महात्माओं का बड़ा सत्कार होता था। यह महोत्सव लगभग एक मास तक मनाया जाता था। इस मेले में लाखों नर-नारी एकत्रित होते थे। नैपाल नरेश की ओर से अन्न के भण्डार खुले रहते थे। जो सन्त स्वयंपाकी थे उनको यहां से आटा, दाल, चावल, घी, लकड़ी आदि सामान दिया जाता था। कई दुकानें नियत कर दी गई थीं जहां से सन्त-महात्माओं को पूरी, शाकादि वितरण किया जाता था। राजकर्मचारी इतस्ततः घूम फिर कर इस बात का निरीक्षण करते थे कि महात्माओं को समय पर भोजन और रसद मिलती है या नहीं। महाराजजी बाघमती के किनारे एक उदासी सन्त के स्थान पर ठहर गए। किशनलाल भी उनके साथ था। इनके पास एक दक्षिणी साधु भी आकर रहने लगे। यह केवल संस्कृत में ही वार्तालाप करते थे। महाराजजी को भी संस्कृत संभाषण करने का बहुत अभ्यास था। ये दोनों सदैव संस्कृत में ही बातचीत करते थे। जो सन्त पास बैठे होते थे यदि वे संस्कृत से अनभिज्ञ होते तो उन्हें संस्कृत का हिन्दी में अनुवाद करके सुना दिया करते थे। महाराजजी के पास भी कई राजकर्मचारी भोजन इत्यादि के विषय में पूछने आए किन्तु इन्होंने अपनी भोजन व्यवस्था स्वयं ही की थी। इनके त्याग भाव को देखकर राजकर्मचारी बड़े प्रभावित हुए और इनके सत्संग में नित्य ही आने लगे। श्री महाराजजी ने एक दिन इन अफसरों के समक्ष, राज्य की ओर से महात्माओं को जो विदाई दी जाती थी उसे देखने की इच्छा प्रकट की। महोत्सव की समाप्ति पर नैपाल नरेश एक दिन साधुओं और संन्यासियों क विविध प्रकार की भेंटों से सम्मानित करके विदा करते थे। प्रायः रुपये, कम्बल, बिस्तर, कमण्डल, मृगचर्म, बाघम्बर, आसन, लोटा, गिलास, कटोरी आदि के रूप में भेंट दी जाया करती थी। राजकर्मचारियों ने महाराजजी के लिए महात्माओं की विदाई के उत्सव को देखने का प्रबन्ध करने का विचन दया। नैपाल में सैकड़ों मंदिर

हैं। नैपाल में ऐसी प्रथा प्रचलित है कि जब-जब राजपरिवार का कोई सदस्य देवलोक होता है तो उसके नाम पर मंदिर का निर्माण किया जाता है। इसलिए मंदिरों की यहां कमी नहीं है। ऊंचे-ऊंचे पर्वतों के बीच में लगभग २० मील लम्बा १७ मील चौड़ा एक बड़ा सुन्दर मैदान है। बाघमती नदी इसी के बीच में से प्रवाहित होती है। इस मैदान में तीन बड़े-बड़े नगर बसे हुए हैं—काठमण्डू, भत्तगांव तथा एक और छोटा सा नगर है। काठमण्डू नैपाल की राजधानी है। यहां पर बड़ा प्रसिद्ध पशुपतिनाथ का एक मंदिर है। शिवरात्रि का महोत्सव यहीं मनाया जाता है और इसी मूर्ति के दर्शन के लिए हज़ारों सन्त यहां आते हैं और लाखों की संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। मूर्ति पारस पत्थर की बनी हुई है। इस पर्व पर नैपाल नरेश तथा महारानी दोनों दर्शनार्थ आते हैं। बड़े भारी समारोह के साथ इनकी सवारी निकलती है। इस अवसर पर लाखों रुपया सन्तों और महात्माओं पर व्यय किया जाता है। शिवरात्रि के पश्चात् साधुओं तथा सन्यासियों को विदाई दी जाती थी। इन्हें पंक्ति बांधकर जहां विदाई बांटने का स्थान नियत होता था वहां जाना होता था। इसके लिए विशेष मार्ग बनाया जाता था। पुलिस का पूरा प्रबन्ध किया जाता था। राजकुमार तथा राज्य के प्रमुख अफसर विदाई वितरण करते थे। श्री महाराजजी के लिए भी बैठने का प्रबन्ध इन्हीं के पास कर दिया गया था। इन अफसरों के पास ही इनके लिए कुर्सी रख दी गई थी। विदाई के समय का प्रबन्ध बड़ा उत्तम था। बर्तन, बिस्तर, कमण्डल आदि के ढेर लगे हुए थे। थैलियों में रुपये बांधकर तैयार थे। राजकुमार तथा राज-कर्मचारियों ने साधुओं का यथायोग्य सत्कार किया। दर्शक अतिथियों के लिए बैठने का समुचित प्रबन्ध किया गया था। लाखों नर-नारी साधुओं के दर्शनार्थ आए थे। रात्रि के ९ बजे तक साधुओं को उनकी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का वितरण होता रहा। पीताम्बरधारी श्री महाराजजी ने आठ बजे वहीं से प्रस्थान करने की इच्छा प्रकट की। जब ये चलने लगे तब इनके पास एक राजकुमार आया और भेंट के लिए इनसे पूछा। किन्तु महाराजजी ने कहा, "हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। हम अपरिग्रह का पूर्ण पालन करते हैं और आवश्यकता से अधिक सामान अपने पास नहीं रखते हैं। हम तो यहां पर दर्शक के रूप में राज द्वारा साधु-सन्यासियों के सत्कार को देखने आए थे। यहां का सब प्रबन्ध, राजपरिवार की धर्म-निष्ठा, दानशीलता तथा सन्त-सेवा देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं अन्तर्यामी भगवान् से इस राज्य के लिए प्रार्थना करता हूं कि वे इसे सदैव समृद्धिशाली रखें, राजपरिवार बढ़े, फूले और फले।" महाराजजी के इन शब्दों से राजकुमार बड़े प्रभावित हुए और निवेदन किया कि "आप आधे घण्टे के लिए और यहां विराजें। मैं आपके लिए सवारी की व्यवस्था करता हूं।" इस राज्य में एक पांच सरकार तथा एक तीन सरकार कहलाती हैं। पांच सरकार महाराजा के रूप में तथा तीन सरकार राजमंत्री के रूप में। यह राजकुमार तीन सरकार का पुत्र था। यह राजकुमार प्रथम महाराजजी को अपने महलों में ले गया और वहां चाय-पानादि करवाकर आपका बड़ा सम्मान किया। इस राजकुमार के बहुत पत्नियां थीं किन्तु उसकी भोगे-च्छा की परिसमाप्ति नहीं होती थी। वह बड़ा परेशान सा था। उसने ब्रह्मचारीजी से इसकी समाप्ति तथा ब्रह्मचर्य पालन के सम्बन्ध में उपाय बताने के लिए निवेदन किया। इन्होंने एक घण्टा तक राजकुमार को उपदेश दिया और ब्रह्मचर्य-पालन तथा

भोगेच्छा की शान्ति के लिए कई उपाय बताए। १० बजे के लगभग राज की सवारी में विराजकर वे अपने निवास-स्थान पर पधार गए। दूसरे दिन नैपाल के मंदिरों के दर्शन करने के लिए गए। इस राज्य में महाराजजी १५ दिन तक रहे। कई सन्तों ने इनसे मुक्तिनाथ चलने के लिए कहा किन्तु ये उनके साथ नहीं गए और हरिद्वार जाने का निश्चय कर लिया। हरिद्वार में लगभग अढ़ाई मास तक मोहन आश्रम में ठहरे। इसके पश्चात् अमृतसर पधारे और वहां केवल एक सप्ताह ठहरकर काश्मीर के लिए प्रस्थान कर दिया।

पुनः काश्मीर निवास

रावलपिंडी में योगी अमरनाथ इनके अनन्य भक्त थे, अतः काश्मीर जाते तथा वहां से लौटते समय इनके पास कुछ दिवस अवश्य ठहरा करते थे। अबकी बार भी इनके पास कुछ दिवस तक निवास किया और तत्पश्चात् काश्मीर पधार गए। श्रीनगर में पंडित गोपीनाथ के पास ठहरे। इनका मकान कनिकदल में था। इन दिनों स्वामी सत्यानन्दजी महारज हजूरीबाग आर्यसमाज में ठहरे हुए थे। इनका स्वामीजी से बहुत पुराना परिचय था। योग के विषय में इनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। महाराजजी ने इस-लिए योग के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनसे निवेदन किया। रात्रि के आठ बजे से नौ बजे तक का समय इस कार्य के लिए निश्चित कर लिया गया। स्वामीजी महाराज ने इन्हें अपने सामने बिठाया और राम नाम का जाप करने का आदेश दिया। इसके पूर्व महाराजजी प्रणव जाप किया करते थे किन्तु अब इनके आदेश के अनुसार राम नाम का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। कभी-कभी तो ये दो-तीन घण्टे तक जाप करते रहते थे। एक दिन तो आर्यसमाज में जाप करने ८ बजे बैठे और प्रातः ३ बजे तक जाप करते रहे। लगभग २० दिन तक इस प्रकार से जाप करते रहे। इसके बाद स्वामीजी महाराज ने इन्हें अन्तिम उपदेश दिया और कहा कि अब आपकी आत्मा उद्‌बुद्ध होगई है, भविष्य में इसी प्रकार से जाप का अभ्यास करते रहना। ब्रह्मचारीजी आज्ञा लेकर चले गए किन्तु इस प्रकार के अभ्यास से इन्हें संतोष नहीं हुआ और न ही अपनी आत्मा में किसी प्रकार की विशेष जागृति ही अनुभव की। इसके पश्चात् इन्होंने राम नाम का जाप करना छोड़ दिया और पुनः प्रणव जाप प्रारंभ कर दिया। ये पुनः मुफ्ती बाग में ही पधार गए। यहां पर लगभग अढ़ाई मास तक मौन व्रत धारण किया। श्रीनगर में चार पांच दिन तक पंडित गोपीनाथ के पास ठहरे।

दीवाली के अवसर पर अमृतसर जाकर मोतीराम की बगीची में अपनी कुटिया में निवास किया। यहां पर पूर्ववत् कई मास का काष्ठ मौन किया। केवल अमावस्या और पूर्णिमा को ही बोलते थे। इस मौन-व्रत के काल में महाराजजी ने एक ही आसन में बैठकर कई-कई घण्टे की शून्य समाधि का अभ्यास किया।

अर्धकुम्भी पर हरिद्वार गमन

वैशाख मास में अर्धकुम्भी के अवसर पर महाराजजी हरिद्वार पधारे और रामानन्द धर्मशाला में ठहरे। यह धर्मशाला लण्ढोरे वालों की थी। ये लाला शिवसहाय के घनिष्ठ परिचित थे। इसलिए ब्रह्मचारीजी को इस धर्मशाला में कई कमरे मिल गए थे। इनके कई भक्त साथ थे। इस धर्मशाला में सुविधानुरूप इन सबको निवास के लिए

उचित स्थान मिल गया। भोजनोपरान्त महाराज मध्याह्न में इतस्ततः सन्तों, साधुओं के दर्शनार्थ चले जाया करते थे। कभी-कभी अमृतसर के भक्त भी इनके साथ हो लेते थे।

सन्त-समागम––घूमते फिरते एक दिन महाराजजी भीमगोडे चले गए। वहां पर एक सन्त मिले। सन्त ने इनसे कुछ पैसे मांगे। इन्होंने पूछा, "पैसे किस लिए चाहिएं ? यदि भोजन करना हो तो चलो आपको भोजन करवा दें।" इस पर उसने औषध के लिए पैसे लेने की इच्छा प्रकट की। जब महाराजजी ने औषध भी एक वैद्य से दिलवाने के लिए कहा तब उसने नाराज होकर कहा, "जाओ, अपना रास्ता नापो। मैं तुम्हारे जैसे नास्तिक से बात करना नहीं चाहता। मुझे तुमसे न पैसों की आवश्यकता है और न औषधि की।" महाराजजी के यह पूछने पर कि वे उन्हें नास्तिक क्यों समझते हैं, उन्होंने कहा कि नास्तिक के कोई सींग या पूंछ नहीं होती। इस पर इन्होंने कहा, बताइए तो फिर और क्या-क्या होता है ! सन्त ने कहा, "जब से तुमने सांख्य शास्त्र पढ़ा है तब से तुम्हारी भगवान के प्रति निष्ठा जाती रही है। तुम भगवान को सृष्टि का कर्ता, धर्ता, पालक, पोषक एवं संहारकर्ता नहीं मानते हो। अतः उसकी उपासना, प्रार्थना, भक्ति तथा ज्ञान प्राप्ति में भी प्रमाद करने लगे हो।" महाराजजी सन्तजी की बातें सुनकर एक प्रकार की चिन्ता-सी में पड़ गए, क्योंकि सन्त की बातें इन्हें ठीक-सी ही मालूम हो रही थीं। इन्होंने २-३ वर्ष पूर्व सांख्यदर्शन, विज्ञानभिक्षु-भाष्य और सांख्यकारिका पढ़ी थी। योग-साधना द्वारा भी कोई विशेष ज्ञान प्राप्त न होने के कारण कभी-कभी कुछ नास्तिक-सी भावना उत्पन्न होने लग जाती थी। ईश्वर के नाम-जाप आदि को भी बेकार-सा ही समझने लग गए थे। केवल प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध-विच्छेद को ही विशेष महत्व देने लग गए थे। ब्रह्मचारीजी ने सन्तजी से कहा, "मैंने ईश्वर-प्राप्ति के लिए अनेक साधनाएं की हैं, अनेक उपाए किए हैं, कई-कई घण्टे तथा दिन समाधिस्थ रहा हूं, किन्तु ईश्वर के विषय में आज तक कुछ भी ज्ञान प्राप्त न कर सका।" सन्त ने इस पर कहा कि गुरु के बिना इस ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। महाराजजी ने कहा, "मैं तो कई गुरुओं के पास गया किन्तु आज तक ईश्वर साक्षात्कार नहीं हुआ, इसलिए मुझे कुछ निराशा-सी होगई है। काश्मीर में गुरु अवधूत परमानन्दजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे बहुत कुछ मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ था किन्तु उनसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि वे शीघ्र ही अन्यत्र चले गए। उस समय मेरी बुद्धि भी कुछ परिपक्व न थी। उनके आदेशानुसार अब तक बहुत तप, त्याग और कठिन तपस्या तथा विविध साधनाएं करता रहा हूं किन्तु किसी प्रकार का विशेष ज्ञान प्राप्त न हो सका। यदि आप मुझे आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान करवा सकें तो मैं आज से ही आपका शिष्य बन जाता हूं। आप ही ऐसी कृपा करें। मैं आपके आदेशानुसार सब कार्य करने लग जाऊंगा।" सन्तजी ने हंसते हुए कहा, "मुझे कोई गुरु महाराज का आदेश नहीं मिला है जो आपको कुछ सिखाऊं।" महाराजजी ने पूछा, "आपके गुरु महाराज कहां रहते हैं ? यदि आप बताने की कृपा करें तो मैं वहीं चला जाऊं।" महाराजजी के पूछने पर पता चला कि सन्तजी के गुरुदेव तिब्बत में तीर्थापुरी की ओर रहते हैं। उन दिनों उन्होंने मौन व्रत लिया हुआ था। यह मौन आश्विन मास में खुलेगा। सन्तजी से यह भी पता चला कि आश्विन मास में वे कभी-कभी गंगोत्री की ओर आया करते हैं। महाराजजी ने यह सुनकर कहा, "मैं

तो गंगोत्री कई बार गया हूं। आस-पास के प्रायः सभी प्रदेशों को जानता हूं। वहां तो कोई ऐसे सन्त दृष्टि-गोचर नहीं हुए।" सन्तजी ने कहा, "इस वर्ष उनसे तुम्हारा समागम हो जाएगा।" मेरे पूज्य गुरुदेव जी बहुत वर्षों से तिब्बत में ही रहते हैं। वे वैष्णव सन्त हैं। बहुत वर्ष पहिले वे अयोध्यापुरी में रहते थे। इसके पश्चात् वे तिब्बत, हिमालय, कैलाश, मानसरोवरादि की यात्रा के लिए चले गए थे। पुनः लौटकर नहीं आए। इस बार गर्मियों में वे तीर्थापुरी से गंगोत्री की ओर आएंगे और आकर हरसिल के आस-पास रहेंगे। बहुत वृद्ध सन्त हैं। उनकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक है। प्रायः मौन ही रहते हैं। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ही बोलते हैं। आश्विन के अन्त में वे तिब्बत ही लौट जाएंगे। तिब्बती भाषा का उन्हें बहुत ज्ञान है, तिब्बतियों के साथ तिब्बती भाषा में ही बातचीत करते हैं। किन्तु आप तो यह भाषा जानते नहीं अतः आपसे तो वे संस्कृत में ही संभाषण करेंगे।" महाराजजी ने कहा, "क्या आप भी साथ चलोगे?" सन्तजी ने उत्तर दिया, "मुझे वे आज्ञा नहीं देंगे।" महाराजजी ने कहा, "तब वे मुझसे कैसे बोलेंगे और कैसे दर्शन की आज्ञा देंगे?" सन्तजी ने कहा, "हां, आपसे वे अवश्य मिलेंगे। मैंने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया इसलिए केवल मेरे लिए उनका द्वार बन्द है। सबके लिए नहीं।" महाराजजी ने इन सन्तजी की बातों पर पूर्ण विश्वास कर लिया क्योंकि उन्होंने इनके अन्तःकरण की सब बातें बतला दी थीं। सन्तजी ने कहा, "आप उनसे मिलने अवश्य जाइए, आपका कल्याण हो जाएगा। हरसिल आपने देखा है। उसके इधर श्यामगंगा है। उसके किनारे पर कहीं किसी गुफा में वे मिल जाएंगे। गुरु महाराज लम्बे कद के हैं। श्वेत उनकी जटाएं हैं। सिर के मध्य में केश अथवा जटाएं नहीं हैं। अति वृद्ध हैं। शरीर पतला तथा दुर्बल है किन्तु मुखमण्डल तेजस्वी तथा दीप्तिमान है। केवल कोपीन धारण किए रहते हैं। जब कहीं इधर-उधर जाना होता है तब चोला धारण कर लेते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। मस्तक विशाल है और सदैव प्रसन्न वदन रहते हैं। वे अन्न नहीं खाते। केवल कन्दमूल या फलाहार ही करते हैं। वे अपने साथ किसी सेवक या शिष्य को नहीं रखते।" महाराजजी ने जब उनका नाम पूछा तो सन्तजी ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें आम खाने हैं या पेड़ गिनने हैं? उनकी आज्ञा नहीं है कि उनका नाम अथवा विशेष परिचय किसी को दिया जाए।" उस सन्त की उपरोक्त बातों से महाराजजी के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे उन्हें बड़ा परोपकारी जीव समझने लग गए और उनसे पूछा कि आपको औषधि के लिए कितने रुपये की आवश्यकता है। सन्तजी को केवल ५-६ आने की ही जरूरत थी किन्तु इन्होंने २५) उन्हें देने चाहे पर उन्होंने नहीं लिए और कहा "अभी तो छः आने की जरूरत है। अधिक की जरूरत नहीं है। जब आवश्यकता होगी तो उस समय कहीं और से मिल जाएंगे।" इनके गुरुजी भी किसी से किसी भी प्रकार की भेंटपूजा ग्रहण नहीं करते थे। इन सन्तजी का नाम कृष्णदास था। महाराजजी ने इन्हें छः आने दे दिए और वहां से जाने की आज्ञा मांगी।

इन सन्तजी से वार्तालाप करने के पश्चात् महाराजजी के हृदय में पुनः वैराग्य भावना प्रचण्ड हो उठी। अब इन्होंने इधर-उधर जाना छोड़ दिया। मिलने-जुलने की इच्छा भी अब नहीं रही। गंगोत्री जाने का अब दृढ़ निश्चय कर लिया। अर्ध-कुम्भी के पश्चात् जाने की तैयारी कर ली।

आत्मज्ञानी गुरुदेव की खोज

महाराजजी ने अर्धकुम्भी के पश्चात् गंगोत्री जाने का दृढ़तापूर्वक विचार कर लिया था। गुरुदेव के दर्शन का समय आश्विन की संक्रान्ति था अत: ये प्रथम जमनोत्री चले गए। इनके पास अत्यन्त मामूली सा सामान था। इसे अपने कंधे पर रख कर प्रस्थान किया। जहां कहीं रात्रि हो जाती थी वहीं पर रात्रि व्यतीत कर लेते थे और जहां पर रमणीक एकान्त शान्त स्थान होता वहां कुछ अधिक ठहर जाया करते थे। भोजन चिरकाल से एक ही समय करते थे और इसे स्वयं बना लेते थे। जमनोत्री के मार्ग में एक शिमली नाम की चट्टी आती है। इसके समीप ही चीढ़ के वृक्षों का एक वन है। पर्वत शिखर पर एक छोटा-सा मैदान है। इसके आसपास भी चीढ़ के पेड़ हैं और नीचे जमना बह रही है। जमनाजी के किनारे बैठ कर श्री महाराजजी को बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। इस स्थान पर कुछ काल अभ्यास करने का विचार किया। बहुत दिनों के पश्चात् वृत्तियां पुन: शान्त हुई थीं। वैराग्य भावना भी एकदम प्रबल होगई थी। बहुत सा समय इधर-उधर पर्यटन में व्यतीत करने पर बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। अब यहां पर शान्त और समाहित होकर कई घण्टे की शून्य समाधि में बैठ गए। जब समाधि से व्युत्थान हुआ तो एक ग्रामीण सम्मुख भोजन लिए बैठा था। उसने प्रणाम करके निवेदन किया, महाराज! मैं बहुत देर से आपके लिए भोजन लिए बैठा हूं। इन्होंने उससे लेकर आधा भोजन तो स्वयं कर लिया और शेष प्रसाद रूप से उसे दे दिया। इस सज्जन ने महाराजजी से अपने घर पर ले जाने के लिए निवेदन किया। जब इन्होंने इस बात को स्वीकार न किया तब उसने नित्यप्रति दोपहर के भोजन को लाने के लिए आज्ञा मांगी। महाराजजी ने इसकी स्वीकृति दे दी। ये यहां पर लगभग एक मास तक ठहरे। यहां पर ये एक ही आसन पर बैठकर दस-दस घण्टे ध्यान में बैठा करते थे। सायंकाल ६ घण्टे अभ्यास में बैठते थे। इसके पश्चात् ये जमनोत्री चले गए। वहां केवल तीन दिन ही ठहरे क्योंकि वहां यात्रियों की बहुत भीड़ होगई थी। यहां से उत्तरकाशी पहुंच गए। वहां पर तेखला में ब्रह्मजी की कुटिया में ठहरे। वे हठयोग की क्रियाएं बहुत अच्छी जानते थे। महाराजजी के उत्तरकाशी पहुंचने पर वे कहीं अन्यत्र चले गए और एक कमरा इन्हें निवासार्थ दे गए। तेखला के पास ही एक छोटी सी नदी थी। इसके किनारे तीन गुफाएं थीं। एक दिन इन्हें महाराजजी देखने चले गए। एक गुफा के अन्दर फू फू की सी आवाज़ आ रही थी। इन्होंने समझा कि शायद कोई सांप फुंकार मार रहा है किन्तु पास जाकर देखा तो मालूम हुआ कि एक महात्मा गुफा द्वार की ओर पीठ करके भस्त्रिका प्राणायाम कर रहा था। प्राणायाम के पश्चात् इन महात्माजी ने आसन करने प्रारंभ कर दिए और एक घण्टा तक करते रहे। महात्माजी ने इनसे पूछा कि क्या आप इन आसनों से भिन्न आसन भी कोई जानते हैं? व्यासदेवजी ने कहा कि मैं ये सभी आसन कर सकता हूं। मैं दो सौ आसन तथा चालीस प्रकार के प्राणायाम जानता हूं। यह सुनकर महात्माजी ने बलपूर्वक कहा कि मैं "एक हजार प्रकार के आसन तथा बहुत प्रकार के प्राणायाम जानता हूं। आसन मैं यहां ही आपको दिखाता हूं।" ये ब्रह्मचारी दोनों हाथों पर खड़े होगए, फिर एक को उठाकर एक पर खड़े रहे। इसके पश्चात् हाथ के एक अंगूठे पर सारे शरीर को तोलकर दो मिनट तक

अडोल खड़े रहे। इसके पश्चात् कहा, एक प्राणायाम मैं आपको अभी गंगा-तट पर स्नान करते समय दिखाऊंगा। महाराजजी इन महात्मा जी के साथ गंगा-तट पर चले गए। इन्होंने गंगा-तट पर एक पत्थर पर बैठकर पद्मासन लगा लिया और एक नासिका से पूरक प्राणायाम करके अपने शरीर को फुला लिया तथा उछलकर गंगा के जल के ऊपर जा बैठे। ये जल के ऊपर बैठे-बैठे ही ३०० फीट तक जल के प्रवाह के साथ-साथ चलते रहे। इसके बाद शरीर को घुमाकर एक पत्थर के पास ले गए और उस पर दोनों हाथ रखकर उलट कर बैठ गए। जब उनको देखा तो मालूम हुआ कि उनका शरीर बिलकुल नहीं भीगा था, केवल पैर और जंघाएं ही थोड़ी-थोड़ी सी भीगी थीं। महाराज ने तब इनके चरण पकड़ लिए और क्षमा याचना की और कहा कि आप जैसे महात्माओं ने भारत वसुन्धरा के मस्तक को उन्नत किया है। इसके बाद महात्माजी और महाराजजी दोनों ने गंगा स्नान किया। महात्माजी ने कहा, "मैं आजकल आकाश-गमन की एक विशेष साधना कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि चार साल में मैं आकाश-गमन करने लगूंगा।" महाराजजी ने पूछा कि आप अधिकतर कहां रहते हैं। महात्माजी ने उत्तर दिया, "मैं ब्रह्मचारी हूं और आबू पर्वत पर रहता हूं। इधर तो केवल यात्रा करने चला आया था।" महाराज ने निवेदन किया, "आप आज मेरे पास ही भोजन करें।" वे स्वयंपाकी थे, किसी के हाथ का बना भोजन नहीं करते थे। दिन भर में केवल एक समय दो छटांक आटा और एक छटांक घी ही खाते थे और आठ दिन का भोजन अपने साथ उत्तरकाशी से ले आए थे, इसलिए इस निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया। महाराजजी ने ये आसन, प्राणायाम तथा आकाश-गमन की क्रियाएं सीखने की इच्छा प्रकट की। महात्माजी ने सिखाना स्वीकार कर लिया किन्तु कहा कि आपको आबू पर्वत पर मेरे पास जाकर रहना होगा। अभी तो महात्माजी गंगोत्री और बद्रीनाथ जा रहे थे अतः महाराजजी को अपना पता लिखवा दिया और कह दिया जब आपकी इच्छा हो तभी आ जाना। महाराजजी ने कहा, "मुझे भी हरसिल आश्विन की संक्रान्ति को एक महात्माजी से मिलने जाना है। उनसे योग सीखने की अभिलाषा है। इसके पश्चात् आपके पास उपस्थित हूंगा।" ये ब्रह्मचारी महात्माजी दूसरे दिन गंगोत्री चले गए और महाराजजी ने २० भाद्रपद तक वहां ठहर कर हरसिल के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर ब्रह्मचारी राजाराम के पास ठहर गए और सन्त महाराजजी की खोज करनी प्रारंभ कर दी।

गुरु दर्शन

हरसिल के पास ही बगोरी एक स्थान है। यहां पर नीलाङ्ग और तिब्बत से प्रायः लोग आते-जाते रहते हैं। ये लोग जाड़ कहलाते हैं। महाराजजी ने इनसे पूछा, क्या तीर्थापुरी से कोई महात्मा तो इधर नहीं आए हैं? उनमें से एक ने कहा, आए तो अवश्य हैं पर पता नहीं वे कहां पर हैं। इधर-उधर किसी कंदरा में जा बैठे होंगे। प्रायः मौन रहते हैं। खोज करने से पता लग जाएगा। हमने तो उन्हें कई दिनों से देखा नहीं है। थोड़ा-सा पता लगते ही महाराजजी ने श्यामगंगा के किनारे उनकी खोज प्रारम्भ कर दी। ढूंढते-ढूंढते आश्विन संक्रांति का दिन श्यामगंगा के किनारे

ही ग्रागया। महाराजजी बड़े चिन्तित हुए ग्रौर कुछ हताश से भी। किन्तु खोज का परित्याग नहीं किया। इधर-उधर खोजते हुए फिर रहे थे कि उन्हें दूर एक गुफा से धूंग्रा निकलता हुग्रा दिखाई दिया। महाराजजी को ग्रन्तःकरण से ग्रावाज-सी सुनाई दी जो कह रही थी कि उस गुफा में ही जाग्रो, वहीं तुम्हें उन महात्मा के दर्शन-लाभ होंगे। उस धूंए को लक्ष्य बनाकर ब्रह्मचारीजी उधर ही चल दिए। जब उस कंदरा के पास पहुंचे तो उसमें एक तेजोमयी दिव्य मूर्ति को पद्मासन लगाकर ध्यानावस्थित बैठे हुए देखा। दो लकड़ियों पर मिट्टी बिछाकर उसपर भोजपत्र ग्रास्तीर्ण करके उसपर ये तेजस्वी महात्मा ग्रासन लगाकर बैठे हुए थे। इनकी मुद्रा बड़ी शान्त थी ग्रौर ये निश्चेष्ट तथा निष्क्रिय थे। इनके प्राण की गति ग्रत्यन्त सूक्ष्म थी। ऐसा मालूम होता था मानो ये किसी बड़ी गहन ग्रवस्था में पहुंच गए हों। संसार के सभी कर्त्तव्य इनके समाप्त होगए थे। वे महापुरुष प्रकृति ग्रौर उसके कार्यों 'स्थूल तथा सूक्ष्म' दोनों पर ग्रौर सभी प्रकार की दूरियों पर विजय प्राप्त कर चुके थे। बड़े निस्पृह ग्रौर संसार से विरक्त होकर ग्रपनी ग्रन्तरात्मा या ग्रपने प्यारे भगवान में विलीन हुए से तादात्म्यभाव को प्राप्त हुए से प्रतीत हो रहे थे। हर्ष-शोक, मानापमान, हानि-लाभ, जय-पराजयादि किसी प्रकार का कोई भी द्वन्द्व इन्हें स्पर्श नहीं कर सकता था। प्राण, इन्द्रियों, मन ग्रौर शरीर में कहीं पर भी किसी प्रकार की चेष्टा दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो रहा था। श्री महाराजजी दो घंटे तक शान्तभाव से ग्राशाभरी दृष्टि से देखते रहे। पूज्य महात्माजी ने लगभग १२ बजे नेत्र खोले। ब्रह्मचारीजी ने खड़े होकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया ग्रौर बहुत देर तक भूमि पर ही पड़े रहे। महात्माजी ने ब्रह्मचारीजी से संस्कृत में पूछा, "उठो ! कहां से ग्रौर किस उद्देश्य से ग्राए हो ?" महाराजजी ने निवेदन किया, "ग्रापके दर्शन करने ग्राया हूं।" महात्माजी ने कहा, "दर्शन तो होगए, ग्रब जाग्रो।" ब्रह्मचारीजी ने पुनः निवेदन किया, "योग में मेरी बड़ी रुचि है। कई वर्ष से साधना तथा तपस्या कर रहा हूं किन्तु विज्ञान ग्रभी कुछ भी प्राप्त नहीं हुग्रा। समाधिकाल में कुछ शून्य-सी ग्रवस्था बनी रहती है। ग्रात्मा तथा परमात्मा का कुछ भी ज्ञान ग्राज तक मुझे प्राप्त नहीं हो सका है। ग्रब तो मैं सर्व प्रकार से निराश होगया हूं। यदि मुझ पर कृपा कर दें तो मेरा उद्धार हो सकता है ग्रौर जन्म सफल हो जाएगा। मैं इसे ग्रापका महान उपकार समझूंगा ग्रौर ग्रापका सदैव ऋणी रहूंगा। जब तक ग्रापसे मुझे सन्तोषपूर्वक कुछ प्राप्त नहीं होगा मैं ग्रापके द्वार से नहीं जाऊंगा। बड़ी भारी ग्राशा लेकर मैं ग्रापके चरणों में उपस्थित हुग्रा हूं।" इन शब्दों के साथ महाराजजी ने कुछ लड्डू श्रीचरणों में रख दिए। महात्माजी ने कहा, "मैं ग्रन्न नहीं खाता। केवल कन्द, मूल, ग्रालू, फलाहार ही खाता हूं। इसलिए ये लड्डू तो ग्राप उठा लें। ग्राप ही इन्हें खा लेना। ग्राज तो ग्राप इन्हें ले ग्राए किन्तु कल कौन लाएगा। ग्राप कुछ देर यहां ठहरें। मैं ग्रापका ग्रभी ग्रातिथ्य करता हूं।" इन्होंने कुछ कन्द गुफा के पास ही ज़मीन में नीचे दबाकर रखे हुए थे। इनको इन्होंने चिमटे से निकाला ग्रौर धूनी की ग्रग्नि में दबा दिया। यह ग्रालू के समान ही ग्राकार के मालूम होते थे। इसके बाद वे स्नानादि के लिए चले गए। ब्रह्मचारीजी भी ग्रपना सामान रखकर स्नान करने के लिए चल दिए। लगभग दो बजे के करीब महात्माजी ने इन कन्दमूलों को निकालकर छीला, कुछ ब्रह्मचारीजी को दे दिए ग्रौर शेष स्वयं खा लिए। इसके बाद महात्माजी ने इन्हें पास

वाली छोटी गुफा में विश्राम करने के लिए भेज दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल महात्माजी के श्रीचरणों में उपस्थित हुए और उनके आदेशानुसार रेत पर आसन बिछाकर बैठ गए।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ में
'प्रारम्भिक योग साधना' नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त ।।

तृतीय अध्याय

तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति

गुरुदेव से वार्तालाप—महात्माजी ने योग-मार्ग के काठिन्य और दुर्गमता की विशद व्याख्या की । कोई विरला ही इस मार्ग पर चल सकता है । इस पथ के पथिक प्रायः मार्ग में ही भटक जाते है । इस पथ पर चलते-चलते जब कभी भगवद्कृपा से कोई छोटी-सी विभूति मिल जाती है साधक उसी से चिपटकर बैठ जाते हैं और अपने यथार्थ लक्ष्य को भूल जाते हैं । संसार के भोगों से मानव कभी तृप्त नहीं होता । भोग एक मृगतृष्णा के समान है अतः इनसे विरक्त होकर सन्तोष-धन को प्राप्त करने में ही कल्याण हो सकता है और मानव जीवन के उद्देश्य को पूर्ण कर सकता है । मनुष्य का लक्ष्य भोग संग्रह नहीं किन्तु दुःख से मुक्ति है । नचिकेता के समक्ष यमाचार्य ने भोगजन्य पदार्थ प्रस्तुत किए किन्तु उसने सबको ठोकर मारकर एक आत्म-विज्ञान ही मांगा था । योग-मार्ग के पथिक की मांग केवल आत्मविज्ञान और ब्रह्मविज्ञान ही होनी चाहिए, अन्य कुछ नहीं । परन्तु इस प्रकार की भावना अत्यन्त कठिन है । इसके लिए बहुत बड़े बलिदान की आवश्यकता होती है । यदि आपका चित्त सांसारिक भोगों से उपराम हो चुका है, तभी आप योग और आत्मविज्ञान सीखने के अधिकारी हो सकते हो । अब तक आप बहुत भटक चुके हो । आज आपका इधर-उधर भटकना शान्त हो जाना चाहिए । अब संभव है आपको इतस्ततः भटकने की आवश्यकता न पड़ेगी । ब्रह्मचारीजी ने महात्माजी के चरण पकड़ लिए और नेत्रों से आंसू बहाते हुए हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "गुरुदेव ! मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा । सदैव आपका कृतज्ञ रहूंगा । जीवनपर्यन्त आपके आदेश का पालन करूंगा । सर्वदा सावधानता-पूर्वक आपके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता रहूंगा । आज मैं श्रीचरणों में आत्मसमर्पण करने में अपना महान् गौरव मानता हूं । किसी महान् पुण्य के परिणाम रूप ही आपकी कृपा लाभ हुई है । आपकी दया से मेरा कल्याण हो जाएगा । मैंने विज्ञान प्राप्ति के लिए बहुत साधना की किन्तु अभी तक मुझे सफलता लाभ नहीं हुई ।" गुरुदेव ने कहा, "पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट हो और इस जन्म में भी बाल्यकाल से ही यत्नशील हो । परमानन्दजी अवधूत ने कृपा करके आपको योग-मार्ग पर चला दिया था किन्तु आप फिर बीच में इस पथ से भटक गए ।" व्यासदेवजी ने निवेदन किया, "क्या आप इन अवधूतजी को जानते हैं ? आपको यह कैसे पता चल गया कि मैं काश्मीर में उनके पास साधना करता रहा हूं ?" गुरुदेव किंचित् मुस्कराए किन्तु कहा कुछ नहीं । ब्रह्मचारीजी ने विनीतभाव से पूछा, "महाराजजी ! आपके आहार पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है । इसमें न अन्न है, न घी, दूध है न शाक । ईश कृपा से इनके अभाव में भी आप स्वस्थ और दीर्घायु हैं ।" इस पर गुरुदेव ने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया, "धनिक

बहुत गरिष्ट भोजन करते हैं, फिर भी वे रोगी बने रहते हैं और अल्पायु होते हैं। वन-चर न अन्न खाते हैं न घी, और न दूध पीते हैं, न फल खाते हैं, तो भी वे कितने स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं! योगी के दीर्घायुष्य तथा स्वास्थ्य के कारण हैं—अल्पाहार, अल्प-व्यवहार, अल्प निद्रा, अल्प भाषण, अल्प परिश्रम, अल्प भोग, अल्प चिन्ता तथा अल्प कर्म।" व्यासदेवजी ने सप्रश्रय जिज्ञासा की, "महाराजजी, आप इतने एकान्त स्थान में क्यों निवास करते हैं?" गुरुदेव ने कहा, "एकान्त में भोक्तव्य पदार्थों और विषयों के साथ संपर्क नहीं होता।" व्यासजी ने निवेदन किया, "गुरुदेव, इनकी स्मृति तो हो सकती है?" गुरुदेवजी ने समझाया कि "मुमुक्षु योगी इन सब स्मृति-जन्य संस्कारों का असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा निरोध करता जाता है। निर्जन वन में रहने से भोक्तव्य पदार्थों का प्रायः अभाव ही रहता है। विशेष रूप से पदार्थ उपलब्ध नहीं होते हैं। पास न रहने से या सामने न आने से भोगने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती, इसलिए इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि सदैव शान्त रहती हैं। विषयों का सम्बन्ध न होने से या कम हो जाने से मन और बुद्धि के सब बाह्य व्यापार शान्त हो जाते हैं और अन्तर्मुख-वृत्ति बनी रहती है। वैराग्य के दृढ़ीकरण का भी अच्छा अवसर मिलता है। जीवनकाल में ही सब विषय-भोग अधिकार-पूर्वक छूट जाते हैं। ज्ञान तथा वैराग्य पूर्वक ही त्याग होना चाहिए।" व्यासदेवजी ने पुनः प्रश्न किया, "फिर तब तो ये कन्दमूल भी उपार्जन नहीं करना चाहिए।" गुरुदेव ने इस पर कहा, "यदि ऐसा न किया जाएगा तो यह आत्मघात की कोटि में गिना जाएगा। यह तो सामान्य भोग हैं। इनके बिना जीवन धारण करना ही कठिन है। यदि इतना भी न करता तो आपको लाभ कैसे होता?" ब्रह्मचारीजी ने कहा, "महाराजजी! इस प्रकार से तो आप लाखों को लाभ पहुंचा सकते हैं।" गुरुदेव ने उत्तर दिया, "यह साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अधिकारियों के मिलने पर निर्भर है।" व्यासदेवजी ने प्रार्थना की कि महाराजजी, आप मुझे आत्म-विज्ञान के विषय में भूमिका रूप में कुछ बताने की कृपा करें। गुरुदेव ने आदेश दिया, "कथन मात्र से ज्ञान नहीं होगा। केवल इतना ही जान सकोगे कि आपको क्या ज्ञान करवाया जाएगा।" इसके पश्चात् पूज्य गुरुदेवजी ने संप्रज्ञात समाधि द्वारा क्या-क्या साक्षात्कार करवाया जाएगा, यह समझाते हुए कहा:—

आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान का उपदेश—सर्वप्रथम हम आपको अपने मनो-बल द्वारा ध्यान और समाधि में प्रवेश करवाकर स्थूल शरीर के अन्दर प्रवेश करवाएंगे। संपूर्ण शरीर के नस-नाड़ियों और सप्त-धातुओं इत्यादि का प्रत्यक्ष ज्ञान करवाएंगे। आपको स्थूल शरीर का भली प्रकार साक्षात्कार हो जाएगा। आपके दिव्य-चक्षु खोलकर अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा आपको स्थूल शरीर के अन्दर के सब पदार्थों के दर्शन करवाए जाएंगे। तब ही वैराग्य और ज्ञान की प्राप्ति होगी। यह ही मोक्ष का हेतु बन सकेगा। इसके पश्चात् आपको १० चक्रों, प्राणोत्थान तथा कुण्डलिनी उत्थान का साक्षात्कार करवाया जाएगा। आप इन सबके विज्ञान को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाएंगे। इसके अनन्तर १० प्रकार के प्राण का विज्ञान, इनकी अपने-अपने प्रदेश में भिन्न-भिन्न क्रियाएं, भिन्न-भिन्न रंग-रूप और व्यापार का प्रत्यक्ष आपको होगा। स्थूल शरीर तथा प्राण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण के बिना स्थूल शरीर जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार स्थूल शरीर के लिए प्राण जीवन का हेतु है

इसी प्रकार तेज की भी शरीर में प्रधानता है। तेज अग्निभूत का कार्य है। ये दोनों संघात को प्राप्त होकर इस स्थूल शरीर की स्थिति-स्थापना के हेतु हैं। शरीर में पाकादि के सब कार्य इस तेज के द्वारा ही होते हैं। इसके अभाव में या न्यूनता हो जाने से स्थूल शरीर निर्जीव सा हो जाता है। उपरोक्त विज्ञान इस स्थूल शरीर में आप साक्षात् रूप से देखेंगे। इसके उपरान्त आपको सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करवाया जाएगा। यह मुख्य रूप से ब्रह्मरंध्र में स्थित है और गौण रूप से सम्पूर्ण स्थूल शरीर में। इसके सब व्यापार रंग रूप आदि दिव्य ज्योतियों का साक्षात्कार करोगे। इस सूक्ष्म शरीर में आपको ११ तत्त्व दिखाई देंगे। ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, पंचतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत), मन, बुद्धि, स्थूल भूत, इनके व्यापारों और सृष्टि की रचनादि का साक्षात्कार होगा। स्थूल और सूक्ष्म भूतों का और कार्य-कारण का साक्षात्कार भी आपको यहीं होगा। इसके अनन्तर आप हृदय प्रदेश में कारण-शरीर में प्रवेश करोगे। वहां पर आपको सूक्ष्म प्राण, अहंकार, चित्त, जीवात्मा, प्रकृति और ईश्वर का व्यष्टि रूप में प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। तदनन्तर आपको तीनों शरीरों से ऊपर उठाकर समष्टि पदार्थों का साक्षात्कार आकाश-मण्डल में होगा और अन्त में ३२ पदार्थों के कारण रूप प्रकृति में ब्रह्म के व्याप्य-व्यापक भाव की प्रत्यक्षानुभूति होगी और आप पूर्णरूपेण कृतकृत्य हो जाओगे।

लगभग तीन घण्टे तक उपरोक्त ज्ञान के विषय में गुरुदेव ने उपदेश दिया और सावधान होकर बैठने की आज्ञा दी। और कहा, अब आपको संप्रज्ञात समाधि द्वारा उपरोक्त पदार्थों का साक्षात्कार करवाया जाएगा।

संप्रज्ञात समाधि तथा कारण-कार्यात्मक प्रकृति-पुरुष का विज्ञान—श्री पूज्य गुरुदेव ने, सुखपूर्वक जिस आसन से बैठने का अभ्यास हो उससे बैठने की आज्ञा दी। ब्रह्मचारीजी गुरुदेव के समीप ही सुखासन से शान्त मुद्रा में बैठ गए और उनकी ओर त्राटक करके देखने लग गए। थोड़ी देर के पश्चात्, श्री गुरुदेव के अपने दाएं हाथ के अंगूठे और अंगुलियों से व्यासदेवजी के मस्तिष्क को स्पर्श करने पर, इनके नेत्र स्वतः ही बन्द होगए। इसके पश्चात् सभी बाह्य क्रियाओं का अभाव होगया। अपनी तथा गुरुदेव की भी सुध नहीं रही। मन, प्राण, इन्द्रियां, बुद्धि सब शान्त हो गए। मूलाधार में एक अलौकिक प्रकाश उत्पन्न हुआ जिससे संपूर्ण शरीर देदीप्यमान होगया और शरीर के भीतर का सब भाग प्रत्यक्ष होगया। इसके पश्चात् ब्रह्मरंध्र से प्रकाश की दिव्य धाराएं प्रवाहित होने लगीं और स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त होने लगा। शरीरस्थ सब पदार्थों का साक्षात्कार होगया। इस समय व्यासदेवजी को उस सब विज्ञान का साक्षात्कार हुआ जिसका सविस्तृत वर्णन इन्होंने आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान ग्रन्थों में किया है। ये सायंकाल ५ बजे से १० बजे प्रातः तक समाधिस्थ रहे। इन १७ घण्टों में समस्त विज्ञान प्राप्त किया। पूज्य गुरुदेव ने अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों से सिर को थपथपाया और कहा, "ब्रह्मचारी! आपका आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य पूरा होगया। आप उठो और अपने इच्छित गन्तव्य पथ पर जाओ। विज्ञान केवल इतना ही है जिसका आपको प्रत्यक्ष-रूपेण साक्षात्कार करवा दिया गया है। अब आप इसका एकान्त सेवन करके और मौनव्रत धारण करके दृढ़ीकरण करें।"

समाधि से व्युत्थान—ब्रह्मचारीजी के नेत्र खुल गए। उनसे अश्रुधारा बहने लगी। इनके शरीर में एक प्रकार का सन्नाटा-सा छा गया था। वाणी गद्गद् हो गई थी। श्री गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया और उनके चरणारविन्दों को अपने नेत्र-जल से धो दिया। गुरुदेव ने कहा, "बेटा ! यह अवसर तो रोने का नहीं है अपितु प्रसन्न होने का है। आनन्द और आह्लाद का है।" पूज्य गुरुदेव ने पुनः उन सर्व पदार्थों के विज्ञान को समझाया जिन्हें ब्रह्मचारीजी ने समाधिस्थ होकर देखा था। इस विज्ञान के पूर्वार्ध का व्यासदेवजी ने स्वरचित ग्रंथ 'आत्म-विज्ञान' में उल्लेख किया है। यह केवल व्यष्टि-विज्ञान के रूप में है और इसका सम्बन्ध केवल जीवात्मा से है। उत्तरार्ध समष्टि-विज्ञान का उल्लेख इन्होंने अपने 'ब्रह्म-विज्ञान' नामक ग्रंथ में किया है। श्री ब्रह्मचारीजी ने हाथ जोड़ और नतमस्तक होकर गुरुदेव से उनके चरणों में रहकर सेवा करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने आज्ञा नहीं दी क्योंकि वे किसी को भी अपने साथ नहीं रखते थे। व्यासदेवजी ने निवेदन किया, "आपने मुझ पर महान् उपकार किया है। मुझे कृतकृत्य किया है। मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके इस महान् ऋण को नहीं चुका सकूंगा। आप मेरे लिए साक्षात् भगवान् के रूप में अवतरित हुए हैं। मेरी वाणी में इतनी शक्ति नहीं है जिससे मैं आपके उपकार और गुणों का वर्णन कर सकूं।" पूज्य गुरुदेव ने अन्त में इतना आदेश और दिया कि "कुछ वर्ष एकान्त में रहकर काष्ठ मौन व्रत करके इस विज्ञान को दृढ़भूमि करना और दस नियमों का पालन करना क्योंकि इनसे यह विज्ञान दृढ़भूमि हो जाएगा। जिस प्रकार बाड़ खेत की रक्षा करती है उसी प्रकार से ये नियम साधक की रक्षा करते हैं।" श्री पूज्य गुरुदेव ने जिन नियमों के पालन की आज्ञा दी थी वे निम्नलिखित हैं :—

१. आलस्य और प्रमाद को त्यागकर श्रद्धा-भक्ति और प्रेम से इस विज्ञान को दृढ़ करना और प्रकृति-पुरुष के विवेक को दृढ़भूमि करके प्रकृति और इसके कार्यों के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना।

२. अभिमान का त्याग करना। नम्र और विनीत भाव रखना। क्रोध का दमन करना और सदैव शान्त, गंभीर, निश्चिन्त और प्रसन्न रहना।

३. युवती स्त्रियों के पास कभी एकान्त में मत बैठो। अष्ट प्रकार के मैथुनों से सदैव बचो।

४. गुरुजनों तथा सम्मानार्ह व्यक्तियों का सदा सम्मान करो। प्रत्यक्ष या परोक्ष में कभी उनकी निन्दा मत करो। महानात्माओं का सत्संग करो और ज्ञान तथा वैराग्य को दृढ़ करने का सदैव प्रयत्न करो।

५. परछिद्रान्वेषण कभी मत करो। आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने दोषों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहो।

६. योगविद्या का उपयोग जीविकोपार्जन के लिए कभी मत करना। यदि कभी कोई योग-सिद्धि प्राप्त हो जाए उसका न तो कभी अभिमान करना और न कभी उसका प्रदर्शन करना।

७. योग-विद्या गोपनीय है, इसे सदा गोप्य रखना। किसी उत्तम अधिकारी को

ही प्रदान करना जिससे वह फलवती हो। सांसारिक लोगों से विशेष संपर्क रखने की आवश्यकता नहीं। आवश्यक कार्य के अतिरिक्त अधिक पत्र-व्यवहार भी मत करना।

८. प्रतिदिन अथवा प्रतिसप्ताह अपना दोष निरीक्षण करते रहना चाहिए। एक मास में कितने दोषों का निवारण हो सकता है इसका हिसाब रखना चाहिए। इससे शीघ्र ही दोषों का क्षय होने लगता है।

९. इन्द्रियां विषयासक्त न होने पावें। यदि ज्ञान और विचार से इनका दमन न हो सके तो हठ तथा बलपूर्वक इनका दमन करना चाहिए। बुद्धि के विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, रागद्वेषादि का अहर्निश दमन करते रहना। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक, हानि-लाभादि द्वन्द्वों में साम्यभाव रखना। अपनी मनःशान्ति को कभी भी भंग न करना। प्रत्येकावस्था में शान्त तथा संतुष्ट रहने का प्रयत्न करना।

१०. यमों तथा नियमों का पालन करने में सदैव कटिबद्ध रहना क्योंकि ये योग की आधारशिला हैं। नित्यप्रति अष्टांग योग का अभ्यास करना। धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा नित्यप्रति प्रकृति के कार्य-कारणात्मक पदार्थ, प्रकृति-पुरुष विवेक और ब्रह्मविज्ञान को दृढ़भूमि करना। परम वैराग्यवान् होकर मोक्ष में स्थिर रहना। ये सब तुम्हारे ज्ञान और वैराग्य को दृढ़भूमि बना देंगे और तुम्हारी रक्षा करेंगे।

गुरुदेव का व्यक्तित्व—श्री गुरुदेवजी अत्यन्त सरल-स्वभाव थे। बहुत सरल संस्कृत बोलते थे। उनका विषय को समझाने का ढंग बड़ा आकर्षक था। वाणी में अलौकिक माधुर्य था। उनमें असीम वात्सल्य भाव था। स्नेह तथा प्रेमपूर्वक प्रत्येक बात को समझाते थे। त्याग, वैराग्य और विज्ञान की साक्षात् मूर्ति थे। वे निस्पृह, विरक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे और योगेश्वर थे। इनका शुभ नाम श्री आत्मानन्दजी था।

गुरुदेव से विदाई—श्री व्यासदेवजी ने पूज्य गुरु महाराजजी को उनकी आज्ञा का पालन करने तथा उनके बताए नियमों पर चलने का विश्वास दिलाया और निवेदन किया, "पूज्य महाराजजी! आपके श्रीचरणों से पृथक् होने को चित्त बिलकुल नहीं कर रहा है। आपके आदेश का पालन करने के लिए ही मैं आपसे विदा हो रहा हूं। आप मुझे सदैव अपना आशीर्वाद देने की कृपा करते रहिएगा और मुझे इस मार्ग पर चलने के लिए बल, शक्ति, पराक्रम, बुद्धि और धैर्य प्रदान करने का अनुग्रह करते रहिएगा जिससे आपका कृपापूर्वक प्रदान किया हुआ यह विज्ञान दृढ़भूमि होकर परम वैराग्य द्वारा मोक्ष प्राप्ति करा सके।" श्री गुरुदेव की चरण-वन्दना करके तथा उनके श्रीचरणों की रज अपने मस्तक पर सादर लगाकर व्यासदेवजी ने आंखों से अश्रुधारा बहाते हुए वहां से प्रस्थान किया।

थोड़ी देर चलकर श्यामगंगा के किनारे एक पत्थर के नीचे गुफा में ठहरने का विचार किया। दो दिन तक महाराजजी सोए नहीं थे अतः इसी गुफा में रात्रि को शयन किया। दूसरे दिन ब्रह्मचारीजी राजाराम के पास रहे और फिर वहां से गंगोत्री चले गए। वहां जाकर गौरी कुण्ड पर एक गुफा में निवास किया। यहां से कुछ दिनों के बाद पुनः उत्तरकाशी लौट आए और तेखला में ब्रह्मजी की कुटिया में निवास किया।

अमृतसर के लिए प्रस्थान

काष्ठ मौन व्रत--कुछ दिन उत्तरकाशी रहने के उपरान्त श्री महाराजजी अमृतसर चले गए और वहां पर मोतीराम की बगीची में निवास किया। यहां रहकर काष्ठ मौन व्रत धारण किया।

कठिन साधना का कार्यक्रम--श्री ब्रह्मचारीजी ने अब नमक, मीठा, शाक, सब्जी तथा फल इत्यादि खाने का परित्याग कर दिया था। केवल मूंग की दाल उबाल कर उसमें थोड़ा-सा घी डालकर ही भोजन के रूप में लेते थे। नित्यप्रति रात्रि के दो बजे जग जाते थे और स्नानादि करके ठीक तीन बजे अभ्यास में बैठ जाते थे। दोपहर के १२ बजे तक, पूज्य गुरुदेवजी ने जिन पदार्थों का विज्ञान करवाया था उनके समाधि द्वारा प्रयत्क्ष दर्शन करने का अभ्यास करते थे। ऊहापोह और तर्क-वितर्क द्वारा उन पदार्थों का निश्चय करके बुद्धि को निश्चयात्मक बनाते थे। समाधि से व्युत्थान होने के पश्चात् अग्निहोत्र करते थे। तदनन्तर भोजन बनाते, भोजन करके विश्राम करते थे। इसमें लगभग तीन घण्टे लगते थे। तीन बजे से पांच बजे तक पुनः अभ्यास करते थे। इसके पश्चात् ५ से ६ तक नहर के किनारे भ्रमणार्थ जाते थे। इस समय चादर से मुंह को ढककर चलते थे, किसी को देखने का प्रयत्न नहीं करते थे जिससे मन में किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न न हो सके। इसके पश्चात् पुनः ६ बजे से १० बजे तक अभ्यास करते थे। प्रातःकाल के समान ही इस समय भी अनुभूत विज्ञान का प्रत्यक्षीकरण होता था। १० बजे समाधि से उठकर दूध गर्म करके पीते और साढ़े दस बजे शयन करते थे। इन दिनों महाराजजी केवल साढ़े तीन घन्टे ही सोते थे। छः मास तक काष्ठ मौन रखा। केवल पूर्णिमा के दिन ही खान-पानादि की व्यवस्था करने के लिए ही मौन खोलते थे। वैशाख के अन्त में इस मौन व्रत की समाप्ति हुई। अब लाला शिवसहायमल के मकान पर नगर में जाकर रहने लग गए। कठिन तपस्या तथा अभ्यास के कारण अब मन सात्विक होगया था।

वरदान प्रदान--एक दिन डाक्टर कर्मचन्दजी महाराजजी से मिलने के लिए आए। ये छत्ती कुई के चौक में अंग्रेजी दवाइयों की दुकान करते थे। इनके अनन्य भक्त थे। इनके पुत्रियां तो कई थीं किन्तु पुत्रहीन थे। इन्होंने ब्रह्मचारीजी से निवे-दन किया कि मुझे भी आपकी तपस्या का कुछ अंश मिलना चाहिए। मैं पुत्रहीन हूं अतः आप मुझे अपना वरदान रूप आशीर्वाद दीजिए जिससे पुत्रवान हो सकूं। महा-राजजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। अपनी धर्म-पत्नी के गर्भवती होने की सूचना मुझे दे देना। मैं अपने मनोबल से परिवर्तन करने का प्रयत्न करूंगा।" इन्होंने कई प्रकार के मानसिक प्रयोग किए। ईश-कृपा से कर्म-चन्दजी के पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्यनिष्ठ योगियों के वरदान सदैव सफल होते हैं।

अमृतसर में महाराजजी ने इस बार कई व्यक्तियों को आशीर्वाद दिए जो सभी सफल हुए। लाला जगन्नाथ भी महाराजजी के बड़े भक्त तथा श्रद्धालु थे। इनकी एक लड़की थी जो आठ वर्ष की आयु की थी। इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और स्वभाव बड़ा चंचल था। वह भागकर महाराजजी के पास आई और अपना हाथ उनकी ओर फैलाकर कहा, "पण्डितजी, आप मेरा हाथ देखकर बताओ मेरी किस्मत

कैसी है।" यह अपने साथ अन्य कई बालकों और बालिकाओं को ले आई थी। महाराजजी को हस्त-रेखाओं का ज्ञान तो था नहीं पर यूं ही विनोद में बच्चों के हाथ देखते रहे। जगन्नाथजी की अष्टवर्षीया पुत्री कैलाशवती का हाथ देखकर कहा, "तुम्हें और पदार्थ तो सब ठीक मिलेंगे किन्तु पति तुम्हारा काना होगा।" समय पाकर जब वह विवाह के योग्य हुई तो उसका विवाह एक बड़े धनाढ्य परिवार में हुआ किन्तु उसकी एक आंख खराब थी। जो बात विनोद में कही गई थी वह भी सफल सिद्ध हुई।

लाला शिवसहाय का दौहित्र भोला एक बार महाराजजी के पास आकर अपना हाथ दिखाने लगा। इसने भी आसपास के बच्चों से सुना था कि ये हाथ देखते हैं। ब्रह्मचारीजी ने हाथ देखकर बताया कि तुम बहुत धनोपार्जन करोगे। उनका यह वरदान फलीभूत हुआ। यह बालक जब बड़ा होकर कारोबार करने लगा तो इसकी मासिक आय लगभग दस हजार थी और इसे लोग राजकुमार कहा करते थे। विदेशों से इसका बड़ा व्यापार होता था और एक बड़ा प्रख्यात उद्योगपति बन गया था।

इसी प्रकार लीलावती नाम की एक बालिका ने अपना हाथ महाराजजी को दिखाया, तब इन्होंने उससे कहा, तेरा पति तेरी आज्ञा में रहेगा। इसके साथ भी ऐसा ही हुआ। वह अब तक श्री महाराजजी का गुणगान करती रहती है।

इस काष्ठ मौन से महाराजजी की संकल्पशक्ति में बहुत वृद्धि होगई थी, इसीलिए भविष्य की बातें बहुत बताया करते थे।

काश्मीर गमन—महाराजजी प्रायः गर्मी के मौसम में काश्मीर और सर्दी के मौसम में अमृतसर आ जाया करते थे। इन दोनों स्थानों पर पूज्य गुरुदेव प्रदत्त विज्ञान को मौन व्रत धारण करके दृढ़भूमि करने में संलग्न रहते थे। सर्दियों में प्रायः अन्न खाना छोड़ देते थे। केवल फल, दूध, शाकादि ही भोजन के रूप में लेते थे। ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ में ही ये काश्मीर पधार गए और वहां जाकर काष्ठ मौन व्रत किया। पूर्ववत् मुफ्ती बाग में ही निवास किया। कई वर्ष इसी प्रकार अमृतसर और काश्मीर में मौन व्रत करके साधना करते रहे।

कैलाश तथा मानसरोवर यात्रा

पूज्य महाराजजी काश्मीर जाते हुए योगी अमरनाथ भसीन के पास रावलपिंडी में ठहरे। इन्हीं दिनों में स्वामी विशुद्धानन्दजी भी रामबाग में ठहरे हुए थे। इन दोनों ने कैलाश तथा मानसरोवर की यात्रा करने का विचार किया। रावलपिंडी से ये दोनों अमृतसर चले गए। एक दिन के लिए लाला शिवसहायमल के मकान पर निवास किया। उनकी सम्मति लेकर इन्होंने अलमोड़ा के लिए प्रस्थान कर दिया। यहीं से कैलाश-यात्रा प्रारंभ होती थी। अलमोड़ा पहुंचकर कम्पनी बाग के पास एक कोठी में ठहरे। यह कोठी बड़े एकान्त स्थान पर थी। यहां रहकर कैलाश-यात्रा की पूरी तैयारी की और ९ जून को इस यात्रा पर जाने का निश्चय किया। अलमोड़ा से पांच पैसे प्रतिमील के हिसाब से चार नैपाली कुली कर लिए। यहां से गर्व्यांग १५० मील है। मार्ग में प्रति ८-१० मील पर पड़ाव आते हैं। इनमें मुख्य ये हैं:—अस्कोट, धारचूला, खेला, इत्यादि। नित्यप्रति १५ मील चलते थे। अस्कोट और

धारचुला में दो-दो दिन ठहरे। ग्रस्कोट एक छोटी सी रिसायत थी। यहां का राजा बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति का था। कैलाश जाने ग्रौर ग्राने वाले सन्त-महात्माग्रों का बड़ा सम्मान करता था। उन्हें ग्रन्न-वस्त्र ग्रौर रुपये वितरित किया करता था। इन्होंने स्वामी विशुद्धानन्द तथा श्री ब्रह्मचारीजी को भी इस प्रकार की सहायता देनी चाही थी किन्तु इन दोनों ने ही स्वीकार नहीं की।

बिछड़े हुए राजपूतों का पुनः धर्म-प्रवेश—धारचुला के कई राजपूत घराने ईसाई बन गए थे। वे पुनः हिन्दू धर्म में ग्राना चाहते थे, किन्तु यहां के राजपूत इनसे बहुत घृणा करते थे इसलिए इन्हें पुनः हिन्दू धर्म में लेना नहीं चाहते थे। ये सब एकत्रित होकर श्री महाराजजी के पास ग्राए ग्रौर निवेदन किया, "महाराज, हम लोभ के वशीभूत होकर ईसाई बन गए थे। ग्रपनी मूर्खता पर हमें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। ग्राप हमारे जाति-भाइयों को समझावें ग्रौर पुनः हमारा प्रवेश हिन्दू धर्म में करवाने की कृपा करें। हमारे धर्म परिवर्तन से यहां के हिन्दू हमसे बहुत घृणा करने लग गए हैं। हमारे साथ ये किसी भी प्रकार का व्यवहार रखना नहीं चाहते। हमारा यहां पर रहना बड़ा कठिन होगया है। हमारी शुद्धि करके ग्राप पुनः हिन्दू धर्म में हमारा प्रवेश करवा दें। हम ग्रापका बड़ा उपकार मानेंगे।" महाराजजी के मन पर इनकी प्रार्थना का बहुत प्रभाव पड़ा ग्रौर स्वामी विशुद्धानन्दजी से कहा, इन्हें शुद्ध करके हिन्दू धर्म में सम्मिलित करना एक बड़ा पुण्य-कार्य होगा। ये गोभक्षक से गोरक्षक बन जाएंगे। यहां पर ४-५ दिन ठहरकर इन्हें हिन्दू धर्म पर उपदेश देना चाहिए ग्रौर एक बृहद् यज्ञ करके तथा इनसे प्रायश्चित्त करवाकर इन्हें पुनः हिन्दू धर्म में प्रविष्ट करना चाहिए। महाराजजी की बातें सुनकर ये सब बड़े प्रसन्न हुए ग्रौर एक दिन में ही यज्ञ के लिए बहुत सी धनराशि एकत्रित कर ली। घी, सामग्री तथा समिधादि सब यज्ञ-साधन जुटा लिए। इन सब लोगों को तीन दिन तक व्रत रखवाया गया, जाप करवाया गया ग्रौर हिन्दू धर्म की महत्ता पर तीन दिन तक उपदेश दिए गए। इन सबने मांस तथा मदिरा का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की। लगभग एक सौ नरनारियों की शुद्धि की गई। इसके पश्चात् एक बृहद् प्रीतिभोज किया गया जिसमें शुद्ध होने वाले ईसाइयों के ग्रतिरिक्त सत्तर के लगभग हिन्दू परिवार भी सम्मिलित हुए थे। सबने एक ही स्थान पर बैठकर प्रीतिपूर्वक भोजन किया। इनके हिन्दू जाति में प्रविष्ट होने पर सबने खुशी मनाई ग्रौर उनके साथ फिर से रोटी बेटी का सम्बन्ध स्थापित होगया। श्री महाराजजी का दृष्टिकोण बड़ा उदार है। संकुचित भावनाएं उन्हें कभी स्पर्श तक न कर सकी थीं। उनकी धार्मिक तथा सामाजिक उदारता बड़ी उच्चकोटि को पहुंची हुई थी।

धारचुला में जहां पर योगी सीयारामजी ने ग्रपना शरीर छोड़ा था उस स्थान को देखने के लिए महाराजजी पधारे। सीयारामजी के साथ इनका बहुत पुराना परिचय था। उनके प्रति श्रद्धा भी थी। इस स्थान पर पहुंचते ही इन्हें उनका स्मरण होगया ग्रौर उन्होंने जहां पर प्राणत्याग किए थे उस स्थान को देखने के लिए गए। सन्त सीयारामजी को हैज़ा होगया था। जो भक्त इनके साथ थे उन्हें भी इसी रोग ने धर दबाया था। धारचुला ग्रलमोड़ा से एक सौ मील है। यहां से ग्रागे जीयति का मार्ग बड़ा कठिन है। बड़े विशाल पर्वतों के ऊपर चढ़ना था। बड़ी कठिनाई के साथ

१६-१७ दिन में गर्व्यांग पहुंचे। यहां से कुलियों को दाम चुकाकर वापस कर दिया, इससे आगे खच्चरों और घोड़ों का रास्ता था। यहां से लगभग एक सौ मील कैलाश था। गर्व्यांग की ऊंचाई लगभग १०-११ हजार होगी। यहां ऊंचाई के कारण शीत बहुत होता है। गर्व्यांग एक छोटा-सा गांव है। जनसंख्या बहुत कम है। यहां के लोग तिब्बत से व्यापार करते हैं। क्षत्रियों की संख्या अधिक है। ये लोग धनाढ्य हैं। यहां पर एक डाकखाना भी है। गर्व्यांग भारत की सीमा की अन्तिम चौकी है। यहां से कैलाश जाने के लिए प्रायः यात्री एक संघ बनाकर जाया करते हैं, अतः यहां पर इन्हें १०-१२ दिन तक रुकना पड़ा जिससे सब यात्री इकट्ठे होकर यहां से कैलाश के लिए प्रस्थान कर सकें। यहां से आगे लिपूलेक-लिपूधूरा नाम का एक अट्ठारह हजार फीट ऊंचा पहाड़ है। इस पर्वत के उस पार तिब्बत तथा इस पार भारतवर्ष है। यह पर्वत दोनों देशों की सीमा पर है। ६-७ दिन में एक सिंधी सेठ, एक बिहार का डाक्टर तथा ३-४ साधु एकत्रित हो सके। ये कुल मिलाकर ८-१० यात्री थे। उस ओर चोर तथा डाकुओं का बड़ा भय रहता था। इसीलिए यात्री एकत्रित होकर जाया करते थे। यहां से श्री ब्रह्मचारीजी तथा स्वामीजी ने दो-दो खच्चरें अपना सामान ले जाने के लिए तथा एक-एक घोड़ा सवारी के लिए किराए पर लिये। इससे आगे आबादी बहुत कम थी अतः खाद्य पदार्थ यहीं से खरीद लिए थे। ऊपर पहाड़ पर सब सामान यहीं से जाता था। यहीं से एक पथप्रदर्शक भी साथ ले लिया। एक छोलदारी भी यहीं से ले ली। डाकुओं से आत्मरक्षा करने के निमित्त से बन्दूक, तलवार, पिस्तौल, बर्छी, कारतूसादि सब किराए पर साथ रखे। खच्चरों और घोड़ों के चालक तथा पैदल और घोड़ों पर जाने वाले मिलाकर कुल १६ व्यक्तियों का एक संघ बना। पहिला पड़ाव काली नदी पर किया। यह वहां से १० मील पर थी। वहां पर सायंकाल ५ बजे पहुंचे। रात्रि को सबने वहीं पर विश्राम किया। दूसरे दिन अट्ठारह हजार फीट की ऊंचाई पर चढ़ना था। मार्ग बड़ा दुर्गम था। पर्वत के ऊपर बर्फ जमी हुई थी। इसी पर इन सब यात्रियों को चलना था। प्रातःकाल जब चढ़ाई प्रारम्भ की तो वर्षा होने लगी। इतना ही नहीं, उस समय बर्फ भी पड़ने लगी। बड़ी कठिनाई के साथ जैसे-तैसे लिपूधूरे की चोटी पर पहुंचे। बर्फ पड़ने के कारण मार्ग का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, इसलिए इन्हें पर्वत-शिखर पर ही रुकना पड़ा। चारों ओर बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर हो रही थी। कहीं भी सूखी भूमि दिखाई न दे रही थी। तम्बू लगाने के लिए भी कोई स्थान वहां पर न था। नई बर्फ ने पुराना मार्ग आच्छादित कर दिया था। पथप्रदर्शक भी आगे जाने के लिए तैयार न था। किसी व्यक्ति अथवा खच्चर या घोड़े के बर्फ में दबकर मर जाने का भय था, इसलिए उसने सलाह दी कि आगे बढ़ना भयोत्पादक है अतः जैसे-तैसे यहीं पर पड़ाव डाला जाए। अब बर्फ को हटाकर छोलदारियां लगाने का विचार किया गया। बड़ी कठिनाई से बर्फ को हटाकर छोलदारियां लगाई गईं। बर्फ हटाते-हटाते हाथ निःसंज्ञ-से होगए थे। प्रायः सभी यात्रियों को शिरपीड़ा ने धर दबाया। इनके पास आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक आदि अनेक औषधियां थीं। इस पीड़ा के निवारण के लिए विविध औषधियों का उपयोग किया गया किन्तु कोई भी सफल नहीं हुई। सभी यात्री इस पीड़ा से व्याकुल हो रहे थे। दुभाषिया बेचारा भी बड़ा परेशान था क्योंकि कभी इस मौसम में इतनी बर्फ नहीं पड़ी थी। और न कभी इस स्थान पर पड़ाव ही किया था। यह दुभाषिया प्रायः यात्रियों के

संघों के साथ प्रतिवर्ष आया करता था। उसके लिए यह एक अभूतपूर्व बात थी। उसने महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी, इस प्रकार से बर्फ इस मौसम में कभी नहीं पड़ी। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हमारे संघ में कोई पापिष्ठ व्यक्ति है। इसी से असमय में यह भयंकर हिमपात हो रहा है।" महाराजजी ने कहा, "पापी तो एक दो ही होंगे किन्तु उनके पाप का दण्ड हम सबको भोगना पड़ रहा है।" सब यात्रियों ने अपनी-अपनी छोलदारियों में स्टोव जलाकर शरीर को जैसे-तैसे गर्म करने के लिए चाय पी। महाराजजी का दुभाषिया उनकी सभी प्रकार की सेवा करता था। बिस्तर बांधना, घोड़े पर सवारी करवाना, टैंट लगाना, जल लाना, बर्तन साफ करना आदि सब काम वही करता था। इसका नाम कीर्त्तसिंह था। सदा प्रसन्न-वदन रहता था और बड़ा सज्जन था। बड़ी श्रद्धा से महाराजजी की सेवा-सुश्रूषा करता था। अपने जीवन के पूर्वभाग में यह २६ साल तक कैलाश-मानसरोवर के मैदानों में रह चुका था और डाके मारकर अपना निर्वाह किया करता था। यही उसकी आजीविका का मुख्य साधन था। एक सन्त के उपदेश ने इसके जीवन में महान् परिवर्तन ला दिया और यह दानव से मानव बन गया। डाके डालना छोड़ दिया, धर्मपूर्वक आजीविको-पार्जन करने लग गया। अधार्मिक जीवन का परित्याग करके धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करने लग गया था। असत्य को छोड़कर सत्यवादी और सरल बन गया था। अब यह जो सन्त कैलाश-मानसरोवर की यात्रा करने आते थे उनका दुभाषिया बनकर उनके साथ जाया करता था। जो कुछ वे दे देते थे उसी पर सन्तोष कर लेता था। प्रतिदिन एक रुपया तो यह लेता था और इसका भाई कंचनसिंह आठ आना लेता था। यह खच्चर चलाता था। सभी यात्री तथा घोड़े और खच्चर भूख के मारे व्याकुल हो रहे थे। शरीर निःसंज्ञ तथा निश्चेष्ट से हो रहे थे। कहीं घास या लकड़ी दिखाई नहीं देती थी जिसको जलाकर शरीर को गर्म किया जा सके या थोड़ा-बहुत भोजन तैयार किया जा सके। खाद्य-सामग्री तो सभी साथ थी किन्तु भोजन बनाने की बड़ी कठिन समस्या सामने थी। दाल-चावल बनाने का विचार किया किन्तु वे यहां के पानी से पकते ही न थे। जैसे-तैसे स्टोव पर बेसन के पकौड़े बनाकर इनकी रसदार सब्जी बनाई गई और स्टोव पर ही जैसे-तैसे रोटियां तैयार की गईं। इस अढ़ाई मास की यात्रा में प्रायः एक ही प्रकार का भोजन किया। इसमें परिवर्तन करने का कोई साधन ही प्राप्त न था। लिपू पर्वत पर बड़ी भयंकर बर्फ पड़ रही थी, अतः रात्रि में कोई भी शयन नहीं कर सका। बर्फ को झाड़ने के लिए थोड़ी-थोड़ी देर में छोलदारियों को सोटी से हिलाना पड़ता था। प्रतिघण्टा छोलदारियों के बर्फ में दब जाने का भय बना रहता था। स्वामी विशुद्धानन्दजी शीत के आधिक्य से बहुत घबरा गए थे। इन्होंने महा-राजजी से कहा, "मेरा तो शीत के कारण रक्त जम गया है। सारा शरीर चेष्टाहीन होगया है। किसी भी प्रकार से इसे गर्म करने का उपाय करो, अन्यथा मेरी मृत्यु मुझे बहुत समीप दिखाई दे रही है।" कोई उपाय समझ में नहीं आरहा था। श्री महाराजजी ने अपना तथा स्वामीजी का बिस्तर इकट्ठा करके दोनों बिस्तरों को एक दूसरे के ऊपर बिछा दिया और इस प्रकार एक ही बिस्तर पर दोनों लेट गए। ब्रह्मचारीजी ने अपने शरीर की उष्णता से स्वामीजी के शरीर को गर्म किया किन्तु उन्हें रातभर नींद नहीं आई। यही अवस्था दूसरे यात्रियों की भी थी। सभी ओर से हाय-हाय की आवाज आ रही थी। दूसरे दिन १० बजे तक निरन्तर बर्फ गिरती रही। सभी यात्री बड़े

व्याकुल होगए थे और वहीं से लौट जाने का विचार कर रहे थे । केवल महाराजजी दृढ़निश्चयी थे । उन्होंने कठिनाई तथा संकट से डटकर मुकाबला करने का पाठ पढ़ा था । जीवन में बड़े कठिन संघर्षों के घातों और प्रतिघातों को उन्होंने सहा था । भगवान् में उनका अटल विश्वास था । उनमें अद्भुत साहस और अलौकिक धैर्य था । विपत्ति में घबराना वे जानते ही न थे । हंसते-हंसते संकटों को झेलना वे जानते थे । जिस काम को करने का एक बार निश्चय कर लेते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे । जो बात एक बार कह देते थे उसे करके ही शान्ति करते थे क्योंकि 'रामो द्विर्न विभाषते' पर सारा जीवन इन्होंने अनुष्ठान किया था । फिर इनका उद्देश्य केवल यात्रा करना ही नहीं था । आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान के प्रदाता अपने पूज्य गुरुदेवजी को वे जहां भी हों उनकी खोज करके उनके दर्शन करना और उनके चरणों में उनकी महती कृपा के लिए धन्यवाद अर्पण करना ही उनकी इस यात्रा का मुख्योद्देश्य था । अतः वे अपना पग पीछे उठाना नहीं चाहते थे । खच्चर और घोड़ों के स्वामी भी पीछे लौटना नहीं चाहते थे क्योंकि यात्रियों को ले जाना तथा बोझा ढोना ही उनकी आजीविका थी । इन सबने तथा दुभाषिए और गाजीपुर के एक डाक्टर ने महाराजजी के साथ जाने का निश्चय किया । धीरे-धीरे सभी यात्री मानसरोवर जाने के लिए तैयार हो गए । अब मार्ग ढूंढने की बड़ी समस्या सामने उपस्थित होगई । पुरानी बर्फ पर नई बर्फ की कई-कई फुट तक एक मोटी तह जम गई थी, अतः मार्ग का पता लगाना बड़ा कठिन था । किसी प्रकार भी गन्तव्य मार्ग का निश्चय करना एक जटिल समस्या बन गई थी । दो खच्चर वालों को मार्ग का पता लगाने और बर्फ हटाने के लिए आगे भेजा गया । इनके पीछे दो घोड़े वालों को भेजा । जहां कहीं ये लोग बर्फ में धंसते हुए से मालूम होते थे वहीं पर सारा संघ रुक जाता था । उन्हें बर्फ से निकाल कर आगे बढ़ते थे । कहीं-कहीं घोड़े भी बर्फ में धंस जाते थे । उनका सामान उतारकर उन्हें बर्फ से निकाला जाता था । दोपहर के बारह बजे प्रस्थान किया । चार मील तक बराबर बर्फ में ही चलना पड़ा । लिपू-धूरे की उतराई पर एक मैदान है । उसमें एक चश्मा बहता है । उसी के पास पड़ाव डालने का निश्चय किया गया । यहां पर घोड़े और खच्चरों के लिए थोड़ा घास था । बेचारे भूखे पशुओं को आज कई दिन में घास प्राप्त हो सका और यात्रियों को भी इसी स्थान पर शान्ति लाभ हुई । यहीं आकर सबको सुखपूर्वक नींद आई । यह स्थान लगभग पन्द्रह हजार फीट ऊंचा था । आबादी यहां पर नहीं थी । यहां से प्रस्थान करके चौथे दिन तकलाकोट पहुंचे । यहां पर व्यापारियों की एक मण्डी लगा करती है । इस समय तक केवल लालसिंह और नन्दराम ही यहां पहुंच सके थे । ये दोनों व्यापारी थे । ये दोनों भाई बड़े सज्जन थे । साधुओं के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी । सभी यात्री यहां पर दो दिन ठहरे । तकलाकोट की पहाड़ी पर एक बड़ा मन्दिर है । सभी इसके दर्शन करने के इच्छुक थे । छोलदारियां इसी मैदान में लगा दी गईं । लालसिंह और नन्दराम से बहुत देर तक तिब्बत के सम्बन्ध में बातचीत होती रही । ये दोनों बहुत अच्छी हिन्दी बोलते थे और इस प्रदेश के बड़े धनाढ्य व्यापारियों में इनकी गणना थी । इनसे पता चला कि मंदिर में एक बड़े सन्त रहते हैं । दूसरे दिन ९-१० बजे के लगभग महाराजजी अपने दुभाषिए को साथ लेकर मंदिर में सन्तजी के दर्शनार्थ गए क्योंकि ये सन्त हिन्दी नहीं जानते थे ।

तकलाकोट में एक योगी से भेंट––महाराजजी मंदिर के दर्शन करके सन्तजी के पास जाकर बैठ गए। ये महात्मा चौबीस घण्टे बारह महीने एक चौकी पर बैठे रहते थे। यह चौकी एक गज लम्बी तथा इतनी ही चौड़ी थी और ५-६ इंच ऊंची थी। इसके ऊपर एक जंगला लगा हुआ था। इसी चौकी पर बैठकर ये महात्मा जाप, ध्यान और साधना करते थे। यह चौकी ही इनका पलंग और यह चौकी ही इनका घर था। इन सन्तजी के साथ महाराजजी का निम्नलिखित वार्तालाप हुआ :––

महाराजजी––आप इस चौकी पर ही इतनी कठिन साधना क्यों कर रहे हैं ?

सन्तजी—मैंने मन को दमन करने और इन्द्रियों पर अधिकार पाने के लिए यही उपाय उत्तम समझा है। यह मन बेलगाम घोड़े के समान मनुष्य को जीवन भर परेशान करता रहता है। इसको जब तक किसी खास नियम में न बांधा जाए तब तक यह वशीभूत नहीं होता।

महाराजजी––वश में होने से क्या लाभ होगा ?

सन्तजी––सर्ववृत्तिनिरोध हो जाएगा और इसके सब व्यापारों का अभाव हो जाएगा और तब यह शान्त होकर स्थिर हो जाएगा। इसमें स्थायी रूप से एकाग्रता आने लगेगी और अपने स्वरूप में इसकी स्थिति हो जाएगी।

महाराजजी––क्या आप अपना स्वरूप बता सकते हो, क्या और कैसा है ?

सन्तजी––लो, यह मिश्री का टुकड़ा है, इसे अपने मुंह में रख लो और मुंह को बन्द कर लो। फिर मुझे बताओ कि इसका स्वाद कैसा है ? जिस प्रकार आप मुख और वाणी को खोले बिना इसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकते, इसी प्रकार स्वरूप स्थिति का वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे मानसिक चिन्ता के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, कितनी लम्बी और चौड़ी है, चौकोर या गोल है इत्यादि, इसी प्रकार स्वरूप स्थिति का वर्णन करना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है।

महाराजजी—इस स्थिति में पहुंच जाने पर विविध सिद्धियां प्राप्त हो जाती होंगी। आपको भी ये सिद्धियां बहुत प्राप्त होगई होंगी।

सन्तजी—हां, हुईं तो थीं किन्तु ये अत्यन्त विक्षेप का हेतु सिद्ध हुईं।

महाराजजी—कैसे ?

सन्तजी—संकल्प बल से रोगियों के रोग दूर कर दिया करता था, इससे सदा उनका तांता बंधा रहता था और ध्यानाभ्यास में बाधा पड़ने लगी।

महाराजजी—आप मनोबल से किस प्रकार काम लेते थे ?

सन्तजी—रोगी आकर दन्डवत् प्रणाम करते थे और मैं अत्यन्त वात्सल्यभाव से शनैः शनैः पीठ पर बार-बार हाथ फेरता था और रोग को समूल नष्ट कर देता था। किसी प्रकार के औषधोपचार की आवश्यकता न होती थी। रोगी स्वस्थ होकर चला जाता था।

महाराजजी—क्या और भी कोई सिद्धि प्राप्त हुई है ?

सन्तजी—जहां तक आकाश या मैदान में मेरी दृष्टि पहुंचती थी वहां तक मैं वृष्टि,

हिमपात तथा प्रचण्ड ग्रांधी को रोक देता था ग्रौर मेरे लिए यह एक साधारण-सी बात थी।

महाराजजी—मेरे ऊपर भी यह कृपा करो। इस प्रकार की सिद्धियों की विधि बताने की कृपा करो जिससे मैं भी जनता का कुछ कल्याण कर सकूं।

सन्तजी—(हंसकर) जिस काम को मैं ग्रपने लिए उपयोगी नहीं समझता उसे मैं ग्रापको सिखाना भी ठीक नहीं समझता।

महाराजजी—जो काम एक के लिए हानिकर है वह दूसरे के लिए हितकर हो सकता है।

सन्तजी—यदि सिद्धियों की विधि बता भी दूं तो मेरे समान मनोबल कहां से लाग्रोगे ? मैं ७० वर्ष से साधना कर रहा हूं। क्या ग्राप भी ऐसा कर सकते हैं ?

महाराजजी—इस यात्रा को समाप्त करके ऐसा ही करूंगा। यह ग्रावश्यक नहीं है कि मुझे भी ७० वर्ष में ही मनोबल प्राप्त हो। तीव्र-संवेगी शीघ्र भी प्राप्त कर सकता है।

सन्तजी—सुनो। तुम्हें मनोबल प्राप्त करने की विधि विस्तारपूर्वक बताऊंगा।

महाराजजी—तिब्बत में ग्रौर भी बड़े-बड़े सन्त होंगे। यदि ग्राप बता दें तो उनके दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हो जाए।

सन्तजी—हां, वे पहिले तीर्थापुरी की ग्रोर रहते थे। वे तिब्बत निवासी नहीं हैं। भारतीय हैं। संस्कृत, हिन्दी ग्रौर तिब्बती भाषा पर उन्हें पूर्ण ग्रधिकार है किन्तु वे प्रायः मौन रहते हैं।

महाराजजी—वे महात्मा ही मेरे पूज्य गुरुदेव हैं। ४-५ साल हुए, वे हरसिल पधारे थे। उन्होंने मुझपर ग्रपार कृपा की थी। मैं उनका ग्रत्यन्त कृतज्ञ हूं। उनके उपकार को कभी भूल नहीं सकता।

सन्तजी—तब तो तुम मेरे छोटे गुरुभाई हो। उनसे बढ़कर सन्त तिब्बत, मानसरोवर तथा कैलाश में कोई नहीं है।

महाराजजी—उनके दर्शन ग्रब मुझे किस स्थान पर हो सकते हैं ? इस यात्रा का मेरा यही उद्देश्य है।

सन्तजी—ग्रब उनके दर्शन होना कठिन है क्योंकि वे दो वर्ष से लासा की ग्रोर चले गए थे, तब से लौटे नहीं।

महाराजजी—वे तो भारतीय हैं, वे ग्रापके गुरु किस प्रकार बन गए ? ग्रापका साक्षात्कार उनसे कैसे हुग्रा ?

सन्तजी—विद्वान् योगी किसी भी देश का क्यों न हो, वह गुरु बन सकता है। महात्मा बुद्ध भी तो भारतीय ही थे। वे हमारे ही देश के नहीं ग्रपितु सारे संसार के गुरुदेव थे। संसार में सर्वाधिक संख्या उनके ग्रनुयायियों की है। गुरु नानकदेवजी तिब्बतियों के गुरु हैं। ग्राप तिब्बत को भारत से पृथक् क्यों समझते हैं ? यह तो भारत भू का ही एक भाग है। इन शब्दों के साथ इन्होंने तिब्बती नमकीन चाय तथा सत्तू खाने के लिए देकर महाराजजी का ग्रातिथ्य किया।

महाराजजी—(पच्चीस रुपये हाथ में लेकर) यह आपकी भेंट है।

सन्तजी—मैं एक रुपया ले लेता हूं। इसे भी मंदिर की भेंट करूंगा, शेष चौबीस रुपये आप अपने पास रख लें।

महाराजजी—गुरुदेव की करनी और कथनी को हम लोग कभी नहीं पहुंच सकते। वे सच्चे महात्मा हैं। दिव्य पुरुष हैं। उन्होंने लोक-कल्याणार्थ ही जीवन-धारण किया है। कई वर्षों से तिब्बत को पवित्र कर रहे है। बड़े ऊंचे दर्जे के वीतराग और परमात्मज्ञानी हैं। उनका तप, त्याग, वैराग्य पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ है। अपने शरीर को तृण के समान समझते हैं। वास्तव में ये विदेह हैं। आपके ऊपर सचमुच उन्होंने बड़ी कृपा की है। ४ वर्ष हुए, वे गंगोत्री हरसिल की ओर गए थे। इसके पश्चात् वे खोचरनाथ तीर्थापुरी और मानसरोवर की ओर रहे थे। अब दो वर्ष से लासा चले गए हैं।

इन महात्माजी से विदा लेकर महाराजजी और कीचसिंह दोनों वापस निवास स्थान पर पहुंचे। स्वामी विशुद्धानन्दजी कुछ नाराज़ से हो रहे थे क्योंकि ब्रह्मचारीजी को मंदिर से लौटने में बड़ा विलम्ब होगया था और भोजनादि की सारी व्यवस्था स्वामीजी को अकेले ही करनी पड़ी थी। महाराजजी ने इन्हें सारा समाचार सुनाया। रात्रि को सबने वहां विश्राम किया और प्रातःकाल कुछ अभ्यास किया और ८ बजे के लगभग यात्रा प्रारम्भ की। आज की यात्रा १४००० फीट की ऊंचाई पर एक मैदान में से थी। तकलाकोट से लेकर मानसरोवर और कैलाश तक मैदान ही मैदान हैं। कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी-सी पहाड़ियां हैं। यहां से आगे कोई बस्ती नहीं है, केवल मंदिर ही मंदिर हैं। १५ मील यात्रा करने के पश्चात् एक स्रोत के पास छोलदारियां लगाई गईं। यहां पर डाकू बहुत रहते थे अतः सब बड़े सावधान रहे। कीचसिंह स्वयं पहिले डाकुओं का सरदार था। यह उनका चोरी करने और डाके-डालने का सारा रहस्य जानता था। अतः उसने समझाया कि यदि कोई भिक्षादि मांगने आए तो न दी जाए, क्योंकि ये लोग भिक्षा के बहाने सारा भेद लेने आते हैं और रात्रि के समय चोरी करते हैं। इतने में सामने से एक वृद्धा आती हुई दिखाई दी। कीचसिंह ने उसकी ओर संकेत करके महाराजजी को बताया कि यह अपनी युवावस्था में घोड़े पर सवार हो कर डाकुओं के साथ जाकर डाके डाला करती थी और अब भी यहां कुछ भेद लेने आ रही है। आज रात्रि में कुछ न कुछ उपद्रव अवश्य होने की संभावना मालूम होती है। इस वृद्धा ने इधर-उधर फिरकर सबके तम्बुओं में जाकर भिक्षा मांगी। उसकी आंखों से ऐसा मालूम होता था मानो वह कुछ खोज लगा रही है। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। महाराजजी ने भी इसे ४-५ लड्डू दिए, इसके बाद वह चली गई। तकलाकोट में सन्तजी से परिचय हो जाने के बाद से कीचसिंह महाराजजी को गुरुजी कह कर पुकारने लगा। जब से इसने महाराजजी का मंदिर के सन्तजी से वार्तालाप सुना और उस ओर के महान् सन्त का शिष्य होने का पता चला था और उसे यह मालूम हुआ था कि ब्रह्मचारीजी बड़े विद्वान् महापुरुष, उच्चकोटि के सन्त और महात्मा हैं, तब से उसकी उनके प्रति विशेष श्रद्धा और भक्ति होगई थी। रात्रि को भोजनोपरान्त सब सुखपूर्वक सोगए किन्तु कीचसिंह बड़ा सतर्क तथा सजग रहा। उसे रात्रि में चोरों के चोरी करने की आशंका थी। उसका सन्देह ठीक ही निकला क्योंकि रात्रि को लगभग

११ बजे चोर आए और चार खच्चरें चुराकर चलते बने। कीचसिंह ने महाराजजी से उनकी टार्च मांगी जिससे चोरों का पता लगाया जा सके। इसने चोरों का पीछा किया और उनकी ओर बन्दूक से कारतूस चलाने प्रारम्भ कर दिए। वे भयभीत होगए और खच्चरों को छोड़कर भाग गए। इस इलाके में यात्री जहां भी ठहरते थे वहां पर दो व्यक्ति रात्रि को पहरा दिया करते थे। चोरों का भय सदा बना रहता था। रात्रि को अन्धेरा रहता था जिससे चोरों को पता न चले।

मानसरोवर दर्शन—सारे यात्री ४ दिन में मानसरोवर पहुंच गए। जब मानसरोवर के तट पर पहुंचे तब सूचना मिली कि डाकुओं का एक दल लूटने के लिए आ रहा है। यहां पर तिब्बत सरकार की ओर से यात्रियों की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। अतः लूट-मार तथा हत्याएं प्रायः होती रहती थीं। मानसरोवर के किनारे पर डेरा डाला गया। डेरे से एक मील के लगभग एक मंदिर था। कीचसिंह ने मंदिर के पास या मंदिर में ही जाकर ठहरने की सलाह दी क्योंकि वहां मंदिर की शरण में जाने से लूट-मार का भय नहीं रहेगा, किन्तु महाराजजी को यह बात पसन्द नहीं आई। सदैव तो मंदिर में रहना नहीं था। वहां रहने से यात्रा कैसे हो सकती थी! मानसरोवर की परिक्रमा भी करनी थी अतः भय के मारे मन्दिर में बैठे रहने से तो काम नहीं चल सकता था और यात्रा का उद्देश्य भी पूरा नहीं हो सकता था। महाराजजी बड़े निर्भीक महापुरुष हैं। भय नाम की कोई वस्तु आपने कभी जानी ही नहीं। उनकी वीरता, शौर्य, पराक्रम, तेज और ओज के सामने तो भय भी भयभीत होता था। उन्होंने कहा कि हम डाकुओं का मुकाबला करेंगे और यहीं इसी मैदान में तीन दिन तक रहेंगे। चौथे दिन ग्रहण का स्नान करके यहां से प्रस्थान करेंगे। रात्रि में दो व्यक्तियों ने पहरा दिया। अगले दिन एक घुड़सवार ने आकर कीचसिंह को सूचना दी कि यहां से थोड़ी दूरी पर डाकू ठहरे हुए हैं और तुम्हारे यात्रियों को लूटने के विषय में परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। जब महाराजजी को इस बात का पता लगा तो वे क्रुद्ध हुए और कीचसिंह को घोड़े पर सवार होकर डाकुओं के पास जाकर यह कहने के लिए कहा कि यदि तुमने हमारे पड़ाव की ओर मुंह भी फेरा तो तुम में से एक-एक को भस्म कर दिया जाएगा। तुम में से और तुम्हारे परिवार, पशु, घोड़े, खच्चर आदि में से एक भी जिन्दा न बच सकेगा। यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो लूट-मार का नाम भी मत लो। इस संघ के मुखिया काशी लामा बड़े प्रसिद्ध ब्रह्मचारी योगी हैं। ये बड़े निर्भय हैं। अपने योगबल से तुम सबको भस्मीभूत कर देंगे। एक भी शेष नहीं रह सकेगा। कीचसिंह से सब समाचार सुनने के पश्चात् डाकुओं के सरदार ने कीचसिंह से कहा, क्या तुम्हें विश्वास है कि ये मुट्ठी-भर आदमी ४० प्रसिद्ध और शक्तिशाली डाकुओं का सामना कर सकेंगे? कीचसिंह ने कहा, तुम्हारी शक्ति उनके सामने कुछ भी नहीं है। वे बड़े भारी योगी हैं। काशी लामा हैं। तुम तो केवल ४० ही हो, यदि सैकड़ों भी आ जाओ तब भी उनको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचा सकते। तुम लोग अपने प्राणों की रक्षा का प्रबन्ध करो। मैंने उनके योगबल को देख लिया है। उनके प्रभाव से ही मैं उनकी अवैतनिक सेवा कर रहा हूं। उनसे कुछ भी नहीं लेता हूं। वे बड़े भारी महात्मा हैं। बालब्रह्मचारी हैं। महान् योगी हैं। उन्हें बहुत सिद्धियां प्राप्त हैं। तुम

चलो और उनसे क्षमा-याचना करो, अन्यथा तुम सपरिवार और पशुओं सहित नष्ट हो जाओगे। कीर्चसिंह की बातें सुनकर उनके प्राण निकलने को होगए। सभी बड़े भयभीत होगए। इनकी स्त्रियां हाथ जोड़कर कीर्चसिंह से कहने लगीं, इन सब की बुद्धि नष्ट होगई है। कभी महात्माओं को भी लूटा जाता है? उनकी सेवा करनी चाहिए। उन्हें भेंट देनी चाहिए। इन सबको महात्माजी के पास जाकर अपने कुविचारों के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए। इनकी रक्षा का केवलमात्र यही उपाय है, अन्य नहीं। इस पर वे सभी डाकू एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। कुछ निर्णय नहीं कर पाए कि अब उनका क्या कर्त्तव्य है।

डाकुओं की स्त्रियों की क्षमा-याचना—जब सभी डाकू किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होकर खड़े थे तब उनकी स्त्रियां आगे आईं और माफी मांगने के लिए तैयार हो गईं, क्योंकि उन्हें इस बात का विश्वास था कि महात्मा लोगों की स्त्रियों पर विशेष कृपा होती है। इन पर वे कभी क्रोध नहीं करते। वे हमें अवश्य क्षमा प्रदान करेंगे। इस विश्वास और श्रद्धा से वे उनसे क्षमा मांगने के लिए चल दीं। इनमें से ४-५ स्त्रियां अपने बच्चों को साथ लेकर और महाराजजी के चरणों में भेंट रूप से एक बर्तन में चौरी गाय का दूध, एक गर्म वस्त्र तथा २१ तिब्बती टंके साथ लेकर क्षमा-याचना के लिए चल दीं। इसी बीच में कीर्चसिंह ने जाकर सब समाचार महाराजजी से निवेदन कर दिया था। महाराजजी रेत के एक बड़े चबूतरे पर बैठ गए और साथी यात्री भी सब उनके आस-पास आकर बैठ गए। दो बजे के लगभग डाकुओं की स्त्रियां वहां पहुंचीं। इन्होंने २-३ सौ फीट की दूरी से ही साष्टांग दण्डवत किया और भूमि को मापती हुई गद्दी के पास पहुंचीं। यहां पहुंचकर वे बहुत देर तक भूमि पर ही लेटी रहीं। कीर्चसिंह ने निवेदन किया कि जब तक महाराजजी आप स्वयं उठकर इनकी पीठ पर आशीर्वादात्मक हाथ नहीं फेरोगे तब तक ये जमीन पर से नहीं उठेंगी। ब्रह्मचारीजी ने दयाभाव से ऐसे ही किया। ये देवियां उठकर बैठ गईं और अपनी भाषा में अपने आदमियों के अपराधों की क्षमा-याचना की—"हमारे आदमियों ने बड़ा अपराध किया है। आप भगवान् हैं। अवतारी पुरुष हैं, दयावान हैं, अतः हम आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप हमें अपनी दया की भिक्षा दीजिए और हमारे अपराधों के लिए क्षमा प्रदान कीजिए। महात्मा सदा ही अबलाओं पर दया करते आए हैं। आप हमें क्षमा करें। आप हमें वरदान दीजिए कि हमारे सब घरवाले, बच्चे, आदमी तथा पशु आदि सब ठीक रहें।" वे उठीं और जो सामान लाई थीं सब महाराजजी को भेंट किया, किन्तु इन्होंने यह भेंट स्वीकार नहीं की और कहा कि मैं डाकुओं की भेंट कभी स्वीकार नहीं किया करता। कीर्चसिंह ने कहा कि आप यह भेंट इन्हें वापस न करें। हम लोगों को दे दीजिएगा। यदि आप इस भेंट को स्वीकार नहीं करेंगे तो इन पर इसका अच्छा प्रभाव न पड़ेगा। बेचारी निराश हो जाएंगी। ये समझेंगी कि आपने इन्हें प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद नहीं दिया। महाराजजी ने भेंट स्वीकार कर ली और इन्हें आशीर्वाद देकर प्रसाद रूप में मेवा और मिठाई दी। इनकी छोलदारी में स्टोव जलता देखकर वे आपस में कहने लगीं कि देखो, महाराजजी ने अपने योगबल से पानी से आग जला रखी है। इससे ये बड़ी प्रभावित हुईं। घूम-फिरकर सब कैम्प देखे और विविध प्रकार के पदार्थ देखकर

अत्यन्त आश्चर्यचकित होगईं। इन्होंने महाराजजी को विश्वास दिलाया कि जब तक आप मानसरोवर पर विराजेंगे तब तक हम अपने आदमियों को आपकी रक्षार्थ भेजेंगी। इन शब्दों के साथ ये स्त्रियां लौट गईं।

डाकुओं को क्षमा प्रदान—आगामी दिवस इनके आदमी भी विभिन्न प्रकार की भेंटें लेकर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारीजी पूर्ववत् अपनी गद्दी पर विराज रहे थे। इन डाकुओं ने अपने घोड़े तथा भेंट का सामान कुछ दूरी पर रख दिया और स्वयं दण्डवत प्रणाम करके महाराजजी से क्षमा-याचना की। योगीराजजी ने इन्हें भी क्षमा प्रदान की। यह सब तिब्बती भाषा में बातचीत करते थे। महाराजजी का दुभाषिया सब बातें जैसी की तैसी अनुवाद करके उनको सुनाता जाता था। डाकुओं ने महाराजजी से निवेदन किया कि इधर डाकुओं का बड़ा भय रहता है इसलिए हमने आपकी सुरक्षा के लिए ४-५ आदमियों को नियत कर दिया है। यह पहरेदार का काम करेंगे। महाराजजी ने कहा, हमें किसी पहरे की आवश्यकता नहीं है। हम स्वयमेव अपनी रक्षा कर सकते हैं। यह लोग कई घंटे तक वहां ठहरे और सब कुछ भली प्रकार से देखते रहे। अब इनका सब भय जाता रहा था। ये लोग सायंकाल लौट गए और अगले दिन दूध लेकर आए। महाराजजी सिद्ध पुरुष हैं। इनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। इनके अन्दर पत्थरों को पिघला देने, कठोर हृदयों को कोमल बना देने, हिंस्र जीवों को पालतू बना देने, पापियों को पुण्यात्मा बना देने, दुराचारियों को सदाचारी बनाने और नास्तिकों को आस्तिक बनाने की अलौकिक शक्ति है। जो डाकू इनके डेरे में डाका डालने की योजना बना रहे थे और अपनी शक्ति का बड़ा दम्भ कर रहे थे वे सब इनके योगबल के सामने भीगी बिल्ली के समान आचरण करने लगे और सब ने इनके चरणारविन्द में शतशः प्रणाम करके भूरि-भूरि क्षमा-याचना की और इनके परम श्रद्धालु सेवक बन गए।

मानसरोवर पर चन्द्र और सूर्य ग्रहण—जिन दिनों महाराजजी और उनके साथी मानसरोवर पर थे उन्हीं दिनों चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण लगे। इस पर्व पर मानसरोवर पर स्नान करने का विचार था। चन्द्रग्रहण के अवसर पर मानसरोवर की परिक्रमा की गई और फिर सूर्यग्रहण का स्नान करके कैलाश यात्रा प्रारम्भ की। चन्द्रग्रहण रात के ११ बजे समाप्त हुआ। महाराजजी ने मानसरोवर में स्नान करते समय उन सभी भक्तों के नाम से गोते लगाए जिन्होंने इसके लिए इनसे निवेदन किया था। रात्रि का समय, शीत प्रधान प्रदेश, लगभग पन्द्रह हजार फ़ीट की ऊंचाई पर अत्यन्त शीतल जल में स्नान करना कोई सहज काम न था। इनका शरीर गोते लगाते-लगाते निश्चेष्ट और निःसंज्ञ-सा होगया। कीचसिंह तथा अन्य साथी यात्रियों ने इधर-उधर से सूखा हुआ गोबर एकत्रित किया और जैसे-तैसे आग जलाकर इनके शरीर को गर्म किया। इसके पश्चात् वे थोड़ा बोलने लगे। रक्त का संचार होकर शरीर का नीलापन दूर हुआ। इसके पश्चात् कपड़े पहने और चाय पी। तत्पश्चात् शरीर की स्थिति पूर्ववत् हुई। पन्द्रह हजार फीट की ऊंचाई पर रात्रि के समय अत्यन्त शीतलजल में इतने गोते लगाना कोई सुगम कार्य न था। किन्तु युवावस्था में मनुष्य मृत्यु से भी टक्कर लेने के लिए समुद्यत हो जाता है। दूसरे दिन सारे संघ ने मानसरोवर की परिक्रमा प्रारम्भ की।

डाकुओं से चोरी न करने की प्रतिज्ञा करवाना—जो डाकू महाराजजी के पास क्षमा-याचना करने आए थे उन्होंने रक्षार्थ चार घुड़सवार भेजने के लिए कहा था, किन्तु ब्रह्मचारीजी ने इस कार्य के लिए निषेध कर दिया था, तो भी ४ चार सवार रक्षार्थ आगए। महाराजजी ने इनके हाथ में मानसरोवर का जल देकर प्रतिज्ञा करवाई कि वे भविष्य में कभी भी चोरी या डाके नहीं डालेंगे। परिक्रमा करते हुए जब डाकुओं के डेरे के पास पहुंचे तो इन सबको उपदेश देकर हाथ में जल दिया और उनसे भी डाके न डालने की प्रतिज्ञा करवाई। ये लोग प्रायः सभी दुष्ट प्रकृति के होते हैं। जीवन भर स्नान करने का तो नाम ही नहीं जानते। कच्चा मांस भक्षण करते हैं। इनके शरीर से दूर से ही दुर्गन्ध आती है। इनके पास खड़ा होना असंभव है। इस प्रदेश में अन्न कम उत्पन्न होता है अतः बहुत मंहगा बिकता है। वस्तु-विनिमय ही व्यापार का एक साधन है। ये लोग भारतीय व्यापारियों को ऊन, नमक, सुहागादि देते हैं और उनसे अन्न तथा दूसरी आवश्यक वस्तुएं लेते हैं। उस समय यहां के आठ टंके भारत के एक रुपये के बराबर समझे जाते थे। तिब्बत में चांदी बहुत सस्ती थी अतः भारतीय व्यापारी सहर्ष इन टंकों को भारत में लाकर उन्हें गला कर और उनकी चांदी बनाकर मंहगे दामों पर बेचते थे।

मानसरोवर परिक्रमा—मानसरोवर की परिक्रमा करते हुए मार्ग में एक छोटा सा मंदिर आया। इसमें गुरु नानकदेवजी की स्वर्णनिर्मित प्रतिमा थी। इसके पास ही बाला तथा मरदाना की प्रतिमाएं थीं। ये तीनों प्रतिमाएं आदमकद थीं और तीनों आसन लगा कर बैठी हुई थीं। इस मंदिर के पुजारी पक्के से रंग के थे और छोटे कद के थे। इनसे पता चला कि गुरु नानकदेव इस पुजारी के गुरु के गुरु थे। इसकी आयु उस समय सौ वर्ष से ऊपर की थी। श्री गुरु नानकदेवजी मानसरोवर पर कई मास तक आकर रहे थे। उनके साथ बाला और मरदाना भी थे। उसी समय इस मंदिर में इस स्वर्ण निर्मित प्रतिमा की स्थापना हुई थी। ये बहुत ऊंचे दर्जे के सन्त थे। बड़ी महान आत्मा थे। तिब्बत के सभी लोग इन्हें अपना गुरु मानते हैं। यहां पर बौद्ध-धर्म प्रचलित है। भाषा-भेद अवश्य है किन्तु तिब्बत तथा भारत की सभ्यता में परस्पर अत्यधिक सामंजस्य है। यह पुजारी भी एक बार भारतवर्ष में अमृतसर स्थित गुरुद्वारे के दर्शन करने गया था।

मानसरोवर की परिक्रमा में आठ मंदिर हैं और लगभग २२ छोटी बड़ी नदियां मानसरोवर में आकर गिरती हैं। मानसरोवर का घेरा लगभग ७०-८० मील है। यह झील अण्डाकार है। इसका जल निर्मल तथा नीलवर्ण का है। स्थान बड़ा रमणीक है। किनारे पर कई स्थानों पर बड़ी दलदल भी है। दो सौ मील के घेरे में एक बड़ा विस्तृत मैदान है। इसी के बीच मानसरोवर झील थी। यह मैदान चारों ओर से बड़े-बड़े विशाल हिमाच्छादित पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ था। यहां पर बहुत से जंगली घोड़े फिरा करते थे। ये पालतू नहीं थे। ये बड़ी तीव्र गति से दौड़ते थे। ये बड़े सुन्दर थे। इनका डील-डौल बड़ा आकर्षक था। सरोवर के किनारे पर एक दो इंच लम्बी घास उगती है, उसी को चरा करते हैं। यही इनकी उदरपूर्ति का साधन है। किन्तु इस घास में बहुत शक्ति होती है; भेड़ें, बकरियां, खच्चर तथा चौरी गायें इसे खाकर बहुत मोटी और बलवान हो जाती हैं।

महाराजजी का दलदल में फंसना—महाराजजी का घोड़ा बहुत चुस्त और चालाक था। शान्ति उसमें नाम मात्र को भी न थी। सब घोड़ों से आगे रहता था। जब महाराजजी उस पर सवार होते थे तब उन्हें बहुत तंग करता था। बड़ी कठिनाई से उस पर बैठा जाता था। मानसरोवर के किनारे यह एक दलदल में फंस गया। महाराजजी के पैर भी घुटनों तक दलदल में फंस गए। यहां से निकलना बड़ा कठिन होगया। कंचनसिंह ने दो रस्से फेंके और महाराजजी से निवेदन किया कि आप एक रस्सा घोड़े के गले में बांध दें। ऐसी मजबूती से बाधें जिससे वह खुलने न पाए और दूसरा रस्सा आप जोर से पकड़कर दलदल के ऊपर लेट जाएं। सर्वप्रथम हम आपको खींच लेते हैं। जब आप किनारे पर आ जाएंगे तब घोड़े को खींच लेंगे। महाराजजी को बड़ी कठिनाई से दलदल में से निकाला गया और घोड़े को निकालने में तो कई घण्टे लग गए। ब्रह्मचारीजी ने अपने कीचड़ में सने हुए कपड़े उतारे और सरोवर में स्नान किया। कीचसिंह ने इनके वस्त्र धोए। घोड़े को भी स्नान करवाया गया। अब इस स्थान से लगभग आधा मील दूरी पर पड़ाव डाला। प्रायः १० बजे भोजन करके यात्रा प्रारंभ की जाती थी और सायंकाल पांच बजे पड़ाव डाल दिया जाता था। इस यात्री संघ में एक डाक्टर था जो प्रायः महाराजजी की शक्ति का उपहास किया करता था और इन्हें कुश्ती के लिए ललकारता था। एक दिन दोनों में कुश्ती प्रारंभ होगई। महाराजजी ने बात की बात में डाक्टर को पछाड़ दिया। लज्जित होकर उसने कहा, "मैं सावधान नहीं हो सका था अतः दुबारा कुश्ती लड़ी जाए।" महाराजजी ने दुबारा उसको पछाड़ने में एक मिनट भी नहीं लगाया। तुरन्त उसे अपने कंधों पर उठाकर जमीन पर चित्त पटक दिया और उस पर चढ़कर बैठ गए। डाक्टर ने अपनी पराजय स्वीकार की और उनसे क्षमा-याचना की।

मंदिर तथा उनमें पूजा—तिब्बत के लोगों में स्नान करने का रिवाज नहीं है। महाराजजी के साथी यात्री नित्यप्रति स्नान करते थे। तिब्बती इन सबका तमाशा देखा करते थे। सभी यात्री स्नानोपरान्त बौद्ध मंदिरों के दर्शन करने जाते थे। कई मंदिरों में विष्णु और महाकाली की मूर्तियां भी थीं। इन मंदिरों में भारतीय ढंग से पूजा होती थी। मूर्तियों के आगे एक मंच-सा बना हुआ था। इस पर पूजा-सामग्री रखी जाती थी। कई मंदिरों में पुस्तकालय भी थे तथा कई मंदिरों में बहुत बड़े-बड़े घी के दीपक जला करते थे। ये दीपक चौबीस घंटे जलते ही रहते थे। अनेक मंदिरों में गौशालाएं थीं। इनमें चौरी गाय के दूध से घी तैयार किया जाता था। तक्र बना कर बड़े-बड़े हौज़ों में भरकर रखी जाती थी। इसको सुखाकर इसे खाने के काम में लाया जाता था। तिब्बत सरकार की ओर से प्रायः प्रत्येक मंदिर में गाय, भेड़ तथा बकरियां दान रूप से दी जाती थीं। सत्तू, चाय आदि सामान भी राज्य की ओर से प्रदान किया जाता था। तिब्बत में सरकार उस समय लामा साधुओं की ही थी। मंदिरों में लामा साधु ही पुजारियों का काम करते थे।

रीति-रिवाज—भारतीय ग्रन्थों के तिब्बती भाषा में अनुवाद यहां पर अनेक स्थानों पर मिलते हैं। महाराजजी ने स्वयं महाभारत और रामायण के तिब्बती भाषा में अनुवाद सुने थे। भारत के समान ही यहां के मंदिरों में रुपये-पैसे चढ़ाए जाते हैं। मन्दिर प्रायः मकानों के समान ही बनाए जाते हैं। छतें समतल होती हैं। उन पर

किसी प्रकार का गुंबज या कलश आदि नहीं होता है। इससे जब छत पर बर्फ जमा हो जाती होगी तो उसे उतारने में सुविधा होती होगी। कई मन्दिरों में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध है। वहां पर साधु मांस भक्षण नहीं करते, किन्तु गृहस्थी करते हैं। प्रायः कच्चा मांस भक्षण किया जाता है क्योंकि उसे पकाने के साधन लकड़ी, कोयला आदि उपलब्ध नहीं हैं। वहां पर बकरी, भेड़, गाय आदि का सूखा गोबर ही पकाने के काम में लिया जाता है। गृहस्थी प्रायः बकरी और भेड़ों के बालयुक्त चमड़े के चोले धारण करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में तो ये लोग चमड़े का भाग अन्दर कर लेते हैं और शीतकाल में बालों का। ये बहुत गंदे रहते हैं। न कभी स्नान करते हैं और न कपड़े धोते हैं। इनके पास से बड़ी दुर्गन्ध आती है। इनके पास खड़े होने को तबीयत नहीं चाहती। जिस गृहस्थी के मकान पर गाय, बैल, बकरी, भेड़ आदि जानवरों की खोपड़ियां जितनी अधिक टंगी हुई मिलती थीं, वही सबसे अधिक धनवान् समझा जाता था। अन्न की उपज वहां बहुत कम होती है। नदियों के किनारे कहीं-कहीं जौ और मटर पैदा होते हैं। भारतवर्ष में व्यापार की मंडियों में तिब्बती व्यापारी ऊन, पशम, सांभर नमक तथा सुहागा आदि बेचने के लिए ले जाते हैं, इसके बदले में अपनी आवश्यकता का सामान लाते हैं। कभी-कभी गाय, भेड़, बकरी, घोड़े आदि भी ये लोग बेचते हैं और इनके बदले में प्रायः अन्न ही लेते हैं क्योंकि तिब्बत में अन्न बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इस प्रदेश में तकलाकोट, सानमा तथा नाखा की मंडियां प्रसिद्ध हैं। ये मण्डियां जुलाई से अगस्त तक लगती हैं। इनमें तिब्बती और भारतीय व्यापारी एकत्रित होते हैं और परस्पर व्यापार करते हैं।

मानसरोवर झील—मानसरोवर से गंगा नामक एक नदी निकलती है। यह चार-पांच मील की दूरी पर राक्षस-ताल में जाकर गिरती है। यह ताल प्रायः सूखा ही रहता है। जब कभी किसी वर्ष बर्फ अधिक पड़ती है और इसके परिणामस्वरूप मानसरोवर में जल अधिक बढ़ जाता है तब इसमें से निकल कर जल राक्षस-ताल में चला जाता है। मानसरोवर और राक्षस-ताल के बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी है, यही इन दोनों के बीच में किनारे का काम देती है। मानसरोवर का सारा मैदान लगभग २०० मील के लगभग होगा। किन्तु यह झील अस्सी मील के लगभग होगी। यह अण्डाकार बनी हुई है। इसका जल अत्यन्त निर्मल, मधुर और स्वादिष्ट है। किनारे पर कहीं-कहीं सिप्पियां पड़ी रहतीं हैं किन्तु मोती कहीं दिखाई नहीं देते थे। यहां पर एक प्रकार का पक्षी होता है। इसका आकार-प्रकार जलमुर्गियों से मिलता-जुलता होता है। इनके जोड़े घूमते हुए इतस्ततः दिखाई देते हैं। प्रायः ये दो रंग के होते हैं। नीलिमा को लिए हुए श्वेत रंग के तथा मोतिया रंग के। ये रात्रि में उड़कर आसपास की कंदराओं में चले जाते हैं। इन्हीं को यहां के लोग हंस कहते हैं। राक्षस ताल नामक झील लगभग १५० मील लम्बी और चौड़ी है। इसके किनारों पर कहीं-कहीं का जल कड़वा और खारा है। यह झील मानसरोवर से बड़ी है किन्तु मानसरोवर का दृश्य अधिक सुन्दर और मनोरम है। राक्षस ताल झील का बहुत कुछ भाग सूखा भी रहता है। इस सूखे भाग पर भेड़ तथा बकरियां प्रायः चरा करती हैं। यहां पर भेड़ और बकरियां बहुत होती हैं। इनकी ऊन बड़ी नर्म और कोमल होती है। बकरियों का कद प्रायः छोटा होता है। इसलिए इस प्रदेश में

लाखों मन ऊन और पशम पैदा होती है। यहां पर भी अनाज की कमी रहती है, इसलिए लोग मांस भक्षण करके अपना निर्वाह करते हैं। चौरी गाय यहां पर सवारी और बोझा ढोने के काम आती हैं। इनके बाल भी ऊन का काम देते हैं। इनके मरने पर इनकी पूंछ काट लेते हैं जो मन्दिरों, शुभ कार्यों अथवा राजा-महाराजाओं के चंवर बनाने के उपयोग में लाई जाती है। इसकी सवारी घोड़े-खच्चरों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है क्योंकि ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर भी लेकर चढ़ जाती है। मानसरोवर की परिक्रमा करते समय महाराजजी ने तिब्बतियों से बहुत से पुखराज, नीलम तथा पन्ने खरीदे थे। तिब्बत की स्त्रियां चांदी के आभूषण बहुत पहनतीं हैं। ये अपनी ओढ़नियों पर अनेक प्रकार के आभूषण पिनों से टांक कर पहनती हैं। केवल धनाढ्य परिवारों की स्त्रियां ही इस प्रकार के जेवर पहनती हैं। मानसरोवर की परिक्रमा एक सप्ताह में पूरी हुई। मानसरोवर पर १८ दिन रहे।

कैलाश परिक्रमा--सूर्यग्रहण करके कैलाश की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। कैलाश का मार्ग यहां से केवल एक ही दिन का है। इस मार्ग में चौरी गौओं का दूध और घी अधिकता से मिलता है क्योंकि यहां पर मैदान में पशु-पालन अधिक होता है। सायंकाल को कैलाश पर्वत के दामन में पहुंच गए। इसकी ऊंचाई २४००० फीट है। यह पर्वत बिलकुल गोलाकार शिवलिंग की पिण्डी के समान है। यह बारह मास हिम से आच्छादित रहता है। इस पर्वत पर प्राकृतिक सीढ़ियां सी बनी हुई हैं। कैलाश की परिक्रमा का घेरा २६ मील है। इस परिक्रमा में तीन बौद्ध मंदिर हैं। इनमें बौद्ध सन्त रहते हैं। ये ही मन्दिरों में पूजा भी करते हैं। रात्रि में यहां एक मन्दिर में विश्राम किया और प्रातःकाल परिक्रमा प्रारंभ कर दी। प्रस्थान करते ही वर्षा प्रारंभ होगई। बहुत बड़े-बड़े ओले गिरने लगे। कम्बलों की आठ-आठ तहें बना कर सिरों पर रखीं पर फिर भी ओले बारूद की गोलियों के समान मार कर रहे थे। घोड़े और खच्चर सभी ओलों की मार से घायल होगए थे। बिहार के एक सन्त शीत के कारण बीमार होगए और बेहोश होकर गिर पड़े। इन्हें घोड़े पर ही रस्सी से बांध दिया गया। किया क्या जाता, और कोई चारा ही नहीं था। ओलों से प्रायः सभी को कुछ न कुछ चोटें आईं। कहीं कोई भी बचाव का स्थान नहीं था। कोई गुफा भी दृष्टिगोचर नहीं हुई। प्रतिपल ऐसा मालूम हो रहा था मानो कोई पत्थर उठा-उठाकर मार रहा हो। बड़ी कठिनाई से रात्रि को एक मंदिर में पहुंचे। इसमें भी कहीं सूखा स्थान नहीं था। यह रात्रि बड़ी कठिनाई से कांपते हुए व्यतीत की। भोजन भी नहीं बना सके। आगामी दिवस गौरी कुण्ड के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान १८००० फीट की ऊंचाई पर है। मार्ग में एक नदी आती है। इसका पुल टूटा हुआ था। यहां की ऊंचाई लगभग १७००० फीट है। घोड़ों से उतर कर कुछ दूर तक पैदल चलना पड़ा। सांस फूलने लगा। पैर उठाने अत्यन्त कठिन होगए। अपने शरीर का तथा धारण किए हुए वस्त्रों का भार उठाना भी दूभर हो रहा था। ऊंचाई के कारण हवा बड़ी पतली थी। अतः दम घुटने लग गया था, हृदय धड़क रहा था। अत्यन्त घबराहट हो रही थी। जैसे-तैसे लगभग १० बजे गौरी कुण्ड पहुंचे। कैलाश पर्वत के नीचे एक तालाब अथवा छोटी-सी झील है। यह बिलकुल बर्फ से आच्छादित थी। जल कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। यह अवश्य मालूम होता था कि बर्फ के नीचे

कोई सरोवर है। महाराजजी ने इस गौरी कुण्ड में स्नान करने की इच्छा प्रकट की क्योंकि इसमें स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। यहां आकर वे इस पुण्य से वंचित होना नहीं चाहते थे। इन्होंने कीर्चसिंह से कहा, "कहीं बर्फ को तोड़कर ऐसा यत्न करो जिससे नीचे से जल निकल आए।" कंचनसिंह और कीर्चसिंह दोनों भाइयों ने बर्फ को खोदकर एक कूआं-सा बना दिया किन्तु यह पता न लग सका कि पानी कितना गहरा है। डूबने की संभावना बनी हुई थी। इसलिए महाराजजी ने इनसे कहा कि मेरे दोनों हाथ बांध कर नीचे लटका दो। यदि जल थोड़ा हुआ तब तो मैं खड़ा हो कर स्नान कर लूंगा और यदि गहरा हुआ तो मुझे एक डुबकी लगवा कर ऊपर खींच लेना। इस पर महाराजजी के साथी खूब हंसे। इनमें से कोई भी स्नान करने के लिए तैयार नहीं हुआ। सरोवर के किनारे का कहीं पता नहीं चल रहा था। बर्फ को फिर तोड़ा गया। यहां पर जल केवल ४-५ फीट ही गहरा था। एक वस्त्र पर मिट्टी का तेल डाल कर अग्नि जलाकर तैयार की गई। बड़ी कठिनाई से केवल तीन ही गोते महाराजजी लगा पाए थे कि उनका शरीर निःसंज्ञ होगया। चलने में भी असमर्थ होगए। बड़ी कठिनाई से कीर्चसिंह इन्हें अग्नि के पास लेगया। इनमें तौलिए से शरीर पोंछने की भी सामर्थ्य नहीं थी। कुछ देर तक अग्नि के पास बैठकर शरीर गर्म करके वस्त्र धारण किए। सब लोग चलने की तैयारी करने लगे। यहां से केवल २-३ घण्टे का ही रास्ता था। महाराजजी ने सभी साथियों को आगे भेज दिया और स्वयं कीर्चसिंह के साथ कैलाश पर्वत पर चढ़ने का विचार किया। कीर्चसिंह इस बात पर राजी नहीं हुआ और सलाह दी कि कल के लिए इस चढ़ाई को स्थगित रखा जाए। कल चढ़ाई की जाए। अतः ये सभी चल दिए। पड़ाव पर पहुंच कर भोजनादि की व्यवस्था की गई। दूसरे दिन कीर्चसिंह और महाराजजी ने दो घोड़े लिए और गौरी कुण्ड के लिए प्रस्थान किया। घोड़ों को बांध दिया और चढ़ाई प्रारंभ कर दी। कीर्चसिंह बर्फ में मार्ग बनाता जाता था और महाराजजी पीछे-पीछे धीरे-धीरे चढ़ते जाते थे। सांस फूलता था, दम घुटता था, पैर भारी होते जाते थे, पर ये बिलकुल नहीं घबराए, हिम्मत नहीं हारे और चढ़ते ही गए। निरन्तर प्रयत्न करने पर भी केवल २१००० फीट तक ही पहुंच सके। आगे पर्वत बिलकुल सीधा ही खड़ा था। एक कदम आगे चलते थे तो दो कदम पीछे फिसल जाते थे। कीर्चसिंह ने अब हिम्मत हार दी। वह नितान्त थक गया था। घोड़े भी भूखे थे। आगे चलने में जान खतरे में थी। इसने महाराजजी से कहा, "आप अब ऊपर जाने का हठ न करें। अपने जीवन को खतरे में डालना ठीक नहीं है। चढ़ाई के लिए कोई साधन भी हमारे पास नहीं है। अब आगे पैर नहीं ठहर रहे हैं अतः नीचे उतरना ही उचित है।" महाराजजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। क्योंकि अब उतरने की भी शक्ति शरीर में नहीं रही थी अतः पर्वत से नीचे फिसल कर उतरने का उपाय सोचा। जहां तक फिसलने के योग्य मार्ग था वहां तक तो फिसल कर उतरे और शेष पैदल। गौरी कुण्ड से घोड़ों पर सवार होकर चले और सायंकाल छः बजे पड़ाव पर पहुंच गए। स्वामी विशुद्धानन्दजी ने पराठे बना कर रखे हुए थे। वे खाए और चढ़ाई तथा उतराई का सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया। तिब्बती भक्त लोगों में से कोई-कोई यात्री कैलाश यात्रा दण्डवत के साथ करते हैं अर्थात् सारी यात्रा ही पेट के बल करते हैं। इन्हें कई-कई मास इस यात्रा में लग जाते हैं। तिब्बती लामा कहते थे कि आज तक कैलाश की चोटी पर कोई

नहीं चढ़ा है। इनकी शिव तथा पार्वती के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी और इनका विश्वास था कि शिवजी और पार्वतीजी इसके शिखर पर आते हैं। इन्होंने अन्य कई देवताओं के नाम बताए थे जो कैलाश पर आया करते हैं।

कैलाश और मानसरोवर की यात्रा समाप्त करके बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। एक चिरकालीन अभिलाषा पूरी हुई। तीन दिन कैलाश की परिक्रमा में लगे तथा एक दिन विश्राम किया और पांचवें दिन भोजनोपरान्त प्रस्थान किया। कैलाश और राक्षस ताल के बीच में जो बड़ा मैदान है उसमें बकरियां चराने वालों के पास ठहर गए। यहां रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन चल दिए। इन लोगों ने रात्रि को खूब चौरी गौओं का दूध पिलाया और बहुत-सा मक्खन और खीर आदि साथ भी रख दिए। दूसरे दिन राक्षस ताल पर पड़ाव किया। यहां पर चाय बनाकर जब पीने लगे तो वह कड़वी थी। किसी ने भी नहीं पी। बहुत खोज करने पर पता चला कि राक्षस ताल का पानी बहुत खारा था, इसीलिए चाय भी कड़वी थी। रात्रि को राक्षस ताल पर ही विश्राम किया और प्रातः आगे के लिए प्रस्थान किया।

चोरों का मुकाबला—मार्ग में जिस स्थान पर पड़ाव किया वहां चोरों का बड़ा भय था। सबने बारी-बारी से तीन-तीन घण्टे का रात्रि में पहरा दिया। दिन भर खच्चर और घोड़े सफर करते थे और रात्रि को चरने के लिए छोड़ दिए जाते थे। हमारे पड़ाव पर चोर चोरी करने के लिए आए। उस रात्रि को पहरा देने वाला यात्री सो गया। चोरों ने आते ही सर्वप्रथम घोड़ों के गले में जो घण्टियां बंधी हुई थीं उन्हें घोड़ों के गले से उतारा जिससे घोड़ों को चुराकर ले जाते समय किसी प्रकार की आवाज़ न आए। चोर दो घोड़े चुरा कर ले गए तथा एक यात्री की छोलदारी में से समान निकाल लिया था, किन्तु कुछ आवाज़ हो जाने से प्रायः सभी यात्री जग गए। प्रकाश करके जब देखा गया तब सामान छोलदारी में नहीं मिला। सामान लेकर भागते हुए चोर अवश्य दिखाई दिए। यात्रियों ने इनका पीछा किया और बन्दूक से कारतूस उनकी ओर चलाने लगे। चोरों ने भी गोलियां चलानी प्रारंभ कर दीं। सामान उठाकर भागने वाले चोर के साथ उसकी रक्षा के लिए एक और चोर हाथ में बन्दूक लेकर चल रहा था। इसके पास बारूद भरने वाली बन्दूक थी अतः यह बन्दूक का ठीक प्रयोग न कर सका क्योंकि उसे बारूद भरने में विलम्ब लगता था। महाराजजी के दल के पास कारतूसी बन्दूकें थीं। धड़ाधड़ चोरों के ऊपर गोलियों की वर्षा की गई। चोर सामान छोड़कर भाग गए। इनमें से कई तो बुरी तरह से घायल होगए थे। ये लोग घोड़े भी अपने साथ नहीं ले जा सके।

यहां से रवाना होकर तकलाकोट पहुंचे। यहां पर एक रात निवास करके खोचरनाथ गए। यह एक छोटा-सा गांव है। इसमें एक मन्दिर है। यहां पर एक रात्रि ठहर कर लिपू धूरा पर्वत पर पहुंचे। इस बार इसकी चढ़ाई करते समय कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ क्योंकि इसके मार्ग से जाते समय परिचय होगया था। इसको पार करके गर्व्यांग पहुंचे। जाते समय यहां पर घोड़े, खच्चर तथा अन्य सामान छोड़ कर गए थे। यहां पर बहुत-सा सामान, जो अनावश्यक समझा गया था, सब महाराज-जी ने गरीबों को बांट दिया था।

अलमोड़े में यात्रा की समाप्ति--इस यात्रा में लगभग अढ़ाई मास लगे। जब अलमोड़ा वापस पहुंचे तो परिचित व्यक्तियों ने महाराजजी से कहा, "आप तो स्वस्थ, सबल और स्थूल होकर यात्रा से लौटे हैं किन्तु आपके सब साथी यात्री तो बहुत दुर्बल और शक्तिहीन से मालूम होते हैं।" इसका कारण यह था कि महाराजजी ने अपने खान-पान का विशेष ध्यान रखा था। बहुत ऊंचे पर्वतों पर भूख कुछ कम हो जाया करती है। वहां पर थोड़ा भोजन ही हितकर होता है। जो इस नियम का पालन करते हैं वे स्वस्थ रहते हैं। ब्रह्मचारीजी के अतिरिक्त प्रायः सभी यात्री घायल होगए थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी का घुटना घायल होगया था। चलने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती थी किन्तु वे बड़े साहसी थे। हिम्मत बांधकर बराबर चलते रहे। ब्रह्मचारीजी में ब्रह्म-तेज तथा ब्रह्म-शक्ति थी, अतः वे कहीं लुढ़के अथवा गिरे नहीं। अन्य सभी यात्री दुर्बल शरीर थे, अतः कई बार गिरे और घायल हुए। अलमोड़े के कम्पनी बाग में एक कोठी में सभी यात्री ठहरे। यहां पर सबने प्रीतिभोज किया और बड़े स्नेह और प्यार से एक दूसरे से मिलकर अपने-अपने लक्षित स्थान के लिए प्रस्थान किया। श्री महाराजजी यहां से नैनीताल पधारे और वहां पर ४-५ दिन तक निवास किया। नैनीताल का सौन्दर्य बड़ा आकर्षक है। ताल के चारों ओर सड़कों और कोठियों का दृश्य बड़ा सुन्दर है। रात्रि में जब बिजली जलती है तो इस ताल का दृश्य बड़ा अनुपम प्रतीत होता है। इसका सौन्दर्य वास्तव में अद्वितीय है।

नैनीताल से महाराजजी ने अमृतसर के लिए प्रस्थान किया। वहां पर पूर्ववत् लाला शिवसहायमल के मकान पर निवास किया। इनके परम भक्त लाला मुलखराज और लाला गुरुचरणदत्त ने महाराजजी से दीनानगर चलने के लिए निवेदन किया। ग्रीष्म ऋतु में ये कभी पंजाब में रहे नहीं थे इसलिए आम खाने का अवसर नहीं मिला था। इन्होंने दीनानगर जाकर आम खाने के लिए बहुत आग्रह किया। दोनों ने १० दिन का अवकाश लिया और मुलखराजजी अपनी मोटरगाड़ी में महाराजजी और गुरुचरणदत्तजी को दीनानगर ले गए। नगर के किनारे एक डाकबंगले में निवास का प्रबंध किया गया। मुलखराजजी की दीनानगर में ससुराल थी अतः इनके सम्बन्धियों ने कोठी में भोजन का अत्युत्तम ढंग से प्रबंध कर दिया था। दो टोकरे बढ़िया आमों के प्रतिदिन कोठी पर पहुंच जाते थे। नहर पर नित्यप्रति तैरने के लिए जाते थे। महाराजजी का तपस्या का जीवन था। इनकी तितिक्षा पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। कठोर साधना करते थे। कभी-कभी जब श्रद्धालु भक्तों के आग्रह से इस प्रकार का अवसर मिल जाता था और कुछ आराम-सा मिलता था तो इनका वज़न बढ़ जाया करता था। यहां दस दिन में इनका वज़न १० पौंड बढ़ गया था।

दीनानगर से बाबूजी की मोटरगाड़ी से सुजानपुर पहुंचे। यहां भी नहर के किनारे एक कोठी में ठहरे। खान-पान की सब व्यवस्था यहीं पर की गई। यहां पर भी बड़ा मनोरंजन रहा।

ग्यारहवें दिन सब लोग अमृतसर वापस पहुंच गए। गर्मी अधिक हो जाने के कारण अब महाराजजी ने काश्मीर के लिए प्रस्थान किया। काश्मीर में पूर्ववत् हारवन जाकर ठहरे। वहां नित्य अभ्यास, ध्यान आदि साधना बराबर चलती रहीं। दीवाली पर पुनः अमृतसर पधार गए। दीवाली के पश्चात् सोतीरामजी की बगीची में निवास

किया । कई मास यात्रा में रहे थे, अतः साधना में उचित समय नहीं लगा सके थे । इस बगीची में आकर चार मास का मौन व्रत धारण कर लिया और सारा समय पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त विज्ञान को दृढ़भूमि करने में लगाया ।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ में
'तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति' नामक
तृतीय अध्याय समाप्त ।।

चतुर्थ अध्याय

योग प्रशिक्षण

पूज्य गुरुदेवजी से जो तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हुआ था तथा जो आत्म तथा ब्रह्म-विज्ञान लाभ हुआ था और उससे जो आनन्दानुभूति उपलब्ध हुई थी उसे महाराजजी अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। जिन्होंने अपने बाल्यकाल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ा हो वह कभी ऐसा कर भी नहीं सकते थे। महाराजजी स्वभाव से ही बड़े दयालु तथा उदारचेता हैं। वे विश्व-कल्याण में ही अपना कल्याण समझते हैं। परिवार के सुखों का परित्याग करने का उद्देश्य भी योग द्वारा विश्व-कल्याण-साधन ही था। स्वयं तत्त्व-ज्ञान लाभ करने के पश्चात् आपने योग प्रशिक्षण की एक बृहद् योजना बनाई जिसके द्वारा दुःखियों के जीवन को सुखी बनाया जा सके, पथ-भ्रष्टों को सत्पथ पर लाया जा सके, कर्त्तव्यविमुखों को कर्त्तव्य का ज्ञान करवाया जा सके और योग-मार्ग पर चलाकर उनके त्रिविध ताप का निवारण किया जा सके।

मोहन आश्रम में साधकों को अभ्यास शिक्षण—अपने प्रारम्भिक साधनाकाल में महाराजजी ने मोहन आश्रम में अपना बहुत समय व्यतीत किया था। यहीं पर रह कर यहां के विद्यालय में संस्कृताध्ययन किया था। सन्ध्या, हवन, जाप तथा ध्यान तो ये यहां आने से पूर्व भी करते थे किन्तु योगाभ्यास का प्रारम्भ यहीं से किया था। यह स्थान गंगा के किनारे बड़े एकान्त में है। ध्यान तथा समाधि के लिए बड़ा उपयुक्त स्थान है, अतः महाराजजी ने योग-प्रशिक्षण का कार्य यहीं से प्रारम्भ किया। अमृतसर में चार मास का मौनव्रत समाप्त करके दो मास के लिए हरिद्वार प्रस्थान किया। योगीराजजी से योग सीखने के लिए सर्वप्रथम ब्रह्मचारी जगन्नाथ पथिक, मेहता सावनमलदत्त, रावलपिंडी वाले लाला बसन्तराम और लाला गुरुचरणदत्त मोहन आश्रम में आए। ब्रह्मचारी जगन्नाथ गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक थे। मेहता सावनमलदत्त आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक थे। बसन्तराम रावलपिंडी के एक बड़े व्यापारी थे और गुरुचरणदत्त अमृतसर के व्यापारी थे।

प्रशिक्षण का विज्ञान से प्रारम्भ—महाराजजी ने योग-प्रशिक्षण का कार्य विज्ञान से प्रारम्भ किया। इन साधकों को सर्वप्रथम चक्र-विज्ञान और कुण्डलिनी उत्थान के क्रम से साधना करवाई गई। कुछ अभ्यास के पश्चात् जगन्नाथ तथा मेहता सावनमलदत्त की कुण्डलिनी जागृत होगई थी और चक्र-विज्ञान प्रारम्भ होगया था। जब जगन्नाथजी नाभि-चक्र में पहुंचे तो उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई और बड़ा सन्तोष लाभ हुआ। इन्होंने गद्गद् स्वर से महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी! मुझे महान सफलता प्राप्त हुई है। चिरकाल तक इधर-उधर भटकने के

पश्चात् आज इस विज्ञान में प्रवेश हुआ है। आप धन्य हैं जिन्होंने हमारा मार्ग दर्शन किया है। मैं आज अपने को कृतकृत्य समझता हूं। मेरे लिए इतना ही इस वर्ष पर्याप्त होगा। मैं इसे दृढ़भूमि करके आगे बढ़ूंगा। आपकी कृपा से मुझे जो दिव्य ज्योति प्राप्त हुई है यह मेरे जीवन की महान सफलता है।" मेहताजी को भी दिव्य ज्योति प्रकट होकर चक्र-विज्ञान होने लग गया था। बसन्तराम अधिक आगे नहीं बढ़ सके। इन्हें भ्रूमध्य में दिव्य ज्योति ही लाभ हो सकी।

वर्षा को रोक देना—एक दिन महाराजजी के साथ जगन्नाथ, सावनमलदत्त और बसन्तराम सप्तसरोवर पर भ्रमणार्थ गए। उस समय गगन मेघाच्छन्न था। सर्वत्र वर्षा हो रही थी। जिस भाग पर महाराजजी अपने भक्तों के साथ भ्रमण कर रहे थे केवल उस स्थान पर पानी नहीं बरस रहा था। शिष्यों ने महाराजजी से वापस चलने के लिए प्रार्थना की, क्योंकि वर्षा में भीग जाने की प्रतिपल आशंका हो रही थी। इन्होंने कहा, "घबराओ नहीं। तुम्हारे कपड़े भीगने नहीं दिए जाएंगे।" भक्तों ने पुनः बड़ी उत्सुकता से कहा, "जब वर्षा होगी तब कपड़े अवश्य भीगेंगे। आप वर्षा को कैसे रोक सकते हैं?" महाराजजी ने कहा, "घबराओ नहीं। हम तुम्हारे ऊपर वर्षा नहीं होने देंगे।" इस पर सब हंसने लगे और परस्पर एक दूसरे से कहा कि मोहन आश्रम में बिना भीगे पहुंचना असम्भव है। योगीराजजी भ्रमण करके नियत स्थान से लौटने लगे। इस समय आसमान में त्राटक किया और जहां ये सब चल रहे थे वहां पर वर्षा का होना बन्द कर दिया और जब तक ये मोहन आश्रम में नहीं पहुंच गए तब तक वर्षा बन्द रही और जब ये सब आश्रम में पहुंच गए तब एकदम मूसलाधार वर्षा होने लगी और घण्टों ही बन्द न हुई। इस चमत्कार से इनके भक्त बड़े प्रभावित हुए। दो मास तक अभ्यास करवाने के पश्चात् महाराजजी अमृतसर लौट गए और चार दिन तक वहां निवास किया। इसके बाद ये रावलपिंडी चले गए और वहां पर योगी अमरनाथ के पास ठहरे। यहां पर कुछ दिवस तक रहने का विचार था अतः अमरनाथजी ने पास ही देवसमाज के भवन में रहने का प्रबन्ध कर दिया। यह स्थान बहुत एकान्त में था। भोजन की सब व्यवस्था अमरनाथजी ने अपने ही निवास-स्थान पर कर दी थी। इन दिनों ये तथा इनकी धर्मपत्नी महाराजजी से प्राणायाम की विधि सीखा करते थे। इन्हें विविध प्रकार के प्राणायाम आते थे और कई-कई मिनट तक श्वास-प्रश्वास को रोककर कुम्भक करने का अभ्यास था।

हृदय-स्तम्भ और नाड़ी-अवरोध का परीक्षण—एक दिन अमरनाथजी ने पण्डित मुक्तिराम, बसन्तराम और वैद्य धर्मचन्द तथा अन्य कई भक्तों को महाराजजी को प्राणायाम करते हुए देखने के लिए बुलाया। धर्मचन्दजी बड़े योग्य वैद्य थे। गुरुकुल के स्नातक थे। पण्डित मुक्तिरामजी दर्शन-शास्त्रों के बड़े विद्वान् थे। प्रातः ८ बजे सारा भक्तमण्डल देवसमाज में आकर एकत्रित होगया। वैद्य धर्मचन्द हृदय की गति देखने के लिए यंत्र (स्टेथोस्कोप) साथ लेकर आए थे। सर्वप्रथम महाराजजी ने हृदय-स्तम्भ प्राणायाम किया और अपने हृदय की गति को बिलकुल बन्द कर दिया। जब वैद्यजी ने यंत्र लगाकर देखा तो हृदय की गति बिलकुल बन्द थी। रक्त-परिभ्रमण और लुप्डप् क्रिया रुक गई थी। सभी एकत्रित भक्त-समुदाय

आश्चर्य-चकित होगया। कुछ विश्राम करके इन्होंने नाड़ी-अवरोध प्राणायाम करके दिखाया। दाएं हाथ की नाड़ी बिलकुल बन्द करके दिखाई। वैद्यजी तथा पण्डित मुक्तिरामजी ने इसका परीक्षण किया। इन दोनों प्रकार के प्राणायामों का प्रदर्शन देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए। इससे सभी के हृदयों में महाराजजी के प्रति अनन्य भक्ति और श्रद्धा के भाव उत्पन्न होगए। स्वामी विशुद्धानन्दजी इनके बहुत बड़े प्रशंसकों में से थे। इन्होंने रावलपिंडी में सर्वत्र इनके योग और यौगिक सिद्धियों की बड़ी ख्याति कर दी थी और ये अपने शिष्यों से प्रायः कहा करते थे कि वर्तमान युग में ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के समान कोई दूसरा योगी आर्य जगत् में दृष्टि-गोचर नहीं होता। हृदय-स्तम्भन तथा नाड़ी-अवरोधन प्राणायामों के प्रदर्शन से महाराजजी के सम्मान में अत्यन्त वृद्धि हुई। पण्डित मुक्तिरामजी भी बड़े प्रभावित हुए। योगी अमरनाथजी की अष्टवर्षीया पुत्री कुलदीपा देवसमाज मन्दिर में महाराजजी को भोजनार्थ बुलाने आया करती थी। वैद्य धर्मचन्दजी बड़ी सन्देहात्मक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने कुलदीपा को कई बार महाराजजी के पास देवसमाज मन्दिर में जाते देखा था। उनके मन में अनेक शंकाएं उत्पन्न होने लगीं। एक दिन योगी अमरनाथजी के पास जाकर कहा कि आप अपनी पुत्री को ब्रह्मचारीजी के पास भोजन के लिए बुलाने मत भेजा करो। वे वहां अकेले रहते हैं अतः मैं इसका वहां जाना उचित नहीं समझता। अमरनाथजी इनकी बात सुनकर स्तम्भित से रह गए और कहने लगे कि आप ब्रह्मचारीजी को नहीं जानते। ये बहुत ऊंचे दर्जे के महात्मा हैं और प्रसिद्ध योगी हैं। उनके प्रति आपकी दुर्भावना देखकर मुझे दुःख तथा आश्चर्य दोनों ही हो रहे हैं। आपका इस प्रकार का सन्देह अत्यन्त निराधार तथा अनुचित है। ऐसी महान् आत्माओं के प्रति इस प्रकार का सन्देह करना एक बड़ा पाप है। वैद्यजी बड़े घबरा गए और शास्त्र का प्रमाण देकर कहा कि युवावस्था प्राप्त माता, बहिन और पुत्री के पास कभी भी एकान्त में नहीं बैठना चाहिए। अमरनाथजी ने कहा, मेरी पुत्री तो इतनी छोटी है कि वह ब्रह्मचारीजी की भी पुत्रीवत् ही है और यदि व्यासदेवजी जैसा महान् व्यक्ति मेरी पुत्री से विवाह करना भी चाहे तो मुझे इसमें अपार हर्ष होगा और मैं इसमें अपना महान् गौरव समझूंगा। कई वर्ष के अनन्तर अमरनाथजी ने यह बात बड़े विनोदपूर्ण ढंग से श्री महाराजजी को सुनाई थी और तब बड़ा मनोरंजन रहा था।

वैद्य धर्मचन्दजी के पुत्र को योगबल से आरोग्यता प्रदान की—एक बार महाराजजी काश्मीर से लौटते हुए पुनः रावलपिंडी ठहरे। उन दिनों धर्मचन्दजी का नवजात पुत्र अत्यधिक बीमार था। इसे अतिरेचन हो रहा था। दिन-भर में ५०-६० बार शौच जाता था। अत्यन्त कृश तथा दुर्बल होगया था। उसके जीवन की कोई आशा नहीं रही थी। वैद्यजी ने स्वयं बहुत इलाज किया और कई डाक्टरों से भी उपचार करवाया, किन्तु किसी से भी लाभ नहीं हुआ। सारा परिवार निराशा में डूबा हुआ था। कहीं से भी आशा की किरण दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। जब वैद्यजी को यह मालूम हुआ कि महाराजजी नगर में पधारे हुए हैं तब वे भागे हुए अमरनाथजी के घर पर उनसे मिलने गए और निवेदन किया, "महाराजजी, नवजात शिशु अत्यन्त रुग्ण है। उसके प्राण संकट में हैं। विविध उपचार करवा चुका हूं।

कुछ आशा उसके जीवन की प्रतीत नहीं हो रही है। अब मुझे आपका ही भरोसा है। आप ही में इसके प्राण बचाने की शक्ति है और आप ही इसे अपने योगबल से प्राणदान दे सकते हैं। आप इस पर अपना मानसिक प्रयोग करने की कृपा करें। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। आप ही इसे नीरोग कर सकते हैं।" वैद्यजी की प्रार्थना पर महाराजजी ने उनके पुत्र पर प्रयोग करना स्वीकार कर लिया। बालक झूले में लेटा था। अत्यन्त कृश होगया था। उसका केवल अस्थि-पंजर ही शेष रह गया था। महाराजजी ने झूले के पास खड़े होकर अपना मानसिक प्रयोग प्रारम्भ किया। बालक बहुत देर से बेहोश था किन्तु १५-२० मिनट के प्रयोग से बालक होश में आ गया और नेत्र खोलकर महाराजजी की ओर त्राटक करके बहुत देर तक देखता रहा। इन्हें विश्वास होगया कि बालक ठीक होगया है। महाराजजी ने आधा घण्टा तक प्रयोग किया। बच्चा कुछ ठीक हुआ। इन्होंने वैद्यजी से कहा कि बालक कल तक बिलकुल ठीक हो जाएगा। बालक के दस्त बन्द होगए और वह बिलकुल नीरोग हो गया।

इस वर्ष महाराजजी काश्मीर में ४ मास के लगभग मौनव्रत समाप्त करके आए थे। इन दिनों अपने मनोबल के द्वारा ये रोगियों को नीरोग करने का अभ्यास भी किया करते थे।

अमृतसर पधारना

साधना का कार्यक्रम––महाराजजी दीपावली के अवसर पर रावलपिंडी से अमृतसर पधारे और मोतीराम की बगीची में निवास किया। दीपमाला के पश्चात् इन्होंने काष्ठ मौन व्रत धारण किया और अपना साधना का कार्यक्रम नियत कर लिया जो निम्न प्रकार से था :––

प्रातःकाल २ बजे से दोपहर के १२ बजे तक––एक ही आसन पर बैठकर अभ्यास।

दोपहर १२ बजे से २ बजे तक––स्नान, अग्निहोत्र, फल और दूध लेकर थोड़ा विश्राम।

४ बजे से रात्रि के १० बजे तक––योगाभ्यास में बैठना।

योग प्रशिक्षण––उपरोक्त प्रकार से प्रतिदिन १६ घण्टे ध्यान तथा समाधि में व्यतीत करते थे। काष्ठ मौन व्रत चैत्र की संक्रान्ति को समाप्त किया। इसके पश्चात् हरिद्वार पधारे और वहां पर मोहन आश्रम में निवास किया। पूर्ववत् पुनः दो मास का योग प्रशिक्षण का कार्यक्रम बनाया। कई अभ्यासी योग साधना के लिए उपस्थित होगए। इस बार दिन में तीन बार अभ्यास करवाया जाता था। सायं और प्रातः तो अभ्यास मोहन आश्रम में ही करवाया जाता था किन्तु प्रातः ८ बजे से लेकर १२ बजे तक अभ्यास गंगाजी के तट पर करवाया जाता था क्योंकि वहां पर नितान्त एकान्त स्थान था। चैत्र और वैशाख मास में यह साधना करवाई गई थी। इस अवसर पर मोहन आश्रम में स्वामी विशुद्धानन्दजी, स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी, स्वामी सोमतीर्थजी और स्वामी ओमानन्दजी आदि महात्मा ठहरे हुए थे। इन सबसे योग के विषय में प्रायः वार्तालाप होता रहता था।

उत्तरकाशी (हिमालय) में निवास

शंकर मठ में निवास—मोहन आश्रम से उत्तरकाशी जाने का विचार कर लिया। लगभग आधे ज्येष्ठ में महाराजजी देहरादून मसूरी होते हुए उत्तरकाशी पहुंच गए। यहां पर शंकर मठ में स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी की कुटिया में निवास किया। यहां आकर चार मास का मौन व्रत धारण कर लिया। उत्तरकाशी में इन दिनों मक्खियां अत्यधिक होती हैं। ये यहां पर कमरा बिलकुल बन्द करके भोजन बनाते थे। दरवाजे बन्द करने के कारण अंधेरा हो जाता था, उसके निवारण के लिए दिन में भी दीपक जलाना पड़ता था। यहां पर उन दिनों एक रुपये का डेढ़ सेर घी और ६-७ पैसे सेर दूध बिका करता था। पंजाबी क्षेत्र के प्रबन्धक पण्डित जगतराम सारी खाद्य सामग्री मंगवा कर कुटिया में भिजवा देते थे, इसलिए मौन व्रत में किसी प्रकार की असुविधा नहीं थी। महाराजजी केवल अमावस्या तथा पूर्णिमा को अपना मौन व्रत खोलते थे। इस बार ये यह अनुभव करना चाहते थे कि आहार और निद्रा को मनुष्य कहां तक बढ़ा सकता है। इस मौन से पूर्व ये १० बजे से २ बजे तक अर्थात् केवल ४ घण्टे ही सोते थे और केवल एक पाव आटा २४ घण्टे में खाते थे। उपरोक्त अनुभव करने के लिए दूसरे दिन आधी छटांक आटा और बढ़ा दिया किन्तु घी की मात्रा नहीं बढ़ाई और १५ मिनट निद्रा में वृद्धि कर दी। साढ़े तीन मास में बीस छटांक आटा खाने तथा बारह घण्टे नींद लेने लग गए। इस आहार और निद्रा को और भी बढ़ाया जा सकता था किन्तु महाराजजी ने इसे हानिकर समझकर इसका और अधिक अनुभव नहीं किया। अधिक आहार और निद्रा शरीर को तमोगुणी बनाकर पशुवत् बना देते हैं। बुद्धि जड़वत् हो जाती है। सूक्ष्म विज्ञान को समझने में असमर्थता आ जाती है। तन्द्रा और निद्रा का एक साम्राज्य-सा स्थापित हो जाता है। श्वास-प्रश्वास की गति अधिक होने लगती है। इससे मनुष्य अल्पायु भी हो जाता है। इसलिए योगी के लिए यह परमावश्यक है कि अल्प और सात्विक आहार करे। उसे ४-५ घण्टे से अधिक निद्रा भी नहीं लेनी चाहिए। इस अनुभव के पश्चात् महाराजजी ने अन्न का परित्याग करके उपवास कर लिया। नेति, धोती, गजकर्णी, वस्ती इत्यादि क्रियाएं भी कीं और प्राणायाम के द्वारा शारीरिक शुद्धि करके उसको हल्का करना प्रारंभ कर दिया। अब आहार में केवल थोड़ा-सा दूध लेना ही प्रारम्भ कर दिया था। १५-२० दिन में इनका शरीर पूर्वस्थिति में आगया। श्री महाराजजी को देहाध्यास का स्पर्शमात्र भी न था। अपने शरीर पर इन्होंने अनेक अनुभव करके देखे थे। इनका शरीर ज्ञान, विज्ञान तथा नवीन अनुभव प्राप्ति की एक जीवित-जागृत प्रयोगशाला थी।

हरिद्वार में योग प्रशिक्षण

महाराजजी दीवाली के अवसर पर सदैव की भांति अमृतसर पधार गए। इस बार यहां रहकर तीन मास का मौन व्रत लिया। हरिद्वार में इस बार कुम्भ का मेला होने वाला था, इसलिए अभ्यासियों को इससे पूर्व ही समय देने का निश्चय कर लिया। व्रत समाप्त करके हरिद्वार में मोहन आश्रम में चले गए। कुम्भ के कारण इस बार अभ्यास में सम्मिलित होने वालों की संख्या अधिक थी। इस बार डेढ़ मास तक ही प्रशिक्षण चला। कुम्भ के मेले से १५ दिवस पूर्व ही अभ्यास समाप्त कर दिया जिससे

मेले में सम्मिलित होने की इन्हें सुविधा रहे। अब महाराजजी मोहन आश्रम से नगर में बड़े डाकखाने के पास माई मानकौर की धर्मशाला में चले गए। यह धर्मशाला लाला मोतीरामजी, जिनकी बगीची में ब्रह्मचारीजी अमृतसर में रहकर अभ्यास किया करते थे, उनकी पत्नी ने बनवाई थी। इनसे परिचय होने के कारण महाराजजी को इस धर्मशाला में कई कमरे मिल गए। अमृतसर के सेठ तुलसीरामजी महाराजजी को मिलने आए। इनका अपने भाइयों से सम्पत्ति के विषय में मुकद्दमा चल रहा था। माता मनसादेवी इनकी बहुत पुरानी परिचित थीं। इन्होंने महाराजजी से निवेदन किया कि आप ऐसा उपाय करें जिससे हम इस मुकद्दमेबाजी से मुक्त हो जाएं और अपना शेष जीवन ईश्वर-भक्ति में लगा सकें। इस रात-दिन की चिन्ता के कारण कुछ भी भजन-पाठ नहीं हो सकता।

सेठ तुलसीराम और मनसादेवी को वरदान—श्री महाराजजी की अपने श्रद्धालु भक्तों पर बड़ी कृपा थी। मुकद्दमे के कारण तुलसीरामजी और मनसादेवी को चिन्तित देखकर उन पर इन्हें दया आ गई और इनको आदेश दिया कि आप दोनों हाथ में गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा करो कि झगड़ों से मुक्त होकर अपना शेष जीवन हरिद्वार में रहकर ईश्वर-भक्ति में व्यतीत करोगे और अपना सारा व्यापार आदि अपने पुत्रों के सुपुर्द कर दोगे। माता मनसादेवी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराजजी, हमारे पास इतना धन कहां है कि हम सब धंधा छोड़कर हरिद्वार में आ बैठें! हमारा निर्वाह किस प्रकार होगा?" महाराजजी ने हंसकर कहा, "तुम्हारे पास जब एक करोड़ की सम्पत्ति हो जाएगी तब तो हरिद्वार में आकर गंगा के तीर पर बैठकर भजन करने लगोगी?" इस पर सेठजी तथा उनकी पत्नी मनसादेवी ने हाथ में गंगाजल लेकर हरिद्वार में निवास करके भजन करने की प्रतिज्ञा की और महाराजजी से निवेदन किया कि "महाराजजी, आप ऐसी कृपा करें कि जिससे इस मुकद्दमे का फैसला हमारे पक्ष में हो जाए।" योगीराजजी ने जिस जज के पास उनका मुकद्दमा था उसकी फोटो मंगवाई और उसकी आयु और रंग आदि के विषय में पता लगाया और मानसिक प्रयोग के द्वारा उसकी भावना में परिवर्तन ला देने के लिए उनसे कहा। मुकद्दमे की तारीख भी पूछी जिससे उसी दिन मानसिक प्रयोग किया जाए। इनके सुपुत्र हरिकिशनदास ने लाहौर जाकर सब बातों का पता लगाकर महाराजजी को सूचित कर दिया। लगभग दो मास में सालस (मध्यस्थ) नियत हो गया और इसने सेठ तुलसीरामजी के पक्ष में मुकद्दमे का फैसला दे दिया। इनको बम्बई में इस निर्णय के अनुसार एक बड़ा भारी कारखाना मिल गया। इसी समय योरुप में महायुद्ध प्रारंभ होगया और ये चार-पांच साल में ही करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक बन गए। इन्होंने महाराजजी की आज्ञा के अनुसार हरिद्वार में कपूरथला हाऊस एक लाख में खरीद लिया और यहीं आकर रहने लग गए। इन्होंने अपना शेष जीवन ईश्वर-भक्ति के ही अर्पण कर दिया। तभी से ये महाराजजी को अपना गुरु मानने लग गए और इनके प्रति उनकी अनन्य भक्ति होगई।

कुम्भ के अवसर पर एक बड़ी दुर्घटना होगई जिसका महाराजजी के हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। हर की पौड़ियों पर लगभग दो सौ गज के फासले पर कई स्थानों पर सड़क पर बल्लियां बांधी गई थीं। प्रातः चार बजे से ही जनता ने

स्नानार्थ ग्राना प्रारंभ कर दिया। दैवयोग से बल्लियां टूट गईं। यात्रियों का समुदाय, जो स्नानार्थ ग्रा रहा था, रुक न सका क्योंकि उन्हें क्या मालूम था कि बल्लियां टूटने वाली हैं। इससे लगभग ८०-९० व्यक्ति कुचलकर मर गए। इस दुर्घटना को देखकर महाराजजी को बड़ा दुःख हुग्रा ग्रौर बड़ी उदासीनता तथा वैराग्य की भावना हृदय में उत्पन्न होगई ग्रौर उत्तराखण्ड (हिमालय) में जाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

वृद्ध सन्त के उपदेश—कुम्भ का स्नान करने के पश्चात् श्री महाराजजी सप्त-सरोवर पर सन्तों तथा महात्माग्रों के दर्शनार्थ गए। गंगा के किनारे तीन मील के फासले पर एक बहुत वृद्ध सन्त के दर्शन हुए। ये भिक्षा लाकर गंगाजी में धो रहे थे जिससे इसका स्वाद, रस तथा स्निग्धता निकल जाए। ये सन्त महान् त्यागी ग्रौर उत्कट वैराग्य सम्पन्न थे। जब ये भोजन करने लगे तब महाराजजी ग्रपने पास से कुछ खाद्य पदार्थ इनको भेंट करने लगे। उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसमें ग्रत्यधिक घृत था। इनसे वार्तालाप करते हुए योगीराजजी ने पूछा, "ग्रापको वैराग्य हुए कितने वर्ष होगए हैं?" इन्होंने कहा, "मुझे साधु बने लगभग साठ वर्ष हो गए हैं।" महाराजजी ने इनसे ग्रपने लम्बे जीवन की विशेषताएं बताने की प्रार्थना की जिससे उन्हें ग्रपने जीवन में चरितार्थ किया जा सके। महात्माजी ने हंसते हुए कहा, "मैं क्या ग्रनुकरणीय बात बताऊं बेटा! ग्रनेक यत्न तथा उपाय ग्रौर साधन करने पर भी मैं ग्राज तक स्मृति ग्रौर संस्कारों का ग्रभाव नहीं कर पाया हूं। इस जीर्ण-शीर्ण वृद्धावस्था में भी पत्नी के सुखों का स्मरण हो ग्राता है। ग्राज उसकी मृत्यु को ६५ वर्ष होगए हैं। सब कुछ त्याग दिया। वैराग्यवान् भी बन गया हूं परन्तु पत्नी का ग्रनुराग ग्रभी नहीं गया है। स्मृति ग्रनुरागपूर्वक ही होती है। ग्रपने जीवन को धिक्कारता हूं। जिस उद्देश्य से गृह-त्याग किया था वह ग्रभी तक पूर्ण नहीं हुग्रा है। परम वैराग्य की स्थिति ग्रभी भी प्राप्त नहीं हुई है। तुम बहुत ग्रच्छे हो जो विवाह नहीं किया। मनुष्य सब बंधनों से मुक्त हो जाता है परन्तु विवाह के बंधन से मुक्त होना ग्रसंभव भले ही न हो किन्तु ग्रत्यन्त कठिन ग्रवश्य है।" महाराजजी ने महात्माजी के चरण पकड़कर निवेदन किया, "महाराज! ग्रापने मेरे लिए बड़े उपदेश की बात कही है। इसको स्मरण करके कभी भूलकर भी विवाह की इच्छा न होगी। ग्रापको रुपयों की ग्रावश्यकता हो तो मैं ग्रापके लिए ला दूं।" इस पर महात्माजी ने कहा, "मैं रुपये को गत ५० वर्ष से स्पर्श भी नहीं करता। मुझे वस्त्रों की भी ग्रावश्यकता नहीं है। गर्म कपड़े मैं पहिनता नहीं हूं ग्रौर मेरे पास खद्दर की दो चादरें हैं। ग्रभी ४-५ साल ग्रौर चल जाएंगी।" महाराजजी ने उन्हें प्रणाम किया ग्रौर ग्रपने निवास-स्थान पर ग्रागए।

उत्तरकाशी (हिमालय) में पुनः निवास

हरिद्वार का कुम्भ समाप्त होने पर श्री महाराजजी देहरादून तथा मसूरी होते हुए उत्तरकाशी पहुंच गए। इस बार ग्राप पंजाबी क्षेत्र में ठहरे। पं० जगतरामजी यहां के प्रबंधक थे। इनकी सन्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा ग्रौर भक्ति थी। इन्होंने महा-राजजी को निवासार्थ एक कमरा दे दिया। कुछ दिनों के पश्चात् स्वामी पंचानन्दजी, जो इलाहाबाद में कोट दयाराम झूसी के महन्त थे, वहां ग्रागए। ये महाराजजी के बड़े मित्र थे। जब ये प्रयाग में कुम्भ तथा ग्रर्धकुम्भी पर गए थे तब इन्हीं के ग्राश्रम में

ठहरे थे। इन दोनों का पारस्परिक बड़ा प्रेमभाव था। ये भी पंजाबी क्षेत्र में ही ठहरे थे। यहां पर कुछ दिवस ठहरने के पश्चात् इन्होंने गंगोत्री और गोमुख जाने का विचार कर लिया। महाराजजी इनको विदा करने के लिए कुछ दूर तक इनके साथ गए। उत्तरकाशी के स्कूल के पास तक इन्हें पहुंचा कर जब लौटने लगे तब पंचानन्दजी से कहा, "चित्त तो मेरा भी उधर जाने के लिए कर रहा है।" पंचानन्दजी ने उनसे कहा, "आप नर्म-नर्म घास पर चहलकदमी करने, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले सुकुमार साधु हैं। आपसे यह कठिन यात्रा न हो सकेगी।" महाराजजी ने इसका उत्तर दिया कि "आप मुझे बिलकुल सुकुमार न समझें। मैं कुसुम के समान कोमल तथा पत्थर के समान कठोर हूं। मैं कठिनतम यात्रा भी कर सकता हूं। मैं इससे पूर्व दो बार गोमुख की यात्रा कर चुका हूं। कैलाश और मानसरोवर की यात्रा कर चुका हूं। यह यात्रा कितनी कठिन है इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। मेरे लिए गोमुख-यात्रा एक अत्यन्त साधारण-सी बात है। इतना कह चुकने के बाद इन्होंने अपने कपड़े के सफेद जूते, काश्मीरी गर्म चादर अथवा गर्म धुस्सा क्षेत्र से लाने के लिए मैनेजर को आदेश दिया। सब हंसने लगे क्योंकि इस बात पर विश्वास नहीं था कि महाराजजी गोमुख जा सकेंगे किन्तु महाराजजी ने अपना धुस्सा कंधे पर रखा और चल दिए। सबसे कह दिया कि आज से सातवें दिन यहां लौट आऊंगा।

गोमुख की ७ दिन में यात्रा––महाराजजी, स्वामी पंचानन्दजी तथा एक अन्य अवधूतजी ने गोमुख के लिए प्रस्थान किया। पहिले दिन भटवाड़ी पहुंचे। दूसरे दिन झाला, और तीसरे दिन अवधूतजी तो आगे चलने में असमर्थ होगए अतः वहीं रह गए परन्तु महाराजजी और पंचानन्दजी सायंकाल ४ बजे गंगोत्री पहुंच गए। यहां से चौथे दिन प्रातः प्रस्थान करके ४ बजे सायंकाल गोमुख के पास पहुंच गए। वहां पर प्रातः-काल पूर्णिमा का स्नान किया। गोमुख पहुंच कर स्नानोपरान्त कुछ जल-पान किया और वापस चल दिए। लगभग दो बजे गंगोत्री पहुंच गए। दूसरा स्नान गंगोत्री में लगभग अढ़ाई बजे किया और स्वामी कृष्णाश्रमजी के पास चाय-पान किया। महन्त पंचानन्दजी ने महाराजजी की बड़ी प्रशंसा की और उनके सामने अपनी पराजय स्वीकार की। योगीराजजी ने वीर पुरुषों के समान यह यात्रा की। जब कभी थोड़ी-सी भी चढ़ाई आ जाती थी तो पंचानन्दजी का दम फूलने लगता था। अब उनमें गंगोत्री से आगे चलने की क्षमता नहीं रही, इसलिए गंगोत्री में ही ठहरना पड़ा। ये पांचवें दिन गंगनाणी पहुंच गए और वहां तप्त कुण्ड पर ठहरे। २८ मील की यात्रा की थी अतः थकान अधिक होगई थी। तप्त कुण्ड में स्नान करने से थकान दूर हुई। रात्रि को यहीं विश्राम किया। दूसरे दिन यहां से प्रस्थान करके मनेरी जाकर ठहरे। सातवें दिन वहां से प्रातः ५ बजे चल कर ९ बजे उत्तरकाशी पहुंच गए। जगतरामजी तथा अन्य परिचितों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराजजी को उत्तरकाशी में निवास करना अधिक प्रिय था, इसलिए यहां कुछ दिन और ठहरे।

जालंधर तथा होशियारपुर गमन––आश्विन मास में यहां से जालंधर के लिए प्रस्थान किया और जालंधर पहुंच गए। वहां पर डाक्टर नारायणसिंहजी के पास कुछ दिवस तक ठहरे और इसके पश्चात् होशियारपुर में डाक्टर मोतीसिंहजी के पास निवास किया। इस वर्ष सर्दियों में बिजवाड़े के चौक के पास इनकी बगीची में ठहरे।

यहां पर कुछ मास का मौन व्रत किया। भोजनादि की सब व्यवस्था डाक्टर मोतीसिंह ने ठीक-ठीक कर दी थी।

काश्मीर गमन—सदैव की भांति महाराजजी ग्रीष्म-ऋतु में काश्मीर चले गए। इस बार मुफ्ती बाग में न ठहर कर बैरीनाग के चश्मे पर ठहरे। कुछ दिनों के पश्चात् सेठ तुलसीराम, इनकी धर्मपत्नी और इनकी पुत्री जनककुमारी वहां आगईं। इनके निवास का प्रबंध जंगलात के डाक बंगले में कर दिया गया। महाराजजी डाक बंगले में सेठजी और इनकी पत्नी और पुत्री को अभ्यास करवाने के लिए जाया करते थे। माता मनसादेवीजी तीन घण्टे तक शून्य समाधि लगाने लग गई थीं। सेठजी तथा उनकी पुत्री केवल दो घंटे तक ही बैठते थे। ये सब लगभग तीन मास तक महाराजजी के पास रहे। योगीराजजी नित्यप्रति अपनी कुटिया में इन्हें कथा सुनाया करते थे। कई-एक ब्राह्मण भी कथा सुनने के लिए आ जाया करते थे। सेठानीजी तीन या चार घंटे की समाधि लगाती थीं, जनककुमारी मंत्रजाप करती थी तथा सेठजी विज्ञान के क्रम से योग सीखते थे। यह सन् १६३६ की बात है। इस वर्ष द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ था। दशहरे के अवसर पर महाराजजी तथा तुलसीरामजी पं० गोपीनाथजी के पास श्रीनगर में कनिकदल में ठहरे। वहां इन्होंने प्रदर्शनी देखी और चार दिन तक पंडितजी के अतिथि रह कर अमृतसर के लिए प्रस्थान कर दिया।

अमृतसर में निवास

महाराजजी दीवाली से एक सप्ताह पूर्व अमृतसर पहुंच गए और वहां पर मोतीरामजी की बगीची में निवास किया। इस वर्ष पंडित अगस्तमुनि तथा भाग्यवन्तीजी श्री महाराजजी के दर्शन करने के लिए आए। पण्डितजी प्रायः कोटली मीरपुर में उपदेश द्वारा प्रचार किया करते थे। ये बी० ए० और शास्त्री पास थे। कोटली तथा मीरपुर में मेहता सावणमलदत्त से महाराजजी की प्रशंसा सुन कर और उससे प्रभावित होकर ये दोनों महाराजजी से मिलने आए थे। इसके पश्चात् पंडितजी यदा-कदा इनसे मिलने आते रहे और योग साधना में भी सम्मिलित होते रहे। धीरे-धीरे इनकी महाराजजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति होगई और वे इनमें गुरु-भावना रखने लग गए। श्रीमती भाग्यवन्तीजी गुरुचरणदत्तजी के पास ठहरी थीं। महाराजजी ने ही उनकी सब व्यवस्था वहां करवा दी थी। महाराजजी ने मौनव्रत धारण किया हुआ था। ये केवल पूर्णिमा और अमावस्या के दिन मौनव्रत तोड़ते थे। उन दिनों अपनी कुटिया पर ही उपदेश दिया करते थे। श्रीमती भाग्यवन्तीजी श्री गुरुचरणदत्तजी के साथ ही वहां पर उपदेश श्रवण करने के लिए आ जाया करती थीं। इन्हें योग-साधना का उपदेश देकर महाराजजी ने हरिद्वार जाकर तपोमय जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया।

अवधूत बुद्धिप्रकाशजी का उत्थान और पतन—उत्थान—मोतीरामजी की बगीची के सामने सन्त बुद्धिप्रकाशजी अवधूत रहा करते थे। ये उदासी सन्त थे। यहां पर इनका अपना बंगला और बगीचा था। महाराजजी भी इनकी बगीची में अपने निवास के लिए घास की एक पर्णकुटि बनाकर तपस्या करते रहे थे, इसलिए इनके साथ योगीराजजी का बड़ा स्नेह था। सन्त बुद्धिप्रकाशजी ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास में २१ धूनियां तपा करते थे। इस तप की समाप्ति पर एक बड़ा उत्सव मनाते थे और

भण्डारा किया करते थे। ये बड़े तपस्वी तथा त्यागशील सन्त थे। उत्सव के समय महाराजजी को उपदेश देने के लिए बुलाया करते थे। सहस्र नर-नारी इस उत्सव के अवसर पर आते थे। इनके शिष्यों की संख्या लगभग १५ थी। इनकी आयु लगभग ६० वर्ष की होगी। अमृतसर में इनकी बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी।

पतन—सन्त बुद्धिप्रकाशजी जैसे प्रतिष्ठित महात्मा के पतन की कभी कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। किन्तु "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः", जब किसी व्यक्ति के पतन का समय आता है तो उसकी बुद्धि और विवेक सब नष्ट हो जाता है। वह श्रेय-मार्ग का परित्याग करके प्रेय के गर्त में गिर जाता है। उस समय उसे अपनी कीर्ति तथा मान और प्रतिष्ठा का बिलकुल ध्यान नहीं रहता। उसके पतन की एक शृंखला-सी बंध जाती है। जब एक बार मर्यादा का उल्लंघन कर दिया जाता है, अथवा एक बार अनुशासनहीनता आ जाती है, तब यह नहीं कहा जा सकता कि इस मर्यादा तथा अनुशासनहीनता का अन्त कहां होगा। इसीलिए नीतिविशारदों ने कहा है "विवेकपरिभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।" यह कथन सन्त बुद्धिप्रकाशजी के ऊपर पूरा-पूरा घटता है। इनके पतन की कहानी बड़ी दुःखद है। उसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। पाठकों को मर्यादा-पालन की शिक्षा देने के लिए इसका लिखना भी उपयुक्त मालूम होता है। सन्त कबीर कहा करते थे कि शूरवीर रणांगन में जाकर हाथ में तलवार लेकर शत्रु के साथ युद्ध करता है। थोड़ी ही देर में वह रणभूमि में युद्ध करता हुआ या तो शत्रु को मार देता है या स्वयं मारा जाता है। सती को भी अपने पतिदेव के साथ सती होने में एक-आध घण्टा ही लगता है। किन्तु सन्त प्रतिपल अपनी इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त, कषायों, कुवासनाओं और विविध वृत्तियों से अहर्निश जूझता रहता है। उसे बड़ा सजग और सतर्क रहना पड़ता है। इस प्रकार से आजीवन इनके साथ युद्ध चलता रहता है। थोड़ी-सी असावधानी उसे अध्यात्म, तपस्या, त्याग, विवेक, वैराग्य के उच्च शिखर से गिराकर रसातल में पहुंचा देती है। यही बात सन्त बुद्धिप्रकाशजी के साथ हुई। गुजरांवाले की एक धनाढ्य विधवा इनके सत्संग में आया करती थी। धीरे-धीरे एक दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। सन्त अपने कर्तव्य-पथ से विचलित होगया। महात्माओं की परम्पराओं, मर्यादाओं तथा अनुशासन को भूल गया। शास्त्रशिक्षा तथा गुरुदीक्षा को ताक पर रख दिया। विवेक खो दिया। बुद्धि भ्रष्ट होगई। मान और प्रतिष्ठा का सब ध्यान जाता रहा। सन्तों और महात्माओं के सब उपदेश पानी की तरह बह गए। महाराजजी ने उन्हें एकान्त में लेजाकर कई बार समझाया और इस स्त्री की ओर से उनका मन फेरने का प्रयत्न किया। मान तथा प्रतिष्ठा पर लांछन लगाने से बचाने के लिए उपदेश दिए। लोक-मर्यादा की रक्षा की दुहाई दी। लोकापवाद की बुराइयां बताईं पर उन्हें एक भी बात समझ में न आई। आती भी कैसे! क्योंकि "कामातुराणां न भयं न लज्जा।" अन्ततोगत्वा इस सन्त ने जटाएं मुंडवा दीं, सन्तों के वस्त्र उतार दिए, अपना नाम बदल लिया और गुजरांवाले की उस स्त्री के साथ विवाह कर लिया। श्री महाराजजी को बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। सन्तों की पावन परम्परा को इस दुराचार से बड़ी ठेस पहुंची। पतित सन्त की सारे नगर में सर्वत्र निन्दा होने लगी। महाराजजी का चित्त भी अब अमृतसर से उपराम होगया। अमृतसर में यह मौन व्रत उनका

अन्तिम था। अब इन्होंने यहां निवास करने का सर्वथा परित्याग कर दिया। बुद्धिप्रकाशजी को बहुत फटकारा और कहा, "सन्तजी, आप बुद्धिप्रकाश नहीं अपितु बुद्धूप्रकाश हैं। आपने सन्त मत्त पर बड़ा धब्बा लगाया है। आपके दुराचार से हमें भी बड़ी लज्जा आ रही है। हमारा यहां रहना ही आपने कठिन कर दिया है। आपने अपनी मूर्खतावश सोने के बदले पीतल खरीदा है। आपको सब लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आप बड़े अपमानित हो रहे हैं। इससे तो नहर में डूबकर मर जाना उत्तम है। अब आपने यह भूमि पापयुक्त कर दी है अतः हम इसे सदा के लिए छोड़ रहे हैं।" ये अपना मौनव्रत समाप्त करके २-३ दिन तक नगर में रहें।

काश्मीर प्रस्थान---यहां से पण्डित गोपीनाथजी का तबादला बारहमूले के पास स्यालकोट में होगया था अतः इन्होंने महाराजजी से वहीं चलने के लिए निवेदन किया।

देरी साहब में निवास और चमत्कार—पं० गोपीनाथ ने महाराजजी के निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था कर दी। पंडितजी ने महाराजजी से कहा, "स्यालकोट में देरी साहब नामक एक बड़ा एकान्त स्थान है। यहां एक सुन्दर चश्मा भी है। यदि आप वहां ठहरना पसन्द करें तो आपका वहां पर प्रबन्ध कर दूं। यदि वहां निवास पसन्द न हो तो फिर एक नम्बरदार के मकान में कर दूं। यह भी स्थान बड़ा एकान्त और शान्त है। महाराजजी ने दोनों स्थान देखने के पश्चात् अपना निर्णय देने की इच्छा प्रकट की। दोनों स्थानों का निरीक्षण कर चुकने के पश्चात् महाराजजी ने देरी साहब में निवास करना पसन्द किया। नम्बरदार करतारसिंह ने इन्हें अपने पास ठहराने का बहुत आग्रह किया किन्तु महाराजजी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उनकी युवती पत्नी घर में अकेली रहती थी। इस भाव को नम्बरदार से प्रकट भी किया किन्तु तब भी उसने हठ नहीं छोड़ा और कहा, "महाराजजी, मेरी पत्नी तो आपकी पुत्री के समान है। आपको यहां रहने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए।" महाराजजी ने इस बात को अस्वीकृत करते हुए कहा, "तुम व्यर्थ का हठ मत करो, मैं तुम्हारे मकान में नहीं ठहर सकता। सुनो शास्त्र क्या आदेश करता है। 'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमप्यपकर्षति।' अर्थात् माता, बहिन, पुत्री यदि युवती हों तो इनके पास एकान्त में कभी न बैठे क्योंकि इन्द्रियां बलवती हैं। सर्वशास्त्रपारंगत व्यक्ति के भी इनके वशीभूत हो जाने की संभावना रहती है।" करतारसिंह यह बात सुनकर मौन रह गया। थोड़ा ठहर कर पुनः निवेदन किया, "महाराजजी, आपका देरी साहब रहना तो उचित न होगा। वहां कोई कभी रहता ही नहीं। एक बार एक सन्त वहां जाकर रहने लगे थे। किसी भूत या प्रेत ने उनके मुंह पर इतने चांटे मारे कि वह बेचारा सन्त इस पीड़ा से मृत्यु को प्राप्त होगया, तब से आज तक कभी कोई भी वहां नहीं रहा। इसलिए मेरे विचार में तो आपको वहां निवास नहीं करना चाहिए। वहां तो बड़ा पुण्यात्मा महापुरुष ही निवास कर सकता है। कोई साधारण व्यक्ति वहां नहीं रह सकता। आप मेरे मकान में ही रहिए। मैं अपनी पत्नी को किसी दूसरे स्थान पर प्रबंध करके वहां पहुंचा आता हूं।" श्रीमहाराजजी ने हंसते हुए कहा, "क्या आप हमें मामूली आदमी ही समझते हैं? बहुत बड़ा पुण्यात्मा और देवपुरुष नहीं समझते?" करतारसिंह ने हाथ जोड़ कर विनम्रता से

कहा, "जब तक आपका कोई चमत्कार न देख लिया जाए तब तक आपको देवपुरुष कैसे माना जा सकता है ?" महाराजजी ने देरी साहब में ही अपने निवास का प्रबंध करने के लिए आदेश दिया। करतारसिंह ने इनके निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था देरी साहब में करवा दी।

देरी साहब में निर्भय होकर निवास और कुटिया का जीर्णोद्धार—काश्मीर रियासत में बारहमूला तहसील में स्यालकोट नाम का एक ग्राम था। इसकी जनसंख्या प्रायः सारी सिक्खों की थी किन्तु ये लोग हिन्दू धर्म पर विश्वास करते थे। श्री गुरु गोविन्दसिंहजी के समय में एक सन्त रोचासिंह यहां पर तपश्चर्या किया करते थे। ये सन्त पढ़े लिखे थे और बड़े ईश्वरभक्त थे। गुरु गोविन्दसिंह ने इनसे प्रार्थना की कि "देश पर आपति के बादल मंडरा रहे हैं। यवन देश को पादाक्रान्त करते जा रहे हैं। अतः आप देश की सेवा में मेरी सहायता करें। तलवार हाथ में लेकर मुसलमानों से युद्ध करने के लिए मैदान में उतरें और देश की यवनों से रक्षा करें। इस समय यही सबसे उत्तम ईश्वरभक्ति है।" ये बातें सुन कर सन्त खड़े होगए और हाथ में तलवार लेकर गुरु गोविन्दसिंह के साथ चल दिए। उन्होंने उस समय देश और धर्म की रक्षा में सहयोग देना अपना परम कर्त्तव्य समझा। यह इन्हीं सन्त महाराजजी की कुटिया थी। देवदार की लकड़ी की बनी हुई थी और सैकड़ों वर्ष पुरानी थी। उसी समय से सन्तों के नाम से एक गांव जागीर रूप में मिला हुआ है और परम्परा से निर्मल सन्तों की गद्दी के अधिकार में चला आरहा है। इनकी गद्दी पुंछ में है। कुटिया की रक्षा के लिए ऊपर एक छज्जा-सा बना हुआ है। महाराजजी सायंकाल के पश्चात् इस कुटिया में पधारे थे। इसमें इनके लिए एक चारपाई बिछा दी गई थी। सामान विधिपूर्वक जमा दिया गया था। लालटेन जलाकर रख दी गई थी। रात्रि के दस बजे तक महा-राजजी ध्यान में बैठे रहे और १० बजे से २ बजे तक इन्होंने शयन किया। दो बजे उठकर पुनः ध्यान में बैठ गए और आठ बजे तक बैठे रहे। ग्राम के लोग कुटिया के सामने आकर एकत्रित होगए, यह देखने के लिए कि सन्त इसमें सुरक्षित तो हैं। कहीं किसी भूत या प्रेत ने इनकी हत्या तो नहीं कर दी। प्रातःकाल जब करतारसिंह दूध लेकर आए तो निवेदन किया, "महाराजजी, हमें तो रात भर नींद नहीं आई। यही चिन्ता लगी रही कि कहीं भूत-प्रेतों ने आकर आपको तंग न किया हो और मार-पीट न की हो।" महाराजजी ने मुस्कराते हुए कहा, "हमने सब भूत और प्रेत यहां से भगा दिए हैं। हम तो यहां पर बड़े सुखपूर्वक सोए। हमें किसी ने यहां तंग नहीं किया। हां, एक आदेश अवश्य मिला और वह यह कि इस कुटिया का जीर्णोद्धार होना अत्यन्त आवश्यक है। आप हमें कुछ गेन्तियां, फावड़े और टोकरियां आदि मंगवा दीजिए। कुटिया के सामने एक बहुत बड़ा चबूतरा बनाने का विचार है। जो लोग यहां पर माथा टेकने आया करेंगे उनसे यहां मिट्टी डलवाई जाया करेगी।" करतारसिंह ने महा-राजजी के आदेश का पालन किया और सब सामान मंगवा दिया। महाराजजी ने दो कुली इस काम के लिए मंगवा लिए और स्वयं भी काम करने लगे। जब यह समाचार गांव में पहुंचा तो बहुत से लोग वहां पर दर्शनार्थ आगए और काम करने लगे। सन्त रोचासिंह की कुटिया को माताएं लीपने के लिए आया करती थीं। अनेक वर्षों से लिपाई होते-होते कुटिया के फर्श का कहीं पता भी नहीं चल रहा था और इस

लिपाई से जमीन इतनी ऊंची होगई थी कि कहीं खड़े रहने को भी स्थान नहीं बचा था।

आश्चर्यजनक प्रसाद की प्राप्ति—एक दिन ४०-५० पुरुष सेवा के लिए आए। महाराजजी ने कुटिया के फर्श को स्वयं खोदना प्रारम्भ कर दिया। लोग डर के कारण हाथ नहीं लगाते थे परन्तु खड़े हुए तमाशा देख रहे थे। कुटिया लगभग ७-८ फीट लम्बी तथा चौड़ी थी। जब फर्श दो-तीन फीट खोदा जा चुका तो अन्दर कुटिया के फर्श के बीच में एक ४-५ इंच लम्बा-चौड़ा खुड्ड-सा निकला। इसमें ५ काग़ज़ी बादाम रखे हुए थे। यहां किसी चूहे इत्यादि का न बिल था और न ही बिल का कोई मार्ग ही दिखाई देता था। इस खुड्ड का सम्बन्ध बाहर से तो था नहीं। यह कुटिया के बीच में कैसे बन गई और इसमें बादाम कहां से आए, यह बात किसी की समझ में नहीं आई। महाराजजी से वहां पर एकत्रित जनता ने कहा कि ये बादाम सन्त रोचासिंह का प्रसाद समझना चाहिए, क्योंकि हम सब इस पवित्र स्थान का जीर्णोद्धार कर रहे हैं। महाराजजी ने एक मन चीनी मंगवाई और छिलके सहित इन बादामों को पीस कर इसमें मिला दिया। इसमें से प्रसाद रूप में थोड़ा-थोड़ा सबको बांट दिया गया और शेष भविष्य में वितरित करने के लिए रख दिया गया। इस कार्य तथा प्रसाद की सारे काश्मीर में प्रसिद्धि होगई। सभी लोग सेवा-कार्य तथा दर्शनार्थ आने लगे। कोई फल लेकर, कोई दूध तथा कोई दही, घी, चावल आदि और कोई चीनी, सब्जी आदि लेकर आते थे। सारा दिन मेला-सा लगा रहता था और सेवा-कार्य बराबर चलता रहता था। माताएं भोजन बनाने तथा सेवा करने आया करती थीं। दिन भर खूब रौनक लगी रहती थी। थोड़े ही दिनों में बड़ा भारी चबूतरा बन कर तैयार होगया। जब पुंछ के महन्तजी को देरी साहब में ब्रह्मचारी सन्तजी के आने का तथा कुटिया के जीर्णोद्धार का पता चला तब ये भी महाराजजी के दर्शनार्थ आए और सेवा बताने के लिए निवेदन किया। महाराजजी ने इनसे कहा, "आपको इस स्थान के नाम से जो एक गांव जागीर में मिला हुआ है उससे बहुत आमदनी होती है, किन्तु आपने इस स्थान के लिए कभी एक पैसा व्यय नहीं किया।" महन्त ने कहा, "महाराजजी ! हमारी तो हिम्मत ही इस स्थान पर आने की कभी नहीं होती। केवल कभी-कभी माथा टेकने के लिए आते हैं और इसके पश्चात् तुरन्त चले जाते हैं। यहां कुछ करने या ठहरने का साहस ही नहीं होता। अब आप पधारे हैं और यह साहस किया है इसलिए अब आपकी जो आज्ञा होगी वैसा किया जाएगा।" महाराजजी ने उन्हें एक पांच या छः कमरों की धर्मशाला बनाने का आदेश दिया जिससे सन्त-महात्मा यहां निवास कर सकें और गृहस्थी भी कभी-कभी आकर ठहर सकें और कहा कि स्थानाभाव के कारण मैं भी बाहिर डेरा लगाकर जैसे-तैसे यहां पर रहता हूं। महन्तजी महाराजजी के व्यक्तित्व, परिश्रम, साहस, वीरता तथा सेवा-कार्य से बड़े प्रभावित हुए और तुरन्त धर्मशाला के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करवा दिया। समीप ही एक चश्मा था, इसको भी मरम्मत करवा कर ठीक बनवा दिया। अब देरी साहब एक अत्यन्त सुन्दर तथा सुखप्रद स्थान बन गया। अब इसने एक तीर्थ स्थान का रूप धारण कर लिया और दूर-दूर से लोग इस स्थान के दर्शन करने के लिए आने लगे। महाराजजी के रावलपिंडी के कई भक्त यहां पर अभ्यास करने के लिए आगए। वैद्य धर्मचन्द, योगी

अमरनाथ, उनकी धर्मपत्नी तथा पुत्री तथा और भी कई सन्त आकर उपस्थित होगए। सरदार करतारसिंह महाराजजी के अनन्य भक्त बन गए थे। इनके पास फलों के कई बगीचे थे। फलों की पेटियां भर-भरकर महाराजजी के लिए भेजते थे। बाहर से आए हुए भक्त फल खा-खाकर ऊब गए थे। ब्रह्मचारीजी भक्तों को फल और बादाम मिश्रित चीनी दिया करते थे।

नम्बरदार करतारसिंह को पुत्रोत्पत्ति का वरदान—करतारसिंह निःसन्तान थे। इसीलिए वे बड़े चिन्तित रहते थे। एक दिन आकर वे महाराजजी के चरणों पर गिर पड़े और चरण पकड़कर जोर-जोर से रोने लगे और निवेदन किया कि "मैंने आपके देवत्व और महापुरुषत्व और महानता को प्रत्यक्षरूप में देख लिया है। मैं निःसन्तान हूं, जब तक आप मुझे पुत्रवान् होने का आशीर्वाद न देंगे मैं आपके चरण न छोड़ूंगा।" जब इनको चरणों में पड़े हुए बहुत देर होगई तब महाराजजी ने कहा, "अच्छा, उठो, कुछ उपाय करते हैं। रोओ मत, चिन्ता भी मत करो, भगवान आप पर दया करेंगे।" महाराजजी ने दोनों पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य पालन के लिए कहा और दो मास में उनके मानसिक प्रयोग से करतारसिंह की धर्मपत्नी गर्भवती होगई और दस मास बाद वह पुत्रवती होगई। जब यह बालक डेढ़ साल का हुआ तो एक बार उसे दस्त लग गए। एक सिक्ख सन्त ने इन्हें रोकने के लिए अफीम कुछ अधिक मात्रा में दे दी जिससे उसकी मृत्यु होगई। मनुष्य कुछ सोचता है और विधाता के मन में कुछ और ही होता है। लगभग ५० साल की आयु में करतारसिंह के घर महाराजजी के आशीर्वाद से बालक ने जन्म लिया था किन्तु उनके भाग्य में सन्तान का सुख नहीं था और एक सन्त के हाथ से उसकी मृत्यु हुई। एक सन्त के आशीर्वाद से जन्म हुआ और दूसरे के हाथ से मृत्यु। महाराजजी यहां अक्तूबर मास तक रहे। सन्त रोचासिंह के स्थान के जीर्णोद्धार तथा करतारसिंह के पुत्रोत्पत्ति के कारण इनकी प्रसिद्धि सारे काश्मीर में होगई थी। सभी इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे और दर्शनार्थ आने वालों का एक बड़ा मेला-सा लगा रहता था। सैकड़ों की संख्या में नर-नारी अपनी कामनाओं को लेकर आते थे और महाराजजी के आशीर्वाद से उनकी मनोकामनाएं सिद्ध हो जाया करती थीं।

अमृतसर गमन—इस बार दीपावली के अवसर पर रावलपिंडी होते हुए महाराजजी अमृतसर पहुंचे। अबकी बार बाबू मुलखराजजी के पास ब्रह्मनगर में निवास किया। यहां पर केवल एक मास तक ही रहे। मोतीरामजी की बगीची में तब से रहना बन्द कर दिया था जब से बुद्धिप्रकाशजी विवेकहीनता के कारण पतन के गहन गर्त में गिरे थे। इसीलिए अबकी बार मुलखराजजी की कोठी में निवास किया था। वहां पर एक मास तक बराबर नित्यप्रति उपनिषदों की कथा करते रहे। सैकड़ों नर-नारी इनके उपदेशामृत का पान करने आते थे। अमृतसर में केवल एक मास रहे। इसके पश्चात् हरिद्वार चले गए। वहां पर मोहन आश्रम में निवास किया। यहां आकर तीन मास का मौनव्रत किया और दो मास तक अभ्यासी शिष्यों को अभ्यास करवाया। अभ्यास काल में बहुत से साधकों ने लाभ उठाया। बैशाखी के कुछ दिन पश्चात् काश्मीर के लिए प्रस्थान किया और जालन्धर, होशियारपुर, अमृतसर तथा रावलपिंडी होते हुए श्रीनगर पहुंच गए।

श्रीनगर निवास

यहां पर पूर्ववत् पण्डित गोपीनाथजी के मकान पर ठहरे। इन दिनों इनके भाई विश्वनाथ की पुत्री गौरी का विवाह था। केवल तीन-चार दिन ही शेष थे। महाराजजी को इसकी कोई सूचना नहीं थी। ये बिना सूचना दिए ही उनके मकान पर पहुंच गए।

पं० गोपीनाथ विश्वनाथ के गृह का त्याग--सदैव की भांति अबकी बार महाराजजी के पधारने पर परिवार को प्रसन्नता नहीं हुई क्योंकि बरात वालों ने सामिष भोजन के लिए बड़ा आग्रह किया था और ये दोनों भाई महाराजजी के सामने यह धृष्टता करना नहीं चाहते थे। अब ये बड़ी चिन्ता में पड़ गए, किंकर्त्तव्यविमूढ़ होगए। वे महाराजजी को नाराज़ करना नहीं चाहते थे। गत २० वर्ष से इनका वरद हाथ उनके सिर पर रहा था। इनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। इनके साथ बहुत पुराना प्रेम था। ये सदैव आकर इनके पास ही ठहरा करते थे। अब इनसे कहीं अन्यत्र ठहरने के लिए निवेदन कैसे किया जा सकता था! इधर लड़के वाले मांसाहार के लिए हठ कर रहे थे। महाराजजी से किसी प्रकार का निवेदन करने का इनका साहस नहीं होता था। सारा परिवार चिन्ताग्रस्त था। पं० विश्वनाथजी के एक मित्र थे। ये डाक्टर थे। ये महाराजजी के भी परम भक्त थे। इन्होंने महाराजजी से वस्तुस्थिति निवेदन करने का साहस किया और इस जटिल समस्या को हल करने की प्रार्थना की। महाराजजी ने लड़के वालों को जाकर समझाने की इच्छा प्रकट की किन्तु कन्या-पक्ष के प्रायः सभी लोग वर-पक्ष वालों को समझा-समझाकर थक गए थे किन्तु वे टस से मस नहीं हुए और अपनी बात पर अड़े रहे। यहां तक कि ये इस बात पर सम्बन्ध-विच्छेद करने पर भी उतारू होगए। महाराजजी ने आदेश दिया कि मेरे सामने इस मकान में मांसाहार नहीं हो सकता और यदि मैं चला जाऊंगा तो फिर कभी इस घर में पैर न रखूंगा और यदि मैं इस समय घर में रहूंगा तो कभी मांस पकने अथवा बकरे कटने नहीं दूंगा। महाराजजी के वचन सुनकर सारे परिवार में सन्नाटा-सा छा गया। सभी चिन्ताग्रस्त होगए। बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न होगई। खुशी के स्थान पर ग़मी-सी छा गई। बहुत सोच-विचार के पश्चात् महाराजजी ने गोपीनाथजी से हारवन जाने की अपनी इच्छा प्रकट की। इनके विचार को सुनकर पण्डितजी व्याकुल होगए और रुदन करने लगे। हाथ जोड़कर विनीतभाव से कहा, "महाराजजी! मैं भाई का परित्याग कर सकता हूं, लड़की के विवाह को स्थगित कर सकता हूं, किन्तु आपका वियोग मेरे लिए असह्य है। मैं आपकी नाराज़गी की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। आप न जाइए। यहीं रहिए, मैं अभी विवाह रोक देता हूं।" महाराजजी ने इन्हें बहुत समझाया और कहा, "भाई-भाई में किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं होना चाहिए। आप सहोदर हैं। एक ही मकान में रहते हैं। आप दोनों एक-दूसरे के सुख और दुःख के साथी हैं। अतः इस प्रकार की कोई बात करने की आवश्यकता नहीं। कन्या युवती है। कठिनाई से योग्य वर और घर प्राप्त हुआ है, अतः विवाह स्थगित करने की भी कोई आवश्यकता नहीं। हम तो साधु हैं। रमते राम हैं। कभी-कभी आपके पास आ जाते हैं। हमारे लिए आप अपने सहोदर भाई से व्यवहार का परित्याग मत करें।

हमें इस बात की बड़ी लज्जा है कि इस बीस साल के सम्पर्क में मैं आप लोगों के जीवन में परिवर्तन न कर सका। अतः अब मेरा यहां से चले जाना ही उचित है। अब तक तो कभी यह नहीं हुआ कि आपने मेरी उपस्थिति में घर में मांसाहार बनाया हो या आपने इस प्रकार का आहार कभी किया हो।" आगामी दिवस महाराजजी चलने के लिए तैयार होगए। सारा परिवार रुदन करने लगा। गोपीनाथजी बड़े जोर-जोर से रोने लगे। रोते-रोते सिस्कियां लेने लगे। अबकी बार महाराजजी इनके मुफ्ती बाग में भी नहीं गए। हारवन जाकर पं० दीनानाथजी की कोठी पर ठहरे। इस कोठी के पास ही कुछ ऊपर पहाड़ पर एक मुसलमान का मकान २० वर्ष के लिए किराए पर ले लिया। हारवन झील से एक छोटी-सी नहर निकलती है। उसी के किनारे पर यह मकान अभी नया ही बनाया गया था। इसी समय इनके भक्त लाला भगवानदास, उनके पौत्र तथा पुत्रवधू आज्ञावती आ गए। इनको इस किराए के मकान में ठहरा दिया गया। आज्ञावती छोटी उमर में ही विधवा होगई थी। इसकी महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी और योग में बड़ी निष्ठा थी। कई घण्टे नित्यप्रति अभ्यास किया करती थी। हरिद्वार में जब साधना-शिविर लगता था तो यह अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ आया करती थी। यह परिवार दो मास तक महाराजजी का उपदेशामृत पान करके वापस चला गया। बालब्रह्मचारी लक्ष्मणजू योगीराजजी के परम मित्र थे। ये बड़े विद्वान् सन्त थे। इन्होंने तीन मील की दूरी पर अपनी कोठी बनवा ली थी और इसी में निवास करते थे। इन दोनों में प्रायः अध्यात्म विज्ञान के विषय में विचारविमर्श हुआ करता था। दोनों का परस्पर बहुत स्नेह था। दोनों एक ही पथ के पथिक थे। पं० महानन्द, पं० शिवजी गड़याली तथा पं० राधाकृष्ण टिक्कू महाराजजी के अनन्य भक्त थे। कई-कई दिन तक इनके उपदेशों को श्रवण किया करते थे। पं० राधाकृष्ण पं० गोपीनाथ के साले थे। हारवन आते समय महाराजजी प्रायः इनके मकान पर ठहरा करते थे। ये इनसे बहुत प्यार करते थे। पण्डितजी ही इनके लिए ऊनी अथवा पशमीने का कपड़ा खरीदकर दिया करते थे। महाराजजी ने इन्हें लाला देवीदासजी अमृतसरवालों का काश्मीर के व्यापार में हिस्सेदार बनवा दिया था।

पं० द्वारिकानाथजी को प्रसाद––दरबाग के पंडित द्वारिकानाथजी, केशवनाथजी के लघुभ्राता थे। जब ये स्कूल में पढ़ते थे तब महाराजजी के उपदेश श्रवण करने के लिए आया करते थे। दशम कक्षा पास करके इन्होंने अध्ययन छोड़ दिया था। महाराजजी के सत्संग में प्रायः आया करते थे। इनके आदेश से ही इन्होंने कृषि प्रशिक्षण केन्द्र पर जाकर दो साल तक कृषि विद्या पढ़ी थी। एक दिन जब ये परीक्षा में सफलता लाभ करके इनके चरण स्पर्श करने आए तो महाराजजी ने इन्हें १००) प्रसाद रूप में देकर आशीर्वाद दिया और कहा, "जाओ, इस रुपये से व्यापार प्रारंभ करो, सफलता लाभ करो, बढ़ो, फूलो और फलो !" महात्माओं के आशीर्वाद सदैव 'सद्यः फलानि' होते हैं। वे शीघ्र फलीभूत हो जाते हैं। द्वारिकानाथ ने महाराजजी से आशीर्वाद के रूप में प्राप्त १००) से व्यापार किया और इसमें ६००) का लाभ हुआ। दूसरे वर्ष इस ६००) से ३०००) उपार्जन किया। धीरे-धीरे बीस-पच्चीस हजार रुपये की वार्षिक आय होने लगी। महाराजजी की इस कृपा और आशीर्वाद

को वे कभी नहीं भूले। सदैव इनके ऋणी रहे और इनका गुण-गान करते रहते हैं। इस समय वे कई सेवों के बागों के स्वामी हैं। एक बड़ा विस्तृत सीड फार्म है। इनके पास लाखों की सम्पत्ति है। महाराजजी की सेवा में प्रतिवर्ष अपने बागों के मेवे और फल भेजा करते हैं।

पहलगांव में साधना शिविर—सितम्बर मास के प्रारम्भ में श्री महाराजजी पहलगांव पधारे। श्री जयकृष्णजी नन्दा महकमा जंगलात के बड़े अफसर थे। महाराजजी के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। इन्होंने योगीराजजी से पहलगांव पधार कर योग प्रशिक्षण के लिए निवेदन किया था और निवासादि की सब व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। जयकृष्णजी की धर्मपत्नी पंजाब के प्रसिद्ध महात्मा हंसराजजी की सुपुत्री थी। अमृतसर के लाला श्रीकृष्ण खन्ना महाराजजी के अनन्य भक्तों में से थे। ये महाराजजी को १००) मासिक इनके व्यय के लिए भेजा करते थे। कोटली मीरपुर की श्रीमती भाग्यवन्ती महाराजजी की शिष्या थीं। इस प्रकार से ये सब तथा अन्य कई सज्जन सपरिवार इस योग प्रशिक्षण में सम्मिलित हुए। महाराजजी के निवास का प्रबन्ध जंगलात के महकमे के डाक-बंगले में किया गया था। महाराजजी प्रातः चार से छः तक और सायंकाल सात से साढ़े आठ बजे तक ध्यानाभ्यास करवाते थे तथा प्रातःकाल आठ से नौ तक आसन और प्राणायाम सिखाते थे। पहिली अक्तूबर तक यह कार्यक्रम चलता रहा। प्रायः सभी अभ्यासियों की प्रगति सन्तोषप्रद थी और सभी बड़े सन्तुष्ट थे।

श्रीनगर में गुरुसहायमल की कोठी पर कथा—महाराजजी जब पहलगांव से वापस श्रीनगर पधारे तब अपने अनन्य भक्त लाला गुरुसहायमलजी की कोठी पर निवास किया। इनके सारे परिवार की महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। उनकी कोठी पर योगीराजजी नित्यप्रति सायंकाल ३ बजे से ४ बजे तक कथा किया करते थे। इन दिनों महाराजजी के भक्त देवीदासजी तथा अन्य कई भक्त अमृतसर से श्रीनगर आए हुए थे। महाराजजी यहां १५ दिन ठहरे और १५ दिन तक कथा की। सैंकड़ों नर-नारियों ने इस कथा से लाभ उठाया।

अमृतसर गमन—इसके पश्चात् महाराजजी देवीदासजी की मोटर गाड़ी में उनके साथ अमृतसर पधारे। यहां पर बाबू मुलखराज की कोठी पर नित्यप्रति इनकी कथा होती थी। सभी भक्त और अध्यात्म में रुचि रखने वाले सैंकड़ों नर-नारी इसमें सम्मिलित होते थे और लाभ उठाते थे। यहां पर भी महाराजजी ने योग प्रशिक्षण का कार्यक्रम रखा था। प्रातः सायं दोनों समय योग साधना करवाते थे। एक मास तक यह कार्यक्रम चलता रहा। श्री महाराजजी ने अमृतसर में रहकर बहुत वर्षों तक तपश्चर्या और योग-साधना की थी। यहां पर हजारों ही स्त्री-पुरुष इनके भक्त थे।

लाला श्रीकृष्ण को टैक्स से मुक्त करवाना—अमृतसर में एक दिन महाराजजी के परम भक्त श्रीकृष्ण ने आकर इनके चरण पकड़ लिए और निवेदन किया, "मुझे इन्कम-टैक्स के अफसर बहुत तंग कर रहे हैं। अन्यायपूर्ण ढंग से मुझ पर एक भारी रकम टैक्स की लगा दी गई है। आप मेरी रक्षा कीजिए। आप ही मुझे इससे बचा सकते हैं। अपने शिष्य पर अन्याय होते हुए तथा उसे संकट में पड़ा देखकर महाराजजी को बड़ी दया आई। अफसर के ऊपर महाराजजी ने अपने मनोबल का प्रभाव

डाला और उसने श्रीकृष्ण के पक्ष में अपना निर्णय दे दिया। इस प्रकार से अपने भक्त को संकट से मुक्त किया। जब मुनीम हंसता हुआ लालाजी के पास आया और अफसर के रुख की प्रशंसा करने लगा और उनके पक्ष में फैसला देने की बात करने लगा तब उन्होंने कहा, "अरे, फैसला देने वाले तो ऊपर छत पर समाधिस्थ होकर बैठे हैं। आओ, उनके पास जाकर क्षमा-याचना करें। हमने आज उनको बहुत कष्ट दिया है।" लालाजी, उनका मुनीम तथा अन्य कार्यकर्ता सभी जाकर महाराजजी के चरणों में पड़ गए। समाधि से व्युत्थान होने पर मुनीम ने सारा समाचार महाराजजी से निवेदन किया। इस दिन से लालाजी की महाराजजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति और भी अधिक बढ़ गई और वे इन्हें भगवान के तुल्य समझने लग गए।

हरिद्वार में पातंजलाश्रम में काष्ठ मौन--एक मास तक अमृतसर में वहां की तृषार्त जनता को अपनी अध्यात्म-सुधा का पान कराकर श्री महाराजजी मोहनाश्रम पधार गए। मोहनाश्रम के पास ही स्वामी तेजानन्द का पातंजलाश्रम है। यह अधिक एकान्त था, इसमें निवास करके एक साल का मौनव्रत करने का विचार किया। इस आश्रम के संरक्षक स्वामी अमरनाथजी थे। १० रु० मासिक किराए पर इसे ले लिया गया और महाराजजी के लिए फलादि लाने का कार्य भी इन्हीं के सुपुर्द कर दिया गया। योगीराजजी ने नमक, चीनी तथा अन्न का परित्याग कर दिया था। ये केवल अमावस्या और पूर्णिमा पर ही अपना मौनव्रत खोलते थे। इन दिनों मलेरिया का बड़ा प्रकोप रहता था किन्तु लोगों ने इन्हें विश्वास दिला दिया था कि अन्न, मीठा और नमक न खाने वाले को मलेरिया ज्वर नहीं होता। एक वर्ष तक हरिद्वार में रहकर ही इस व्रत को पूरा करने का निश्चय कर लिया, किन्तु स्वामी अमरनाथजी को कुछ मास के लिए हरिद्वार से बाहर कहीं अन्यत्र कार्यवशात् जाना था अतः वे महाराजजी की मौनकाल में पूरी सेवा नहीं कर सकते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति थी कि एक वर्ष का मौन इस साल न करके आगामी साल किया जाए। इसलिए महाराजजी ने एक वर्ष का मौनव्रत स्थगित कर दिया और केवल ४ मास का काष्ठ मौनव्रत धारण किया। नियत समय पर मौनव्रत को समाप्त करके दो मास तक साधना शिविर लगाया। बहुत से अभ्यासी इसमें सम्मिलित हुए और प्रायः सभी इससे लाभान्वित हुए। ज्येष्ठ मास में गंगोत्री जाने का विचार कर लिया।

गंगोत्री निवास और अन्नक्षेत्र का प्रारम्भ

ज्येष्ठ मास में गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया और मसूरी होते हुए उत्तरकाशी पधारे। एक सप्ताह तक यहीं विराज कर फिर गंगोत्री चले गए। इस समय महाराजजी के पास अपने निजी व्यय के अतिरिक्त १४०० रु० दानार्थ थे। साधु-महात्माओं के हितार्थ इस धनराशि के व्यय करने के विषय में स्थानीय सन्तों से विचार-विनिमय करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि एक अन्नक्षेत्र खोला जाए। काली कम्बली वाला तथा पंजाबी क्षेत्र तीन मास चलने के पश्चात् बन्द हो जाते थे। इसके बाद लगभग डेढ़-दो मास तक कोई भी अन्नक्षेत्र यहां नहीं रहता। इससे बहुत से सन्तों को श्रावण मास में ही नीचे गर्मी में ही उतर जाना पड़ता है। अनेक सन्त उत्तरकाशी जाकर रोगग्रस्त हो जाते हैं, अतः अन्नक्षेत्र खोलना उपयुक्त समझा गया। सबकी सम्मति सुनने के पश्चात् महाराजजी ने कहा, "हमसे यह प्रबन्ध

न हो सकेगा। हम तो केवल रुपया दे सकते हैं।" इस पर दयालमुनिजी ने तुरन्त सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और कहा, "लगभग २५-३० सन्त भोजन करेंगे। सारी खाद्य-सामग्री प्रारम्भ में क्रय कर ली जाएगी। जब दोनों क्षेत्र बन्द हो जाएंगे तो सन्त-महात्मा स्वयं ही मिलकर भोजन बना लिया करेंगे। किसी सेवक की भी आवश्यकता न होगी। हममें से कई सन्त ऐसे हैं जो बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य को करेंगे।" महाराजजी ने दयालमुनिजी की बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। आटा, चावल, दालें, घी, मसाले आदि सब सामान दयालजी ने खरीद कर रख लिया।

गंगोत्री में कुटियाओं का अत्यन्त अभाव था। महाराजजी के लिए दयालजी, गंगामुनिजी, ब्रह्मचारी प्रबोधानन्दजी और रघुनाथजी ने दो दिन में ही भोजपत्र की कुटिया बनाकर तैयार कर दी। योगीराजजी की सेवा के लिए उत्तरकाशी का राम-गोविन्द नामक ब्राह्मण नियत था। यह इनके लिए भोजन बनाया करता था। गंगोत्री शीतप्रधान प्रदेश है अतः यहां पर दाल तीन-चार घण्टे में गलती है, इसलिए यह प्रथम ही अवसर था जब महाराजजी ने भोजन बनाने के लिए सेवक साथ रखा था। अन्यथा वे स्वयं-पाकी थे। अपना समस्त कार्य स्वयं करते थे। पूर्णरूपेण स्वावलम्बी थे। महाराजजी के लिए भोजपत्र की कुटिया स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर बनाई गई थी क्योंकि यह भूमि समतल थी। पास ही जानकीदास नामक एक बैरागी सन्त रहता था। यह अत्यन्त सेवाप्रिय था। महाराजजी का सेवक यहां के शीत को सहन नहीं कर सका, बहुत घबरा गया और बीमार भी होगया। उत्तरकाशी वापस जाने के लिए आग्रह करने लगा। इसकी बीमारी का कारण यहां का शीत नहीं था। यह रात्रि को अपने लिए भोजन तो बनाता नहीं था। घी और चीनी चुरा कर खाया करता था। यहां पर हिमालय की ऊंचाई १०१५० फीट है। ऊंचे पहाड़ों पर घी और चीनी यदि अधिक मात्रा में खाए जाएं तो पचते नहीं और अनेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। सन्त जानकीदासजी ने महाराजजी से निवेदन किया, "नौकर को उसकी वृत्ति देकर आप विदा कर दीजिए। मैं आपकी सब सेवा करूंगा। आप मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें। मैं आपके सेवक की अपेक्षा भी आपको अधिक आराम दूंगा और कुछ दिनों में आप सेवक को भूल जाएंगे।" महाराजजी ने सेवक को वेतन देकर विदा कर दिया और सन्त जानकीदास ने सब सेवा-कार्य सम्भाल लिया। ये अपनी धूनी पर ही जल गर्म करके महाराजजी को स्नानादि के लिए दे दिया करते थे और धूनी पर ही बहुत स्वादिष्ट भोजन तैयार करके खिलाते थे। इन्हीं दिनों क्षेत्र भी महाराजजी की ओर से चालू होगया और तीन-चार सन्त इसका कार्य करने लग गए। स्वामी तपोवन, कृष्णाश्रम और प्रज्ञानाथजी से महा-राजजी का विशेष परिचय था और ये प्रायः एक-दूसरे के स्थान पर परस्पर मिलने जुलने के लिए जाया करते थे। ये सभी बड़े विद्वान् थे। डेढ़ मास तक क्षेत्र चला और इसका व्यय ८०० रु० हुआ। श्री दयालजी ने महाराजजी से निवेदन किया कि यदि ३०० रु० प्रतिवर्ष दे दिया जाया करे तो प्रतिवर्ष डेढ़ महीने के लिए क्षेत्र चल सकता है। घी की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल अन्न ही पर्याप्त रहेगा। इस बात को महाराजजी ने स्वीकार कर लिया। जो सन्त क्षेत्र में भोजन नहीं करते थे उन्हें नकद रुपया दे दिया गया।

धराली में महर्षि स्वामी दयानन्दजी की गुफा के दर्शन––क्षेत्र समाप्त करके महाराजजी, जो सन्त उनके साथ जाना चाहते थे सबको लेकर धराली गए। संक्रान्ति के अवसर पर यहां पर सेलकू नाम का बड़ा मेला हुआ करता है। यहां पर सन्तों की अनेक कुटियाएं थीं। यहां के क्षत्रिय बड़े आतिथ्य प्रिय हैं। सन्तों व महात्माओं, साधुओं और संन्यासियों का बड़ा आतिथ्य करते हैं। यहां पर महाराजजी छः दिन तक विराजे। ठाकुर नारायणसिंह इनके दर्शन करने के लिए आए और निवेदन किया, "महाराजजी ! हमारे गांव पर साधु-सन्तों की सदैव से बड़ी कृपा रही है। हमें उनकी सेवा और सत्संग का सौभाग्य प्रायः मिलता रहता है। मेरे पिताजी सुनाया करते थे कि धराली से आधा मील की दूरी पर एक गुफा है जिसमें कई मास तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज विराजे थे। वे बड़े विद्वान् तथा प्रतिभासम्पन्न संन्यासी थे। वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। महान् योगी थे। ब्रह्मनिष्ठ थे। तत्कालीन भारत के उद्धारक थे। बड़े भारी समाज-सुधारक थे। इन्होंने भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक पतन के सुधार का प्रयत्न किया और अपने कार्यक्रम को स्थायी रूप देने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। मेरे पिताजी इनके लिए दोपहर के समय भोजन और रात्रि के समय दूध ले जाया करते थे। इनकी स्वामीजी महाराज के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी।" महाराजजी ने श्रद्धापूर्वक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की गुफा के दर्शन किए। कई वर्ष की बात है, एक बार धराली में बड़े जोर की बाढ़ आई थी और ग्राम के एक बड़े हिस्से तथा कुटियाओं को बहाकर लेगई थी। तबसे सन्तों का निवास यहां छूट-सा गया है। इसके पूर्व यहां के निवासी सुखी और सम्पन्न थे। सन्तों-महात्माओं का आशीर्वाद सदैव मिलता रहता था। यहां के कुछ लोगों ने मिलकर महाराजजी से एक अवधूत सन्त के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ शिकायत की और कहा कि, "आप इन सन्तजी को सदाचार के नियमों का पालन करने के लिए समझा दें और कह दें कि ये ग्राम में भिक्षा के लिए न जाया करें। हम स्वयं इनके लिए भोजन इनके निवास स्थान पर भिजवा दिया करेंगे।" श्री महाराजजी ने सन्तजी की बहुत भर्त्सना की और उन्हें संन्यासी के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन करवाया।

सन्तों का न्यायालय––महाराजजी ने इस अवधूत को दयालजी और ब्रह्मचारी महावीर के द्वारा अपने पास बुलाया। ये स्वयं एक ऊंचे चबूतरे पर बैठे थे। जब उनको बुलाया गया तो सैंकड़ों की संख्या में नर-नारी तथा बच्चे उनको देखने के लिए खड़े होगए। वे सब चिल्लाकर कहने लगे, "यहां पर योगियों का एक न्यायालय खुला है।" महाराजजी ने चबूतरे पर ऊंचे बैठे हुए अपराधी सन्त से पूछा कि तुमने ग्राम में अमुक लड़की से अनुचित व्यवहार क्यों किया था ? अवधूत ने कहा, "मैं तो इसे अपनी माता समझता हूं और जो कुछ किया इसी भावना से किया था।" महाराजजी ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, "यदि तुममें उसके प्रति मातृ-भावना थी तो तुम्हें उसके चरण पकड़ने चाहिएं थे। तुम्हारे कुकर्म से यह सिद्ध होता है कि तुम दुराचारी हो। तुम साधु-समाज को बदनाम कर रहे हो। तुम साधुओं में रहने के योग्य नहीं हो। तुम्हें अपने आश्रम की भी लाज नहीं है।" ब्रह्मचारी महावीर एक बहुत बड़ा डण्डा उठा लाए और इससे उस अपराधी अवधूत की खूब मरम्मत की। इस मार-पीट के पश्चात् उसके हाथ में

गंगाजल देकर प्रतिज्ञा करवाई कि आज से वह कभी किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं करेगा। सब देवियों को अपनी माता, पुत्री और बहिन समझेगा।

धराली में सेलकू के मेले पर ग्रामवासी दल्लियें जलाकर सब इकट्ठे होकर मंदिर में दर्शन करने जाते हैं, गंगाजल पान करते हैं और दर्शन और पूजा करके ग्राम में आते हैं और एक मंदिर के सामने गोलाकार बनाकर नृत्य करते हैं। गीत गाते हैं। नृत्य के साथ-साथ ढोल तथा बाजा भी बजाया जाता है। ग्राम के सभी लोग इसमें भाग लेते हैं और दूर-दूर से भी लोग इसे देखने के लिए आते हैं।

अमृतसर में योग प्रशिक्षण—महाराजजी अपनी सन्त-मण्डली के साथ उत्तर-काशी पधार गए और वहां पर कुछ दिवस तक ठहर कर हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर दिया। यहां पर इनके परम भक्त तथा शिष्य गुरुचरणदत्त के कई पत्र आए कि आप अमृतसर पधारें। यहां के सब लोग तो वहां साधना के लिए जा नहीं सकते। इसलिए यहां पर भी दो मास का समय साधनाभ्यास का रखने की कृपा की जाए। निवासादि का सब प्रबन्ध मुलखराजजी की कोठी पर हो जाएगा। महाराजजी ने उनके अनुरोध और आग्रह के कारण अमृतसर पधारना स्वीकार कर लिया। वहां पधार कर महाराजजी ने प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक तथा सायं ७ से ८ बजे तक का समय योग प्रशिक्षण के लिए नियत किया और अपराह्न में तीन से साढे चार बजे तक कथा हुआ करती थी। इस कथा से अमृतसर की जनता ने बड़ा लाभ उठाया और अभ्यासियों की साधना में प्रगति भी ऊंची रही।

हरिद्वार में निवास तथा मौन व्रत—दो मास के पश्चात् महाराजजी अमृतसर से वापस हरिद्वार पधार गए। यहां पर मोहनाश्रम में निवास किया। ४ मास का मौन व्रत धारण किया और इसकी समाप्ति पर दो मास के लिए योग प्रशिक्षण किया।

गंगोत्री गमन—हरिद्वार में योग प्रशिक्षण के उपरान्त महाराजजी उत्तरकाशी होते हुए गंगोत्री पधारे। वहां पर स्वामी प्रज्ञानाथजी की कुटिया में निवास किया। ये काश्मीर चले गए और वहां पर हारवन में महाराजजी की कुटिया में ठहरे। इन्होंने प्रज्ञानाथजी को ५० रु० काश्मीर जाने के लिए दिए और इन्होंने वहां के लिए प्रस्थान कर दिया। प्रज्ञानाथजी की कुटिया में खटमल बहुत थे अतः महाराजजी को अपने लिए पुनः भोजपत्र की कुटिया बनवानी पड़ी। दयालजी ने दो चार दिन में ही बनवाकर तैयार करवा दी। योगीराजजी ने एक बार स्वामी कृष्णाश्रमजी अवधूत से बड़े दुःखी होकर कहा, "आप हिमालय निवासी बहुत बड़े महात्मा हैं। आपका सेवार्थ अपने पास एक शिष्या को रखना उचित-सा प्रतीत नहीं होता। आप त्यागी तथा वैरागी अवधूत हैं। आपका आचरण बड़ा शुद्ध और पवित्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। आपकी इसके प्रति बड़ी शुद्ध भावना है और आप इसे पुत्रीवत् ही समझते हैं। किन्तु यह लोक-मर्यादा और शास्त्र के विरुद्ध है। लोकविरुद्ध आचरण करने से व्यर्थ में ही अपवाद होता है। समाज पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि आपको सेवा के लिए ही इसकी आवश्यकता है तो मैं आपको एक नौकर रख देता हूं। उसका वेतन भी मैं ही प्रतिमास चुका दिया करूंगा। यदि यह आपको पसन्द न हो तो मैं आपकी सेवा के लिए एक साधु नियत कर देता हूं।" इस पर भगवत्स्वरूपा देवी जो स्वामी कृष्णाश्रमजी के पास रहती थी बोली, "यदि महाराजजी मुझे अपनी सेवा से वंचित

करेंगे तो में गंगा में डूबकर मर जाऊंगी।" इस पर अवधूतजी ने महाराजजी को लिख कर समझाया (क्योंकि यह सदा से मौन ही रहते थे) कि इसको पहिले भी कई सन्त-महात्माओं ने समझाया है। ब्रह्मचारी शहनशाह ने इसको यहां से हटाने के लिए कई दिन की भूख हड़ताल भी की थी किन्तु यह देवी तब भी न मानी थी। अपनी ज़िद पर अड़ी रही थी। अपने माथे पर ज़ोर से हाथ मारकर इन्होंने पुनः कहा कि "मेरा कर्म-भोग ही ऐसा है। तब ही तो इस प्रकार का साधन बन गया। अब तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि या तो यह मरे तब मेरा पीछा छूटे या मैं मरूं तब काम बने। मुझे सेवा की जरूरत है। बिना वेतन के यह सेवक मिला हुआ है। आप भी इसे ऐसा ही समझें।" महाराजजी इन सब बातों को सुनकर मौन होगए। कर भी क्या सकते थे! समझाना मात्र ही इनका कर्त्तव्य था। स्वामी प्रज्ञानाथ और स्वामी तपोवन अच्छे विद्वान् तपस्वी थे। त्यागी और वैराग्यवान थे। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना भी की थी। गंगोत्री में अन्य भी कई उत्तम सन्त थे। अध्यात्मज्ञान प्राप्ति और सिद्धि के लिए हिमालय से श्रेष्ठ और कोई स्थान नहीं है, अतः श्री महाराजजी ने अब हिमालय में निवास करने का निश्चय कर लिया। गंगोत्री निवास में कई प्रकार की कठिनाइयां हैं। फल तथा ताज़ी सब्ज़ी यहां प्राप्य नहीं है। केवल आटा, दाल, चावल, घृतादि ही मिलते हैं। बाल बढ़ जाएं तो यहां नाई नहीं और कपड़े फट जाएँ तो दर्ज़ी नहीं, जूता फट जाए तो मोची नहीं, बीमार हो जाएं तो डाक्टर नहीं, यहां तक कि यदि मर जाएं तो कफ़न भी नहीं। डाकखाना और तारघर नहीं। यदि ५० रु० से अधिक कभी मनिआर्डर आए तो उसे लेने के लिए यहां से ५६ मील दूर उत्तरकाशी जाना पड़ता था। १५-२० दिन में यहां डाक आती थी। यहां की इस प्रकार की विविध कठिनाइयों का ध्यान करके बद्रीनाथ निवास करने का विचार हुआ क्योंकि वहां पर सभी प्रकार की सुविधाएं थीं।

गोमुख निवास—श्री महाराजजी ने दयालजी और एक नवयुवक सन्त परमानन्द अवधूत को साथ लेकर गोमुख के लिए प्रस्थान किया। १५-२० दिन के लिए खाद्य-सामग्री एक कुली से उठवाकर चल दिए। गोमुख गंगोत्री से केवल १०-१२ मील की दूरी पर है। एक दिन चीड़वासा धर्मशाला में ठहरे। दूसरे दिन गोमुख से इधर एक गुफा में आसन लगाया। यहां पर जलाने की लकड़ी बड़ी आसानी से मिल जाती है। जलस्रोत भी समीप है। भ्रमण करते-करते गोमुख स्नानार्थ भी चले जाते थे। पंजाब कांगड़ा के गद्दी लोग इधर बकरियां चराने आया करते थे इसलिए इनसे दूध आसानी से मिल जाया करता था। ये लोग दूध के दाम इनसे नहीं लेते थे। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक बिना दाम ही ये लोग जितना चाहते उतना दूध ले लिया करते थे। तीनों नित्यप्रति गोमुख स्नान के लिए जाते थे। जब कभी वर्षा होती थी तो स्नान स्रोत पर ही कर लेते थे। गंगाजल अत्यन्त शीतल था। गोता लगाते समय शरीर में पीड़ा होने लगती थी। सूर्य में तपी हुई रेत में लेटने से अथवा गर्म रेत शरीर पर डालने से यह दर्द मिट जाता था। यहां पर गंगाजी के ऊपर लगभग १०० फीट मोटी बर्फ की तह जमी हुई थी। अनेक वर्षों से जमकर यह बर्फ इतनी कठोर होगई थी कि कुल्हाड़ी से काटने पर भी नहीं कटती थी। बर्फ की यह तह कई फर्लांग चौड़ी थी। इसका विस्तार एक ओर बद्रीनाथ तथा दूसरी ओर केदारनाथ तक था।

बद्रीनाथ यहां से २५ मील है और केदारनाथ २० मील है। यह एक बड़ा भारी ग्लेशियर है। बद्रीनाथ और केदारनाथ के बीच बीस हज़ार फीट से लेकर तेईस हज़ार फीट तक के बड़े विशाल पर्वत हैं। ये सभी बर्फ से आच्छादित हैं। गोमुख के पास ही चौखम्भा नामक एक विशाल पर्वत है। एक और शिवलिंग पर्वत है जिसकी गोलाई शिवलिंग के समान है। यह सदा हिमाच्छादित रहता है। जिन्होंने कभी गोमुख की यात्रा नहीं की उन लोगों का ऐसा अनुमान होता है कि गोमुख पत्थर का बना हुआ होगा जिसके मुंह में से गंगाजी निकल रही होंगी। यह धारणा भ्रममूलक है। गोमुख से इतनी मोटी जल की धारा निकलती है कि यदि हाथी भी उसको पार करना चाहे तो तुरन्त उसके प्रबल वेग में बह जाए। बर्फ के पहाड़ के नीचे से गंगा निकलती है। महाराजजी १५ दिवस तक गोमुख में निवास करके लौट आए। गंगोत्री में अब अत्यधिक शीत होगया था अतः विजयादशमी के पश्चात् उत्तरकाशी पधार गए।

हरिद्वार में पातंजलाश्रम में एक वर्ष का मौन व्रत––उत्तरकाशी में पंजाबी क्षेत्र में एक मास तक निवास किया। इसके पश्चात् हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। वहां पर मोहन आश्रम में ठहरे। यहां पर स्वामी विशुद्धानन्दजी का आश्रम के प्रबंधकों के साथ कुछ झगड़ा-सा चल रहा था। इससे आश्रम का वातावरण कुछ विक्षुब्ध-सा हो रहा था। इसलिए महाराजजी पातंजलाश्रम में चले गए और एक वर्ष तक मौन व्रत रखने का निश्चय कर लिया। अमरनाथजी को १० रु० मासिक देकर उनके द्वारा फल, सब्ज़ी, दूध आदि बाज़ार से मंगवाने की व्यवस्था कर ली। अमरनाथजी स्वामी तेजनाथजी योगी के पोते चेले थे। अर्थात् वे शिष्य के शिष्य थे। आश्रम की सब व्यवस्था इन्हीं के हाथ में थी। महाराजजी ने नमक, मीठा, अन्नादि सब त्याग दिया था। केवल फल, सब्जी और दूध ही लेते थे। इन्होंने कार्तिक पूर्णिमा को व्रत प्रारंभ किया। एक मास तक सुविधानुसार मौनव्रत, नमक, चीनी तथा अन्न के बिना भोजन ठीक-ठाक चलता रहा किन्तु इसके पश्चात् हृदय में कुछ वेदना-सी रहने लगी। कई उपचार किए गए किन्तु दर्द में किसी प्रकार भी कमी नहीं हुई। ग्यारह मास तक हृत्पीड़ा बराबर कष्ट देती रही। इसका कारण नमक और चीनी न खाना था। जब इन्होंने खाना प्रारम्भ किया तो दो-तीन दिन में ही दर्द जाता रहा। इसके लिए कोई उपचार नहीं किया गया था। महाराजजी नित्यप्रति सायंकाल को ५ बजे के पश्चात् गंगा के किनारे सप्तसरोवर की ओर भ्रमणार्थ जाया करते थे।

स्वामी अमरनाथजी अशिक्षित थे। इनका स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा था। लोभी भी थे। महाराजजी अपने काम के लिए १० रु० मासिक तो इन्हें देते ही थे। इसमें वृद्धि करने के लिए यह बार-बार इन्हें तंग करते थे। कभी-कभी फल और सब्ज़ी ठीक न लाते थे। कभी-कभी दूध में गड़बड़ कर देते थे। महाराजजी ने इन्हें कई बार समझाया कि व्रत की समाप्ति पर रुपए बढ़ा दिए जाएंगे क्योंकि उस समय इनके पास रुपया कम था। इनको महाराजजी की बात पर विश्वास नहीं होता था। ये उनसे बड़े परेशान से होगए थे अतः मोहन आश्रम में निवास के लिए विचार कर रहे थे।

विधि का विधान—इन्हीं दिनों चोरों का गिरोह यात्रियों के रूप में पातंजलाश्रम में आकर ठहर गया। इनमें ५-६ युवक तथा एक स्त्री थी। युवक २५ से ३५

साल की आयु के होंगे। ये सभी बड़े बलवान थे। शरीर सब का गठा हुआ था और ये नित्य कसरत किया करते थे। युवती की आयु लगभग ३५ वर्ष की होगी। यह गौर वर्ण थी। शरीर सुडौल था। बड़ी फुर्तीली थी और सलवार पहनती थी। इन सब ने स्वामी अमरनाथजी को अपना गुरु बना लिया। स्वामीजी को अपने साथ ही भोजन करवाने लगे। महाराजजी जब भ्रमणार्थ जाते थे तो इनमें से एक-दो इनके पीछे-पीछे जाते थे। मौनव्रत था इसलिए महारा‍राजजी अपना मुंह ढक कर बाहर जाया करते थे। किसी को देखते न थे। एक घण्टा तक सैर करके लौट आते थे। इन लोगों ने महाराजजी के बोलने के दिन का पता स्वामीजी से लगा लिया था। चाल-ढाल, रहन-सहन तथा व्यवहार से यह पता चलता था कि वह स्त्री इन सबका नेतृत्व कर रही हो। ये सभी उसके आदेश का पालन करते थे। महाराजजी का कमरा दूसरी मंजिल पर था और अमरनाथजी इनसे कुछ थोड़ी-सी दूर रहते थे। शिवरात्रि के दिन इन चोरों ने दही और परांठे खाए। अमरनाथजी के दही में इन्होंने कोई ऐसी चीज़ मिला दी जिससे उन्हें खाते ही नींद आने लगी और अपने कमरे में जाकर सो गए। इनमें से एक अपने को इनका बड़ा भक्त दर्शाता था। वह इनके कमरे में ही सोया करता था। अमरनाथजी नशे में दो दिन तक सोते ही रहे। इन चोरों ने शिवरात्रि की रात्रि में लालटैन जलाकर इनके कमरों के ताले तोड़े और लगभग तीन हज़ार का सामान चुरा कर ले गए। महाराजजी ने समझा कि लालटैनें जल रही हैं, ये लोग शिवरात्रि का उत्सव मना रहे हैं, इसीलिए आज ये सोए नहीं हैं। महाराजजी ने यज्ञादि करके दूसरे दिन व्रत की समाप्ति की और अमरनाथजी से मिलने के लिए गए। ये नींद में चारपाई से गिर पड़े होंगे अतः जमीन पर ही सो रहे थे। इन्होंने स्वामीजी को ज़ोर से झकझोरा, तब कहीं ये होश में आए। महाराजजी ने इनसे पूछा, "आपको क्या होगया है? आप अभी तक निद्राभिभूत हैं। आपके सामने के कमरे में सारी रात लालटैन जलती रही है। आपके भक्त सब कहां चले गए? कहीं दिखाई नहीं देते। आपके सारे दरवाजे खुले पड़े हैं। आपके भक्त उनकी गतिविधि से अच्छे आदमी नहीं मालूम होते थे। जब मैं भ्रमण के लिए जाता था तब उनमें से कोई न कोई मेरे पीछे लग जाया करता था। उनमें से एक युवक फल लेकर ऊपर चढ़ा तो मेरे कमरे में इधर-उधर झांक रहा था। आप उठो और देखो, आपका सामान तथा कपड़े सब इतस्ततः बिखरे पड़े हैं। मैं तो यह समझता रहा कि आप शिवरात्रि का जागरण कर रहे हैं।" अमरनाथजी बड़ी कठिनाई से आंखें मसलते हुए उठे और जब अपना सामान उन्हें नहीं दिखाई दिया तो बेहोश होकर धड़ाम से भूमि पर गिर गए। उनके मुंह पर जल के छींटे मार कर जैसे-तैसे उन्हें होश में लाया गया। महाराजजी के चरण पकड़कर उन्होंने कहा, "आपसे रुपये ऐंठने के लिए मैंने आपको बहुत सताया और दुःख दिया। आप श्रेष्ठ कार्य में लगे हुए थे। परमात्मा की भक्ति में निरत थे। मैं पापात्मा आपको व्यर्थ ही परेशान करता रहा। यह उसीका दण्ड है। वे मुझे अपना गुरु बनाकर मेरा सब कुछ लूट कर ले गए।" महाराजजी ने कहा, "गुरु की सम्पत्ति पर तो शिष्यों का अधिकार होता ही है। वे तो चोर थे। आपका सामान चुराकर ले गए। आपने सोचे-विचारे बिना ही उन्हें अपना शिष्य बना लिया। गुरु-मंत्र दे दिया तब तो वे आपकी सम्पत्ति के अधिकारी बनकर ही आपका सामान ले गए। जिस प्रकार आप अपने गुरु तथा दादा-गुरु की सम्पत्ति के मालिक

बने बैठे हैं इसी प्रकार से वे भी अपने गुरु का सामान ले गए। क्या आपको यह नीति वचन स्मरण नहीं कि 'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।' अब आप उठ कर पता लगाओ कि आपका क्या-क्या सामान वे चोर चुरा कर ले गए हैं।" सब कुछ देखकर अमरनाथजी को पता चला कि लगभग चार हज़ार की चोरी हुई है। इन चोरों ने मंदिर की मूर्ति के सोने तथा चांदी के आभूषण और बर्तनादि भी चुरा लिए थे। ये लोग सभी कुछ चुरा कर ले गए। अमरनाथजी को इसका बड़ा धक्का लगा और उनकी जबान सूखने लगी तथा सिर में चक्कर आने लगे। महाराजजी ने इन्हें गर्म दूध में घृत डालकर पिलाया और लिटा दिया और उनको ५० रु० अपने लिए आवश्यक सामान खरीदने के लिए दिए और अमावस्या की रात्रि के १० बजे से मौन धारण कर लिया। अब अमरनाथजी ने महाराजजी को तंग करना छोड़ दिया और भक्तिभाव से उनकी सेवा करने लग गए। अब महाराजजी का मौन व्रत निर्विघ्नतापूर्वक चलने लगा। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर महाराजजी ने नीचे की मंजिल में रहना प्रारंभ कर दिया। यह मकान बहुत जीर्ण-शीर्ण सा था इसलिए इसमें बिच्छू बहुत थे। अमरनाथजी भी पुनः पूर्ववत् ही परेशान करने लग गए थे। अतः अब ये मोहन आश्रम में चले गए। मूर्ख मित्र की अपेक्षा विद्वान् शत्रु कहीं अधिक अच्छा है। अमरनाथजी भी ऐसे मूर्खों में से थे। आश्विन पूर्णिमा को महाराजजी भी मोहन आश्रम पधारे और वहां जाकर मलेरिया ज्वर से पीड़ित होगए। प्रतिदिन १०४-१०५ डिग्री ज्वर हो जाता था। इतने दुर्बल होगए कि अपने लिए दूध भी गर्म नहीं कर सकते थे। नौकर ही दूध गर्म करके उनके कमरे में रख जाता था। आश्रम के प्रबंधक स्वामी सच्चिदानन्दजी ने महाराजजी को ज्वरपीड़ित देखकर तुरन्त होम्योपैथिक डाक्टर को बुलाया और ऐसी औषधि देने के लिए कहा जिससे इनका ज्वर शीघ्र उतर जाए और इनके मौन व्रत में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। डाक्टर ने तेज दवाई देकर ज्वर तो उतार दिया किन्तु सारे शरीर में खुजली चलने लगी। १३ दिन तक मलेरिये से पीड़ित रहे और अब खुजली ने आ घेरा। इसकी वेदना ज्वर से भी अधिक थी। डाक्टर के उपचार से यह भी ठीक होगई किन्तु ज्वर पुनः आने लगा। जब ज्वर उतरे तो खुजली होने लग जाती थी और जब खुजली मिट जाती थी तो ज्वर घेर लेता था। इसी प्रकार १५ दिन तक कष्ट पाते रहे। लगभग डेढ़ महीने तक ज्वर रहा। शरीर शक्तिहीन तथा दुर्बल होगया। जैसे-तैसे मौन का एक वर्ष समाप्त हुआ। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को व्रत की समाप्ति की। जब लाला शिवसहायमलजी की पुत्री गौरां देवी को इनकी बीमारी का पता चला तो वह इनकी सेवा के लिए आ गई। लगभग २३ वर्ष तक गौरां देवी के पिताजी ने महाराजजी के व्यय का भार वहन किया था इसलिए ये इन्हें अपनी बहिन के समान ही समझते थे। दोनों में परस्पर बहिन भाई जैसा ही प्रेम था। गौरां देवी ने महाराजजी से अमृतसर चलने और वहीं पर मौन की समाप्ति-रूप यज्ञ आदि करने के लिए बहुत आग्रह किया अतः अमृतसर पधार गए और वहीं पर यज्ञ करने का निश्चय कर लिया। बम्बई वाले तुलसीरामजी ने ८०० रुपया यज्ञार्थ भेज दिया था और कुछ रुपया महाराजजी के पास इसके लिए था। ये अमृतसर में मुलखराजजी की कोठी पर विराजे। लाला शिवसहायमलजी अपने स्वर्गवास होने से पूर्व ही अपनी वसीयत में, जो उन्होंने अपनी पुत्री गौरां देवी के हक में की थी, लिख गए थे कि महाराजजी को गत २३ वर्ष से जो

व्यय के लिए रुपया दिया जा रहा है वह आजीवन नियमानुसार इन्हें मिलता रहे। गौरां देवी बराबर अपने पिता की आज्ञा और वसीयत के अनुसार रुपया देती रही किन्तु महाराजजी ने गौरां देवी के पति के स्वर्गवास होने के कारण यह रुपया लेना बन्द कर दिया था। लाला श्रीकृष्ण खन्ना ने अब २०० रु० मासिक इन्हें देना प्रारम्भ कर दिया किन्तु महाराजजी ने केवल १०० रु० मासिक लेना ही स्वीकार किया।

श्री महाराजजी ने व्रत समाप्ति के उपलक्ष में एक वृहद् यज्ञ किया और इसकी समाप्ति पर एक बहुत बड़ा भण्डारा किया। यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। यज्ञ के पश्चात् दो मास के लिए सत्संग और योगाभ्यास करवाया गया। महाराजजी इसके बाद पुनः हरिद्वार पधारे और मोहन आश्रम में निवास किया। वहां पर योग-साधना का शिविर लगाया गया। बहुत से अभ्यासी इसमें सम्मिलित हुए और लाभ उठाया। महाराजजी कई वर्ष पूर्व हिमालय-निवास का निश्चय कर चुके थे। गंगोत्री और बद्रीनाथ में से कौन-सा स्थान उत्तम रहेगा अभी इसका निश्चय नहीं हो सका था। गंगोत्री में तो उन्होंने कई वर्ष तक निवास किया था। बद्रीनाथ भी गए तो कई बार थे किन्तु यात्रा के उद्देश्य से गए थे, वहां रहने के उद्देश्य से नहीं, अतः अब वहां निवास करने की दृष्टि से उसे देखने के लिए जाना चाहते थे।

बद्रीनाथ में पांच मास तक निवास

नरोत्तमसिंह सेवक को साथ लेकर महाराजजी हरिद्वार होते हुए बद्रीनाथ पधारे। वहां पर पंजाबी क्षेत्र में ठहरे। यह स्थान अलखनन्दा के किनारे पर था और एकान्त तथा शान्त था। पण्डित जगतरामजी, जो पहले उत्तरकाशी के क्षेत्र के मैनेजर थे, आजकल बद्रीनाथ के पंजाबी क्षेत्र के मैनेजर थे। महाराजजी के बड़े भक्त थे अतः इनके लिए सभी प्रकार की सुविधा कर दी थी। महाराजजी अपना अभ्यासादि का कार्यक्रम बनाकर यहां आनन्दपूर्वक रहने लगे। इन्हीं दिनों स्वामी दयालमुनि अपने ५-६ सन्तों को साथ लेकर गोमुख से बद्रीनाथ आ गए। गोमुख से बद्रीनाथ आने का मार्ग बड़ा दुर्गम है। बीस हज़ार फीट की ऊंचाई से आना पड़ता है। इनके दो-तीन साथियों को बर्फ की चमक के कारण दीखना बन्द होगया था। इनके साथ ब्रह्मचारी महावीर, सन्त गुरुदेवदास, अवधूत परमानन्द, स्वामी कैलाशानन्द, ब्रह्मचारी प्रबोधानन्द और गंगामुनि थे। दलीपसिंह नामक कुली भी साथ था। ये सभी गंगोत्री से आए थे और सभी विरक्त थे। सर्वप्रथम ये ही विरक्त साधु इस मार्ग से आए थे। यह इन्हीं की खोज थी। इनके पश्चात् तो यह मार्ग खुल-सा गया और अन्य यात्री भी इसी मार्ग से आने लग गए थे। सेठ तुलसीरामजी ने साधु-सन्यासियों के ऊपर आवश्यकतानुसार व्यय करने के लिए महाराजजी के पास १५०० रु० भेजे। इन्होंने जगतरामजी को बुलाकर कहा, "सायंकाल ५ बजे बद्रीनाथ के सब साधुओं को चाय-पान करवा दिया करो, जो व्यय होगा मैं चुका दिया करूंगा। जब पंजाबी क्षेत्र बन्द हो जाएगा तब सबको भोजन भी करवा दिया करना, इसका व्यय भी मैं दूंगा।" चार मास तक चाय का क्षेत्र चला और दो मास तक अन्न का। सेठजी को इससे सूचित कर दिया गया। इस पर इन्होंने महाराजजी को लिखा कि आवश्यकता-नुसार यदि अधिक रुपया चाहिए तो लिखने पर तुरन्त भेज दिया जाया करेगा। ये

सेठ महाराजजी के अनन्य भक्त थे और इनके प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी, इसीलिए बड़ी उदारता से इन्हें रुपये भेजते थे। इनका तथा इनकी धर्मपत्नी का यह विश्वास होगया था कि वे महाराजजी की कृपा से ही ऐश्वर्य का उपभोग कर रहे हैं। जो कुछ उनके पास है सब इन्हीं की कृपा के फलस्वरूप है। सेठजी इन्हें अपना गुरु मानते थे और दान-पुण्य के लिए तथा इनके निजी खर्च के लिए बड़ी उदारता से धन देते थे। सेठजी के परिवार में राधास्वामियों का आना-जाना प्रारम्भ होगया था। इनके दो लड़के उनके शिष्य भी बन गए थे। इनकी लड़की राधास्वामी के शिष्यों के घर व्याही गई थी। वह अब तक आपको गुरु मानती थी किन्तु अब उसने भी राधास्वामी मत की दीक्षा ले ली थी। वे कहते हैं कि गुरु के बिना मनुष्य की सद्गति नहीं हो सकती। सेठजी ने कहा "कि अब मुझे और मेरी पत्नी को भी प्रभावित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारा सारा परिवार सनातनधर्मावलम्बी था किन्तु अब वह धीरे-धीरे राधास्वामी मत में प्रविष्ट होता जा रहा है। जब तक आप मुझे और मेरी पत्नी को विधिवत् मंत्र दीक्षा देकर शिष्य नहीं बना लेंगे तब तक मेरा कल्याण नहीं हो सकता। यदि आप मुझ पर कृपा नहीं करोगे तो मुझे ये लोग बलपूर्वक अपना शिष्य बना लेंगे।" महाराजजी ने उन्हें सूचित कर दिया कि हमारे हरिद्वार आने पर आपकी इच्छा की पूर्ति कर दी जाएगी। उन्हें गायत्री पुरश्चरण करने की आज्ञा दी। दीक्षा से पूर्व यह आवश्यक है इसके साथ ही कुछ ध्यान-साधना भी करनी होगी। दीवाली पर हमारा विचार विशेष मौनव्रत धारण करने और ध्यान का अभ्यास करने का है। इस व्रत से पूर्व आप हमें मिलना, आपको मंत्रदीक्षा दे दी जाएगी। बैसाखी पर आपको दीक्षा दे दूंगा। इससे एक सप्ताह पूर्व आप आ जाना। इस अवसर पर आपको विशेष व्रत, नियम, संयमादि करना होगा। माताजी को भी साथ ले आना। इस परिवार का महाराजजी पर बड़ा विश्वास और भरोसा था। सेठ तुलसीरामजी का जन्म एक साधारण से परिवार में हुआ था और उन्नति करते-करते ये आज करोड़ों में खेल रहे हैं। बड़े ऐश्वर्यशाली तथा सम्पन्न हैं। खूब कारोबार चल रहा है। यह सब महाराजजी की कृपा का ही परिणाम है। ऐसा उनका विश्वास था।

पातंजल आश्रम में निवास

महाराजजी दशहरा तक बद्रीनाथ में ही रहे। चारों ओर नई बर्फ से पर्वत आच्छादित होगए थे। शीत में बहुत वृद्धि होगई थी। महाराजजी, जगतराम तथा सेवक आदि सबने बद्रीनाथ से प्रस्थान किया और शनैः-शनैः कई दिन में हरिद्वार पहुंच गए। यहां पर पांतजल आश्रम में निवास किया क्योंकि अमरनाथजी अब कहीं अन्यत्र चले गए थे। दीवाली के पश्चात् सेठ तुलसीरामजी तथा उनकी धर्मपत्नी दोनों ही वहां आ गए। महाराजजी ने तुलसीरामजी से कहा, "यदि आप दोनों ही मेरा शिष्यत्व स्वीकार करेंगे तो आपके पारस्परिक सम्बन्ध में परिवर्तन होना अनिवार्य हो जाएगा। तब आप दोनों बहिन-भाई हो जाएंगे। जैसे एक पिता की सन्तान परस्पर सब बहिन-भाई कहलाते हैं उसी प्रकार एक गुरु के शिष्य भी बहिन-भाई ही होते हैं। सेठजी को महाराजजी की बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि अन्य साधु महात्मा तो इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रखते, एक तर्फ से सबको दीक्षा दे देते हैं। योगीराजजी ने इन्हें समझाया कि जो ऐसा करते हैं वे शास्त्रविधि का उल्लंघन करते हैं।

इनमें से बहुतों को तो इसका ज्ञान ही नहीं होगा और बहुत से वित्तेषणा तथा लोकेषणा के वशीभूत होकर ऐसा करते हैं जो उचित नहीं है। व्रत बड़ा कठिन है। यदि आप दोनों ब्रह्मचर्य का विधिपूर्वक पालन कर सकें तब तो हम दोनों को दीक्षा दे सकते हैं; अन्यथा हम आप दोनों में से एक को ही दीक्षा देंगे। सेठजी तो गत कई वर्षों से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे। बड़े संयम और नियम से रहते थे। किन्तु महाराजजी से इन्होंने निवेदन किया, "हम नियम, संयम, व्रत और ब्रह्मचर्य पूर्वक ही रहते हैं, किन्तु महाराजजी ! मेरे लिए मनसादेवी को पत्नी के स्थान पर बहन पुकारना बड़ा कठिन है।" माता मनसादेवी की प्रार्थना पर महाराजजी ने सेठजी को ही मंत्र-दीक्षा देना स्वीकार किया। वे दीक्षा लिए बिना भी कुछ न कुछ लाभ उठा ही रही थीं। पति-पत्नी दोनों साथ ही महाराजजी के पास आते थे। दोनों को ये साथ ही उपदेश देते थे। साधना-अभ्यास भी दोनों साथ-साथ ही करते थे। वे विधिवत् दीक्षा लिए बिना भी सदा से ही महाराजजी में गुरु-भावना रखती थीं और उनकी अनन्य भक्ता थीं। महाराजजी ने सेठजी को तीन दिन अपने पास रखकर पुरश्चरण की सब विधि बता दी तथा अन्यान्य कई साधनों का अनुष्ठानादि समझा दिया। इसी प्रकार माता मनसा देवी को भी यथायोग्य साधन बताया। इसके पश्चात् ये लोग बम्बई चले गए और पुनः बैसाखी से एक सप्ताह पूर्व ही हरिद्वार आ गए। पूर्वा बताई हुई विधि के अनुसार यहां आकर व्रत इत्यादि किया। दीक्षा के लिए सब अवश्यक सामग्री मंगवा ली। महाराजजी का मौनव्रत बैसाखी वाले दिन प्रातः समाप्त होगया।

सेठ तुलसीराम को मंत्र-दीक्षा--महाराजजी के मौनव्रत रखने से पूर्व ही सेठजी ने उपवास तथा अन्य जो तैयारी करने का आदेश हुआ था सब कर लिया। ब्राह्मणों को बुलाकर तीन-चार घण्टे तक यज्ञ किया। इसके पश्चात् उपनयन संस्कार किया गया। एक घण्टा तक सेठजी को उपदेश देकर सं० २००३ में वैशाख मास की संक्रान्ति को शास्त्रविधि के अनुसार मंत्र-दीक्षा दी गई और महाराजजी ने उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों और साधुओं को भण्डारा दिया गया और इनमें दान-दक्षिणा भी वितरित की गई। माता मनसादेवी को भी उपदेश दिया गया। विविध प्रकार की साधनायें उन्हें समझाईं। दोनों को आत्मविज्ञान प्राप्ति के सूक्ष्म रहस्यों को समझाया गया। सर्व कार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुआ। गुरु-दीक्षा मिलने पर दोनों पति-पत्नी ने अपने को बड़ा कृतकृत्य समझा। ये करोड़ों के इस समय स्वामी थे। घर-गृहस्थी की कोई चिन्ता नहीं थी अतः दीक्षा के पश्चात् इन दोनों ने हरिद्वार में ही निवास करने का निश्चय किया। ये कुछ दिन तक तो महाराजजी की सेवा में रहे और इसके पश्चात् वापस बम्बई चले गए। योगीराजजी ने सर्वप्रथम सेठ तुलसीराम को ही विधिपूर्वक शिष्य बनाकर दीक्षा दी थी। इसका मुख्योद्देश्य था इनको राधास्वामी बनने से बचाना।

हरिद्वार में योग प्रशिक्षण--सेठजी के बम्बई चले जाने के पश्चात् महाराजजी ने योगाभ्यास करवाया। जिस प्रकार से विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में लौकिक विद्या की प्राप्ति के लिए कक्षायें लगाई जाती हैं और विद्यार्थी विविध लौकिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार की कक्षाओं का श्री महाराजजी ने

पराविद्या, पारमार्थिक विद्या के उपार्जन के लिए प्रारंभ किया। योग-साधना के लिए विधिवत् कक्षायें लगती थीं और साधकों को उनकी योग्यता, परिश्रम और साधना के अनुरूप योग सिखाया जाता था। योग-विद्या अत्यन्त प्राचीन विद्या है। आज से हज़ारों वर्ष पूर्व से ही योग की पावन परम्परा भारत में चली आ रही है। किन्तु तब इस विद्या में पारंगत महायोगी अपने योग्य शिष्यों को ही योग सिखाया करते थे। जिसमें इस गूढ़ विद्या की प्राप्ति के लिए पात्रता पाते थे उसी को इस विद्या का दान देते थे। आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान की प्राप्ति के लिए एक ही जन्म नहीं कई-कई जन्म तक अभ्यास करना पड़ता था। योग प्रशिक्षण विद्यालयों की 'योगनिकेतन' के नाम से स्थापना करना, उनमें योग की कक्षायें लगाकर योग साधन की शिक्षा देना श्री महाराजजी का अपना ही अनुसंधान है। यह इनके अपने महान् मस्तिष्क की सूझ है। इन योग प्रशिक्षण विद्यालयों में अब तक सैंकड़ों अभ्यासियों ने योग शिक्षा प्राप्त की है। इनमें से सभी महान् योगी बनकर भले ही न निकले हों किन्तु मार्ग-दर्शन सबको यथोचित रूप से प्राप्त हुआ है। अपनी-अपनी साधना, अभ्यास, तप, प्राणायाम और वैराग्य के अनुरूप सबने लाभ उठाया है। अभ्यासियों को उनकी योग्यता के अनुरूप उपाधियां भी प्रदान की गई हैं।

बद्रीनाथ गमन

ज्येष्ठ मास के प्रारंभ में श्री महाराजजी बद्रीनाथ पधार गए। वहां पर पंजाबी क्षेत्र में निवास किया। यही ऐसा स्थान था जो एकान्त और शान्त था तथा आबादी से दूर था। बद्रीनाथ में अनेक सुख के साधन प्राप्त थे। यहां पर डाक तथा तार घर है। एक अच्छा अस्पताल है। नाई तथा धोबी आसानी से मिल जाते हैं। कपड़े तथा खाद्य सामग्री की कई दुकानें हैं। दूध आसानी से मिल जाता है। साग तथा घी की भी कई दुकानें हैं। भ्रमण करने के लिए समतल भूमि है। जहां ये सुख साधन हैं वहां साधकों के लिए अनेक कष्ट भी हैं। यहां पर लगभग एक लाख यात्री प्रतिवर्ष यात्रा करने जाते हैं। यात्रा के समय बहुत भीड़-भाड़ रहती है जिससे साधना में अनि-वार्य रूप से विघ्न उपस्थित हो जाता है। बद्रीनाथ के पास ही दो-तीन शराब की चौकियां थीं। यह भी एक बड़ा भारी विघ्न था। इसके अतिरिक्त आसपास के ग्रामों के बड़े-बड़े बच्चे तथा स्त्रियां लकड़ी ढोने के निमित्त सैंकड़ों की संख्या में क्षेत्र के सामने से आते जाते रहते थे। इनका शोरगुल भी योगाभ्यास में बड़ा बाधक था। बद्रीनाथ में अछूत जाति की स्त्रियां नृत्य करने तथा गाने-बजाने के लिए आती थीं और कई-कई दिन तक डेरे लगाकर यह कार्य करती थीं। एक दिन यहां के एक धनाढ्य ब्राह्मण शंकरलाल ने महाराजजी की कुटिया के सामने रात्रि के समय इनका कई घण्टे तक नृत्य तथा गायन करवाया। इनकी कोठी पंजाबी क्षेत्र के पास ही थी। यह क्षेत्र भी इनकी भूमि के पास ही बना हुआ था। इनके पिता ने यह भूमि दान में दी थी। उस रात्रि को महाराजजी को बड़ा विक्षेप हुआ। श्रावण और भाद्रपद में यहां पर कुछ मलेरिया का प्रकोप हो जाता है और पेट भी खराब हो जाया करता है।

यहां पर नदियों में बाढ़ आ जाने, ग्लेशियर के टूटकर नदी में गिर जाने तथा अतिवृष्टि अथवा साधारण से कुछ अधिक वर्षा हो जाने के कारण से भी कभी-कभी छोटे-छोटे पर्वत-खण्डों के गिरने से मार्गों का अवरुद्ध हो जाना आदि कठिनाइयां उपस्थित

हो जाती हैं। एक दिन महाराजजी कंचन-गंगा के किनारे भ्रमणार्थ गए। तब इसमें ग्लेशियर के टूटकर आ पड़ने से इतने वेग से पानी आया कि इसमें ६०-७० अनाज से लदी हुई बकरियां और १५-२० यात्री डूब गए। इस घटना को देखकर महाराजजी के चित्त में बड़ा विक्षोभ हुआ। इनके शवों को निकालने और जो घायल होगए थे उन्हें अस्पताल में भिजवाने के लिए महाराजजी को बड़ी दौड़धूप करनी पड़ी।

ग्रामों की स्त्रियां यहां पर प्रायः लकड़ियां ढोने का काम करती हैं। ये अधिकतर स्वेच्छाचारी बन जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप दुराचारिणी बन जाती हैं। एक दिन एक वृद्धा स्त्री एक युवती तथा सुन्दरी लड़की को लेकर महाराजजी के पास आई। उसकी चेष्टाओं, हाव-भाव तथा बोलचाल से वह कुछ पतित सी मालूम होती थी। इन्होंने जगतरामजी को इन दोनों को क्षेत्र से बाहर निकालने का आदेश दिया। उन्होंने और नौकरों को बुलाया और इनको क्षेत्र से बाहर निकाल दिया।

महाराजजी के भक्त भगवानदासजी की पुत्रवधू का देहान्त—भगवानदासजी अपनी पत्नी और पुत्रवधू आज्ञावती के साथ महाराजजी के पास रहने के लिए आना चाहते थे। योगीराजजी ने इन्हें पत्र द्वारा न आने का आदेश दिया क्योंकि वर्षा ऋतु में पहाड़ों की यात्रा स्वास्थ्यकर नहीं होती, किन्तु दुर्भाग्यवश यह पत्र इन्हें नहीं मिला और ये वहां से चल दिए। आज्ञावती को मार्ग में ही विसूचिका (हैजा) होगई और उसका मार्ग में ही स्वर्गवास होगया। भगवानदासजी को अत्यन्त दुःख हुआ। परदेश में उस देवी के शव को उठानेवाला भी कोई नहीं मिला। गढ़वाल के लोग हैज़े से बहुत भयभीत रहते हैं। हैज़े के रोगी के पास तक भी ये लोग नहीं आते। लालाजी बद्रीनाथ भी नहीं पहुंच पाए और इस असामयिक दुर्घटना के कारण मार्ग से ही पीछे लौट गए।

गंगोत्री निवास का निश्चय—उपरिलिखित विविध कारणों से महाराजजी का चित्त बद्रीनाथ में निवास करने से कुछ उपराम-सा होगया था। इन्होंने यहां की अपेक्षा गंगोत्री निवास को ही अधिक उपयुक्त समझा। यहां पर जीवन के लिए सभी सुविधाएं थीं किन्तु अभ्यास तथा साधना के लिए यहां पर कई विघ्न थे। गंगोत्री में जीवन को लौकिक दृष्टि से सुखी बनाने के साधन तो न थे किन्तु वहां पर ध्यान तथा समाधि में इस प्रकार के विघ्न उपस्थित होने की संभावना नहीं थी। इसलिए महाराजजी ने दयालजी को अपने लिए गंगोत्री में एक कुटिया तथा एक रसोई तैयार करने का आदेश दिया। इन दोनों के बनाने का अनुमानित व्यय १२०० रु० आंका गया। महाराजजी ने दयालजी के पास तुरन्त १००० रु० भिजवा दिया और शेष २०० रु० फिर भेजने के लिए उन्हें लिख दिया। इधर इन्होंने सेठ तुलसीरामजी को रुपया भेजने के लिए पत्र लिख दिया। गढ़वाल के इलाके में साधु-महात्माओं को रुपये तथा वस्त्रादि से सहायता करने की प्रथा कम है। यदि कोई साधु भिक्षा मांगने चला जाए तो अन्न अवश्य देते हैं।

बद्रीनाथ के मंदिर की स्थिति—इस मंदिर की स्थिति गत कई वर्षों से अब अच्छी थी। जब से सरकार का नियंत्रण इसकी आय पर हुआ था तबसे इसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी होगई थी। कई मकान तथा धर्मशालाएं भी बन गई थीं। इसकी आमदनी अब लगभग एक लाख होगई थी। यहां के मंदिर में मूर्ति बैठी हुई है, अन्य मंदिरों के समान खड़ी हुई नहीं है। बद्रीनाथ में बहुत बड़ा मैदान है।

इसमें विविध प्रकार के फूल तो होते हैं किन्तु वृक्ष नहीं। बद्रीनाथ में ऋषिगंगा के किनारे ब्रह्मकमल बहुत होता है। माणागांव में व्यास-गुफा बड़ी प्रसिद्ध है। यहीं पर व्यासजी ने पुराणों की रचना की थी। यहां पर ऋषि-मुनियों के नाम से कई गुफाएं प्रसिद्ध हैं। महाराजजी के पास प्रायः नित्य ही साधु-सन्त मिलने के लिए आते रहते थे। एक तांता-सा बंधा रहता था। इनमें अवधूत परमानन्दजी मुख्य थे। इस वर्ष भी महाराजजी ने १६०० रु० देकर पंजाबी क्षेत्र में अपनी ओर से चाय का क्षेत्र चलवाया था और दो मास के लगभग अन्न का।

हरिद्वार प्रस्थान

विजयादशमी के उपरान्त महाराजजी ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। आस-पास के पर्वतों पर नई बर्फ पड़ने लग गई थी और शीत का आधिक्य होगया था। इस वर्ष कुछ दिन के लिए गुजराती धर्मशाला में निवास किया। सेठ तुलसीरामजी भी यहीं पर ठहरे हुए थे। इनके आग्रह से ही महाराजजी इस धर्मशाला में ठहरे थे। यहां पर इन्होंने १५ दिन तक कथा की जिससे जनता ने बड़ा लाभ उठाया। इसके अनन्तर ये मोहन आश्रम पधार गए। वहां जाकर तीन मास तक मौनव्रत रक्खा और इसके पश्चात् दो मास तक योग प्रशिक्षण किया जिसमें साधकों की सन्तोषजनक प्रगति हुई।

ब्रह्मवादिनी धर्मदेवी से वेदान्त पर वादविवाद—एक दिन कुछ सत्संगी घण्टाघर के पास हर-की-पौड़ी पर महाराजजी का उपदेश सुन रहे थे। उस समय एक महिला वहां पर आईं। ये दिव्यगुणविभूषिता, ब्रह्मनिष्ठा तथा ब्रह्मवादिनी थीं। सौजन्य की प्रतिमा थीं। उनके स्वभाव की सरलता, उनकी वाणी का माधुर्य तथा उनके सेवाभाव में बड़ा आकर्षण था। ये अमृतसर निवासी लाला कर्मचन्दजी की सुपुत्री थीं। लालाजी महाराजजी के सुपरिचितों में से थे। इस देवी का नाम श्रीमती धर्मदेवी था। ये धर्म बहन के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' में इनका दृढ़ विश्वास था। धर्म बहन का जैसा नाम था वैसे ही उनमें गुण थे। इनका वैराग्य बड़ा उत्कट तथा प्रबल था। अपने घर के सुख तथा आराम को लात मार कर हरिद्वार में एकान्त तथा शान्त स्थान में रहना प्रारम्भ कर दिया था। संसार का कोई प्रलोभन इन्हें आकर्षित न कर सका और ये सदैव अपने निश्चित पथ पर अटल और स्थिर रहीं। इनका जीवन बड़ा तपश्चर्यामय, त्यागमय और संयममय है। आप तप और त्याग की साक्षात् मूर्ति हैं। महाराजजी से इनका बहुत पुराना परिचय था। जिन दिनों महाराजजी बड़ी नहर के किनारे मौनव्रत किया करते थे उन्हीं दिनों में इनसे परिचय हुआ था। महाराजजी की सांख्य और योग में बड़ी निष्ठा थी। अपने उपदेश में इन्होंने समाधि के विषय में बहुत ऊंचे दर्जे का स्वानुभवजन्य विज्ञान का विस्तृत वर्णन किया था। इस उपदेश की समाप्ति पर धर्म बहन ने महाराजजी से जिज्ञासा रूप में कई प्रश्न किए :—

धर्म बहन—क्या महाराजजी, आप हमारी भी समाधि लगवा सकते हैं?

महाराजजी—नहीं।

धर्म बहन—क्यों नहीं?

महाराजजी—जब ग्रापके विचार में ब्रह्म के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ है ही नहीं तो समाधि किस की लगवाएं ? ब्रह्म तो स्वयं समाधि रूप है। समाधि का विषय या लक्ष्य क्या होगा जब दूसरा कोई पदार्थ ही नहीं है। जब तक भेद स्वीकार नहीं किया जाएगा तब तक समाधि नहीं लग सकती। ग्रभेद में ध्याता, ध्यान ग्रौर ध्येय सिद्ध नहीं होते। समाधि में ध्याता, ध्यान ग्रौर ध्येय बने रहते हैं।

धर्म बहन—व्यवहार में तो भेद रहता ही है।

महाराजजी—जब ब्रह्म के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ है ही नहीं तब व्यवहार किससे ग्रौर कौन करेगा। ग्रतः व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता। यदि व्यवहार माना जाएगा तब व्यवहार का कर्ता भी मानना पड़ेगा। जो कर्ता होगा उसको भोक्ता भी स्वीकार करना पड़ेगा। ब्रह्म में कर्तृत्व ग्रौर भोक्तृत्व धर्म सिद्ध नहीं होते। जिसमें कर्तृत्व ग्रौर भोक्तृत्व धर्म होंगे उसका बंध ग्रौर मोक्ष भी ग्रनिवार्य है। इसलिए एक दूसरा पदार्थ मानना पड़ेगा। इसी को हम जीवात्मा क़हते हैं। यह ब्रह्म से भिन्न है।

धर्म बहन—जीव को तो हम भी मानते हैं।

महाराजजी—जीव कहां से ग्राया ?

धर्म बहन—जब ग्रशुद्ध ग्रविद्या के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध होता है तब वह जीव संज्ञा को प्राप्त होता है।

महाराजजी—ग्रशुद्ध ग्रविद्या कहां से ग्राई ?

धर्म बहन—षट् पदार्थ ग्रनादि ग्रौर सान्त हैं। उनमें जीव ग्रौर ग्रविद्या भी सम्मिलित हैं।

महाराजजी—फिर तो ग्रापने जो एकत्व ब्रह्म की प्रतिज्ञा की थी वह ग्रब न रही। ग्रनादि ग्रौर सान्त की प्रतिज्ञा भी स्थिर नहीं रह सकती ग्रौर पदार्थ भी सिद्ध नहीं हो सकते। जिसका ग्रादि नहीं उसका ग्रन्त भी नहीं हो सकता। जो उत्पन्न होता है वही विनाश भाव को प्राप्त होता है। ग्रतः कोई पदार्थ ग्रनादि सान्त नहीं हो सकता। ग्रनादि को नित्य ग्रवश्य मानना पड़ेगा।

धर्म बहन—हम व्यवहार में इसकी सत्ता मानते हैं।

महाराजजी—जब ग्रापके सिद्धान्त में व्यवहार ही मिथ्या ग्रौर ग्रसत्य है तो इसकी सत्ता कैसे सिद्ध हो सकती है क्योंकि ब्रह्म के सिवाय ग्रौर कुछ ग्रापके सिद्धांत में है ही नहीं ?

धर्म बहन—हम ग्रविद्या को ग्रनादि, सान्त ग्रौर ग्रनिर्वचनीय मानकर इसके दो विभाग मानते हैं—एक शुद्ध तथा दूसरा ग्रशुद्ध। जब शुद्ध ग्रविद्या (ग्रथवा माया) का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है तब वह ईश्वर-भाव को प्राप्त होता है ग्रौर जब ग्रशुद्ध ग्रविद्या या माया के साथ सम्बन्ध होता है तब वह जीव-भाव को प्राप्त होता है।

महाराजजी—ग्रविद्या ग्रौर ब्रह्म के सम्बन्ध का हेतु क्या है ? कर्म, ग्रौर कर्म का हेतु संस्कार, ग्रौर संस्कार का हेतु वृत्ति, ग्रौर वृत्ति का हेतु ग्रविद्या ग्रथवा माया। इस ग्रविद्या के सम्बन्ध से ब्रह्म बंधभाव को प्राप्त हुग्रा। ग्रपने वास्तविक स्वरूप को छोड़कर ईश्वर ग्रौर जीवत्व भावापन्न हुग्रा। इस प्रकार इसमें कोई ग्रन्तर

नहीं रहता । केवल बड़े-छोटे का ही अन्तर रहा और तीनों बद्ध होगए । ब्रह्म, ईश्वर तथा जीव तीनों संयोग से बद्ध हुए । जैसे जीव का बंध और मोक्ष होता है वैसे ही ब्रह्म का भी । इस प्रकार से ये दोनों ही समान हुए । जब आप ब्रह्म को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, निराकार, निरवयव, निष्क्रिय मानती हैं तब कोई आपत्ति उपस्थित नहीं होती और बद्धादि धर्म जीव को मान लें तब बंध और मोक्ष दोनों सिद्ध हो जाते हैं ।

धर्म बहन—हम तो इस बंध को भी स्वप्नवत् मानती हैं । जिस प्रकार स्वप्न के सब पदार्थ और व्यापार मिथ्या होते हैं इसी प्रकार जगत् भी मिथ्या है ।

महाराजजी—बहुत से स्वप्न सत्य भी होते हैं और असत्य भी । यह आवश्यक नहीं कि सभी स्वप्न मिथ्या ही हों । देखे या सुने पदार्थों की या इन्द्रियों से भी भोगे हुए सुख-दुःखात्मक पदार्थों की स्मृति ही स्वप्न है । उस पूर्वानुभूत का स्मरण कारण और सूक्ष्म शरीर के द्वारा होता है । कभी-कभी स्थूलेन्द्रियां भी अपना व्यापार प्रारम्भ कर देती हैं—जसे स्वप्न में बातें करने लगना, हाथ को उठाकर थप्पड़ मारना, स्वप्न में वीर्यपात हो जाना, करवट लेना, उठकर चल देना, आदि । सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मेन्द्रियां तो अपना व्यापार करती ही हैं। जैसे जाग्रतावस्था अन्तःकरण की है ऐसे ही स्वप्नावस्था भी अन्तःकरण की है । जाग्रत में भी अनेक कर्म मिथ्या या गलत होते हैं । यदि ये कर्म व्यापार स्वप्न में हो जाएं तो आप केवल इन्हीं को मिथ्या क्यों कहती हैं ? ये दोनों ही अवस्थाएं अन्तःकरण की हैं । दोनों ही सत्य हैं और दोनों ही मिथ्या हैं । इसलिए जगत भी कारण-रूपेण सत्य है और कार्यरूपेण अनित्य है । यदि आप जगत को मिथ्या कहेंगी तब तो आप जो कुछ कह रही हैं वह भी सत्य कैसे हो सकता है ? अतः स्वप्न का दृष्टान्त देना ठीक नहीं; यह असंगत है और दृष्टान्ताभास है । यदि आप ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मानतीं तब समाधि की बातें करना, नित्य आहार-व्यवहार करना, मोक्ष के लिए साधना करना, सब निरर्थक हो जाएंगे । परन्तु मोक्ष का तथा अत्यन्त दुःखनिवृत्ति का उपाय तो आप नित्यप्रति करती तो संसार नित्य ही प्रतीत होता है तथा दुःखनिवृत्ति का उपाय रहती हो । इससे भी सत्य ही है । अतः आपका अद्वैतवाद केवल वाणी का विलासमात्र ही रह जाता है । इस अद्वैतवाद की भ्रांति का परित्याग करके और भेदवाद को स्वीकार करके समाधि के साधनों में प्रवृत्त हो जाओ, तब ही आत्मसाक्षात्कार होकर परम वैराग्य द्वारा स्वरूप में स्थिति होगी और मोक्ष प्राप्त हो सकेगा । अतः आप इस व्यर्थ के हठ और दुराग्रह को छोड़कर समाधि द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करें । एक योग ही ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा हस्तामलक के समान प्रत्यक्ष विज्ञानपूर्वक आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है । यदि आपकी इच्छा हो तो कुछ काल हमारे सान्निध्य में रहकर सत्संग और अभ्यास द्वारा, यम-नियमों का विधिवत् पालन करते हुए आत्मविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को समाधि द्वारा स्वयं अनुभव करें । सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा प्रकृति-पुरुषविवेक और असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा परम वैराग्य और सर्व संस्कारों का अथवा वृत्तियों का निरोध होकर ब्रह्म में स्थिति लाभ होगी ।

महाराजजी ने जब धर्म बहन के सब प्रश्नों के विद्वत्तापूर्ण ढंग से युक्तियुक्त उत्तर दे दिए और वे उनसे सन्तुष्ट होगईं तब वे इनकी चरणशरण होगईं और कई वर्ष के सत्संग और अभ्यास से समाधि द्वारा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया।

बद्रीनाथ गमन

श्री महाराजजी कुछ मास तक हरिद्वार में निवास करके बद्रीनाथ पधार गए क्योंकि श्री दयालमुनिजी ने इन्हें सूचित किया था कि कुटिया का सामान तैयार हो रहा है, आगामी वर्ष तक बन जाएगी और निवास योग्य हो जाएगी। बद्रीनाथ में महाराजजी के ठहरने और भोजनादि की सब व्यवस्था जगतरामजी ने पंजाबी क्षेत्र में कर दी। महाराजजी ने इन्हें गतवर्ष की भांति सन्तों के लिए चाय तथा भोजन का प्रबन्ध करने का आदेश दिया। यह भी आदेश दिया कि अत्यन्त आवश्यक कार्य उपस्थित होने पर ही उनसे मिला या बात की जाए, अन्यथा नहीं, और अन्य आगन्तुक महानुभावों को भी यह आदेश सुना देने के लिए आज्ञा प्रदान की। यहां का दशहरा करके महाराजजी ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया।

हरिद्वार में मोहन आश्रम निवास

महाराजजी ने मोहन आश्रम में निवास किया। इनके परम भक्त और शिष्य सेठ तुलसीरामजी सपत्नीक हरिद्वार में आए हुए थे। माता मनसादेवीजी अत्यधिक रोगी थीं अतः महाराजजी ने उन्हें मोहन आश्रम में लाने का आदेश दिया और मोहन आश्रम में ही एक कोठी में उनके निवासादि का सब प्रबन्ध कर दिया। माता मनसादेवी ने महाराजजी से करबद्ध प्रार्थना की, "महाराजजी! मेरा बचना तो अब कठिन है। मेरी केवल एक अभिलाषा शेष रहती है जो मुझे पूर्ण होती नज़र नहीं आती। मेरा छोटा बेटा ओमप्रकाश अभी कुंआरा है। यदि मैं उसका विवाह कर पाती तो उत्तम रहता। मेरी हार्दिकेच्छा है कि मेरे पास अपना जो कुछ वस्त्र और आभूषण तथा रुपया है वह सब मैं ओमप्रकाश और उसकी बहू को अपने हाथों से दे जाती। यदि आप मुझे एक वर्ष और जीवनदान दे सकें तो मेरी यह अन्तिम अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। आप योगी हैं, महात्मा हैं, बालब्रह्मचारी हैं। आप शक्तियों के भण्डार हैं। आप मेरे पति के और मेरे गुरु हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण नहीं कर सकता। यदि आप मुझ पर दया-दृष्टि करें तो मेरी प्राण रक्षा हो सकती है।"

मनसादेवी को जीवनदान—मनसादेवी ने सिसकियां भर कर रुदन करते हुए महाराजजी से जो प्रार्थना की थी उससे वे द्रवीभूत होगए और उन्हें कहा, "माताजी, आपको एक नहीं हम चार साल जीवन के और प्रदान करते हैं।" सेठजी भी पास ही बैठे ये सब बातें सुन रहे थे। महाराजजी कुर्सी से उठकर खड़े होगए और अपने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् से प्रार्थना की और फिर मनोबल द्वारा मानसिक प्रयोग करते हुए माता से कहा," देखो, अभी थोड़ी देर में तुम्हारी पसली और हृदय की वेदना शान्त होकर सदा के लिए दूर हो जाएगी।" फिर इनके हृदय पर हाथ रखकर कहा, "अभी आपकी वेदनाएं सदा के लिए शान्त होती हैं।" इन शब्दों के साथ ही मनसादेवी के हृदय और पसली का दर्द जाता रहा और ज्वर भी टूट गया। वे अपने को आरोग्य

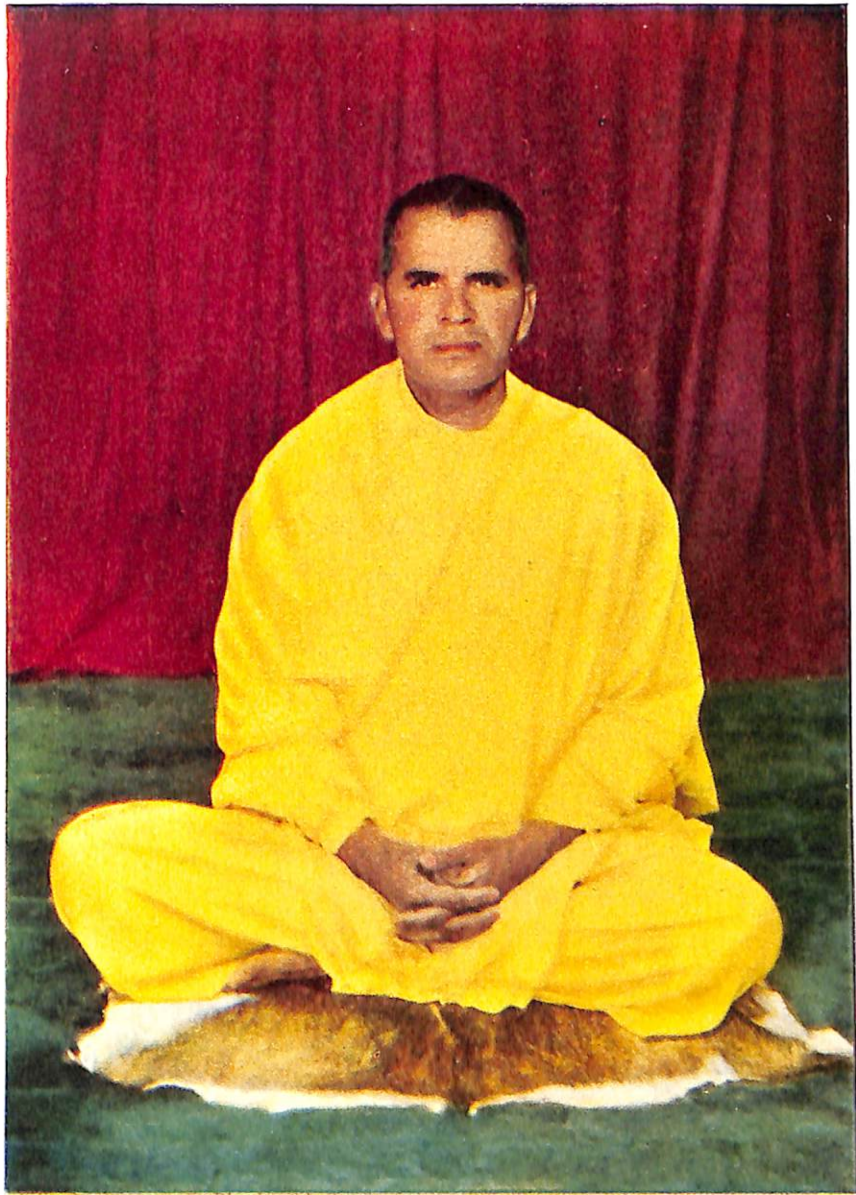
अनुभव करने लगीं। इनमें कई दिन से बिस्तर पर से उठने तक की शक्ति नहीं थी किन्तु अब इन्होंने चारपाई पर से उठकर श्री महाराजजी के चरण पकड़ लिए और अपने आंसुओं से उनके चरण भिगो दिए और कहा, "महाराजजी, आज ही मैंने आपके योग-बल का पूर्ण परिचय पाया है। आज ही पता चला है कि आपमें कितनी अलौकिक शक्तियां हैं। आप कितने महान हैं। आप सर्वशक्तिमान हैं। मुझ मरी हुई को आपने पुनः जीवन प्रदान किया है। मुझे मृत्यु के मुंह से आपने निकाला है। मैं जन्म-जन्मान्तरों तक भी आपके इस महान् ऋण से उऋण नहीं हो सकती। आपके इस अद्भुत चमत्कार को नहीं भूल सकती। आपके इस महान् उपकार की रेखा सदैव मेरे हृत्पटल पर खिंची रहेगी। महाराजजी, आप मानव नहीं आप देवता हो, मनुष्य नहीं भगवान् हो।" चार-पांच दिन में ये बम्बई जाने के योग्य होगईं। महाराजजी मौन व्रत धारण करने वाले थे अतः उन्हें बम्बई जाने का आदेश दिया। महाराजजी ने इनके चले जाने के पश्चात् ३ मास के लिए मौन किया और पूर्ववत् दो मास के लिए साधकों को साधनाभ्यास करवाया। सं० १९०४ के माघ मास की पूर्णिमा को मौन व्रत की समाप्ति हुई और सन्तों-महात्माओं को भण्डारा दिया। यह महाराजजी का अन्तिम मौन था। अब इन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि भविष्य में मौन व्रत नहीं किया जाएगा। जो विज्ञान गुरुदेवजी से प्राप्त किया है उसे योग के जिज्ञासुओं को प्रदान किया जाएगा। और सारा समय लोक-कल्याण के अर्पण किया जाएगा। इस विज्ञान-दान के द्वारा जिस प्रकार गुरुजनों ने मुझ पर उपकार किया है, मेरा कल्याण किया है, उसी प्रकार मैं भी योग का प्रशिक्षण करके इसके प्रसार और प्रचार के द्वारा विश्व का कल्याण करूंगा। योग प्रशिक्षण में छोटे-बड़े का विचार नहीं रखा जाएगा। सब वर्ण और जाति के योग जिज्ञासुओं के लिए महाराजजी का द्वार सदैव खुला रहता है। इनके विशाल हृदय में ऊंच-नीच, राजा-रंक, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षितादि सबके लिए समान भाव है। महाराजजी ने यह घोषणा की थी कि मैं निःस्वार्थ भाव से, सच्चे हृदय और वात्सल्य भाव से अध्यात्म-ज्ञान को जिज्ञासुओं को प्रदान करूंगा। अभ्यास की समाप्ति पर महाराजजी ने सभी अभ्यासियों को उपदेश दिया था, उसीमें उपरोक्त घोषणा की गई थी। अभ्यास की समाप्ति पर सभी साधकों ने यथास्थान प्रस्थान किया किन्तु महाराजजी के परम भक्त गुरुचरणदत्तजी के भाई रामलाल तथा उनके परिवार की देवियां अभी यहीं ठहरी हुई थीं। ये सब महाराजजी के बद्रीनाथ पधारने तक इनके पास ही रहने के इच्छुक थे।

श्री महाराजजी की पांच दिन की समाधि—महाराजजी वस्ति इत्यादि षट् कर्म के द्वारा शुद्धि करके, दो दिन तक शरीर के भीतर की शुद्धि करके तथा दो दिन तक उपवास करके अपनी कुटिया के सब द्वार बन्द करके समाधिस्थ होगए। यह समाधि ५ दिन के लिए थी। पूर्णिमा को १० बजे व्युत्थान का निश्चय किया था। जो देवियां अभी आश्रम में आग्रहपूर्वक ठहरी हुई थीं वे महाराजजी की कुटिया के चक्र काटती रहीं और जब न तो ये बोले और न समाधि से उठे तब वे बड़ी निराश हुईं। स्वामी सोमतीर्थजी महाराजजी की कुटिया के नीचे ही रहते थे। उन्होंने इन देवियों को समझाया कि योगीराज इसी प्रकार से कई-कई दिन के लिए समाधिस्थ

हो जाया करते हैं और अवधि समाप्त होने से पूर्व कभी व्युत्थान नहीं करते, अतः आप लोग जाओ, व्यर्थ ही अपना समय नष्ट मत करो। जब महाराजजी तीन दिन तक भी न उठे तब वहां जितने भी भक्त थे सब निज-निज स्थान पर चले गए। इस बार महाराजजी १२० घण्टे के लिए समाधिस्थ हुए थे। पूर्णिमा के दिन जब १२ बजे दरवाजा खोला गया तब स्वामी विशुद्धानन्दजी इनसे मिलने के लिए आए और पूछा, "कैसी स्थिति है ? आप हम सबको सूचित किए बिना ही भीतर समाधि में बैठ गए। हम सब तो बड़े चिन्तित हो रहे थे।" स्वामीजी ने रामलालजी और उनके परिवार का सर्व वृत्त सुनाया। महाराजजी ने कहा, "अन्न जल छोड़े आज ७ दिन होगए हैं, एक पाव दूध मंगवा दो।" स्वामीजी को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि महाराजजी का मुख पूर्ववत् कान्तिमान और तेजस्वी था। स्वामी सोमतीर्थजी दिन में कई-कई बार इन्हें देखने जाते थे। महाराजजी ने समाधि से व्युत्थान का दिन और समय नहीं बताया था, इसलिए सभी बड़े परेशान थे। महाराजजी ने दिन और समय इसलिए नहीं बताया था कि जिससे रामलालजी तथा अन्य स्त्रियां सब वहां से चले जाएं। यदि उनको पता चल जाता तो वे ५ दिन वहीं बैठे रहते क्योंकि वे दर्शन किए बिना जाना नहीं चाहते थे। स्वामी विशुद्धानन्दजी और स्वामी सोमतीर्थजी बड़े विद्वान् योगी थे, इसीलिए महाराजजी से बड़ा स्नेह करते थे। ये दोनों महाराजजी से आयु और आश्रम दोनों में ही बड़े थे। ये कई-कई दिन तक समाधिस्थ होने से बड़े प्रभावित थे। ये भी कई-कई मास तक मोहन आश्रम में निवास किया करते थे। इनके भी भक्त और अभ्यासी वहां आया करते थे। महाराजजी ने दो छटांक दूध में दो छटांक पानी मिला कर पीया। इसके पश्चात् न्यौलि-क्रिया करके शौचादि से निवृत्त हुए। शौच कृष्ण वर्ण था। वस्ति और बजरौली क्रिया द्वारा मल-मूत्र निकाल कर ही समाधिस्थ हुए थे, किन्तु फिर भी कुछ न कुछ मल आन्तों में अवश्य रह जाता है और जब तक ठीक-ठीक समाधि नहीं लगती है तब तक ये पाचन-कार्य करती ही रहती हैं, अतः भीतर का मल दग्ध होकर काला सा हो जाता है और पेशाब भी पीत और रक्त वर्ण का हो जाया करता है। यदि समाधि से व्युत्थान होने के पश्चात् भी योगी को मल-मूत्र त्याग करने की इच्छा न हो तब बस्ति और बजरौली के द्वारा इन्हें बाहिर निकालना चाहिए। इस समाधि के कुछ समय पश्चात जो चित्र श्री राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी व्यासदेव जी महाराज का लिया गया था वह सामने है।

बद्रीनाथ गमन

पांच दिन की समाधि के छः-सात दिन पश्चात् महाराजजी ने बद्रीनाथ के लिए प्रस्थान किया। वहां जाकर पूर्ववत् पंजाबी क्षेत्र में निवास किया। यह सन् १९४७ का साल था। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ था। किन्तु ब्रिटिश सरकार भारत को शक्तिशाली देखना नहीं चाहती थी, इस देश का सदा के लिए त्याग करते समय देश का विभाजन करके इसे अत्यन्त शक्तिहीन बना गई थी। इसलिए देश के स्वतन्त्र होते ही कई विकट समस्याएं शासकों के समक्ष उपस्थित होगईं। शासनसूत्र हाथ में लेते ही इनको सुलझाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। विभाजन के परिणामस्वरूप देश में रुधिर की नदियां बह निकलीं। लाखों व्यक्ति दर से



राजयोगाचार्य बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेवजी महाराज
(पांच दिन की समाधि के पश्चात्)

बेदर हुए। लाखों माताओं की गोद से उनके लाल, उनके जिगर के टुकड़े छीन लिए गए। लाखों बच्चों की हत्याएं उनके माता-पिताओं के सामने नृशंसतापूर्ण ढंग से की गईं। लाखों सुहागिनों के भाल के बिन्दु धुल गए। बच्चे अनाथ होगए। लाखों स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण किया गया। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट-भ्रष्ट होगई। सर्वत्र विनाश और नरसंहार दिखाई दे रहा था। उन दिनों का स्मरण आज भी आतुर और व्याकुल कर देता है। महाराजजी इन दुर्घटनाओं के कारण बद्रीनाथ में उदासीन-से ही रहे और सितम्बर मास में ही वहां से हरिद्वार चले गए।

हरिद्वार के लिए प्रस्थान

इस समय हरिद्वार में दुःखित, पीड़ित और अत्याचारों से भयभीत शरणार्थियों की बड़ी भीड़ थी। सब आश्रम और मकान इनके लिए सरकार ने ले लिए थे। इनके पुनर्वास की बड़ी भारी समस्या थी। इनके ऊपर जो अत्याचार किए गए थे उनको सुनकर पाषाण भी द्रवित हो रहे थे। महाराजजी के सहस्रों भक्तों ने नाना प्रकार की दुःखद घटनाएं सुनाईं। योगीराजजी ने वस्त्र तथा धन वितरण करके इनकी बहुत सहायता की।

शरणार्थियों की सहायता

महाराजजी बड़े दयालु और उदार हैं। आर्तों की आर्तिहरण, पीड़ितों की पीड़ा के अपहरण, दुःखियों के दुःखहरण और असहायों की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इन्होंने विस्थापितों की सेवा और सहायतार्थ पंजाब जाने का निश्चय किया। सर्वप्रथम ये जालंधर पधारे। वहां पर डाक्टर नारायणसिंह के पास ठहरे। यहां कुछ दिन रहकर होशियारपुर चले गए। वहां पर सभी पीड़ित परिचितों को सान्त्वना देते तथा धीरज बंधाते रहे। इसके पश्चात् पुनः जालंधर आगए और यहां से डाक्टर नारायणसिंह की मोटरकार में अमृतसर पधारे। मार्ग में जो दुःखद दृश्य देखा उसे देखकर वे प्रकम्पित होगए। रेल की पटरी के किनारे लाखों शव दबे पड़े हुए थे। मुसलमानों का एक बड़ा भारी काफ़िला पाकिस्तान जा रहा था। आगे तथा पीछे बड़े-बड़े टैंक उनकी रक्षार्थ जा रहे थे। आबालवृद्ध सभी दुःखी थे और रुदन कर रहे थे। एक वृद्धा मुसलमान माता को कहते हुए सुना, "जिन्हा, अल्ला तुम्हारा नाश करे। तैने पाकिस्तान बनाकर हमें बर्बाद किया है। ऐ ख़ुदा, क्या ही अच्छा होता तू इस जिन्हा को पहले से ही नेस्तनाबूद कर देता जिससे करोड़ों मनुष्य बरबादी से तो बच जाते।" डाक्टर विद्यावती और नारायणसिंह महाराजजी के साथ थे। अमृतसर केवल ५५ मील की ही दूरी पर था, तो भी प्रातः ८ बजे चल कर कहीं सायंकाल अमृतसर पहुंच पाए। वहां जाकर गुरुचरणदत्त की कोठी पर ठहरे। सब भक्तों ने अमृतसर में जो-जो दुर्घटनाएं हुई थीं उन सबका दुःखद वृत्त सुनाया। सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट होगया था। मलबे के ढेर लगे हुए थे। मकान खण्डहर होगए थे। बाज़ार बरबाद होगए थे। महाराजजी के कई भक्तों और परिचितों की बड़ी-बड़ी कोठियां जला दी गई थीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों के मकान नष्ट-भ्रष्ट होगए थे। महाराजजी ने वस्त्र और धन से पीड़ितों की सहायता की। जहां जाते वहीं लोगों को सान्त्वना देते तथा ढाढस बंधाते। मनुष्य जब राक्षस का

रूप धारण कर लेता है तब वह अपना विवेक खो देता है और उसको पाप-पुण्य तथा धर्म-अधर्म का विवेक नहीं रहता। प्रत्येक कुकर्म करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। पाकिस्तान और पूर्वी पंजाब में जो अत्याचार हुए थे उनको सुनकर लज्जा को भी लज्जा आती है और शर्म से अपना मुंह छिपा लेती है। महाराजजी श्रीकृष्ण के मकान को देखने के लिए गए। इसे मुसलमानों ने भूमिसात् कर दिया था। महाराजजी के १५०० रु० की कीमत के चांदी के बर्तन लाला शिवसहायमल के मकान में रखे थे। इन्होंने ये सब श्रीकृष्णजी को दे दिए। ये लगभग २० दिन तक पंजाब में रहे और फिर हवाई जहाज़ द्वारा बम्बई पधारे और मेरीन ड्राईव पर लाला तुलसीरामजी के पास ठहरे।

सन् १९४८ में भक्तों के कष्ट का निवारण

सेठजी के मकान पर महाराजजी सायंकाल ५ बजे से ६ बजे तक उपनिषदों की कथा करते थे। सैंकड़ों नर-नारी कथामृत का पान करने के लिए आते थे। सेठजी के ऊपर इन्कमटैक्स का एक मामला चल रहा था। इनके ऐश्वर्य, धन तथा सम्पत्ति के कारण बहुत से लोग इनसे ईर्ष्या करते थे। इन्हीं में से किसी ने इनकी झूठी शिकायत कर दी थी। इनके ऊपर कई लाख रुपया जुर्माना कर दिया गया था। माता मनसा देवी ने कहा, "महाराजजी! आपके भक्तों पर बड़ी भारी आपत्ति आई हुई है। आप ही इनके संकट का निवारण कर सकते हो। उधर ओमप्रकाश की शादी की तिथि निश्चित हो चुकी है। विवाह में थोड़े ही दिन शेष हैं। ऐसी स्थिति में विवाह भी असम्भव सा ही प्रतीत होता है। आप ही इन बच्चों की लाज रखोगे।" मनसादेवी की आंखों में आंसू देखकर महाराजजी को दया आ गई। इन्होंने सेठजी के पुत्र हरिकिशनदास को बुलाया और इन्कमटैक्स के उन अफसरों को दिखाने के लिए कहा जिनके पास इनका मामला था। बड़ा अफसर सैर करने जाया करता था, उसे तो महाराजजी को वहां दिखा दिया गया। हरिकिशनदास और महाराजजी दोनों मोटर-कार में गए थे। उस अफसर को देखकर इन्होंने मोटर की गति मन्द कर दी और महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि उस अफसर पर डाली। वह हरिकिशनदासजी से कभी बोलता नहीं था। बड़ा दम्भी और कठोर प्रकृति का था। किन्तु महाराजजी की दिव्य दृष्टि पड़ते ही वह बड़े नम्रभाव से उनके साथ बातें करने लगा और पूछा कि ये महात्मा कौन हैं। हरिकिशन ने कहा, "श्री महाराजजी हमारे गुरु हैं। ये हिमालय से आए हैं। इनकी हमारे ऊपर बड़ी दया है।" इस अवसर में महाराजजी ने अपने मनोबल से शक्तिपात करके इनको प्रभावित किया और इन्हें बड़ा सरल तथा कोमल बना दिया। अफसर ने हरिकिशनदास से कहा, "आप आज मुझे मिलना। आपके मामले पर विचार किया जाएगा और वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयत्न किया जाएगा।" हरिकिशनदास ने महाराजजी से कहा, "आज अपने जीवन में ये प्रथम बार इतने विनम्र और कोमल हुए हैं। अब आपकी कृपा से कार्यसिद्धि की एक किरण सी दिखाई देने लगी है।" दोनों मकान पर वापिस आगए। छोटे अफसर को देखने के लिए महाराजजी और अमीरचन्द दफ्तर में गए। वहां कुछ बातचीत करने लग गए और महाराजजी ने इसे देख लिया और तुरन्त अपनी दिव्य दृष्टि उस पर डाली। सायंकाल को विदित हुआ कि इस छोटे अफसर को ज्वर हो गया है। इसके दो दिन

पश्चात् यह मियादी ज्वर में परिवर्तित हो गया। महाराजजी ने हरिकिशनदास को अपना मामला किसी अनुकूल अफसर के पास ले जाने की सलाह दी। ये अपने केस को किसी अन्य छोटे अफसर के पास ले गए। इनके देहली वाले आडिटर आए हुए थे। इन्होंने सारे कागज देखे और इनकी सहायता की। उधर बड़े अफसर खरबन्दा साहिब इनके कुछ परिचित निकल आए। कुछ दिनों के परिश्रम से कार्य में सफलता लाभ हुई। बहुत थोड़ा-सा उचित टैक्स लगाकर केस खत्म कर दिया गया।

जहां पर ओमप्रकाश के विवाह की बातचीत चल रही थी वह भी महाराजजी के एक भक्त की लड़की थी। आज्ञावती ने इसी लड़की के विवाह सम्बन्ध में महराजजी से कई बार निवेदन किया था कि इसका सम्बन्ध ओमप्रकाश के साथ करवाने की कृपा की जाए। महाराजजी ने यहां पर एक मास तक निवास किया और जनता को अपने उपदेशों से लाभ पहुंचाया।

टैक्स के झगड़े से मुक्त हो जाने के कारण यह सारा परिवार बड़ा प्रसन्न था। श्री महाराजजी ने अपने योगबल तथा मनोबल से अपने अनेक भक्तों के कष्टों का निवारण किया है। आपको विविध प्रकार की सिद्धियां प्राप्त थीं किन्तु आपने कभी इनका चमत्कार दिखाकर जनता को आकर्षित करने की स्वप्न में भी इच्छा नहीं की। कभी-कभी जब वे अपने भक्तों को संकट तथा विपत्ति में देखकर द्रवीभूत हो जाते थे तब अपने मनोबल से और अपनी शक्ति के प्रयोग से उन्हें विपत्ति से मुक्त करने और उनके संकट के मोचन करने का कई बार प्रयत्न अवश्य किया है। सिद्धियों के प्रदर्शन में इनका विश्वास नहीं था। ये इन्हें योग में बाधक और बड़ा विघ्न समझते थे।

महाराजजी कुम्भ के मेले पर प्रयाग में कुछ दिन पूर्व ही जाना चाहते थे किन्तु माता मनसादेवी ने उनके साथ जाने का बड़ा आग्रह किया और वहां रुकने के लिए बार-बार प्रार्थना की। इन्होंने उन्हें समझाया और कहा कि आप सब हमारे पीछे आइएगा। हमारा वहां कुम्भ से पूर्व पहुंचना आवश्यक है। महाराजजी ने बम्बई में एक मास तक उपदेश किया था। इससे उनकी प्रसिद्धि सर्वत्र चन्द्रिका के समान व्याप्त होगई थी और सूर्य के समान इन्होंने सैकड़ों मनुष्यों के अज्ञानांधकार का विनाश किया था। इससे लोगों में परिचय भी बहुत होगया था। जब महाराजजी ने बम्बई से प्रस्थान किया तब एक भारी जन-समूह ने बड़े सम्मानपूर्वक विदाई दी। पचासों नर-नारी भेंट-पूजा देने के इच्छुक थे किन्तु महाराजजी ने कथा समाप्ति पर ही जब किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नहीं की थी तो इस समय भी इन भेंटों को स्वीकार नहीं किया।

प्रयागराज के कुम्भ पर दो मास का निवास

श्री महाराजजी बम्बई से प्रस्थान करके प्रयागराज पधारे। त्रिवेणी के किनारे पर कोट बाबा दयाराम में कई गुफाएं थीं। यह स्थान बड़ा रमणीय था। गंगा और यमुना के दर्शन होते रहते थे। यह स्थान एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित है। सारा मेला यहां से दृष्टिगोचर होता था। ऊंचाई पर होने के कारण बहुत-सी सीढ़ियां चढ़कर इस स्थान पर पहुंचा जा सकता था। महाराजजी अपने मित्र पंचानन्द के पास जाकर ठहर गए। इन्हें ऊपर की मंजिल पर एक कमरे में ठहराया गया। यहां पर जब इन्हें

नवयुग के निर्माता विश्ववंद्य बापू महात्मा गांधी के असामयिक निधन का दुःखद समाचार मिला तब महाराजजी को बड़ा आघात-सा हुआ और इन्होंने एक दिन का उपवास किया। भारतीयों के हाथ में शासनसूत्र अभी आया ही था इसलिए इनसे मार्गदर्शन प्राप्त करने की देश को अभी बहुत आवश्यकता थी। ये भारत की स्वतंत्रता के प्राण थे और ये ही भारत के स्वातंत्र्य संग्राम के महासेनानी थे। यदि भगवान् इन्हें कुछ वर्ष और जीवनदान देते तो भारत की कायापलट हो जाती। भारत की आज जो दयनीय दुर्दशा हो रही है वह कभी न होती और वह उन्नति के उच्चतर शिखर पर होता, किन्तु हमारे मन कुछ और थी विधिना के मन और। विधि के विधान को समस्त देश के दुःखित दिलों ने नतमस्तक होकर स्वीकार किया।

कोट बाबा दयाराम में निवास—इस स्थान पर महाराजजी पहले भी स्वामी पूर्णानन्दजी के जीवनकाल में, कई बार कुंभ और अर्धकुंभी के अवसरों पर निवास कर चुके थे। स्वामी पंचानन्दजी से बहुत पुराना परिचय था अतः इस स्थान पर इनके पास विराजे। महाराजजी के अनन्य भक्त अमृतसर के सेठ देवीदास प्रयाग में क्षेत्र खोलने के लिए आए हुए थे। इनके परम सेवक सेठ तुलसीराम भी सपरिवार इस अवसर पर आए हुए थे। अन्य भक्त भी यहां कुंभ पर आए थे। इस अवसर पर सेठ तुलसीराम ने अपने पुत्र ओमप्रकाश का यज्ञोपवीत संस्कार महाराजजी से करवाया तथा उसे मंत्रदीक्षा दिलवाकर इनका शिष्य बनवाया। बम्बई निवासी लाला देवकीनन्दन की पत्नी ने बद्धांजलि होकर महाराजजी से निवेदन किया, "अब तो ओमप्रकाश आपका शिष्य बन गया है इसलिए मैं अपनी भतीजी विमला का विवाह उससे करवाना चाहती हूं। आप इसमें मेरी सहायता करें। आप ही इस कार्य को करवा सकते हैं।" सेठ देवकीनन्दन की पत्नी का नाम आज्ञावती था और वह महाराजजी की बड़ी भक्ता थी। महाराजजी ने सेठ तुलसीराम तथा उनकी पत्नी माता मनसादेवी को ओमप्रकाश का विवाह विमला से करने का आदेश दिया और दोनों ने बम्बई जाकर आज्ञा का पालन करने का वचन दिया। आज्ञावती बड़ी दानशीला महिला थी। महाराजजी ने गंगोत्री में निवास करने का निश्चय कर लिया था और वहीं पर एक कुटिया भी अपने लिए बनवा ली थी। आज्ञावती ने अपनी ओर से ४-५ हजार रुपया लगवाकर २-४ कुटिया बनवाने के लिए इनसे निवेदन किया और बम्बई जाकर रुपया भिजवा देने का वायदा किया। इनके पति का स्वर्गवास होगया था। इसके एक लड़का तथा एक लड़की थी।

पंचानन्द महाराजजी से बड़ा प्रेम करते थे। इनके शिष्य महावीर तथा अन्य भक्त इनकी बड़ी सेवा करते थे। इनमें महावीर तथा उमादेवी विशेष रूप से इनके सुख और सुविधा का ध्यान रखते थे। लाला देवीदासजी लगभग दो मास तक यहां रहे। इनकी भजन और अभ्यास में बड़ी निष्ठा थी और साधना के समय को ये कभी भी नहीं चूकते थे। महाराजजी लगभग ढाई महीने तक यहां विराजे। इसके पश्चात् ये तथा सेठजी सपरिवार वृन्दावन पधार गए। वहां पर एक धर्मशाला में विराजे। सेठजी का परिवार भी यहीं ठहरा। यहां विराजकर गोवर्धन पर्वत, नन्दगांव और बरसाने की यात्रा की, होलिकोत्सव देखा और वृन्दावन के सब मंदिरों के दर्शन किए। महाराजजी यहां पर भी एक घण्टा प्रतिदिन कथा किया करते थे। सैकड़ों यात्रीगण

तथा स्थानीय नर-नारी इनके कथामृत का पान करते थे। एक दिन माता मनसादेवी ने महाराजजी से निवेदन किया, "महाराजजी! हमारे पास जो कुछ भी सम्पत्ति है वह सब ग्रापके ही ग्राशीर्वाद से प्राप्त हुई है, ग्रतः ग्रापसे प्रार्थना है कि ग्राप भी इसमें से कुछ मासिक खर्च ले लिया करें। यदि ग्राप स्वीकार करेंगे तो हम ग्रापका बड़ा उपकार समझेंगे ग्रौर इस परिवार पर ग्रापकी बड़ी कृपा होगी।" महाराजजी ने इनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की क्योंकि ग्रमृतसरवाले लाला श्रीकृष्ण खन्ना इन्हें १००) मासिक दे रहे थे। इसीसे इनका सारा खर्चा चल जाता था ग्रौर ग्रधिक रुपये की इन्हें ग्रावश्यकता न थी। यह देवी ग्राग्रह करती रही ग्रौर पुनः कहा, "वहां से रुपया लेते हुए ग्रापको कई वर्ष होगए हैं। ग्रब हमें भी सेवा का ग्रवसर देने की कृपा करें। वहां से ग्राप खर्चा लेना ग्रब बन्द कर दें।" महाराजजी ऐसा करना नहीं चाहते थे क्योंकि यदि उनसे रुपया लेना बन्द कर दिया जाता तो लाला श्रीकृष्ण को दुःख होता। इन्होंने माताजी से कहा, "उनका रुपया न लेने से उनको रंज होगा।" इस पर माताजी ने झट उत्तर दिया, "महात्मा किसी के बंधन में नहीं हैं। उन्हें बुरा क्यों मानना चाहिए? ग्राप जिसे चाहें उसीको खर्च भेजने के लिए ग्राज्ञा दे सकते हैं।" महाराजजी ने कहा, "हम लालाजी को समझाएंगे। यदि वे प्रसन्नता-पूर्वक हमारी बात मान गए तब हम उनसे रुपया लेना बन्द कर देंगे ग्रौर ग्रापसे ले लिया करेंगे। क्या ग्रापने इस विषय में सेठजी से पूछ भी लिया है?" मनसादेवीजी ने उत्तर दिया, "मुझे उनसे पूछने की क्या ग्रावश्यकता है? मुझे ग्रपने निजी व्यय के लिए बहुत रुपया मिलता है। मैं तो उसे खर्च भी नहीं कर सकती। मैं ग्रपने खर्च में से ग्रापको प्रतिमास रुपया भेजा करूंगी। मुझे ६०० रु० मासिक मिलता है। इसमें से २०० रु० मासिक मैं ग्रापके लिए भेजा करूंगी।" महाराजजी ने केवल १०० रु० मासिक लेना स्वीकार किया क्योंकि उन दिनों इसी में सब खर्चा चल जाता था।

स्वर्गाश्रम निवास

होली के बाद महाराजजी स्वर्गाश्रम पधारे। यहां पर दो मास के लिए योग प्रशिक्षण प्रारम्भ कर दिया। शीतकाल में स्वर्गाश्रम प्रायः खाली रहता था ग्रौर यह समय ग्रभ्यास के लिए उपयुक्त भी था। इन दिनों ग्रभ्यासियों के निवास के लिए बहुत कमरे सुलभ हो जाया करते थे। प्रातः ४ से ६ बजे तक ग्रौर सायंकाल साढ़े छः से साढ़े ग्राठ बजे तक ग्रभ्यास की कक्षाएं लगाई जाती थीं। ग्रभ्यास के ग्रतिरिक्त प्रातः ८ से ९ तक ग्रासन ग्रौर प्राणायाम भी सिखाये जाते थे। ग्रपराह्न में ३ से ४ बजे तक नित्य उपनिषदों की कथा हुग्रा करती थी। बहुत ग्रभ्यासी प्रशिक्षण कक्षा में प्रविष्ट हुए। स्वर्गाश्रम में जो यात्री ग्राते थे वे सभी प्रायः ग्रभ्यास करने के लिए ग्राते थे।

ज्येष्ठ के प्रारम्भ में महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। टिहरी तक तो बस में पधारे ग्रौर इसके बाद पैदल-यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में नगूणा पड़ाव पर सावित्री, धर्मवती ग्रादि कई देवियां उत्तरकाशी जाती हुई मिलीं। यहां से सब इकट्ठे उत्तरकाशी गए ग्रौर वहां पहुंचकर पंजाबी क्षेत्र में ही सब ठहर गए। महाराजजी केवल एक सप्ताह उत्तरकाशी में विराजे ग्रौर इसके पश्चात् ५ मास गंगोत्री में निवास करने का निश्चय करके वहां के लिए प्रस्थान कर दिया।

सन् १९४८ में गंगोत्री में योग-निकेतन की स्थापना

श्री महाराजजी के गंगोत्री पधारने से पूर्व ही स्वामी दयालमुनि ने उनके लिए कुटिया तथा रसोई इत्यादि बनवाकर तैयार करवा दी थी। सन् १९४८ में आषाढ़ पूर्णिमा के शुभ अवसर पर योग-निकेतन का उद्घाटन किया गया। विधिपूर्वक पूजादि करवाई गई और आश्रम में प्रवेश किया गया। इस शुभ अवसर पर साधु-महात्माओं और ब्राह्मणों को भोजन करवाया गया। अब तक महाराजजी की ओर से साधुओं के लिए क्षेत्र की व्यवस्था स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर की जाती थी। अब यह व्यवस्था वहां पर रखना उचित नहीं समझा गया। योग-निकेतन में ही इसकी व्यवस्था करने पर विचार किया गया जिससे प्रज्ञानाथजी को और अधिक कष्ट न हो। आज्ञावती ने ४-५ हज़ार रुपया कुटियाओं के बनाने के लिए महाराजजी को देने का वचन दिया था। इन्होंने दयालमुनिजी को एक बड़ी रसोई, एक उनके लिए कुटिया तथा एक औषधालय बनवाने के लिए आदेश दिया। स्वामीजी वैद्यक जानते थे इसलिए इन्होंने रोगियों के उपचार की स्वीकृति दे दी। गंगोत्री से लेकर उत्तरकाशी तक अर्थात् ५६ मील तक कहीं कोई वैद्य अथवा डाक्टर न था। न कोई औषधालय था और न अस्पताल। इसलिए लोग बड़े दुःखी थे। सैंकड़ों लोग उपचार के अभाव में मृत्यु का ग्रास बन जाते थे, जिनमें बालकों की संख्या अधिक होती थी। इससे स्थानीय निर्धन जनता और यात्रियों को सुविधा हो जाएगी और एक बड़े कष्ट का निवारण हो जाएगा। महाराजजी ने मुनिजी से मुस्कुराते हुए कहा, "आप औषधोपचार द्वारा जनता का कल्याण करना और हम योग द्वारा करेंगे। योग द्वारा शारीरिक और मानसिक दुःखों की निवृत्ति करना ही हमारा उद्देश्य है।" इन्हीं दिनों यहां पर डिप्टी साहिब तथा रेंजर साहिब आए हुए थे। इनसे भूमि के लिए निवेदन किया गया। इन्होंने झट आज्ञा देदी कि जितनी भी ज़मीन की आवश्यकता हो उतनी ली जा सकती है। इसको घेर कर इसका एक बड़ा अहाता बना दिया गया और इसके भीतर कुटियाओं का निर्माण प्रारम्भ होगया। सर्वप्रथम औषधियों के लिए दान श्रीमती धर्मवतीजी ने ५०० रुपया दिया। बहिन धर्मवतीजी से पाठक सुपरिचित हैं। इन्होंने योगविषयक कई जिज्ञासाएं महाराजजी से की थीं और बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से अद्वैतवाद की पुष्टि की थी। इन्हीं धर्म बहिन के रुपये से औषधालय की स्थापना की गई थी।

यहां पर विजयादशमी करने के पश्चात् श्री महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। उत्तरकाशी में कुछ दिन तक निवास किया। इसके पश्चात् स्वर्गाश्रम पधार गए। दीवाली के पश्चात् चार मास के लिए साधना शिविर प्रारम्भ कर दिया। १५ नवम्बर से १५ मार्च तक का कार्यक्रम बनाया गया। इस अभ्यास प्रशिक्षण में कई नर-नारियों ने भाग लिया जिनमें इनके नाम विशेष उल्लेख के योग्य हैं :—सेठ तुलसीराम सपत्नीक, जयकिशन सपत्नीक, गुरुचरणदत्त सपत्नीक, योगेन्द्रपाल सपत्नीक तथा श्रीमती भाग्यवन्ती ध्यान तथा अभ्यास में सम्मिलित हुआ करते थे।

उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान—स्वर्गाश्रम का साधना शिविर समाप्त करके श्री महाराजजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। श्रीमती धर्मदेवीजी ने

महाराजजी के साथ ही उत्तरकाशी जाने के लिए प्रार्थना की क्योंकि ये भी वहां जाना चाहती थीं किन्तु कोई उपयुक्त साथ इन्हें नहीं मिल रहा था। इन्होंने स्वीकृति दे दी। धर्मदेवीजी के साथ अन्य भी कई महिलाएं थीं। नगूणा तक तो ये सब अकेली ही गईं किन्तु इसके आगे महाराजजी के साथ गईं। नगूणा आकर धर्मदेवीजी के कान में अत्यन्त पीड़ा होने लगी। महाराजजी ने एक औषध कान में डालने के लिए दी और सिर पर कपड़ा बंधवा दिया। इससे उन्हें शीघ्र आराम होगया। सारा मार्ग पैदल चलना था। देवियां धीरे-धीरे चल रहीं थीं अतः महाराजजी द्रुतगति से चल कर इनसे पूर्व ही उत्तरकाशी पहुंच गए। ये सब तो महाराजजी को पंजाबी क्षेत्र में आकर मिलीं। योगीराजजी उत्तरकाशी में १५ दिवस तक विराजे। इन दिनों धर्मवती तथा सावित्री को प्राणायाम, ध्यान और समाधि की विधि और लाभ बताए। ये दोनों ही अभ्यास किया करती थीं।

गंगोत्री प्रस्थान—१५ दिन के पश्चात् महाराजजी ने गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। एक महीने तक उत्तरकाशी में रह कर धर्मवतीजी भी निवासार्थ गंगोत्री पहुंच गईं। योग-निकेतन अभी बन ही रहा था अतः इसमें तो स्थानाभाव था। यहां पर उनके ठहरने के लिए कोई स्थान न था। स्वामी दयालमुनिजी ने इनके निवास की व्यवस्था भूमानन्द पण्डे के मकान पर कर दी। ये कभी-कभी महाराजजी के सत्संग में उपस्थित होती थीं। ये तीन मास तक यहां रहीं और इसके बाद भाद्रपद में वापिस उत्तरकाशी चली गईं। ये ५००रु० तो औषधियों के लिए पहिले दे ही चुकी थीं, अब १००० रु० और एक कुटिया के निर्माण के लिए प्रदान किया। महाराजजी स्वामी तपोवन के साथ योग तथा वेदान्त के विषय में बातचीत किया करते थे। भ्रमणार्थ दोनों इकट्ठे जाते थे। ५ महीने तक गंगोत्री में निवास करके विजयादशमी के पश्चात् श्री महाराजजी उत्तरकाशी पधारे और वहां पंजाबी क्षेत्र में निवास किया। इन्हीं दिनों ऋषिकेश के पंजाबी क्षेत्र के प्रबंधक लाला लक्ष्मणदासजी भी उत्तरकाशी आए हुए थे। इनका महाराजजी से बड़ा स्नेह था क्योंकि ये अमृतसर के निवासी थे। वहां नहर पर ये प्रायः महाराजजी से मिलने आया करते थे। ये दोनों साथ ही उत्तरकाशी से ऋषिकेश पधारे थे। महाराजजी ने स्वर्गाश्रम पधार कर साधना शिविर की तैयारी की और १५ नवम्बर से साधना प्रारम्भ करवा दी।

महात्मा आनन्दस्वामीजी की श्री महाराजजी के प्रति भक्ति—महात्मा खुशहालचन्द जी के नाम तथा कामों से सभी पाठक सुपरिचित हैं। इनमें नेतृत्व की भावना सहज थी। आर्यसमाज के प्रति इनकी महान् सेवाएं हैं। पाकिस्तान बनने के पश्चात् इनमें तीव्र वैराग्य की भावना का उदय हो आया था। इन्होंने लाहौर में तथा अन्यत्र भी १५ अगस्त के बाद का भीषण नरसंहार, अग्निकाण्ड, अत्याचार, सतियों के सतीत्व का अपहरण, लाखों सुहागिनों के सुहाग के चिन्हों का हरण, लाखों विधवाओं का करुण क्रन्दन, करोड़ों मनुष्यों की सम्पत्ति का नाश, गगनचुम्बी कोठियों, बंगलों और प्रासादों का विनाश और सभ्यता तथा संस्कृति के चिन्हों के ह्रास का नग्न नृत्य अपनी आंखों से देखा था। यह इनके वैराग्य का मुख्य कारण था। इनके ६ पुत्र तथा २ पुत्रियां हैं। ये हिन्दी तथा उर्दू मिलाप के प्रधान संपादक थे। प्रेस इनका अपना था। सुख के सभी साधन, धन-सम्पत्ति, समृद्धि, ऐश्वर्य सभी के

ये स्वामी थे। संसार की अनित्यता को देखकर इन्होंने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। वैसे वह वर्षों से गृहस्थी होकर भी वानप्रस्थियों के समान जीवन व्यतीत कर रहे थे। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। अपना सब कार्य अपने सुयोग्य पुत्रों को सौंप दिया था। अपने परिवार को सूचित किए बिना ही इन्होंने यमुनानगर में जाकर स्वामी आत्मानन्दजी से संन्यास ले लिया। संन्यास ग्रहण के समय इनकी पत्नी तथा पुत्रों और पुत्रियों को इस बात का पता लगा। संस्कार की समाप्ति के पूर्व सारा परिवार यमुनानगर पहुंच गया था। इनकी धर्मपत्नी मेलादेवी बड़ी दुःखी हुईं। ये इसी क्षण से अपने को अनाथ असहाय समझकर रुदन करने लगीं। पहले लाहौर में सब धन तथा सम्पत्ति लुट गई थी। बड़ी कठिनाई से प्राण बचाकर परिवार वहां से भागा। जैसे-तैसे फिर से सारा कारोबार देहली में प्रारम्भ किया। शांति तथा सुख से जीवन व्यतीत होने लगा तो इनके पतिदेव ने संन्यास ले लिया। ये सर्वाधिक चिन्तित रहती थीं। इसी समय श्रीमती भाग्यवन्तीजी इनके पास आईं और कहा, "आप मेरे साथ पूज्यपाद ब्रह्मचारी व्यासदेवजी के पास चलो। आजकल उनका योगसाधना शिविर लगा हुआ है। वहां जाकर आपको अवश्य शांति लाभ होगी और सब चिन्ताएं दूर हो जाएंगी।" भाग्यवन्तीजी माता मेलादेवी को लेकर स्वर्गाश्रम पहुंच गईं। महाराजजी ने इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। विविध प्रकार से समझाकर इनको सान्त्वना दी और धीरज बंधाया। इनके खान-पानादि की व्यवस्था अपने पास कर दी। इनके निवास के लिए एक कमरा अपनी कोठी में ही दे दिया और उनकी सेवा के लिए एक नौकर तैनात कर दिया। इन्हें बड़े स्नेह तथा वात्सल्य से अभ्यास करवाना प्रारम्भ कर दिया। नित्यप्रति नाना प्रकार के वैराग्यजनक उपदेश इन्हें दिया करते थे। एक सप्ताह के भीतर ही माताजी की स्थिति अभ्यास में ऐसी होगई जैसी कई-कई वर्ष के अभ्यासियों की भी नहीं हुई थी। ब्रह्मरंध्र में दिव्य प्रकाश उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थों के दर्शन करवाने लग गया था। लगभग दो-तीन घंटे का आसन स्थिर होगया था। थोड़े ही दिनों में ये सर्व चिन्ताओं से मुक्त हो गईं और अपने को स्वस्थ और प्रसन्न-सी अनुभव करने लगीं। अभ्यासकाल में इन्हें विशेष आनन्द की अनुभूति होनी प्रारम्भ होगई थी। महाराजजी की विशेष दयादृष्टि का ही यह परिणाम था। माताजी स्वस्थ होगईं। इनके सब रोग तथा शोक दूर होगए। अब पतिदेव के संन्यास लेने का सब दुःख और सन्ताप जाता रहा। इनकी इस अभूतपूर्व आध्यात्मिक स्थिति को देखकर सभी अभ्यासी आश्चर्यचकित होकर दान्तों तले अंगुली दबाते थे। एक मास के पश्चात् माताजी ने अपने पुत्रों-पुत्रियों तथा पुत्रवधुओं को सूचित किया कि "मुझे इस सुख-धाम में पहुंचकर एक विशेष आनन्द का अनुभव हुआ है। ऐसा आनन्द आज तक कभी अनुभव नहीं हुआ। इस अलौकिक आनन्द का वर्णन लेखनी से नहीं किया जा सकता। मुझे एक अद्वितीय दिव्यशक्ति लाभ हुई है जिससे मेरे अंदर के कपाट खुल गए हैं और मुझे अलौकिक शांति प्राप्त होगई है।" इनके पत्रों को पढ़कर इनका अपना परिवार तथा दूर और समीप के सभी सम्बन्धी स्वर्गाश्रम में आए और सबने अभ्यास की कक्षाओं में बैठकर अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। इनके पुत्र रणवीर और पुत्रवधू शीला, ओमप्रकाश और इनकी पत्नी शान्ता, इनके दामाद नारायणदास और पुत्री सावित्री आदि सभी योगसाधना में प्रवृत्त होगए। सबने अच्छी प्रगति की और सुखलाभ

किया। माताजी ने अपने पतिदेव को, जिन्होंने कुछ मास पूर्व ही संन्यास धारण करके अपना नाम महात्मा आनन्दस्वामी रख लिया था, एक पत्र लिखा। वे उस समय देहरादून में तपोवन में मौनव्रत धारण करके तप और साधना में लगे हुए थे। यह पत्र वहीं पर उनके पास भेजा गया था। पत्र निम्न प्रकार से लिखा गया था :—

पूज्यपाद श्री १०८ प्रातःस्मरणीय स्वामीजी महाराज,

सादर चरण स्पर्श !

कुछ मास हुए, आप मुझे सान्द्रान्धकार में धकेल और मुझे असहाय बनाकर चले गए थे। जिस श्रेय-मार्ग का अवलम्बन आपने स्वयं किया था उसी पर आपको मुझे भी अपने साथ ले चलना चाहिए था। मेरा कल्याण भी उसी मार्ग की पथिक बनने में था। परन्तु मुझे खेद है कि आपने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया और मुझे प्रेय-मार्ग के अन्धकूप में फेंककर और गृह-त्याग कर संन्यास धारण करने चले गए। आपके प्रस्थान के पश्चात् मुझे यह निश्चय हुआ कि संसार अनित्य है, सारे सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण हैं, कोई अपना नहीं है, इसलिए इस संसार से नेह करना आत्मवंचना है। भक्तवत्सल भगवान पतितपावन हैं, पापियों के परित्राता हैं, असहायों के सहाय, निराश्रितों के आश्रय, निर्धनों के धन तथा अनाथों के नाथ हैं। उसी सर्वशक्तिमान की कृपा से मुझे दिव्यालोक प्राप्त हुआ है। इसको प्राप्त करके मैं अंधकार के गर्त से बाहर निकल आई हूं। अब मैं पूर्ण प्रकाश में हूं, आनन्द और शान्ति का अनुभव कर रही हूं। आपके संन्यास लेकर मुझे छोड़कर चले जाने पर मुझे महान् दुःख हुआ था। आपके चले जाने के बाद मुझे चहुं ओर अंधकार ही अंधकार दृष्टिगोचर होता था। मुझे अपना भविष्य अनिश्चयात्मक मालूम होता था और अंधकार के गर्भ में प्रविष्ट हुआ सा प्रतीत हो रहा था। जिस मेरे जीवनसाथी ने विवाह के अवसर पर अनेक प्रतिज्ञाएं की थीं और जिनकी अर्धांगिनी बनकर मैंने सांसारिक दुःख तथा सुख का उपभोग किया था वे अलौकिक सुख और शान्ति की खोज में मुझे छोड़कर चले गए। जिस अमूल्य वस्तु की खोज में आप अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रियों का परित्याग करके, लौकिक ऐश्वर्य को लात मारकर चले गए हैं, वह अलौकिक विभूति, वह परम शान्ति तथा वह अद्वितीय आनन्द महानात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी पूज्य व्यासदेवजी महाराज की शिष्या बनकर प्राप्त हुआ है। वह शान्ति तथा आनन्द वर्णनातीत है। न वाणी उसे कह सकती है और न लेखनी लिख सकती है। इनका सत्संग होने के बाद से आपके गृह-त्याग और संन्यास धारण करने का दुःख तथा शोक जाता रहा। अब मुझे इसमें हर्ष हो रहा है। अब मेरी सब आतुरता, व्याकुलता तथा परेशानी जाती रही है। मैं अब पूर्ण शान्ति का अनुभव कर रही हूं। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भी यहां आएं और श्री महाराजजी से इस अलौकिक दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण सुख, शान्ति और आनन्द का अनुभव करें। आपके श्रेय पथ में यह दिव्यालोक सहायक होगा और आपको आत्म-ज्ञान लाभ होगा। इसे प्राप्त करके आप कृतकृत्य हो जाएंगे। यह दिव्य ज्ञान जन्म-जन्मान्तरों के आवागमन और सर्व दुःख निवृत्ति का साधन होगा। आप मेरे जीवनसाथी थे और आपने मुझ पर अनेक उपकार किए हैं, उन सबका स्मरण करके मैं आपको सच्चे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के पथ पर चलने की प्रेरणा करती हूं। आप अपने अमूल्य जीवन को सार्थक

बनाने के लिए पूज्य महाराजजी के चरणों में उपस्थित हों। यहां आकर आपके उद्देश्य की पूर्ति होगी और आपका मानवजीवन सफल हो जाएगा।

आपकी चरणसेविका
मेला देवी

इस पत्र को पढ़ते ही श्री आनन्दस्वामी सरस्वती जी महाराज की आत्मविज्ञान की जिज्ञासा अत्यन्त प्रबल हो उठी। श्री महाराजजी का ४ मास का योगाभ्यास का शिविर समाप्त हो चुका था। श्री आनन्दस्वामीजी महाराज स्वर्गाश्रम श्री महाराजजी के दर्शनार्थ आए। योगीराजजी ने उन्हें गंगोत्री पधारने का आदेश दिया। आनन्दस्वामी-जी उस समय तो दर्शन करके चले गए और निश्चित तिथि पर ऋषिकेश पहुंच गए। महाराजजी स्वामीजी को तथा अपने सेवक को साथ लेकर गंगोत्री के लिए रवाना हुए। टिहरी तक तो बस में गए। इसके पश्चात् सारी यात्रा पैदल करनी थी। तीन दिन में उत्तरकाशी पहुंच गए। यहां पर ८-१० दिन तक पंजाबी क्षेत्र में निवास किया। तत्पश्चात् उत्तरकाशी से मज़दूर साथ लेकर ४ दिन में गंगोत्री पहुंच गए। तीन-चार दिन में मार्ग की थकान दूर होगई। महात्मा आनन्दस्वामी को महा-राजजी ने स्थानीय सब महात्माओं के दर्शन करवाए। स्वामीजी महाराज बहुत वर्षों से साधना कर रहे थे। शम, दम, तितिक्षा तथा उपरति रूप साधन-चतुष्टय-सम्पन्न थे। कई वर्षों से यम और नियमों का अक्षरशः पालन कर रहे थे। आसन भी ३-४ घण्टे का सिद्ध हो चुका था। बहुत पुराने अभ्यासी थे। इन्होंने केवल ८ दिन में ही आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया। श्री महाराजजी का मनोबल भी इन दिनों बहुत वृद्धि पर था और स्वामीजी के प्रति इनका अत्यन्त वात्सल्य भाव था। स्वामीजी आर्य-समाज के बड़े स्तम्भों में से हैं, अतः महाराजजी ने बड़े परिश्रम से इन्हें शीघ्र ही आत्मज्ञान करवा दिया। योगीराजजी को यह विश्वास था कि यदि इन्हें आत्मज्ञान करवा दिया जाएगा तो इनके द्वारा लाखों का उपकार और कल्याण होगा क्योंकि ये उपदेष्टा और परिव्राजक हैं।

श्री आनन्दस्वामीजी को आत्मसाक्षात्कार

श्री स्वामीजी महाराज योगीराजजी के प्रथम शिष्य हैं जिनको इन्होंने अपनी सारी आत्मशक्ति लगाकर शीघ्रातिशीघ्र आत्मविज्ञान प्राप्त करवाया और आत्म-साक्षात्कार करवाया। इनको प्रातःकाल आठ बजे उपस्थित होने का आदेश दिया गया था। इसी के अनुसार नियत समय पर ये उपस्थित होगए। योगीराजजी ने इन्हें सिद्धासन लगा कर दो घण्टे तक बैठने के लिए आज्ञा की। त्राटक करवाया और फिर अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् नेत्र बन्द करके ब्रह्मरंध्र में ध्यान को ले जाने का आदेश दिया और समझाया कि "ब्रह्मरंध्र में ध्यान करने से एक महती दिव्य ज्योति प्रकट होगी इसको देखकर घबराने तथा भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। इस दिव्य ज्योति को स्थिर करने का प्रयत्न करना। इस पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश करना और फिर इसे मूलाधार की ओर फेंकना। इस दिव्य ज्योति का रंग विद्युत के समान होगा। इसके संयोग से मूलाधार में रक्तवर्ण अथवा पीतवर्ण अथवा श्वेतवर्ण की एक और विशेष ज्योति प्रकट होगी जो भीतर से आपके सारे शरीर को

प्रकाशित कर देगी। इसके द्वारा आप अपने सारे स्थूल शरीर को अन्दर से देख सकेंगे। जिस प्रकार से डाक्टर शरीर को चीर-फाड़कर भीतर से नस, नाड़ी, अस्थि, मज्जा आदि को देख लेता है उसी प्रकार से आप इस ज्योति के द्वारा सब कुछ स्थूल शरीर में देख सकेंगे। शरीर के भीतर आपको सब चीजें प्रत्यक्ष दिखाई देंगी और आपको उस शरीर का वास्तविक ज्ञान हो जाएगा जिससे मनुष्य का भारी ममत्व होता है।" स्वामीजी ने जब त्राटक के पश्चात् ब्रह्मरंध्र में प्रवेश किया तब महती दिव्य ज्योति प्रकट हुई। इस दिव्य ज्योति का स्वामीजी को प्रबल धक्का लगा और वे २-३ फीट ऊंचे उठकर भूमि पर गिर गए। ऊंचे उठते समय तथा नीचे गिरते समय इनका आसन यथावत् बंधा हुआ था। चोट तो किसी प्रकार की नहीं लगी किन्तु आंखें खुल गईं। महाराजजी ने पूछा, "क्या हुआ ?" स्वामीजी ने कहा, "आपकी ओर से एक दिव्य ज्योति ने मेरे अन्दर प्रवेश किया। उसमें बड़ी शक्ति और बल था। उसे मैं सहन न कर सका अतः उसने मुझे उठाकर फेंक दिया। मुझे चोट बिलकुल नहीं लगी और मेरा शरीर मुझे बहुत हलका प्रतीत हो रहा है।" महाराजजी ने आज्ञा दी, "सावधान होकर बैठो। इस बार थोड़ी शक्ति का प्रयोग किया जाएगा।" श्री आनन्द स्वामीजी पूर्ववत् स्थिर होकर बैठ गए। सर्वप्रथम ब्रह्मरंध्र में मन्द-मन्द ज्योति प्रकट हुई और शनैः-शनैः तेज होती गई। इसे मूलाधार में प्रवेश करके सारे शरीर का साक्षात्कार किया। दूसरे दिन के अभ्यास में सारे चक्रों का प्रत्यक्षीकरण हुआ। तीसरे दिन के अभ्यास में प्राणविज्ञान, इसकी गति, विधि, व्यापार और १० स्थानों में इसके कार्य, रंग, रूप इत्यादि को प्रत्यक्षरूपेण देखा। चौथे दिन के अभ्यास से ब्रह्मरंध्र की दिव्य ज्योतियों और सूक्ष्म शरीर में मनोमय कोष का साक्षात्कार किया। पांचवें दिन सूक्ष्म भूतों (पंच तन्मात्राओं) और स्थूल भूतों का प्रत्यक्ष किया। इनके सब कार्य-कारणों और व्यापारों को देखा। छठे दिन ब्रह्मरंध्र में विज्ञानमय कोष का प्रत्यक्ष विज्ञान और इसका मनोमय कोष से प्रत्यक्षीकरण, और ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों के कारण तथा कार्य को प्रत्यक्ष रूप से देखा। सातवें दिन आनन्दमय कोष में प्रवेश करके सूक्ष्म प्राण, अहंकार और चित्त के कार्यों का तथा स्वरूपों का साक्षात्कार किया। आठवें दिन कारणरूप प्रकृति और चित्त में आत्मा के स्वरूप को दिखाया गया और अपने स्वरूप में स्थिति करवाकर कई घण्टे की समाधि में स्थिर किया। कई घण्टे की समाधि से उठने के पश्चात् श्री स्वामीजी ने महाराजजी के चरणारविन्दों को स्पर्श करके कहा, "महाराजजी ! आपकी अपार कृपा से आज मैं कृतकृत्य होगया। आपने जन्म-जन्मान्तरों की मेरी अध्यात्मपिपासा को शान्त कर दिया। आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। आज मैंने इस मानवजीवन को सफल समझा है। जिस उद्देश्य से गृह-त्याग करके संन्यास धारण किया था वह आज प्राप्त हुआ है। वास्तव में मुझे आज ही यह बात समझ में आई है कि मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है। मैं कब से इस स्वरूप-स्थिति के लिए भटक रहा था। आज आत्मदर्शन पाकर इधर-उधर भटकना शान्त होगया। आप कृपा करके इतना आशीर्वाद मुझे और दीजिए कि यह विज्ञान स्थायी हो जाए।" महाराजजी ने कहा, "कुछ काल के अभ्यास के पश्चात् यह दृढ़भूमि हो जाएगा। अब परमवैराग्य अवशेष है जो आपको स्वयं करना होगा। अभी आपको आधा विज्ञान ही प्रदान किया गया है। अभी आप इतने के ही अधिकारी हैं। जब आपका यह विज्ञान दृढ़भूमि हो जाएगा तब आपको ब्रह्म-विज्ञान प्रदान किया

जाएगा। जब यह विज्ञान दृढ़भूमि हो जाए तब इसे उचित अधिकारी को ही प्रदान करना, किसी अन्य को नहीं।" इस पर स्वामीजी ने निवेदन किया, "महाराजजी! आपको तो आपके पूज्य गुरुदेवजी ने केवल १७ घण्टे की समाधि में ही दोनों विज्ञान प्रदान कर दिए थे।" महाराजजी ने कहा, "हमारे और आपके जीवन में बहुत अन्तर है। हम बालब्रह्मचारी हैं और सारा जीवन इसी योग-साधना में लगाया है। हमारे कई पूर्वजन्मों का यह प्रयत्न है। इस जीवन में भी बहुत तप, त्याग, वैराग्यपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करके अनेक साधनाएं की हैं। आपने अपनी शक्तियों का गृहस्थाश्रम में व्यय कर दिया है। इसलिए आपकी और हमारी तुलना नहीं हो सकती। आपको भी आठ दिन में १९ घन्टे में साधना करवाकर स्वरूप का साक्षात्कार करवाया गया है। ब्रह्मविज्ञान इसके दृढ़भूमि होने पर जब अवसर आएगा और आप अधिकारी बन जाएंगे तब प्रदान किया जाएगा।" स्वामीजी महाराज ५ मास तक गंगोत्री ठहरे और प्राप्त आत्मविज्ञान को दृढ़भूमि करते रहे। स्वामीजी ने गुरुदीक्षा प्राप्त करने के उपलक्ष्य में पांच सौ रुपया महाराजजी को भेंट करना चाहा किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इन्होंने किसी साधु या संन्यासी से भेंट न लेने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। जिस समय दोनों में इस प्रकार का विवाद चल रहा था उसी समय स्वामी दयालमुनिजी वहां आगए और कहा कि इस विवाद को मिटाने के लिए यह ५०० रु० मुझे दे दिया जाए जिससे योग-निकेतन में स्वामीजी के लिए एक कुटिया बना दी जाएगी। दोनों इस बात पर सहमत होगए। थोड़े ही दिनों में यह कुटिया बनकर तैयार हो गई। उस पर स्वामीजी महाराज का नाम लिखा गया और वह आनन्द कुटी के नाम से प्रसिद्ध है।

१९५१ में तपोवन में साधना-शिविर

अक्तूबर मास में महाराजजी और स्वामीजी ने उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया और वहां पर पंजाबी क्षेत्र में ठहरे। स्वामीजी महाराज ने योगीराजजी से निवेदन किया, "आप इस बार दो मास के लिए साधना-शिविर देहरादून स्थित तपोवन में लगाने की कृपा करें।" महाराजजी ने दिसम्बर तथा जनवरी मास में तपोवन में साधना-शिविर लगाने की स्वीकृति दे दी। आनन्दस्वामीजी महाराज ने तपोवन पधार कर साधना-शिविर की सारी व्यवस्था कर दी और सब पत्रों में इस विषय की सूचना निकलवा दी और सर्वत्र घोषणा करवा दी। श्री महाराजजी नवम्बर के अन्त में देहरादून पधार गए। यहां पर बाबू दौलतरामजी के पास २-४ दिन ठहरकर तपोवन पधारे।

श्री आनन्दस्वामीजी ने गंगोत्री से कई लेख पत्रों तथा पत्रिकाओं में लिखकर भेजे थे। इनमें गंगोत्री तथा यहां के सन्तों की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। महाराजजी से विज्ञान प्राप्ति के विषय में भी कई लेख आपने प्रकाशित करवाए थे। इससे लोगों में योग और आत्म-विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई। इसलिए तपोवन में योगाभ्यास के लिए सैंकड़ों की संख्या में लोग आए। यहां पर साधकों के निवास तथा भोजन की व्यवस्था बहुत अच्छे ढंग पर की गई थी। श्रीमती धर्मदेवी तथा श्रीमती भाग्यवन्ती तपोवन में दर्शनार्थ आईं और निवेदन किया, "महाराजजी! आनन्द स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में कहा था, 'महाराजजी ने मुझे तो कृतकृत्य कर दिया

है। मेरा कल्याण होगया है। मैं उनका बड़ा ऋणी हूं। उन्होंने आत्म-विज्ञान प्रदान करके मुझपर महान उपकार किया है।' आपने हर की पौड़ी पर वचन दिया था कि आपकी समाधि लगवाकर आपको आत्म-विज्ञान करवा देंगे, पर अभी तक आपने कृपा नहीं की।" महाराजजी ने फरमाया, "स्वर्गाश्रम में दो मास का साधना-शिविर लगेगा। वहां पर आपकी इच्छा की पूर्ति की जाएगी।" तपोवन में योग प्रशिक्षण के सम्बन्ध में प्रातः ४ बजे से ही कक्षाएं प्रारंभ होती थीं। पहली कक्षा दो घण्टे तक लगती थी। इसके पश्चात् ढाई घण्टे की कक्षा और फिर एक-दो घण्टे की कक्षा लगती थी। इस प्रकार से प्रातः चार से साढ़े दस बजे तक योग प्रशिक्षण कार्य होता था। भिन्न-भिन्न अध्यात्म स्तर के लोगों के लिए अलग-अलग कक्षाएं लगाई जाती थीं। भारतवर्ष के योग सम्बन्धी साहित्य में कहीं पर भी इस प्रकार से योग सिखाने की पद्धति का उल्लेख नहीं है। यह नवीन प्रणाली है। यह महाराजजी के अपने ही दिमाग़ की सूझ है। नया आविष्कार है। नवीन अनुसंधान है। इस पद्धति से आध्यात्मिक पथ के पथिकों को महान लाभ हुआ है। जो अभ्यासी और साधक जिस स्तर पर होता था उसे उसी स्तर के साधकों के साथ बैठकर साधना करनी होती थी। साधनाभ्यास के कई वर्ग बने हुए थे। जो जिस वर्ग के योग्य होता था उसे उसी वर्ग के साथ योग की शिक्षा दी जाती थी। तपोवन में बहुत से साधक ठहरे हुए थे। देहरादून से भी प्रतिदिन अभ्यासार्थी आते थे। प्रति रविवार को सायंकाल महाराजजी का दो घण्टे तक व्याख्यान होता था। हजारों नर-नारी इस उपदेशामृत का पान करने के लिए दूर-दूर से आते थे। एक दिन एक विद्वान् डाक्टर ने महाराजजी से पूछा, "क्या आप अपने श्रोताओं को मैस्मराईज़ कर देते हैं? लोग नितान्त शान्त होकर आपके उपदेशों का श्रवण करते हैं। उनके सांस लेने तक की भी आवाज़ सुनाई नहीं देती।" महाराजजी ने कहा, "मैं तो मैस्मरिज़्म जानता नहीं। हां, मेरे योगबल से प्रभावित होते हों तो यह दूसरी बात है।" इन दिनों महाराजजी के भाषण प्रायः अष्टाङ्ग योग पर हुआ करते थे।

रायसाहिब विश्वेश्वरनाथदत्तजी को आरोग्य-दान—देहरादून से श्रीमती शीलादेवीजी दर्शनार्थ आईं। इन्होंने महाराजजी के योग तथा मानसिक शक्ति के विषय में बड़ी प्रसिद्धि सुनी थी। नगर में सभी लोग इनके भाषणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। इससे प्रभावित होकर इन्होंने महाराजजी से प्रार्थना की, "महाराजजी! मेरे पतिदेव आपके दर्शनार्थ आना चाहते हैं।" महाराजजी ने कहा, "पूछने की क्या आवश्यकता है? वे जब चाहें आ सकते हैं।" इस पर शीलादेवी ने कहा, "यहां आने में चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। वे बड़े शक्तिहीन होगए हैं। चिरकाल से बीमार हैं। घोड़े पर भी उनकी चढ़ने की हिम्मत नहीं होती, वरना घोड़े पर ही आ जाते।" महाराजजी ने बाबा गुरमुखसिंहजी से कहकर डाण्डी का प्रबंध करवा दिया। शीलादेवी के पति का नाम विश्वेश्वरनाथदत्त था। भारत सरकार में नौकरी करते थे। १६००रु० वेतन पाते थे। राज्य-सेवा से निवृत्त होकर बीमार रहने लग गए थे। अत्यन्त दुर्बल होगए थे। अनेक उपचार करवाए किन्तु किसी से भी लाभ नहीं हुआ। महाराजजी की प्रशंसा सुनी थी कि वे बड़े सिद्ध पुरुष हैं, हिमालय के योगी हैं। गंगोत्री से आए हैं। इनके आशीर्वाद से ही भयंकर रोगों के रोगी भी ठीक हो जाते हैं। इसलिए इनके मन में भी इनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा हुई। इसी भावना से महाराजजी के

दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होगई। महाराजजी ने डाण्डी भेजकर दत्तजी को बुलवा लिया। इन्होंने आकर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "मैं आपकी योग-साधना की कक्षा में प्रवेश पाना चाहता हूं।" वास्तव में इनकी इच्छा आरोग्य लाभ करने की थी। योग-साधना को तो केवल निमित्त बनाना चाहते थे। इससे एक पन्थ दो काज हो जाते थे, अर्थात् योग-साधना भी करते और आरोग्यता का भी लाभ हो जाता। महाराजजी ने आज्ञा प्रदान कर दी और बाबा गुरमुखसिंह से डाण्डी के लिए चार आदमियों का भी प्रबंध करवा दिया। कोमलता, दयालुता और सहानुभूति साधु-महात्माओं के सहज गुण होते हैं, इसलिए दत्तजी को महाराजजी ने बड़े स्नेह, प्यार तथा वात्सल्यभाव से अपनाया। धीरे-धीरे दत्तजी की योगसाधना में अच्छी प्रगति होने लगी और स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। शरीर में शक्ति आने लगी। पांच-सात दिन बाद उन्होंने महाराजजी से निवेदन किया कि अब उन्हें पालकी की आवश्यकता नहीं क्योंकि अब वे घोड़े पर सवार होकर आने में सक्षम होगए थे। थोड़े दिनों में ये पैदल आने में भी समर्थ होगए। यह सब महाराजजी की कृपा का परिणाम था। इन्होंने अपने योग-बल से इनमें शक्ति का संचार किया और इन्हें नीरोग कर दिया। शारीरिक उन्नति के साथ-साथ साधना में भी उन्नति हुई। अब अभ्यास में इनकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर शरीर और चक्र विज्ञान और प्राण विज्ञान होगया था। महाराजजी के प्रति वे सदैव अपनी कृतज्ञता प्रकट करते थे और इनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति होगई थी। वे इस बात को खूब समझते थे कि महाराजजी की कृपा से ही वे स्वस्थ हुए हैं और इन्होंने ही जीवन-दान दिया है, अतः इन्हींके चरणों में रह कर शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया।

ब्रह्मचारी जगन्नाथजी का आगमन—इन्हीं दिनों में ब्रह्मचारी जगन्नाथजी कई वर्षों के पश्चात् पुनः साधना में आए और दो मास यहां साधना की। इन्होंने ब्रह्मरंध्र विज्ञान में विशेष सफलता लाभ की और महाराजजी के चरणों में रह कर ही अपना कल्याण समझा। अपना यह निश्चय करके महाराजजी के प्रत्येक चार मास के शिविर में आना प्रारम्भ कर दिया और कई वर्ष की कठिन साधना के पश्चात् आत्मविज्ञान में विशेष सफलता प्राप्त की।

कैप्टेन जगन्नाथजी का आगमन--कैप्टेन श्री जगन्नाथजी सेवा से निवृत्त होकर सीधे तपोवन के शिविर में पहुंचे और महाराजजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, "मेरी धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया है। पुत्र और पुत्रियों के विवाह कर दिए हैं। सब अपने-अपने स्थान पर सुखी हैं, इसलिए परिवार का मुझे कोई बंधन नहीं है। मुझे पेन्शन मिलती है इसलिए निर्वाह की भी कोई चिन्ता नहीं है। आपके दर्शन कर मैं अपने को बड़ा गौरवान्वित समझता हूं। अब मैं आपके श्रीचरणों में निवास करके योग द्वारा आत्मविज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। मैं कई वर्षों से किसी योग्य और विद्वान् योगी की तलाश में था। आज आप जैसे महान् योगी संसार में दुर्लभ हैं। मेरे किसी पुण्यकर्म के विपाक से आज आपके दर्शन हुए हैं। मैं अब आपके श्रीचरणों में अपने को समर्पित करता हूं और इसी में अपना कल्याण समझता हूं।" श्री महाराजजी ने इन्हें आज्ञा प्रदान की। इन्होंने भी कई वर्ष की कठिन साधना के उपरान्त आत्म-विज्ञान लाभ किया।

तपःपूत महात्मा प्रभु आश्रितजी का आगमन—इसी अवसर पर महात्मा प्रभु आश्रितजी (भूतपूर्व महात्मा टेकचन्दजी) तपोवन आए। इन्होंने महाराजजी के दर्शन स्वर्गाश्रम में किए थे। ये बड़े अच्छे लेखक हैं और कई ग्रंथों के लेखक हैं। सिंध, पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में यज्ञ तथा गायत्री जाप के विशेष प्रचार तथा उपदेश द्वारा जनता का बड़ा कल्याण किया है। गृहस्थाश्रम के पश्चात् कई वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम में रहे। अनेक बार मौन तथा अन्य कठिन साधनाओं द्वारा अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं। इनकी वाणी और व्यक्तित्व में विशेष आकर्षण था, इसलिए इनके हज़ारों शिष्य तथा शिष्याएं थीं। हज़ारों साधक और साधिकाएं इनके पास भक्ति का सन्देश तथा उपदेश लेने आते थे। कुछ वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम में रह कर इन्होंने आर्य जाति की सेवा और प्रचार का बहुत काम किया। यज्ञमय जीवन का संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाने के लिए इन्होंने कई ऐसे योग्य शिष्य तैयार किए जिन्होंने अपना सारा जीवन इस महान् कार्य में लगाने का निश्चय किया है। जब इनकी वैराग्य भावना ने उत्कट रूप धारण कर लिया तब इन्होंने संन्यास धारण किया और अपना नाम प्रभु आश्रित रख कर अपना शेष संपूर्ण जीवन सर्वशक्तिमान परमात्मा के अर्पण कर दिया। इन्होंने भी साष्टांग दण्डवत करके महाराजजी से योग-साधना की स्वीकृति मांगी। योगीराजजी इनकी भक्ति और तप तथा प्रचार कार्य से बड़े प्रसन्न थे अतः तुरन्त इनको स्वीकृति दे दी। इन्होंने तीन वर्ष तक साधना-शिविरों में महाराजजी के पास योग-साधन द्वारा आत्म-विज्ञान प्राप्त किया और इस प्राप्ति से अपने को कृतकृत्य समझा। महाराजजी के सब शिष्यों में अत्यन्त विनम्र हैं। इनकी ईश्वर और गुरु में अनन्य भक्ति है। जब आते हैं तभी महाराजजी के श्रीचरणों में ही बैठते हैं, कभी उच्चासन पर नहीं बैठते। दिन हो अथवा रात, जब भी अपने गुरुदेव के पास आते हैं जूते बहुत दूर खोल कर दण्डवत करके विनयावनत होकर खड़े रहते हैं, आज्ञा मिलने पर नीचे बैठ जाते हैं। रात्रि को प्रणाम और दर्शन के बिना कभी नहीं सोते। जब कभी महाराजजी के पास रहने का अवसर आता तो नित्यप्रति रात्रि को इनके चरण दबाने के लिए आते। महाराजजी के बार-बार निषेध करने पर भी अपने इस कर्त्तव्य से च्युत नहीं होते थे। एक बार ये योगीराजजी के पास उत्तरकाशी में निवास कर रहे थे। ये आयु में इनसे बड़े हैं किन्तु इनके सामने सदैव अपने को बालक ही समझते हैं। वहां पर नित्य ही रात्रि में अपने गुरुदेव के चरण दबाने के लिए जाते थे। एक दिन महाराजजी ने इनसे कहा, "देखो! आप मेरी बात मानो, आप मेरे पैर दबाने का कष्ट मत किया करो। मैं बहुत बूढ़ा नहीं हूं, कमजोर भी नहीं हूं। आयु में आपसे छोटा हूं। किसी प्रकार की थकावट भी मुझे नहीं होती। अतः आप यह कष्ट मत किया करो।" इसी विचार से महाराजजी ने अपना द्वार ९ बजे से पूर्व ही बन्द कर दिया। जब महात्माजी नित्यप्रति की भांति महाराजजी के चरण दबाने आए तो दरवाज़ा बन्द देखकर वहीं खड़े होगए। नौकर ने कहा, "महाराजजी आपको चरण दबाने का कष्ट नहीं देना चाहते, इसीलिए आज दरवाजा जल्दी बन्द कर दिया है।" यह सुनकर महात्माजी को बड़ा दुःख हुआ और महाराजजी के किवाड़ों की चौखट को ही गुरुदेव के चरणकमल समझकर पूरा एक घण्टा तक दबाते रहे। प्रातःकाल योगीराजजी के सेवक विजय ने महात्माजी का सब समाचार इन्हें निवेदन किया। जब ये महाराजजी को प्रातः नमस्कार करने

आए तब इन्होंने पूछा, "आप गत रात्रि एक घण्टा तक दरवाज़े को ही दबाते रहे।" महात्माजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया, "आपने इन श्रीचरणों की सेवा से मुझे वंचित कर दिया था अतः मैं आपके चरणों की भावना रखकर दरवाज़े को ही दबाता रहा।" महाराजजी ने इनके सामने अपनी पराजय स्वीकार की और वे जो चाहते थे उन्हें करने दिया। महात्माजी के शिष्य भी इनकी गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति तथा सेवाभाव को देख कर बड़े विनम्र होगए थे और गुरु के प्रति अटल भक्ति रखते थे।

ठाकुरदत्तजी वैद्य का सपत्नीक शिविरागमन––श्री ठाकुरदत्त वैद्य तथा इनकी धर्मपत्नी तपोवन के साधना-शिविर में नित्य आते थे और सारे कार्यक्रम में भाग लेते थे। इन दोनों ने इस शिविर से बहुत लाभ उठाया। इनकी पत्नी श्रीमती पूर्णा देवी बड़ी श्रद्धालु, भक्ति और निष्ठा युक्त देवी थीं। इनकी अभ्यास में बड़ी ऊंची स्थिति होगई थी। इनको नाना प्रकार के चमत्कारों का अनुभव होने लगा था और बहुत देर तक इनकी समाधि लग जाया करती थी। महाराजजी इन वैद्यजी की कोठी पर प्रायः ठहरा करते थे।

सेठ झब्बालालजी सर्राफ की अनन्य भक्ति––देहरादून के सेठ झब्बालालजी सर्राफ महाराजजी के अनन्य भक्त बन गए थे। कई वर्ष तक इन्होंने साधना-शिविरों में अभ्यास करके बहुत ऊंची अवस्था प्राप्त कर ली थी। महाराजजी के पास उत्तर-काशी तथा गंगोत्री जाकर भी साधना करते रहे थे।

अन्यान्य भक्त––चौधरी जयरामसिंह और इनका सब परिवार दो वर्ष तक महाराजजी के साधना-शिविर में तपोवन में आते रहे। बड़ी लगन के साथ अभ्यास करके अच्छी प्रगति कर ली थी।

बलदेवमित्र बहल और इनकी पत्नी सुमित्रा भी महाराजजी के योग-शिविर में कई वर्ष तक साधना करते रहे। उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त देहरादून के प्रायः सभी गण्य-मान्य और प्रतिष्ठित महानुभाव साधना-शिविरों से लाभ उठाते रहे।

बाबा गुरमुखसिंहजी की भक्ति––बाबा गुरमुखसिंहजी की दानप्रियता अनुकरणीय है। आपने ही लाखों रुपया लगाकर तपोवन का निर्माण किया था। इनकी महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। गायत्री को वे अपना प्राण समझते थे। नित्यप्रति इस महामंत्र का जाप करते थे और ध्यान किया करते थे। अभ्यासकाल में इन्हें अनेक सिद्धों के दर्शन होते थे और ये प्रायः उनके भाषण सुना करते थे।

शिविर समाप्ति––दो मास तक न केवल देहरादून की जनता ने ही साधना-शिविर से लाभ उठाया, अपने आध्यात्मिक स्तर को ऊंचा किया और योग में प्रगति की, किन्तु सैंकड़ों नर-नारी अन्य नगरों से भी यहां इस शिविर में सम्मिलित हुए और अपने जीवन को उन्नत किया। जनता में योग के प्रति अभिरुचि जागृत हुई और जहां भी ये लोग गए वहीं पर योग तथा साधना-शिविर के सन्देश को पहुंचाया।

इस साधना-शिविर का समाप्ति-समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। श्री महात्मा आनन्दस्वामीजी ने तथा बाबा गुरमुखसिंहजी ने शिविर-समाप्ति के उपलक्ष्य में एक वृहद् यज्ञ तथा उत्सव की भारी योजना बनाई। कई प्रख्यात प्रकांड पण्डितों को इस अवसर पर व्याख्यान देने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया गया।

बृहद्-यज्ञ—यज्ञ के लिए विधिपूर्वक एक बहुत बड़ी वेदी को मंदिर के रूप में निर्माण किया गया तथा पत्रों और पुष्पों से सुसज्जित किया गया। इसके चारों ओर चार मार्ग बनाए गए थे। कर्मकाण्ड के धुरंधर विद्वानों ने इस यज्ञ को निष्पन्न किया था। इस यज्ञ में इतना आकर्षण, रोचकता और माधुर्य था कि सैंकड़ों की संख्या में नर-नारी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए। कई घण्टे तक जनता ने इस यज्ञ का सुखलाभ किया। पूर्णाहुति का दृश्य वास्तव में दर्शनीय था।

बृहद्-सभा का आयोजन—आगन्तुक महानुभावों के बैठने की व्यवस्था बड़े उत्तम ढंग से की गई थी। लगभग २०-२५ हजार नर-नारी इसमें उपस्थित हुए थे। इतनी बड़ी सभा में व्यवस्था और अनुशासन बनाए रखना कोई आसान काम न था, किन्तु महात्मा आनन्दस्वामीजी के प्रभाव से सब प्रबन्ध बहुत उत्तम रहा और जनता ने शान्तिपूर्वक अपना पूर्ण सहयोग दिया।

प्रबन्धकों ने सर्वसम्मति से पूज्य महाराजजी को ही सभा का अध्यक्ष बनाना स्वीकार किया। इनसे योग्य इस सभा के सभापतित्व के लिए और हो ही कौन सकता था! स्वामीजी तथा बाबा गुरमुखसिंह के बहुत आग्रह करने पर महाराजजी ने इस पद को ग्रहण किया।

सभा में अनेक सारगर्भित भाषणों में महाराजजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इस शिविर से देहरादून की जनता में ही नहीं किन्तु दूर-दूर के लोगों में भी योग के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। इस समारोह की प्रबन्ध-समिति ने महाराजजी के चरणों में हार्दिक धन्यवाद अर्पण किया। इसके पश्चात् योगीराजजी ने अध्यक्षीय भाषण दिया और यज्ञ, उत्सव तथा अभ्यास में आने वाले सब स्त्री-पुरुषों को धन्यवाद देते हुए कहा :—

यह आश्रम आप सबका बड़ा अनुगृहीत है। आपने इन तीनों कार्यों में आकर इसकी शोभा को बढ़ाया है। आप लोगों ने अभ्यास, सत्संग और यज्ञ से लाभ उठाकर अपने जीवनों को पवित्र बनाया है। दो मास तक यहां निवास करते हुए मैंने सैंकड़ों स्त्री-पुरुषों को सत्संग और अभ्यास से जीवन में आध्यात्मिक भावना को जगाकर आत्मसाक्षात्कार के पथ पर चलाकर शान्ति और आनन्द को उपलब्ध करवाया है। यहां की जनता में योगसाधन के लिए बड़ी भारी रुचि, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। ५-६ मील से अभ्यासी लोग नित्य चलकर आते थे। इससे स्पष्ट है कि आप लोगों में तत्त्व-ज्ञान की जिज्ञासा है। आप में से कइयों ने तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति में विशेष उन्नति की है। यह बड़े हर्ष की बात है। इस युग में योग ही ऐसा सुगम, सरल और सुबोध मार्ग है जिस पर चलकर बहुत शीघ्र एक ही जन्म में आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तत्त्वज्ञान प्राप्ति के लिए हमने जो ध्यान तथा समाधि के उपाय और साधन इन दो मासों में बताए हैं उन पर आपको अनुष्ठान करना चाहिए। इस मानव जीवन के दो भाग हैं। यदि हमारी आयु सौ वर्ष की हो तो ५० वर्ष तक लोकसंग्रह और शेष ५० वर्ष तत्त्वज्ञान और मोक्षप्राप्ति करनी चाहिए। सारा जीवन ही लोकसंग्रह में लगे रहना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। यह तो पशुपक्षी भी सारा जीवन करते रहते हैं। मनुष्य जीवन की विशेषता इसी में है कि अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करके अपने स्वरूप को

समझे। दो मास तक इस लोक तथा परलोक के सुधार के ही सब साधन बतलाए गए हैं। जिन साधनों के द्वारा पशु से मनुष्य और मनुष्य से प्राणी देवता बन सकता है। इसका सबसे बड़ा साधन अष्टाङ्ग योग है। जिसको संसार के दु:खों से मुक्त होने की चाह है उसे इन सभी साधनों को अपनाना चाहिए। इनके द्वारा ही तत्त्व-ज्ञान और वैराग्य होकर परम शान्ति और आनन्द प्राप्त हो सकता है। मैं आशा करता हूं कि आप लोग इस योग-पथ पर चलकर इस मानव जीवन के यथार्थ उद्देश्य को अवश्य पूरा करेंगे और सर्व दु:खों से मुक्त होंगे।

आप लोगों के लाभ के लिए वैदिक आश्रम ने आपकी बहुत सेवा की है। अपना समय और शक्ति तथा धन लगाकर साधकों और दर्शनार्थियों तथा सत्संग में आने वाले सज्जनों को सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान की हैं, अतः इस साधना-शिविर के प्रबन्धक सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र हैं। आप लोग जो इतना कष्ट उठाकर यहां आए हैं, आप भी धन्यवाद के पात्र हैं।

उत्सव समाप्त होने के पश्चात् पण्डित ठाकुरदत्तजी वैद्य श्री महाराजजी को राजपुर रोड पर स्थित अपनी कोठी पर लेगए। इस कोठी पर एक सप्ताह साधना-शिविर रखने और उपदेशामृत का पान कराने के लिए सैंकड़ों व्यक्तियों ने प्रार्थना की। देहरादून की जनता योगीराजजी के उपदेशों से बड़ी प्रभावित हुई थी। लोगों के अत्यधिक अनुरोध, अनुनय तथा विनय करने पर महाराजजी ने दस दिन का शिविर 'अमृतधारा' पर लगाना स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन प्रायः एक सौ से अधिक नर-नारी इस योग साधन में सम्मिलित होते थे। सायंकाल ३ से ५ बजे तक महाराज का उपदेश होता था। सैंकड़ों लोग इस उपदेशामृत का पान करने के लिए नित्य आते थे।

अढ़ाई मास तक देहरादून में अमृत की वर्षा करके और अध्यात्म की गंगा बहा कर श्री महाराजजी ऋषिकेश पधारे। हज़ारों लोगों ने बड़ी श्रद्धा से और भक्ति-पूर्वक योगीराज को विदाई दी। यहां पधारकर महाराजजी ने दो मास का साधना-शिविर लगाया। यहां पर भी देहरादून के अभ्यासी साधनार्थ आए। इनमें विशेष उल्लेखनीय श्री उबराय और इनकी धर्मपत्नी हैं।

श्री महाराजजी के मनोबल का प्रभाव—श्री चौधरी जयरामसिंह उबराय, तथा इनकी धर्मपत्नी की महाराज में बड़ी भक्ति और श्रद्धा थी। ये देहरादून के साधना-शिविर में आते थे। ये इस समय में बड़े संकट में थे। इनके ऊपर दो मुकद्दमे थे—एक देहरादून की अदालत में और दूसरा इलाहाबाद की हाईकोर्ट में। इन मुकद्दमों में इनकी हार हो जाना इनके अकिंचन हो जाने के समान ही था। अतः इन्होंने महा-राजजी से सहायता के लिए प्रार्थना की। इस परिवार की अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति देख कर महाराजजी को इस परिवार पर बड़ी दया आई। महाराजजी ने उबरायजी से कहा कि मुझे शहर में ले जाकर जज साहिब को दिखा दो। उबरायजी तांगे में बिठाकर जज की कोठी के सामने ले गए, जब उसने कचहरी में जाना था। इनको देखकर वापिस तपोवन में आगए। दो दिन पश्चात् मुकद्दमे की तारीख थी। महाराजजी ने प्रातः का दूध भी न पिया और जज पर प्रयोग करने की तैयारी करने लगे। दस बजे अदालत में मुकद्दमा पेश होना था। महाराजजी ने मुकद्दमे के दिन, पास एक जंगल में बैठकर अपने मनोबल से जज को प्रभावित करके चौधरी जयरामसिंह

जी के अनुकूल बना दिया। इसके परिणामस्वरूप मुकद्दमे का फैसला जयरामसिंह जी के अनुकूल होगया। दूसरा मुकद्दमा इलाहाबाद में था। वहां के जज की फोटो मंगवाकर प्रयोग किया था।

महाराजजी ने अपने मनोबल से चौधरी जयरामसिंह के दूसरे मुकद्दमे का, जो इलाहाबाद की हाईकोर्ट में था, फैसला भी इनके अनुकूल करवा दिया। मुकद्दमे के फैसले के दिन महाराजजी ने कई घण्टे तक मौन रखा और दोपहर का भोजन भी नहीं किया जिससे शक्ति-पात का कार्य सुचारु रूप से हो सके। इस मुकद्दमे में विजय इसी शक्तिपात का परिणाम था। इन दोनों मुकद्दमों में विजय के कारण इस परिवार की श्रीमहाराजजी में अनन्य श्रद्धा और भक्ति में और भी वृद्धि होगई। इस परिवार ने महाराजजी की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना प्रारम्भ कर दिया। अब ये अपना अधिक समय अभ्यास तथा सत्संग में ही व्यतीत करने लगे। उबराय की पत्नी कृष्णा की महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वह इन्हें कृष्ण भगवान के समान समझती थी। इस श्रद्धा और विश्वास के कारण इसे अभ्यास में विशेष सफलता प्राप्त होने लगी। यह अन्य लोकों की बातें करने लगी। भविष्यवाणी भी करती थी और अपने को भगवान् के अत्यन्त समीप समझती थी। इसके पति उबराय इसकी अभ्यास में आशातीत प्रगति देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए और इन्होंने भी स्वर्गाश्रम में अभ्यासार्थ आना प्रारम्भ कर दिया। श्री नारायणदासजी कपूर, इनकी धर्मपत्नी सावित्रीदेवी, माता मेलादेवी, शान्ता, और शीला भी साधना शिविर में सम्मिलित होने के लिए देहली से आगए। अमृतसर से लाला गुरुचरणदत्त, इनकी धर्मपत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्य देवियां और सज्जन भी इस अवसर पर आए।

सरलादेवी का शिविर में आना—अमृतसर निवासिनी श्रीमती सरलादेवी की महाराजजी के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। ये महाराजजी के श्रीचरणों में बैठकर कई बार अभ्यास कर चुकी थीं। इनकी ६-७ घण्टे तक शून्य समाधि लग जाया करती थी और ७ मिनिट तक कुंभक प्राणायाम करने का अभ्यास था। युवावस्था में ही इनके पतिदेव का स्वर्गवास होगया था। इनके एक पुत्र था। ये रात दिन पति-वियोग में रुदन किया करती थीं। इनकी माता इन्हें अमृतसर में बाबू मुलखराजजी की कोठी पर महाराजजी के दर्शनार्थ लाई थीं जिससे उनके शान्तिदायक उपदेश से इसे शांति-लाभ हो। श्रीमहाराजजी के सत्संग से थोड़े ही दिनों में इस देवी के जीवन में एक महान् परिवर्तन होगया। इसने योग-पथ पर चलना प्रारम्भ कर दिया। अब यह शोक, चिन्ता तथा दुःख से विमुक्त होगई। इसने अब अपने को प्रभु-चरणों में समर्पित कर दिया और दिन रात इन्हीं की भक्ति में निरत रहती थी। जब स्वर्गाश्रम में श्रीमहाराजजी साधना-शिविर लगाते थे तब यह लाला गुरुचरणदत्तजी के साथ बराबर साधना-शिविर में आती रहती थीं। यह बहुत ऊंची आध्यात्मिक स्थिति में पहुंच गई थीं। इनके सास और ससुर अमेरिका में रहते थे। कुछ वर्ष के पश्चात् ये लोग इन्हें और इनके पुत्र जगदीश को भी अमेरिका ले गए।

महाराजजी के योग-बल का चमत्कार

जिन दिनों स्वर्गाश्रम में साधना-शिविर चल रहा था उन दिनों महाराजजी के पास रणवीरजी, मुख्य संपादक 'मिलाप', का तार आया। इसमें लिखा था कि

उनका भाई युद्धवीर बीमार है और उसकी अवस्था बड़ी चिन्ताजनक है। मैं उसके पास हवाई जहाज से हैदराबाद जा रहा हूं। मैं आपका परमभक्त और आपका प्रिय शिष्य हूं अतः विनम्र प्रार्थना है कि आप इस महती विपत्ति से मेरे भाई की रक्षा करें। इसे अपना आशीर्वाद दें जिससे यह शीघ्र ही रोगमुक्त होजाए। इस तार को पढ़कर रणवीर की माताजी, उनकी बहिन और बहनोई बहुत घबरा गए और चिन्तातुर हुए। महाराजजी ने कहा, मैंने युद्धवीर को कभी देखा नहीं। उसके रंग-रूप तथा आकृति से परिचित नहीं। अतः प्रयोग करने में बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए नारायणदास कपूर को अपने सामने बैठने का आदेश दिया क्योंकि ये युद्धवीर की आकृति और रंग-रूप से परिचित थे। इन्हें युद्धवीर की आकृति का ध्यान करने की आज्ञा दी, और उनके ऊपर अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया। यह शक्ति आपके द्वारा युद्धवीर पर प्रभाव डालेगी। कपूर साहिब को बिठाकर महाराजजी स्वयं खड़े होकर शक्ति का प्रयोग करने लगे। यह दिन के दस बजे की बात है। आधा घंटा इस प्रयोग के लिए रखा गया। कपूर साहिब के द्वारा महाराजजी ने अपनी शक्ति को युद्धवीर के पास प्रेषित किया। जब महाराजजी ने प्रयोग करना प्रारम्भ किया तब सर्वप्रथम ध्यान में एक कमरा आया, फिर उसमें एक पलंग दृष्टिगोचर हुआ और तत्पश्चात् एक शुभ्र चादर ओढ़कर लेटा हुआ युद्धवीर दिखाई दिया। इनके पास इनकी पत्नी सीता तथा एक सेवक भी बैठा हुआ नज़र आया। अब महाराजजी को युद्धवीर की आकृति, रंग-रूपादि सब दिखाई देने लगा। युद्धवीर बिलकुल अचेत था। योगीराजजी के शक्ति-प्रयोग से इसके शरीर में कुछ चेतना-सी आई और शरीर में चेष्टा होने लगी। इन्हें लगभग २० मिनिट में होश आगया। संकेत द्वारा बैठने की इच्छा प्रकट की। पलंग पर तकिए के सहारे से इन्हें बिठा दिया गया। महाराजजी ने कपूर साहिब से कहा कि युद्धवीर अब ठीक है। तार देकर इसका पता लगा लो। ऐक्सप्रेस तार देकर पूछने पर विदित हुआ कि अब वे स्वस्थ हैं। रणवीरजी ११ बजे हवाई जहाज से हैदराबाद पहुंचे। युद्धवीर को चारपाई पर बैठा देख वे बड़े आश्चर्यान्वित होकर कहने लगे कि मुझे तो तुम्हारी बीमारी का तार मिला था और मुझे शीघ्र बुलाया गया था। कुछ घण्टे पहिले तुम्हारी शारीरिकावस्था चिन्ताजनक थी। इतनी जल्दी तुम ठीक भी होगए। तुम्हारा तार पढ़कर मेरे तो होश गुम होगए और मैं आतुर और व्याकुल होगया था। सीता ने बताया कि १० बजे रोगी की अवस्था ठीक ऐसी ही थी जैसी आपको तार में लिखी गई थी। बड़े आश्चर्य की बात है, प्रभु की यह अपार कृपा है कि एक घण्टे के भीतर ही इनकी दशा सुधर गई, होश में आगए और उठकर बैठ गए। औषधोपचार में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। बेहोशी दूर होगई, अपने आप करवट बदली और खाना मांगने लगे। यह उस सर्वशक्तिमान का एक अलौकिक चमत्कार है। रणवीरजी ने महाराजजी को जो तार दिया था उसका सब समाचार सीता को सुनाया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनका भाई योगीराजजी के शक्ति-प्रयोग से स्वस्थ हुआ है। इन्होंने सीता से कहा, "इसको स्वास्थ्य प्रदान करने वाले तो योगाश्रम में विराज रहे हैं। उनकी हमारे परिवार पर विशेष कृपा है।" इन्होंने महाराजजी को तार द्वारा रणवीर की पहुंच और उनके आशीर्वाद से स्वास्थ्य लाभ की सूचना दी। कपूर साहिब ने भी रणवीरजी को युद्धवीर के ऊपर महाराजजी के शक्ति-प्रयोग करने की सूचना

तार द्वारा दी। अब रणवीरजी ने महाराजजी को हैदराबाद से निम्नलिखित पत्र लिखा :--"पूज्य गुरुदेव ! मैं आज प्रत्यक्ष रूप में आपकी अतुल महान शक्ति को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हूं। युद्धवीर कई दिन से बेहोश पड़ा था और वह मरणासन्न हो रहा था। वह २-३ घण्टे के अन्दर घूमने-फिरने के योग्य होगया है। मैं आपकी इस महती दया का अत्यन्त आभारी हूं। आपका यह उपकार सदैव मेरे हृत्पटल पर अंकित रहेगा। आपके इस महान ऋण से मैं जन्म-जन्मान्तरों तक भी उऋण नहीं हो सकता। किन शब्दों में मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं ! न मैं इसे वाणी से आपके समक्ष कह सकता हूं और न लेखनी से लिख सकता हूं। हृदय आपके प्रति कृतज्ञता के भावों से भरा हुआ है किन्तु भाषा इन्हें व्यक्त करने में असमर्थ है। आपने मेरे भाई को जीवन-दान दिया है इसके लिए मेरा सारा परिवार आपका सदा ऋणी रहेगा। युद्धवीर अब पूर्ण स्वस्थ है, इसलिए मैं कल देहली वापिस जा रहा हूं।"

श्रीमती धर्मवती को कोष-साक्षात्कार—श्रीमती धर्मवती तथा भाग्यवन्तीजी भी स्वर्गाश्रम में दो मास के साधना-शिविर में सम्मिलित हुईं। धर्मवतीजी पर अभी वेदान्त ग्रंथों के अध्ययन का बड़ा प्रभाव था। इन्होंने विशेष प्रयत्न के साथ विचार-सागर, योगवशिष्ठ, अद्वैतसिद्धि, वृत्तिप्रभाकर, वेदान्तदर्शन तथा उपनिषदादि ग्रंथों को गुरुमुख से अध्ययन किया था। श्री महाराजजी ने इस प्रकार से साधना का क्रम बताया जिससे इनकी कई-कई घण्टे की निर्विकल्पावस्था हो जाती थी। इस वर्ष इनको कुण्डलिनी जागरण, षट् चक्र बेधन, प्राण-विज्ञान और ब्रह्मरंध्र में सूक्ष्म शरीर का व्यापार और विज्ञान का साक्षात्कार करवाया गया। धर्मवती ने महाराजजी से निवेदन किया, "इन अनात्म पदार्थों के दर्शन से क्या लाभ होगा ?" महाराजजी ने कहा, "ये बुद्धि को सूक्ष्म करने के साधन हैं। इन अनात्म पदार्थों में ही आत्मा का अनुभव होगा। ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होगा और इसके द्वारा आत्म साक्षात्कार लाभ होगा। जो हम बताते हैं, आप इसे श्रद्धा, विश्वास और धैर्य के साथ करती रहो। जब क्रमपूर्वक विज्ञान द्वारा आपकी अपने स्वरूप में स्थिति हो जाएगी तब आप समझेंगी कि आत्मा एक है या अनेक, और आप ब्रह्म से भिन्न हैं या अभिन्न।"

श्रीमती भाग्यवन्तीजी को कोष-विज्ञान—श्रीमती भाग्यवन्तीजी को योग में बड़ी रुचि थी। साधना-शिविरों में प्रायः भाग लेती थीं। महाराजजी ने जब योग प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया था तो सर्वप्रथम शिविर मोहन आश्रम में लगाया था। इस शिविर में भाग्यवन्तीजी ने अभ्यास किया था। इनकी योगीराजजी में अटूट श्रद्धा तथा अनन्य भक्ति थी। ये बड़े परिश्रमपूर्वक योग-साधना करती थीं। इन्होंने भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोषों का साक्षात्कार किया और सदैव इस विज्ञान को दृढ़भूमि करने का प्रयत्न किया।

इस वर्ष साधना-शिविर में चालीस अभ्यासियों ने भाग लिया। प्रायः सभी ने सन्तोषप्रद प्रगति दिखाई और अपने आध्यात्मिक स्तर को उन्नत करने में सफल हुए। पूर्ववत् इस शिविर की समाप्ति पर भी एक बृहद् प्रीतिभोज किया गया। इसके पश्चात् सब अभ्यासियों को विदा कर दिया गया।

हरिद्वार में निवास

इस बार हरिद्वार में कुंभ का मेला होने वाला था। इसके लिए बड़ी तैयारी की जा रही थी। सेठ तुलसीरामजी बम्बईवाले इस अवसर पर हरिद्वार आए हुए थे। वे स्वर्गाश्रम से महाराजजी को अपनी मोटरकार में हरिद्वार में अपने मकान पर ले गए और यहां ठहर कर लोगों को कथामृत पान करवाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी प्रतिदिन दो घण्टे कथा किया करते थे। कुंभ के कारण यात्री बहुत आए हुए थे, इसलिए कथा में सैंकड़ों नर-नारी एकत्रित होते थे और इनके उपदेशामृत का पान करके अपने को धन्य मानते थे। इसी बीच में नारायणदासजी कपूर हरिद्वार में आए और श्रीमहाराजजी को कार में देहली ले गए। ये और रणवीरजी बी ब्लाक कनाट प्लेस में निवास करते थे। महाराजजी ने हंसते हुए रणवीरजी से कहा, "अब तो आपके परिवार में संन्यास लेने की परम्परा चल पड़ी है। आप भी समय आने पर अपने पूज्य पिताजी का अनुकरण करना।" रणवीर ने खुश होकर कहा, "अवश्य महाराज, आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दें।" योगीराजजी ने उनके लिए प्रार्थना करने का वचन दिया और कहा, "भगवान् आपका सदैव मंगल करें।" रणवीरजी महाराजजी को अपनी कार में हरिद्वार छोड़ आए। यहां आकर सेठजी के मकान पर इन्होंने दस दिन तक कथा की।

इस बार माता मेलादेवी और भाग्यवन्तीजी ने महाराजजी से गंगोत्री जाने की इच्छा प्रकट की। इन्होंने आज्ञा प्रदान कर दी। श्री आनन्दस्वामीजी ने भी जून मास में वहां जाने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इन्होंने स्वामीजी को माता मेलादेवी और भाग्यवन्तीजी को भी साथ लाने की आज्ञा दी।

गंगोत्री प्रस्थान

कुंभ के कारण हरिद्वार में बहुत भीड़भाड़ थी। सेठ तुलसीराम के मकान में भी उनके अपने इष्टमित्र और परिचत लोग तथा महाराजजी के श्रद्धालु भक्तों के ठहरने के कारण बहुत भीड़ थी। नगर में हैज़े का प्रकोप होगया। श्री महाराजजी के ऊपर भी इसका कुछ प्रभाव हुआ किन्तु ठीक समय पर उपचार हो जाने के कारण रोग का शीघ्र ही निवारण होगया। कुंभ के पश्चात् महाराजजी पुनः स्वर्गाश्रम चले गए और वहां पर १०-१५ दिन तक निवास किया और इसके पश्चात् उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया। यहां पर केवल पांच-सात दिन के लिए पंजाबी क्षेत्र में ठहर कर गंगोत्री पधारे।

सेठ रमणलाल तथा केशवलाल का गंगोत्री में आगमन—सेठ रमणलाल और केशवलाल अपने इष्ट-मित्रों सहित गंगोत्री आए। इनके साथ सेठ रमणलाल लल्लू-भाई और सेठ भोगीलाल चालाभाई शाहजी अहमदाबादवाले भी आए। ये सब महाराजजी के दर्शनार्थ आए और योग-निकेतन को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। सेठ रमणलाल ने अपने निवास के लिए योग-निकेतन में एक कुटिया के लिए प्रार्थना की। महाराजजी ने इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार किया। ये अकेले अपने सेवक के साथ यहां पर तीन-चार मास तक ठहरे। रमणलाल लल्लूभाई और भोगीलाल दोनों ने मिलकर ३००रु० सालाना साधु-महात्माओं को भोजन करवाने के लिए देने का वचन

दिया। बारह साल से बराबर वे इस कार्य के लिए यह धनराशि भेज रहे हैं। सेठ रमणलाल ने ४००० रु० दो बड़ी कुटियाएं बनाने के लिए श्री महाराजजी की सेवा में भेंट किया। सेठजी दयालमुनिजी के सुपरिचित थे। इन्होंने सेठजी को विश्वास दिलाया कि आपके यहां निवास काल में ही ये कुटियाएं बनकर तैयार हो जाएंगी। सेठजी ने प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल में गंगोत्री आने का निश्चय कर लिया। इनकी सन्तों तथा साधुओं के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, विशेषकर हिमालय के सन्तों के प्रति तो इनकी अत्यधिक भक्ति थी। स्वामी तपोवनजी तथा स्वामी कृष्णाश्रमजी को उनके व्यय के लिए प्रतिवर्ष रुपया कई वर्षों से भेज रहे थे।

सेठ रमणलाल को जीवन-दान--सेठजी को कई ज्योतिषियों ने बताया था कि आगामी वर्ष उनकी मृत्यु का योग है। वे स्वयं भी ज्योतिषी थे। उनके हिसाब से भी मृत्यु का योग बैठता था। उन्होंने महाराजजी से उपरोक्त बात निवेदन की और गंगोत्री में ही शरीर छोड़ने की इच्छा प्रकट की। महाराजजी ने उन्हें समझाया कि इसमें चिन्ता की क्या बात है। एक न एक दिन तो इस संसार से विदा होना ही है। यदि १०-२० साल और जीवित रह जाएंगे तो भी यही प्रश्न उठेगा। जो बात अवश्यम्भावी है उसके लिए चिन्ता करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। सेठजी ने निवेदन किया, "कई बार आप जैसे सन्तों के उपदेशों में यह भी सुना है कि महात्मा लोग कभी-कभी आयु में वृद्धि करके लोगों को जीवन-दान किया करते हैं।" महाराजजी ने सेठजी को आगामी वर्ष गंगोत्री आकर इनके पास निवास करने की आज्ञा दी और मृत्युयोग का निवारण करने का उन्हें विश्वास दिलाया और कहा, "आपको आगामी वर्ष मरने नहीं दिया जाएगा। आप निश्चिन्त रहें।" भगवान् की ऐसी कृपा हुई कि सेठजी का मृत्यु का योग टल गया और १२ वर्ष से वे जीवित हैं। इन सेठजी की अपने जीवनदाता के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति होगई और इन्होंने गंगोत्री में २०००० रु० दान किए। चार मास तक ये योग-निकेतन में ठहरे थे। इन चार मास में प्रत्येक पर्व पर इन्होंने यहां के सभी सन्तों, संन्यासियों और साधुओं के लिए पक्का भण्डारा करवाया। लकड़ी के दो पुल बनवाए—एक गंगा पर और दूसरा केदार गंगा पर। योग-निकेतन में चार हज़ार रुपया लगाकर दो बड़ी-बड़ी कुटियाएं बनवाईं। सब सन्तों को कम्बल और चादरें वितरित कीं। प्रथम वर्ष २०००० रुपया दान दिया तथा दूसरे वर्ष १४००० रु०। सेठजी बड़े ईश्वरभक्त और उदार दानशील हैं। प्रातःकाल ४ बजे से ११ बजे तक पूजा-पाठ में लगे रहते थे। ११ से १२ बजे तक नियमानुसार नित्य महाराजजी के पास आते थे। महाराजजी के पास बैठकर ध्यान करते थे। एक घण्टा तक निर्विकल्प-सी अवस्था होकर समाधि लग जाया करती थी और आनन्द की अनुभूति होती थी। इन्होंने १५०० रु० व्यय करके योग-निकेतन के लिए एक छोटी-सी नहर निकलवाई थी। तीन वर्ष तक ये गंगोत्री में रहे और तीनों वर्ष हज़ारों रुपया दान में दिया। अपनी मिल में से चौथा भाग ये पहिले दान में दिया करते थे, फिर उसकी आय में से भी चौथा भाग देने लग गए थे। ये बड़ी उदारता से दान देते थे। इनके द्वार से कोई याचक कभी भी खाली नहीं गया।

श्री आनन्दस्वामीजी की गुरुभक्ति--श्री आनन्दस्वामीजी, माता मेलादेवीजी तथा भाग्यवन्तीजी गंगोत्री में अभ्यासार्थ आए। इनकी महाराजजी के प्रति अनन्य

भक्ति थी। वास्तव में महानात्माओं में तदनुरूप ही महान गुण होते हैं। योग-निकेतन में काम करने के लिए एक-दो सेवक सदा ही रहते हैं, किन्तु गुरुदेव की सेवा के लिए स्वामीजी गंगाजी से नित्यप्रति दो-तीन घड़े जल के महाराजजी की रसोई के लिए लाते थे। इन्हें गंगोत्री-वास बड़ा पसन्द था। कई वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में आकर निवास करते रहे और इस समय को आत्म-विज्ञान के दृढ़ करने में लगाते रहे। यहीं पर आपने दो ग्रंथों की रचना भी की। महाराजजी ने अपने प्रयत्न से इस साल गंगोत्री में एक डाकखाना भी खुलवा दिया था। आनन्दस्वामीजी को उत्तरकाशी में निवास के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिलता था अतः महाराजजी से एक योग-निकेतन वहां पर भी बनाने के लिए प्रार्थना की जिससे वहां निवास के कष्ट का निवारण हो सके। आनन्दस्वामीजी तथा दयालमुनिजी रोगियों को औषध देने का कार्य करते थे। उत्तरकाशी से भी रोगी उपचार के लिए योग-निकेतन में आते थे। इसके अतिरिक्त कोई औषधालय उत्तरकाशी से यहां तक नहीं था। इस औषधालय से लोगों का बड़ा कल्याण-साधन होता था। भाद्रपद और आश्विन मास में स्थानीय साधु-महात्माओं के लिए क्षेत्र चलता था। पांच मास तक चाय का क्षेत्र भी चलता था। सेठजी, आनन्दस्वामीजी, माता मेलादेवीजी तथा भाग्यवन्तीजी ने सितम्बर मास के प्रारम्भ में गंगोत्री से प्रस्थान किया। महाराजजी ने गंगोत्री से अक्तूबर मास में प्रस्थान किया। उत्तरकाशी आकर पंजाबी क्षेत्र में निवास किया। इसके समीप ही एक बड़ा भूभाग खाली पड़ा हुआ था। इन्होंने पंजाबी क्षेत्र के प्रबन्धक इन्द्रदत्त से इस भूमि को खरीदने के लिए कहा। इन दिनों भूमि के भाव बड़े सस्ते थे। इन्द्रदत्तजी से महाराजजी ने कहा कि आप जमीन के लिए बातचीत करें, जब सौदा तय हो जाए तो मुझे स्वर्गाश्रम में पत्र लिख देना, मैं रुपया भिजवा दूंगा। ये एक मास तक उत्तरकाशी ठहरकर स्वर्गाश्रम पधारे।

माता मनसादेवीजी का भूमि खरीदने और कुटिया निर्माणहेतु दान

जब माता मनसादेवी को महाराजजी के अपनी कुटिया के लिए जमीन खरीदने के विषय में पता चला तो उसने इन्हें लिखा कि भूमि खरीदने और कुटिया के निर्माण में जो रुपया खर्च होगा वह सब मैं दूंगी। इन्होंने १६०० रु० भूमि खरीदने और ६००० रु० मकान बनाने के लिए प्रदान किया। इन दिनों महाराजजी के निजी व्यय के लिए भी सारा खर्चा ये ही माताजी देती थीं। सन् १९५२ में उत्तरकाशी में योग-निकेतन के लिए भूमि खरीदी गई।

तपोवन में पुनः साधना-शिविर

सन् १९५२ में श्री आनन्दस्वामीजी ने गंगोत्री में महाराजजी से पुनः तपोवन में साधना-शिविर लगाने की प्रार्थना की क्योंकि प्रथम शिविर से देहरादून की जनता में योग के प्रति अत्यधिक रुचि जागृत होगई थी और इसका बड़ा प्रभाव पड़ा था। सैंकड़ों व्यक्तियों ने अभ्यास से महान् लाभ उठाया था और हज़ारों ने महाराजजी के उपदेशामृत का पान करके अपने जीवन को ऊंचा उठाया था। महाराजजी ने १५ नवम्बर से १५ जनवरी तक साधना-शिविर तपोवन में लगाने की स्वीकृति दे दी। ये १० नवम्बर को तपोवन पधारे और गत वर्ष की भांति ऊपर वाली कुटिया

में विराजे। स्वामीजी महाराज ने शिविर के लिए समुचित व्यवस्था कर दी थी। 'मिलाप' के सम्पादक श्री रणवीरजी ने महाराजजी के कई सहस्र फोटो खिंचवाकर अपने दैनिक 'मिलाप' के द्वारा जनता में वितरित किए। अपने पत्र में महाराजजी के जीवन, योग, आध्यात्मिक शक्ति और मनोबल के विषय में लेख भी लिखे। पूर्ववत् सैंकड़ों पुरुष और स्त्रियां बड़े चाव और उमंग के साथ शिविर में अभ्यासार्थ सम्मिलित होने के लिए एकत्रित होगए। अभ्यास का कार्यक्रम निम्न प्रकार से था। योग प्रशिक्षणार्थियों का वर्गीकरण किया गया। इन सबको चार कक्षाओं में विभक्त किया गया। सर्वोत्तम कक्षा के योग्य केवल थोड़े ही अभ्यासी थे। इनकी कक्षा प्रातः ४ से ६ बजे तक लगती थी। इस कक्षा में उच्च-स्तर पर योग साधना करवाई जाती थी। दूसरी कक्षा तपोवन के निवासियों की थी। यह कक्षा ६ से ८ बजे तक लगती थी। तीसरी कक्षा में नगर के आध्यात्मिक मुख्य-मुख्य लोगों को प्रविष्ट किया गया था। इस कक्षा का समय ८ से ९ बजे तक था। चतुर्थ वर्ग नगर के साधारण स्तर के लोगों के लिए था। यह कक्षा धूप में साल वृक्षों के नीचे मैदान में लगाई जाती थी। दस से साढ़े ग्यारह बजे तक महाराजजी को लोग मिलने के लिए आया करते थे। डेढ़ बजे भोजन करके महाराजजी ३ बजे तक विश्राम करते थे। ३ से ५ बजे तक का समय दर्शनार्थियों को दिया जाता था। ५ से ६ बजे तक महाराजजी भ्रमणार्थ चले जाते थे। मिलने वालों का तांता भ्रमण में भी लगा रहता था। योगीराजजी का चरित्र, अध्यात्म, योग तथा मनोबल और व्यक्तित्व इतना ऊंचा और आकर्षक था कि सभी लोग इनके पुण्य दर्शन का लाभ उठाना चाहते थे, अतः प्रायः सारा दिन ही भीड़ लगी रहती थी। रात्रि को ६ से ९ बजे तक दो योग प्रशिक्षण की कक्षाओं को योग सिखाते थे। कुटिया के बरांडे में २०-२५ अभ्यासियों से अधिक नहीं बैठ सकते थे। जो शेष रह जाते थे उनकी कक्षाएं इस समय लगाई जाती थीं। प्रत्येक रविवार को अनध्याय रखा जाता था। २ से ४ बजे तक अष्टाङ्ग योग पर श्री महाराजजी का बड़ा सारगर्भित भाषण होता था। भाषण सदैव अत्यन्त गहन विषय पर होता था। लगभग डेढ़ हज़ार नर-नारी व्याख्यान सुनने के लिए आते थे और इस वचनामृत का पान कर चुकने के बाद प्रेय मार्ग से हटकर श्रेय मार्ग के पथिक बनने का प्रयत्न करते थे। गत वर्ष के समान प्रमुख अभ्यासी ये थे :—महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, रायसाहिब बी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, पं० ठाकुरदत्तजी अमृतधारावाले, बलदेवमित्रजी सपत्नीक, बाबा गुरमुखसिंहजी, हंसराज कुंदरा, दीवानचन्द, ब्रजलाल, हरप्रकाशजी, गुरुदित्तामल, भरतसिंह, ज्ञानचन्द, रामावतारजी, प्रकाशचन्द्र, श्रीराम, रामकिशन, आनन्दपाल, आनन्दलाल, हरिराम, बिशनदासजी, रामकृष्णजी, सेठ झब्बालालजी, गोकुलनाथजी, मोतीरामजी, शान्तिस्वरूपजी, सत्यदेवजी, शान्तानन्दजी, जगन्नाथजी फिरोज़पुरवाले, ब्रजबिहारी, रामलाल नारंग, भीमसेनजी, ठाकुर वनमाली कृष्णजी, ज्योतिप्रसादजी, हेमराजजी, ईश्वरदासजी, हरजसराय, कन्हैयालालजी, दीनानाथदत्तजी, मुरारीलाल, इन्द्रसेनजी, बनारसीदास, रामचन्द्र, विमलचन्द, रामदित्तामल, हरदत्तामल, संसारचन्द और भोलानाथ आदि। इनके परिवारों की देवियां भी अभ्यासार्थ आती थीं। एक सौ से अधिक संख्या स्त्री और पुरुषों की योगसाधना शिविर में प्रविष्ट की गई थी। प्रवेशार्थियों की संख्या तो बहुत थी किन्तु व्यवस्था के अभाव के कारण सबको प्रवेश देना असंभव

था। श्री महाराजजी के समान उदारचेता तथा परोपकारी महात्मा संसार में बहुत कम हैं। ये जनता के कल्याणार्थ प्रातः तीन बजे से साढ़े ग्यारह बजे तक और रात्रि को ६ से ६ बजे तक नित्यप्रति अपना समय देते थे। दर्शनार्थियों को समय इससे अतिरिक्त दिया जाता था। रात्रि को दस से साढ़े दस बजे तक महात्मा प्रभु आश्रितजी महाराजजी के सिर में बादाम रोगन की मालिश किया करते थे।

नारायणदास कपूर के पिता को आरोग्यता प्रदान—नारायणदास कपूर के पिता चिरकाल से बीमार थे। अत्यन्त कृश और दुर्बल होगए थे। शक्तिहीनता के कारण उनसे चला-फिरा नहीं जाता था। कोई उठाए तो उठते थे और कोई लिटाए तो लेटते थे। पारिवारिक जन सेवा करते-करते थक गए थे। अनेकोपचार किए किन्तु उनका रोग न मिटा। नारायणदास देहली से देहरादून श्री महाराजजी से अपने पिता की नीरोगता के लिए प्रार्थना करने के लिए आए। महाराजजी ने उनकी फोटो देखकर फरमाया "कुछ दिन तक प्रयोग करेंगे। बिलकुल तो रोग-मुक्त नहीं हो सकते। चलने-फिरने के योग्य हो जाएंगे और कुछ वर्ष और जीवन धारण करेंगे।" श्री कपूर महाराजजी के परमभक्त और प्रधान शिष्यों में से थे। महाराजजी के प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। ये सदैव तन, मन तथा धन से इनकी सेवा करते थे। श्री महाराजजी ने चार दिन तक अपनी शक्ति का प्रयोग करके कपूरजी के पिताजी को स्वस्थ कर दिया और ये ५-६ साल तक जीवित रहे।

बाबा गुरमुखसिंहजी की रोग-मुक्ति—श्री बाबा गुरमुखसिंहजी आवश्यक कार्य वश ३-४ दिन के लिए देहली चले गए थे। वहां जाकर ज्वर पीड़ित होगए और पेशाब बिलकुल बन्द होगया। कई प्रकार के उपचार किए गए। किन्तु इन्हें आराम नहीं हुआ। इनकी स्थिति बड़ी चिन्ताजनक होगई। आस-पास के सभी लोग, सम्बन्धी और परिवार के सदस्य आतुर और व्याकुल हो उठे। क्या किया जाए यह किसी की समझ में नहीं आता था। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। पारिवारिक जनों ने इसकी सूचना तार द्वारा महाराजजी के पास भेजी और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। महाराजजी तार पढ़कर वहीं शान्त भाव से बैठ गए। अपनी दिव्य-दृष्टि को बाबाजी के ऊपर फेंका और मानसिक प्रयोग करना प्रारंभ किया। बाबाजी को उसी समय आराम होना आरम्भ होगया। ज्वर जाता रहा और पेशाब आने लग गया।

शिविर समाप्ति का समारोह—महाराजजी ने इस उत्सव के सभापति के आसन को अलंकृत किया। आनन्दस्वामीजी तथा अन्य महापुरुषों के भाषण हुए जिनमें महाराजजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई और इन्हें मानपत्र भेंट किया गया जो निम्न प्रकार से है :—

ॐ

नमः शान्ताय तेजसे

श्रद्धेय श्री सकलशास्त्रपारंगत निखिलयोगरहस्योत्तारणसुगसेतु

करतलामलकीकृतात्मज्ञानतत्त्व

बालब्रह्मचारी योगीराज श्री १०८ व्यासदेवजी महाराज के

पवित्र चरणारविन्दों में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्रम्

महाराज !

हमारे ज्ञानकोष में वे शब्द नहीं जिनसे हम ग्रापकी गुण-स्तुति कर सकें। गंगोत्री के चित्ताकर्षक दृश्य तथा जलवायुमण्डल से ग्रापको देहरादून तपोवनीय भूमि में यद्यपि ग्राकर्षण-साधन न भी हों तदपि 'जायन्ते विरलाः लोके जलदा इव सज्जनाः' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाला ग्रापका स्वाभाविक गुण भक्त साधक मण्डली को कृतार्थ करने के लिए विवश कर देता है। यह हमें पूर्ण विश्वास है। ग्रापने ग्रपनी ग्रपार ग्रनुकम्पा से इतना कष्ट उठाकर जो यहां गतवर्ष की भांति पधारकर योगाभ्यास-जिज्ञासु जनता को प्रवचन तथा प्रयोगात्मक शिक्षा द्वारा ग्रनुगृहीत किया है, हम उसके लिए नितान्त ग्राभारी हैं। वर्षों से इस शान्ति गवेषणा में भटकते हुए ग्रधिकारी पात्रों को इतने संकुचित समय में बड़ी सुगमता से राजयोग मार्ग पर ले जाना, यह गुण ग्रापके ग्रतिरिक्त ग्रन्यत्र नहीं पाया। इसका प्रधान कारण हमको यह प्रतीत होता है कि जहां ग्राप ग्राध्यात्मिक शिक्षा के प्रकाण्ड पण्डित हैं, वहां लिप्सा, सेवा-सुश्रूषा, प्रतारणादि दैत्यों पर पूर्ण विजय प्राप्ति भी है। ग्राज हमने यह प्रत्यक्ष ग्रनुभव करके देख लिया है कि ग्रच्छे क्षेत्रों में बीज सब संसार बो सकता है, पर यहां तो ग्रनेक ऊसर क्षेत्रों को उर्वरा बनाकर स्थायी रूप प्रदान कर दिया गया है।

यतिवर ! उपर्युक्त महत्वपूर्ण योग्यताग्रों के ग्रतिरिक्त ग्रापके सौजन्य, निरभिमानिता, स्पष्टभाषिता तथा सरलतादि गुणों पर जनता मुग्ध है, इसमें रंचक मात्र भी ग्रत्युक्ति नहीं है। वैदिक साधनाश्रम की प्रबन्धन्यूनता के होते हुए भी ग्रापने उस पर ध्यान न देते हुए जो कृपा की है, इसके लिए कमेटी ग्रापकी ग्रतिकृतज्ञ है। ग्रापके ग्राशीर्वाद से हमें पूर्ण ग्राशा है कि वे शीघ्र ही ठीक हो जाएंगी। ग्राज तक लगभग दो सौ साधकों ने जो इस ग्राश्रम में ग्राध्यात्मिक शान्ति प्राप्त की है उसके मूल व निमित्त कारण ग्राप ही हैं। हमें यह श्रेय कभी प्राप्त नहीं होता यदि ग्रापका ध्यान इस ग्रोर न होता। चलते-फिरते जहां कहीं हम देखते हैं ग्रापकी प्रशंसा के गीत सुनाई देते हैं।

भगवन् ! पढ़ी-लिखी जनता प्रायः प्रेय मार्ग व नास्तिकता की ग्रोर ग्राकृष्ट रहती है। उसमें ग्राध्यात्मिकवाद की धारा प्रवाहित करके नए युग का प्रारम्भ करना ग्राप सरीखे ग्रखण्ड ब्रह्मचारी के ग्रतिरिक्त ग्रन्यत्र ग्रसंभव ही था। इस वर्ष गत वर्ष की ग्रपेक्षा ग्रध्यात्म ज्ञान के पिपासु जिज्ञासुग्रों को ग्रधिक लाभ प्राप्त हुग्रा है। इसके लिए हम ग्रापके साथ बधाई के पात्र हैं कि ग्राश्रम को ग्रापकी छत्रछाया का परम महान श्रेय प्राप्त है। उस ग्रन्तर्यामी से करबद्ध प्रार्थना है कि इस परम पवित्र साधना प्रचार के लिए ग्रापको सहस्र वर्षों तक दीर्घ जीवन प्रदान करें। ग्रन्त में यह निवेदन करते हैं कि इसी प्रकार भविष्य में भी ग्राप कृपा करते रहें।

ग्रो३म् शम्

देहरादून — हम हैं ग्रापके नितान्त कृतज्ञ एवं उपकृत
२८-१२-५२ — वैदिक साधनाश्रम (तपोवन) के समिति सदस्य

स्वर्गाश्रम में शिविर

उत्सव की समाप्ति पर महाराजजी चौधरी जयरामसिंह की कोठी पर पधार गए और वहां तीन-चार दिन ठहरकर स्वर्गाश्रम पधारे। वहां जाकर दो मास के लिए साधना-शिविर प्रारम्भ कर दिया। महात्मा प्रभु आश्रितजी अपने शिष्य आचार्य सत्य-भूषणादि को साथ लेकर इस शिविर में भी सम्मिलित हुए। आपके कई एक व्रत बहुत कठिन थे। वे गाय का ही दूध पीते थे और इसीका घी खाते थे। जिनके घरों में यज्ञ नहीं होता था उनके घरों में भोजन नहीं करते थे। नारदमुनि का भी यही नियम था। वे भी जिस घर से यज्ञ का धूंआ नहीं निकलता था उसके घर में कभी भोजन नहीं करते थे। महात्माजी ने गायत्री मन्त्र, जाप और पंच महायज्ञों का बहुत प्रचार किया है। ये ब्रह्मनिष्ठ, तपोपूत, मान-अपमान, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों से अतीत, सेवापरायण, गुरुभक्तिनिष्णात अत्यन्त अपरिग्रही तथा सरलस्वभाव और उच्चकोटि के महात्मा हैं। आपने ४८ ग्रंथों की रचना की है।

एक दिन महाराजजी ने महात्माजी से कहा कि आप महाराजा पटियाला के समान चमत्कारपूर्वक विज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं या दृढ़ और स्थायी। महात्माजी ने कहा, "मुझे तो इसका ज्ञान ही नहीं कि चमत्कारी विज्ञान कैसा होता है तथा दृढ़ और स्थायी कैसा होता है।" महाराजजी ने सारी बात बताई। एक बार महाराजा पटियाला इंगलैंड गए और एक दिन सम्राट् जार्ज पंचम की बड़ी प्रशंसा करने लगे कि 'आपके राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता। आप संसार में सबसे अधिक वैभवसम्पन्न हैं। मैं आपका राजकोष देखना चाहता हूं जिससे मैं अनुमान लगा सकूं कि आपके पास कितनी धन-सम्पत्ति है।" सम्राट् ने कहा, "मैं पार्लियामेंट की आज्ञा के बिना ऐसा नहीं कर सकता।" महाराजा पटियाला के बहुत आग्रह करने पर सम्राट् ने पार्लिया-मेंट से आज्ञा प्राप्त कर ली। पार्लियामेंट ने इस शर्त पर स्वीकृति दी कि महाराजा को आंखें बांधकर कोष के भीतर ले जाया जाए और आंखें बांधकर ही बाहिर लाया जाए जिससे उन्हें मार्ग का पता न लग सके। महाराजा पटियाला ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। पटियाला नरेश जब भीतर प्रवेश करने लगे तब उनकी आंखें बांध दी गई और जब वे भीतर प्रविष्ट होगए तब खोल दी गई। वे इंगलैंड के राजकोष को देख-कर आश्चर्यचकित होगए। बड़े-बड़े कमरे बने हुए थे। किसी में सोने की ईंटें भरी हुई थीं और किसी में चांदी की, तथा किसी में हीरे, जवाहिरात, मोती, पन्ने तथा नीलम भरे हुए थे। जब वे सब कुछ देख चुके तब उनकी आंखें बांधकर गाड़ी में बिठाकर दूर एक बाज़ार में उतार दिया। पटियाला नरेश वहां आश्चर्यस्तंभित से होकर खड़े रहे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो उन्होंने कोई स्वप्न देखा हो। इस सब मामले की यथार्थता पर उन्हें विश्वास नहीं होता था। उन्हें ऐसे लगता था मानो उन्हें किसी ने मैस्मराईज़ किया हो। इस पर महात्माजी ने महाराजजी के चरण पकड़ लिए और निवेदन किया, "महाराजजी, मैं तो दृढ़, स्थायी और निर्भ्रान्त विज्ञान द्वारा आत्म-दर्शन करना चाहता हूं।" महाराजजी ने उन्हें समझाया कि आप धैर्य तथा शान्ति-पूर्वक अभ्यास करते जाइए, कुछ वर्षों में दृढ़, स्थायी, और निर्भ्रान्त विज्ञान प्राप्त हो जाएगा। महात्माजी ने पुनः निवेदन किया, "मैं तो इस जीवन को आपके श्रीचरणों में समर्पण कर चुका हूं। जब आपकी इच्छा हो तब प्रदान करना।" श्री बी० एन०

दत्तजी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से अभ्यास में लगे हुए थे। महाराजजी की सेवा अन्न, धन, वस्त्रादि से करने के बड़े इच्छुक थे। किन्तु महाराजजी इसे स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि इनको अपने सारे व्यय के लिए रुपया अन्यत्र से प्राप्त हो रहा था। जब दत्तजी ने बहुत आग्रह किया तो समय आने पर लेने के लिए कह दिया। दत्तजी थोड़े समय के अभ्यास से ही स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के सभी पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करके कारण शरीर में प्रवेश करने लग गए थे। इसी प्रकार जगन्नाथजी ब्रह्मचारी, कैप्टेन जगन्नाथजी भी बहुत शीघ्र इस विज्ञान को प्राप्त करके विज्ञानमय कोष में पहुंच गए थे। कई वर्ष तक अभ्यास करके इन्होंने इस विज्ञान को दृढ़भूमि किया। ब्रह्मचारी अगस्तमुनिजी प्रायः मौन ही रहते थे। कई-कई मास का आकार मौन और काष्ठ मौन धारण करके, नमक और मीठे का परित्याग करके कठिन तप द्वारा प्राप्त विज्ञान को दृढ़भूमि करने में संलग्न रहते थे।

श्रीमती शान्ता, शीलादेवी, माता मेलादेवी, ओमप्रकाशजी और रणवीरजी, नारायणदासजी, गुरुचरणदत्त तथा किशनचन्द इत्यादि बहुत से अभ्यासी आए हुए थे। सबने अभ्यास में सन्तोषप्रद उन्नति की। शिविर की समाप्ति प्रीतिभोज और महाराजश्री के उपदेश से की गई।

एक आश्चर्यजनक घटना—श्री महाराजजी ने शिविर समाप्ति के पश्चात् एक मास तक स्वर्गाश्रम में और निवास करने का विचार किया। जब महाराजजी के गंगोत्री जाने में केवल आठ-दस दिन ही शेष थे तब उबराय और उनकी धर्मपत्नी कृष्णादेवीजी तथा इनका लघु पुत्र महाराजजी के दर्शनार्थ आए और गंगोत्री जाने से पूर्वदो-चार दिन के लिए देहरादून पधारने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होंने स्वीकृति नहीं दी। इससे उनको बड़ी निराशा हुई। जब महाराजजी प्रातः सायं अभ्यास के लिए बैठते तो ये दोनों भी इनके साथ बैठ जाते। एक दिन महाराजजी और उबरायजी एक घंटा अभ्यास करके उठ गए किन्तु कृष्णादेवीजी सात बजे से लेकर साढ़े दस बजे तक ध्यानावस्था में निश्चेष्ट समाधिस्थावस्था में बैठी रहीं। उबरायजी ने बड़ी कठिनाई से उठाया। इन्होंने न दूध पीया और न कुछ खाया, अपने पलंग पर जाकर लेट गईं। ये बड़ी उदासीन सी अवस्था में थीं। प्रातःकाल अपने पति के साथ अभ्यास में नहीं आईं। जब महाराजजी और उबराय अभ्यास में बैठे हुए थे तब कृष्णा चारपाई पर लेटे-लेटे ही जोर से चिल्ला कर कहने लगी, "हे मेरे भगवान्, हे मेरे कृष्ण, तू कहां चला गया है? हे कृष्ण भगवान्, तू मुझे छोड़कर कहां चला गया है?" अनेक नामों से संबोधन करके भगवान् को पुकारने लगी। उबराय ने आसन बिछा कर इसे बिठा दिया। वह बहुत देर तक इस आसन पर बैठी रही, फिर वह उठकर जंगल की ओर चल दी और वहां पर एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ होकर बैठ गई। जब बहुत देर तक उसका पता नहीं चला तब उबराय, उनका लड़का और महाराजजी उसे वन में ढूंढने के लिए चल दिए। उसे एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थावस्था में बैठे पाया। उबराय ने इसे हाथ पकड़कर उठाया। वह उठ तो गई किन्तु आंखें नहीं खोलीं। वे बलपूर्वक धीरे से अपने साथ कमरे में ले आए किन्तु तब भी उसने आंखें नहीं खोलीं। उसको चटाई पर लिटा दिया। इसे होश में लाने के लिए महाराजजी ने बड़ा यत्न किया किन्तु उसने आंखें नहीं खोलीं। कभी-कभी भगवान् कृष्ण को जोर-जोर से पुकारने लगती थी।

कृष्णा की एक सहेली भी इन दिनों आई हुई थी। कृष्णा के पति बड़े चिन्तित थे। कृष्णा की सहेली ने इन सब से कहा, "आप घबराएं नहीं। मेरा सारा जीवन साधु-महात्माओं के सत्संग में ही व्यतीत हुआ है। आप स्त्रियों को नहीं जानते। मैंने बहुत देखी हैं। यह स्वयं ही ठीक हो जाएगी।" भोजन परोसा गया। महाराजजी और उबराय खाने लगे। कृष्णा ने महाराजजी की थाली में से कुछ भाग उठाकर उबराय की थाली में रखकर कहा, "यह प्रसाद है, इसे खाओ। इनके प्रसाद से आपका कल्याण हो जाएगा। मेरे समान समाधि लग जाएगी और साक्षात् भगवान् के दर्शन हो जाएंगे।" कृष्णा को भोजन करने के लिए बाध्य किया गया। चार-पांच ग्रास खाने के पश्चात् पुनः इसने अपनी आंखें बन्द कर लीं। जैसे-तैसे फिर उसकी आंखें खुलवाई गईं और भोजन के लिए कहा गया तो कुछ भोजन कर लिया। महाराजजी ने इसकी बाह्य वृत्ति करवाने के लिए इसे बर्तन साफ करने का आदेश दिया। कुछ देर तक तो उसने बर्तन साफ किए और फिर बर्तन छोड़कर अपने मुंह को ही राख से रगड़ने लगी। महाराजजी कृष्णा की इस प्रकार की स्थिति देखकर बड़े चिन्तित हुए। वह अत्यन्त श्रद्धालु तथा भावुक थी। इसके दिल और दिमाग पर भावुकता का अधिक प्रभाव पड़ गया था। इसी भावावेश के कारण इसे अपनी सुधबुध नहीं रही थी। अधिक भावावेश में आकर भक्त कुछ उन्मत्तों जैसा और ज्ञानियों जैसा व्यवहार करने लग जाया करते हैं। अमृतसर में मैंने इस प्रकार का आचरण करते हुए कई भक्तों को देखा है। अब कृष्णा को महाराजजी के कमरे में लाया गया। उबराय ने महाराजजी को इसके ऊपर कुछ प्रयोग करने के लिए निवेदन किया। अब तक इसने आंखें नहीं खोलीं थीं। उबराय उठाएं तो उठ जाती थी, बिठाएं तो बैठ जाती थी, लिटाएं तो लेट जाती थी, और यदि पकड़कर चलाएं तो अस्तव्यस्त पग धरती हुई बेहोशी की हालत में चलती थी। कभी-कभी भगवान् कृष्ण का नाम लेकर पुकारती थी और कभी रुदन करने लग जाती थी। जिस प्रकार भक्त भगवान् के विरह में रोने लगता है इसी प्रकार से यह रो रही थी। कभी यह स्तब्ध हो जाती थी और कभी इसके शरीर में रोमांच हो जाता था। कभी-कभी आंखें बन्द करके चलने लगती थी। कभी शून्य सी हो जाती थी। अनेक प्रकार के सात्विक भाव-विकार उत्पन्न हो रहे थे। कृष्णा को दरी पर लिटा दिया और महाराजजी ने इस पर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। कृष्णा अब होश में आगई और स्वयं ही उठकर बैठ गई और कहा, "नेत्र बन्द करके मैं न जाने किस लोक में चली गई थी। वह श्रीकृष्ण भगवान् का गोलोक था। वहां मैंने जो आनन्द पाया उसे कैसे वर्णन करूं!" इतनी बात कहकर वह धाराप्रवाह से बड़े ऊंचे विज्ञान का वर्णन करने लगी। लगभग डेढ़ घण्टे तक व्याख्यान देती रही। अनेक प्रकार के विज्ञानों का कथन किया। पूछने पर विदित हुआ कि इसने पहिले कभी भाषण नहीं दिया। आज इस प्रकार का भाषण देने का इसका प्रथम अवसर था। १५ वर्ष इसका विवाह हुए होगए, कभी इसने कोई भाषण नहीं दिया और न इसमें इतनी योग्यता ही है। कृष्णा ने अपने पति के पूर्व जन्म के दो सम्बन्ध बताए। श्री आनन्दस्वामीजी का पूर्व जन्म में अपने साथ सम्बन्ध बताया। महाराजजी के साथ भी पूर्व जन्म के सम्बन्ध बताए और कहा कि आप कई जन्म से मेरे गुरु चले आरहे हैं और मैं आपकी शिष्या। महाराजजी, उबराय तथा उनका पुत्र कृष्णा के भाषण को मूकवत् सुनते रहे। लगभग एक घण्टा तक व्याख्यान देकर वह चुप होगई। जब

वह भाषण दे रही थी तब उसके मुखमण्डल पर तेज टपक रहा था, कण्ठ सुरीला होगया था, वाणी में माधुर्य आगया था, भाषा प्रभावशाली थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् सरस्वती उपदेश दे रही हो। भाषण के उपरान्त वह महाराजजी के चरण पकड़कर रोने लगी और कहा, "मेरे पूज्य गुरुदेव! आपने मुझे क्या-क्या दिखा दिया! मैं तो इस योग्य न थी। मुझ पापिष्ठा पर आपने अपार कृपा की है। मैं आपका ऋण कभी नहीं चुका सकती।" महाराजजी ने कहा, "तुम्हारा पुत्र तुम्हारी इस प्रकार की अवस्था देखकर बहुत घबरा गया है। इसे प्यार करो, सान्त्वना दो, स्नेह और प्यार से इसे अपनी गोद में बिठाओ।" कृष्णा ने कहा, "मेरे पति और पुत्र के सब सम्बन्ध समाप्त होगए हैं। मेरे सब बंधन कट गए हैं। अब मैं घर नहीं जाऊंगी। हिमालय में गमन करूंगी।" उबरायजी से कहा, "यदि आप चाहें तो मैं आपका विवाह अपनी छोटी बहिन से करवा सकती हूं। मेरा आपसे पति और पत्नी का सम्बन्ध समाप्त होगया है। अब मैं हिमालय में जाकर अपने प्यारे भगवान् की भक्ति में अपना शेष जीवन व्यतीत करूंगी।" इतना कहकर वह बड़े जोर से रोने लगी। उसने अपने पतिदेव के साथ जाने से बिलकुल इन्कार कर दिया और पुनः भगवान् को उसके अनेक नामों से पुकार-पुकारकर रुदन करने लगी। बहुत देर तक राधा के समान भगवान् के विरह में विलाप करती रही। उबरायजी स्वामी शिवानन्द-आश्रम से डाक्टर को बुला कर लाए। डाक्टर ने कृष्णा के सारे शरीर का भली प्रकार से निरीक्षण किया। कोई शारीरिक कष्ट उसे न था। इन्होंने महाराजजी से पूरा वृत्त कृष्णा का निवेदन किया और कहा "कि इन देवियों को आप कीर्तन, भजन तथा जाप ही सिखाया करें। इनका हृदय कोमल होता है। इन पर आपके मनोबल का प्रभाव अधिक पड़ गया है। इसे ये सहन नहीं कर सकी हैं।" कृष्णा डाक्टर से बहुत नाराज हुई और उसे वहां से चले जाने को कहा क्योंकि उसे केवल महाराजजी में ही विश्वास था और वह उन्हें ही अपना डाक्टर समझती थी। उसका उपचार उन्हींके पास था, अन्य किसी के पास नहीं। इसने आधा घण्टे तक महाराजजी के समक्ष डाक्टर को अंग्रेज़ी में उपदेश दिया। इसे विश्वास था कि डाक्टर योग और समाधि के विषय में कुछ नहीं जानता। योग सीखने का स्त्रियों को पूर्ण अधिकार है। वे इसकी शीघ्र ही अधिकारिणी बन जाती हैं। देवियां पुरुषों की अपेक्षा समाधि के रहस्य और तत्त्व को अधिक समझती हैं क्योंकि इनका हृदय निष्पाप, कोमल, सरल और सात्विक होता है। इनका संसार बहुत छोटा होता है अतः इनके मन में संकल्प और विकल्प कम उत्पन्न होते हैं। इसलिए शीघ्र ही समाधि में स्थिति हो जाती है। इसी प्रकार का उपदेश बहुत देर तक देती रही। डाक्टर ये सब बातें सुनकर लज्जित-सा हो रहा था और उबराय आश्चर्य में डूबा जाता था क्योंकि उसने कृष्णा को कभी ऐसी शुद्ध अंग्रेज़ी बोलते नहीं सुना था। आज प्रथम बार ही उन्होंने इस प्रकार धारावाही अंग्रेज़ी बोलते सुना था। उबराय ने डाक्टर से कृष्णा के व्यवहार के लिए क्षमा-याचना की। उसका दिमाग ठीक नहीं था, इसीलिए जो उसके मन में आया बकती चली गई। डाक्टर ने कहा, "इनको शारीरिक रोग नहीं है। इन्हें किसी प्रकार की दवाई की आवश्यकता नहीं है। महाराजजी ही इन्हें ठीक कर सकते हैं।" ये योगी-राजजी के सुपरिचित थे अतः उबरायजी से फीस नहीं ली। डाक्टर के चले जाने के पश्चात् कृष्णा पुनः अन्तर्मुख होगई। सायंकाल होगई थी, महाराजजी और उबराय-

जी संध्या करने के लिए बैठ गए और दो घण्टे तक ध्यानस्थ रहे। महाराजजी ने कृष्णा को पुनः होश में लाने के लिए प्रयोग किया। रात्रि के लगभग १० बजे इसे होश आई। इसने उबरायजी को अपने शरीर पर हाथ नहीं लगाने दिया क्योंकि वह समझती थी कि वह अभी देवलोक से आई है अतः उसका शरीर शुद्ध और पवित्र है। उसके पतिदेव के स्पर्श से वह अपवित्र हो जाएगी। महाराजजी ने इसे कुछ दूध और मिठाई खाने के लिए दी और उसे सोने के लिए आदेश दिया। वह रात में भली प्रकार सोई, प्रातः उठी तो महाराजजी ने उसे अपने घर जाने की आज्ञा दी। देहरादून जाकर पुनः वह पूर्ववत् होगई। वह पुनः पूर्ववत् भगवान को पुकार-पुकारकर अचेत होगई। पारिवारिक जन सभी इससे बड़े परेशान होगए। कुछ दिनों बाद उबरायजी इसे देहरादून से दिल्ली इसके माता-पिता के पास लेगए। वहां लेजाने का उद्देश्य इसका मन-बहलाव था। वहां जाकर भी इसकी वृत्ति अन्तर्मुखी रही। किन्तु वहां पर कुछ दिन रहने के पश्चात् इसकी स्थिति ठीक होगई। इस प्रकार की अन्तर्मुखी वृत्ति कृष्णा की न कभी हुई थी और न भविष्य में होने की सम्भावना थी।

गंगोत्री प्रस्थान

अबकी बार महाराजजी ने मसूरी होते हुए उत्तरकाशी जाने का विचार किया था। पं० ठाकुरदत्त वैद्य की मसूरी में कई कोठियां थीं। एक कोठी की चाबी उनसे ले ली। कृष्णा के मकान पर उसका हाल पूछने गए, किन्तु वहां नौकर के अतिरिक्त कोई नहीं था। उसीसे सब समाचार विदित हुआ। महाराजजी १५ दिन तक मसूरी विराजे। यहां पर भी इनके कई भक्त थे जो नित्य सत्संग में आते रहे। इसके पश्चात् ये धनौटी, कानाताल, नन्दालगांव तथा धरासू होते हुए उत्तरकाशी पधारे। वहां पर एक सप्ताह पंजाबी क्षेत्र में ठहरकर गंगोत्री प्रस्थान किया।

इस वर्ष गंगोत्री में श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी तथा सेठ रमणलालजी भी आए हुए थे। उत्तरकाशी में योगनिकेतन के लिए जो भूमि खरीदी गई थी उस पर कुटिया बनाने के लिए महाराजजी ने दयालमुनिजी को आदेश दिया कि इस साल शीतकाल में लकड़ी और पत्थर का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। दो कमरे नीचे तथा दो ऊपर और चारों के आगे बराण्डे बनाने का निश्चय किया गया। इसके लिए माता मनसादेवी ने ६००० रु० प्रदान किया। अगस्त के अन्त में स्वामीजी और सेठजी उत्तरकाशी चले गए और महाराजजी अक्तूबर में पधारे। ये पंजाब सिंध क्षेत्र में ठहरे। इस वर्ष भी स्वमीजी ने महाराजजी से तपोवन में साधना-शिविर लगाने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होंने इस साल के लिए इन्कार कर दिया। एक मास उत्तरकाशी में निवास करके महाराजजी स्वर्गाश्रम पधारे।

स्वर्गाश्रम साधना-शिविर

१५ नवम्बर से साधना-शिविर चालू कर दिया गया। अभ्यास में जिन साधकों ने भाग लिया उनमें से मुख्य ये थे :—महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, बी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, सेठ रामकिशोरजी बरेलीवाले, ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनि, श्री गुरुचरणदत्तजी, श्रीमती धर्मवती, सरलादेवी, भाग्यवन्ती, माता मेलादेवी, इनकी पुत्रवधू शीला और शान्ता, सेठ तुलसीराम और इनकी धर्मपत्नी माता

मनसादेवी, इनके पुत्र हरिकिशनदास और अमीरचन्द, नारायणदास कपूर और इनकी पत्नी, योगेन्द्रपाल तथा इनकी धर्मपत्नी, वैद्य कृष्णदयालजी, जयकिशनजी सपत्नीक, शान्ता शास्त्री, बलदेवमित्र और इनकी पत्नी सुमित्राजी। प्रातः ४ बजे से ७ बजे तक दो योग शिक्षण की कक्षाएं लगाई जाती थीं। सायंकाल ६ बजे से ८ बजे तक दोनों कक्षाओं को सम्मिलित अभ्यास करवाया जाता था। प्रातः ८ से ९ बजे तक आसन, प्राणायामादि सिखाया जाता था। महाराजजी जिस व्यक्ति को ध्यान काल में विशेष अभ्यास करवाना चाहते थे उसका नाम लेकर पुकारा करते थे। जिसका नाम लिया जाता था वह सावधान हो जाता था। तब ये जैसा आदेश देते थे वैसा ही अभ्यासी को करना होता था। नित्यप्रति अभ्यासियों को क्रमपूर्वक विज्ञान करवाते थे। जो अभ्यासी जिस प्रकार की प्रार्थना अभ्यास के सम्बन्ध में करता था ये वैसा ही विज्ञान का अभ्यास उसे करवा देते थे। सबके मन समाहित रहते थे। इच्छानुसार सबको विज्ञान प्राप्त हो जाता था। सभी साधक सन्तुष्ट थे। सबकी उन्नति हो रही थी। इन सबमें महाराजजी का मनोबल काम कर रहा था। ये जिसको जो ज्ञान करवाना चाहते थे वह हो जाता था। सब साधकों के पास एक-एक डायरी थी। सभी अपने-अपने अनुभव इसमें लिखते जाते थे। एक दिन महाराजजी ने सब अभ्यासियों को निद्रा का ध्यान करने का आदेश दिया। उस दिन अन्य किसी विज्ञान का ध्यान न करके केवल निद्रा के स्वरूप का ही ध्यान करना था। यह कैसे और कब आती है, उस समय मन, बुद्धि और इन्द्रियों की कैसी अवस्था होती है, इत्यादि विज्ञान प्राप्त करके निद्रा के स्वरूप में ही स्थिर हो जाने का आदेश था। सभी अभ्यासी निद्रा के स्वरूप में स्थिर होगए अर्थात् सब साधना मंदिर में ही सो गए। कभी-कभी सभी साधक केवल संकल्प-विकल्पों के अभाव करने का ही अभ्यास करते थे। किसी प्रकार के संस्कार अथवा विचार का प्रवेश मन और बुद्धि में नहीं होने देते थे। शरीर और अन्तःकरण को बिलकुल शून्य बना देते थे। विचार और वृत्तियों से रहित होकर सबके शरीर और अन्तःकरण जड़वत् हो जाते थे। किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। जो अभ्यासी मूर्ति में विश्वास करते थे वे जिस देवता या भगवान् के अवतार श्री कृष्णचन्द्रजी, विष्णुभगवानादि जिसके भी दिव्य रूप में दर्शन करना चाहते थे उनके सामने उसी देवता की मूर्ति आकाश में सामने आकर खड़ी हो जाती थी और वे अपनी इच्छानुसार जब तक चाहते थे दर्शन करते रहते थे। इन साधकों में महात्मा प्रभु आश्रितजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, बी० एन० दत्तजी, कैप्टेन जगन्नाथजी, रामकिशोरजी, सेठ तुलसीरामजी, एन० डी० कपूर और श्रीमती धर्मवतीजी हृदय प्रदेश के पदार्थों का साक्षात्कार कर रहे थे और शेष अभ्यासी ब्रह्मरंध्र के पदार्थों का, अन्नमय तथा प्राणमय कोषों का अभ्यास कर रहे थे। इन सब विज्ञानों का वर्णन महाराजजी ने अपने ग्रन्थों 'आत्म विज्ञान' 'बहिरंग योग' तथा 'ब्रह्म विज्ञान' में किया है। वहां पर देखें। ये तीन ग्रन्थ तीन अमूल्य निधियां हैं जिनकी रचना विश्व-कल्याण के लिए की गई है।

इन्द्रा की रोगमुक्ति—इन्द्रा एन० डी० कपूर की कनिष्ठा भगिनी है। सारे परिवार का उससे बड़ा प्यार था। वह लगभग डेढ़ साल से बीमार थी। उसके पांव में अत्यधिक पीड़ा रहती थी। बिलकुल चल-फिर नहीं सकती थी। दिन-रात पलंग पर

पड़ी रहती थी। अनेक उपचार किए गए किन्तु बेचारी को आराम नहीं हुआ। उसकी ससुराल पक्ष के लोग उस के पतिदेव का दूसरा विवाह करने के लिए समुद्यत होगए थे। श्री कपूर बड़े चिन्तित थे। एक दिन अत्यन्त दुःखित होकर महाराजजी से अपनी व्यथा सुनाई और अपने मानसिक बल प्रयोग द्वारा उसे स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। इनकी मानसिक शक्ति इन दिनों बड़ी प्रबल थी। जिस कार्य को वे करना चाहते थे वह अवश्य पूरा हो जाता था, जबतक वह पूर्ण नहीं होता था इन्हें चैन नहीं पड़ती थी। उसी पदार्थ का रूप-सा बन जाते थे। इसके साथ ही इनकी निश्चयात्मिका बुद्धि भी बड़ी बलवती थी। जिस बात का निर्णय कर लेते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते। दृढ़निश्चयी मनुष्य सदा सफलता लाभ करता है। महाराजजी पूर्ण दृढ़निश्चयी थे, इसीलिए सफलता देवी सदा उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती थी। एन० डी० कपूर की करुणाजनक प्रार्थना को सुनकर महाराजजी द्रवीभूत होगए और कुछ काल ध्यानावस्थित होने के उपरान्त कहा, "बेटी स्वस्थ हो जाएगी, उसका रोग जाता रहेगा। आप चिन्ता न करें। किन्तु डेढ़-दो वर्ष में चलने-फिरने के योग्य होगी।" महाराजजी ने इन्द्रा की फोटो मंगवाकर उस पर प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया और वह डेढ़ साल में पूर्ण स्वस्थ होगई और अपने पतिदेव भीमसेन के साथ योगीराजजी के दर्शन करने के लिए स्वर्गाश्रम गई।

सुमित्रा को वरदान—महाराजजी महान् योगी हैं, सिद्ध पुरुष हैं, कई प्रकार की सिद्धियां इन्हें प्राप्त हैं। मनोबल इनका अपूर्व है। दयालुता तथा उदारता अपार है। बात की बात में रोगियों को रोगमुक्त कर देते हैं। दुःखियों के दुःख को एक क्षण में दूर करते हैं तथा पतितों का परित्राण करते हैं। संकटों के निवारक और पापियों के उद्धारक हैं। निर्धनों को धनवान, निर्बलों को बलवान तथा निःसन्तानों को पुत्रवान बना देना आपके बाएं हाथ का खेल है। हजारों आदमियों को विविध प्रकार के संकटों से आपने मुक्त करके उनके जीवनों को सुखी बनाया है। सुमित्रादेवी महाराज की शिष्या तथा भक्ता है। तीन-चार साल से अभ्यास करने आती है। इसके पतिदेव आध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति नहीं हैं। इसी देवी की प्रेरणा से उनकी इस ओर रुचि हुई है। वे भी प्रतिवर्ष साधना शिविर में सम्मिलित होते हैं। सन्तान के अभाव के कारण दोनों चिन्तित और दुःखी रहते थे। एक दिन सुमित्रादेवी ने इस सम्बन्ध में महाराजजी से प्रार्थना की। महाराजजी ईश्वर-भक्ति में इसकी रुचि देखकर प्रसन्न थे। वे नहीं चाहते थे कि यह कीचड़ में फंसे। सन्तान की ममता में एक बार फंसकर फिर उससे बाहिर निकलना बड़ा कठिन हो जाता है। सारा जीवन सन्तान के पालन, पोषण, शिक्षण, आजीविका, विवाहादि में ही व्यतीत हो जाता है। इस झंझट से मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता। इन्होंने उसे बहुत समझाया किन्तु उसमें बड़ी प्रबल पुत्रेषणा थी। उसने स्वयं भी दुबारा आशीर्वाद के लिए निवेदन किया और अपनी सुपरिचित देवी शान्ता से भी निवेदन करवाया। महाराजजी ने सुमित्रा से पूछा, "एक ओर सन्तान की ममता तथा दूसरी ओर योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार, इन दोनों में से तुम किसे पसन्द करती हो?" सुमित्रा ने पुनः निवेदन किया, "महाराजजी, हम गृहस्थी हैं, बालबच्चों के बिना घर सूना और वन के समान लगता है। मातृऋण को पूरा करना भी एक महान कर्त्तव्य है। सन्तान

के बिना गृहस्थाश्रम का उद्देश्य भी पूरा नहीं होता। वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् ज्ञान, ध्यान, योग, तप तथा जापादि किए जा सकते हैं। गृहस्थाश्रम में तो सन्तान होनी ही चाहिए।" उसके आग्रह को देखकर महाराजजी ने एक पत्र अपने भक्त वैद्य धर्मचन्द्र को सुमित्रा के उपचार के लिए लिख दिया जिससे इसके सन्तानोत्पत्ति हो सके। सुमित्रा यह जानकर बड़ी हर्षित हुई। उसने समझा अब सब चिन्ताएं चली जाएंगी। महाराजजी का वरदान प्राप्त होगया। सब आशाएं पूर्ण होगईं। इनका आशीर्वाद अवश्य सफल होगा। पत्र को लेकर वैद्यजी के पास अमृतसर गई। उपचार हुआ और इसने एक कन्या को जन्म दिया। इसका नाम प्रमिला रखा और सुमित्रा इस बच्ची को लेकर अपने पति बलदेवमित्र के साथ स्वर्गाश्रम में श्री महाराजजी के चरण स्पर्श करने के लिए गई। सन्तान तो उत्पन्न होगई किन्तु ईश्वर-भक्ति से वंचित रह गई। अमूल्य हीरे के स्थान पर कांच मणि खरीद ली।

गंगोत्री के लिए प्रस्थान

चार मास का साधना-शिविर समाप्त करके महाराजजी ने एक मास तक स्वर्गाश्रम में निवास किया और तत्पश्चात् गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में कुछ दिन तक उत्तरकाशी में ठहरे और फिर गंगोत्री पधारे। महाराजजी का योग निकेतन स्वामी दयालमुनिजी के परिश्रम से बनकर तैयार होगया था। कुटियाएं एक दूसरी से कुछ फासले पर बनाई गई थीं जिससे ध्यान और जाप में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो। इसमें बारह कुटियाएं, चार रसोइयां, एक औषधालय, तीन स्नानघर तथा चार शौचालय बनाए गए। कुटियाओं के सामने अच्छा बड़ा सहन है। शाकादि तथा फूल लगाने के लिए पर्याप्त भूमि खाली छोड़ दी गई है। यह योग विद्या का प्रशिक्षणालय अथवा योग-साधना केन्द्र उन पूज्य गुरुदेव की स्मृति में बनाया गया था जिनसे हरसिल में १७ घण्टे में सम्पूर्ण आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान की प्राप्ति हुई थी। प्रशिक्षणालय के अभाव में योग-प्रशिक्षण का कार्य सुचारुरूपेण चलना असंभव था। इस महान कार्य के लिए एक निजी भवन की परमावश्यकता थी। उत्तरकाशी में योग-निकेतन के लिए भूमि खरीद ली गई थी और उस पर भवन निर्माण प्रारम्भ होगया था। ऋषिकेश में मौनी की रेती पर एक ऊंची पहाड़ी पर भवन निर्माण हो रहा है। योग-प्रशिक्षणालयों की स्थापना पूज्य महाराजजी की विश्व को एक अपूर्व देन है। इन प्रशिक्षणालयों से सैंकड़ों व्यक्ति प्रतिवर्ष लाभ उठा रहे हैं, जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मार्ग दर्शन प्राप्त कर रहे हैं।

गंगोत्री के योग निकेतन के निर्माण में महाराजजी ने ३०००० रुपया व्यय किया। यह निकेतन एकान्त और शान्त स्थान पर भागीरथी के तट पर बनाया गया है। १९५३ में यह आश्रम बनकर तैयार होगया था। यहां के वातावरण में आध्यात्मिकता के परमाणु ओतप्रोत हैं। हजारों वर्षों से इस पुण्यभूमि पर ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों, योगियों और भक्तों ने इस भूभाग में रहकर अध्यात्म चिन्तन करके तत्वार्थाधिगम किया है। गगन मण्डल में परिपूर्ण उनकी विचारधाराएं आज भी साधकों तथा अभ्यासियों को अध्यात्म-पथ पर चलने की प्रेरणाएं प्रदान करती हैं और अध्यात्म का मार्ग जो 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' है वह सुगम्य, सुबोध और प्रशस्त हो जाता है। इस आश्रम में निवास करने वाले साधक प्रतिपल परमात्मा के

सान्निध्य का अनुभव करते हैं। श्री अरविन्द के शब्दों में वे सदैव उसके साहचर्य में निवास करते हैं।

स्वर्गाश्रम गमन

दशहरे के पश्चात् महाराजजी उत्तरकाशी पधार गए। वहां पर एक मास निवास करके स्वर्गाश्रम पधारे और वहां पर पूर्ववत् एक नवम्बर से साधना शिविर प्रारंभ कर दिया। इस वर्ष गंगाजी के तट पर कानपुरवाली धर्मशाला में साधना-शिविर का कार्यक्रम चालू किया गया। इसमें अभ्यासियों की कक्षाएं लगाने के लिए दो बड़े-बड़े कमरे थे। यह स्थान नितान्त एकान्त और शान्त था। अभ्यासियों का भोजन बनाने के लिए महाराजजी ने इस वर्ष एक पृथक् सेवक का प्रबंध कर दिया था। इस भोजनालय तथा भण्डार की व्यवस्था कैप्टन जगन्नाथजी के सपुर्द की गई। निर्धन संन्यासी, वानप्रस्थी तथा ब्रह्मचारी साधकों को निःशुल्क दूधादि दिया जाता था। शेष अभ्यासी जो भोजन करते थे उनमें जो कुछ व्यय होता था समान रूप से बांट दिया जाता था।

दत्तजी की महाराज के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। इन्होंने एक दिन महाराजजी से निवेदन किया, "आपने मेरी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं दिया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरे पास जो भी कुछ है वह धर्मपूर्वक अर्जन किया हुआ है। आपके चरणों में मैं अपना तन, मन तथा धन अर्पण कर चुका हूं। मैं आपको अपना आराध्य देव मानता हूं। मैं आपके कुल खर्चे का उत्तरदायित्व लेना चाहता हूं और जीवनपर्यन्त आपका भोजन, वस्त्र, सेवक, यात्रादि का सब खर्चा दूंगा। जबसे मैंने आपके श्रीचरणों का आश्रय लिया है आप मेरे गुरु ही नहीं पिता भी हैं। मेरे लड़के की पर्याप्त आय है। उसको मुझसे रुपया लेने की आवश्यकता नहीं है और पत्नी के खर्च का अलग प्रबन्ध किया हुआ है। मुझे ४०० रु० मासिक पैन्शन मिलती है। मेरा खर्च हो जाने के पश्चात् मेरे पास बहुत रुपया बच जाता है। इसके अतिरिक्त शूगर मिल में मेरे कई शेयर हैं। इनकी आय को मैं आपके चरणारविन्द में अर्पण करना चाहता हूं। माता मनसादेवी से जो आपको रुपया मिल रहा है उसे आप बन्द कर दें और मुझसे लेने की कृपा करें।" इनकी बातें सुनकर महाराजजी ने कहा, "तुलसीरामजी ने मुझसे दीक्षा ली है। वे मेरे विधिपूर्वक शिष्य बने हैं। गुरु पर रुपया व्यय करना शिष्य का कर्त्तव्य है अतः मैं उनकी पत्नी को रुपया भेजने से किस प्रकार इन्कार करूं?" इस पर दत्तजी ने पुनः निवेदन किया, "महाराजजी, आप मुझे भी मंत्र-दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लीजिए। मैं तो जबसे आपके चरणारविन्दों में उपस्थित हुआ हूं तभी से आपको अपना गुरु मानता चला आ रहा हूं।" महाराजजी ने कहा, "गुरु का शिष्य के प्रति महान कर्त्तव्य होता है। उसके कल्याण की चिन्ता करनी पड़ती है। उसके इस लोक तथा परलोक का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। उसके हानि, लाभ, सुख, दुःखादि की चिन्ता रखना गुरु का कर्त्तव्य होता है। जितना परिवार बढ़ता है उतना ही बंधन अधिक हो जाता है, अतः आप इस विषय में बहुत आग्रह न करें।" महाराजजी के उत्तर से दत्तजी बड़े दुःखी हुए। सदैव चिन्ता-ग्रस्त रहने लगे। अभ्यास की भी उन्नति रुक गई। पागलों की सी चेष्टाएं करने लगे। इनका स्वभाव बड़ा कोमल है। प्रकृति बड़ी शान्त है। किसी की निन्दा तथा चुगली

कभी नहीं करते। जहां महाराजजी को देखते वहीं इनका चरण स्पर्श करते थे और इन्हें अपना जीवनदाता समझते थे। महाराजजी ने कैप्टन जगन्नाथजी को इनका ध्यान रखने का आदेश दिया। इन दिनों दत्तजी तथा कैप्टन साहेब दोनों गंगा धर्मशाला में ही रहा करते थे। एक दिन दत्तजी ने रात्रि के साढ़े दस बजे महाराजजी का दरवाज़ा खटखटाया। महाराजजी आए और पूछा, "आप इस समय यहां क्यों आए हैं? यह मिलने का समय नहीं है।" जब महाराजजी को पता चला कि ये अपनी पुरानी प्रार्थना लेकर आए हैं तब इन्होंने उनसे कहा कि प्रातः इस पर विचार किया जाएगा, अभी आप जाओ। दूसरे दिन महाराजजी ने बड़े स्नेह और प्यार से इनको बसन्त पंचमी पर दीक्षा देने के लिए कहा, और आदेश दिया कि परसों से यज्ञ प्रारंभ किया जाए। गायत्री का जाप करो। ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञ करवाया जाए और स्वयं यजमान बनें। एक मास तक बराबर यज्ञ होता रहा और बसन्त पंचमी पर पूर्णाहुति हुई। इसी दिन उपनयन विधि सम्पन्न की गई। महाराजजी ने अपने सारगभित उपदेश में गुरु और शिष्य के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला। मंत्र-दीक्षा दी गई। इस अवसर पर दत्तजी ने पुनः अपना तन, मन तथा धन श्री महाराजजी के चरणों में समर्पित कर दिया। इन्होंने फिर रुपयों के लिए प्रार्थना की। महाराजजी ने केवल १२५ रुपये मासिक लेना स्वीकार किया। दत्तजी को १९५४ में दीक्षा दी गई थी, तभी से ये यह रुपया महाराजजी की भेंट कर रहे हैं। इस अवसर पर दत्तजी ने कहा, "महाराजजी, मेरे पिताजी का मेरे बाल्यकाल में ही स्वर्गवास होगया था, अतः मैं पितृसुख से वंचित रहा। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप प्रथम मेरे पिता हैं और फिर गुरुदेव।" इसी वर्ष महाराजजी ने दत्तजी को पूर्णरूपेण आत्म-विज्ञान करवा दिया।

इस वर्ष महात्मा प्रभु आश्रितजी साधना शिविर में सम्मिलित हुए थे। ये गत चार साल से आकर साधना कर रहे थे। संपूर्ण रूप से इन्हें आत्म-साक्षात्कार होगया था। इन्हें महाराजजी ने अन्य लोगों को आत्म-विज्ञान प्रदान करने का अधिकार दे दिया।

श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, कैप्टन जगन्नाथजी और रामकिशोरजी को भी विशेष रूप से पंचकोषों का साक्षात्कार करवा कर आत्म-स्वरूप में स्थिति करवाई गई।

१५ मार्च को ४ मास के साधना शिविर की समाप्ति हुई। सबको प्रीति-भोजन करवा कर विदा दी गई। पूर्ववत् महाराजजी शिविर के पश्चात् एक मास तक और स्वर्गाश्रम में विराजे। इन्हीं दिनों तुलसीरामजी के सुपुत्र अमीरचन्दजी दर्शनार्थ आए। इन्होंने कुछ दिन तक एकान्त निवास करके महाराजजी के पास साधना की। थोड़े दिनों में ही इन्होंने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब ये जाने लगे तब महाराजजी से निवेदन किया कि "मैं आपसे कई वर्षों से प्रार्थना कर रहा हूं कि आप मेरी आर्थिक सेवा स्वीकार करें किन्तु आपने अब तक प्रार्थना स्वीकार नहीं की है। आप मुझसे २००० रुपये वार्षिक लेने की कृपा करें।" महाराजजी को इनके माता-पिता बहुत रुपया देते थे अतः इन्होंने अमीरचन्दजी से रुपया लेना उचित नहीं समझा। जब इन्होंने बहुत ही आग्रह किया तब महाराजजी ने १००० रुपये वार्षिक लेना स्वीकार किया।

४ मई १९५५ में उत्तरकाशी में योग निकेतन का उद्घाटन—स्वर्गाश्रम में एक मास तक रहने के पश्चात् श्री महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। यहां पर योग

निकेतन का भवन निर्माण हो चुका था। ४ मई १९५५ को इसके उद्घाटन की व्यवस्था की गई। इस अवसर पर सभी गण्य, मान्य तथा प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे। उत्तरकाशी के सब सन्तों को भोजन खिलाया गया। बृहद् यज्ञ करवाया गया। सबको यथायोग्य दान-दक्षिणादि दी गई। नगर से जो महानुभाव पधारे थे उनका भी यथोचित सम्मान किया गया और मिष्टान्न बांटा गया। आश्रम का उद्घाटन श्री आनन्द-स्वामी सरस्वतीजी महाराज से करवाया गया। इस शुभावसर पर ब्रह्मचारी अगस्त्य-मुनिजी, श्रीमती धर्मवती तथा श्रीमती भाग्यवन्तीजी भी आई थीं।

गंगोत्री प्रस्थान

उत्तरकाशी के योग निकेतन के उद्घाटन के पश्चात् महाराजजी गंगोत्री पधारे। दो वर्ष से महाराजजी ने १५ जून से १५ सितम्बर तक ३ मास का साधना शिविर यहां पर भी प्रारम्भ कर दिया था। जो अभ्यासी यहां पर आते थे उन्हें साधना करवाई जाती थी। इस वर्ष महाराजजी गंगोत्री ४ मास तक रहे। श्री आनन्द स्वामीजी २ मास तक रह कर ही चले गए और अगस्त्यमुनिजी महाराजजी के साथ ही नीचे गए। योगीराजजी ४० दिन तक उत्तरकाशी विराजे। इसके पश्चात् ७ नवम्बर को स्वर्गाश्रम में पधारे और साधना-शिविर की सब व्यवस्था करवाई। १५ नवम्बर से पूर्ववत् अभ्यास प्रारम्भ करवा दिया गया। इस बार लगभग ३० साधक अभ्यास के लिए आए थे।

सेठ तुलसीरामजी को जीवन दान

दिसम्बर मास में अमीरचन्दजी और हरिकृष्णदासजी के पत्र आए जिनमें सूचित किया गया था कि सेठ तुलसीरामजी दो मास से बहुत बीमार हैं। ज्वर बना रहता है, अत्यधिक अजीर्ण रहता है। बार-बार वमन होता है। प्रायः बेहोशी की हालत में पड़े रहते हैं। अपने शरीर का परित्याग करने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं और इसके लिए दिन और तारीख भी नियत कर रखी है। इस अवसर पर गुरुदेव का पास होना अत्यन्त आवश्यक है, आप अवश्य पधारें। हमें मालूम है कि ऋषिकेश से नीचे न उतरने का आपने एक नियम सा बना रखा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी महाभारत के युद्ध में शस्त्र न ग्रहण करने का नियम बनाया हुआ था परन्तु जब उनके शिष्य अर्जुन के प्राण संकट में पड़ गए तब उन्होंने भी अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की रक्षार्थ अपने सुदर्शन चक्र को उठा लिया था। महाराजजी से इन पत्रों का उत्तर न पाकर इन्होंने ४-५ तार दिए। चिट्ठियों और तारों को सब अभ्यासियों को सुनाकर महाराजजी ने उनकी सम्मति मांगी और कहा, "सेठ तुलसीराम को गुरु-दीक्षा देते समय हमने संकट काल में उनकी पूरी सहायता करने का वचन दिया था।" सभी अभ्यासियों ने एक स्वर से महाराजजी को बम्बई जाने की सम्मति दी और कहा कि "हम सब आपकी अनुपस्थिति में आपकी फोटो के समक्ष बैठकर साधना करते रहेंगे।" सेठ तुलसीरामजी की भी प्रबल इच्छा थी कि उत्तरायण प्रारम्भ होने पर एकादशी के दिन जब प्राण निकलें उस दिन गुरुदेव का वरद हाथ उनके वक्षस्थल पर रहे और वे जिस लोक में चाहें वहीं उन्हें भेज दें।

इन दिनों दैनिक मिलाप के प्रधान सम्पादक श्री रणवीरजी भी एक मास के लिए अभ्यासार्थ स्वर्गाश्रम में आए हुए थे। यह भी महाराजजी के साथ बम्बई जाने के लिए समुद्यत होगए। इन्होंने सोचा कि अभ्यास नहीं तो श्री महाराजजी का सत्संग तो रहेगा। यह दोनों स्वर्गाश्रम से हरिद्वार गए और वहां सेठजी के मकान आनन्द निकेतन में ठहरे और वहां से टेलीफोन करके सेठ तुलसीरामजी के स्वास्थ्य के बारे में पूछा और अपने पहुंचने की भी सूचना दी। रात्रि के दस बजे रेलगाड़ी में सवार होकर दिल्ली पहुंचे। वहां से बम्बई हवाई जहाज़ से जाने का विचार था किन्तु बड़े दिनों की छुट्टियां होने के कारण इसमें स्थान नहीं मिल सका, अतः रेलगाड़ी से जाने का निश्चय कर लिया। रणवीरजी के सब पारिवारिक जन महाराजजी के दर्शनार्थ स्टेशन पर उपस्थित हुए। महाराजजी के हरिद्वार से नीचे न उतरने के नियम को तोड़ने पर सबको आश्चर्य हो रहा था और अपने मन में विचार कर रहे थे कि सेठ तुलसीराम पर इनकी विशेष कृपा होगी, तभी तो इस नियम को तोड़ा है। रणवीरजी ने अपने उपस्थित पारिवारिक सदस्यों से कहा, "कई वर्षों के पश्चात् बड़ी कठिनाई से कार्यालय से अवकाश प्राप्त हुआ था। सोचा था, महाराजजी के चरणों में रहकर जीवन का कुछ सुधार करूंगा। एकान्त और शान्त वातावरण में रहने का अवसर लाभ होगा। परन्तु यह भाग्य में नहीं था, अतः २-३ दिन में ही वापिस लौटना पड़ा और दिल्ली की अपेक्षा अधिक प्रवृत्ति के स्थान बम्बई में जा रहा हूं। विधाता के नियमों का किसको ज्ञान है! मनुष्य कुछ सोचता है और विधाता कुछ और। सच है, मेरे मन में कुछ और थी विधाता के मन और।" दिल्ली से फर्स्ट क्लास की दो टिकट लेकर बम्बई के लिए प्रस्थान किया। दो दिन में बम्बई पहुंचे। वहां पर सेठजी का सारा परिवार फूल मालाएं लेकर महाराजजी के स्वागत के लिए स्टेशन पर आया हुआ था और इन्हें मेरीन ड्राईव पर प्रेमकुटी में ले गए। यहीं पर सेठजी बीमार थे। सेठजी बेहोश थे, महाराजजी ने उनकी बेहोशी मिटाने के लिए बहुत जोर से आवाज़ लगाई। वे होश में आए और महाराजजी को देखकर रुदन करने लगे। बड़ी कठिनता से हाथ जोड़कर प्रणाम करने का प्रयत्न किया। उनकी लड़की ने उनके दोनों हाथ जोड़कर इनकी छाती पर रख दिए। बहुत देर तक सेठजी की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होती रही। महाराजजी ने अपना स्नेहसिंचित वरद हाथ सेठजी के शिर पर रखकर कहा, "मुझे पत्रों और तारों द्वारा विदित हुआ है कि आप अपने शरीर को अब निकम्मा और निरर्थक समझकर ५-६ दिन में त्यागना चाहते हैं। आपने अपनी सब सम्पत्ति तो अपने पुत्रों और पुत्रियों को बांट दी है। अब जाते समय अपने गुरु को भेंट में क्या दोगे? अब तो आपका शरीर ही आपके पास शेष है, आप इसे ही गुरु की भेंट कर दो।" महाराजजी ने पुष्पा से गंगाजल मंगवाया और सेठजी के हाथ में देकर संकल्प मंत्र पढ़कर जल को छुड़वाया और सेठजी से उनका शरीर ले लिया और सेठजी से कहा, "अब इस शरीर पर आपका कोई अधिकार नहीं रहा है। अब यह हमारा हो चुका है। अब हम इसको जाने नहीं देंगे, जब तक हमारी इच्छा होगी इसे अपने पास रखेंगे।" परिवार के तथा अन्य सब लोग महाराजजी के वचनों पर बड़ा आश्चर्य कर रहे थे और साथ ही हर्षित भी हो रह थे। सेठजी से महाराजजी ने कहा, "एक सप्ताह में शरीर त्यागने की भावना अब आपको अपने मन में से निकाल देनी चाहिए। अब यह शरीर हमारा हो चुका है। हम इसे कहीं जाने नहीं देंगे।" सभी

महाराजजी की आश्चर्यजनक लीला को देखकर अचम्भित हो रहे थे। महाराजजी ने जितने लोग वहां उस कमरे में थे सबको बाहिर जाने का आदेश दिया क्योंकि अब वे सेठजी पर अपने मनोबल का प्रयोग करने वाले थे। इन्होंने सबको विश्वास दिलाया कि हम सेठजी को पूर्ण स्वस्थ करके बम्बई से जाएंगे। महाराजजी ने बराबर एक घण्टा तक प्रयोग किया और भगवान् से इनकी नीरोगता के लिए प्रार्थना की। इसके परिणामस्वरूप सेठजी ने अपनी आंखें स्वयं खोल लीं और कहा, 'मुझे भूख लगी है।' खिचड़ी खाने की इच्छा प्रकट की। महाराजजी ने नर्स को बुलाया और शीघ्र खिचड़ी बनाने के लिए आदेश दिया। जब खिचड़ी बनकर आगई तब महाराजजी के आदेश से नर्सों ने उन्हें तकिए के सहारे से बिठा दिया और सेठजी को स्वयं महाराजजी ने अपने हाथों से खिचड़ी खिलाई और मुस्कराते हुए कहा, "अब ये नवजात बालक हैं, इसलिए इन्हें खिचड़ी हम खिला रहे हैं। इनकी मृत्यु को हमने लौटा दिया है। आज इनका नया ही जन्म समझना चाहिए।" यह देखकर सारा परिवार आश्चर्य से स्तंभित सा हो रहा था। महाराजजी ने स्वयं अपने हाथ से खिचड़ी खिलाई। सेठजी बहुत देर तक बैठे रहे। वमन नहीं हुआ। आज दो मास पश्चात् सेठजी ने अन्न ग्रहण किया था। इसके पश्चात् सेठजी ३-४ घण्टे तक सोते रहे। रणवीरजी यह सब कुछ अपनी आंखों से देखकर बड़े आश्चर्यान्वित हो रहे थे। महाराजजी के साथ भोजन करके ये अपने भाई सर्वमित्र से मिलने चले गए और सेठजी का परिवार अपने-अपने काम में लग गया। इन्हीं दिनों श्री आनन्दस्वामीजी भी एक वर्ष तक अफ्रीका में आर्यसमाज का प्रचार करके वापिस बम्बई आगए थे। सायंकाल ये महाराजजी से मिलने आए। सेठजी अब कुछ-कुछ बातें भी करने लग गए थे। स्वामीजी ने सेठजी से कहा, "आपको महाराजजी ने बचा लिया है। अब ये आपको पूर्ण स्वस्थ करके जाएंगे। अब आप बिल्कुल निश्चिन्त हो जाएं।" सेठजी की पाचन शक्ति अब ठीक होगई। साधारण भोजन पचने लग गया। पलंग पर बैठना प्रारम्भ कर दिया। महाराजजी दिन में तीन बार आधा-आधा घण्टा सेठजी के ऊपर मानसिक प्रयोग करते थे। तीन चार दिन में ही ये स्वस्थ होगए।

प्रेमकुटी के नीचे एक सत्संग भवन था। स्वामी प्रेमपुरीजी इन दिनों यहीं निवास कर रहे थे। यहां इन्होंने एक फ्लैट मोल ले लिया था। स्वामी निर्मलजी भी प्रातःकाल यहां सत्संग किया करते थे। सेठ हरिकृष्णदास ने महाराजजी से निवेदन किया कि नीचे सत्संग भवन के सब सत्संगी आपके दर्शन करना चाहते हैं। आप नीचे पधारकर सबको दर्शन देने की कृपा करें। जब ये नीचे पधारकर मंच पर विराजे तब हरिकृष्णदासजी ने महाराजजी के विषय में निम्न प्रकार से कहा, "श्री योगाचार्य बालब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज सर्व शास्त्रों के विद्वान् और योग में पारंगत हैं। बहुत वर्षों तक गंगोत्री हिमालय में निवास करके यहां पधारे हैं। आप ४ मास का साधना शिविर स्वर्गाश्रम में लगाने के लिए गंगोत्री (हिमालय उत्तराखण्ड) से शीतकाल में आया करते हैं। ये बहुत वर्षों से हरिद्वार से नीचे नहीं उतरते थे। आप मेरे पूज्य पिताजी के गुरु हैं अतः हमारे सारे परिवार के ही गुरु हैं। मेरे पिताजी तथा हम सबने कई बार इनके चरणों में बैठकर साधना की है। मेरे पिताजी को दीक्षा देते समय आपने वचन दिया था कि यदि आपके ऊपर कोई विशेष संकट उपस्थित

हो तो मुझे स्मरण कर लेना, मैं आपके संकट का निवारण करने पहुंच जाऊंगा। मेरे पिताजी के जीवन की आशा जाती रही थी। इन्होंने अपने प्राण-त्याग का दिन भी निश्चित कर लिया था। महाराजजी के वचन का स्मरण करके हम सब बहिन और भाइयों ने इन्हें पत्र और तार देकर बुलाया है। इन्हें यहां पधारे आज ४ दिन होगए हैं। आपने अपनी विशेष कृपा से मेरे पिताजी को जीवन दान किया है। मेरी माताजी महाराजजी से यही वरदान मांगा करती थीं कि मेरी मृत्यु मेरे पतिदेव की मृत्यु से पूर्व हो। मैं संसार में विधवा होकर नहीं रहना चाहती। उस पतिव्रता साध्वी देवी ने गत वर्ष परलोक गमन किया है। महाराजजी के योग और मनोबल तथा विविध प्रकार की सिद्धियों को अनेक बार देखा है। हम आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे और प्राण-धन से आपकी सेवा के लिए सदैव समुद्यत रहेंगे।" श्री हरिकृष्णदासजी के भाषण को सुनकर सभी श्रोतागण आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से पूज्य महाराजजी के दर्शन कर रहे थे। इसके पश्चात् अन्य लोगों ने भी महाराजजी के प्रति प्रशंसात्मक, श्रद्धा और भक्ति पूर्ण भाषण दिए। इसके बाद सभा विसर्जित होगई।

सेठ हरबंसलालजी का समागम—सेठ हरबंसलालजी मरवाह प्रेमकुटी में महाराजजी के दर्शनार्थ पधारे। इन्होंने श्री आनन्दस्वामीजी महाराज से आपकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। इससे प्रेरित होकर ये प्रेमकुटी में दर्शन करने के लिए आए थे। महाराजजी के महान व्यक्तित्व, योग तथा मनोबल, ब्रह्मवर्चस्व तथा आध्यात्मिक शक्ति, तप तथा त्याग, और उदारता तथा दयालुता से बहुत प्रभावित हुए। ये नित्य सान्ताक्रुज से महाराजजी के दर्शन करने के लिए आते थे। इन्हें नित्य ही अपनी कार में इधर-उधर घूमने जाने के लिए प्रार्थना किया करते थे जिससे ये उनके सान्निध्य से लाभ उठा सकें। ये अपनी अनन्य श्रद्धा और भक्ति महाराजजी के प्रति बढ़ा रहे थे। इन्होंने महाराजजी को तथा आनन्दस्वामी सरस्वतीजी को अपनी कोठी पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया और वहीं पर महाराजजी का प्रवचन भी करवाया और इनसे स्वर्गाश्रम में अभ्यासार्थ जाने के लिए निवेदन किया। महाराजजी के बम्बई में कई भक्त रहते थे, उन सब ने इन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। लाला शिवसहाय-मल की सुपुत्री गौरांदेवी के सुपुत्र मोहनलाल राजकुमार की कोठी पर भी पधारे। महाराजजी अपनी परमभक्ता श्रीमती आज्ञावतीजी को भी चर्चगेट पर मिलने पधारे।

महाराजजी को बम्बई पधारे ६ दिन हो चुके थे। सेठ तुलसीरामजी ने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लिया था, इधर अभ्यासियों के स्वर्गाश्रम से तार आरहे थे, अतः इन्होंने सेठजी से कहा कि "कल आपका मृत्यु योग समाप्त हो जाएगा, इसलिए हम परसों यहां से चले जाएंगे। अब आपके शरीर में किसी प्रकार का कोई रोग नहीं रहा है। केवल थोड़ी कमज़ोरी शेष रही है। यह भी खान-पान से शीघ्र जाती रहेगी और आप बाहिर भ्रमणार्थ जा सकेंगे।" इसी बीच में महाराजजी के परम भक्त रामजी लड्ढा दलाल तथा महाराजजी की शिष्या श्रीमती रम्भादेवी इनके दर्शनार्थ आए। रामजी अफ्रीका में व्यापार करते थे। इनकी कोठी पास ही थी। इन्होंने आमन्त्रित किया और अपने मकान पर उपदेश करवाया। तत्पश्चात् हरिकिशनदासजी तथा स्वामी निर्मलजी महाराजजी को सैर करवाने लेगए और अंधेरी, थाना आदि स्थान दिखाए। महाराजजी और स्वामी निर्मलजी में लगभग दो घंटे तक योग तथा

वेदान्त के लिए विचार-विमर्श होता रहा। एक दूसरे से परस्पर शंका समाधान करते रहे। इन दोनों का आपस में बहुत पुराना परिचय था।

बम्बई से स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान—अमीरचन्दजी ने महाराजजी के लिए हवाई जहाज़ में सीट रिज़र्व करवा दी। रणवीरजी ४-५ दिन तक बम्बई रहकर वापिस चले गए थे। विदाई के अवसर पर सेठ तुलसीरामजी ने साश्रु महाराजजी से अपने पास शीघ्र बुला लेने के लिए निवेदन किया। अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होने के पश्चात् महाराजजी ने इन्हें हरिद्वार जाने के लिए कहा। इनके सब भक्त, सेवक और सेविकाएं महाराजजी को एरोड्रोम पर पहुंचाने आए। बड़े भारी समारोह और सम्मान के साथ इन्हें विदा किया। बम्बई से साढ़े तीन घंटे में महाराजजी दिल्ली पहुंच गए। दिल्ली में रणवीरजी अपने परिवार को साथ लेकर, नारायणदासजी कपूर और उनका परिवार तथा महाराजजी के प्रमुख भक्त और सेवक सपरिवार इनके स्वागत के लिए एरोड्रोम पर पहुंचे। महाराजजी रण-वीरजी के मकान पर ठहरे। नारायणदासजी कपूर अपनी कार में महाराजजी को दिल्ली में घुमाने के लिए लेगए थे। दिल्ली से प्रस्थान करके ये ऋषिकेश पहुंच गए। स्वर्गाश्रम में सब अभ्यासियों को अपनी साधना में पूर्ववत् निरत देखकर महाराजजी बड़े प्रसन्न हुए।

स्वर्गाश्रम में साधना

महाराजजी ने यहां पधारकर पूर्ववत् अभ्यास और साधना प्रारम्भ करवा दी। इन्हीं दिनों ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनिजी भी कुछ दिनों के लिए अभ्यासार्थ वहां पर आगए थे। मुनिजी को महाराजजी के संपर्क में आए लगभग १५ साल होगए थे। जब ये सर्वप्रथम महाराजजी के पास आए तभी इन्होंने अपने भावी जीवन के लिए निश्चित कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए प्रार्थना की थी। और यह भी पूछा था कि इन्हें किस मार्ग पर चलकर पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इनकी माता प्रायः इन्हें विवाह के लिए आग्रह किया करती थी किन्तु ये सदा अपनी अनिच्छा प्रकट किया करते थे। महाराजजी ने इनकी माता को समझाने का वायदा किया और इन्हें आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने का आदेश दिया, जिससे ये आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त कर सकें। योग के द्वारा ही दोनों प्रकार का ज्ञान शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है। इसी पथ पर स्वयं चलकर औरों को भी चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। श्री महाराजजी की आज्ञानुसार अब ये कठिन तपश्चर्या के द्वारा योग-साधन करने के लिए कटिबद्ध होगए। कई-कई मास का मौन व्रत धारण किया। कभी-कभी तो ८-१० महीने तक मौन करते थे। नितान्त विरक्त भाव से रहते थे। विद्वान् तो थे ही, अतः समय-समय पर अपने भाषणों और उपदेशों से जनता का कल्याण करने लगे। महाराजजी ने ब्रह्मचारी अगस्त्यमुनिजी को आदेश दिया कि ८ मास तक तो मौन रहकर अपने प्राप्त विज्ञान को दृढभूमि करते रहें और ४ मास तक साधकों को अभ्यास करवाया करें। इसके पश्चात् महाराजजी की आज्ञानुसार ये बड़ी श्रद्धापूर्वक इसी कार्य में लग गए। ये अब अभ्यासार्थियों को २ मास हरिद्वार में तथा २ मास कश्मीर में देने लगे। महात्मा प्रभु आश्रितजी को भी इसी प्रकार का आदेश महाराजजी ने दिया—४ मास मौन व्रत और ८ मास प्रचार कार्य करने की आज्ञा प्रदान की।

श्री आनन्दस्वामीजी से कहा कि आप चलता-फिरता योग-साधना-शिविर लगाया करें। जहां कहीं भी एक दो सप्ताह ठहरने का अवसर प्राप्त हो वहीं साधना करवाना प्रारम्भ कर दिया करें। इन्हीं दिनों श्री दत्तजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी को भी नए अभ्यासार्थियों और साधकों को अभ्यास करवाने का आदेश दिया जिससे महाराजजी के पास कुछ काल साधना करने के बाद साधक अभ्यास के लिए आएं और इन लोगों को साधना करवाने के विधि-विधान से भी परिचय हो जाए, जिससे ये लोग इनकी अनुपस्थिति में भी साधना-शिविर का संचालन विधिपूर्वक करते रहें। ये तीनों बारी-बारी से बीस-बीस दिन तक नवीन साधकों को साधना करवाया करते थे। कई-कई वर्ष तक अभ्यास करने के पश्चात् इन्होंने आत्म-विज्ञान प्राप्त किया था अतः इस ऋण से उऋण होने का यही एकमात्र साधन था। अतः दूसरों को आत्म-ज्ञान करवाना और विनयपूर्वक साधन करवाना इनका कर्त्तव्य था।

श्री हरबंसलाल का शिविर में प्रवेश——इस अवसर पर सेठ हरबंसलालजी मरवाह बम्बई से फरवरी के दूसरे सप्ताह में पधारे। ये २०-२५ दिन तक साधना-शिविर में अभ्यास करने के लिए आए थे। महाराजजी ने अपने मनोबल से अभ्यास में इनकी बहुत उन्नति करवाई। इनमें दिव्य ज्योति उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थों को प्रकाशित करने लगी। थोड़े ही दिनों में इन्हें बहुत विज्ञान प्राप्त होगया। इन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और महाराजजी के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होगई।

श्री महाराजजी की उपदेशामृत-वर्षा——१५ फरवरी को अभ्यास की समाप्ति पर श्री महाराजजी ने अपने सब शिष्यों को सम्बोधन करते हुए कहा, "इस युग में लड़के तथा लड़कियां अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं। शिष्य और शिष्याओं में गुरु-आज्ञा-पालन का अभाव है, और न गुरुजनों के प्रति अपना कुछ कर्त्तव्य ही समझते हैं। इसलिए उन्हें साधना में सफलता नहीं प्राप्त होती है। वास्तव में माता-पिता की सम्पत्ति और गुरु-ज्ञान का वही पुत्र और शिष्य अधिकारी हो सकता है जो उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखे। उनकी सेवा-सुश्रूषा करे और उनकी आज्ञाओं का पालन करे। जब भक्त भगवान् की भक्ति, प्रार्थना तथा उपासना अनन्य भक्तिभाव से करता है तब भक्तवत्सल भगवान् उस पर प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति प्रदान करते हैं। भगवान् पुण्य कर्म, भक्ति, श्रद्धा, साधना, उपासना, तप और त्याग के बिना प्रसन्न नहीं होते, अपना साक्षात्कार नहीं करवाते, कृपा नहीं करते और मोक्ष प्रदान नहीं करते। यही नियम मानव समाज पर भी लागू होता है। इतिहास इसका साक्षी है। इन्द्र, विरोचन, उत्तङ्क, सत्यकाम, उपमन्यु आदि परम विद्वान् शिष्यों ने आचार्य कुल में वर्षों तक रहकर गुरु-सेवा, तपश्चर्या और कठिनतम साधना के उपरान्त आत्म-विज्ञान प्राप्त किया था। गुरु सदैव आत्म-ज्ञान के अधिकारी को ही आत्म-ज्ञान प्रदान करते हैं। अनधिकारी कभी इसको प्राप्त नहीं कर सकता। जिस गुरुदेव से ब्रह्म-विज्ञान रूपी सर्वोत्तम निधि प्राप्त की जाती है उसके प्रति शिष्य का महान कर्त्तव्य है। जिस पूज्य गुरु से उपदेश ग्रहण करके भवसागर को पार किया जाता है, क्या उसके प्रति शिष्य का कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है? आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान रूपी अमूल्य निधि को प्राप्त करने के लिए यदि अपना सर्वस्व भी समर्पण करना पड़े तो भी यह सौदा बड़ा सस्ता है। साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर ही जिज्ञासु शिष्य आचार्य कुल में रहकर

ज्ञान और वैराग्य को दृढ़ कर सकता है। ज्ञान और वैराग्य उस परलोक वाहन के दो पहिये हैं जिसमें बैठकर मोक्ष-धाम में पहुंचा जा सकता है। एक पहिये की गाड़ी लड़खड़ा कर खड्डे में गिरा सकती है। वह कभी गन्तव्य पथ पर नहीं पहुंचा सकती। इससे उद्देश्य तक कभी नहीं पहुंचा जा सकता। जो साधक केवल आत्म-विज्ञान को प्राप्त करके उसका अभ्यास करते रहते हैं, जिनकी चित्तवृत्ति उपरामता को प्राप्त नहीं होती, जो सांसारिकता से ऊपर नहीं उठते हैं और जिनको शम, दम, तितिक्षा के द्वारा परम वैराग्य नहीं हुआ है, वे कभी भी अध्यात्म पथ पर चलने में समर्थ नहीं हो सकते और न ही कभी सफलता लाभ कर सकते हैं। इसलिए अभ्यास के साथ वैराग्य का होना परम आवश्यक है। अतः आप लोग दोनों के लिए प्रयत्नशील रहें।"

शिष्यों को हार्दिक आशीर्वाद देकर महाराजजी ने अपना उपदेश समाप्त किया।

शान्ति की विजय––महाराजजी कानपुर वाली धर्मशाला में साधना शिविर लगाते थे। इसमें शिविर लगाते अभी दो वर्ष ही हुए थे। बैसाखी के पश्चात् ये १५ या १६ अप्रैल को गंगोत्री पधार जाया करते थे। अभ्यास के पश्चात् महाराजजी प्रायः कुछ दिवस स्वर्गाश्रम में विराजकर विश्राम किया करते थे। गीता भवन के प्रबंधक श्री चिरंजीलालजी इन दिनों कानपुर वाली धर्मशाला को स्वर्गाश्रम से मांग लिया करते थे। इस बार इन्होंने बैसाखी से पूर्व ही यह धर्मशाला खाली करने के लिए महाराजजी को कहला भेजा। महाराजजी ने स्वर्गाश्रम के प्रबंधक द्वारा १५ अप्रैल को खाली कर देने के लिए कहला भेजा। परन्तु चिरंजीलालजी इतने दिन तक रुकना नहीं चाहते थे। स्वर्गाश्रम के मैनेजर ने सेठ जयदयालजी को भी कहा। महाराजजी के गंगोत्री जाने में अब केवल ८-१० दिन ही रह गए थे। जयदयालजी के पास अभी कई मकान खाली थे। इनको कार्य में लिया जा सकता था किन्तु गीता भवन के प्रबंधक तथा सेठ साहब दोनों अपनी ज़िद पर अड़े रहे। स्वागर्गाश्रम के मैनेजर ने बड़े विनम्र भाव से पुनः सेठजी से कहा, "व्यासदेवजी बड़े विद्वान् योगी हैं, प्रतिष्ठित महापुरुष हैं, बहुत वर्षों से यहां निवास करके साधना शिविर लगाते हैं और योग प्रशिक्षण करते हैं। अब इनके गंगोत्री पधारने में केवल ८ दिन ही शेष रहते हैं। इनसे यह मकान खाली करवाना उचित नहीं है।" सेठजी ने उत्तर दिया, "हमने स्वर्गाश्रम से इस धर्मशाला को इस्तेमाल करने की लिखित आज्ञा प्राप्त की हुई है। हमारे सत्संगी इसमें ठहरेंगे।" इस पर मैनेजर ने पुनः निवेदन किया, "आप ८ दिन के लिए इन्हें अपनी ओर से ही रहने के लिए आज्ञा प्रदान कर दें।" पर वे नहीं माने। महाराजजी चाहते तो इस मकान में गंगोत्री प्रस्थान करने तक रह सकते थे। उन्हें बलपूर्वक निकालने की हिम्मत तो किसी में हो नहीं सकती थी। किन्तु इन्होंने पूर्ण शान्ति रखी और अपनी सरलता तथा साधुता का परित्याग नहीं किया। यदि इनमें व्यवहार कुशलता का अभाव है, यदि इनमें शिष्टता और सौजन्य नहीं है, तो इसके लिए हमें अपने सौजन्य और शिष्टता का त्याग नहीं करना चाहिए। वास्तव में हमें इनकी बुद्धि के अनौचित्य पर दया आ रही थी। इन्होंने स्वर्गाश्रम के प्रबंधक के द्वारा कार्यालय के ऊपर के उन कमरों को खाली करवा लिया जिनमें वे पहले विराजा करते थे। अपना बिस्तर उठाकर वहां चले गए। ये नितान्त अपरिग्रही थे। आवश्यकता से अधिक कोई सामान अपने पास नहीं रखते थे, अतः धर्मशाला खाली करने में कुछ भी विलम्ब

नहीं लगा। एक पत्र महाराजजी ने स्वर्गाश्रम के मंत्री श्री गोस्वामी गणेशदत्तजी को इस दुर्व्यवहार और अशिष्टता के विषय में लिखा और एक उपमंत्री पं० देवधरजी को। ये दोनों महाराजजी का बड़ा आदर और सम्मान करते थे और इनके प्रति इन दोनों की बड़ी श्रद्धा थी।

दूसरे वर्ष जब जयदयालजी को पता चला कि महाराजजी कानपुर वाली धर्मशाला में विराज रहे हैं तो ये इनके दर्शनार्थ आए। संभव है, श्री गणेशदत्तजी अथवा पं० देवधरजी ने इन्हें इनकी अशिष्टता के विषय में कुछ लिखा हो। महाराजजी ने सेठजी का सत्कार किया और कहा, "सेठजी, आपने गत वर्ष अच्छा कार्य नहीं किया। आपने मुझे धर्मशाला में गत वर्ष एक सप्ताह भी रहने नहीं दिया और मुझे अपमानित करके निकाला, यद्यपि आपके पास अपने अतिथियों को ठहराने के लिए अन्य कई मकान थे। मेरा तो इसमें कुछ बिगड़ा नहीं, किन्तु आपके लिए यह बड़ी लज्जा की बात है। आपने मुझे बहुत ही साधारण व्यक्ति समझा। मैं बहुत वर्षों से इस धर्मशाला में रहता आरहा था। आपको मेरे साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए था। मानवता से नीचे गिरना नहीं चाहिए था। मैं चाहता तो इस प्रकार की कई धर्मशालाएं बना सकता था किन्तु मैं और अधिक प्रवृत्ति मार्ग में फंसना नहीं चाहता। मेरे पास भी सैकड़ों साधक प्रतिवर्ष केवल स्वर्गाश्रम में ही नहीं अपितु गंगोत्री और उत्तरकाशी में भी आते हैं। मैं आपसे आयु, विद्वत्ता, साधना तथा योग में ऊंचा दर्जा रखता हूं। मेरी मान और प्रतिष्ठा आपसे किसी प्रकार भी कम नहीं है। आपने अपने धनाभिमान में आकर मेरा अपमान किया यह आपके लिए कोई शोभा की बात नहीं है। मेरा क्या बिगड़ा, मैं तो साधु हूं। रगड़ा-झगड़ा तथा विरोध करना और बल प्रदर्शन करना मैंने उचित नहीं समझा और ये सब बातें साधु के लिए अशोभनीय हैं, इसलिए मैंने अपना बिस्तर उठाया और अन्यत्र चला गया। अपनी मनःशान्ति को किसी भी प्रकार से भंग नहीं होने दिया और आप सबके साथ शान्तिपूर्वक व्यवहार किया।" सेठजी बड़े लज्जित हुए और महाराजजी की सब बातें चुपचाप सुनते रहे। अन्त में जब सेठजी जाने लगे तब योगीराजजी से हाथ जोड़कर अपने अपराध की क्षमा मांगी और कहा, "महाराजजी! मैंने आपके समान स्पष्टवक्ता अपने जीवन में आज तक नहीं देखा। अब कभी आपको मकान खाली करने के लिए नहीं कहूंगा। आप भले ही इसमें जीवनपर्यन्त निवास करें।" महाराजजी ने कहा, "सेठजी, यह आपकी महानता है कि आप अपनी भूल को स्वीकार करते हैं और उस पर पश्चात्ताप कर रहे हैं।" स्वामीजी को सादर प्रणाम करके सेठजी चले गए। इस दिन से चिरंजीलाल महाराजजी का बड़ा आदर और सम्मान करने लगे और आसन तथा प्राणायाम सीखने के लिए प्रतिदिन महाराजजी के पास आना प्रारंभ कर दिया।

विचित्र घटना––सदा की भांति इस बार भी श्री महाराजजी ने १५ नवम्बर से १५ मार्च तक साधना शिविर लगाया। सेठ हरबंसलाल ने गत वर्ष अभ्यास में संतोषप्रद प्रगति की थी, इससे उत्साहित होकर ये इस वर्ष भी साधना शिविर में अभ्यासार्थ आए। अब भी इन्होंने अपने अभ्यास में खूब उन्नति कर ली थी। इनकी आत्म-विज्ञान में उन्नति देखकर महाराजजी इन पर कुछ विशेष दयादृष्टि रखने लग गए। इससे बरेली वाले रामकिशोरजी को बड़ा दुःख-सा पैदा होगया और रोते हुए महाराजजी

से निवेदन किया, "मैं आपके पास इतने वर्षों से अभ्यास कर रहा हूं। ये सेठ हरबंसलाल दो वर्ष में ही मुझसे बहुत आगे निकल गए हैं। आपने मुझे इनकी अपेक्षा बहुत कम सिखाया है। इन पर आपकी विशेष कृपा है। मुझे आपने अपनी दया का पात्र अभी पूर्ण रूप से नहीं बनाया है।" इन शब्दों के साथ वे फूट-फूट कर रुदन करने लगे। महाराजजी ने रामकिशोरजी को बहुत समझाया और कहा, "हम तो सबको समान भाव से ही बताते हैं, सबको समान रूप से उपदेश देते हैं और समझाते हैं, किन्तु ज्ञान की प्राप्ति सबको अपनी बुद्धि, योग्यता, पुरुषार्थ अथवा भाग्य के अनुसार होती है। आपका पुरुषार्थ निष्फल नहीं जाएगा। कुछ देर के पश्चात् या कालान्तर में फल अवश्य ही प्राप्त होगा। ये पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट हैं अतः इन्हें शीघ्र सफलता हो रही है। आप वर्तमान में योग-साधन करने लगे हैं अतः आप भी कुछ काल के अभ्यास से इनके समान हो जाएंगे। अभी कुछ प्रारब्ध कर्म फल-बाधक बने हुए हैं। इसे इस दृष्टान्त से समझने का प्रयत्न करो :—

एक दिन विष्णु भगवान् और लक्ष्मीजी वन में विचरण कर रहे थे। लक्ष्मीजी ने कहा, 'महाराज, भगवान् के घर में बड़ा अन्याय है। देखिए, सामने जो लकड़हारा जारहा है, यह बेचारा बड़े परिश्रम से लकड़ी काटता है, अपना पसीना बहाता है, तब कहीं इसे दो आने प्राप्त होते हैं। इसीसे अपने परिवार का भरण और पोषण करता है। दूसरी ओर एक राजा है जो गद्दी-तकियों पर बैठा रहता है। कोई परिश्रम नहीं करता, किन्तु सब प्रकार के सुखों और ऐश्वर्यों का उपभोग करता है।' विष्णु भगवान् ने इसका बड़ा सुन्दर उत्तर दिया, 'भगवान् तो सबको समान रूप से ही देते हैं किन्तु लोग उसे अपने-अपने भाग्य के अनुरूप ही प्राप्त करते हैं।' दूसरे दिन विष्णु भगवान् एक अमूल्य हीरा लकड़हारे के मार्ग पर फेंक कर अन्तर्ध्यान होगए। चलते-चलते उस लकड़हारे के मन में एक बड़ा विचित्र विचार आया कि बेचारे अन्धे न जाने कैसे मार्ग में चलते होंगे। मैं आंखें बन्द करके चलूं और इसका अनुभव करके देखूं। वह आंखें बन्द करके चलने लगा। उसके पैर की ठोकर से हीरा दूर जा पड़ा और वह चलता रहा। आगे जाकर आंखें खोलकर कहने लगा—भगवन्! किसी को अंधा मत बनाना, अंधों को चलने में बड़ी कठिनाई होती है। अब भगवान् ने लक्ष्मीजी से कहा, 'देवी! देखा, इसके भाग्य में हीरा प्राप्त करना नहीं था। हीरा इसके सामने आया किन्तु वह ठोकर मार कर चला गया। भगवान् ने तो इसके सामने लाकर रखा था पर उसके भाग्य में इसकी प्राप्ति नहीं थी।'" यह दृष्टान्त सुनाने के पश्चात् महाराजजी ने कहा, हम तो सबको समान रूप से ही विद्या प्रदान करते हैं किन्तु दुर्भाग्य इसमें विक्षेप डाल देता है। इससे सेठ रामकिशोरजी को सन्तोष हो गया।

सेठ हरबंसलालजी मरवाह अपने अभ्यास में किसी कारणविशेष से विघ्न उपस्थित हो जाने के कारण बड़े चिन्तित थे। अत्यन्त परिश्रम करने पर भी साधना में पूर्व स्थिति नहीं आसकी थी। महाराजजी ने कहा, यह विघ्न शीघ्र दूर नहीं होगा, आप केवल मंत्र जाप किया करो। सेठजी बम्बई पधार गए और वहां जाकर ६ मास का मौन व्रत धारण करके गायत्री का पुरश्चरण प्रारंभ कर दिया।

हिमालय के योगी का चमत्कार—महाराजजी के शिष्य पंडित ठाकुरदत्तजी वैद्य अमृतधारावाले इस वर्ष बहुत रोगी होगए। अनेक उपचार करने पर भी वे

जब स्वस्थ न हो सके तब महाराजजी को अपने योगबल से रोग मुक्त करने के लिए निवेदन किया गया। वैद्यजी का पोता स्वर्गाश्रम से अपनी कार में इन्हें ले आया। सेठ हरबंसलाल तथा नारायणदास कपूर भी इनके साथ आए क्योंकि ये दोनों लाहौर से ही वैद्यजी के पुराने सुपरिचित थे। पण्डितजी के पौत्र कार लेकर महाराजजी को लेने चले गए। योगीराजजी इनके साथ देहरादून पहुंचे। पण्डितजी की पुत्री ने महाराजजी का नाम लेकर इन्हें बड़े जोर से पुकारा। इन्होंने बड़ी देर के बाद होश में आकर अपनी आंखें खोलीं और साश्रु महाराजजी को निर्निमेष नेत्रों से देखते रहे। योगीराजजी ने कहा, "अब रोने और घबराने की आवश्यकता नहीं। अब मैं आगया हूं और आपको शीघ्र ही नीरोग कर दूंगा।" पारिवरिक जन इनके जीवन की आशा छोड़ बैठे थे अतः इन्हें महाराजजी की बात का विश्वास ही नहीं होता था। महाराजजी ने सबको कमरे से बाहर भेज दिया, मानसिक प्रयोग प्रारंभ किया और भगवान् से प्रार्थना की। महाराजजी ने आधा घण्टा तक प्रयोग किया। पण्डितजी ने कई दिनों से अपने-आप करवट नहीं बदली थी। इस प्रयोग के बाद इन्होंने स्वयं करवट बदली और अपने में प्रथम बार शक्ति का अनुभव किया। इस समय इनको वेदना भी कुछ न्यून होगई थी। महाराजजी ने वैद्यजी के लिए खिचड़ी बनाने का आदेश दिया। जब यह तैयार होकर कमरे में लाई गई तो योगीराजजी ने वैद्यजी को पलंग पर बैठकर खाने का आदेश दिया। इन्हें तकिए के सहारे बिठा दिया गया और इनकी पुत्री ने इन्हें खिचड़ी खिलाई। लगभग दो घंटे में इनमें कुछ स्वस्थ से होने के चिन्ह दिखाई देने लगे। महाराजजी जब वापिस स्वर्गाश्रम पधारने लगे तब हर तीसरे दिन वहां कार भेजने का आदेश दिया जिससे प्रति तीसरे दिन वैद्यजी की स्वास्थ्य में प्रगति को देखते रहें। स्वर्गाश्रम में भी इनके स्वास्थ्य के लिए प्रयोग करते रहे। ये १५-२० दिन में स्वस्थ होगए, केवल दुर्बलता ही शेष रह गई थी। ठीक २० दिन बाद ही वैद्यजी का जन्म-दिवस था। महाराजजी ने सब पारिवारिक जनों से कहा कि वैद्यजी इस अवसर को स्वयं बड़ी धूमधाम से मनाएंगे। इस स्वास्थ्य-प्राप्ति से पूर्व पण्डितजी स्वामी सत्यानन्दजी महाराज को अपना गुरु मानते थे, किन्तु इस चमत्कार को देखकर अब पूज्य महाराजजी को भी अपना गुरुदेव मानने लग गए। योगीराजजी ने अपने योगबल से वैद्यजी को जीवन-दान दिया था। इसीलिए इनके प्रति पण्डितजी की बड़ी निष्ठा होगई थी। स्वास्थ्य-प्राप्ति पर वैद्यजी ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया। स्वामी सत्यानन्दजी भी इस अवसर पर पधारे। अपने सारे स्टाफ, कन्या गुरुकुल की छात्राओं तथा अपने सभी इष्ट मित्रों को आमन्त्रित किया। बड़ी धूमधाम से यज्ञ को सम्पन्न किया गया। खूब दान-दक्षिणा दी गई।

उत्तरकाशी-गंगोत्री प्रस्थान

साधना शिविर की समाप्ति पर एक मास तक स्वर्गाश्रम में निवास करके महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। इस बार कैप्टन जगन्नाथजी भी इनके साथ आए।

ग्रन्थ निर्माण करने का विचार--महाराजजी उत्तरकाशी में सवा मास तक विराजे। कैप्टन जगन्नाथजी आश्रम के निर्माण कार्य में बराबर सहयोग देते रहे। पूज्य महाराजजी जून मास के प्रारम्भ में गंगोत्री पधारे। सेवक विजय भी इनके साथ था। गंगोत्री में चार मास तक रहकर ये विज्ञान के प्रमुख विषयों पर विचार करके संक्षेप

में लिखते रहे। गुरुदेव के सभी शिष्य विज्ञान को विधिपूर्वक लिपिबद्ध करके प्रकाशित करवाने के लिए बार-बार प्रार्थना कर रहे थे क्योंकि योगीराजजी का योग सम्बन्धी विशेष विज्ञान इनका स्वानुभव था। इस प्रकार का क्रम और विज्ञान अन्य ग्रंथों में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए इस विज्ञान को पुस्तकाकार में लाना अत्यन्त आवश्यक था। जिस प्रकार दर्शनशास्त्र आज विश्व का प्रदर्शन कर रहे हैं, इसी प्रकार से पुस्तकाकार प्राप्त कर लेने पर आपका विज्ञान विश्व को लाभ पहुंचा सकेगा। गुरुदेव के योग, आत्म-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान को विश्व के कोने-कोने में पहुंचाने का एकमात्र यही साधन है। सभी शिष्यों की प्रार्थना को स्वीकार करके पूज्य योगीराजजी ने आत्मा सम्बन्धी तथा ब्रह्म सम्बन्धी स्वानुभूतियों को ग्रंथ का रूप देने का निश्चय कर लिया। कई वर्ष से प्रयोगात्मक ढंग से अभ्यासियों को पूज्य महाराजजी साधना करवा रहे थे अतः सारा विज्ञान इन्हें हस्तामलक हो रहा था। इसको लिख डालना एक सहज सी बात थी। शिष्यों में केवल विश्वेश्वरनाथ दत्त इस बात का विरोध कर रहे थे। उनका विश्वास था कि गुरुदेव का विज्ञान पुस्तक में नहीं लिखा जा सकता। यह तो स्वयं अन्तःकरण से ही ग्रहण किया जा सकता है। यह तो ऋषियों तथा मुनियों के पावन हृदयों में ही परम्पराओं से पनपता आ रहा है। इसकी पवित्र परम्परा इसी प्रकार से चलनी चाहिए। महाराजजी अपने किसी शिष्य के नाम से इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ को प्रकाशित करना चाहते थे किन्तु शिष्यों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। क्योंकि गुरुदेव प्रसिद्ध योगीराज तथा योगपारंगत हैं, वर्षों तक हिमालय निवास करके योग साधना की थी और साधकों को योगाभ्यास करवाया था, अतः इन्हीं के नाम से पुस्तक का प्रकाशन अभीष्ट माना गया।

गंगोत्री से आकर महाराजजी ने जो विज्ञान के सम्बन्ध में संक्षेप रूप से लिखा था उसे ब्रह्मचारी जगन्नाथजी को देकर उसे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय ५ कोषों के आधार पर क्रमबद्ध करने का आदेश दिया जिससे सभी संक्षिप्त सामग्री का क्रम के अनुसार संग्रह हो सके। पांच कोषों का समावेश स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में करने की भी आज्ञा प्रदान की। कैप्टन जगन्नाथजी को योग निकेतन का कार्य दिल्ली जाकर करने का आदेश दिया अर्थात् 'साधना शिविर' लगाने की वहां व्यवस्था की जाए क्योंकि अब इन्होंने अपने विज्ञान को दूसरों को प्रदान करने की योग्यता प्राप्त कर ली थी। दत्तजी को भी देहरादून में जाकर योगाभ्यास करवाने का आदेश दिया जिससे वहां की जनता भी लाभ उठा सके किन्तु वे महाराजजी के चरणश्री को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना नहीं चाहते थे। वे कोई ऐसी सेवा चाहते थे जो गुरुदेव के चरणारविन्दों में बैठकर की जा सके। अतः महाराजजी ने नए साधकों को अभ्यास करवाने की आज्ञा दी और यह भी फरमाया कि जब आप अभ्यास करवाने बैठो तब मुझसे आदेश लेकर जाया करो। दत्तजी ने इसी प्रकार से साधना करवानी प्रारम्भ कर दी।

युवक अभ्यासियों पर अविश्वास

पूज्य महाराजजी युवक ब्रह्मचारियों और अभ्यासियों पर विश्वास नहीं करते थे। बहुत से युवक विद्यालय अथवा महाविद्यालय छोड़कर भाग आते थे। जिनका पढ़ाई में मन नहीं लगता है, जो अध्ययन में परिश्रम नहीं कर सकते हैं, जो परीक्षा

में उनुत्तीर्ण हो जाते हैं, जो अध्ययन का व्यय वहन नहीं कर सकते, अथवा जो अपनी अशिष्टता, दुर्व्यवहार, और दुराचार के कारण बदनाम हो जाते हैं, प्राय: वे ही अपने घरों से भाग जाते हैं और अन्य कहीं भी स्थान न मिलने से आश्रमों में आ जाया करते हैं। माता-पिता से नाराज होकर, अथवा पत्नी का देहान्त हो जाने पर, या आजीविकोपार्जन के लिए साधनाभाव के कारण, अथवा किसी भी कार्य में मन के न लगने के कारण भी युवक घर छोड़कर भाग जाया करते हैं। महाराजजी के पास जब कभी इस प्रकार के भगोड़े युवक आते थे तब ये उन्हें समझा-बुझाकर वापिस उनके घरों में भेज दिया करते थे। उनसे उनके माता-पिता का सारा पता ज्ञात करके उन्हें सूचित कर देते थे और वे आकर इन्हें लेजाया करते थे। जब इस प्रकार के युवक अपने माता-पिता तथा अध्यापक के अनुशासन में रहना पसन्द नहीं करते तो श्री महाराजजी के अनुशासन में किस प्रकार रह सकते थे! ये बेलगाम घोड़े के समान होते हैं। नियंत्रण में रहना नहीं चाहते। आज्ञा पालन करना नहीं जानते। उच्छृङ्खलता प्रिय होते हैं। उद्दण्ड होते हैं। अनुशासन में इन्हें बंधन, आज्ञापालन में मानहानि, माता-पिता तथा गुरुजनों का सम्मान करने में अपना अपमान और विनम्रता में अपना पतन दिखाई देता है। ऐसे युवक आश्रमों में रहने के योग्य नहीं होते। थोड़ा सा अभ्यास करने के पश्चात् कहीं अन्यत्र भाग जाते हैं। मानसिक चंचलता और अस्थिरता के कारण वे कहीं भी स्थायी रूप से टिक नहीं सकते। स्वेच्छाचारिता के कारण इधर-उधर भटकते रहते हैं। किसी-किसी को क्षणिक वैराग्य हो जाता है तो संसार को मिथ्या कहने लगता है और छद्मवेश बनाकर फिरने लगता है। एक कठिन समस्या और है। यदि इन भगोड़ों को आश्रमनिवासी गुरुजन प्रेमपूर्वक अपने पास रखें, अच्छा खिलाएं, अच्छा पहिनाएं, कभी ताड़ना न करें, इनसे सेवा कुछ न लें, तब ये गुरु के भी गुरु बन बैठते हैं। इन्हें यह दुरभिमान होने लग जाता है कि ये अब बहुत बड़े महात्मा होगए हैं, इसीलिए गुरुजी से इतना सम्मान प्राप्त होरहा है। इस अभिमान के कारण इनकी विद्या, बुद्धि तथा सूक्ष्मदर्शिता का स्रोत बन्द हो जाता है। अपनी उछृङ्खलता के कारण आश्रमों से भी भाग निकलते हैं। पूज्य महाराजजी को इन बेलगाम घोड़ों का और उच्छृङ्खल युवकों का कई वर्षों से बड़ा कटु अनुभव हुआ था, इसीलिए ये शीघ्र किसी युवक का विश्वास नहीं करते थे। इनके प्रति बड़ी उपेक्षा वृत्ति सी रखते थे।

स्वर्गाश्रम में ४ मास के साधना शिविर की समाप्ति पर उपदेश

१५ मार्च को साधना-शिविर का समाप्ति समारोह मनाया गया। महाराजजी ने सब साधकों को प्रीतिभोज के उपरान्त विदाई देते हुए निम्न उपदेश दिया :—

यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आप लोगों की जिज्ञासा आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान के विषय में है किन्तु इस मन्द गति से शीघ्र पूर्ण सफलता प्राप्त न होगी। जिस प्रकार से आप लोगों ने यहां रहकर ४ मास तक यम-नियम का पालन किया है, अनुशासन में रहे हो, संयम व्रत को धारण किया है, और बड़ी लगन के साथ अभ्यास किया है, इसे अपने-अपने स्थान पर भी इसी प्रकार जारी रखो जिससे बहुत शीघ्र ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होकर मानव जीवन का उद्देश्य शीघ्र ही पूर्ण हो

जाएगा। ग्राप लोग ग्रपनी यह भ्रांति दूर करदें कि ग्रापको ग्रनेक जन्मों के बाद तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होगा। यदि निश्चयात्मक बुद्धि से कटिबद्ध होकर इस ग्रध्यात्म मार्ग पर ग्रग्रसर हो जाग्रोगे तो इसी जन्म में ग्रात्म-विज्ञान लाभ कर सकते हो। शम, दम, उपरति, तितिक्षादि साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होकर श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा ग्रौर विश्वास पूर्वक ग्रौर ग्रालस्य तथा प्रमाद को त्याग कर श्रेय पथ के पथिक बना जाए तो इसी जन्म में ग्रपवर्ग प्राप्त हो सकता है। ग्राप सबको लोकेषणा, पुत्रेषणा ग्रौर वित्तेषणा इन तीनों एषणाग्रों का परित्याग करके वैराग्य की भावना को दृढ़ करना चाहिए। ग्राप ग्रभ्यास तो खूब करते हैं किन्तु जीवन में वैराग्य की कमी है। ग्रभ्यास ग्रौर वैराग्य दोनों ही सफलता के मुख्य साधन हैं। इसलिए ग्रापको ग्रपने ज्ञान ग्रौर वैराग्य दोनों को दृढ़ करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य सुख, शान्ति ग्रौर ग्रानन्द की खोज में लगा हुग्रा है परन्तु इनकी प्राप्ति का एक ही मार्ग सुगम, सरल ग्रौर निष्कंटक है ग्रौर वह है योग। योग के बिना ग्रानन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। मनुष्य सदा चलता तो प्रेय-मार्ग पर है ग्रौर इच्छा करता है ग्रानन्द प्राप्ति की। यह कैसे हो सकता है! श्रेय पथ का पथिक ही वास्तविक ग्रानन्द लाभ कर सकता है। प्रेय मार्ग का सुख ग्रापात् रम्य है, क्षणिक स्थायी है। किन्तु स्थायी ग्रानन्द प्राप्ति के लिए तो श्रेय मार्ग का ग्रवलम्बन करना होगा। ग्रतः यद्यपि श्रेय पथ 'क्षुरस्य धारा' है किन्तु इसके बिना कल्याण नहीं हो सकता। कल्याण चाहते हो तो इस मार्ग पर चलने के लिए ग्राज ही कटिबद्ध हो जाग्रो। मंगलमय मंगलरूप भगवान् तुम्हारा सदैव मंगल करें!

श्री रणवीरजी को उपदेश––दैनिक मिलाप के प्रधान संपादक साधना शिविर की समाप्ति पर दर्शनार्थ ग्राए। पूज्य महाराजजी के प्रति इनकी ग्रगाध श्रद्धा ग्रौर भक्ति थी। एक दिन इन्होंने योगीराजजी से प्रश्न किया कि "महाराजजी, मैंने ग्रापकी ग्रनेक सिद्धियां देखी हैं। ग्रापने कइयों को रोगमुक्त किया है, कइयों को मुकद्दमे में जिताया है तथा कइयों को जीवन-दान किया है। ग्रापने मेरे भाई युद्धवीर को, बम्बई वाले सेठ तुलसीराम को, पं० ठाकुरदत्त शर्मा ग्रमृतधारावालों को, नारायणदास के पिता ग्रौर भगिनी को तथा माता मनसादेवी ग्रादि कइयों को जीवन-दान किया है। ग्राप रोगी को देखते ही उस को कह देते हैं कि मैं ग्रापको निश्चयपूर्वक रोगमुक्त ग्रौर स्वस्थ कर दूंगा। इस बात की ग्राप सबके सामने घोषणा कर देते हैं, जैसे कि उस रोगी का जीवन ग्रौर मरण ग्रापके ही हाथ में हो। क्या यह भगवान् के न्याय में ग्रौर कर्मफल प्रदान में हस्ताक्षेप नहीं है?" पूज्य महाराजजी ने इनकी बात का समाधान करते हुए कहा, "कर्मफल प्रदान करने का ग्रधिकार भगवान् को ही है क्योंकि वह त्रिकालदर्शी ग्रौर सर्वज्ञ है, एकदेशी ग्रल्पज्ञ जीव को नहीं क्योंकि ग्रनन्त कर्मों की स्मृति जीव को नहीं रहती। इसलिए यह कर्मफल का विभाग नहीं कर सकता। किन्तु जैसे न्यायाधीश न्यायालय में बैठकर लोकमर्यादा ग्रथवा व्यवस्था ठीक रखने के लिए ग्रपराधी को दण्ड देता है, यह भी भगवान् के कर्मफल प्रदान करने में हस्तक्षेप ही है। इसी प्रकार योगी भी कर्मफल का विधान या कर्मफल प्रदान कर सकता है। कर्मफल भोगना तो कर्ता को पड़ता ही है। ग्रब किसी को स्वस्थ करने के विषय में सुनो। वास्तव में रोगी को स्वस्थ होना ही होता है जिसे सर्वसाधारण समझ नहीं सकते, किन्तु योगी ग्रपनी दिव्य दृष्टि से इस बात को जान लेता है, समझ जाता है।

इसीलिए वह निश्चित रूप से उसके स्वास्थ्य-लाभ के लिए कह देता है। कभी-कभी रोगी के भविष्य को देखकर भी उसके रोगमुक्त होने की घोषणा कर देता है और कह देता है कि तुम स्वस्थ हो जाओगे अथवा मैं तुम्हें स्वस्थ कर दूंगा। कभी-कभी योगी रोगी के रोग-भोग को कुछ हल्का-सा कर देता है जिसे वह आसानी से भोग सके। अपने मनोबल से उस भोग को कुछ आगे-पीछे भी कर देता है। यदि वह चाहे तो स्वयं भी रोगी के भोग को बटा सकता है। उसके रोग-भोग को स्वयं अपने ऊपर ले सकता है। भोग में सहायक बन सकता है। भविष्य की ओर मनोबल से धक्का देकर फैंक सकता है। अपना मनोबल प्रदान करके उसे रोग-भोग की सामर्थ्य भी प्रदान कर सकता है। कालान्तर में भोगने के लिए भविष्य की ओर भी ले जा सकता है। एक महानात्मा परोपकारी जब जाति और देश के लिए कोई अच्छा कर्म करता है तो जनता भी उसके अच्छे कर्म का उपभोग करती है, और यदि परोपकार बुद्धि से उससे कोई अहितकर कार्य हो जाता है तो भविष्य में उसका दुष्परिणाम सारे राष्ट्र को भोगना पड़ता है। बहुत से ज्ञात-अज्ञात कर्मों के फलों की व्यवस्था भगवान् ही करता है और कुछ ज्ञात कर्मों के फलों की व्यवस्था मनुष्य या योगी भी कर देता है, अतः इससे भगवान् के फल प्रदान करने में हस्तक्षेप नहीं होता।

ब्रह्मचारी प्रेम का योग निकेतन में प्रवेश

सन् १९४७-४८ में ब्रह्मचारी प्रेम परमार्थ निकेतन में स्वामी सुखदेवानन्दजी के पास रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहा था। गंगातट पर बैठकर कुछ जाप भी करता था। इसकी अवस्था १७ या १८ वर्ष की थी। कभी-कभी यह सत्संग के लिए महाराजजी के पास भी आया करता था। स्वामी सुखदेवानन्दजी को यह पसन्द नहीं था, अतः वे इससे कहा करते थे कि "तुम इधर-उधर साधुओं के पास सत्संग के लिए मत जाया करो। हम में क्या कमी है? हम तुम्हें सब कुछ सिखा सकते हैं।" उनके निषेध करने पर भी यह चोरी-चोरी महात्माओं के पास सत्संग के लिए चला जाता था। वास्तव में यह योग शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से आया था। स्वामी सुखदेवानन्दजी ही इसे इसके घर से लाए थे किन्तु इसकी योग-साधना की पूर्ति स्वामीजी के पास नहीं हो सकती थी। कुछ बालकों की प्रकृति स्वाभाविक ही चंचल होती है। वे प्रतिबंध और अनावश्यक अनुशासन को सहन नहीं कर सकते। इसकी इच्छा महाराजजी के पास जाकर योगाभ्यास करने और योग कक्षा में बैठने की होती थी किन्तु स्वामीजी इसे आज्ञा नहीं देते थे। अतः यह इस बंधन से मुक्त होना चाहता था। एक दिन यह दोपहर को महाराजजी के पास आया। इस समय इनके २-३ भक्त दर्शनार्थ आए हुए थे। इसने दो-तीन शंकाओं का समाधान पूछा। महाराजजी ने विशद व्याख्या करके सब समझाकर उसका सन्तोष कर दिया। इसके चले जाने के पश्चात् महाराजजी के एक भक्त श्रीकृष्णजी खन्ना ने कहा, "यह लड़का पढ़ा-लिखा और बुद्धिमान् है। आप इसको अपने पास रखकर योग सिखायें।" महाराजजी अन्तर्यामी हैं। अपने योगबल से सबके मन की बात को जान लेते हैं। इनसे कोई बात छिपाई नहीं जा सकती। इन्होंने खन्नाजी के सुझाव का उत्तर देते हुए कहा, "योग सिखाना तो कठिन नहीं है। मैं इसे सब कुछ सिखा दूंगा, किन्तु यह अधिक काल तक टिकेगा नहीं। योग सीखकर चलता बनेगा। जब यह अपने पालन-पोषण करने वाले माता-पिता

को छोड़कर भाग आया और फिर जो भगाकर लाया उसके पास से भी भागने के उपाय कर रहा है तो यह हमारे पास भी कैसे रह सकेगा ? जैसे सैकड़ों को योग सिखाया है ऐसे इसे भी सिखा देंगे लेकिन इस आशय से नहीं कि यह हमारे पास रहेगा।" परमार्थ निकेतन में भजन, कीर्तन, सत्संगादि तो बहुत होता था किन्तु प्रेम का मन वहां से ऊब गया था। वह अरण्य, गिरि-गुहाओं तथा गंगा के तट पर निर्जन स्थानों में जाकर योग-साधना किया करता था। एक दिन इसने महाराजजी से निवेदन किया, "आप मुझे अपने पास अकेले में दिव्य-ज्योति के दर्शन करवाने की कृपा करें, कुछ ठीक-ठीक मार्ग-दर्शन करदें क्योंकि स्वामीजी मुझे आपकी कक्षा में आने से रोकते हैं। अन्य साधुओं तथा सन्तों के सत्संग में भी नहीं जाने देते।" महाराजजी ने कहा, "यह काम एक-दो दिन का नहीं है। जब तक तुम विधिपूर्वक कक्षा में बैठकर कुछ काल तक निरन्तर अभ्यास नहीं करोगे तब तक कुछ भी प्राप्ति नहीं हो सकेगी।"

गंगोत्री प्रस्थान——१६ अप्रैल को महाराजजी उत्तरकाशी पधारे। कुछ दिनों के पश्चात् प्रेम भी इन्कमटैक्स कमिश्नर श्री बाबूलालजी के साथ गंगोत्री यात्रा का निमित्त बनाकर तथा स्वामीजी की आज्ञा प्राप्त करके उत्तरकाशी पहुंच गया। स्वामीजी ने एक मास के लिए इसे गंगोत्री यात्रा के लिए आज्ञा दी थी। प्रेम बाबूलालजी के साथ महाराजजी से मिला। यह उत्तरकाशी में नितान्त एकान्त तथा प्रशान्त योग निकेतन के वातावरण, दृश्य तथा गंगा का सुरम्य तट देखकर मुग्ध सा होगया। टिहरी के डी० एम० बाबूलालजी के मित्र थे। ये भी उत्तरकाशी तक इनके साथ आए थे। इनको कीर्तन में बड़ी रुचि थी, अतः रेस्ट हाऊस में इसका आयोजन किया गया और दो घण्टे तक कीर्तन होता रहा। दूसरे दिन पुनः प्रेम महाराजजी के पास आया और कहा, मुझे बहुत ऋद्धियां और सिद्धियां प्राप्त होगई हैं। महाराजजी ने इनको दिखाने के लिए कहा। उसने निवेदन किया, देखिए न, कमिश्नर और डी० एम० जैसे बड़े-बड़े अफसर मेरे भक्त बन गए हैं। यह सुनकर महाराजजी बड़े जोर से हंसे। बाबूलालजी और यह गंगोत्री चले गए और वहां पर डाक बंगले में ठहरे। वहां का योग निकेतन इसे बहुत आकर्षक मालूम हुआ। जब यह गंगोत्री से वापिस आया तब महाराजजी के श्रीचरणों में रहने की इच्छा प्रकट की और कहा, एक बार स्वर्गाश्रम जाकर शीघ्र ही वापिस लौट आऊंगा।

ब्रह्मचारी श्रीकंठ का योग निकेतन में प्रवेश

इसी अवसर पर श्रीकंठ नामक एक आसाम प्रदेश का ब्रह्मचारी उत्तरकाशी में श्री महाराजजी के पास आया। इसने भी योग सीखने की जिज्ञासा प्रकट की। महाराजजी ने इसको गंगोत्री के योगसाधना-शिविर में सम्मिलित होने का आदेश दिया। गंगोत्री में १५ जून से १५ सितम्बर तक साधना-शिविर लगाने का आयोजन किया गया था। यह जून के प्रारम्भ में वहां पहुंच गया और स्वामी प्रज्ञानाथजी के स्थान पर निवास करके योग निकेतन में साधना करता रहा। ब्रह्मचारी प्रेम भी जून मास के अन्त तक यहां पहुंच गया। श्री महाराजजी के साथ बी० एन० दत्त तथा सेठ हरबंसलाल मरवाह भी गंगोत्री आ गए थे। इन्होंने ने भी कई मास तक अभ्यास किया। ब्रह्मचारी जगन्नाथजी को भी अपने साथ ले आए थे। दत्तजी ने अपनी धर्मपत्नी शीलाजी के साथ और सेठ हरबंसलाल ने गत वर्ष भी गंगोत्री आकर योग निकेतन

में रहकर ४ मास तक साधनाभ्यास किया था। प्रेम को गंगोत्री का जलवायु अनुकूल नहीं आया।

महाराजजी सितम्बर के अन्त में गंगोत्री से वापिस उत्तरकाशी पधारे। यहां एक मास विराजकर ये स्वर्गाश्रम पधार गए। १५ नवम्बर से ४ मास का योगसाधना शिविर प्रारंभ कर दिया गया। महाराजजी ने प्रेम तथा श्रीकण्ठ को विशेष रूप से अभ्यास करवाना प्रारंभ कर दिया। सब प्रकार के आसन और प्राणायाम इन्हें सिखाये गए। युवावस्था होने के कारण इनके शरीर कोमल और लचकीले थे, इसलिए प्रत्येक आसन को बड़ी आसानी के साथ करने लगे। सभी क्रियाओं और प्राणायामों को भी शीघ्र सीख गए। नारायणदास तथा एक युवक सन्त ने भी इनके साथ ही योग साधना की।

'आत्म-विज्ञान' प्रकाशन कार्य

श्री बाबूलाल दीक्षित, श्री मुरारीलाल श्रोत्रिय तथा वैद्य विद्याभूषण तीनों अच्छे विद्वान् थे और महाराजजी के पास गत दो वर्ष से योगाभ्यास कर रहे थे। इनसे हस्त-लिखित 'आत्म-विज्ञान' में यत्र-तत्र भाषा का संशोधन करवाया गया था। इनके पश्चात् आनन्दस्वामी सरस्वतीजी तथा अमृतानन्दजी को 'आत्म-विज्ञान' की हस्तलिखित प्रति दिखा दी गई थी। तत्पश्चात् श्री रामकिशोर तथा बी० एन० दत्त को दिल्ली भेज कर इसके प्रकाशन का प्रबन्ध करवाया गया। दो मास में इस ग्रन्थ के विभिन्न चित्र तैयार हुए। एक चित्रकलाविशारद को ८ रु० प्रतिदिन देकर रखा गया और इसने सब चित्र बनाए। ब्रह्मचारी जगन्नाथजी भी चित्र-निर्माण में इसकी सहायता करते रहे। १९५६ में इस ग्रंथ का यूनिवर्सिटी प्रेस में मुद्रण हुआ। 'मिलाप' के प्रधान संपादक श्री रणवीरजी तथा इनके भाई ओमप्रकाशजी ने इस कार्य में अपना महान योग-दान दिया।

गंगोत्री प्रस्थान--'बहिरङ्ग योग' ग्रंथ की योजना

स्वर्गाश्रम के साधना-शिविर के समाप्ति-समारोह के पश्चात् पूज्य महाराजजी ने गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में डेढ़ मास के लिए उत्तरकाशी विराजे। इन्होंने सेठ हरबंसलालजी मरवाह को गंगोत्री जाने के लिए आदेश दिया जिससे उनके अभ्यास में कुछ परिवर्तन होने की संभावना देखकर आगे प्रगति का यत्न किया जाए। हरबंसलालजी उत्तरकाशी आगए और यहां से महाराजजी के साथ ४ जून को गंगोत्री पहुंच गए। ब्रह्मचारी प्रेम और श्रीकण्ठ भी इनके साथ ही आए थे। पूज्य योगीराजजी ने इन तीनों को वात्स्यायन-भाष्य सहित न्यायदर्शन तथा उपस्कार-भाष्य सहित वैशेषिक दर्शन का अध्ययन करवाया। गत वर्ष व्यास-भाष्य सहित योग दर्शन तथा विज्ञानभिक्षु-भाष्य सहित सांख्य दर्शन पढ़ाए थे। तीन मास तक अभ्यास भी करवाया गया था। ब्रह्मचारी प्रेम, श्रीकण्ठ तथा सुन्दरानन्दजी को विविध प्राणा-यामों, आसनों और हठयोग की क्रियाओं का विशेष रूप से अभ्यास करवाया गया। इन ब्रह्मचारियों के शरीर नरम, कोमल और लचकदार थे। कई उपायों से इन्हें कोमल और लचकदार बनाया गया था जिससे ये कठिनतम आसन और प्राणायाम कर सकें। 'आत्म-विज्ञान' ग्रंथ सर्वसाधारण की समझ में नहीं आया था, इसलिए

पूज्य महाराजजी ने 'बहिरङ्ग योग' नामक एक अन्य ग्रंथ की रचना करने की योजना बनाई। 'आत्म-विज्ञान' में धारणा, ध्यान तथा समाधि के विषय का ही विशेष रूप में विवेचन था। इसके लिए एक ऐसे ग्रंथ की रचना की आवश्यकता समझी गई जिसमें योग के प्रथम पांच अङ्गों अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का पूरा विवेचन हो। विविध प्रकार के आसनों और प्राणायामों को चित्रों द्वारा इस ग्रंथ में समझाने की आवश्यकता थी, अतः इन तीनों ब्रह्मचारियों को योग के दोनों अंगों की पूर्ण शिक्षा देकर पारंगत किया गया जिससे आसन और प्राणायाम करते हुए इनके विविध चित्र लिए जा सकें।

स्वर्गाश्रम गमन

श्री महाराजजी ने अक्तूबर १९६० के प्रथम सप्ताह में गंगोत्री से प्रस्थान किया। मार्ग में ४० दिन तक उत्तरकाशी में विराजे और फिर स्वर्गाश्रम पधारे। ४ मास का साधना-शिविर १५ नवम्बर से प्रारंभ कर दिया गया।

योग निकेतन ट्रस्ट

महाराजश्री ने उत्तरकाशी और गंगोत्री के योग निकेतनों का एक ट्रस्ट बना दिया था। इस ट्रस्ट के निम्नलिखित सदस्य बनाए गए थे :—

प्रधान—पूज्य महाराजजी

मंत्री—श्री बी० एन० दत्त

सदस्य :—

१. सेठ हरबंसलाल मरवाह

२. सेठ अमीरचन्द

३. सेठ मोहनलाल बागड़ी

४. सेठ अमृतलाल रमणलाल

५. श्री जगदीशचन्द्र डावर

६. श्री नारायणदास कपूर

७. स्वामी दयालमुनिजी

श्री स्वामीजी के अतिरिक्त ट्रस्ट के सभी सदस्यों को वार्षिक चन्दा देना होता था।

श्री महाराजजी संन्यास धारण करने का विचार कर रहे थे, इसीलिए उपरोक्त ट्रस्ट बनाना आवश्यक समझा गया था।

दोनों आश्रमों का वार्षिक व्यय लगभग ३००० रु० होता था। ट्रस्टियों के चन्दे से यह व्यय किया जाता था।

अब महाराजजी ने २३ घण्टे प्रतिदिन मौन रखने और केवल एक घण्टा सायंकाल अभ्यासियों से बात करने का निश्चय कर लिया था। ४० दिन तक तो यह व्रत

निर्विघ्न रूप से चलता रहा, किन्तु जब अभ्यासियों ने बहुत आग्रह किया तो इन्हें यह व्रत समाप्त करना पड़ा। इनमें से बहुत से अभ्यासी लोग बहुत दूर-दूर से आए थे और अपने कारोबार छोड़कर श्री महाराजजी की शरण में आए थे, अतः वे इनके उपदेश के बड़े इच्छुक थे और एक घंटे से उन्हें सन्तोष नहीं होता था।

भक्त की कारावास से मुक्ति

महाराजजी को दैनिक पत्र 'मिलाप' से विदित हुआ कि करांची में युद्ध-कालीन विधान चालू हो रहा है और इसके तहत में जगदीशचन्द्र गिरफ्तार होगए हैं और इन्हें जेल में भेज दिया गया है। इस समाचार से श्री महाराजजी चिन्तित होगए। जगदीशचन्द्र इनके अनन्य भक्तों में से थे। दूर देश है, कभी वहां की पुलिस को नहीं देखा, जज को नहीं देखा, उन पर मानसिक प्रयोग करें तो कैसे करें ! अतः महाराजजी ने डावरजी को ही अपने मानसिक प्रयोग का लक्ष्य बनाया। अपने मनोबल द्वारा जेल से बाहिर आकर्षण करने का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। यह दिन के ११ बजे की बात है; लगभग ४ बजे महात्मा प्रभु आश्रितजी तथा आचार्य सत्यभूषणजी का जगदीशचन्द्रजी के गिरफ्तार होने के सम्बन्ध में तार आया जिसमें महाराजजी से भगवान् से प्रार्थना करने तथा अपने मनोबल के प्रयोग से उन्हें जेल से छुड़ाने की प्रार्थना की गई थी। योगीराजजी ने उन्हें तार दिया और पत्र द्वारा सूचित किया कि वे कल तक कारावास से मुक्त हो जाएंगे। महाराजजी ने इस दिन दोपहर को भोजन नहीं किया था और कई बार बलपूर्वक मानसिक प्रयोग किया। दूसरे दिन ही आचार्य सत्यभूषण का तार आया जिसमें लिखा था कि जगदीशचन्द्र मुक्त होगए हैं। इनका पत्र महाराजजी के पास गिरफ्तारी के ५ दिन पश्चात् आया जिसमें सब समाचार लिखा था। यह भी सूचित किया था कि अब उन पर मुकद्दमा चलेगा। महाराजजी ने उन्हें उत्तर दिया कि आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। न तो आप दुबारा जेल जाएंगे और न आप पर किसी प्रकार का जुर्माना ही किया जाएगा। मुकद्दमा ज़रूर चलेगा किन्तु आप निर्दोष साबित होंगे और आपके पक्ष में मुकद्दमे का फैसला होगा। पत्र में विस्तारपूर्वक सब समाचार पढ़ते ही महाराजजी ने जब अपने योगबल से प्रयोग करना प्रारम्भ किया तब इनके समक्ष दो आकृतियां उपस्थित हुईं—एक सरकारी वकील की तथा दूसरी जज की। इन्होंने जगदीशचन्द्र को इनका रंग, रूप, कद, आयु तथा आकृति लिखकर भेज दी। वे पत्र पढ़कर आश्चर्यचकित होगए। इतनी दूर बैठे हुए अपनी दिव्य-दृष्टि से महाराजजी ने इन्हें कैसे देख लिया, इस बात पर वे बड़ा अचम्भा कर रहे थे। इन्होंने योगीराजजी को पत्रोत्तर में लिखा कि आपने ठीक समझा और देखा है। इनके ध्यान और प्रयोग काल में आकाशमण्डल में जो आकृतियां सामने आई थीं, वे सब ठीक निकलीं। जगदीशचन्द्र को आदेश दिया गया कि जिस दिन और समय मुकद्दमा प्रारम्भ हो इसकी सूचना तार द्वारा दी जाय जिससे उसी दिन और समय पर प्रयोग किया जा सके। इस मुकद्दमे के दौरान ३-४ जजों का स्थानान्तर होगया अतः महाराजजी को प्रत्येक जज पर प्रयोग करने पड़े और इसमें उनकी बड़ी शक्ति लगी। इस मुकद्दमे के झंझट से मुक्त होकर जगदीशचन्द्र महाराजजी के दर्शन करने और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उत्तरकाशी गए।

सेठ जुगलकिशोर बिरला से सम्पर्क

श्री महाराजजी ने 'आत्म-विज्ञान' नामक स्वरचित ग्रंथ को सेठ जुगलकिशोरजी बिरला के पास प्रसाद रूप में भेजा था। इसका सेठजी के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने आद्योपान्त इस ग्रंथ को पढ़ा और इसकी बहुत प्रशंसा की। इनकी श्री महाराजजी से सम्पर्क बढ़ाने की इच्छा उत्पन्न हुई। इन्होंने महाराजजी को ३०० रुपये भेजे और इस ग्रंथ को साधु-महात्माओं में वितरित करने के लिए प्रार्थना की जिससे निर्धन सन्त भी इससे लाभ उठा सकें। इन्होंने भारतवर्ष और आर्य-जाति के भविष्य के बारे में भी इनसे अनेक प्रश्न पूछे थे और श्री महाराजजी ने इन सब प्रश्नों के समाधान लिखकर भेजे थे।

श्री पंडित देवधरजी स्वर्गाश्रम ट्रस्ट के उपमन्त्री थे। ये महाराजजी का बड़ा सम्मान करते थे। इनके आग्रह पर अपने योगबल के प्रभाव से महाराजजी ने इन्हें स्वर्गाश्रम के दो मुकद्दमों में विजय दिलवाई।

पत्रों द्वारा संपर्क बढ़ जाने के कारण महाराजजी ने सेठ बिरलाजी को अपनी फोटो भेजने के लिए लिखा जिसके आधार पर आवश्यकता पड़ने पर ये अपनी शुभ-कामना युक्त मनोबल के द्वारा सहायता कर सकें। श्री सेठजी की सन्तों-महात्माओं के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, विशेषकर हिमालय के योगियों के प्रति। इन्होंने अपना चित्र भेज दिया और साथ ही महाराजश्री के दर्शन की जिज्ञासा भी प्रकट की। श्री महाराजजी गंगोत्री पधारने वाले थे, तब सेठजी स्वर्गाश्रम महाराजजी के दर्शन करने पधारे। सेठजी के पारिवारिक जन उन्हें बड़े बाबूजी कह कर पुकारते हैं। इन्होंने अपने पधारने की सूचना पंडित देवधरजी द्वारा भिजवा दी थी। आप लगभग ४ बजे श्री महाराजजी के निवास-स्थान पर पधारे। लगभग दो घंटे तक स्वदेश और आर्यजाति के भावी उत्थान और ईश्वरभक्ति के विषय में सेठजी ने इनसे प्रश्न किए और शंकाएं उठाईं। महाराजजी ने सबका युक्तियुक्त, तर्कसंगत और विद्वत्तापूर्ण समाधान किया। हिन्दू जाति के सेठ बिरला बड़े पालक और पोषक हैं। धर्म, समाज, शिक्षा, राजनीति आदि कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसपर आपके दान की वर्षा न होती हो। जब ये योगीराजजी से धर्म के विषय में वार्तालाप कर रहे थे तब विदित हुआ कि हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन आपने किया है, सब सिद्धान्तों से परिचित हैं। भगवान् के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति है, बड़ी आस्था और विश्वास है। विदा होते समय सेठजी ने महाराजजी से एक ही प्रार्थना की—"आप सन्त-महात्मा हैं, हिमालय के योगी हैं। आप नित्यप्रति भगवान् से यह प्रार्थना करें कि इस आर्यजाति का भविष्य उज्ज्वल हो, राम-राज्य की स्थापना हो, महात्मा गांधी के स्वप्न साकार रूप धारण करें, भ्रष्टाचार का समुन्मूलन हो, राज-पुरुष शिष्ट और धर्मात्मा हों, राष्ट्र आचार-वान् हो और आर्य धर्म उन्नति करे, फूले और फले।" महाराजजी ने ३ वर्ष तक नित्य प्रति शुभ-कामना और प्रार्थना करने का वचन दिया।

श्री महाराजजी १८ अप्रैल को उत्तरकाशी पहुंच गए। इनके साथ ब्रह्मचारी प्रेम और श्रीकंठ भी गए। महाराजजी के परमभक्त सेठ तुलसीरामजी के बड़े पुत्र सेठ गोपालदासजी तथा उनकी पत्नी और दिल्ली से ओमप्रकाशजी तथा उनकी पत्नी शान्ता और छोटा पुत्र नवीन सभी अपनी-अपनी कारों में उत्तरकाशी पहुंचे।

ओमप्रकाश टेपरिकार्डर अपने साथ लाए थे। ये लोग १० दिन तक उत्तरकाशी में रहे। नित्य सत्संग होता रहा। सेठ गोपालदास ने योगनिकेतन में उत्तरकाशी के सभी सन्तों और महात्माओं को भोजन खिलाया और योगनिकेतन में सत्संग-भवन के निर्माण के लिए ६००० रु० महाराजजी की भेंट किया।

सेठ जुगलकिशोर बिरला की बीमारी को अपने ऊपर लेना—श्री महाराजजी के पास पंडित देवधर ने पत्र द्वारा सेठ जुगलकिशोर बिरला की सख्त बीमारी की सूचना दी, और उन्हें अपने आशीर्वाद से स्वस्थ करने के लिए भी लिखा। इस पत्र को पाकर महाराजजी ने तुरन्त अपना प्रयोग और भगवान् से प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी। सेठजी को लक्ष्य बनाकर प्रयोग किया। इस प्रयोग का प्रभाव महाराज के ऊपर ही उल्टा पड़ गया और इन्हें स्वयं को ही हाई ब्लडप्रेशर होगया। महाराजजी को कभी आज तक यह रोग नहीं हुआ था। सेठजी ४-५ दिन में ही ठीक होगए किन्तु इनपर ८-१० दिन तक इसका प्रभाव रहा। इन्होंने डाक्टर को बुलाकर ब्लडप्रेशर की जांच करवाई और रुधिर की भी। थोड़े दिनों में ये ठीक होगए। महाराजजी ने पं० देवधर को पत्र द्वारा पूछा कि क्या अभी सेठजी को हाई ब्लडप्रेशर है। उन्होंने लिखा कि हां, सेठजी को हाई ब्लडप्रेशर ही था किन्तु अब आपके आशीर्वाद से ठीक होगया है। महाराजजी ने सेठ बिरलाजी का हाई ब्लडप्रेशर अपने ऊपर ले लिया था और उन्हें रोगमुक्त कर दिया था।

गंगोत्री-प्रस्थान

भक्तों ने महाराजजी को एक सप्ताह बीमारी के कारण गंगोत्री-प्रस्थान स्थगित करने के लिए निवेदन किया, किन्तु इन्होंने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन नहीं किया और प्रस्थान कर दिया। मार्ग में चलते-चलते ही हाई ब्लडप्रेशर जाता रहा। महाराजजी के मनोबल के प्रयोग के उपरान्त सेठजी को कभी हाई ब्लडप्रेशर नहीं हुआ किन्तु इन्हें तीन बार इस प्रयोग के पश्चात् हुआ। सेठ जुगलकिशोरजी ने महाराजजी को धन्यवादात्मक पत्र लिखा। सेठजी को किसी बड़े सन्त ने विश्वास दिलाया था कि आपके जीवन को चार वर्ष तक कोई खतरा नहीं है, उन्होंने इसकी सत्यता के विषय में भी इनसे पूछा। महाराजजी ने भी इसकी पुष्टि की।

उत्तरकाशी के पं० उषापति भट्ट, डी० एम० उत्तरकाशी, से महाराजजी का विशेष परिचय होगया था। ये एक बार इनके पास आए। लगभग दो घण्टे तक आध्यात्मिक विषयों पर वार्तालाप होता रहा। भट्टजी धार्मिक विचारों के और ईश्वर-भक्त हैं। धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय भी किया है। इनकी योग में विशेष निष्ठा थी।

महात्मा श्री प्रभु आश्रितजी भी यहां एक मास के लिए आए हुए थे। आश्रम में नित्य सत्संग होता रहता था। महात्माजी और ब्रह्मचारी प्रेम भी कभी-कभी कथा किया करते थे।

श्री महाराजजी ने २ जून को उत्तरकाशी से गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। इनके साथ सेठ झब्बालाल, ब्रह्मचारी श्रीकण्ठ तथा ब्रह्मचारी बसन्तदासजी भी गंगोत्री गए। ब्रह्मचारी प्रेम ने उत्तरकाशी से एक मास पश्चात् आने के लिए प्रार्थना की थी। ५ जून को ये सब गंगोत्री पहुंच गए। प्रातः ८ से साढ़े ९ बजे तक आसन,

प्राणायाम अभ्यासार्थियों को सिखाए जाते थे और सायंकाल एक घण्टा महाराजजी साधनाभ्यास करवाते थे।

महाराजजी ने 'बहिरङ्ग योग' के लिए कई नूतन आसनों का निर्माण किया था। इनका अभ्यास ब्रह्मचारियों को करवाया करते थे। इनकी विधि और लाभ भी साथ लिखते जाते थे। गंगोत्री और उत्तरकाशी में विराज कर महाराजजी ने इस ग्रंथ को लिख डाला। गंगोत्री में महाराजजी व्यास-पूजा को बड़ी धूमधाम से मनाया करते हैं। इस अवसर पर सब सन्तों और महात्माओं को पक्का भण्डारा दिया जाता था। रुपया, मेवा, मिठाई तथा वस्त्रादि भी इनको बांटा जाता था। इस अवसर पर प्रेम भी उत्तरकाशी से आगया। सब शिष्यों ने महाराजजी की विधि-पूर्वक अर्चना, बंदना तथा स्तुति की।

महाराजजी प्रेम तथा श्रीकण्ठ दोनों को दर्शनशास्त्र पढ़ाया करते थे। इन दिनों इनका चित्त सब ओर से कुछ उपराम सा होता जाता था। अभ्यास करवाना, अध्ययन करवाना, उपदेश देना तथा अन्य व्यवहार करना सभी बन्धन के हेतु प्रतीत होते थे। वे यही चाहते थे कि सब व्यवहार छोड़कर कहीं एकान्त स्थान में जाकर रहूं और मौन हो जाऊं। प्रेम आदि ब्रह्मचारियों ने महाराजजी से ब्रह्म-विज्ञान नामक ग्रंथ को लिखने के लिए कई बार पूछा तो महाराजजी ने कहा, "अभ्यासियों को चिरकाल तक अभ्यास करवाने के पश्चात् जिस प्रकार 'आत्म-विज्ञान' लिखा गया था उसी प्रकार से ब्रह्म-विज्ञान लिखा जाएगा। महाराजजी प्रेमादिक से कहा करते थे कि आत्म-विज्ञान को जीवन में घटाना चाहिए और आत्म-ज्ञानियों की तरह से रहना चाहिए। तुम्हारे संपर्क में आने वाले सभी इस बात को अनुभव करें कि आपको वास्तव में आत्म-विज्ञान हो चुका है, आपका जीवन और आचरण ठीक रूप से आत्मज्ञानियों के समान है। आत्म-ज्ञानी का जीवन और व्यवहार कपट, दंभ तथा छल रहित होता है। भोग और विषयों से उपरति होनी चाहिए। कर्म और व्यवहार में विशेष आसक्ति न हो। शत्रु और मित्र में समानभाव रहे। किसी के अपकार करने पर भी प्रतिकार की भावना जागृत न हो। आत्म-ज्ञानी कभी किसी भी प्राणी से राग और द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार का दमन करता है। कभी किसी की निन्दा और चुगली नहीं करता। उसकी सभी शंकाएं और जिज्ञासाएं शान्त हो जाती हैं। वह सुख और दुःख दोनों को समान समझता है। वह सब प्रकार की ममता को त्याग देता है। जो उसे प्राप्त है उसी में सन्तुष्ट रहता है। हर्ष, भय, शोक में साम्य भाव रखता है। उसके चित्त में क्षोभ का लेश भी नहीं रहता। वह सदा एकरस रहकर आत्म-चिंतन करता है। उसकी मन और बुद्धि स्थिर रहती है। भगवन्निष्ठ होता है। जो संकट और विपत्ति में क्षुब्ध नहीं होता। जिसने अपने स्वरूप की स्थिति को समझा है। जड़ और चेतन से जिसका अनुराग जाता रहा है। जिसकी आसक्ति इहलोक तथा स्वर्गलोक के भोगों से जाती रही है। इन सब लक्षणों से युक्त आत्मज्ञानी योगी जीवन्मुक्त हो सकता है।

यह उपदेश श्री महाराजजी ने व्यास-पूजा के अवसर पर सन् १९६० में दिया था। इन दिनों में ये 'बहिरङ्ग-योग' भी लिख रहे थे और साधकों को अभ्यास भी करवाते थे। इस ग्रंथ में ब्रह्मचारी प्रेम, श्रीकण्ठ तथा सुन्दरानन्द के तथा

अपने चित्र देने की व्यवस्था की गई थी, अतः कठिन-कठिन आसनों और प्राणायामों का इन्हें नित्य अभ्यास करवाते थे जिससे ये भली प्रकार सीख जाएं और इनके ठीक-ठीक चित्र लिए जा सकें।

३० सितंबर तक यहां निवास करके महाराजजी अपनी सारी मंडली के साथ उत्तरकाशी चले गए। यहां पर भी पुस्तक लेखन और ब्रह्मचारियों को आसन और प्राणायाम आदि का अभ्यास भी करवाते रहे। लगभग डेढ़ मास तक यही कार्य क्रमशः चलता रहा।

स्वर्गाश्रम में साधना शिविर

८ नवम्बर को उत्तरकाशी से प्रस्थान करके स्वर्गाश्रम पहुंच गए। वहां पर कानपुर वाली धर्मशाला में निवास किया। शिवानन्दाश्रम के चित्रकारों से आसनों और प्राणायामों के चित्र उतरवाने का प्रबन्ध किया गया। लगभग एक मास चित्र खिंचवाने में लगा। लगभग ३०० आसनों के और ५० प्राणायामों के चित्र खिंचवाए गए। प्रकाश तथा स्टूडियो का ठीक-ठीक प्रबन्ध न होने के कारण चित्रों में कई दोष रह गए थे।

मार्च सन् १९६० में 'बहिरंग योग' का प्रकाशन--पहली मार्च सन् १९६० ई० को 'बहिरंग योग' ग्रंथ के प्रकाशनार्थ दत्तजी को दिल्ली भेजा गया। महाराजजी दो मास तक तो कानपुर वाली धर्मशाला में विराजे और फिर 'रानी की कोठी' में निवास करने लगे। यहीं पर साधकों को अभ्यास करवाना भी प्रारंभ कर दिया। योग निकेतन ट्रस्ट का कार्य भी इसी कोठी में होने लगा। इस वर्ष दो देवियां अमेरिका से, एक सज्जन फ्रांस से, तथा एक इंडोनेशिया से अभ्यासार्थ आए। ४ मास का साधना शिविर समाप्त होने पर ब्रह्मचारी श्रीकण्ठ बनारस अध्ययनार्थ चले गए, सुन्दरानन्द जयपुर गए और प्रेम ने स्वर्गाश्रम में कैलाशानन्दजी के पास रहने का निश्चय किया। क्योंकि हिमालय का शीतप्रधान प्रदेश इसके अनुकूल नहीं था, अतः इसने हिमालय का वास छोड़ दिया और कैलाशानन्द के पास स्थायी रूप से रहने लगा और फिर अपनी कुटिया का अलग निर्माण करवा लिया।

गंगोत्री गमन--श्री महाराजजी ने २० अप्रैल को स्वर्गाश्रम से प्रस्थान करने का निश्चय किया था किन्तु दैनिक 'मिलाप' के प्रधान संपादक श्री रणवीरजी अपनी कार में उत्तरकाशी पहुंचाने के लिए आगए। इनके साथ इनकी पत्नी तथा पुत्री भी थीं। धर्म बहन भी इनके साथ थीं। श्री महात्मा प्रभु आश्रितजी अपने बहुत से शिष्यों के साथ महाराजजी को विदा करने के लिए आए। एक दिन ऋषिकेश में कालीकमली वाले की धर्मशाला में ठहरकर प्रातःकाल प्रस्थान कर दिया। स्वर्गाश्रम से पं० देवधरजी शर्मा और हरबंसलालजी सेठी भी इन्हें विदा करने के लिए आए थे। प्रातः ८ बजे चलकर सायंकाल ४ बजे उत्तरकाशी पहुंच गए।

रणवीरजी ने उत्तरकाशी में निवास किया और तत्पश्चात् दिल्ली चले गए। ४० दिन तक उत्तरकाशी में विराजकर महाराजजी गंगोत्री पधारे। वहां ४ मास निवास करके अक्टूबर के प्रारंभ में उत्तरकाशी चले आए और २५ अक्टूबर को स्वर्गाश्रम पधार गए।

साधना शिविर––इस बार साधना शिविर १ नवम्बर से १ मार्च तक लगाना प्रारंभ कर दिया क्योंकि १३ अप्रैल सन् १९६२ में हरिद्वार में कुंभ था। साधकों की सुविधा के लिए ऐसा किया गया था जिससे मार्च में साधना समाप्त करके कुंभ के मेले में वे सम्मिलित हो सकें।

इस अवसर पर श्री महाराजजी ने संन्यास धारण करने का पक्का निश्चय कर लिया। साधना शिविर के संचालन और साधकों को अभ्यास करवाने के लिए ब्रह्मचारी जगन्नाथजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी को नियत कर दिया। महाराजजी यह भी देखना चाहते थे कि इनकी अनुपस्थिति में साधना शिविर का संचालन किस प्रकार से किया जाता है। 'बहिरंग योग' के प्रकाशन की व्यवस्था करने के कारण मौन धारण करने की इच्छा होने पर भी महाराजजी मौनव्रत न कर सके। साधना शिविर १ मार्च को समाप्त होगया। इस अवसर पर ६५ नए साधकों ने साधना की। शिविर समाप्ति पर सबको प्रीतिभोज दिया गया। महाराजजी ने इस अवसर पर साधकों को अपने उपदेशामृत का पान करवाया। सबको सम्बोधन करके आदेश दिया :—

"यह योग का युग है। इसके लिए भारतीय हृदयों में ही नहीं अपितु विदेशी लोगों में भी जिज्ञासा उत्पन्न हो चुकी है। इसीलिए इस वर्ष ४ विदेशी साधक अभ्यासार्थ आए हैं और इसीलिए आप सब भी योग जिज्ञासा लेकर योग-साधनार्थ आए हैं। यदि अपने-अपने स्थान पर भी आप इसी प्रकार अभ्यास करते रहें, संयम तथा अनुशासनपूर्वक रहें तो महती सफलता मिल सकती है। आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान का साधन मुख्य रूप से योग ही है, अतः इसकी सिद्धि के लिए संपूर्ण जीवन की आहुति लगा देनी चाहिए।" इसके पश्चात् कई साधकों ने श्री महाराजजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए अभिनन्दन-पत्र पढ़े। एक साधिका श्रीमती कलावतीजी ने इस विदाई के उपलक्ष्य में निम्नलिखित बड़ी सुन्दर कविता पढ़ी :—

गुरुदेव से विदाई

हमारी आपसे गुरुवर ! विदाई आज होती है।
जो थे अभ्यास के साथी, जुदाई आज होती है॥
कभी यह हर्ष था दिल में, चलें गुरुदेव चरणों में।
वे दिन अब होगए पूरे, विदाई आज होती है॥
बनाया शान्त जीवन को, मिला आनन्द हम सबको।
रहें गुरु छत्र छाया में, विदाई आज होती है॥

इसके पश्चात् सब अभ्यासी भोजन करके विदा होगए।

संन्यास की तैयारी

पूज्य महाराजजी का कोई संन्यास गुरु नहीं है। इन्हें अब गुरु की आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि अब इनके लिए अध्ययन करने, सीखने अथवा जानने के लिए कुछ शेष नहीं रहा था। अब कोई अभिलाषा, कामना, ऐषणा अथवा जिज्ञासा शेष नहीं रही थी। यदि लोकमर्यादा के पालन के लिए कोई गुरु बनाया भी जाए तो खोजने पर भी ऐसा गुरु नहीं प्राप्त हो रहा था जिससे ये संन्यास की दीक्षा ले सकते। इसलिए इन्होंने विद्वत्-संन्यास लेने का विचार किया। विद्वत्-संन्यास में किसी

प्रकार के कर्मकाण्ड अथवा विजयाहोमादि की आवश्यकता नहीं होती किन्तु दान और यज्ञ की भावना से महाराजश्री ने महारुद्र यज्ञ करने का विचार किया। इसी में विजयाहोम भी आ जाता है। पंडित बालकरामजी अग्निहोत्री ऋषिकेश में उच्च-कोटि के मीमांसक प्रसिद्ध हैं, अतः इन्हीं से महाराजश्री ने यज्ञ के विषय में विचार-विमर्श किया। इन्होंने अपने एक शिष्य रामगोपालजी को इस यज्ञ के आचार्य बनकर संपूर्ण करने का आदेश दिया क्योंकि इनकी नेत्र रोग के कारण दृष्टि मन्द होगई थी। महाराजजी ने रामगोपाल आचार्य तथा रामकृष्ण शास्त्री से यज्ञ की संपूर्ण सामग्री लिखवा देने के लिए कहा जिससे उसका प्रबन्ध किया जा सके और चैत्र मास के प्रथम नवरात्र से यज्ञ प्रारंभ किया जा सके। यज्ञ का आनुमानिक व्यय छः हज़ार आंका गया था, किन्तु इस यज्ञ पर लगभग आठ हज़ार रुपया व्यय हुआ था।

महारुद्र यज्ञ का प्रारंभ—प्रथम नवरात्र ता० ५-४-६२ को यज्ञशाला बनकर तैयार होगई। पं० रामगोपालजी आचार्य ने यज्ञ कराने के लिए सायंकाल ४ बजे से सारी तैयारी प्रारंभ कर दी। पूजा-पाठ आरंभ कर दिया गया और देवता-पूजन भी। मण्डप तैयार होगया, चौंक पूरा गया। कुल १६०००० आहुतियां देनी थीं इसलिए प्रति-दिन २०००० आहुतियां देने का निश्चय किया गया। ४ घण्टे प्रातः तथा ४ घण्टे सायं-काल यज्ञ करने का निर्णय किया गया। आठ दिन तक यज्ञ होता रहा और रामनवमी पर पूर्णाहुति रखी गई। १०,११ तथा १२ अप्रैल को मध्यान्ह काल के अन्त में विजया-होम करने का निश्चय हुआ। नित्यप्रति विख्यात विद्वानों के व्याख्यानों की भी योजना बनाई गई थी किन्तु हवा के आधिक्य के कारण शामयाना ठहर नहीं सका, अतः इस कार्य-क्रम को स्थगित करना पड़ा। अब प्रतिदिन सायंकाल पूज्य महाराज-जी के भाषण होते रहे। १२ और १३ तारीख को महात्मा प्रभु आश्रितजी तथा श्री आनन्दस्वामीजी सरस्वती के भाषण सायंकाल को हुए। महाराजजी के हज़ारों शिष्य इस अवसर पर पधारे। भोजन की व्यवस्था बड़ी उत्तम थी। यज्ञ बड़ी धूमधाम से होता रहा। नित्यप्रति सैंकड़ों दर्शक यज्ञ के दर्शन करने तथा उपदेशामृत का पान करने के लिए आते थे। प्रबन्धकों को महाराजजी ने कठोर आदेश दे रखा था कि कोई भी व्यक्ति यहां आकर बिना भोजन किए न जाने पावे, अतः दर्शकों को भी भोजन करवाया जाता था। यज्ञ के समय वेदमन्त्रों की ध्वनि से गगनमण्डल गूंज उठता था। नित्यप्रति डेढ़ मन सामग्री और १० सेर घी से यज्ञ किया जाता था। पूज्य महाराजजी यजमान के आसन से घृत की आहुतियां तथा पंडित लोग सामग्री से आहुतियां दे रहे थे। जब महाराजजी किसी अन्य कार्य में लगे होते थे तब इनके शिष्य शंकरलालजी शर्मा यज्ञ में इनका प्रतिनिधित्व करते थे। १३ अप्रैल को यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस अवसर पर सैंकड़ों स्त्री-पुरुषों ने पूर्णाहुतियां डालीं और बड़े समारोह के साथ महारुद्र यज्ञ की समाप्ति हुई और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर विदा किया गया।

हर की पौड़ी पर वैशाख संक्रान्ति १३ अप्रैल १९६२ को संन्यास ग्रहण—पूज्य महाराजजी ने बसों, कारों आदि का पूर्ण प्रबंध कर लिया था। सैंकड़ों नर-नारी इनमें बैठकर महाराजजी के साथ हरिद्वार गए। ये अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ १० बजे हरिद्वार में हर की पौड़ी पर जा पहुंचे। घण्टाघर के पास पूज्य महाराजजी

ने हर की पौड़ी पर पहुंच कर स्नान किया, शिखा-सूत्र को उतार कर गंगाजी में प्रवाहित कर दिया और भगवे वस्त्र धारण करके अपना नाम श्रीमुख से स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती घोषित किया। सारी जनता ने हर्ष-ध्वनि करते हुए श्री महाराजजी का नाम लेकर उनकी जय-जयकार मनाई। इसके पश्चात् मिष्टान्न वितरण किया गया। इस कार्य में लगभग एक घण्टा लगा। इसके पश्चात् स्वर्गाश्रम पधारे। यहां पर एक बड़ा भारी भण्डारा किया गया जिसमें लगभग ६०० स्त्री-पुरुष और साधु सम्मिलित हुए। सायंकाल ४ बजे से ७ बजे तक तीन व्याख्यान हुए। महात्मा प्रभु आश्रितजी, श्री आनन्दस्वामी सरस्वतीजी और पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी के बड़े सारगर्भित भाषण हुए। पूज्य महाराजजी ने लोगों को अपने संन्यास-ग्रहण का कारण बताया। महाराजजी का प्रवचन दो दिन तक होता रहा।

१४ अप्रैल को महाराजजी ने निम्न उपदेश दिया था। इसका विषय था 'मैंने संन्यास क्यों ग्रहण किया।' श्री महाराजजी ने अपना प्रवचन वेद-मन्त्र से प्रारंभ किया और कहा :—

"मैं बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके योग साधन करता रहा हूं। जब मैं मोहनाश्रम में पढ़ा करता था उस समय मेरे दो साथी भी वहां पढ़ा करते थे। ये दोनों संन्यासी थे। एक का नाम विज्ञानभिक्षु था और दूसरे का शिवानन्द भारती था। दोनों ही युवक संन्यासी थे। इन्होंने विद्या-प्राप्ति के पश्चात् संन्यासाश्रम का परित्याग करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया था। मैंने ऐसे बीसियों साधु देखे हैं जिन्होंने संन्यास ग्रहण करके कुछ ही वर्षों के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया था, इसलिए मैंने ब्रह्मचर्याश्रम में ही रहना उपयुक्त समझा, और जब ७५ वर्ष की आयु होने लगी तब संन्यासाश्रम में प्रवेश किया।

"मेरे प्रथम गुरु स्वामी रामानन्दजी गिरि थे। इनकी विचारधारा आर्यसमाज की विचारधारा से मिलती-जुलती थी। मेरे दूसरे गुरु स्वामी परमानन्दजी अवधूत थे। ये उदासी सन्त थे। और मेरे तीसरे अध्यात्म-गुरु पूज्य आत्मानन्दजी महाराज थे। ये अयोध्या के आस-पास के रहने वाले थे और वैष्णव सन्त थे। बहुत वर्षों से ये तिब्बत में ही निवास कर रहे थे। इस प्रकार से मेरे तीन अध्यात्म-गुरु थे। मेरे विद्या-गुरु छः थे। जिन गुरुओं से मैंने संस्कृताध्ययन किया उनमें प्रमुख पं० हरिश्चन्द्रजी थे। इनसे कई वर्ष तक मैंने दर्शन-शास्त्र और उपनिषदादि महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया था।

"मैंने सर्वदा सब धर्मों के सार और तत्त्व को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और सभी का समानरूपेण सम्मान किया है। किसी धर्म या सम्प्रदाय का तिरस्कार अथवा अपमान मैंने कभी नहीं किया। सभी मतों और सम्प्रदायों के व्यक्ति मेरे शिष्य हैं। मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, आर्यसमाजी, सनातनधर्मी आदि सभी विचारधाराओं के व्यक्ति मेरे शिष्य हैं, और सभी समानरूपेण मुझे अपना पूज्य मानते हैं। कई विदेशी ईसाई भी मेरे पास योग सीखने के लिए आया करते हैं। मैं अपने सभी शिष्यों को, चाहे वे किसी भी मत या सम्प्रदाय के क्यों न हों, समान दृष्टि से देखता हूं और सबको समान रूप से योग-शिक्षा प्रदान करता हूं। सभी सम्प्रदायों के लोगों की मुझमें निष्ठा और भक्ति है। मैं यम और नियमों के पालन पर सदैव बड़ा बल

देता रहा हूं। वास्तव में यम और नियमों को ही सार्वभौम धर्म कहा जा सकता है। इन्हें प्रायः सभी सम्प्रदायों के लोग मानते हैं। इसीलिए मैंने किसी एक सम्प्रदाय के गुरु से संन्यास न लेकर स्वयं ही विद्वत्-संन्यास ग्रहण किया है।

"मैंने वर्ण और आश्रम की मर्यादाओं को सम्मुख रखते हुए संन्यास ग्रहण किया है। यद्यपि आश्रम के मर्यादा-क्रम से मुझे ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करना चाहिए था किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि मैं गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता तो मैं इतना कार्य कभी नहीं कर सकता था। ४० वर्ष तक योग शिक्षा देता रहा और दो ग्रंथ 'आत्म-विज्ञान' और 'बहिरङ्ग योग' लिखे और अब 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रंथ लिखने का विचार कर रहा हूं। यह सब कार्य नहीं हो सकते थे। जिस तत्त्व-ज्ञान अर्थात् आत्म-विज्ञान को और ब्रह्म-विज्ञान को मैं प्राप्त कर सका हूं इससे भी उस अवस्था में वंचित ही रहना पड़ता और अनेक जन्म-ज़न्मान्तर से आत्म-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान तथा ब्रह्म-विज्ञान की जो अभिलाषा थी वह भी पूरी न हो पाती। लोगों को यह जानकर आश्चर्य होता है कि मैं ब्रह्मचर्य काल में भी, संन्यासी बनने से पूर्व भी, क्रियारूप से संन्यासियों के समान आचरण करता था। लगभग ५० साल से घरबार छोड़कर पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके नगरों से दूर जंगलों और पर्वतों में रहकर योग के उस कठिनतम मार्ग पर चलता रहा हूं जिस पर बहुत बड़े सन्त ही चल सकते हैं। बहुत से संन्यासी ब्रह्मचर्याश्रम को छोटा मानकर मेरे ज्ञान से लाभ उठाने में संकोच करते थे, अब संन्यासी होने के नाते से वे भी लाभ उठा सकेंगे।"

इसके पश्चात् श्री आनन्दस्वामीजी ने भाषण दिया। इन्होंने कहा—"मैं आत्म-विज्ञान में श्री महाराजजी को अपना गुरु मानता हूं। इन्होंने ही मुझे योग द्वारा आत्म-ज्ञान प्रदान किया है। आश्रम के लिहाज़ से मैं इनसे बड़ा हूं और १२ साल पूर्व संन्यासी बन चुका हूं। हम सबको इन्हें ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज कहकर पुकारना चाहिए। अब आप बद्रीनाथ जाएंगे और अज्ञात रूप से मौन व्रत धारण करेंगे। योग निकेतन ट्रस्ट बनाकर आप सब बन्धनों से मुक्त होगए हैं।"

पूज्य महाराजजी का शिष्यों और सत्संगियों को उपदेश

कल मेरा द्विज धर्म समाप्त होगया। कल से ही ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों की भी समाप्ति हो गई। मेरे अब सब कर्त्तव्य समाप्त होगए। अब मैं संन्यास धर्म का पालन करूंगा। यज्ञ, दान तथा अध्यापनादि कार्यों के प्रति मेरे उत्तरदायित्व सब समाप्त होगए। अब शेष जीवन आत्म-ज्ञानियों और ब्रह्म-ज्ञानियों के समान बनाने का यत्न करूंगा और वैसा ही आचरण भी करूंगा। मैं ५० वर्ष से अपने भक्तों और शिष्यों को उपदेश दे रहा हूं, परन्तु खेद है कि कोई विशेष परिवर्तन इनमें मुझे दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। कई भक्त और शिष्य प्रायः कहा करते हैं, 'महाराजजी, अब आप नीचे के प्रदेशों में भी भ्रमण करके अपने शिक्षा-प्रद उपदेश देने की कृपा करें। अब आप अपना हिमालय से नीचे के प्रदेशों में न जाने का प्रण छोड़ दीजिए।' इसका उत्तर मैं सदा यही देता हूं कि जब इतने साल तक उपदेशों का श्रवण करके आपका कल्याण नहीं हुआ तो अब भी क्या आशा है! अब बहुत उपदेश सुनने की ज़रूरत नहीं है, अब तो सुने हुए उपदेशों पर आचरण करने की ज़रूरत है। आचरण करने वालों के लिए एक ही उपदेश पर्याप्त होता है, और यदि अमल न

करना हो तो फिर हज़ारों उपदेश निरर्थक हैं। इन सब बातों से अब मेरा चित्त उपराम होगया है। भगवान् तुम्हारा कल्याण न कर सके, बड़े-बड़े ऋषि और मुनि तुम्हारा कल्याण न कर सके तो इस योगेश्वरानन्द से भी क्या हो सकेगा ! साधक सुनते बहुत हैं किन्तु करते बहुत कम हैं। अब तक तो हमारे सारे उपदेश ग्रामोफोन के रिकार्ड ही साबित हुए हैं। कोई विरला ही वर्णाश्रम धर्म तथा मर्यादा का पालन करने में समर्थ होता है। जिस घर में जन्म लिया है लोग प्रायः उसी में मरना पसन्द करते हैं। वृद्धावस्था में भी घर में पड़े-पड़े पुत्रों तथा पुत्रवधुओं से अपमानित होते रहते हैं किन्तु वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण नहीं करते। घर में मरना आर्यों के लिए एक पाप कर्म माना गया है। यदि आश्रम-मर्यादा का यथार्थ रूप में पालन किया जाए तो वानप्रस्थियों की वन में और संन्यासियों की देश-देशान्तरों में मृत्यु होना परम-धर्म माना गया है। परिवारों में रहकर राग और मोह का अभाव नहीं हो सकता। राग, मोह तथा अविद्या का अभाव वनस्थ अथवा संन्यस्त महापुरुष प्राप्त कर सकते हैं। अतः हम इस हिमालय में रहकर ही योग और समाधि द्वारा जनता का कल्याण कर सकते हैं। जिनको लाभ उठाना होगा, कल्याण की कामना होगी, आत्म-ज्ञान की सच्ची जिज्ञासा होगी, वे वहीं आ जाएंगे। देश-देशान्तरों में घूम-फिर कर उपदेश देने की अपेक्षा एक स्थान में रहकर क्रियात्मक योगसाधन द्वारा आत्म-साक्षात्कार करवाना अधिक श्रेष्ठ कार्य है। साधक का साधना-काल में चरित्र का निर्माण अत्यन्त अच्छे ढंग से हो सकता है। तप, त्याग, ज्ञान तथा वैराग्य की भट्ठी में तप कर वह स्वर्ण के समान निर्मल होकर चमत्कृत हो जाता है। लोक-व्यवहार करते हुए तप, त्याग, ज्ञान और वैराग्य की भावना पनपने नहीं पाती, उन्नति की ओर विशेष रूप से प्रगति नहीं होती। अनेक विघ्न-बाधाएं आकर उपस्थित होती रहती हैं। जिस प्रकार एक दुकानदार या कारखानेदार के लिए उसका व्यवहार विक्षेप का हेतु होता है, उसी प्रकार अभ्यास करवाना, आश्रमों का संचालन करना तथा उपदेशादि देना भी बंधन का हेतु है, अतः अब मुझे भी इन सब प्रकार के बंधनों से मुक्त होना होगा। जो मैं आपसे करवाना चाहता हूं उसे मैं स्वयं भी तो करूं। मुमुक्षु को सर्व प्रकार के व्यवहार और संपर्क का परित्याग करना चाहिए, सर्व प्रकार की आसक्ति का अत्यन्ताभाव करना चाहिए। मेरे जीवन का तीसरा भाग समाप्त हो रहा है और चतुर्थ भाग प्रारंभ हो रहा है, अतः मुझे अब हिमालय में रह कर जीवन-मुक्ति के सुख का उपभोग करना चाहिए। अन्तर्यामी भगवान् आपको सुमति प्रदान करें जिससे आप दृढ़संकल्प और कटिबद्ध होकर श्रेय-पथ पर चलकर परमानन्द का उपभोग करें !

श्री महाराजजी के निम्नलिखित शिष्य कई वर्षों से नियमपूर्वक शिविर पर अभ्यासार्थ आ रहे हैं :—

१. रायसाहब बिश्वेश्वरनाथदत्त, आचार्य योगनिकेतन
२. कैप्टन जगन्नाथ, आचार्य योग-निकेतन
३. रामकिशोर, आचार्य योगनिकेतन
४. ब्र० श्रीकण्ठ, हठयोग आचार्य योगनिकेतन
५. बाबू प्यारेलाल मित्तल, लखीमपुर
६. बासीलाल मुख्त्यार, सम्बल
७. सेठ हरबंसलाल मरवाह, बम्बई

८. शंकरलाल शर्मा, दिल्ली
९. बाबूलाल दीक्षित, प्रोफेसर, अतरौली
१०. मुरारीलाल श्रोत्रिय शास्त्री अतरौली
११. सत्यभूषण वैद्य शास्त्री
१२. आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री, दिल्ली
१३. नारायणदास कपूर, दिल्ली
१४. ओमप्रकाश, मिलाप, दिल्ली
१५. शान्तिस्वरूप एम० ए०, मेरठ
१६. रायसाहब फतेचन्द
१७. महावीरप्रसाद, दिल्ली
१८. प्रीतमचन्द विज, दिल्ली
१९. ब्रह्मचारी सातव, योगनिकेतन
२०. किशोरीलाल, स्वर्गाश्रम
२१. विलायतीराम, धूरी मण्डी
२२. ला० सत्यप्रकाश, लुधियाना
२३. झब्बालाल, देहरादून
२४. किशनलाल, दिल्ली
२५. गंगासहाय, मेरठ
२६. जुगलकिशोर पेड़ीवाल, गंगानगर
२७. सीताराम महेश्वरी, दिल्ली
२८. श्रीकृष्ण, अमृतसर
२९. वैद्य मङ्गूलाल, सिहारा
३०. हरिसिंह, सिहारा
३१. वानप्रस्थी धर्मदेव
३२. राम उदासीन
३३. देवीदयाल दीवान, गीताभवन
३४. ओम्प्रकाश, रोहतक
३५. वानप्रस्थी अमरदेव
३६. माईकल स्मिथ, न्यूजीलैण्ड
३७. स्वामी शङ्करानन्द
३८. राजपालसिंह
३९. स्वामी हरिप्रसाद, अहमदाबाद
४०. बल्लभभाई पटेल, गुजरात
४१. सत्यकाम वेदवागीश, चित्तौड़
४२. सूर्यलाल शर्मा
४३. पूर्णचन्द चौरासिया
४४. ला० कर्मचन्द दिल्ली
४५. चक्खनलाल वेदार्थी
४६. घनश्याम, ऋषिकेश
४७. योगेन्द्रपाल, गुरुदासपुर
४८. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती
४९. जगदीशचन्द्र डावर
५०. पण्डित दुर्गाप्रसाद पाण्डे
५१. ब्र० प्रेमप्रकाश

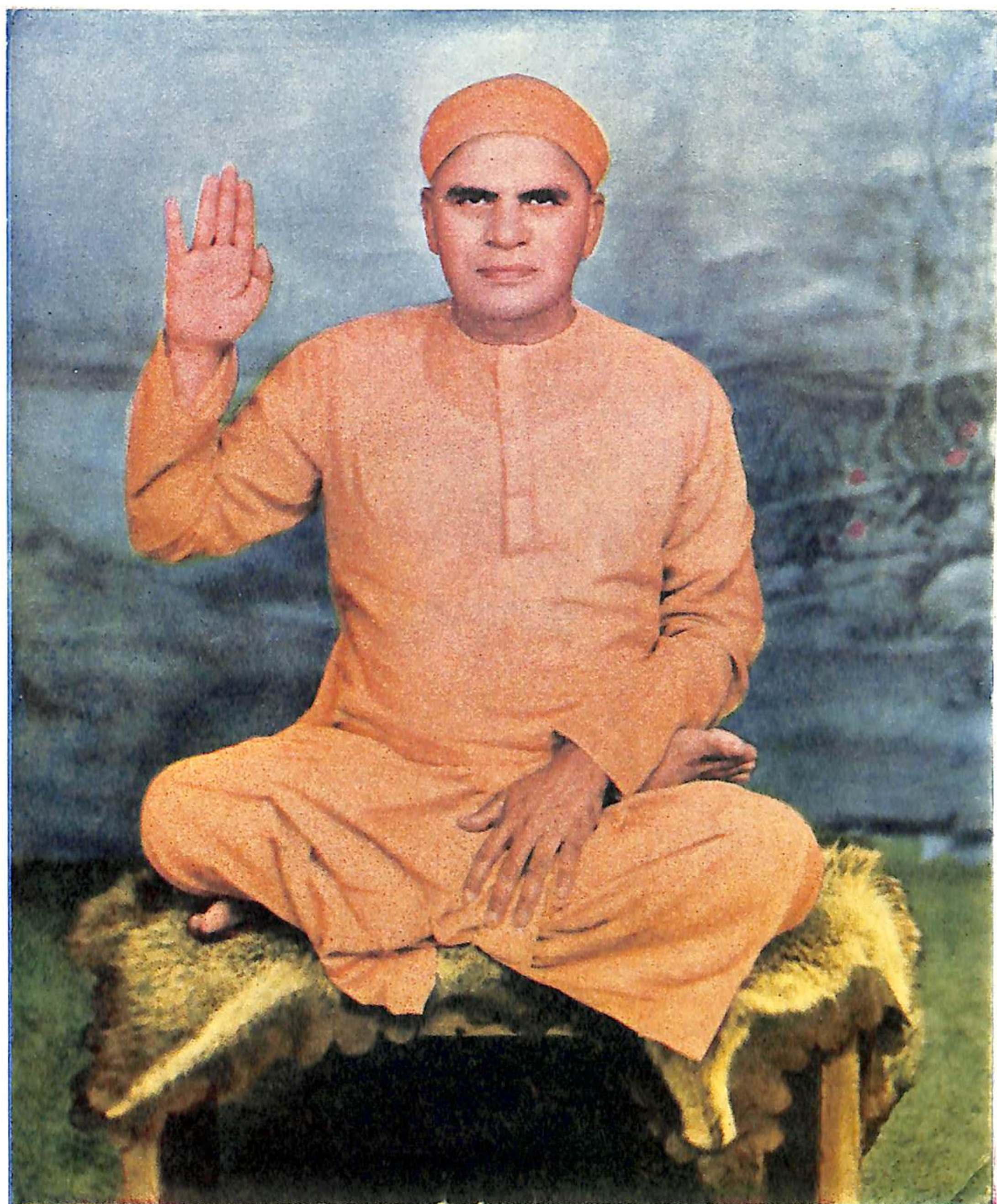
अभ्यासार्थ आने वाली मुख्य-मुख्य देवियां :—

१. धर्मवतीदेवी, उत्तरकाशी
२. शीला दत्ता, देहरादून
३. रामप्यारी, लुधियाना
४. कलावती, दिल्ली
५. कौशल्या मित्तल
६. दुर्गादेवी, स्वर्गाश्रम
७. ईश्वरादेवी, बरेली
८. वीरादेवी मरवाह, बम्बई
९. शान्ति गोयल, हापुड़
१०. ब्रह्मशक्तिदेवी, गुरुकुल नरेला दिल्ली
११. शान्तिदेवी, गुरुकुल नरेला
१२. शान्तादेवी, मिलाप, दिल्ली
१३. रतनदेई, आगरा
१४. लीलावती, दिल्ली
१५. डाक्टर बिमलादेवी
१६. डाक्टर विद्यावती, जालन्धर
१७. प्रेमवती वलीराम तनेजा, धनबाद

१८. लज्जावती महता, हरिद्वार
१९. ओंकारेश्वरी, स्वर्गाश्रम
२०. कमला आस्वानी, सूरत
२१. मिस साक इजराईल
२२. रामप्यारी, व्यास आश्रम
२३. श्रीमती धर्मचन्द, दिल्ली
२४. शकुन्तला, गुरुदासपुर
२५. यशवती, पठानकोट
२६. उमा पण्डित, कश्मीर
२७. डाक्टर रामप्यारी शास्त्री

श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज का इस समय का चित्र सामने है।

'हिमालय का योगी' ग्रंथ में
'योग प्रशिक्षण' नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त।



ब्रह्मनिष्ठ योगीप्रवर श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज
(सन्यास लेने के पश्चात्)

उत्तरार्द्ध

पंचम अध्याय

ब्रह्म-विद्या का प्रचार

श्री पूज्य ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने संन्यास धारण करने के पश्चात् लगभग १५-२० दिन स्वर्गाश्रम में निवास किया। स्वामीजी महाराज के कई भक्तों की यह इच्छा थी कि ये अब हिमालय से नीचे उतरकर सर्वत्र भ्रमण करें और अपने उपदेशामृत से जनता का कल्याण करें, किन्तु पूज्य महाराजजी को नितान्त एकान्त और प्रशान्त उत्तराखण्ड में निवास करना अधिक प्रिय था। प्रवृत्ति-परक नगरों में जाना इन्हें पसन्द नहीं था। अपने भक्त पंडित शंकरलालजी शर्मा और सेवक गणनाथ को साथ लेकर मई के प्रथम सप्ताह में मोटर द्वारा बद्रीनाथ के लिए रवाना होगए। ऋषिकेश से चलकर रुद्रप्रयाग पहुंचे। इस पड़ाव पर यात्रियों की बहुत भीड़ थी। यहां से एक मार्ग केदारनाथ को जाता था और दूसरा बद्रीनाथ को, अतः दोनों तीर्थों पर जाने वाले यात्री यहीं एकत्रित होते थे। अत्यधिक भीड़ के कारण यहां निवास के लिए स्थान मिलना भी बड़ा कठिन था। जब पूज्य महाराजजी बाजार में इधर-उधर टिकने के लिए स्थान ढूंढ रहे थे तब इनके पास एक ब्राह्मण आया और निवेदन किया कि "आपके लिए रहने की व्यवस्था हो जाएगी और आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। जब तक मैं आपके लिए कमरा साफ करता हूं तब तक आप जाकर अपना सामान उठवा लायें।" रात्रि को वहां जाकर विश्राम किया किन्तु खटमलों के कारण निद्रा न आ सकी। दूसरे दिन सायंकाल जोशीमठ पहुंचे और वहां पर बिरला-भवन में ठहरे। यहां के प्रबन्धक को सेठ जुगलकिशोर बिरला ने इनके जोशीमठ और बद्रीनाथ में निवास की व्यवस्था करने के लिए लिख दिया था। पूज्य स्वामीजी महाराज २५ मई तक जोशीमठ ठहरे और इसके पश्चात् बद्रीनाथ के लिए प्रस्थान किया।

'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ की रचना और काष्ठ मौन

बद्रीनाथ पहुंचकर अलखनन्दा के किनारे 'बिरला हाऊस' में निवास किया। पूज्य महाराजजी ने जून मास की पहली तारीख से काष्ठ मौन व्रत धारण कर लिया। शर्माजी ने भी आकार मौन का व्रत ले लिया। महाराजजी केवल पूर्णिमा और अमावस्या को एक घण्टे के लिए आकार मौन रखते थे। शेष दिनों में काष्ठ मौन बराबर चलता रहा। यहां रहकर 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ की रचना करने का महाराजजी का दृढ़ निश्चय था। कुछ कागज़ तो जोशीमठ से ही अपने साथ ले आए थे और शेष बद्रीनाथ से खरीद लिया गया। शर्माजी ने आकार मौन के साथ ५ लाख गायत्री मन्त्र के जाप का पुरश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया।

काष्ठ मौन काल के लिए पूज्य स्वामीजी महाराज ने अपने लिए निम्नलिखित समय-विभाग बना लिया था :—

प्रातः ३ बजे—जागरण

४ से ७ बजे तक—ध्यान

८ से १२ बजे तक—ग्रंथ लेखन

यदि ब्रह्म-विज्ञान का कोई विषय कठिन, गहन अथवा सूक्ष्म होता था तो उसे सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा समाधानपूर्वक निर्णय कर लिया करते थे।

संन्यास धारण करने से पूर्व पूज्य गुरुदेवजी का विचार ब्रह्म-विज्ञान को किसी दूसरे ही रूप में लिखने का था। उस समस्त विज्ञान को संक्षिप्त रूप से लिख भी लिया था, किन्तु उसे किसी ने चुरा लिया और उसने यह प्रसिद्धि कर दी कि उसने ब्रह्म-विज्ञान ग्रंथ की रचना की है और वह उसे शीघ्र ही प्रकाशित करवाएगा। इसलिए पूज्य महाराजजी ने उस क्रम को छोड़कर दूसरे ही रूप में इस विज्ञान को लिखना प्रारंभ कर दिया। यह ब्रह्म-विज्ञान इनकी स्वानुभूति थी, इसलिए ये अपनी इच्छानुरूप जिस ढंग तथा क्रम से चाहते, लिखने में समर्थ थे। अतः ३३ पदार्थों में प्रत्येक पदार्थ की पांच अवस्थाओं को और उनके १५७ भेदों में ब्रह्म के स्वरूप और व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध को दर्शाते हुए ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन महाराजजी ने किया है। इनमें से अन्तिम कुछ पदार्थों के केवल ३ या ४ ही भेद बनते हैं, इसलिए कुल मिलाकर १५७ भेद ही बनते हैं। ब्रह्म-विज्ञान में प्रकृति की परिणत होती हुई ३२ अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इस प्रकार का विज्ञान-क्रम, जहां तक हमारे पढ़ने और सुनने में आया है, बृहद् प्रकृति का किसी भी देश के साहित्य में किसी महापुरुष ने नहीं किया है। इस युग में यह श्रेय भारत के महान योगी पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज को ही प्राप्त हुआ है। ब्रह्म की निर्गुण सिद्धि ब्रह्म-विज्ञान की बड़ी विशेषता है। आधुनिक विद्वानों में इससे बड़ी हलचल पैदा होगई है। प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों ने निर्गुण ब्रह्म को सगुण मान कर उसमें अनेक गुणों का वर्णन किया है। इनको महाराजजी ने ब्रह्म में आरोपित माना है। ये सब गुण वास्तव में प्रकृति में ब्रह्म के सन्निधान से उत्पन्न होते हैं और उनका आरोप ब्रह्म में किया गया है। श्री महाराजजी ने भी अपने ब्रह्म-विज्ञान ग्रंथ में कहीं-कहीं गुणों का कथन किया है परन्तु वे आरोपित गुण ही माने जाने चाहिएं, ब्रह्म में उत्पन्न होने वाले अथवा उसके नित्य गुण नहीं।

हम श्री महाराजजी की दिनचर्या का वर्णन कर रहे थे। ये लगभग १२ बजे कुछ थोड़ा भोजन करते थे। सेवक चुपचाप उनके पास आकर रख जाता था। काष्ठ मौन व्रत लेने से पूर्व ही पूज्य योगीराजजी ने अपने भोजनादि के विषय में श्री शर्मा जी तथा सेवक गणनाथ को समझा दिया था। इसलिए सब व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही। ये प्रातः ८ बजे और रात्रि के ६ बजे दूध लेते थे। दो बजे तक विश्राम करके फिर अपनी लेखनी उठाकर लिखने बैठ जाया करते थे और सायंकाल ६ बजे तक लिखते रहते थे। इन आठ घंटों में केवल छः घंटे तक ही लिखते होंगे क्योंकि जब कोई कठिन या गहन विषय आ जाता था तो उसे समाधिस्थ होकर साक्षात् करते

थे और निश्चयात्मक ज्ञान हो जाने पर उसे लिखते थे जिससे किसी प्रकार का कोई संशय न रहने पाए।

सायंकाल ६-७ बजे तक भ्रमणार्थ जाते थे। जब बाहिर जाते थे तो मुख को कपड़े से ढककर नीचे दृष्टि रखते थे जिससे किसी को देख न सकें। काष्ठ मौन केवल वाणी का ही मौन न था अपितु मन का भी था। मार्ग में जाते समय यदि किसी पर दृष्टि पड़ गई तो मन कहीं उसके विषय में संकल्प-विकल्प न करने लग जाए इसीलिए मुंह ढांपकर चलने की विधि पूज्य स्वामीजी महाराज ने निकाली थी। अलखनन्दा के पार माणा गांव की ओर और कंचनगंगा की ओर लगभग दो-दो मील के लम्बे मैदान हैं। इन्हीं में भ्रमण करके लौट आते थे। ७ बजे से ६ बजे तक अभ्यास में बैठकर ब्रह्म-विज्ञान के पदार्थों के विषय में ध्यान, समाधि द्वारा विशेष अनुभव प्राप्त किया करते थे। इसके पश्चात् दूध पीकर १० बजे सो जाया करते थे। इन दिनों प्रायः ब्रह्म-विज्ञान के विषयों का मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार करने में ही सारा समय व्यतीत होता था। शंकरलाल शर्माजी को दलिया बहुत अच्छा लगता था, अतः व्रत के ६-७ दिन बाद से ही इन्होंने रात्रि को दलिया खाना प्रारंभ कर दिया और पूज्य महाराजजी को भी देना प्रारंभ कर दिया। दलिए में दूध आधा सेर से भी कम डालते थे। तीन मनुष्यों के लिए दलिए में आधा सेर दूध कुछ कम सा ही था। सेवक गणनाथ युवक था और शर्माजी भी श्री महाराजजी से आयु में २० वर्ष छोटे थे। आकार-प्रकार अच्छा था, शरीर पुष्ट था और शक्ति और बल में भी कुछ कम न थे। नित्यप्रति सूखा मेवा भी अपनी इच्छानुरूप खाते थे और भ्रमण भी खूब करते थे, किन्तु यह दलिया महाराजजी के अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। एक सप्ताह में ही इनके दोनों घुटनों में दर्द प्रारंभ होगया। चलने-फिरने तथा उठने-बैठने में भी इन्हें कष्ट मालूम होने लगा। हिमालय प्रदेश में जहां चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतमालाएं हों वहां पर दूध में मात्रा से अधिक पानी मिलाकर बनाया हुआ दलिया अनुकूल नहीं आ सकता था क्योंकि उसकी तासीर ठण्डी हो जाती है। शंकरलाल शर्माजी और सेवक दोनों को ही देश, काल और प्रकृति का ज्ञान नहीं था। उनका उद्देश्य स्वाद लेना और उदरपूर्ति करना मात्र ही था। स्वामीजी महाराज के घुटनों में दर्द होते १६ दिन होगए। औषध सेवन भी कर रहे थे, किन्तु आराम नहीं आया। एक दिन भ्रमण से लौटने के पश्चात् स्वयं ही रसोई का ताला खोला। इसमें केवल एक पाव ही दूध रखा था। इन्होंने इसे स्वयं आग जलाकर गरम किया और इसके साथ औषध-सेवन की। सुबह और रात्रि के लिए दूध प्रातःकाल ही ले लिया जाता था क्योंकि रात्रि को दूध वाला दूध नहीं देता था। महाराजजी के दूध पीने से शर्माजी और सेवक दोनों समझ गए कि महाराजजी को दलिया पसन्द नहीं है, अतः इन्होंने पूज्य योगीराजजी को दलिया देना बन्द कर दिया और दूध देना प्रारंभ कर दिया। स्वामीजी महाराज ने आयुर्वेद का भी अध्ययन किया हुआ था, अतः देश और काल के अनुसार जो भोजन हितकर होता था उसे ही वे खाते थे। यथासंभव अपना उपचार भी स्वयमेव ही कर लेते थे। जहां पधारते औषधियों को अपने साथ ले जाते थे और आवश्यकतानुसार इस्तेमाल किया करते थे। घुटनों की पीड़ा से महाराजजी लगभग डेढ़ मास तक पीड़ित रहे किन्तु नियमपूर्वक अपना सब कार्य यथाविधि करते रहे। 'बिरला हाऊस'

नितान्त एकान्त और शान्त था। यात्री इसमें बहुत कम आते थे। पूज्य गुरुदेवजी ने सम्पूर्ण ब्रह्म-विज्ञान तीन मास में लिखा और एक मास इसका पुनरावलोकन तथा संशोधन में लगाया। इन्होंने बड़े नियम और संयम से ४ मास का व्रत समाप्त किया। व्रत की समाप्ति दो अक्तूबर को पूर्णिमा के दिन की गई थी। व्रत समाप्ति पर बद्रीनाथ के सब सन्तों तथा साधुओं को भोजन करवाया और सबको पांच-पांच रुपये दक्षिणा में दिए। इसके अतिरिक्त १०० रु० कालीकमली वाले क्षेत्र को दिये, ५० रु० बद्रीनाथ के मंदिर में चढ़ाए और २५ रु० पंजाबी क्षेत्र को प्रदान किए। इसके पश्चात् महाराज़जी ४-५ दिन बद्रीनाथ में ठहरे और इतस्ततः घूम-फिर कर ऐतिहाहिक दृष्टि से जो स्थान प्रसिद्ध थे उन्हें देखते रहे। इनके पुराने भक्त और सेवक यहां भी इनके दर्शनार्थ आते रहे। लगभग आठ अक्तूबर को श्री बद्रीनाथ से प्रस्थान किया और जोशीमठ में पधार कर बिरला-भवन में विराजे। यहां २-३ दिन विराजकर केदारनाथ की यात्रा करने का विचार कर लिया, किन्तु यहां पर २-३ परिचित व्यक्तियों से, जो अभी-अभी केदारनाथ की यात्रा करके आए थे, पता चला कि वहां पर अत्यधिक हिम-पात हुआ है, सारे पर्वत हिम से आच्छादित हो रहे हैं, शीत अत्यधिक बढ़ गया है, अतः आप वहां न पधारे, इसलिए वहां की यात्रा का विचार स्थागित कर दिया गया और बस द्वारा उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान कर दिया। उत्तरकाशी के योगनिकेतन में एक सप्ताह निवास करने के पश्चात् स्वर्गाश्रम के योगनिकेतन में चले गए।

श्री महाराज के अद्भुत मनोबल के प्रभाव से आक्रामकों का पीछे हटना

इन दिनों भारत और चीन का लद्दाख में बडा संघर्ष चल रहा था। भारत और चीन की सीमा पर इधर-उधर दोनों पक्षों के सैनिक युद्ध करते थे किन्तु युद्ध करने का आदेश नहीं दिया गया था। २० अक्तूबर को चीन ने भारत के साथ युद्ध की घोषणा की। तिब्बत से स्पर्श करती हुई भारत की १५०० मील लम्बी सीमा पर सब ओर से युद्ध के बादल मण्डलाने लगे। उधर आसाम की सीमा पर मेकमोहन लाईन नेफा में भी युद्ध प्रारम्भ होगया। चीन और भारत का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। यह मित्रता अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही थी। भारत से ही बौद्ध धर्म चीन में फैला था। चीन और भारत का धार्मिक सम्बन्ध बहुत पुराना है। ऐसा भी एक समय था जब चीन भारत को एक तीर्थ-स्थान समझता था और इत्सिंग, फाह्यान, हयूनचांग आदि अनेक चीनी विद्वान् बौद्ध धर्म के साहित्य का अध्ययन करने और गौतम बुद्ध का जिन स्थानों से विशेष सम्पर्क था उनके दर्शन करने को भारत में आते थे। कई चीनी विद्वानों ने यहां आकर देववाणी संस्कृत का अध्ययन किया और संस्कृत के बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपियां बनाकर लेगए। अभी कल की बात है, हम लोग 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाते थे। चीन और भारत का धार्मिक और सांस्कृतिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस बात की कभी कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि इन दोनों देशों में कभी युद्ध छिड़ जाएगा। चीन प्रकट रूप में तो मैत्री दर्शाता रहा किन्तु छिपे-छिपे वह वर्षों से भारत के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहा था, किन्तु भारत को कभी ऐसी आशंका नहीं हुई। उधर तिब्बत में तीन वर्ष से गड़बड़ चल रही थी। चीन तिब्बत के दलाई लामा को कैद करके सर्वप्रकारेण तिब्बत पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। अतः दलाई लामा बन्दी होने के भय से अथवा मृत्यु के भय से

अपनी राजधानी लासा को छोड़कर चुपके से आसाम में आगया। इसलिए भी चीन भारत के प्रति क्षुब्ध होगया था। कश्मीर तथा आसाम की सीमाओं पर चीन और भारत में भयंकर युद्ध चल रहा था। चीन बराबर आगे बढ़ता जा रहा था। भारत को सर्वत्र निराशा दृष्टिगोचर हो रही थी।

चीन को आगे बढ़ता हुआ देखकर पूज्य स्वामीजी महाराज को बड़ी चिन्ता हुई। इन्होंने दैनिक 'मिलाप' के प्रधान सम्पादक श्री रणवीरजी के द्वारा ५०० रुपये सहायतार्थ भारत के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरूजी के पास भेजे और रणवीरजी को चीन के राष्ट्रपति माओत्सेतोंग, प्रधानमन्त्री चाऊएन-लाई तथा रूस के प्रधानमन्त्री श्री ख्रु श्चेव के फोटो शीघ्र भेजने के लिए लिखा क्योंकि इन फोटो के आधार पर ये अपने योगबल से इन लोगों के मनों में परिवर्तन लाना चाहते थे। इन्हें पूर्ण विश्वास था कि इस कार्य में इन्हें पूर्ण सफलता लाभ होगी।

श्री रणवीरजी ने दिल्ली से तीनों के फोटो शीघ्र ही भेज दिए और प्रधान-मन्त्री पं० जवाहरलालजी को ५०० रुपये भेंट करते हुए कहा, "यह ५०० रुपये मेरे गुरुदेव पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्दजी महाराज ने युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों की सहायतार्थ भेजे हैं और मुझे इस पत्र में लिखा है कि मैं उनकी ओर से आपको विश्वास दिलाऊं कि घबराने की कोई बात नहीं है, विजय अन्त में भारत की ही होगी। पूज्य महाराजजी अपने मनोबल से शत्रुओं के भावों को बदलकर पीछे हटा देंगे। मैंने कई बार इनके योगबल को देखा है।" इनकी बातों को सुनकर पंडितजी बड़े आश्चर्यान्वित हुए और कहा, "क्या यह सम्भव हो सकता है? क्या आज भी ऐसे योगी भारतवर्ष में विद्यमान हैं?" रणवीरजी ने कहा, "मुझे तो पूज्य योगीराजजी की बातों पर पूर्ण विश्वास है। ये जो चाहें कर सकते हैं। असाध्य रोगों से पीड़ित तथा मृत्यु शय्या पर पड़े हुए रोगियों को इन्होंने अपने योगबल से स्वस्थ किया है। इनमें से कई तो यहां दिल्ली में ही निवास कर रहे हैं। आप कुछ दिनों में ही प्रत्यक्ष देखेंगे कि चीन स्वयं पीछे हट जाएगा।"

उपरोक्त तीनों फोटो के आधार पर तीनों व्यक्तियों पर अपने मनोबल का प्रयोग करने का पूज्य गुरुदेव ने बड़ा प्रयत्न किया। इन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया। केवल फल और दूध पर ही अपना निर्वाह करने लग गए। साथ ही मौन व्रत भी धारण कर लिया। साधना शिविर में अभ्यासार्थ जो साधक आए हुए थे उन्हें अभ्यास करवाना भी बन्द कर दिया। यह कार्य कैप्टन जगन्नाथ और दत्तजी को सौंप दिया। अपने भक्त और सेवक श्री शंकरलालजी शर्मा को अपना पूजा-पाठ, ध्यानाभ्यास छोड़कर इस संकट काल में भारत की स्वत्रंत्रता की रक्षा के लिए जो कुछ संभव हो उसे करने का आदेश दिया और कहा कि यह ऐसा समय है जब प्रत्येक भारतीय को तन, मन और धन से देश की सेवा में जुट जाना चाहिए। भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम में शर्माजी इससे पूर्व भी कार्य कर चुके थे और कई बार जेल में भी जा चुके थे। भारत के बड़े ऊंचे दर्जे के क्रान्तिकारियों के साथ इन्होंने काम किया था। पूज्य गुरुदेवजी से आदेश पाकर प्रथम तो शर्माजी दिल्ली गए किन्तु वहां पर किसी ठोस कार्य की योजना ये नहीं बना सके। अतः पंजाब में चले गए और पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार

प्रतापसिंह कैरों से, जो इनके पुराने मित्रों में से थे, कहा, "मुझे मेरे गुरुदेवजी ने आपके पास, भारत के वर्तमान संकट के निवारणार्थ आपने जो योजना बनाई है उसमें मेरे योग्य कोई काम हो तो उसे करने के लिए भेजा है। आप मुझे जो सेवा प्रदान करेंगे उसे मैं अवैतनिक रूप से परिश्रमपूर्वक करूंगा। मुख्यमंत्री ने शर्माजी को होम गार्ड का डी० आई० जी० बना दिया और इन्होंने रात-दिन महान परिश्रम करके इसका संगठन किया और हज़ारों नवयुवकों को सैनिक प्रशिक्षण दिलवाया।

श्री महाराजजी ने इन तीनों चित्रों को सामने रखकर माओत्सेतोंग, चाऊ-एनलाई और ख्रुश्चेव तीनों को लक्ष्य बनाकर इनके मनों को परिवर्तन करने का अभ्यास किया। जब पूज्य योगीराजजी को किसी का दमन करना होता है अथवा किसी के मन को बदलना या भ्रान्तियुक्त करना होता है तब इन्हें आवेश में या क्रोध में आना पड़ता है और दमन करने के लिए प्रताड़ना भी करनी पड़ती है। हम नित्य प्रति के व्यवहार में देखते हैं कि लोग अपराधी व्यक्ति पर क्रोध करते हैं, कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं और विविध प्रकार से धमकाते, डांटते और फटकारते हैं। उसी प्रकार से पूज्य योगीराजजी को भी दूसरे के मन को दमन करने के लिए क्रोध की भावना लानी पड़ती है। इससे मस्तिष्क पर बड़ा जोर पड़ता है। जब तक वह व्यक्ति इनके प्रभाव में नहीं आता, इनके अनुकूल उसका मन नहीं होता, इनकी आज्ञा पालन करने नहीं लगता, तब तक इन्हें बेचैनी-सी लगी रहती है। रात-दिन उसके दमन की चिन्ता लगी रहती है। उसके मन में परिवर्तन लाने के लिए बार-बार प्रयत्न करते रहते हैं। जिन दिनों इस प्रकार का प्रयोग करते हैं उन दिनों अपने खान-पानादि की भी सुध नहीं रहती। योगबल का प्रयोग करने का जब दृढ़ निश्चय हो जाता है तब वे, जब तक उस कार्य में सिद्धि लाभ नहीं हो जाती, ये उसीके तद्रूप हो जाते हैं। दिन हो अथवा रात, कई-कई बार समाहित होकर अपने मनोबल से दूसरे के मन को परिवर्तित करते रहते हैं। पूज्य महाराजजी को जितनी चिन्ता भारत पर चीन के आक्रमण की हुई थी ऐसी चिन्ता जीवन में कभी नहीं हुई थी। इनका स्वदेश के प्रति बड़ा अनुराग है। देश के संकट का निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आर्य सभ्यता और संस्कृति में इनकी बड़ी निष्ठा है। विधर्मियों द्वारा इसे नष्ट होना ये देख नहीं सकते थे। युद्ध के परिणामस्वरूप महान नर-संहार से देश की रक्षा करना चाहते थे। हज़ारों युवतियों को वैधव्य दुःख से बचाना चाहते थे। बालकों तथा बालिकाओं को अनाथ बनकर दर-दर का भिखारी ये देखना नहीं चाहते थे। देश, धर्म, समाज, सभ्यता और संस्कृति के विधर्मियों द्वारा नष्ट होने की कल्पनामात्र से इनका दिल दहल रहा था। इसलिए ये रात-दिन चीन के आक्रमण को रोकने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील थे। तिब्बत के लामा साधुओं और वहां की जनता पर चीनियों ने जिस नृशंसता के साथ अत्याचार किए थे इसकी करुण-कहानी थोलिङ्ग-मठ से भागकर आए हुए एक लामा ने हरसिल में नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करते हुए सुनाई थी। यह स्थान गंगोत्री से १४ मील नीचे है। यहां पर बहुत से शरणार्थी तिब्बत से भागकर आए थे। इन्होंने चीनियों के महान अत्याचारों की दुःख-गाथा सुनाई थी। इन पाशविक अत्याचारों को सुनकर चीनियों के प्रति महान घृणा उत्पन्न होती थी।

श्री महाराजजी नीचे आसन पर अथवा कुर्सी पर बैठकर समाहित होकर दिन में कई-कई बार चीन के शासकों का मन परिवर्तन करने के लिए अपने योगबल का प्रयोग करते थे। युद्ध का समाचार, समाचारपत्रों से विदित होता रहता था। भारत की सेनाओं ने लद्दाख में आक्रमणकारियों का डटकर सामना किया। चुशोल के हवाई जहाज़ के अड्डे की रक्षा के लिए घमासान युद्ध करके शत्रु-सेना को पीछे धकेल दिया परन्तु नेफा के युद्ध में भारतीय सेनाओं को बहुत पीछे हटना पड़ा और चीन के सैनिकों ने भारत के नेफा क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। आसाम में पैट्रोल के स्रोत से चीनी सेना केवल ८० मील ही दूर रह गई थी। अमेरिका और इङ्गलैंड ने इस युद्ध में भारत की सहायता की। इसी बीच रूस ने चीन को पैट्रोल देना बन्द कर दिया। २२ नवम्बर को चीन ने युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी। जब महाराजजी ने इस घोषणा का समाचार सुना, तब इन्होंने अपना मानसिक प्रयोग करना बन्द किया। एक मास तक महाराजजी ने मानसिक प्रयोग किया। मौन रखा और अन्न नहीं खाया। जब युद्ध-विराम होगया तब इन्होंने मौन व्रत समाप्त किया और अन्न खाना प्रारम्भ किया। इन्होंने चीन के शासकों के मनों को बदलने, रूस का मन चीन से फेरने और आक्रमणों के रोकने के लिए अपने योग तथा मनोबल के प्रयोग में जितना परिश्रम किया इतना अपने जीवन में कभी नहीं किया था। इससे इनके मस्तिष्क पर बड़ा ज़ोर पड़ा और ये कमज़ोरी सी अनुभव करने लग गए थे।

मनोबल से मध्यस्थ तथा कर्मचारियों को अनुकूल बनाना

एक दिन ओमप्रकाशजी तथा श्रीमती शान्तादेवी पूज्य महाराजजी से मिलने आए। वे उन दिनों बड़े संकट में थे। इनके प्रेस के सब कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी थी। उनकी मांगें इतनी अधिक और भारी थीं कि सारे प्रेस को बेचकर भी पूरी नहीं की जा सकती थीं। यदि इस प्रकार से प्रेस बन्द करना पड़ता तो उनका निर्वाह होना कठिन हो जाता। गवर्नमेण्ट ने जो इस झगड़े को निपटाने के लिए मध्यस्थ नियत किया था, वह भी कर्मचारियों का ही पक्ष ले रहा था। कर्मचारी बड़े आवेश में आ रहे थे और ओमप्रकाशजी की हत्या करने की धमकी दे रहे थे। ओमप्रकाशजी तथा उनकी पत्नी शान्ता ने सारी व्यथा महाराजजी से निवेदन की। इनकी उनके ऊपर बड़ी कृपा थी। इन्होंने उन्हें हड़ताल के नेताओं और मध्यस्थ की फोटो दिल्ली से भेजने का आदेश देकर उन्हें वापिस भेज दिया। साथ ही मुकद्दमे की तारीख और समय से भी उससे दो दिन पूर्व सूचित करने की आज्ञा दी। ओमप्रकाशजी को विश्वास दिलाया कि मुकद्दमा तुम्हारे अनुकूल होगा। हड़ताल के नेताओं और मध्यस्थ को तुम्हारे अनुकूल बना दिया जाएगा। ओमप्रकाशजी ने दिल्ली जाकर हड़ताल का नेतृत्व करने वाले २-३ कर्मचारियों और मध्यस्थ के फोटो भेज दिए और मुकद्दमे की तारीख और समय से भी सूचित कर दिया। श्री महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से उस स्थान और दिशा को देख लिया जहां पर मुकद्दमा चल रहा था और अपने मनोबल के प्रयोग से मध्यस्थ और कर्मचारियों के मनों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। मध्यस्थ ने दोनों दलों को परस्पर समझौता करने की सलाह दी। वास्तव में इसी में दोनों पक्षों की भलाई थी। इसके लिए तारीख निश्चित कर दी। किन्तु इन दोनों में कोई समझौता न हो सका। कर्मचारी बड़े उत्तेजित होगए। दूसरी तारीख

पर दोनों पक्षों में खूब गर्मागर्म बहस हुई, बहुत तनातनी रही और ओमप्रकाशजी का पक्ष कुछ कमजोर पड़ गया । ये बहुत घबराए और सारा मामला पत्र द्वारा महाराजजी से निवेदन किया । महाराजजी ने पूरा आश्वासन दिया और दो-तीन पेशियों के पश्चात् मध्यस्थ ने अपना निर्णय ओमप्रकाशजी के पक्ष में दिया । ओमप्रकाशजी इस झगड़े में कर्मचारियों को जो कुछ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक देना चाहते थे, मध्यस्थ ने उससे भी कम देने का निर्णय दिया था । ओमप्रकाशजी तथा शान्तादेवीजी महाराजजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए स्वर्गाश्रम आए ।

योगबल से सेठ जुगलकिशोर बिरला की पीठ-पीड़ा अपहरण

दिसम्बर मास में सेठ जुगलकिशोरजी की पीठ में अत्यधिक दर्द होने लगा। उनका उठना, बैठना, चलना-फिरना तथा करवट बदलना तक कठिन होगया। इन्होंने इस बार पूज्य महाराजजी को कष्ट देना उचित नहीं समझा क्योंकि पहिले जब इनके हाई ब्लडप्रेशर के रोग को महाराजजी ने अपने मनोबल से मिटा दिया था तब इनके अपने ऊपर भी कई दिन तक इसका असर रहा था और तकलीफ उठानी पड़ी थी, यद्यपि सेठजी के ऊपर उसके बाद से कभी भी इस रोग ने आक्रमण नहीं किया । इस बार सेठजी ने अपने कर्म-फल-भोग को स्वयं ही भोगने का निश्चय किया और महाराजजी को किसी प्रकार का कष्ट देना नहीं चाहा, किन्तु पण्डित देवधर शर्मा ने सेठजी के पीठ-दर्द का सब समाचार योगीराजजी को लिख दिया और मानसिक प्रयोग करने के लिए निवेदन किया । महाराजजी ने अपनी दिव्य दृष्टि सेठजी के ऊपर फैंकी और अपने मनोबल से पीठ का दर्द मिटा दिया । ३-४ दिन में पीठ-पीड़ा को ७० प्रतिशत आराम आगया और एक सप्ताह में इनकी पीठ में बिलकुल दर्द न रहा, किन्तु स्वामीजी को स्वयं पीठ में दर्द होने लगा । जनवरी सन् १९६२ में उपवासादि करने तथा पीठ में दर्द हो जाने के कारण इस बार अभ्यासियों को महाराजजी अभ्यास नहीं करवा सके । इस कार्य को श्रीदत्तजी तथा कैप्टन जगन्नाथजी ने किया ।

पूज्य महाराजजी पर मस्तिष्क रोग का प्रकोप

२२ जनवरी १९६३ को पूज्य गुरुदेव अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करके सायंकाल ६ बजे नीचे कोठी के सामने चबूतरे पर कुछ काल बैठकर ऊपर चले गए। ५-७ मिनिट के बाद फिर नीचे उतर आए । उस समय धर्मदेवीजी भी नीचे चबूतरे पर बैठी थीं और सब अभ्यासी साधना भवन में अभ्यास कर रहे थे । महाराजजी ने धर्म बहन से कहा, "मेरी तबीयत कुछ खराब होगई है; क्या रोग है इसका कुछ पता नहीं चल रहा है । ऐसा मालूम हो रहा है जैसे मेरी स्मृति जाती रही है, मन में भी कुछ परेशानी और बेचैनी सी हो रही है ।" श्रीमती धर्मवतीजी इन्हें ऊपर ले गईं, पलंग बिछाकर लिटा दिया और दत्तजी को सूचना देने के लिए नीचे चली गईं । दत्तजी ने शीघ्र ही स्वर्गाश्रम के वैद्य को बुलाया । उसने महाराजजी को देख कर यह निर्णय दिया कि मेदे में गैस ने उत्पन्न होकर मस्तिष्क पर प्रभाव डाला है और उससे विस्मृति सी होने लगी है । इस रोग का औषधोपचार किया गया और गर्म जल में पैर रखवाए गए। दत्तजी, कैप्टन जगन्नाथजी, प्रीतमचन्द और महावीर-

प्रसाद तथा श्रीमती धर्मवती आदि सभी सेवा कर रहे थे। सायंकाल ६ बजे से रात्रि के २ बजे तक क्या-क्या हुआ, महाराजजी को बिलकुल स्मरण नहीं रहा था। रात्रि के २ बजे इन्होंने फरमाया कि दरवाजा खड़खड़ा रहा है, इसे बन्द कर दो। तब सब एकत्रित लोगों ने समझा कि अब महाराजजी की तबीयत ठीक है। ४ बजे तक ये भली प्रकार से सोए। इसके बाद थोड़ा सा जगकर फिर सो गए और ६ बजे तक बहुत अच्छी तरह से सोए। जब प्रातःकाल ६ बजे डाक्टर हंसराज आए तो उनसे श्री महाराजजी ने कहा कि रात्रि को मुझे कोई भी बात स्मरण नहीं रही। प्रातःकाल शिर में कुछ थोड़ा सा दर्द था और मुझे अपना मस्तिष्क कुछ खाली सा प्रतीत हो रहा था। डाक्टर के पूछने पर महाराजजी ने बताया कि मैंने तीन मास तक अपने मस्तिष्क की शक्ति से अत्यधिक काम लिया। चीन के राज-पुरुषों के मन परिवर्तन करने, एक मुकद्दमे को अनुकूल बिठाने और सेठ जुगलकिशोर जी की बीमारी को हटाने के लिए मुझे अपने मस्तिष्क की शक्ति को बहुत व्यय करना पड़ा था, आहार बहुत कम लिया और चिन्ता अधिक रही, इससे मालूम होता है कि शरीर और मस्तिष्क दोनों दुर्बल होगए हैं। मस्तिष्क के ज्ञान-वाहक तन्तुओं, स्नायुओं और नाड़ियों पर बहुत दबाव पड़ा है। मुझे इनमें कुछ कठोरता सी मालूम होती है। दूसरों के मनों का दमन करने और उन्हें अपने प्रभाव में लाने में मेरे बल और शक्ति का बड़ा ह्रास हुआ है। लगभग एक मास तक सिर-पीड़ा होती रही। १५ फरवरी से स्वास्थ्य-लाभ करने पर साधकों को अभ्यास करवाना प्रारंभ कर दिया। इस वर्ष चीन से युद्ध हो जाने के कारण अभ्यासी भी कम संख्या में ही साधना शिविर में आए थे। ३१ मार्च को शिविर की समाप्ति हुई। सब साधकों को सदैव की भांति प्रीतिभोज दिया गया और पूज्य महाराजजी ने विदाई के समय अभ्यासियों को निम्नलिखित उपदेश दिया :—

प्रिय आत्मन, साधको और साधिकाओ ! आज अभ्यास का अन्तिम दिवस है। आप सबने चार मास साधना शिविर में रहकर साधना की है। यम-नियमों का पालन किया है। ब्रह्मचर्य धारण करके तप, त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत किया है। इन सबसे आपका जीवन उसी प्रकार में उज्ज्वल हो जाएगा जिस प्रकार भट्टी में तप कर सोना कुन्दन बन जाता है। प्राचीन काल में ऋषियों तथा मुनियों ने इसी प्रकार वनों में रहकर अनेक प्रकार की साधनाओं के द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया था। इसी की पुष्टि उपनिषद् में इस प्रकार की गई है "तपःश्रद्धे ये ह्युपव-सन्त्यरण्ये शान्ताः विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥" इस मंत्र में साधना का विशेष रूप से वर्णन किया है। आपने जो कुछ तत्त्व-ज्ञान यहां निवास करके प्राप्त किया है इसको अपने घरों में, आश्रमों में अथवा अन्यत्र किसी एकान्त और शान्त वातावरण में रहकर दृढ़भूमि करना आपका विशेष कर्त्तव्य है। आपने यहां जो साधना की है और आंशिक तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया है वह कुंजरस्नानवत् नहीं हो जाना चाहिए। हाथी ग्रीष्म ऋतु में नदी में प्रवेश करके खूब स्नान करता है किन्तु ज्योंही बाहर निकलता है अपनी सूंड से मिट्टी कूड़ा-कर्कटादि उठाकर अपने शरीर पर डालकर पुनः गंदा हो जाता है। यहां से जाने के बाद आपको प्राप्त विवेक में अधिक वृद्धि करना और अपने जीवन को उन्नति

के पथ पर अग्रसर करना है। मानव जीवन बड़ा अमूल्य है। तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करना इसका उद्देश्य है। अपना शेष जीवन इस उद्देश्य की पूर्ति में व्यय करो, तभी आपका जीवन सफल समझा जाएगा। हमारे योग-निकेतन के समान अन्यत्र कहीं भी क्रियात्मक साधनों के द्वारा आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार की पद्धति नहीं है। किसी भी संप्रदाय का व्यक्ति यहां आकर तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। हमारे यहां किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। सबको समान भाव से योग-साधन करवाया जाता है और सबको समान दृष्टि से देखा जाता है। हमारे योग-विद्यालय में मनुष्य मात्र को तत्त्व-ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। यहां के अभ्यास और साधना से सब अभ्यासी सन्तुष्ट होकर जाते हैं और सभी आध्यात्मिक उन्नति लाभ करते हैं। जिस प्रकार लौकिक विद्या की प्राप्ति के लिए स्कूल, पाठशाला और कालिज शिक्षा देते हैं, इसी प्रकार इस योग विद्यालय में आध्यात्मिक शिक्षा देकर क्रियात्मक रूप से आत्म-साक्षात्कार करवाया जाता है।

गंगोत्री प्रस्थान

पूज्य महाराजजी हिमालय प्रदेश से नीचे कभी नहीं जाते थे। अपनी साधना के काल में प्रायः सर्दी में अमृतसर और गर्मी में काश्मीर रहते थे और अब प्रायः तीन स्थानों पर रहते थे। स्वर्गाश्रम में नवम्बर से अप्रैल तक, उत्तरकाशी में मई मास तक और गंगोत्री में जून से सितम्बर तक, और वहां से स्वर्गाश्रम पुनः जाते समय अक्तूबर मास तक उत्तरकाशी में विराजते थे। स्वर्गाश्रम के साधना शिविर के पश्चात् गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। रात्रि को ऋषिकेश में नैशनल बैंक आफ लाहौर के मैनेजर बलदेवमित्रजी के मकान पर निवास किया और प्रातःकाल ऋषिकेश से बस द्वारा ३ बजे के लगभग उत्तरकाशी पहुंचकर योगनिकेतन में ४० दिन तक विराजे और १ जून १९६३ को उत्तरकाशी से गंगोत्री पधार गए। अब की बार पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री तथा दिल्लीनिवासी प्रीतमचन्दजी भी इनके साथ थे। गंगोत्री में शास्त्रीजी से ब्रह्म-विज्ञान की प्रतिलिपि प्रेस में भेजने के लिए बनवाई। पं० राजेन्द्रनाथ महाराजजी के योग्य शिष्य थे। स्वर्गाश्रम के साधना शिविर में दो-तीन वर्षों से अभ्यासार्थ आते रहे थे और बहुत कुछ विज्ञान प्राप्त कर चुके थे। गंगोत्री जाने का भी मुख्योद्देश्य तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति तथा उसे दृढ़भूमि करना था। प्रीतमचन्दजी और पंडितजी घोड़े की सवारी नहीं कर सकते थे, अतः ये दोनों पैदल ही गंगोत्री पहुंचे थे। श्री महाराजजी घोड़े पर पधारे थे।

जब बस से उतर कर पैदल चलने लगे तो प्रीतमचन्दजी गगनचुम्बी विशाल पर्वतों को देखकर घबरा गए। इनको पार करना इन्हें असंभव सा प्रतीत हो रहा था। केवल एक मील चलकर ही इन्होंने अपनी हिम्मत हार दी और महाराजजी से पीछे लौटने के लिए आज्ञा मांगी। पूज्य स्वामीजी महाराज ने इन्हें अपना खद्दर का एक तौलिया कमर पर बांधने के लिए दिया और कहा कि गायत्री का जाप करते चलो, अब तुम नहीं थकोगे। महाराजजी मार्ग में इन्हें कथा-वार्ता सुनाते गए। इससे प्रीतमचन्दजी का ध्यान दूसरी ओर बट गया और थकान अनुभव नहीं हुई। जब ये सब लोग कहीं पर बैठ कर दम लेने लगते थे तो महाराजजी अपने घोड़े को

ठहरा लेते थे और उनकी प्रतीक्षा करते थे। पंडितजी और प्रीतमचन्दजी शनैः-शनैः महाराजजी के साथ यात्रा में चल रहे थे। गंगणानी, झाला, हरसिल में ठहरते हुए धराली पहुंचे। धराली में ठाकुर कुन्दनसिंह महाराजजी के लिए दूध लाए। गंगोत्री के क्षेत्र के लिए सारी रसद ये ही दिया करते थे। महाराजजी पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। जब से इन्होंने गंगोत्री में निवास प्रारम्भ किया था इनके पिता ठाकुर नारायण-सिंह बराबर रसद दिया करते थे। भैरों चट्टी पर कुछ देर तक आराम किया। सारे मार्ग पर महाराजजी इन दोनों का उत्साह बढ़ाते रहे। ठीक १ बजे ये सब गंगोत्री पहुंच गए। स्वामी दयालमुनिजी ने एक घण्टे में भोजन तैयार कर दिया। भोजनोपरान्त सबने विश्राम किया।

पूज्य महाराजजी यहां पर अभ्यासियों को प्रति सायंकाल डेढ़ घण्टा अभ्यास करवाते थे। थोड़े ही समय में यहां के नितान्त एकान्त और प्रशान्त वातावरण में साधना करके अभ्यासियों ने उन्नति करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मचारी श्रीकण्ठ तथा राजेन्द्र-नाथजी ने कुछ ही दिनों में बहुत सफलता लाभ की। प्रीतमचन्दजी १०-१५ दिन तो ठीक रहे, इसके पश्चात् अस्वस्थ होगए और वापस चले गए। पं० राजेन्द्रनाथजी ने 'ब्रह्मविज्ञान' की प्रतिलिपि दो-ढाई महीने में समाप्त कर दी। आपने आनन्दमय कोश में स्थिर होकर आत्म-ज्ञान लाभ किया।

आषाढ़ पूर्णिमा के अवसर पर पूज्य महाराजजी गंगोत्री के सब सन्तों को प्रति-वर्ष प्रीतिभोजन, वस्त्र, रुपये, मेवादि प्रदान किया करते थे। इनके शिष्य यथाशक्ति, इनको भेंट दिया करते थे। अनेक शिष्य तो व्यास-पूजा के दिन नीचे से भी गंगोत्री आकर इनकी पूजा करके भेंट दिया करते थे। पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री ने गुरु-पूजा के अवसर पर पूज्य गुरुदेवजी को भेंट दी और इनकी स्तुति में देववाणी में निम्न अत्यन्त सुन्दर रचना भी अभिनन्दन-पत्र के रूप में भेंट की :—

गुरुवराणां ब्रह्मनिष्ठयोगिप्रवरब्रह्मर्षिश्रीयोगेश्वरानन्दमहाराजानाम्
भूतपूर्वयोगाचार्यश्रीब्रह्मचारीव्यासदेवमहामुनीनाम्
चरणारविन्दाभिनन्दनम्

यतिं योगेश्वरानन्दं, व्यासदेवं महामतिम्।
प्रणमामि गुरूदेवं, कलौ योगप्रवर्तकम् ॥१॥
फणीशो वेत्ति योगं वै, व्यासोऽपि भाष्यकारश्च।
योगेश्वरदयानन्दौ, वेत्तोऽन्यो वेत्ति वा न वा ॥२॥
विशोका ज्योतिरेषां हि, पावनी योगरोगिणाम्।
विदुषां शेमुषीजुषाम्, मूर्खाणाञ्चापि मादृशाम् ॥३॥
वनस्थाश्च गृहस्थाश्च, निर्धना धनिनस्तथा।
संन्यासिनो व्रणिनश्च, मूर्खामूर्खाः जड़ाजड़ाः ॥४॥
वृद्धाः यौवनसम्पन्नाः, नार्यो नराः बलाबलाः।
लभन्ते हि महाराजात्, विशोकां मोक्षदां सदा ॥५॥
षट्चक्रान्तःकरणानाम्, कारणस्थूलसूक्ष्माणाम्।
प्रकाशिका समस्तानाम्, विशोका योगविद्यैषाम् ॥६॥

अखण्डब्रह्मदर्शनम्, अखण्डयोगधारणम् ।
अखण्डब्रह्मचर्यञ्च, ब्रह्मर्षित्वेऽस्तु साधकम् ।।७।।
नूतनमात्मविज्ञानम्, स योगो बहिरङ्गो यो ।
गुह्यञ्च ब्रह्मविज्ञानम्, मोक्षदा नस्त्रिलोकगा ।।८।।
त्र्यम्बकस्त्वं शिवोऽसि नः, चक्रधरो विष्णुरसि ।
ब्रह्मासि श्रुतिश्रावकः, त्वां ऋते नास्ति गतिर्नः ।।९।।
रत्नौघैरसि पूज्यस्त्वं, तपस्विनो वयं वन्याः ।
सुमनोभिस्स्वमनोभिः, स्तुमः पादश्रियं नताः ।।१०।।

श्रीमच्चरणान्तेवासी
आचार्यो राजेन्द्रनाथः शास्त्री
संस्थापकः श्रीदयानन्दवेदविद्यालयस्य

गुरु-पूर्णिमा
वैक्रमाब्दः २०२०

योगनिकेतन में सब स्थानीय साधुओं और सन्तों के लिए चार मास चाय और डेढ़ मास अन्न का क्षेत्र श्री महाराजजी की ओर से चलाया जाता है। एक धर्मार्थ औषधालय भी है। श्री दयालमुनिजी रोगियों का उपचार करते थे। क्षेत्र चलाने की सब व्यवस्था भी ये ही किया करते थे। इस वर्ष पूज्य स्वामीजी महाराज ने सेठ जुगलकिशोर बिरला से १०००० रुपये लेकर गंगोत्री के मंदिर का जीर्णोद्धार भी दयालमुनिजी द्वारा करवाया था। इन्हें किसी कार्य के लिए धराली भेजा गया था। एक गृहस्थी ने इन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। भूल से कोई ऐसी वस्तु खाने में आगई जिससे इनका पेट फूल गया और अतिसार होगया, इसलिए इन्हें वहां पर तीन-चार दिन तक रुकना पड़ा। इसके बाद से इन्हें मन्दाग्नि रहने लग गई। अनेक उपचार किए किन्तु आराम नहीं हुआ। इस विषैली वस्तु का इनके मस्तिष्क पर भी बुरा प्रभाव पड़ा जिससे इन्हें उन्माद रोग होगया। अमृतसर में इलाज कराने से दयालजी स्वस्थ होगए।

स्वर्गाश्रम प्रस्थान

श्री महाराजजी, शास्त्रीजी तथा अन्य ३-४ सन्तों को साथ लेकर उत्तरकाशी पधारे। यहां पर बीस दिन तक निवास करके स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रंथ का प्रकाशन करवाने के लिए श्री दत्तजी और कैप्टनजी को दिल्ली भेजा गया। इधर श्री महाराजजी ने दिल्ली से एक चित्रकला विशारद को बुलाकर 'ब्रह्म-विज्ञान' के चित्रों को बनवाया और १५-२० दिन में यह काम समाप्त होगया। 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रंथ के छपवाने के लिए सेठ जुगलकिशोर बिरलाजी ने ५००० रुपये का कागज दिया था। इसी अवसर पर 'आत्म-विज्ञान' का दूसरा संस्करण निकाला गया और इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'सायंस आफ सोल' के नाम से प्रकाशित किया गया। श्री कैप्टन जगन्नाथजी ने ७-८ मास तक दिल्ली रहकर प्रकाशन का सारा प्रबन्ध किया। श्री ओमप्रकाशजी की सहायता से यह काम शीघ्र सम्पन्न होगया। 'सायंस आफ सोल' के प्रकाशन का सब व्यय बम्बई निवासी श्री अमीरचन्द गुप्तजी ने प्रदान किया।

स्वर्गाश्रम में साधना-शिविर—पूज्य गुरुदेव गत वर्ष से अभ्यासियों को ब्रह्म-विज्ञान का विशेष रूप से अभ्यास करवा रहे थे और अभ्यासार्थियों को इसमें सफलता लाभ हो रही थी। अभ्यास से पूर्व श्री महाराजजी ने सब अभ्यासियों को सम्बोधन करते हुए कहा—"आपकी बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो जानी चाहिए कि आप प्रत्येक पदार्थ के अन्तिम छोर को भी देख और समझ सकें। ऋतम्भरा बुद्धि ही ब्रह्म-ज्ञान का अभ्यास करने में तथा साक्षात्कार करने में सहायक हो सकती है। आप सब सावधान होकर मन तथा इन्द्रियों को समाहित करके अपनी दिव्य दृष्टि को इस पृथ्वी में प्रवेश करें। इसमें परिवर्तित होती हुई अवस्थाओं और पदार्थों का अवलोकन करें। जिस प्रकार अपने स्थूल शरीर में प्रवेश करके इसके भीतर की रचना को दिव्य-दृष्टि से आप देखते हैं उसी प्रकार इस भूमि में भी प्रवेश करके इसके भीतर की गति-विधि को प्रत्यक्ष करें। यदि आपने अपने अन्दर अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है तो आत्मा के समान एक चेतन तत्त्व इस पृथ्वी के गर्भ में भी अन्तर्यामी रूप से इसमें व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति होगी। इसी प्रकार आकाश मण्डल में जो लोक-लोकान्तर हैं ये सब ही समष्टि पृथ्वी तत्त्व के अंश हैं। इनमें भी आप अपनी दिव्य दृष्टि को फेंककर इनका साक्षात्कार करें। इसी प्रकार स्थूल जगत् और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करें। इस पृथ्वी की परिणत होती हुई स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व अवस्थाओं, इसके उपादान कारण और निमित्त कारण पर ब्रह्म का साक्षात्कार करें।" उपरोक्त अभ्यास साधक और साधिकाएं निरन्तर कई दिन तक करते रहे। कई अभ्यासियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के आधार पर इस विषय में बहुत कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रकार प्रत्येक समष्टि भूत के साक्षात्कार करने में कई मास तक अभ्यास करवाया गया। तत्पश्चात् सूक्ष्म समष्टि भूतों के साक्षात्कार करवाने के लिए भी बहुत समय तक अभ्यास करवाया। यह सूक्ष्म भूतों का विषय आहंकारिक समष्टि सृष्टि के अन्तर्गत था। सन् १९६२, ६३, ६४ में कार्य-कारणात्मक प्रकृति और इन सब में व्याप्त ब्रह्म-ज्ञान का अभ्यास करवाया गया। यह सब विज्ञान तीनों शरीरों के बाहर का था। समष्टि पदार्थों में ब्रह्म की व्यापकता और निष्क्रिय तथा निर्गुण ब्रह्म का यह ज्ञान था। पूज्य गुरुदेवजी से अभ्यास के पश्चात् एक जिज्ञासु शिष्य ने प्रश्न किया : "जब आप ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं तब इस दृश्यमान जगत् का निर्माण किस प्रकार से हुआ तथा किसने किया?" इसका उत्तर पूज्य गुरुदेव ने बड़े विस्तार से अपने उपदेश में समझाया।

पूज्य गुरुदेव का ब्रह्म के विषय में उपदेश

सगुण ब्रह्म मानने में अनेक दोष उपस्थित होते हैं। इस सिद्धान्त को मानने से ब्रह्म के जितने गुण माने जाएंगे उतने ही इसके रूप भी मानने पड़ेंगे क्योंकि प्रत्येक गुण में अवस्थान्तर परिणाम मानना पड़ेगा। एक गुण के बाद दूसरे गुण का प्रादुर्भाव मानना पड़ेगा। तब ब्रह्म अवस्थान्तर भाव को प्राप्त होता हुआ एक गुण को उत्पन्न करेगा क्योंकि गुण का प्रादुर्भाव क्रमपूर्वक ही होगा। यदि एककालावच्छेदेन सर्व गुणों की उत्पत्ति मानें तब ब्रह्म विकारी सिद्ध होता है और यदि क्रमपूर्वक गुणों की उत्पत्ति मानें तब भी यह विकारी सिद्ध होता है और यदि ब्रह्म में ये सब गुण नित्य मान लें तब यह शंका होती है कि गुण और गुणी का भेद है या अभेद। यदि भेद

मानते हैं तो ब्रह्म से गुण पृथक मानना पड़ेगा और यदि अभेद स्वीकार करते हो तो ब्रह्म में गुणों का होना, अवस्थान्तर और अनेकरूपत्व मानना पड़ेगा। दो विरुद्ध धर्मों का समावेश ब्रह्म में सिद्ध नहीं होता। वह सगुण और निर्गुण दोनों नहीं हो सकता।

इस पर जिज्ञासु ने पुनः शंका की—"आप प्रकृति में नित्यत्व और अनित्यत्व दो धर्म मानते हैं। आप इसे कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य मानते हैं। अतः आप ब्रह्म के नित्यत्व और अनित्यत्व में क्यों आपत्ति उठाते हैं?" पूज्य महाराजजी ने इस शंका का निम्न प्रकार से समाधान किया :—

प्रकृति सावयव और परिणामिनी है और ब्रह्म की अपेक्षा स्थूल है। इसीलिए ब्रह्म प्रकृति को व्याप्त करके रहता है। कारण रूप प्रकृति का कभी विनाश नहीं होता और क्योंकि यह सत् होते हुए परिणामिनी है इसलिए इससे जगत् की उत्पत्ति होती है। इसके वास्तविक कारण रूप का कभी अभाव या विनाश नहीं होता। यह कारण रूप प्रकृति अवस्थान्तर रूप से कार्यभाव को प्राप्त होती रहती है और सदा अपने कार्य में अनुस्यूत रहती है, जिस प्रकार स्वर्ण कटककुंडल, मणिबंधादि में अनुस्यूत रहता है। स्वर्ण का यहां स्वरूप से विनाश नहीं है किन्तु अवस्थान्तर परिणाम है। इसी प्रकार प्रकृति का भी स्वरूप से विनाश नहीं होता, उसका अवस्थान्तर होता है, और यही कार्य रूप परिणाम है। यदि हम ब्रह्म को भी ऐसा मान लें तब यह भी प्रकृति के समान विकारी सिद्ध होगा। कारणगुणपूर्वक ही कार्यगुण होता है। जो गुण कारण में होते हैं वे कार्य में भी अवश्य आवेंगे। ब्रह्म का जो कार्यान्तर परिणाम या अवस्थान्तर परिणाम होगा उसमें भी ब्रह्म के अनेक गुण उसके कार्य में मानने पड़ेंगे। उसका कार्य आप जीवात्मा को या ईश्वर को ही कहेंगे क्योंकि इनमें ही चेतनत्व है। इसलिए ब्रह्म भी प्रकृति की तरह सत् और परिणत होकर रह जाएगा। वहां जड़ रूप से परिणाम है और यहां चेतनत्व, अतः प्रकृति और ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद या अन्तर नहीं रहेगा। इसलिए ब्रह्म को निर्गुण, निष्क्रिय, निरवयव तथा असङ्ग मानकर केवल ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति में जगत्-सृजन रूप क्रिया माननी चाहिए। निर्गुणत्व, निष्क्रियत्व, असङ्गत्व, निरवयवत्वादि ब्रह्म के गुण नहीं हैं। ब्रह्म तो केवल चेतन स्वरूप है। इसमें कभी विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिए नित्य निष्क्रिय कहा गया है। जिसमें क्रिया है या व्यापार है वहां परिणाम-क्रम अवश्य मानना पड़ेगा। अतः ब्रह्म को निर्गुण मान कर ही सिद्धान्त का प्रतिपादन युक्तियुक्त और तर्कसंगत है। ब्रह्म के निर्गुण होने से इसमें कर्तृत्वादि धर्म भी सिद्ध नहीं होते। ब्रह्म को जगत् के प्रति निमित्त कारण अवश्य माना जा सकता है। निमित्त कारण दो प्रकार का होता है। कुलाल बर्तन बनाने में निमित्त कारण है, परन्तु ब्रह्म सृष्टि की रचना करने में इस प्रकार का निमित्त कारण नहीं है। वह केवल सन्निधान मात्र से निमित्त कारण सिद्ध होता है, कर्ता रूप में नहीं। अतः ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति गतिशील होकर समष्टि पदार्थों को उत्पन्न करने लगती है। ये समष्टि ३२ पदार्थ प्रकृति की परिणत होती हुई अवस्था विशेष हैं। परिणत होती हुई प्रकृति अन्त में पृथ्वी महाभूत पर आ कर ठहर जाती है, इसके पश्चात् और कोई विशेष परिणामान्तर नहीं होता।

इस उपदेश को सुनने के अनन्तर एक साधक ने प्रश्न किया—"गुरुदेव ! जब आप ईश्वर या ब्रह्म को कर्ता नहीं मानते तो श्रुति में जो कहा है कि 'तस्मात्यजुरजायत' क्या यह गलत है ? इस विषय में आप प्रकाश डालने की कृपा करें।

पूज्य महाराजजी ने इस शंका का निम्न प्रकार से समाधान किया :—

वेद के प्रति उपादान कारण कौन है ? यदि वेद-ज्ञान का उपादान कारण ईश्वर को मानते हैं तब वह विकारवान् सिद्ध होता है। इसके बाद यह भी शंका हो सकती है कि यह ज्ञान उससे भिन्न है या अभिन्न। यदि भिन्न है तो उसका उपादान कारण और कोई पदार्थ होना चाहिए और यदि अभिन्न है तो क्या इसमें कारण-कार्यात्मक अभिन्नता है ? जिस प्रकार प्रकृति अपने सब कार्यों में कारण रूप से वर्तमान रहती है, क्या ईश्वर भी वेद-ज्ञान में कारणरूप से वर्तमान रहता है ? इससे ईश्वर प्रकृति के समान विकारवान् सिद्ध होता है। यदि ईश्वर और वेद-ज्ञान का गुण-गुणी भाव सम्बन्ध मानते हो तो यह मानना पड़ेगा कि वह गुण उसी ईश्वर का अवस्थान्तर परिणाम है अथवा इसका आश्रय-आश्रयी सम्बन्ध है। आश्रय-आश्रयी भाव सम्बन्ध भिन्न पदार्थों का होता है। अतः वेद-ज्ञान को ईश्वर से अलग मानना पड़ेगा और उसका उपादान कारण किसी अन्य को मानना होगा। यदि आप निमित्त कारण केवल सन्निधान मात्र से मानते हैं तब वेद-ज्ञान के प्रति उपादान कारण कोई और ही होना चाहिए। सन्निधान मात्र से कर्तृत्व धर्म ईश्वर में वेद-ज्ञान के प्रति सिद्ध नहीं होता। यदि आप केवल वेद-ज्ञान के प्रति उत्पत्ति में सन्निधान मात्र ही मानते हैं तब वेद-ज्ञान का कर्ता ईश्वर सिद्ध नहीं होता, क्योंकि निर्गुण होने से उसमें कर्तृत्व गुण सिद्ध नहीं होता। अतः वेद-ज्ञान का कर्ता न ब्रह्म ही है और न प्रकृति ही। अब यहां यह प्रश्न हो सकता है कि वेद-ज्ञान का कर्ता कौन है तथा इसकी उत्पति कहां से और कैसे होती है। इसका उत्तर ध्यान से सुनिए। जिस ज्ञानयुक्त पदार्थ में परिणाम-क्रम है उसीमें अवस्थान्तर रूप से ज्ञान का प्रादुर्भाव मानना पड़ेगा। सृष्टि के आदि में जब ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति में परिणाम-क्रम होता है तो वह प्रकृति सत्व रूप में, अर्थात् ज्ञान रूप में, परिणाम भाव को प्राप्त होती है। इस पर आप यह शंका करेंगे कि जब प्रकृति ज्ञानरूप में परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तो क्या पहले भी वह ज्ञान स्वरूपा ही थी ? इस शंका का निवारण इस प्रकार से है। प्रकृति तीन गुणों वाली है—सत्व, रज और तम। ये तीनों पदार्थ भी हैं और गुण भी। जब तक ये विषम भाव में रहते हैं तब तक ये अवस्थान्तर अथवा कार्यान्तर भाव को प्राप्त होते रहते हैं और जब ये समभाव को प्राप्त होते हैं तब इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति होता है। ये अपने कारण प्रकृति में विलीन हो जाते हैं किन्तु इनका स्वरूप से विनाश नहीं होता, केवल कारण में स्थिति या विलीनता होती है, क्योंकि सत्कार्यवाद में हमारा विश्वास है। हम किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं मानते, कार्य के कारण में विलीन हो जाने को आप भले ही विनाश समझें। सत्व का अर्थ ज्ञान, रज का अर्थ क्रिया और तम का अर्थ स्थिति या बल है। ये प्रकृति के गुण भी हैं और पदार्थ भी। ये परिणत होती हुई अवस्थाएं भी हैं। संभव है, आप यह कहें कि प्रकृति जड़ है। ज्ञान इसमें चेतन भगवान् से आता है। भगवान् में आना-जाना रूप अथवा गमनागमन रूप धर्म नहीं हैं। उसके चेतन होने से आपने भगवान् को ज्ञान रूप भी

कह दिया है। ज्ञान उसका गुण नहीं है जो अन्य पदार्थ में जा सके या मिल सके अथवा उससे निकलकर प्रकृति में चला जाए या मिल जाए। यदि ज्ञान को आप उपादान कारण मानोगे तब ही ज्ञान में गमनागमन और वृद्धि तथा ह्रास हो सकता है। अतः ज्ञान का उपादान कारण प्रकृति ही है, ब्रह्म नहीं। ब्रह्म के सन्निधान से जब प्रकृति ने महत्तत्व को उत्पन्न किया तो उससे समष्टि चित्त उत्पन्न हुआ। समष्टि चित्त से अनन्त व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति हुई। ये अनन्त चित्त भी ज्ञानप्रधान ही उत्पन्न हुए। ये व्यष्टि चित्त ही वेद-ज्ञान की परम्परा को चलाते हैं अर्थात् ये ज्ञान को लेकर गमन करते हैं। इसको आप इस प्रकार से समझें :—

आधुनिक काल में कई योगी अथवा तत्त्वज्ञानी, वेद-ज्ञान के ज्ञाता विद्वान् लोग, जब मृत्यु को प्राप्त होंगे तो ये वेद-ज्ञान के संस्कारों को अपने अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि या चित्त में धारण करके परलोक में गमन करेंगे और फिर ये ही इस ज्ञान को लेकर दूसरे शरीरों में जाएंगे, वहां जाकर लोगों को वेद-ज्ञान प्रदान करेंगे। जब तक इनका मोक्ष नहीं होगा तब तक ये जन्मजन्मान्तरों तक संसार के लोगों को वेद-ज्ञान देते रहेंगे। जब सृष्टि का संहार होगा अथवा प्रलयावस्था आएगी तब ये योगी, ज्ञानी और वेदज्ञ इस वेद-ज्ञान को साथ लेकर अथवा अपने चित्तों में धारण करते हुए प्रलय काल में उसमें प्रवेश कर जाएंगे। इन तत्त्वज्ञानियों के अन्तःकरणों में वेद-ज्ञान प्रसुप्त सी अवस्था में ठहर जाएगा। ये अन्तःकरण उस ज्ञान को अपने गर्भ में धारण करके अपने कारण रूप समष्टि चित्त में चले जाएंगे और समष्टि चित्त अपने महत् सत्व में तथा महत् सत्व अपनी प्रकृति की साम्यावस्था में विलीन हो जाएगा।

प्रलयकाल के पश्चात् सृष्टि के आदि में उपरोक्त योगियों, तत्त्वज्ञानियों, वेदज्ञों, जीवन्मुक्तों में, अर्थात् जिनका मोक्ष नहीं हुआ था किन्तु मोक्ष के निकट पहुंचे हुए थे पर अभी इनके कुछ जन्म अवशेष थे उनमें, वेद-ज्ञान का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव होता है। ये ही उस वेद-ज्ञान को अपने अन्तःकरण में धारण करके आते हैं और ये ही वेद-ज्ञान की परम्परा चलाते हैं। इन्हीं में से जिन्होंने सर्वप्रथम यह ज्ञान दूसरे ऋषियों तथा मुनियों को प्रदान किया उनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा हैं।

इस प्रकार ज्ञान की परम्परा ऋषि-मुनियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा चलती रहती है। इसमें ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं है। किसी वेद-ज्ञान अथवा अन्य किसी ज्ञान को भगवान् उत्पन्न नहीं करता। हम इस लोक में बुद्धि द्वारा विवेक प्राप्त करते हैं अथवा गुरुजनों से प्राप्त करते हैं। यह सब बुद्धि का ही विषय है। बुद्धि ही इसे धारण करती है, इसलिए यह सब बुद्धि के विकास ही का परिणाम है।

जब बुद्धि एक जन्म से दूसरे जन्म में ज्ञान लेकर जाती है तो प्रलय काल में भी लेकर जाएगी ही, तब सृष्टि के आदि में ऋतम्भरा बुद्धि या ज्योतिष्मती बुद्धि अथवा सम्प्रज्ञात की अवस्था में उत्पन्न हुई बुद्धि एवं धर्ममेघोत्पन्न बुद्धि सृष्टि के आदि काल में ऋषि-मुनियों के अन्तःकरण में वेद-ज्ञान को लिए हुए विकास भाव को प्राप्त हो जाएगी, अतः सृष्टि के आदिकाल में भी भगवान् से वेद-ज्ञान के उत्पन्न होने की बात सिद्ध नहीं होती। जब इस लोक में विज्ञान बुद्धि का धर्म है तो आदि सृष्टि में भी बुद्धि का ही धर्म होना चाहिए। अतः वेद-ज्ञान न तो ईश्वर का धर्म या गुण है और न ही वह इसका कर्ता है। इस समय जो चार वेद उपलब्ध हैं इन्हीं में सम्पूर्ण

ज्ञान समाप्त नहीं हो जाता। क्योंकि ज्ञान भी अनन्त है अतः जीवों की अनन्त बुद्धियों में निवास करेगा। ये अनन्त जीवों की अनन्त बुद्धियां ज्ञान की परम्परा को धारण करके चलती रहेंगी, वहन करती रहेंगी, क्योंकि ज्ञान इनका ही परिणाम विशेष है। ये ही तत्त्वज्ञान की उपादान कारण बनेंगी और वर्तमान काल में भी हैं और भूतकाल में भी थीं। विज्ञान बुद्धि का परिणाम है। ब्रह्म भी चेतन होने से ज्ञान रूप ही है परन्तु उसका ज्ञान परिणाम और विकार रहित है। उसमें विकास, वृद्धि तथा ह्रास नहीं होता। अतः वेद-ज्ञान भी बुद्धि का ही धर्म-विशेष या परिणाम-विशेष ही है, ईश्वर का नहीं, क्योंकि ईश्वर निर्गुण है, निर्विकार है। निरवयव है और असङ्ग है। इसे सङ्ग दोष नहीं होता। हां, प्रकृति इसके सान्निध्य को प्राप्त होकर विकारवान् होती है और तब परिणामभाव को प्राप्त हो जाती है।

इस वर्ष श्री महाराजजी, रामकिशोरजी और दत्तजी साधकों को अभ्यास करवा रहे थे। ५ मास की साधना समाप्त करके दो अप्रैल को महाराजजी ने नीचे जाने का विचार किया। पूज्य गुरुदेवजी के सैंकड़ों भक्त कई वर्ष से नीचे बुला रहे थे। ये बहुत वर्षों से हरिद्वार से नीचे नहीं पधारे थे। भक्त बार-बार यह आग्रह कर रहे थे कि महाराजजी नीचे पधारें और नगरों में साधना-शिविर लगाएं जिससे इनसे नागरिक जनता भी सत्संग और साधना से लाभ उठा सके।

३१ मार्च १९६४ को शिविर की समाप्ति पर एक विशाल सहभोज साधकों को दिया गया और इसके उपरान्त कई सारगर्भित उपदेश हुए। श्री महाराजजी ने अपने सब शिष्यों को विदा करते समय उपदेश दिया जो निम्नलिखित है।

योग की सार्वभौमिकता

यम-नियम—योग सार्वभौम-धर्म है जो मनुष्यमात्र के लिए परम उपयोगी है। यह ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दोनों के लिए उपयुक्त है और मानवमात्र का कल्याण करने वाला है। इस अष्टांग योग को सभी धर्म और सम्प्रदाय मानते हैं। योग के प्रथम और द्वितीय अंग अर्थात् यम और नियम योग की आधार-शिला हैं। इन पर आचरण करने से प्रत्येक नर-नारी का जीवन उन्नत होता है और शरीर, इन्द्रियों तथा मन पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक प्राणि के प्रति मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। मनुष्यमात्र के प्रति हित और उपकार भावना जागृत हो जाती है। दुखियों के प्रति दया का उदय होता है। आर्तों की आर्ति हरण की सामर्थ्य प्राप्त होती है और असहायों की सहायता करने के लिए शरीर में शक्ति का संचार होता है। तब मनुष्य पापियों से घृणा नहीं करता, उनके प्रति उदासीनता की भावना रखता है। उनके पाप से घृणा करता है, उनसे नहीं। पुण्यात्माओं को देखकर हर्षित होता है। हिंसा का परित्याग, सत्यप्रियता, चौर्यत्याग, परस्त्रीगमन निषेध, तथा विषयोन्मुखी इन्द्रियों का निरोध सभी धर्मों और संप्रदायों के नर-नारियों के लिए कल्याणकारी हैं, सुख और शान्ति को देने वाले हैं। इसलिए यम और नियम का पालन प्रत्येक स्त्री और पुरुष को संयमशील और जितेन्द्रिय बनाता है। इनसे मन में एकाग्रता आती है और यह एकाग्रता पूर्ण शान्ति को प्रदान करती है। सभी संप्रदायों के जितने भी बड़े-बड़े सन्त हुए हैं सबने यम-नियम को धर्म माना है, अपनाया

है, और इनके पालन करने, इन पर आचरण करने पर बल दिया है। इनका पालन करने से ही उनके जीवन में महती विशेषता आई थी और नेतृत्वशक्ति प्राप्त हुई थी, अतः आप लोगों को भी यम-नियम का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वनस्थ और संन्यासी सभी के लिए इन पर अनुष्ठान करना अनिवार्य है। जिस मकान की बुनियाद कमज़ोर रहती है वह चिरस्थायी नहीं हो सकता। उसके शीघ्र ही गिर जाने की संभावना रहती है। इसी प्रकार जो योगी यमों और नियमों का पालन नहीं करता वह पथभ्रष्ट होकर योगभ्रष्ट हो जाएगा।

आसन तथा प्राणायाम—इसी प्रकार आसन और प्राणायाम भी योग-पथ के पथिक के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। आसनों के द्वारा शरीर पर विजय लाभ होती है और प्राणायाम से प्राण तथा मन वशीभूत हो जाते हैं और प्रकाश पर जो आवरण छाया हुआ होता है वह दूर हो जाता है तथा ज्योतिष्मती बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। प्राण की गति के मन्द हो जाने से मन और इन्द्रियों में उत्तेजना उत्पन्न नहीं होती। ध्यान और समाधि की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। ब्रह्मरंध्र में दिव्य-ज्योति का प्रादुर्भाव होता है। दीर्घकाल तक आसन की स्थिरता हो जाने पर शरीर की सब चेष्टाएं शान्त हो जाती हैं। विषय तथा विकारों से मन हट जाता है और ध्यान तथा समाधि में सहायक होता है।

प्रत्याहार—इसी प्रकार योग का पांचवां अङ्ग प्रत्याहार सब इन्द्रियों पर वशित्व पैदा करता है। विश्व के सभी धर्मों तथा मत-मतान्तरों की प्रत्याहार में निष्ठा है। सभी प्रत्याहार द्वारा मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने पर बल देते हैं। इन पर विजय प्राप्त किए बिना इस लोक तथा परलोक में किसी प्रकार भी सिद्धि लाभ नहीं हो सकती। नास्तिक तथा आस्तिक सभी लोग इसमें विश्वास करते हैं। अध्यात्मप्रिय लोगों के लिए इसका अनुष्ठान अत्यन्त आवश्यक है।

धारणा, ध्यान, समाधि—अष्टाङ्ग योग को ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी सभी मानते हैं। जब अनीश्वरवादी समाधि में पदार्थों का साक्षात्कार करते हैं तब इनके लिए भी समाधि से पूर्व धारणा तथा ध्यान को सिद्ध करना परमावश्यक होता है। आत्मा, परमात्मा अथवा प्रकृति और इसके कार्यात्मक पदार्थ सब समाधि के द्वारा ही साक्षात्कार का विषय बनते हैं। सारा विश्व इस समाधि को ही तत्त्वज्ञान का साधन मानता है। आधुनिक भौतिक विज्ञानवादी इसी का आश्रय लेते हैं। इसलिए योग को सार्वभौम-धर्म मानना ही पड़ेगा। गीताकार ने "योगः कर्मसु कौशलम्" कहा है। बुद्धिपूर्वक, युक्तियुक्त, नियम और संयम से जो कर्म किया जाता है वह भी योग है। एकाग्र और समाहित चित्त होकर श्रेष्ठ कर्म करना भी योग है। किसी कार्य में कटिबद्ध होकर लग जाना, जुड़ जाना, उसी में दत्तचित्त हो जाना भी योग है। इस लोक और परलोक के लिए जो सात्विक तथा श्रेष्ठ कर्म एकचित्त होकर किया जाता है वह भी योग ही है। पुराणों में भी योग की बड़ी प्रशंसा की गई है :—

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति॥

इसका भाव यह है कि योगरूपी अग्नि बहुत शीघ्र संपूर्ण पापों को भस्म कर देती है और तत्त्व-ज्ञान को उत्पन्न करके मोक्ष प्रदान करती है। योग ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार करवाने का सर्वोत्तम साधन है। अन्यत्र भी कहा है–"ध्यानयोगेन सम्पश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः। सूक्ष्मतां चान्वेक्षेत योगेन परमात्मनः।" ध्यान-योग के द्वारा आत्मा के अर्थात् अन्तःकरण में स्थित आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करें। योग के द्वारा आत्मा की सूक्ष्मता का अनुभव करें या प्रत्यक्ष करें। योगी एकान्त तथा शान्त स्थान में रह कर निरन्तर समाधि द्वारा आत्मा को प्रत्यक्ष करे। इसका प्रतिपादन गीता में 'योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः' कहकर किया गया है। योग के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने वाला योगी तपस्वियों से भी बड़ा माना गया है, कर्म करने वालों से भी बढ़कर माना गया है और ज्ञानियों से भी वह महान् है। इसलिए योग करने वाले योगी की और योग की सर्वत्र प्रशंसा की गई है।

सन् १९६४ का शिविर समाप्त होने के पश्चात् श्री महाराजजी ने २ अप्रैल को दिल्ली जाने का निश्चय किया क्योंकि सेठ जुगलकिशोरजी का आग्रह था कि पूज्य स्वामीजी महाराज हिमालय से नीचे उत्तर कर सर्वप्रथम राजधानी में ही पधारें। महाराजजी के निवास और भोजनादि की सब व्यवस्था दिल्ली में सेठ साहिब ने ही की थी। बिरलाजी की दिल्ली में कई कोठियां हैं इसलिए इन्होंने योगीराजजी से किसी भी कोठी तथा उद्यान में निवासार्थ निवेदन किया। 'मिलाप' वाले ओमप्रकाशजी और कैप्टन जगन्नाथजी को स्थान निश्चित करने के लिए भेजा गया। इन दोनों ने पूज्य महाराजजी के लिए बिरला मंदिर स्थित सन्त-कुटी को पसन्द किया। सेठजी ने इस कुटिया में बिजली के पंखे आदि लगवा कर उसे ठण्डा रखने का पूर्ण प्रबंध कर दिया था क्योंकि महाराजजी सदा से ही अधिकतर हिमालय में ही विराजते थे। गर्मी में ध्यान तथा समाधि में विघ्न पड़ता था।

दिल्ली प्रस्थान

पूज्य गुरुदेव को दिल्ली ले जाने के लिए एक कार बिरलाजी ने भेजी और श्री जगदीशचन्द्रजी डावर भी अपनी कार लेकर आगए। स्वर्गाश्रम से श्री महाराजजी के शिष्यों तथा भक्तों ने बड़े सम्मान से इन्हें विदा किया। सर्वप्रथम वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर पहुंचे। वहां इनके बड़े योग्य संन्यासी शिष्य महात्मा प्रभुआश्रितजी ने कई मास से मौनव्रत धारण किया हुआ था। श्री महाराजजी के दर्शन करके ही इस व्रत को खोलना चाहते थे। सैंकड़ों वानप्रस्थी तथा आस-पास के लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुए और आपका उपदेशामृत पान करवाने के लिए बार-बार प्रार्थना की। श्री महाराजजी ने महात्माजी को सम्बोधन करते हुए एकत्रित सैंकड़ों नर-नारियों को आध घण्टा तक मौनव्रत के लाभ बतलाते हुए निम्न उपदेश दिया :—

"मौनं सर्वार्थसाधकम्।" आश्रमों की शोभा तप, जप, संयम, अभ्यास और मौनव्रत धारण करने वाले सन्तों तथा महात्माओं से होती है। सन्तों और महात्माओं के आश्रम अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करने के मुख्य केन्द्र होते हैं। श्री महात्माजी ने अदृश्य मौन कई मास से किया हुआ था। मौन दो प्रकार का होता है—आकार मौन और काष्ठ मौन। आकार मौन का अभिप्राय है कि मुंह से न बोलना, अत्यन्तावश्यकता आ पड़ने पर हाथ या आंखादि के इंगित द्वारा

अथवा लिखकर अपने मतलब को समझा देना । काष्ठ मौन में अपने भावों को किसी भी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जाता । यह भी तीन प्रकार का होता है— शारीरिक, वाचिक, और बौद्धिक । बहुत काल तक एक ही आसन पर निश्चेष्ट होकर बैठ जाना, किसी भी अंग में चेष्टा न होने देना शारीरिक मौन है । वाणी द्वारा अपने मानसिक भावों को व्यक्त न करना वाचिक मौन है। कर्म और ज्ञान की चेष्टा का या गति का अथवा क्रिया का नितान्त अभाव करके शून्य कर देना मन और बुद्धि का मौन कहलाता है । बुद्धि अपने निर्णयों का मन के द्वारा ही आदान प्रदान करती है । जब बुद्धि की चेष्टा, चिंतन अथवा विचार का अभाव हो जाता है तब मन का कोई भी अवलम्बन नहीं रहेगा, अतः वह शान्त होकर बैठ जाएगा। यह मौन अत्यन्त कठिन है । इसको कोई विरला योगी ही धारण कर सकता है । यह सर्व संस्कारों का निरोध करने में बड़ा सहायक होता है और स्वरूप में स्थिति का हेतु होता है। किसी के सामने न होना और न जाना अदृश्य मौन है। इसमें भी वाणी का कोई व्यवहार नहीं होता और न कोई इशारा ही किया जाता है । केवल सेवक पर किसी अन्य प्रकार से इच्छा प्रकट की जा सकती है । ये मौन शरीर, मन, वचन और कर्म की तथा अन्तःकरण की शुद्धि करने वाले हैं । भक्ति, वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले हैं। मोक्ष के पथ पर ले जाकर जन्म और मरण के बंधन से मुक्त करने वाले हैं ।

श्री महाराजजी ने अनेक प्रकार से मौन व्रत के लाभ समझाए ।

सन्त-कुटी में निवास––ज्वालापुर से प्रस्थान करके साढ़े बारह बजे दिल्ली की सीमा पर पहुंचे । यहां पर द्वारिकानाथजी सोंधी सपरिवार अपने कारखाने में स्वागतार्थ उपस्थित थे। मुख्य द्वार पर इनका स्वागत करके अपने कारखाने में लेगए। सोंधीजी ने बिरला मंदिर में महाराजजी के पधारने की सूचना भिजवा दी और यह भी कह दिया कि ये १०-१५ मिनिट में यहां से प्रस्थान करके वहां पहुंच रहे हैं । कारखाने में उपस्थित सभी लोगों को महाराजजी ने आशीर्वाद दिया और अपनी शुभ-कामना प्रकट की । सोंधीजी ने स्वामीजी महाराज के पधारने के उपलक्ष्य में सबको प्रसाद बांटा और जलपान करवाया । लगभग डेढ़ बजे बिरला मंदिर पहुंचे । यहां पर भी पण्डित देवधरजी तथा अन्य कई सज्जन स्वागत के लिए उपस्थित थे । स्वागत के पश्चात् लोग महाराजजी को मंदिर में दर्शनार्थ लेगए । दर्शन करने के बाद सन्त-कुटी में पधारे । लगभग दो बजे सबने इकट्ठे बैठकर भोजन किया । एक घण्टा विश्राम करने के पश्चात् आगन्तुक भक्तों को दर्शनार्थ और शंका समाधान के लिए समय दिया गया । सेठ बिरलाजी ने महाराजजी के दिल्ली पधारने की सूचना 'हिन्दुस्तान' में निकलवा दी थी जिससे लोग इनके दर्शन और सत्संग से लाभ उठा सकें । इसी प्रकार की सूचना श्री ओमप्रकाशजी ने भी अपने दैनिक 'मिलाप' में भी निकलवा दी थी । बहुत भारी तादाद में दर्शन करने, शंका समाधान करवाने तथा सत्संग से लाभ उठाने के लिए लोगों ने आना प्रारंभ कर दिया । पंडित शंकरलालजी शर्मा पूज्य महाराजजी के सेक्रेटरी थे । दिल्ली में इनके भक्त, सेवक, श्रद्धालु सैंकड़ों ही थे । अतः दोपहर का भोजन यहीं होता था । दर्शनार्थ तथा शंका समाधान के लिए लोगों का सारा दिन तांता सा बंधा रहता था ।

दिल्ली में पूज्य गुरुदेवजी के उपदेश--प्रायः प्रतिदिन महाराजजी को कई-कई घण्टे दर्शनार्थियों को देने पड़ते थे। लोग आपका उपदेशामृत पान करने के लिए लालायित हो रहे थे। अतः सायंकाल ४ बजे से ६ बजे तक इनके उपदेशों का आयोजन किया गया और प्रातः ९ से ११ बजे का समय लोगों को मिलने के लिए नियत कर दिया गया। दिल्ली तथा इसके आस-पास की जनता ने आठ दिन तक पूज्य स्वामीजी महाराज के उपदेशों से लाभ उठाया। हज़ारों की संख्या में लोग आपके उपदेश श्रवण के लिए आते थे। कई ध्वनि प्रसारक यन्त्र लगाए गए जिससे दूर-दूर से भी जनता भली प्रकार से सुन सके। महाराजजी के योग तथा आध्यात्मिक गूढ़ और गहन विषयों पर नित्य प्रवचन होते थे। अनेक व्यक्तियों ने आपके भाषणों को टेपरिकार्डर में भी लिया। यहां पर इनके जितने उपदेश हुए थे उनका सारांश संक्षेप रूप से निम्न प्रकार है:—

उपदेश

ब्रह्म-ज्ञान प्रदाता--गुरुआत्मज्ञानार्थ गुरु की आवश्यकता--जिसने स्वयं आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर लिया है और जो स्वयं संसार के बन्धनों से मुक्त हो चुका है, ऐसे गुरु के पास समित्पाणि होकर जाए। समित् का अर्थ है समिधा और पाणि का अर्थ है हाथ, अर्थात् हाथ में समिधा लेकर जाए। ऐसा गुरु कौन हो सकता है? संन्यासी तो हो नहीं सकता। ऐसा गुरु वानप्रस्थी ही हो सकता है, क्योंकि वानप्रस्थी ही यज्ञादिक कर्म किया करते हैं। प्राचीन मर्यादा के अनुसार एक संस्कार तब होता था जब बालक गुरुकुल में अध्ययनार्थ जाता था और दूसरा संस्कार तब होता था जब वह ब्रह्म-विज्ञान की जिज्ञासा लेकर किसी अरण्यवासी ब्रह्म-ज्ञानी के पास जाता था। ब्रह्म-ज्ञानी गुरु सर्वप्रथम उसका दूसरी बार उपनयन किया करता था। इसके पश्चात् वह आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देना प्रारम्भ किया करता था। इससे यह सिद्ध होता है कि यह विधि अरण्यवासियों की ही थी क्योंकि समिधा लेकर जाने की तो उन्हीं के पास आवश्यकता थी। वे ही यज्ञादि कर्म किया करते थे। शास्त्र का यह विधान है कि जिसका सर्व प्रकार से भोग और कर्म से निर्वेद (वैराग्य) हो चुका हो वही आत्मज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान का अधिकारी है। अब हम आपसे पूछते हैं कि आपमें से कितनों को निर्वेद हुआ है और कितने आत्म-ज्ञान के अधिकारी हो चुके हैं। जो भी पास आते हैं वे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान से नीचे की बात तो करते ही नहीं परन्तु इनकी प्राप्ति से पूर्व तो पूर्ण वैराग्य की आवश्यकता है। क्या आप बता सकते हैं कि आपमें से कितनों को वैराग्य हुआ है।

ज्ञान-प्राप्ति की पात्रता--शास्त्र के आदेश के अनुसार इस ज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जिसने साधन-चतुष्टय का पालन किया है। अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के लिए चार प्रकार के साधनों को अपना कर ही अधिकारत्व प्राप्त किया जा सकता है।

साधन-चतुष्टय--आत्म-ज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो वीतराग हो और साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो। साधन-चतुष्टय किसे कहते है? शम, दम, उपरति तथा तितिक्षा, यह साधन-चतुष्टय हैं।

शम--शम का अर्थ है मन को शान्त करना। भोगों से जब तृप्ति होगई हो, संसार के विषयों से उपरामता प्राप्त होगई हो तथा मन विरक्त होने लग गया हो,

तभी प्रथम साधन 'शम' में स्थिति संभव है। तृतीय आश्रम वानप्रस्थ में प्रवेश पाने के इच्छुक गृहस्थी को इसकी भूमिका गृहस्थाश्रम में ही तैयार करनी चाहिए। गृहस्थ में ही उसकी भोग और विलास के प्रति अरुचि और उदासीनता सी होनी प्रारम्भ हो जानी चाहिए। गृहस्थ के सुखों और भोगों से उसका मन शान्त होने लग जाए क्योंकि 'शमवानेव राज्यते', अर्थात् शमवान् ही प्रकाश अर्थात् ज्ञान को प्राप्त करता है।

दम––दूसरा साधन है 'दम'। इसका अर्थ है इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना। बेलगाम घोड़े के समान इन्द्रियों को कभी स्वेच्छाचारणी न होने देना चाहिए। जिसने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है, वही वास्तव में आत्म-ज्ञान का अधिकारी बन सकता है। इन्द्रियों पर वशित्व होने के पश्चात् ही प्रत्याहार-सिद्धि प्राप्त होती है। यह योग का पांचवां अंग है। इस वशित्व की तैयारी गृहस्थाश्रम में ही होनी चाहिए।

उपरति—बुद्धि या चित्त का ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के विषयों से विरक्त होना या उपराम हो जाना। ऐहिक विषयों का अर्थ है पांच भौतिक विषय अर्थात् स्थूल इन्द्रियों के विषय। इनके प्रति उपरति होनी चाहिए। इतना ही नहीं किन्तु स्वर्गीय विषयों, जिनको सूक्ष्म या दिव्य भोग कहा जाता है उनके उपभोग की भी इच्छा न रहे। जो ऐसा कर सकते हैं उन्हींको प्रत्याहार सिद्धि लाभ होती है। इसीका नाम 'वशीकार संज्ञा वैराग्य' है। योगदर्शनकार महर्षि पातंजलि ने इस वैराग्य का लक्षण "दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्" किया है। स्थूल इन्द्रियों के विषय दृष्ट कहलाते हैं और दिव्य विषय स्वर्गीय विषय हैं। इन्हें सूक्ष्म शरीर के द्वारा भोग किया जाता है। इन दोनों प्रकार के विषयों से जिनकी बुद्धि उपराम होगई है वे ही आत्म-ज्ञान के अधिकारी हैं।

तितिक्षा––तितिक्षा का अर्थ है सर्व प्रकार के द्वन्द्वों का सहन करना। मान-अपमान को समान समझना। हानि-लाभ को बराबर जानना। हर्ष में प्रफुल्लित होकर नर्तन करने नहीं लगना और शोक में व्याकुल न होना। मनःसाम्य सदैव स्थिर रहना चाहिए। प्रतिकार की भावना का उदय ही न होने देना। कष्टों, दुःखों तथा आपत्तियों को सहन करना। कभी क्षुब्ध न होना। सदैव एक रस रहने का प्रयत्न करना। सभी प्रकार की विषमताओं को सहन करना। शीत, उष्ण, भूख, प्यास को बर्दाश्त करना। वेदना तथा पीड़ा में क्षोभ को प्राप्त न होना। मन और बुद्धि में एक शान्त भाव बनाए रखना। सर्व प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधि-दैविक दुःखों को सहन करते हुए इनके निवारण के लिए पुरुषार्थ करना 'तितिक्षा' कहलाती है। इन चारों प्रकार के साधनों से सम्पन्न व्यक्ति ही आत्म-ज्ञान का अधिकारी हो सकता है।

मनःशान्ति––सब लोग शिकायत करते हैं, विशेषकर गृहस्थी, कि "महा-राजजी, हमारा मन शान्त नहीं होता।" हम आपसे पूछते हैं कि आपके पास शांति को प्राप्त करने के साधन कौन से हैं। शान्ति प्राप्ति के साधन तो ये शम, दम, उपरति और तितिक्षा ही हैं। आपके पास जो साधन उपलब्ध हैं वे तो सारे अशान्ति के ही हैं। सारा दिन इतने व्यवहार में डूबे रहते हो कि न दिन को चैन है और न रात

को नींद। जब तक शम, दम, उपरति और तितिक्षा का आचरण नहीं करोगे तब तक शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आज का युग बड़े संघर्ष का है। आप लोगों की कामनाएं इतनी अधिक बढ़ी हुई हैं, जिनकी पूर्ति के लिए रात-दिन संघर्ष में लगे रहना पड़ता है। तब भी आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। इन संघर्षों का अन्त तब होगा जब आप अपनी आवश्यकताओं को कम करेंगे और सन्तोष धारण करेंगे। ऐहिक और स्वर्गीय विषय भोगों से चित्त को उपराम बनावेंगे। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक शान्ति की अवस्था नहीं आवेगी। जब तक इन्द्रियों और मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता तब तक शान्ति की उपलब्धि नहीं होगी। संसार के सर्व भोग्य पदार्थ पास होते हुए भी उनके भोगने की इच्छा न रहे, यह भावना दृढ़ होनी चाहिए। अनमिले के तो सभी त्यागी और वैरागी बन जाते हैं। सर्व प्रकार के भोग्य पदार्थ पास होते हुए भी इनका भोग न करने का नाम ही उपरति, वैराग्य अथवा त्याग है। भोगी और विलासी तथा विषयों में आसक्त लोग आकर जिज्ञासा करते हैं कि मन शान्त नहीं होता। शान्ति प्राप्त करने के उपरोक्त साधनों को अपनाओ, उन पर आचरण करो, तभी मन शान्त होगा। जो व्यक्ति रात और दिन विषय और भोगों के उपार्जन में लगा रहता है, जिसके पास सन्तोष नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, जिसकी तृष्णा की कोई सीमा नहीं और न निवृत्ति की कोई अवधि ही निश्चित की है, जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त लोक-संग्रह में ही लगा रहता है, सारा जीवन हाय-हाय करता हुआ संसार से खाली हाथ चला जाता है, उसको शान्ति कैसे लाभ हो सकती है! वह मृत्यु के समय अपने साथ अनेक प्रकार की अधूरी और अपूर्ण कामनाएं लेकर जाता है और उन्हीं के अनुसार दूसरा जन्म धारण करता है। इसी प्रकार के जन्म और मरण के चक्र में पड़कर भटकता रहता है। यह मानव देह बड़े पुण्य कर्मों से प्राप्त हुआ था। इसका सदुपयोग न करके इसका दुरुपयोग किया। इसका सदुपयोग था आत्म-ज्ञान प्राप्ति द्वारा मोक्ष लाभ। वह किया नहीं। खरीदना तो था ब्रह्म-ज्ञान रूपी सोना और भ्रांति तथा अज्ञान वश खरीद बैठा पीतल। यह पीतल क्या है? संसार के भोग और विलास। मानव देह की प्राप्ति का उद्देश्य तो वास्तव में मोक्षलाभ करना था पर वह नहीं किया। संसार के भोग तो दूसरी योनियों में भी भोगे जा सकते हैं और मन तथा इन्द्रियों की तृप्ति भी हो सकती है। जिस प्रकार आप बढ़िया स्वादिष्ट मिठाई तथा नाना प्रकार के व्यंजन खाकर तृप्त होते हैं, इसी प्रकार शूकर विष्ठा खाकर तृप्त हो जाता है। अब आप ही बताएं कि उस शूकर और मनुष्य में क्या अन्तर है? इस मनुष्य देह का उद्देश्य तो ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना था, इस ओर तो ध्यान नहीं दिया। जो कर्त्तव्य था उसका पालन नहीं किया और व्यर्थ इधर-उधर विषयों के पीछे-पीछे भटक-भटककर जीवन बर्बाद कर दिया और ब्रह्म-ज्ञान से वंचित होकर ही संसार से जाना पड़ा। हीरे के समान अमूल्य जीवन को गुंजा के बदले दे बैठे। परन्तु हमें समझ नहीं आ रही है। सारा जीवन वेद-शास्त्रों की बातें सुनते होगया। बूढ़े होगए हैं, किन्तु टस से मस नहीं होते। प्रतिवर्ष यहां पर सैकड़ों विद्वान् आते हैं और उपदेश देकर चले जाते हैं, किन्तु खेद है कि आप एक कान से सुनते हैं और दूसरे से निकाल देते हैं। आपके जीवन पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे

आप यहां पर बैठे सुन रहे हैं ऐसे ही सारा जीवन सुनते-सुनते होगया है। यहां पर हमें एक दृष्टान्त स्मरण हो आया है। एक समय की बात है कि एक महात्मा एक सभा में ज्ञान और वैराग्य पर उपदेश दे रहे थे। सब श्रोता सुन रहे थे। एक राजकुमार भी वहां पर भ्रमण करता हुआ आ निकला। वह घोड़े पर सवार था, इसलिए बाहिर खड़ा होकर ध्यानपूर्वक महात्मा के उपदेश को सुनता रहा। राजकुमार का अन्त:करण अत्यन्त निर्मल था इसलिए उस पर महात्मा के उपदेश का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। वह उसी समय अपना घोड़ा छोड़कर बन में तपस्या करने चला गया और यह प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार का उपदेश यहां सुना है मैं उसी प्रकार आत्म-ज्ञान प्राप्त करूंगा। यह सबसे बड़ा राजकुमार था। इसी को गद्दी प्राप्त करने का अधिकार था, किन्तु इसने राजसिंहासन को भी ठुकरा दिया और ईश्वर प्राप्ति के लिए वन में चला गया। वन में रहकर कई वर्ष तक योग-साधन द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसके मन में यह विचार आया कि जिस महात्मा के सदुपदेश से मुझे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई है उस पूज्य गुरुदेव के चरणों में धन्यवाद अर्पण करना चाहिए। वह उस महात्मा के आश्रम में गया। उसने वहां देखा कि गुरुदेव पूर्ववत् उपदेश दे रहे हैं और प्राय: वे ही श्रोतागण जिन्हें उसने कई वर्ष पूर्व देखा था उनके उपदेश को सुन रहे हैं। राजकुमार ब्रह्मचारी था। जटाएं बढ़ी हुई थीं। पूर्ण जितेन्द्रिय था। राजकुमार ने सत्संग में प्रवेश किया और वहां बैठे जो लोग उपदेश सुन रहे थे उनमें से प्रत्येक का सिर हिलाया और जब १०-२० व्यक्तियों का सिर हिला चुका तब गुरुदेव ने पूछा, "महात्माजी! आप यह क्या कर रहे हैं?" राजकुमार ने कहा, "महाराज, मैं यह देख रहा हूं कि ये श्रोतागण मिट्टी या पत्थर की मूर्तियां हैं या जीते-जागते मनुष्य हैं। १२ वर्ष इनको उपदेश सुनते होगए, किन्तु इनके ऊपर उपदेश का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है और न इनके जीवन में ही किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई दे रहा है। मैंने तो आपका उपदेश केवल एक घण्टा ही सुना था, मैं तो उसी में कृतकृत्य होगया।"

राजकुमार के समान मनुष्य ही आत्म-ज्ञान का अधिकारी हो सकता है, विषयासक्त नहीं। मुझे जिस गुरुदेव से आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त हुआ था, धन्य हैं वे महात्मा! इतना तत्त्वज्ञान प्राप्त करके भी वे केवल भोजपत्र की कौपीन ही धारण किए हुए थे। लकड़ियों पर मिट्टी बिछाकर एक छोटा-सा आसन बनाया हुआ था। बस, यही उनका बिस्तर, आसन और घर था। अब उन्हें इस प्रकार के आत्यन्तिक त्याग और तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं थी। उनके लिए मखमली गद्दे और भोजपत्र दोनों समान थे। वे अत्यन्त ऊंचे दर्जे के वीतराग और समदर्शी थे।

प्रवृत्ति का हेतु राग--राग प्रवृत्ति का हेतु होता है। जब तक राग की निवृत्ति न हो तब तक मन शान्त नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य विषयों की अग्नि से संतप्त रहता है तब तक उसे वैराग्य किस प्रकार हो सकता है! और जब तक वैराग्य नहीं होता तबतक शान्ति भी प्राप्त नहीं हो सकती। आप लोगों को उपदेश सुनते वर्षों बीत गए किन्तु बड़े खेद की बात है कि आपके चित्त चिकने घड़े के समान हैं, इसलिए उनपर किसी भी उपदेश का असर नहीं होता। जिस प्रकार चिकने घड़े पर एक बूंद भी पानी की नहीं ठहरती, उसी प्रकार आपके चित्तों पर उपदेशों का किंचित्

मात्र भी असर नहीं होता। बूढ़े होने पर भी घर में ही मरना पसन्द करते हैं। पुत्रों पर भाररूप होकर रहना अधिक रुचिकर मालूम होता है। परिवार के सब सदस्य इनसे तंग आ जाते हैं क्योंकि वे इनकी सेवा कर-कर के तंग आ जाते हैं। सेवा करें भी कैसे, क्योंकि सेवा की भावनाएं उनमें पैदा ही नहीं की जातीं। आजकल के स्कूलों और कालिजों में धार्मिक शिक्षा दी नहीं जाती। इसीलिए आजकल के माता-पिता अपनी सन्तानों की सेवा से वंचित रहते हैं। विवाह होते ही युवक पुत्र अपनी पत्नियों को लेकर पृथक् हो जाते हैं और वृद्ध माता-पिता उनकी सेवा से वंचित रह जाते हैं। इतना कष्ट होते हुए भी ये घर में ही पड़े रहते हैं। युवक जैसी शिक्षा प्राप्त करते हैं वैसी ही भावनाएं उनमें पनपती हैं। जब तक विद्यालयों में हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की शिक्षा नहीं दी जाएगी तब तक युवकों के अन्दर धार्मिक भावनाएं और आध्यात्मिक विचार उत्पन्न नहीं हो सकते। हमारी तथा विदेशी सभ्यता और संस्कृति तथा धर्म और शिक्षा में महान् अन्तर है। हमें आंख बन्द करके तथा बिना सोचे-समझे पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण नहीं करना चाहिए। हम सभ्यता तो पश्चिमी अपना रहे हैं और सुख तथा शान्ति भारत की चाह रहे हैं। प्राचीन भारत में केवल गृहस्थी धनोपार्जन करता था और वही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों का पालन करता था। आधुनिक गृहस्थियों की योरुप की देखादेखी आवश्यकताएं इतनी बढ़ गई हैं कि वे अपनी आय से अपना ही जीवन सुखपूर्वक व्यतीत नहीं कर सकते। इनसे दूसरे आश्रमों की सेवा अथवा पालन-पोषण की क्या आशा की जा सकती है!

जो लोग संसार के विषय-भोगों में लिप्त हैं, जिनकी बुद्धि निश्चयात्मक नहीं हुई है, जो साधन-चतुष्टय सम्पन्न नहीं हुए हैं, और जिन्होंने समाधि के पूर्व की स्थिति प्राप्त नहीं की है, ऐसे मनुष्य आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त नहीं कर सकते। आप नित्य विज्ञान तो सुनते हैं अरण्यवासियों का, किन्तु दिनरात संसार के भोग में आसक्त रहते हैं। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोगों को ब्रह्म-विज्ञान का उपदेश देना बकरी के आगे बीन बजाना अथवा अरण्यरोदन ही है। सारा जीवन उपदेश सुनते रहेंगे परन्तु करेंगे कुछ नहीं। जब करना ही कुछ नहीं तो भले ही आप हज़ार वर्ष तक उपदेश सुनते रहें, जन्मजन्मान्तरों तक सुनते रहें, तो भी कुछ प्राप्त नहीं होगा। यदि आचरण किया जाए तो एक दिन का ही उपदेश पर्याप्त होता है। राजकुमार ने एक घण्टा ही तो उपदेश सुना था। इससे उसके जीवन में महान् परिवर्तन होगया। उसने वन में जाकर कठिन तप और साधना करके आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया। हम यह नहीं कहते कि आप राजकुमार की तरह अभी वन में भाग जाओ, किन्तु हम इतना अवश्य चाहते हैं कि ५० वर्ष तक गृहस्थ भोगने के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके और संसार के भोगों से उपराम होकर आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्न करो। आप शान्ति की बातें तो करते हैं परन्तु उसके साधनों को जीवन में चरितार्थ नहीं करते। शान्ति कैसे प्राप्त हो! बूढ़े-बूढ़े भी दिनरात भोगों में आसक्त रहते हैं। आखिर इन भोगों का कभी अन्त तो होना चाहिए। शरीर तथा इन्द्रियों के शिथिल होने पर यदि अन्त हुआ तो इसमें क्या विशेषता है! महत्व की बात तो तब है कि युवा अवस्था में ही अधिकारपूर्वक त्याग किया जाए। अन्यथा

मरने के बाद तो ये स्वयं ही छूट जाएंगे। अभी कुछ पूर्व ही मैंने साधन-चतुष्टय की व्याख्या की थी परन्तु इतना और बता देते हैं कि तितिक्षा के द्वारा ज्ञान और वैराग्य को दृढ़भूमि किया जाए। जीवन में इतनी सहनशीलता आ जाए कि आपत्ति आई हो, मुसीबत में फंस गए हों, दुःख या संकट में ग्रस्त होगए हों, उस समय उद्यम, साहस, बल, बुद्धि, पराक्रम, धैर्यादि बना रहना चाहिए। इनके स्थिर रहते हुए आपके उद्देश्य की पूर्ति भी हो जाएगी और सब क्लेश भी दूर हो जाएंगे तथा शान्ति लाभ होगी।

अधिकारी गुरु तथा शिष्य––साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर किसी आत्म-ज्ञानी गुरु की शरण में जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में उपनिषद् का वचन है :—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचित्तान् निर्वेदं ब्राह्मणो निर्वेदमापन्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

इसका भावार्थ यह है कि संसार के भोग और कर्मों को भली प्रकार सोच विचार कर परीक्षा करके इस विद्वान् को वैराग्य हुआ है। इस विद्वान् को आत्म-ज्ञान और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समिधा लेकर गुरु के पास जाना चाहिए। वह गुरु कैसा हो, इस विषय में उपनिषद् कहता है कि वह पूर्ण विद्वान् हो। आत्म-ज्ञानी और ब्रह्म-ज्ञानी हो। जब शिष्य श्रद्धा और भक्ति पूर्वक ऐसे गुरु के पास जाता है तब वह इसे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्रदान करता है। गुरु के विषय में उपनिषद् का कथन है :—

तस्मै स विद्वान्नुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय समन्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच्य तं तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥

श्री भगवान् कृष्णचन्द्रजी के आत्म-ज्ञान के गुरु ब्रह्मर्षि उपमन्यु थे। जब ये ऋषि अपने गुरु गौतम के पास गए तब उन्होंने श्री गौतम से आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा की, तब गौतम ने इन्हें आदेश दिया कि हमारी गौशाला की गायों को वन में चराने के लिए ले जाओ। जब इनकी संख्या एक हज़ार हो जाए तब लौट कर आना। उस समय यदि योग्य समझेंगे तब तुम्हें आत्म-ज्ञान प्रदान कर दिया जाएगा। उपमन्यु गायों को चराने वन में चले गए। उस वन के समीप कोई बस्ती नहीं थी जहां से वे भिक्षा मांगकर लाते, अतः भोजन का कोई अन्य साधन न देखकर वे गायों के दूध से उदरपूर्ति कर लेते थे। कुछ काल के पश्चात् गौतम ने उपमन्यु को बुलाया और गायों का सब समाचार पूछने के उपरान्त उनके भोजन की व्यवस्था के बारे में पूछने पर विदित हुआ कि उपमन्यु आवश्यकतानुसार बछड़ों के पी लेने के उपरान्त गायों का दूध पीकर निर्वाह कर लेते थे क्योंकि भिक्षाचर्या के लिए वन के आसपास कोई गांव नहीं था। महर्षि गौतम से आज्ञा प्राप्त किए बिना ही ये गायों का दुग्धपान करते रहे थे, अतः गुरुदेव ने इन्हें गायों का दूध पीने से मना कर दिया। उन्हें यह संदेह हो गया था कि कहीं उपमन्यु के प्रति दया भाव रखकर बछड़े स्वयं दूध कम पीकर अधिक दूध उसके लिए छोड़ देते हों। गुरु ने शिष्य को पुनः गायों को चराने के लिए वन में जाने का आदेश दिया। जब उपमन्यु को भूख लगी और उसे कोई अन्य साधन क्षुधा को शान्त करने का वन में उपलब्ध नहीं हुआ तब उसे एक उपाय सूझा। अब उसने गायों का दूध तो नहीं पीया, किन्तु दूध पीने के उपरान्त बछड़ों के मुंह से जो दूध की झाग सी निकलकर भूमि पर गिर जाती थी उसे उठाकर खाना प्रारम्भ कर

दिया। नीचे गिरी हुई झाग किसी काम तो आ नहीं सकती थी। व्यर्थ ही जाती, अतः इससे अपनी क्षुधा शान्त की। जब उपमन्यु को वन में गए बहुत दिन होगए और वह कहीं दिखाई नहीं दिया तब गौतम महर्षि ने अपने ब्रह्मचारियों के द्वारा उसे बुलवाया और उसका सब समाचार ज्ञात किया। पूछने पर मालूम हुआ कि उपमन्यु अब दूध नहीं पीते किन्तु दूध पीते समय बछड़ों के मुंह से जो झाग नीचे ज़मीन पर गिर जाती है उसे खाकर निर्वाह करते रहे हैं। गुरुजी ने कहा, "बछड़े आप पर दया करके बहुत झाग गिराते होंगे और स्वयं भूखे रह जाते होंगे, अतः आपके लिए झाग खाना उचित नहीं है, आज से झाग मत खाया करना।" वह गुरु-आज्ञा पाकर पुनः गायों को चराने के लिए वन में चला गया। कई दिन तक उसने कुछ नहीं खाया। खाता भी क्या ! वहां खाने के लिए कुछ था ही नहीं। एक दिन वह अत्यन्त क्षुधार्त होगया। वन में वृक्षों के पत्तों और घासफूसादि के अतिरिक्त कुछ नहीं था, अतः गायों के समान इसने भी पत्ते खाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में पतझड़ ऋतु आगई। वृक्षों के सब पत्ते सूख गए। पेड़ों के सब पत्ते झड़ गए। अब जंगल में कुछ खाने के लिए नहीं रहा। कई दिन तक कुछ नहीं खाया। शरीर अत्यन्त कृश होगया। शक्ति कम होगई। क्षुधा के मारे अत्यन्त व्याकुल होगए। इन्हीं दिनों बसन्तागम होगया। सर्वप्रथम इस ऋतु में अर्क की कोंपलें निकलनी प्रारम्भ हुईं। उपमन्यु ने इन्हें ही खाकर अपनी क्षुधा निवृत्ति करना प्रारम्भ कर दिया। जब भूख लगती तो वे इन नए-नए पत्तों को भक्षण करके दिनों ही तक अपनी क्षुधा शान्त करते रहे। लगातार कई दिनों तक पत्तों के खाने से उनके शरीर में अत्यन्त खुश्की होगई और उष्णता भी बहुत बढ़ गई। इसके परिणामस्वरूप इनकी नेत्रज्योति नष्ट होगई और दीखना बिल्कुल बन्द होगया। ऐसी अवस्था में एक गाय की पूंछ पकड़कर गायों को चराने के लिए जाने लगे। जिधर वह गाय जाती उधर ही वह चले जाते थे। ये गायें सब झुण्ड में ही चलती थीं और एक ही स्थान पर एकत्रित होकर बैठ जाती थीं। दैवयोग से एक दिन बड़ी भारी आंधी आई और वर्षा भी होने लगी। सभी गायें इधर-उधर भागने लगीं। इसी गड़बड़ में दुर्भाग्यवशात् उपमन्यु के हाथ से गाय की पूंछ छूट गई। गायों को एकत्रित करने के लिए जब वह इधर-उधर भटकता फिर रहा था तब एक कूएं में गिर पड़ा। वहां पर उसे कुछ थोड़ा सा अवलम्ब मिल गया, उसी के सहारे वहां टिका रहा। इसी प्रकार कई दिन व्यतीत होगए। गुरुजी ने अपने शिष्यों को उपमन्यु को ढूंढकर पास बुलाने के लिए वन में भेजा। उन्हें वह कहीं भी वन में दिखाई न दिया, अतः निराश होकर लौट आए। तब ब्रह्मर्षि गौतम स्वयं ढूंढने के लिए गए और वन में जाकर उपमन्यु को ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें लगाईं। इसने गुरुजी की आवाज़ को पहिचान लिया और कूएं में से ही चिल्लाकर कहा, "गुरुजी, मैं कूएं में गिरा पड़ा हूं।" गुरुजी ने तुरन्त उसे कूएं से निकाला और उसे अंधा देखकर बहुत दुःखी हुए। उसे एक श्रुति का मंत्र उच्चारण करने का आदेश दिया। मन्त्रोच्चारण करते ही उसकी आंखों में पूर्ववत् ज्योति आगई और इसके पश्चात् गुरुजी ने ज्योंही उसके मस्तक पर हाथ फेरा त्योंही वह समाधिस्थ होगया और आत्म-साक्षात्कार लाभ हुआ।

आचार्य लोग कठिन परीक्षा लेने के उपरान्त जब शिष्य को आत्म-ज्ञान का अधिकारी समझते थे तभी आत्म-साक्षात्कार करवाते थे। एक आप हैं जो घर में

आराम से बैठकर सभी प्रकार के लौकिक सुखों का उपभोग करते हुए आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं। आप घर में ही रहकर भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त करना चाहते हैं। ये दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। जहां भोग है वहां मोक्ष नहीं और जहां मोक्ष है वहां भोग नहीं। भोग का फल दुःख और दुःखों से छुटकारा मोक्ष है।

साधन के अनुरूप प्राप्ति--आप तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए बलिदान कुछ नहीं करना चाहते और प्राप्ति का लक्ष्य बहुत ऊंचा बनाए बैठे हैं। इस प्रकार के बहुत ऊंचे तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमारे ऋषियों और मुनियों ने गृह परित्याग करके ऐहिक सुखों से मुंह मोड़कर वर्षों ही वनों में वास करके तप और साधना की थी। उनमें भी किसी विरले को ही तत्त्व-ज्ञान लाभ होता था। गीता में इसी बात का प्रतिपादन किया गया है :—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।

आप मेरे ही जीवन को देखें। मैं १४ वर्ष की आयु से ही घर के सब प्रकार के सुख, आराम तथा भोगों का परित्याग करके आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के अनुसंधान में लगा हुआ हूं। इतने दीर्घकाल तक अनेक संघर्षों का सामना किया है। तप, त्याग, शम, दम, उपरति तथा तितिक्षा को जीवन में चरितार्थ करने के लिए महान् प्रयत्न किया है। इसके परिणामस्वरूप मुझे जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति हुई है और तत्त्व-ज्ञान लाभ करके परम सन्तोष प्राप्त हुआ है।

जो व्यक्ति जिस प्रकार की कामना अथवा उद्देश्य को लेकर प्रयत्न करता है उसको उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। सासांरिक लोग संसार के भोग और ऐश्वर्य की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करते हैं, उनमें से अधिकांश को ये अवश्य प्राप्त होते हैं। जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए यत्नशील होते हैं और तदनुकूल साधनों को अपनाते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

श्रेय और प्रेय मार्ग--संसार में दो प्रकार के मार्ग हैं। एक श्रेय तथा दूसरा प्रेय। आप लोगों ने प्रेय-मार्ग को अपनाया है और इसी मार्ग पर चल रहे हैं। यह मार्ग देखने में अत्यन्त प्रिय मालूम होता है किन्तु इसका अन्तिम परिणाम दुःखदायी होता है। यह 'विषकुंभं पयोमुखम्' की तरह से है। यह मार्ग इस प्रकार का घड़ा है जिसके भीतर विष ही विष भरा है किन्तु उसके मुंह पर थोड़ा सा दूध है। इस थोड़े से दूध के लालच में फंसकर जो दूध पीना चाहता है उसे विष पान भी करना पड़ता है। संसार के विषय और भोग सेमर के फल के समान हैं जो दूर से देखने में बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है किन्तु जब उसे चखने लगते हैं तो कुछ भी हाथ नहीं आता। उसके अन्दर तो रूई होती है जो हाथ लगाते ही उड़ जाती है। इसके विपरीत दूसरा मार्ग श्रेय-पथ है। यही मार्ग ऐसा है जिस पर चलकर सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसका समर्थन उपनिषद् इस प्रकार करता है :—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेन
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

यदि वास्तव में सच्ची जिज्ञासा और हार्दिक इच्छा तत्त्व-ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की आप लोगों की है तो इस श्रेय-मार्ग पर चलकर कल्याण के भागी बनें। हमारे जीवन का अनुभव तो यह है कि गुरु के बिना आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में गुरुओं के पास पढ़ कर लौकिकी-विद्या प्राप्त की जाती है इसी प्रकार अध्यात्म-विद्या भी ब्रह्म-ज्ञानी गुरुओं से प्राप्त की जाती है। अभी-अभी मैंने आपको बताया था कि उपमन्यु ने ब्रह्मर्षि गौतम से आत्म-ज्ञान प्राप्त किया था। इसी प्रकार इन्द्र ने प्रजापति से, नचिकेता ने यमाचार्य से इस ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त किया था। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण आपको वैदिक साहित्य के अध्ययन से मिलेंगे। आप भी किसी आत्म-ज्ञानी गुरु की शरण में जाकर अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करें। तभी आप मानव जीवन की सफलता लाभ करके कृतकृत्य हो सकते हैं।

आत्म-ज्ञान प्राप्ति का क्रम

पिछले व्याख्यानों में मैंने, आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के अधिकारी बनने के लिए किस प्रकार की योग्यता मनुष्य में होनी चाहिए इस विषय पर आपको समझाया था। अब आप साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर आत्म-द्वार पर पहुंच गए हैं। इसलिए आज आत्म-ज्ञान की प्राप्ति तथा उसकी प्राप्ति के साधनों पर प्रकाश डाला जाएगा।

आत्मा के तीन दुर्ग—इस आत्मा के तीन दुर्ग हैं अथवा तीन द्वार हैं। प्रथम दुर्ग स्थूल शरीर है। दूसरा दुर्ग सूक्ष्म शरीर तथा तीसरा कारण शरीर है। ये तीनों दुर्ग आत्मा के ऊपर एक प्रकार के कोष के रूप में हैं। इन तीनों शरीरों में अन्तिम जो कारण शरीर है, इसमें चित्त वर्तमान है। इसी में आत्मा का निवास स्थान है। प्रथम दुर्ग स्थूल शरीर है। इसमें दो प्रवेश द्वार हैं। एक को मूलाधार कहते हैं और दूसरे को भ्रूमध्य या त्रिकुटि। जब अभ्यासी साधक ध्यान-योग में बैठे तब इन्द्रियों और मन को समाहित करके नेत्रों को बन्द करे तथा मस्तिष्क को ढीला छोड़ दे। भ्रूमध्य में एक प्रकार की शान्त, मधुर और कोमल सी दृष्टि डाले। एक प्रकार के अलौकिक दिव्य प्रकाश की भावना पैदा करे अथवा कल्पना सी करे। इस भावना के आधार पर कुछ काल के अभ्यास से एक दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होगा। यह दिव्य ज्योति क्या है और किसकी है? यह दिव्य ज्योति वास्तव में सूक्ष्म नेत्र या दिव्य नेत्र की ज्योति है। जब स्थूल नेत्र खुले होते हैं तब ये स्थूल नेत्र बाहिर के पदार्थों को दिखाते हैं। वास्तव में इन स्थूल नेत्रों में जो प्रकाश आया है वह सूक्ष्म नेत्र का ही है। इनके बन्द होने पर सूक्ष्म नेत्र भीतर के पदार्थों को दिखाने लगता है। स्थूल नेत्रों से जब हम बाहिर के पदार्थों को देखते हैं तब बाहिर का प्रकाश—सूर्य, चन्द्र, दीपकादि सहायक होते हैं और जब स्थूल नेत्रों को बन्द कर लेते हैं तब सूक्ष्म नेत्र के देखने में अन्दर के आलोक सहायक होते हैं। वे भीतर के आलोक कौन से हैं? स्थूल शरीर में जो अग्नि तेज के रूप में सहकारी उपादान कारण बना वह तेज हमारे शरीर के भीतर अग्नि के रूप में भी विद्यमान है। दूसरा तेज रूप तन्मात्रा भी हमारे भीतर है। ये ही अन्दर के स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के पदार्थों को दिखाने में सहायक होंगे। इस अभ्यास के अन्दर एक और 'विशोका ज्योतिष्मती'

नामक बुद्धि उत्पन्न होती है जो ग्रन्दर के ग्रतीन्द्रिय पदार्थों का यथार्थ साक्षात्कार करवाने में सहायक होती है। योगदर्शन में 'विशोका वा ज्योतिष्मती' इसका लक्षण बताया है। इसका भावार्थ यह है कि इस ग्रभ्यास से बुद्धि ग्रत्यन्त ज्ञानयुक्त ग्रौर प्रकाशयुक्त हो जाती है ग्रौर पदार्थों के स्वरूप का यथार्थ निर्णय देने में समर्थ हो जाती है। इस प्रकार की बुद्धि या सूक्ष्म नेत्र का दिव्य प्रकाश भ्रू मध्य में ग्रनुभव होने लगता है। यदि जिज्ञासु नेत्र खोलकर भ्रू मध्य में ध्यान करता है तब भी उसे यह ज्योति दिखाई देती रहती है। ग्रांख खोलकर जो ध्यान किया जाता है उसे 'उन्मुनी मुद्रा' कहते हैं। यदि 'उन्मुनी मुद्रा' द्वारा योगी ग्रन्दर प्रवेश नहीं करना चाहता तब वह नेत्र बन्द करने से जो ग्रन्दर विशोका नाम की ज्योतिष्मती बुद्धि उत्पन्न हुई है उस ज्योति को लेकर सूक्ष्म नेत्र से शरीर में प्रवेश करे। यदि वह सूक्ष्म शरीर में प्रवेश नहीं करना चाहता ग्रौर स्थूल शरीर के भीतर के पदार्थों को देखना चाहता है तब वह इसी ज्योति से या विशोका नाम की ज्योतिष्मती बुद्धि के प्रकाश से स्थूल शरीर के भीतर हृदय, ग्रस्थि, मज्जा, मेद, नस, नाड़ियां, ज्ञानवाहक सूक्ष्म तन्तुग्रों का साक्षात्कार कर सकता है। चक्र-विज्ञान, प्राण-विज्ञानादि को भी देख सकता है, समझ सकता है ग्रौर उनका साक्षात्कार कर सकता है। इसके ग्रनन्तर स्थूल शरीर का भान या ग्रध्यास समाप्त होने लगता है ग्रौर योगी ग्रपने को ऐसा समझने लगता है मानो इस दिव्य ज्योति से उसका सारा शरीर देदीप्यमान होगया है। ऐसा ग्रनुभव होने लगता है मानो ग्रब वह हाड़-मांसादि के शरीर से ऊपर उठ गया है ग्रौर उसका शरीर दिव्यज्योतिर्मय होगया है। वह ग्रत्यन्त स्वच्छ, निर्मल तथा सात्विक भावनाग्रों से भरपूर होगया है।

सूक्ष्म शरीर में प्रवेश——स्थूल शरीर के भीतर के पदार्थों का साक्षात्कार कर चुकने के बाद इसी दिव्य ज्योति के सहारे सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करे। यह १७ तत्त्वों का बना हुग्रा है, ग्रर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ तन्मात्रा, मन ग्रौर बुद्धि। कई ग्राचार्यों ने पंच तन्मात्राग्रों के स्थान पर पंच प्राणों को लिया है परन्तु पंच प्राणों की यहां कोई उपयोगिता नहीं है क्योंकि सूक्ष्म प्राण तो सदा ही सूक्ष्म शरीर में रहता ही है। इसलिए इन स्थूल प्राणों की ग्रावश्यकता सूक्ष्म शरीर को नहीं रहती। ये तो वायु महाभूत का कार्य होने से इस स्थूल शरीर के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। सब ग्राचार्यों ने इस शरीर को पांचभौतिक माना है। इन पंचभूतों में प्राण के रूप में पांचवां भूत वायु है। यह प्राण रूप से इस शरीर की रचना में सहकारी कारण रूप से प्रविष्ट हुग्रा है। हमने स्थूल प्राण को सूक्ष्म शरीर में स्थान नहीं दिया है। इनके स्थान में हमने पंचतन्मात्रा को सूक्ष्म शरीर में माना है क्योंकि पंचतन्मात्रा सूक्ष्म शरीर के निर्माण में उपादान कारण हैं। जिस प्रकार पंचभूत स्थूल शरीर के निर्माण में उपादान कारण हैं उसी प्रकार पंचतन्मात्राएं सूक्ष्म शरीर के निर्माण में उपादान कारण हैं। ग्रतः पंचप्राणों का सूक्ष्म शरीर में मानना निरर्थक है। जो सूक्ष्म शरीर में पंचप्राण मानते हैं उनसे पूछना चाहिए कि इस सूक्ष्म शरीर के निर्माण में उपादान कारण क्या है? वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते।

सूक्ष्म शरीर का निर्माण——ग्रब ग्रापको यह बताया जाता है कि इस सूक्ष्म शरीर का निर्माण कैसे होता है। जब ईश्वर के सान्निध्य से ब्राह्मी सृष्टि की उत्पत्ति

होती है तब उसमें तीन प्रकार की आहंकारिक सृष्टि उत्पन्न होती है—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक तथा राजस अहंकार दोनों मिलकर समष्टि मन को उत्पन्न करते हैं और सत्वप्रधान अहंकार से समष्टि ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है और रजःप्रधान अहंकार से कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। मुख्य रूप से तमःप्रधान अहंकार और गौण रूप से राजस और सात्विक अहंकार पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति करते हैं। मन, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों में भी दूसरे अहंकार गौण रूप से सहकारी उपादान कारण बनते हैं अर्थात् मन के निर्माण में सत्व और रज प्रधान किन्तु तम गौण रूप में सहायक उपादान कारण हैं, ज्ञानेन्द्रियों के निर्माण में सात्विक अहंकार प्रधान किन्तु राजस और तामस गौण रूप से हैं, कर्मेन्द्रियों के निर्माण में रजःप्रधान अहंकार मुख्य और सात्विक तथा राजस अहंकार गौण रूप से सहकारी उपादान कारण हैं। इन समष्टियों से व्यष्टि की उत्पत्ति होती है। तमःप्रधान अहंकार से उत्पन्न हुई तन्मात्राएं अथवा सूक्ष्म भूत इस शरीर के निर्माण में उपादान कारण हैं। इसके पश्चात् इन पंचतन्मात्राओं से पंच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं और स्थूल शरीर का निर्माण करते हैं। इन पंचतन्मात्राओं से निर्मित सूक्ष्म शरीर संकोच-विकास वाला होता है। जिस किसी शरीर में यह प्रवेश करता है उसी के आकार-प्रकार का बन जाता है। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त जितने भी शरीरों में यह प्रविष्ट होता है उन्हीं के बराबर छोटा अथवा बड़ा बन जाता है। हाथी के शरीर में प्रविष्ट होगा तो विकास भाव को प्राप्त होकर बड़ा हो जाएगा और चींटी में प्रवेश करेगा तो सूक्ष्म भाव को प्राप्त होकर छोटा हो जाएगा। नवजात बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है त्यों-त्यों यह सूक्ष्म शरीर भी विकास भाव को प्राप्त होता जाता है और उसी के आकार के समान बढ़ जाता है। शरीर में जो स्थूलेन्द्रियां—हाथ, पैर, आंख, नाकादि हैं ये बाहिर के गोलक हैं, ये स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में असमर्थ हैं। इस स्थूल शरीर के अन्दर जो सूक्ष्म शरीर है, उसके अन्दर जो सूक्ष्मेन्द्रियां हैं, वे ही इन स्थूल इन्द्रियों को कर्म और ज्ञान करवाती हैं। मृत्यु के समय यह सूक्ष्म शरीर ही धर्माधर्म के संस्कारों को लेकर पुनर्जन्म धारण करवाने के लिए गमन करता है। सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर का सदा संयोग-सम्बन्ध बना रहता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर का सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का कारण शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है। जब तक स्थूल शरीर रहेगा तब तक इसमें सूक्ष्म शरीर अवश्य रहेगा और जब तक सूक्ष्म शरीर रहेगा तब तक कारण शरीर भी इसके साथ रहेगा, क्योंकि पाप और पुण्य के, धर्म और अधर्म के संस्कार चित्त में रहते हैं और चित्त कारण शरीर में रहता है।

योगी का सूक्ष्म शरीर में प्रवेश—जब योगी आत्मा के पास पहुंचना चाहता है अथवा जब आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है तब उसे स्थूल शरीर का भान अथवा अध्यास जाता रहता है। उसका विस्मरण हो जाता है। तभी यह सूक्ष्म शरीर में प्रवेश पाता है। इस समय उसे ऐसी अनुभूति होती है जैसे कि उसका सारा शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होगया हो। इसके देदीप्यमान सूक्ष्म शरीर के लिए योगदर्शनकार ने इस सूक्ष्म शरीर के दर्शन का इस प्रकार वर्णन किया है–'मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।' मूर्द्धा में बहुत काल तक ध्यान करने से आकाश में गमन करने वाले सूक्ष्मशरीरा-

भिमानी योगियों के दर्शन होते हैं। ध्यान काल में दिव्यशरीरधारी स्वर्गनिवासी भगवान् कृष्ण या शंकर अथवा विष्णु भगवान् या अन्य योगी अथवा गुरुजन भले ही वे दिव्य लोक वासी हों उन सबके दर्शन होते हैं। जिस प्रकार यह स्थूल सृष्टि पंच-भूतों के लोक में विद्यमान है उसी प्रकार सूक्ष्म सृष्टि पंचतन्मात्रा के लोक में सूक्ष्म-शरीराभिमानियों की विद्यमान है।

पंचतन्मात्राओं का लोक—सूक्ष्मशरीराभिमानियों की सूक्ष्म सृष्टि पंच-तन्मात्राओं के लोक में, इस दिव्य तन्मात्रा के लोक में सूक्ष्मशरीराभिमानी व्यक्ति सूक्ष्म जगत् के भोगों को भोगता है क्योंकि यह भी भोगप्रधान स्थान ही है। यहां केवल संकल्प मात्र से ही दिव्य गंध, दिव्य रूप, दिव्य रसादि की उपलब्धि होती है। किसी प्रकार के प्रयत्न विशेष की आवश्यकता नहीं होती। यह भी एक प्रकार से भोगप्रधान योनि ही है। इसमें सत्व प्रधान होता है। स्थूल जगत् में भी पशु-पक्षी आदि भोग-योनियां हैं। इनमें तम प्रधान होता है। भोग की दृष्टि से ये दोनों समान हैं। केवल सत्वगुण तथा तमोगुण का ही भेद है। पंचतन्मात्राओं के लोक में जो सूक्ष्म-शरीराभिमानी योनियां हैं वे सत्वप्रधान हैं और स्थूल जगत् में पशु-पक्षी आदियों की योनियां तमःप्रधान हैं। ये स्वर्गवासी दिव्य आत्माएं दिव्य तन्मात्राओं का उपभोग करके अनेक मन्वन्तरों के पश्चात् इसी मानव देह को धारण करके परम वैराग्य प्राप्त करते हैं जिसके कारण दिव्य भोगों से भी विरक्त होकर उस परमधाम को प्राप्त करते हैं जहां किसी भी प्रकार का भोग नहीं है। वहां किसी शरीर का सम्बन्ध नहीं रहता है। न सूक्ष्म शरीर से कुछ सम्बन्ध होता है और न कारण शरीर से ही। यही वास्तव में यथार्थ मोक्ष है जहां न भोग है, न सुख है और न दुःख है। वहां न राग है न द्वेष है। वहां अन्तःकरण का कोई धर्म नहीं। उस समय आत्मा की स्व-स्वरूप में स्थिति होती है। इसी को कैवल्य भाव कहा गया है। यह कैवल्य भाव जब तक ३६ हज़ार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय नहीं हो जाती तब तक बना रहता है।

मैं आपको उस श्रेय-पथ पर ले जाना चाहता हूं, जिसका मैंने आपसे अभी-अभी ज़िक्र किया था। यही वास्तविक कल्याण का मार्ग है। यही आत्म-ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है और इसी मार्ग पर चलकर ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती हैं। इसी से निवृत्ति की ओर प्रवृत्ति होगी और इसी पथ के पथिक बनने से सर्व दुःखों से विमुक्त हो सकोगे।

आत्म-प्राप्ति के प्रथम दुर्ग को पार करके अब हम इसके दूसरे दुर्ग सूक्ष्म शरीर में प्रवेश पा चुके हैं। जिस अवस्था या ध्यान काल में तुम्हारा शरीर तुम्हें तेजोमय प्रतीत होने लगे उस समय पूर्ण-रूपेण सूक्ष्मशरीर में अपनी स्थिति की भावना करें। इस समय नाना प्रकार के सूक्ष्म दृश्य सामने आने लगते हैं। अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण वन, उपवन, नदियां, झरने, स्रोतादि तथा विविध प्रकार के तेजोमय दिव्य प्रकाश, दिव्य पुरुष, आकाश में गमन करते हुए जटाधारी महापुरुष अथवा दिव्य आत्माएं दृष्टिगोचर होती हैं। इस सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म जगत् के अनेक पदार्थ ध्यान तथा समाधि में योगी को दिखाई देते हैं। योगी को इन दृश्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अपितु अपनी सूक्ष्म मेधा से अनुसंधानपूर्वक वास्तविक विज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

जिन सूक्ष्म शरीरों ने अभी जन्म धारण नहीं किया, जिनके लिए अभी देश, काल, सामग्री या माता-पिता आदि भोक्तव्य साधन उपस्थित नहीं हुए, वे सूक्ष्म-शरीराभिमानी भी आकाश में विचरते रहते हैं तथा स्वर्गवासी दिव्यशरीराभिमानी भी गगनमण्डल में विचरा करते हैं। इनमें परस्पर क्या अन्तर है? इनका गमनागमन आकाश मण्डल में क्यों होता है? इसका विज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। जैसे इस लोक में स्थूल पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करके उनका ठीक-ठीक उपयोग किया जाता है, इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् के पदार्थों का तथा सूक्ष्म शरीर का विज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए और इनके उपयोग का भी ज्ञान होना चाहिए। इस सूक्ष्म शरीर में प्रवेश पाने के बाद आत्म-विज्ञान का प्रारम्भ होता है, क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है और सूक्ष्म शरीर के पदार्थ भी अतीन्द्रिय हैं। इन पदार्थों को देखने, समझने और साक्षात्कार करने से बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म और ऋतम्भरा बन जाती है। यही आत्म-साक्षात्कार करवाने में मुख्य हेतु होती है। अतीन्द्रिय तथा सूक्ष्म पदार्थ मोटी बुद्धि के साधारण पुरुष के न देखने में आते हैं और न वह इन्हें समझ ही सकता है। मन, बुद्धि, चित्त तथा सूक्ष्मेन्द्रियादि का व्यवहार तो नित्यप्रति करते हैं किन्तु इनके विज्ञान से हम अनभिज्ञ हैं। इस विज्ञान को योगी सूक्ष्म शरीर में प्रवेश पाकर ही प्राप्त कर सकता है क्योंकि ये मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म शरीर के ही अंग हैं। इनका और सूक्ष्म शरीर का अंगांगीभाव है। जब योगी सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तब इन सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों का साक्षात्कार करता है।

ब्रह्मरंध्र प्रवेश—इस सूक्ष्म शरीर में योगी को सर्वप्रथम ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करना चाहिए। यहां पर सबसे पहिले उसे ज्ञान और कर्मेन्द्रियों के केन्द्र दृष्टिगोचर होंगे। ये छोटी-छोटी तारिकाओं के समान दिखाई देंगे। इनसे छोटी-छोटी सूक्ष्म किरणें सी निकलती हुई दिखाई देती हैं। इस स्थान में ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां, मन और बुद्धि सभी प्रकाशमय हैं। इन सबसे दिव्य ज्योतियां निकलती रहती हैं। जब योगी इनके पारस्परिक व्यवहार को होते हुए देखता है तब इनकी गतियों और व्यापारों को देखकर महान् आश्चर्य करता है। इन सबका व्यापार अत्यन्त शीघ्र होता है। एक ही क्षण में सारा व्यापार सम्पन्न हो जाता है। इतने सूक्ष्म समय में इनकी गति और व्यापार को देखना, समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योंकि ये सब एककालावच्छेदेन सब अपने-अपने कर्म और व्यापार में लगे रहते हैं। इनका सब व्यापार होता तो क्रमपूर्वक ही है किन्तु यह सब अत्यन्त द्रुतगति से होता है और देखने वाले को आलातचक्र के समान ऐसा मालूम होता है मानो एक ही समय में एक ही क्षण में यह सब कुछ एक साथ ही हो रहा है। योगी को अपनी ध्यानावस्था में किसी स्थूलेन्द्रिय के व्यापार को स्वयं देखना चाहिए। ध्यानावस्था में वह जिह्वा के व्यापार को भली प्रकार से प्रत्यक्ष कर सकता है। जिह्वा को तालू से स्पर्श करके ब्रह्मरंध्र में दिव्य दृष्टि से देखे कि वहां सूक्ष्मस्पर्शेन्द्रिय पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है और किस प्रकार इसमें कम्पन, गति तथा स्पन्दन हो रहा है, किस प्रकार स्थूलेन्द्रिय ने विषय को ग्रहण करके सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय को दिया है। फिर मन ने इस स्पर्श रूप विषय को लेकर बुद्धि को प्रदान करके एक क्षणार्ध से भी कम समय में बुद्धि से यह निर्णय करवाकर कि यह किस वस्तु का कैसा स्पर्श है इसको पुनः सूक्ष्मेन्द्रिय

श्रौर तत्पश्चात् स्थूलेन्द्रिय के द्वारा बाहिर फैंक देता है। इस प्रकार से विषय के ज्ञान का कर्म व्यापार प्रत्यक्ष ग्रनुभव करके देखने से पदार्थों के साक्षात्कार के साथ-साथ ग्रात्म-दर्शन की योग्यता भी प्राप्त हो जाएगी।

जब योगी समाधि की ग्रवस्था में होता है तब स्थूलेन्द्रिय पर बाहिर के विषय का जब ग्राघात होता है तब इस विषय का प्रभाव स्थूलेन्द्रिय के ज्ञान ग्रौर गतिवाहक सूत्रों पर पड़ता है। ये उस विषय को लेकर ब्रह्मरंध्र में जाकर सूक्ष्मेन्द्रियों पर फैंक देते हैं। इन ज्ञान ग्रौर गतिवाहक तन्तुग्रों में वह विषय परिणाम भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म तन्मात्रा के रूप में हो जाता है। तभी सूक्ष्मेन्द्रियां इसे ग्रहण करती हैं। सूक्ष्मेन्द्रियां इस विषय को लेकर क्रियाशील हो जाती हैं। इनके कम्पनों का प्रभाव मन पर पड़ता है ग्रौर मन इनके कम्पनों के बिम्ब को ग्रहण करके बुद्धि के मण्डल में गतिशील हो जाता है तथा बुद्धि उस प्रतिबिम्बित मन के विषय का निर्णय क्षणार्ध में ही कर देती है। विद्युत् की चमक के समान यह सब मन ग्रौर बुद्धि का व्यापार होता है। मन इस व्यापार का ज्ञानयुक्त संस्कार हृदय में फैंक देता है, शेष निर्णय किए हुए विषय को पुनः उसी क्रम से बाहर फैंक देता है जिस क्रम से इस विषय ने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया था। बाहिर पहुंच कर यह विषय इन्द्रियों ग्रौर शरीर के भोग का विषय बन जाता है ग्रौर यही सुख-दुःख, धर्माधर्म का हेतु बनता है।

कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि के ज्ञान की ग्रावश्यकता—कर्मेन्द्रियां कर्म को करवाती हैं ग्रौर ज्ञानेन्द्रियां ज्ञान को करवाती हैं। यह ज्ञान ग्रौर कर्म का समन्वय है। ब्रह्मरंध्र में ग्रथवा सूक्ष्म शरीर में इनके साथ मन ग्रौर बुद्धि के व्यापार का साक्षात्कार होता है। इनके विज्ञान से ही बुद्धि ऋतम्भरा बनती है। ग्रागे चल कर यही ऋतम्भरा ग्रात्म-साक्षात्कार करवाने में समर्थ होती है। ग्रात्मा ग्रत्यन्त सूक्ष्म है। इसके दर्शन ग्रौर ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की ग्रावश्यकता है। चिरकाल तक ब्रह्मरंध्र में ग्रभ्यास करने से ब्रह्मरंध्रगत सूक्ष्म पदार्थों के साक्षात्कार से समाधि की ग्रवस्था में मेधा ग्रत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती है ग्रौर ग्रात्म-साक्षात्कार करवाने के योग्य हो जाती है।

सूक्ष्म शरीर का निर्माण ग्रौर उसका कार्य

इस लोक में जिस प्रकार माता-पिता के रज ग्रौर वीर्य से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार से सूक्ष्म जगत् में सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति नहीं होती। भले ही माता-पिता के रज ग्रौर वीर्य से शरीर उत्पन्न होते हों परन्तु इस रज-वीर्य में भी तो पृथ्वी, जल, ग्रग्नि, वायु तथा ग्राकाश के सूक्ष्म ग्रंश हैं। इन भूतों के बने हुए ग्रन्नादि पदार्थ ही तो रज ग्रौर वीर्य को बनाते हैं, इसलिए वास्तव में पंचभूत ही शरीरों के निर्माण में उपादान कारण हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में सूक्ष्म पंचतन्मात्रा सूक्ष्म शरीर के उपादान कारण हैं—जिस प्रकार माता-पिता स्थूल शरीर को बनाने में हेतु हैं इस प्रकार यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सूक्ष्म जगत् में भी सूक्ष्मशरीराभिमानी ग्रात्माएं सूक्ष्म शरीरों को जन्म देती होंगी। वहां ऐसा नहीं होता क्योंकि वहां कोई ऐसा संसार नहीं है जहां माता-पिता हों ग्रौर पुत्र-पुत्रियां भी हों। फिर तो इस लोक ग्रौर स्वर्गलोक या सूक्ष्म जगत् में कोई ग्रन्तर ही नहीं रहेगा। जब ईश्वर के सन्निधान

से ब्राह्मी सृष्टि की उत्पत्ति होती है तब स्वयं ही पंचतन्मात्राएं सूक्ष्म शरीर के निर्माण में प्रवृत्त हो जाती हैं। जिस प्रकार ये अन्य पदार्थों का निर्माण करती हैं इस प्रकार सूक्ष्म शरीरों का भी निर्माण करती हैं। जैसे माता-पिता इहलोक में निमित्त कारण हैं उसी प्रकार सूक्ष्म जगत में केवल सन्निधान मात्र से अथवा अपने सर्वव्यापक भाव से ब्रह्म निमित्त कारण होता है तथा पंचतन्मात्राएं उपादान कारण होती हैं। सूक्ष्म जगत् में माता-पिता की जरूरत नहीं है। वहां तो केवल चेतन ब्रह्म ही निमित्त कारण है। आप कहेंगे कि वे देवता क्यों न इस कार्य को कर दें जो सूक्ष्म जगत् में निवास करते हैं? नहीं, ऐसे नहीं हो सकता। वहां जो भी आत्माएं रहती हैं उनका स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी अथवा माता-पिता के समान कोई सम्बन्ध नहीं होता। बेटे-बेटियों आदि के सम्बन्ध तथा सारे संसार के भोग-विलासों से विरक्त होने के पश्चात् इन्होंने देवत्व लाभ किया है, फिर इसी झगड़े में क्यों फंसें? अतः वहां इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। वहां स्त्री तथा पुरुष में कोई भेदभाव नहीं है। वहां पर भोग-विलास की कोई बात नहीं। ये सूक्ष्म शरीर हमारे ही शरीरों में से निकलकर सूक्ष्म लोक में जाते हैं। वहां और नए सूक्ष्म शरीर उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता है? सृष्टि के आदि-काल में सब सूक्ष्म शरीर ब्राह्मी सृष्टि में ब्रह्म के सान्निध्य से उत्पन्न हो ही चुके थे, अतः इन सूक्ष्म शरीरों को पुनः उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

ब्रह्मरंध्र में इन्द्रियों के स्वरूप और मन तथा बुद्धि के स्वरूपों का साक्षात्कार करके इन पर पूरा अधिकार हो जाने पर ही वशीकारसंज्ञा वैराग्य उत्पन्न होता है। इस वैराग्य का वर्णन पूर्व कर चुके हैं। सूक्ष्म शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके यदि वशीकारसंज्ञा वैराग्य उत्पन्न न हो तब साधक में दिव्य भोगों के भोग की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, इसलिए योगी के लिए यह आवश्यक है कि वह इन दिव्य भोगों के प्रति भी विरक्त हो जाए। जिस प्रकार स्थूल भोगों को बंध का कारण समझकर त्याग दिया था उसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में पहुंचकर इन सूक्ष्म दिव्य भोगों के प्रति भी वैराग्य-भावना अत्यन्त आवश्यक है। उपरोक्त दोनों प्रकार के भोगों के प्रति तीव्र वैराग्य हो जाने पर ही मोक्ष-लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इन दिव्य भोगों का वर्णन श्री मुहम्मद तथा श्री ईसामसीह ने भी किया है। हमारे इतिहास, पुराण, दर्शन, उपनिषदादि ने भी इनका बड़ा विशद् वर्णन किया है। किन्तु चारवाक तथा भौतिक विज्ञानवादी इन दिव्य भोगों को नहीं मानते हैं। हम इनसे कहते हैं कि आपने मन के स्वरूप को तो देखा नहीं है किन्तु आप इसको व्यवहार में लाते हो। इसी प्रकार ये सूक्ष्म पदार्थ, बुद्धि, सूक्ष्म कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियादि का व्यवहार तो आप करते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से आपने इन्हें देखा नहीं है और नाही ये किसी मशीन का विषय हैं और न किसी प्रकार के प्रतिबिम्ब का। इसी प्रकार स्वर्ग और स्वर्ग के विषय भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। ये आपकी स्थूल आंखों का विषय नहीं बन सकते। इनको सूक्ष्म दिव्य नेत्रों से ही देखा जा सकता है, समझा जा सकता है। पश्चिम के भौतिक विज्ञानवादी अपने विविध विज्ञानों और इन भूतों के कार्यात्मक भोगों से बहुत परेशान होगए हैं, तंग आ गए हैं। इन्हें सर्वत्र विनाश ही विनाश दिखाई दे रहा है। वे लौकिक भोगों से सन्तप्त हो उठे हैं। सुख और शान्ति का एकमात्र मार्ग ईश्वरभक्ति ही है।

पश्चमीय विद्वान् सुख और शान्ति के लिए भारत के योगियों की ओर निर्निमेष नेत्रों से निहार रहे हैं। उनमें योग सीखने के लिए उत्कट अभिलाषा जागृत हो चुकी है। उनके अन्दर तीव्र जिज्ञासा है परन्तु वे अभी तक योग के महत्व और स्वरूप को नहीं समझ सके हैं। वे अभी तक केवल आसनों को ही योग समझे बैठे हैं। आसन तो अष्टांग योग का केवल एक अंग है। शेष सात अंगों के ज्ञान से वे नितान्त शून्य हैं। भारत में भी ऐसे लोगों की कुछ कमी नहीं है। योग का वास्तविक अर्थ तो चित्त-वृत्ति निरोध करके आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार है। वह समय दूर नहीं है जब कि दूसरे देशों के लोगों में भी धारणा, ध्यान, समाधि के विषय में भी जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वे इसकी पूर्ति के लिए, अपने दुःखों से मुक्ति लाभ करने के लिए और भौतिकवाद से छुटकारा पाने के लिए भारत के योगियों की शरण में आएंगे। हम स्वर्गाश्रम में १ नवम्बर से ३० मार्च तक ५ महीने का साधना-शिविर लगाते हैं और गंगोत्री में १५ जून से १५ सितम्बर तक साधना होती है। अब तक सहस्रों भारत-वासियों तथा कितने ही विदेशियों ने इससे लाभ उठाया है, आध्यात्मिक उन्नति की है और कईयों ने आत्म-ज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान लाभ किया है। इन शिविरों में प्रायः विदेशों से लोग आते रहते हैं और तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि विदेशियों के अन्दर भी योग सीखने की जिज्ञासा है। विदेशों में हमारे ब्रह्मरंध्र का प्रायः उपहास हुआ करता था परन्तु जब से वे हमारे साधना-शिविरों में प्रविष्ट हुए और अभ्यास प्रारम्भ किया और ध्यान काल में दिव्य ज्योति प्राप्त की तब से इन्हें अपनी भूल और अज्ञानता पर पश्चात्ताप हुआ। भारत आदि-काल से अध्यात्म-विज्ञान में विश्व-गुरु रहा है और अब इस पतन के युग में भी यह सारे संसार को अध्यात्म-सुधा पिला सकता है। आज भी अपने वैज्ञानिक आविष्कारों के मद में चूर किन्तु आध्यात्मिकता से कोसों दूर विदेशी भारत में आते हैं और सन्तुष्ट होकर जाते हैं। हमने विदेशियों में एक विशेषता देखी है, वह यह कि ये लोग जिस कार्य को करना चाहते हैं उसमें पूरी तरह से जुट जाते हैं और उसे करके ही सांस लेते हैं। मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद होता है कि हमारे भारतीयों में इस गुण का सर्वत्र अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

इस उपदेश को सुनने वालों में कई ७०-८० वर्ष के हो चुके हैं और उन्होंने सभी लौकिक भोग भोग लिए हैं। वे अब इस बात का निश्चय करें कि वे अपना शेष जीवन आत्म-ज्ञान प्राप्त करने में लगाएंगे। अब आप लोगों का निवास घर में नहीं होना चाहिए। अब आपका निवास वानप्रस्थाश्रमों में होना चाहिए, जहां पर आप नित्य महापुरुषों का सत्संग करें। अभ्यास और साधना करें। तप, त्याग, भक्ति तथा भजन करें। वहीं पर आपको यथार्थ शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा। उन आश्रमों में आप जाएं जहां सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाता है। जितेन्द्रिय बनना सिखाया जाता है। जहां आचार की शुद्धता तथा व्यवहार की पवित्रता की शिक्षा दी जाती है। जीवन में एक प्रकार की क्रांति पैदा की जाती है। आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधन बताए जाते हैं।

मैं तो बहुत वर्षों के पश्चात् हिमालय से उतर कर इधर आया हूं, और आया इसलिए हूं कि आपको अध्यात्म-ज्ञान तथा योग द्वारा आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान का ढिंढोरा पीट कर अपना सन्देश सुनाऊं और चेतावनी देकर सावधान करूं कि 'अयन्तु

परमो धर्मः यत्योगेनात्मदर्शनम् ।' आप जागो, अब कुंभकर्ण निद्रा का त्याग करो, चेतो, बहुत समय बीत गया है, थोड़ा ही शेष रहा है। कम से कम इसे तो हाथ से मत निकलने दो। इसे भगवच्चरणारविन्दों में अर्पण करो। उसके चरणों में आत्म-समर्पण करो और शाश्वत सुख लाभ करो।

कारण शरीर में प्रवेश और उसका ज्ञान

सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करने की विधि और उसमें जो पदार्थ हैं उनके साक्षात्कार की विधि आपको बताई जा चुकी है। आज आपको हृदयस्थ कारण शरीर में प्रवेश करने की विधि बताने का प्रयत्न किया जाएगा। कारण शरीर में ६ पदार्थ हैं :—जीवात्मा, चित्त, अहंकार, सूक्ष्म प्राण, सूक्ष्म प्रकृति और ब्रह्म। ब्रह्म ने इन सब पदार्थों को आच्छादित किया हुआ है। जब योगी कारण शरीर में प्रवेश करता है तब उसके सामने एक महान् दिव्यालोक आता है। उसे समाधि की अवस्था में अनुभव होता है कि मेरा यह दिव्य कारण शरीर एक महान् प्रकाश का पुंज है, देदीप्यमान है और ज्योतिस्वरूप है। सूक्ष्म प्राणों के रूप में अन्दर से निकलती हुई जीवनी शक्ति का अनुभव करता है। थोड़ा आगे बढ़ने पर चित्त और आत्मा के ऊपर अहंकार का आवरण दृष्टिगोचर होता है। तब योगी अपने ध्यान बल अथवा समाधि बल से इस आवरण को हटा देता है और इसका उल्लंघन करके आगे बढ़ता है। तब वह स्वच्छ, पवित्र, स्फटिक के समान निर्मल, सत्वप्रधान चित्त में प्रवेश करता है और बहुत काल तक अभ्यास द्वारा चित्त पर पड़े अनेक संस्कारों के आवरण को छिन्न-भिन्न करके जब चित्त बिलकुल निर्मल हो जाता है तब वह इसमें आत्मतत्त्व की खोज करता है। इस अवस्था का नाम संप्रज्ञात समाधि है। इसमें मलिन संस्कारों को हटा कर चित्त को शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि चित्त में दोनों प्रकार के संस्कार विद्यमान रहते हैं। इनसे चित्त में सदा विक्षोभ बना रहता है। निरोध करने से मलिन संस्कार दब जाते है, केवल शुद्ध संस्कार ही शेष रह जाते हैं। जब तक चित्त और आत्मा का सम्बन्ध होता है तब तक संस्कार तो रहते ही हैं और ये प्रवृत्ति का हेतु होते हैं। शुद्ध संस्कार विशेष रूप से आवरण का हेतु नहीं होते अपितु ये चित्त में सात्विकता उत्पन्न करने और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधन होते हैं। आत्म-साक्षात्कार होने पर इनका असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा परम वैराग्य से निरोध होगा। इस अवस्था में चित्त के सत्वप्रधान होते हुए भी इसमें आत्मा की खोज करने में देर लगती है। आत्मा की अपेक्षा चित्त अत्यधिक विस्तृत होता है। इसमें आत्मा को ढूंढना विशाल सरोवर में पड़ी हुई हीरे की कणी को ढूंढने के समान है। गोताखोर यत्र-तत्र-सर्वत्र गोते लगाते हैं, बहुत गहरे जाते हैं, तब कहीं किसी अज्ञात स्थान में वह सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त प्रकाशमान हीरे की कणी प्राप्त होती है। इसी प्रकार इस चित्तरूपी सरोवर में आत्मारूपी हीरे की कणी की खोज करना कोई साधारण बात नहीं है। आप चित्त को करोड़ परमाणुओं का एक समुदाय समझें और इस परमाणु राशि में एक अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुरूप आत्मा को समझें। यह आत्मा विजातीय होने से ही दर्शन का विषय बन जाएगा क्योंकि इसका रंग-रूप, आकार-प्रकार, प्रभा और प्रकाश तथा चेतनत्व चित्तस्थ करोड़ों परमाणुओं से भिन्न प्रकार का है। यदि अन्य परमाणुओं के समान ही यह भी होता तो इसको देखना, अनुभव करना, इसकी प्राप्ति तथा दर्शन

दुर्लभ नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो जाते। चित्त की सात्विकता भी आत्मा पर एक आवरण रूप ही होती है, अतः आत्म-दर्शन में समाधि की अवस्था में भी एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है। चित्त स्वयं सर्वत्र एक ही समान, स्वच्छ, निर्मल, पवित्र तथा सत्वप्रधान होता है। इसमें आत्मा को ढूंढे तो कहा ढूंढे ! ऐसी स्थिति में समाधिस्थ योगी अपनी दिव्य दृष्टि से इस चित्त के उस स्थान में देखे जहां से चित्त में सूक्ष्म गति, क्रिया, ज्ञान, चेष्टा तथा क्षोभ प्रारंभ हो रहे हों। जिस स्थान से गति प्रारंभ हो रही हो उसे ही आत्मा का निवासस्थान समझना चाहिए। अत्यन्त सूक्ष्म और गहन संम्प्रज्ञान की दिव्य दृष्टि से चित्त के केन्द्र में आत्मा को देखे। यही आत्मा के साक्षात्कार का मुख्य स्थान है। यहां ही चित्त-संयुक्त या चित्त-विशिष्ट आत्मा का साक्षात्कार होता है। अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। चित्त और आत्मा दोनों सूक्ष्म प्रकृति के कारणरूप कोष या गर्भ में स्थित होते हैं। यदि इस कारण-रूप आवरण को योगी अपनी समाधि की दिव्य सूक्ष्म दृष्टि से भेदन कर दे तो अत्यन्त समीप उस ब्रह्म का भी साक्षात्कार करके ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है। यह अत्यन्त समीप ही प्रकृति में व्याप्त होकर ठहरा हुआ है, ऐसा अनुभव होता है अथवा प्रकृति-विशिष्टब्रह्म का दर्शन होता है। इस अवस्था में पहुंचकर योगी अपने आपको कृत-कृत्य समझता है। उसके सब संशयों का विच्छेद हो जाता है। ऐसे ही परमयोगी के लिए उपनिषद् कहता है—'भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः'। अब योगी को जो कुछ प्राप्त करना था वह प्राप्त कर लिया। उसके उद्देश्य की पूर्ति होगई। जीवन लक्ष्य को उसने पूरा कर लिया। अब उसके लिए कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रहा क्योंकि 'यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति।' उस एक को जान लेने से सभी कुछ जान लिया जाता है। वही ब्रह्म ज्ञातव्य है। जब उसको जान लिया तब और ज्ञातव्य शेष ही क्या रहा !

इसके अनन्तर योगी असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा उन चित्तस्थ संस्कारों का अभाव करता है या निरोध करता है जो अनादि काल से रागयुक्त प्रकृति के कार्यकारणात्मक रूप से चले आ रहे हैं। इनको क्षीण करने के लिए धर्ममेघ समाधि के अभ्यास द्वारा उनका भी निरोध करने में योगी समर्थ होता है। इनके निरुद्ध हो जाने से वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। धर्ममेघ समाधि में इन संस्कारों का निरोध होने से जो संचित संस्कार हैं वे भोग देने में असमर्थ हो जाते हैं और अपनी प्रकृति में लौट जाते हैं। आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाएगा तथा कैवल्य भाव को प्राप्त होकर मुक्त हो जाएगा। मैंने आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को आपके लिए सरल, सुगम और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। इस पर आचरण करने से एक ही जन्म में आत्म-साक्षात्कार और ब्रह्म-साक्षात्कार लाभ करके मोक्ष प्राप्त करने के आप अधि-कारी बनेंगे और आवागमन के दुःखद चक्र से छूट जाएंगे।

सेठ जुगलकिशोरजी बिरला का नित्य महाराजजी के पास समागम

सेठ जुगलकिशोरजी बिरला नित्यप्रति प्रातः ८ बजे तथा दोपहर को १ बजे पूज्य महाराजजी के दर्शनार्थ तथा जिज्ञासासमाधानार्थ आते थे। आर्य जाति की उन्नति और समृद्धि तथा राजनैतिक और आध्यात्मिक विषयों पर प्रायः बातचीत किया करते थे। इनका भगवान् के प्रति बड़ा विश्वास, श्रद्धा और भक्ति थी। वे कहा

करते थे कि जब कभी मुझसे कोई अच्छा कार्य बन पड़ता है उसे मैं भगवान् के चरणों में अर्पण कर देता हूं और जब कभी कोई पाप कर्म मुझसे हो जाता है उसे इसके फलभोग के लिए अपने पास रख लेता हूं। जिस प्रकार भगवान् प्रकृति और इसके कार्यों को प्रेरणा देता है उसी प्रकार मेरे अन्तःकरण को भी वह प्रेरित करता रहता है। पुण्य कर्म सदा भगवान् की प्रेरणा से होते हैं और पाप कर्म मेरी अपनी मूर्खता से। मैं तो अपने को भगवान् के हाथ में एक कठपुतली के समान समझता हूं।

एक दिन सेठजी के, मन की चञ्चलता के अभाव करने के उपाय पूछने पर पूज्य महाराजजी ने उन्हें बतलाया कि चञ्चलता मन का सहज स्वभाव है। जब तक आत्मा का इससे सम्बन्ध रहेगा तब तक इसमें क्रिया या चञ्चलता बनी ही रहेगी। इसे सदा किसी न किसी कर्म या व्यापार में लगाए रखना आवश्यक है। भगवान् की भक्ति, उसका ध्यान, उसकी अर्चना, उसकी पूजा सर्वश्रेष्ठ कर्म हैं। यदि भगवान् के स्मरण में वह लगा रहे तो यह कर्म मुक्ति का हेतु बन जाएगा, अतः आप इसकी चञ्चलता की ओर ध्यान न देकर इसको भगवन्नाम स्मरण में लगाए रखें। यही सर्वदुःखनिवृत्ति और कल्याण का हेतु है। सेठजी के यह पूछने पर कि आप भगवान् को नितान्त निर्गुण मानते हैं, पूज्य गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा, "गुण ही विकार का हेतु बनते हैं, अतः आप भी निर्गुण बनने का प्रयत्न करें। सगुणता बंध का कारण बनेगी और निर्गुणता सदा मुक्ति का हेतु बनेगी।"

श्री बिरलाजी ने जिज्ञासा की कि कर्म और अज्ञान में कौन बंधन का हेतु है? इसका समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने कहा कि ये दोनों ही बंध का हेतु हैं। कर्म संयोग से उत्पन्न होता है और यह संयोग बंध का कारण है। कर्म पांच प्रकार का होता है—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण और गमन। जिसमें ये धर्म या गुण हों वह विकारवान् मानना पड़ेगा, अतः आत्मा और परमात्मा में उपरोक्त पांच कर्म मानना अज्ञान है, इसलिए यह भी बंध का हेतु है क्योंकि इनके द्वारा ही मनुष्य अपने को कर्ता और भोक्ता मान लेता है। वास्तव में आत्मा में कर्तृत्व धर्म नहीं है। जिसमें कर्तृत्व धर्म है वहां भोक्तृत्व धर्म भी मानना पड़ेगा। यह मानना अज्ञान है, अतः कर्म और अज्ञान दोनों ही बंधन का हेतु हैं।

बिरलाजी ने पुनः प्रश्न किया कि आप भगवान् को कर्ता बताते हुए भी सदा मुक्त कहते हैं। इस पर पूज्य महाराजजी ने फरमाया, "जो आचार्य ईश्वर को कर्ता मानते हुए भी सदा मुक्त कहते हैं उनके पूर्व-पक्ष को उठाकर हम ऐसा कभी-कभी कह दिया करते हैं कि आपका भगवान् सृष्टि का कर्ता होते हुए भी सदा मुक्त रहता है, तब हमारा आत्मा भी तो कर्ता होते हुए मुक्त हो सकता है। ऐसे अवसर पर यह भी कह दिया करते हैं कि कर्म बंध का हेतु नहीं है। वास्तव में कर्म आत्मा तथा परमात्मा में नहीं होता। आत्मा के संग से कर्म अन्तःकरण में होता है और इसका आरोप आत्मा में कर दिया जाता है। इसी प्रकार से परमात्मा के संग से कर्म प्रकृति में होता है और आरोप परमात्मा में कर दिया जाता है। इन दोनों का संग होते हुए भी आत्मा और परमात्मा असंग रहते हैं। इनमें गतिरूप धर्म नहीं है। गति का अर्थ है क्रिया या कर्म।" इस प्रकार का ज्ञान-विज्ञान के विषय में वार्त्तालाप श्री सेठ बिरलाजी से दिल्ली में १२ दिन तक होता रहा। ११ अप्रैल सन् १९६४ को महराजजी

ने अपना आठ दिन का प्रवचन और शंका-समाधान समाप्त किया। पूज्य गुरुदेव एक दिन पांच-पांच सात-सात मिनट के लिए अपने शिष्यों और भक्तों को आशीर्वाद देने उनके निवास-स्थानों पर गए। कई भक्तों के आग्रह से एक दिन के लिए आगरा और वृन्दावन भी पधारे। पं० देवधर, ओमप्रकाश सूरी, शान्ता, शीला भी साथ गई थीं। लुधियाना से महाराजजी के शिष्य ला० सत्यप्रकाशजी मित्तल कई दिनों से महाराजजी को लेने के लिए आए हुए थे। दिल्ली में इनके सैंकड़ों भक्त हैं। प्रायः सभी ने भोजनार्थ निमंत्रित किया किन्तु ये कहीं नहीं गए क्योंकि अवकाश ही नहीं मिलता था। दिन का अधिक समय शंका-समाधान और अध्यात्म विषयों पर वार्त्तालाप करने और लोगों को समझाने में व्यतीत होता था। केवल सेठ जुगलकिशोरजी बिरला के निमंत्रण पर बिरला हाऊस में भोजन करने पधारे।

पंजाब भ्रमण—दिल्ली से पंजाब जाने का विचार था। सेठ बिरलाजी ने अपनी कार इन्हें पंजाब जाने के लिए दी, किन्तु महाराजजी को पंजाब में लगभग डेढ़ मास तक रहना था, अतः उनकी कार लुधियाना पहुंच कर लौटा दी। १४ अप्रैल को पूज्य महाराजजी को इनके भक्तों, शिष्यों, श्रद्धालुओं और प्रशंसकों ने बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ तथा बड़े सम्मान और समारोह के साथ दिल्ली से विदा किया। यहां से प्रस्थान करके ये पानीपत में श्री लाला मदनमोहन महाजन की फैक्टरी में पहुंचे। इन्होंने पूज्य महाराजजी का बड़ा स्वागत किया। अपना कारखाना और नूतन निर्मित निवासस्थान दिखाया। पानीपत में इनके बहुत पुराने भक्त बाबू अमरनाथजी की पुत्री कुलदीपा रहती थी, उसके मकान पर उसे आशीर्वाद देने पधारे। पानीपत से प्रस्थान करके अम्बाला पहुंचे। वहां पर श्री शंकरलाल की पुत्री लक्ष्मीदेवी के घर पर उसे आशीर्वाद देने के लिए पधारे।

लुधियाना गमन—एक बजे के लगभग लुधियाना पहुंचे। वहां पर लाला सत्यप्रकाशजी के मकान पर एक बहुत बड़ी भीड़ महाराजजी के स्वागत और दर्शनार्थ उपस्थित थी। लगभग आधा घण्टा तक एकत्रित महानुभावों को उपदेश दिया। सायंकाल पांच बजे से सात बजे तक पूज्य गुरुदेव का प्रवचन हुआ जिससे सैंकड़ों अध्यात्म के जिज्ञासुओं ने लाभ उठाया। गुरुदेव लुधियाना में ४ दिन तक विराजे यहां के गण्यमान्य तथा प्रतिष्ठित लोग प्रायः सभी इनके भक्त थे। उनकी प्रार्थना पर यहां इतने दिन तक रुकना पड़ा। चारों दिन महाराजजी के प्रवचन हुए जिनसे जनता में अध्यात्म का बड़ा प्रचार हुआ। इनका अन्तिम प्रवचन प्रेम तथा संगठन के विषय में था। इस प्रवचन का यहां के लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। जिनमें परस्पर झगड़े वर्षों से चल रहे थे उन्होंने अपने मनोमालिन्य और वैमनस्य को पश्चात्ताप के आंसुओं से धो डाला। एक बृहद् प्रीतिभोज का आयोजन किया गया जिसमें सबने एक दूसरे के गले में हार पहिनाए और प्रीतिपूर्वक परस्पर एक दूसरे को अपने गले से लगा कर मिले और महाराजजी के समक्ष भविष्य में किसी प्रकार का झगड़ा न करने की प्रतिज्ञाएं कीं। दिल्ली की भांति यहां पर भी थोड़ी-थोड़ी देर के लिए अपने सब भक्तों और शिष्यों को आशीर्वाद देने के लिए गए। धूरी से लाला विलायतीराम पुरुषोत्तमजी कुछ घण्टों के लिए महाराजजी को वहां ले जाने के लिए आए थे। महाराजजी ने इनके साथ धूरी जाने के लिए प्रस्थान भी कर दिया था

किन्तु मार्ग में मोटर के इंजिन में कुछ खराबी हो जाने के कारण लुधियाना ही लौट आना पड़ा। इनके वहां के भक्तों और शिष्यों को बड़ी निराशा हुई।

जालंधर-प्रस्थान : डाक्टर विद्यावती तथा डा० नारायणसिंह के पास निवास—डाक्टर विद्यावतीजी और डाक्टर नारायणसिंहजी महाराजजी के बहुत पुराने श्रद्धालु भक्त हैं। जब से इन्होंने सुना था कि ये पंजाब में भ्रमण करने आरहे हैं तभी से दोनों पति-पत्नी जालंधर पधारने के लिए बार-बार प्रार्थना कर रहे थे। इन्होंने लुधियाना से महाराजजी को जालंधर लिवा लाने के लिए अपने सुपुत्र रमेशचन्द्र को कार में भेजा। यहां से कार द्वारा जालंधर पधारे और वहां चार दिन तक विराजे। डा० नारायणसिंहजी की कोठी पर ठहरे। इनकी कोठी पर महाराजजी ने दो प्रवचन दिए। महाराजजी को जालंधर में कई भक्तों ने भोजनार्थ निमंत्रित किया किन्तु इन्होंने 'हिन्दी मिलाप' के संपादक श्री यश तथा श्री बालकिशन सोंधी के निमंत्रण ही स्वीकार किए।

होशियारपुर गमन—डाक्टर विद्यावतीजी की कार में होशियारपुर पधारकर चौधरी ज्योतिसिंहजी के पास ठहरे। बहुत वर्ष पहिले इनके सुपुत्र बलबीरसिंह, विक्रमसिंह और सुपुत्री सीता को महाराजजी योग का अभ्यास करवाया करते थे तथा शीतकाल में कई-कई मास इनके पास ठहरा करते थे। इनके भाई डाक्टर मोतीसिंह और इनके पुत्र रणवीरसिंह महाराजजी के अनन्य भक्त थे। श्री चौधरी ज्योतिसिंहजी ने भक्ति और प्रेम से साश्रु होकर इन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया कि बहुत वर्षों में आपके दर्शन हुए हैं। बस, अब यह अन्तिम ही दर्शन समझता हूं क्योंकि बहुत वृद्ध हो गया हूं और शारीरिक अवस्था अब ठीक नहीं रहती है। उनका कथन सत्य ही निकला क्योंकि कुछ मास पश्चात् ही इन्होंने तथा इनकी पत्नी किसनदेवीजी ने शरीर त्याग दिया। महाराजजी और धर्मनिष्ठासम्पन्न डा० विद्यावतीजी ने दोपहर का भोजन होशियारपुर किया और सायंकाल जालंधर लौट आए।

अमृतसर प्रस्थान—अमृतसर के लाला खुशीराम महाजन बहुत वर्षों से स्वर्गाश्रम में मार्च के महीने में अभ्यासार्थ आया करते थे। इन्होंने २३ तारीख को प्रातःकाल अपनी कार जालंधर महाराजजी को लेने के लिए भेज दी। डाक्टर विद्यावतीजी तो अपने बाल्यकाल से ही इनसे परिचित थीं और ज्यों-ज्यों इनकी आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों इनकी श्रद्धा और भक्ति इनके प्रति अधिकाधिक बढ़ती गई क्योंकि इनकी भगवान् के प्रति बड़ी निष्ठा और विश्वास है। बड़ी धार्मिका और परोपकारपरायणा हैं। पूज्य महाराजजी के उपदेशों से सर्वाधिक लाभ इन्होंने ही उठाया है और पत्रों द्वारा भी अपनी धार्मिक और साधना सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करवाती रहती हैं। कुमारी लज्जावतीजी, आचार्या कन्या महाविद्यालय जालंधर, की भी महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति है। ये दोनों भी इनके साथ अमृतसर गईं। जालंधर निवासियों ने पूज्य गुरुदेव को बड़े सम्मान के साथ विदा किया। २३ ता० को दस बजे लाला खुशीराम की कोठी पर पहुंच गए। अमृतसर में सैंकड़ों आपके भक्त तथा श्रद्धालु हैं। महाराजजी के प्रारम्भिक तथा इसके पश्चात् साधना काल में अमृतसर का बड़ा महत्त्व है। यहां पर कई वर्ष तक इन्होंने निवास करके साधना की थी। यहां हज़ारों व्यक्ति इनके दर्शनार्थ आए। जब तक महाराजजी यहां विराजे तब तक प्रति सायंकाल पांच बजे से साढ़े छः बजे तक विविध आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन करके

अमृतसर की जनता को उपकृत करते रहे। सैंकड़ों लोग प्रवचन में आते थे और ज्ञानामृत का पान करते थे। लाला खुशीराम की कोठी पर सारा दिन दर्शनार्थियों तथा जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। इनके परम भक्तों में से लाला खुशीराम, लाला गुरुचरणदत्त, बाबू मुलखराज और लाला हीरालाल आदि अनेक भक्त और शिष्य महाराजजी के साथ भ्रमण करने जाया करते थे। लाला खुशीरामजी के सुपुत्र द्वारिकानाथ, इनकी धर्मपत्नी, इनकी बहिन कैलाशवती और माता दुर्गादेवी बड़ी ईश्वरभक्त थीं और प्रायः ईश्वरभक्ति सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करवाती रहती थीं। आठ दिन तक प्रवचन के पश्चात् महाराजजी अपने पुराने श्रद्धालु भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए दो दिन तक उनके निवासस्थानों पर गए। इसके पश्चात् इन्होंने कश्मीर जाने का विचार किया। इन दिनों शेख अब्दुल्ला के कारावास से छूट जाने के कारण उसने तथा उसके दल ने कश्मीर में कुछ गड़बड़ सी मचा दी थी, इसलिए महाराजजी के भक्तों ने उन्हें वहां न पधारने के लिए प्रार्थना की, किन्तु ये तो भूत और भविष्यत् दोनों के ज्ञाता थे। इन्होंने अपने योगबल से जान लिया था कि वहां पर कुछ नहीं होगा और अपने शिष्यों और भक्तों को इसका विश्वास दिलाया। फिर लाला खुशीराम ने इन्हें १५-२० दिन तक डलहौज़ी में उनकी अपनी कोठी में निवास करने का आग्रह किया और महाराजजी ने इनकी प्रार्थना स्वीकार करके कुछ दिन तक डलहौज़ी विराजकर कश्मीर जाने का निश्चय कर लिया। लाला खुशीराम, इनकी पत्नी तथा दो बच्चे भी इनके साथ गए।

डलहौज़ी प्रस्थान--दो मई को अमृतसर की जनता ने महाराजजी को बड़े समारोह के साथ विदा किया। वहां से प्रस्थान करके ये पठानकोट पहुंचे। यहां पर लाला महेन्द्रपाल अग्रवाल के पास ठहरे। श्री महेन्द्रपाल, इनकी पत्नी तथा दो बालक भी अपनी कार में इनके साथ डलहौज़ी गए। वहां पर सभी लाला खुशीरामजी की कोठी पर ठहरे।

डलहौज़ी महाराजजी १५ दिन तक विराजे। यहां भी सत्संग होता रहा। इसके पश्चात् पठानकोट लौट आए। श्री महेन्द्रपाल अपनी कार में इन्हें जम्मू छोड़ आए और वहां से ये १६ मई को ११ बजे हवाईजहाज़ से श्रीनगर पहुंच गए।

श्रीनगर निवास—श्रीनगर में लाला विश्वनाथ इन्द्रनाथ अपनी कार में श्री महाराजजी को अपने निवासस्थान पर लेगए। यहां पर एक जून तक निवास करने का विचार था। लाला विश्वनाथ ने १२ दिन तक उपनिषदों की कथा करने के लिए महाराजजी से निवेदन किया। सबको सूचना दे दी गई। इन्होंने महोपनिषद् की कथा प्रारम्भ कर दी। लगभग सात सौ नर-नारी कथा श्रवण करने आए थे। इस उपनिषद् में जगत् के उपादान कारण का प्रेरक अथवा निमित्त कारण भगवान् को नारायण के रूप में माना है, इसलिए सर्वप्रथम नारायण शब्द की व्याख्या प्रारम्भ की गई और फरमाया कि भगवान् एक है। विभिन्न लोगों ने इसको विभिन्न नामों से पुकारा है। महापुरुषों ने उसे जिस रूप या अंश में देखा वैसा ही वर्णन कर दिया। इसी हेतु से ईश्वर और उसके ज्ञान की अनन्तता सिद्ध होती है। जो यह दावा करता है कि मैंने उस ईश्वर के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ लिया है, दूसरों ने नहीं समझा है, यह उसका दुराग्रह तथा दुरभिमान है। सभी महापुरुषों ने अपनी श्रद्धा, विश्वास,

भक्ति और प्रतिभा के अनुसार उसे समझने का प्रयास किया है, उसका अनुभव किया है और विश्वास किया है। जिस प्रकार ५ और ५ का जोड़ सदा १० रहेगा, जो भी इस संख्या को जोड़ेगा उसका परिणाम १० ही निकलेगा, इसी प्रकार से भगवान् को भी सभी महापुरुष एक ही स्वरूप में देखेंगे। जो नाना रूप से उसे देखता है वह भ्रान्त है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म उस अनन्त और चेतन के स्वरूप को पहिचानने में असमर्थ रहा है। सबसे बड़ा प्रश्न जो हमारे सामने है वह ह इस सृष्टि का स्रष्टा कौन है ? जैसे यह जगत् महान् है ऐसे ही इसका स्रष्टा भी महान् होना चाहिए। मनुष्य तो इसकी रचना कर नहीं सकता। इसके बनाने वाला कोई और ही होना चाहिए। उपनिषद् ने इस जटिल समस्या और महती जिज्ञासा को सुलझाते और समाधान करते हुए कहा है:--

निरीच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोकः प्रवर्तते।
सत्तामात्रे परे तत्त्वे तथैवायं जगद्गणः॥
अतश्चात्मनि कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च वै मुने।
निरीच्छत्वादकर्ताऽसौ कर्ता सन्निधिमात्रतः॥
ते द्वे ब्रह्मणी विन्देत कर्तृताकर्तृते मुने।
यत्रैवेषचमत्कारस्तमाश्रित्य स्थिरो भव॥

अपने शिष्य निदाघ को उपदेश देते हुए ऋषि ने उपरोक्त वचन कहे हैं। हे सौम्य निदाघ! जैसे किसी स्थान या खान में कोई अमूल्य हीरा रखा हो उसको प्राप्त करने के लिए सांसारिक लोग प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार सत्तामात्र चेतन तत्त्व परब्रह्म को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु लोग प्रवृत्त होते हैं। इसलिए आत्मा में कर्तृत्व और अकर्तृत्व समझना चाहिए। आत्मा में कोई इच्छा नहीं है इसलिए इसे अकर्ता कहा गया है और सन्निधान मात्र से कर्ता माना गया है, किन्तु कर्तृत्व धर्म इसमें नहीं है। सान्निध्य मात्र से उसमें कर्तापन सिद्ध नहीं किया जा सकता। आत्मा के साथ चित्त का सान्निध्य है अतः आत्मा भी कर्ता नहीं है। मन, बुद्धि, चित्त, ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियां सब जड़ हैं। केवल मात्र आत्मा ही चेतन है। इस चेतन तत्त्व के सान्निध्य से चित्त में गति और क्रिया होने लगती है और सूक्ष्म प्राणों के द्वारा यह गति और क्रिया सारे शरीर में फैल जाती है। शरीर में सारा व्यापार और कार्यजात चित्त, मन, बुद्धि आदि पदार्थ करते हैं किन्तु इनका आरोप निष्क्रिय आत्मा में कर दिया जाता है। ब्रह्म भी निर्गुण चेतन तत्त्व है। इसके सान्निध्य से प्रकृति में गति उत्पन्न होती है और सत्त्व, रज तथा तम की साम्यावस्था में विषमता आने लगती है और प्रकृति सृष्टि सृजन करने लगती है। ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। केवल सन्निधान मात्र से उसे कर्ता मान लिया गया है। वास्तव में ईश्वर या ब्रह्म में कर्तृत्व धर्म सिद्ध नहीं होता। जिज्ञासुओं को समझाने के लिए ब्रह्म के भी दो स्वरूप कह दिए गए हैं--कर्ता और अकर्ता। जगत् के कारणरूप प्रकृति के साथ ब्रह्म का सन्निधान है, इसलिए उसे कर्ता कह दिया गया है। वास्तव में तो वह अकर्ता ही है। इस जगत् अथवा इसके उपादान कारण प्रकृति में जो भी कार्य हो रहे हैं उनके वास्तविक स्वरूप को न समझकर कई आचार्यों ने इस जगत् के तथा इसके उपादान कारण प्रकृति के गुणों का ईश्वर और ब्रह्म में आरोप कर दिया है। वास्तव में आत्मा और परमात्मा दोनों अकर्ता हैं।

अन्तःकरण में, आत्मा और प्रकृति में, ब्रह्म के सन्निधान से कर्तृत्व धर्म उत्पन्न होता है क्योंकि अन्तःकरण और प्रकृति में ही परिणाम धर्म उत्पन्न हुआ है। अज्ञानता या भ्रांति वश मनुष्य अपने को सुखी या दुःखी मानता है तथा अपने को भोक्ता या कर्ता मानता है। इस अज्ञानता और भ्रांति को दूर करने की आवश्यकता है। वास्तव में सुख, दुःख, कर्तृत्व और भोक्तृत्व सब अन्तःकरण के धर्म हैं जिन्हें वह अपने मान रहा है। इसी प्रकार कर्तृत्व धर्म प्रकृति का है किन्तु भ्रांतिवश इसे ब्रह्म में आरोपित कर दिया जाता है। ब्रह्म में कर्तृत्व नहीं है। वह तो निर्गुण और निष्क्रिय है। इसके सन्निधान मात्र से प्रकृति में गति उत्पन्न होती है और उससे सारी सृष्टि का सृजन होता है। इस सन्निधान मात्र से भ्रांतिवश ब्रह्म को ही स्रष्टा मान लिया गया है, वास्तव में यह प्रकृति का कार्य है, ब्रह्म का नहीं। प्रकृति के धर्म का ब्रह्म में आरोप अज्ञानतावश किया गया है। इस भ्रांति के दूर होने पर ही आत्मा और परमात्मा का यथार्थ, निर्भ्रान्त और वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तभी मनुष्य की आत्मा और परमात्मा विषयक जिज्ञासा की पूर्ति होगी। पूज्य महाराजजी ने विभिन्न दृष्टान्तों और प्रमाणों से इस सिद्धान्त की पुष्टि की। १२ दिन तक निरन्तर कथा होती रही। नित्यप्रति सब श्रोताओं को फल अथवा मिश्री प्रसाद रूप से बांटी जाती थी। जनता ने इस उपदेशामृत का पान करके अपने को धन्य समझा।

गुलमर्ग प्रस्थान—श्री महाराजजी पहिले कई वर्ष तक काश्मीर में निवास कर चुके थे। प्रायः प्रति ग्रीष्म ऋतु में यहां आया करते थे, इसलिए सैंकड़ों लोगों से परिचित थे और सैंकड़ों ही यहां पर इनके शिष्य तथा भक्त थे। पं० शम्भुनाथजी तिक्कू महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। इन्होंने ४०० रुपये पर सारी गर्मी के मौसम के लिए एक कोठी गुलमर्ग में नितान्त एकान्त और शान्त स्थान में लेकर दी थी। इसी में महाराजजी सारी ग्रीष्म ऋतु विराजे थे। श्रीनगर में कथा समाप्त करके ये हारवन, शालामार, निषात, चश्माशाही आदि स्थानों का भ्रमण करते रहे। दो जून को गुलमर्ग पधारे। यह स्थान श्रीनगर से लगभग ३० मील है। इसकी ऊंचाई लगभग ८-९ हज़ार फीट होगी। पहलगांव की अपेक्षा यह अधिक शान्त और एकान्त था। महाराजजी के भक्त लाला विश्वनाथ और इन्द्रनाथ प्रत्येक रविवार को महाराजजी के दर्शन और सत्संग के लिए आया करते थे। फल सब्जी आदि तथा अन्य खाद्य सामग्री भी भिजवाते रहते थे। पं० द्वारिकानाथजी दरबारी और पं० राधाकृष्णजी तिक्कू महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। पं० द्वारिकानाथजी प्रति १५ दिन के पश्चात् अपने बाग़ों से सब्जी, फल आदि भिजवाते रहते थे। पं० शम्भुनाथजी गुलमर्ग में ठेकेदार थे, अतः ये और इनका परिवार महाराजजी की सब प्रकार से सेवा करते रहते थे। इनके कई भक्त सत्संग और अभ्यास के लिए आए हुए थे। दिल्ली से डाक्टर विमला तथा इनकी माताजी और चाची सत्यवतीजी आई हुई थीं। अमृतसर से गुरुचरणदत्त महाजन और भाग्यवन्तीजी, दिल्ली से लाला महावीरप्रसाद, इनकी पत्नी और पुत्री, लुधियाना से लाला सत्यप्रकाश, इनकी पत्नी और पुत्र, पठानकोट से लाला महेन्द्रपाल, इनकी पत्नी और दो बालक, गुरुदासपुर से लाला योगेन्द्रपाल, इनकी पत्नी शकुन्तलाजी आदि काश्मीर आए थे। इन सबने महाराजजी के सत्संग और इनके पास अभ्यास करके

बहुत लाभ उठाया। व्यास-पूजा के अवसर पर लगभग सौ शिष्य महाराजजी के पास आए थे। इस पावन पर्व पर पूज्य गुरुदेवजी तथा आनन्दस्वामीजी सरस्वती के गुरु-पूजा के विषय में सारगर्भित भाषण हुए और एक बड़ा भण्डारा दिया गया। बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ यह पर्व मनाया गया। श्री महाराजजी अपने शिष्यों को साथ लेकर गुलमर्ग के मैदानों में लगभग दो घण्टे तक सैर किया करते थे और आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के विषय में उन्हें समझाते भी रहते थे। कभी-कभी घूमते-घूमते खिलनमर्ग तथा अलपत्थर भी चले जाया करते थे। श्री आनन्द स्वामी सरस्वती गुरु-पूजा के लिए ही पधारे थे।

पहलगांव प्रस्थान––साढ़े तीन मास तक गुलमर्ग में निवास करके श्री महाराजजी श्रीनगर पधारे और यहां पर वज़ीरबाग़स्थ गुरुसहायमल की कोठी पर ठहरे। यहां पर एक दिन निवास करके पहलगांव पधारे। वहां पर लाला गुरुसहायमल तथा लाला केदारनाथ बहुत दिनों से इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन्होंने एक कोठी महाराजजी के लिए इनके वहां पधारने से पूर्व ही ले ली थी। श्री विश्वनाथजी इन्हें अपनी कार में पहलगांव पहुंचा गए थे। यहां पर आठ दिन रहने का विचार था जिसमें चार दिन तक तो पहलगांव और तीन दिन अमरनाथ तथा एक सप्ताह कुक्कड़नाग। पहलगांव में श्री महाराज इन दोनों परिवारों को उपदेश सुनाते रहे और अभ्यास भी करवाते रहे। २१ सितम्बर को महाराजजी ने अमरनाथ के लिए प्रस्थान किया। इनके साथ सूरतराम सेवक और अमृतसर के एक लालाजी थे। घोड़े इनके साथ थे। प्रथम दिन शेषनाग के किनारे डाक बंगले में ठहरे। प्रातःकाल चायपान करके भोजन अपने साथ लेकर तीनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर चल दिए। सब सामान यहीं छोड़ दिया था क्योंकि सायंकाल यहीं लौट कर आना था। शेषनाग की ऊंचाई १३–१४ हज़ार फीट थी, अतः घोड़े पर बैठे-बैठे भी पांव निःसंज्ञ से होरहे थे। शेषनाग की झील बड़ी सुन्दर है। एक बार यहां आकर फिर वापिस जाने को दिल नहीं चाहता। आस-पास के पर्वतों का दृश्य बड़ा अनुपम था। अत्यधिक शीत के कारण कूल का पानी जम गया था। कुछ मील आगे चलने पर पंचतरणी एक बड़े मैदान में पहुंचे। इसमें पांच छोटी-छोटी नदियां बहती हैं। यहां पर विज्जू की किस्म के सैंकड़ों जानवर दिखाई दिए। इनके चमड़े के कोट, दस्ताने, जूते आदि बनाए जाते हैं। शेषनाग से घोड़ों पर सवार होकर अन्य यात्री भी साथ आए थे। साढ़े ग्यारह बजे सब अमरनाथ की गुफा में पहुंचे। यहां पर आराम किया तथा गुफा के आस-पास का सब दृश्य देखा। इस समय यहां कोई कबूतर दृष्टिगोचर नहीं हुआ। किन्तु कोयल के समान एक काली चिड़िया गुफा में अवश्य दिखाई दी। हाथ में किशमिश रखकर इसे खाने के लिए बुलाते तो झट आकर प्रेमपूर्वक किशमिश खाने लग जाती थी। इस समय गुफा में बर्फ का कोई शिवलिंग भी न था। सब प्रतिमाएं गल कर समाप्त हो गई थीं। गुफा के बीच में कहीं-कहीं पानी टपकता था। आज कल लोहे का एक जंगला गुफा में लगा दिया गया है। इन दिनों न तो कोई यहां रहता था और न कहीं स्वच्छता ही दिखाई देती थी। एक घण्टा तक सब गुफा में ठहरे। ऊंचाई पर भूख कम लगती है, अतः भोजन साथ होते हुए भी किसी ने नहीं खाया क्योंकि किसी को भी भूख नहीं लगी थी। सब साथी लगभग एक घण्टे तक पूजा-पाठ

करते रहे और गुफा तथा इसके आस-पास के सौन्दर्य की सराहना करते रहे। एक बजे यहां से प्रस्थान करके सायंकाल पांच बजे शेषनाग पहुंच गए। यहां से अमरनाथ लगभग बारह मील होगा। प्रातःकाल यहां से चल कर चन्दनबाड़ी होते हुए चार बजे पहलगांव पहुंच गए। लाला गुरुसहायमल और केदारनाथजी को अपनी यात्रा का समस्त वृत्त सुनाया जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन ये तीनों कुक्कड़-नाग के लिए रवाना होगए। इसके लिए सबने श्रीनगर से अपनी-अपनी कारें मंगवा ली थीं। इनकी पत्नियां तथा बच्चे भी साथ थे। २४ सितम्बर को कुक्कड़नाग पहुंचे। वहां पर दो बंगले किराये पर लिए गए। छः दिन तक यहीं सत्संग और अभ्यास होता रहा। ३० सितम्बर को श्रीनगर वापस आगए। श्री महाराजजी चार दिन तक केदारनाथजी की कोठी पर ठहरे। इसके पश्चात् ६–७ दिन के लिए हारवन चले गए। केदारनाथजी इन्हें पं० द्वारिकानाथजी के पास अपनी कार में छोड़ आए थे। यहां पर महाराजजी नित्य ही कथा किया करते थे। ब्राह्मणों के प्रायः सभी परिवार प्रतिदिन कथा सुनने के लिए आया करते थे। श्रीनगर से बहुत से लोग उपदेश सुनने आते थे। बहुत से तो नगर से आकर सत्संग के लिए गांव में ही रहने लग गए थे। पं० द्वारिकानाथजी के घर पर प्रायः मेला सा लगा रहता था। महाराजजी के कई मुसलमान भक्त थे। ये भी नित्य मिलने आया करते थे। ये महाराजजी को अपना पीर और गुरु मानते थे। ३०-३५ वर्ष पूर्व महाराजजी यहां के लोगों में औषधियां बांटा करते थे और इन लोगों का इलाज भी किया करते थे, इसलिए इनके प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। इस प्रदेश के हिन्दु और मुसलमान दोनों महाराजजी का बड़ा सम्मान करते थे। एक सप्ताह यहां रह कर पुनः श्रीनगर चले गए और लाला गुरुसहायमल सहगल की कोठी में आठ दिन तक कथा की और २० अक्टूबर को यहां से ऋषिकेश के लिए प्रस्थान किया।

महात्मा लक्ष्मणजी का समागम--श्री महाराजजी इन महात्माजी से मिलने गए। ये इनके बहुत पुराने मित्रों में से थे। जब महाराजजी हारवन में रहते थे तब ये सप्ताह में एक दो बार अवश्य मिलने जाया करते थे। कभी-कभी दोनों मिलकर शिकारगाह में सैर करने भी जाया करते थे। दोपहर का भोजन महात्माजी की कोठी पर ही किया। इनके शिष्यों ने बड़े सम्मानपूर्वक भोजन करवाया। इनकी दो शिष्याएं बड़ी विदुषी, सती-साध्वी और सौम्य मूर्ति थीं। ये दोनों सहोदरा थीं। इनमें से एक का नाम शारिकादेवी तथा दूसरी का प्रभादेवी था। ये बहुत वर्षों से महात्माजी के संपर्क में रहकर आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठिन साधनाएं कर रही थीं। महात्माजी प्रति रविवार को सत्संग लगाते थे। भजन, कीर्तन, अध्ययन तथा उपदेश कई घण्टे तक होता रहता था। महात्माजी और महा-राजजी का कई घण्टे तक आध्यात्मिक विषयों पर विचार होता रहा। सायंकाल ६ बजे ये वहां से लौट आए।

श्रीनगर में पुनः कथा--श्रीनगर में पुनः १० से १७ अक्टूबर तक महोपनिषद् की कथा की। बीच-बीच में योग सम्बन्धी और अनेक आध्यात्मिक विषयों का वर्णन करते रहे। लगभग सात सौ श्रोता प्रतिदिन आते थे। सैंकड़ों लोग नित्यप्रति मिलने आते थे। चाय और भोजन का गुरुसहायमलजी के मकान पर एक प्रकार का लंगर

सा लगा रहता था। इनकी पत्नी बड़ी उदारता से आगन्तुक महानुभावों का सत्कार करती थी।

१८ अक्टूबर को महाराजजी रैनावारी में अपने भक्त पं० राधाकृष्ण दीनानाथ तिक्कू के घर पर भोजन करने गए। रैनावारी के बहुत से भक्त दर्शनार्थ आए। १९ अक्टूबर को पं० गोपीनाथ विश्वनाथ के पुत्र शंभुनाथ अमरनाथ के मकान पर भोजन करने पधारे। यहां पर भी बहुत से स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ एकत्रित हुए थे। इन सबको प्रेम तथा संगठन का उपदेश दिया। परिवार के स्तर को ऊंचा उठाने और पारिवारिक जीवन को सुखमय तथा स्वर्ग बनाने के उपाय विविध उदाहरण और दृष्टान्त देकर समझाये। लोगों पर इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

जम्बू-गमन--लाला केदारनाथजी महाराजजी को जम्बू अपनी कोठी पर ले जाना चाहते थे। अतः २० अक्टूबर को प्रातः ६ बजे अपनी कार लेकर आगए। लाला गुरुसहायमल के परिवार, अन्य शिष्यों, भक्तों और श्रद्धालुओं ने बड़े सम्मान के साथ महाराजजी को विदाई दी। प्रातः साढ़े सात बजे चलकर सायंकाल जम्बू पहुंच गए। यहां पर इनकी कोठी पर ठहरे। इन्होंने महाराजजी की बहुत सेवा की और योगनिकेतन में एक कुटिया बनवाने की अनुमति प्राप्त की क्योंकि अब इनका चित्त कुछ उपराम सा होता जा रहा था और वे महाराजजी के पास रहकर आत्म-ज्ञान लाभ करना चाहते थे। २३ अक्टूबर को लालाजी अपनी कार में योगीराजजी को पठानकोट पहुंचा गए। यहां पर लाला महेन्द्रपाल के पास ठहरे। भोजनोपरान्त केदारनाथजी वापिस चले गए। महाराजजी दो दिन तक पठानकोट ठहरे। २६ अक्टूबर को लाला योगेन्द्रपाल इन्हें गुरुदासपुर ले गए। यहां पर दो दिन तक महाराजजी का योग के विषय में प्रवचन हुआ। ये अपनी पत्नी सहित कई बार स्वर्गाश्रम में अभ्यासार्थ आया करते थे। २८ अक्टूबर को यहां से योगेन्द्रपालजी अमृतसर पहुंचा गए। यहां पर सतीशचन्द्रजी के पास ठहरे। कई भक्त दर्शनार्थ आए। अमृतसर से रात्रि के आठ बजे हरिद्वार गाड़ी जाती थी, उसमें सवार होकर हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। जालंधर और लुधियाने के स्टेशनों पर महाराजजी के अनेक भक्त दर्शनार्थ आए। ज्वालापुर के स्टेशन पर महात्मा प्रभुआश्रितजी के बहुत से शिष्य दर्शनार्थ आए। इन्होंने वानप्रस्थ आश्रम में पधारने के लिए बहुत प्रार्थना की, अतः प्रथम आश्रम में पधारे। वहां पर महात्माजी को आशीर्वाद तथा उपदेश दिया। यहां दुग्धपान करके टैक्सी द्वारा ऋषिकेश पहुंचे। यहां पर नैशनल बैंक आफ लाहौर के मैनेजर श्री बलदेवमित्र के पास भोजन किया। लगभग ७ मास की यात्रा के पश्चात् पूज्य गुरुदेव सायंकाल स्वर्गाश्रम पहुंचे।

स्वर्गाश्रम में साधना शिविर—१ नवम्बर १९६४ को साधना शिविर प्रारंभ होगया। अभ्यासी बहुत से आ चुके थे और कुछ अभी आने को थे। शिविर की सब व्यवस्था ठीक-ठीक होगई थी। श्री कैप्टन जगन्नाथजी, रायसाहेब बिश्वेश्वरनाथजी तथा लाला रामकिशोरजी योग-प्रशिक्षणार्थ आगए थे। इस वर्ष गंगोत्री में अन्न-क्षेत्र की व्यवस्था करने के लिए पं० शंकरलालजी शर्मा को भेजा था। इनके साथ ब्रह्मचारी श्रीकंठ भी गए थे। ये सितम्बर मास में गंगोत्री से लौट आए थे किन्तु उत्तरकाशी में ४० दिन काष्ठ मौन व्रत करने के कारण वहां नहीं रहे।

श्री महाराजजी ने १ नवम्बर से अभ्यास प्रारम्भ करवाया। प्रथम दिन अभ्यासियों की संख्या लगभग १५-१६ थी। प्रातःकाल तो योग कक्षा महाराजजी स्वयं लेते थे और सायंकाल को कैप्टन जगन्नाथजी लेते थे। अभ्यासियों की संख्या नित्यप्रति बढ़ रही थी। १० नवम्बर को जब शर्माजी आए तब महाराजजी ने इन्हें आश्रम के लिए जो ज़मीन खरीदी गई थी उसकी हदबन्दी करवाकर आश्रम के निर्माण का आदेश दिया। ये प्रातः और सायं अभ्यास करते और दिन में निर्माण कार्य। ऋषिकेश या स्वर्गाश्रम में योगनिकेतन का अपना निजी स्थान न होने के कारण अनेक प्रकार की कठिनाइयां होती थीं। अभी तक कोई अनुकूल भूमि प्राप्त नहीं हो रही थी, यद्यपि कई वर्ष से इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा था।

योगनिकेतन के भवन निर्माण के लिए भूमि खरीदना--सन् १९६३ में यह पता लगा कि रामेश्वरसहायजी, जो टिहरी गढ़वाल के चीफ कंज़रवेटर आफ फोरेस्ट थे, अब सेवा निवृत्त होगए हैं और लखनऊ में निवास करते हैं। इनकी ज़मीन मुनि की रेती में स्वामी शिवानन्दजी महाराज के आश्रम के पास सड़क के किनारे गंगाजी के तट पर है। इतस्ततः पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह भूभाग बिकाऊ है। श्री शंकरलालजी शर्मा को इनके पास लखनऊ भेजा गया। पहले तो इन्होंने इस भूमि के दाम बीस हज़ार से भी अधिक मांगे किन्तु जब शर्माजी ने पूज्य गुरुदेवजी के रचित दो ग्रंथ भेंट करके इनका पूरा परिचय दिया और योगनिकेतन के उद्देश्यादि बताए और कहा कि यह स्थान योग-विद्या तथा आध्यत्मिक शिक्षा का केन्द्र बनेगा तब इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि आप जो देंगे वही मुझे स्वीकार होगा। यह वचन लेकर शर्माजी लौट आए। इस भूमि पर एक छोटी सी कोठी बनी हुई थी। इसका मूल्य बारह हज़ार रुपया आंका गया। इस सम्बन्ध में श्री रामेश्वरसहायजी को पत्र लिखा गया। इनको १२०० रु० की पेशगी भेज दी गई और सन् १९६४ में इस भूमि की रजिस्ट्री योगनिकेतन ट्रस्ट के नाम करवा दी गई। इसी साल से भवन निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

अभ्यासियों पर मनोबल का प्रयोग--श्री महाराजजी को प्रातःकाल अभ्यास करवाते २४ दिन होगए थे। लुधियाने वाले सत्यप्रकाशजी तथा अन्य कई एक शिष्यों ने आकर निवेदन किया, "महाराजजी! अभ्यास में कुछ विशेष उन्नति नहीं हो रही है। आप अपने भक्तों और शिष्यों पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दे रहे हैं।" महाराजजी ने फरमाया, "मैं अपने मस्तिष्क और मनोबल से अधिक काम नहीं लेना चाहता हूं। मुझे बहुत वर्ष साधना करवाते होगए हैं, अतः कुछ थकावट सी मालूम होने लगती है और उपरामता भी आती जा रही है।" सत्यप्रकाशजी ने इस पर कहा, "महाराजजी! फिर हमारा कल्याण किस प्रकार होगा?" इन्होंने आदेश दिया कि "आपकी आयु ५० वर्ष से ऊपर होगई है। वानप्रस्थ धारण करके अहर्निश निरन्तर अभ्यास का प्रयत्न करो, कुछ काल में ही कल्याण हो जाएगा। अपने प्रयत्न से जो विज्ञान प्राप्त करोगे वह विशेष उन्नति और सफलता का हेतु होगा। दूसरों से उधार या दान में ली हुई वस्तु विशेष हितकारी और लाभदायक नहीं होती। स्वयं अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया हुआ धन अथवा विज्ञान दीर्घकाल तक स्थायी

रहेगा, लाभदायक होगा ।" इस पर सब उपस्थित अभ्यासियों ने एक स्वर से कहा, "आपने भी तो अपने गुरु से विज्ञान प्राप्त किया था, फिर आप हमारे विषय में क्यों उपराम होते हैं ?" इस पर महाराजजी ने हंसते हुए कहा, "हमने तो एक गुरु से एक मास में और दूसरे से १७ घण्टे में आत्म-ज्ञान प्राप्त किया था। हमारे पास तो कई अभ्यासी ऐसे भी हैं जो १२ वर्ष से हमारे पास साधना कर रहे हैं। हमें जो गुरुजनों के पास से ३१ दिन में आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ था वह इन्हें १२ साल में भी प्राप्त न हो सका। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि या तो आप लोग इस ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं अथवा हमें ही कुछ नहीं आता अथवा दोनों ही अनभिज्ञ हैं।" इस पर रामकिशोरजी ने कहा, "आपने श्री आनन्दस्वामीजी को गंगोत्री में आठ दिन में ही सम्पूर्ण ज्ञान करवा दिया था, हमें तो उतना १२ वर्ष में भी नहीं करवाया।" महाराजजी ने पुनः मुस्कराकर कहा, "इसमें आनन्दस्वामीजी की विशेषता है या हमारी ?" अभ्यासियों ने कहा, "हम तो इसमें आपकी विशेषता समझते हैं।" वास्तव में जिसमें सच्ची जिज्ञासा न हो और जो पूर्ण अधिकारी न हो, जिसमें ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति की पात्रता न हो, वह किस प्रकार इस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है ! दूध अमृत के समान गुणकारी, लाभदायक, स्वादु तथा मधुर है। यदि उसे दुर्गन्धियुक्त गली-सड़ी वस्तुओं से पूर्ण पात्र में रख दिया जाए तो वह भी विषवत् हो जाएगा। इसी प्रकार तप, त्याग, शम, दम, उपरति, तितिक्षादि साधनसम्पन्न न होने से जिज्ञासु आत्म-विज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। इसी कारण आप लोगों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो रही है। इतना समझा देने के उपरान्त महाराजजी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आज वे विशेष बल लगाएंगे, सब लोग सावधान और समाहित होकर बैठें और अपनी-अपनी साधना करें। जिस-जिस देश या स्थान में जिसका अभ्यास चल रहा है वह उसी-उसी देश या स्थान में अभ्यास करे, आज उसे विशेष सफलता लाभ होगी। पूज्य गुरुदेव ने प्रातः साढ़े चार बजे सावधान और समाहित होकर अपने मनोबल से सबको स्तब्ध कर दिया। जो अभ्यासी जहां-जहां अभ्यास कर रहे थे वहां-वहां उस स्थान और पदार्थों का सबको साक्षात्कार होने लगा। सबके अन्दर एक दिव्य ज्योति प्रकट होकर अन्दर और बाहर से सब पदार्थों को दिखाने लगी। लगभग डेढ़ घण्टा तक अभ्यासियों की यह स्थिति आज के अभ्यास में रही। प्रायः सब साधकों को विशेष सफलता, समाहितता, विज्ञान और साक्षात्कार हुआ। सब साधक अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। महाराजजी के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट करने लगे और सबने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "महाराजजी ! यदि आप कुछ दिन और इसी प्रकार का अभ्यास करवाएं तो हम सबका बेड़ा पार हो जाएगा।" महाराजजी ने कहा, "हां, तुम्हारा बेड़ा तो ज़रूर पार हो जाएगा किन्तु मेरा डूब जाएगा।" साधकों के यह पूछने पर कि यह कैसे हो सकता है। महाराजजी ने कहा, "आज मुझे अपने मस्तिष्क से बहुत बल लगाना पड़ा है। मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ने से सिर-दर्द होने लग गया है क्योंकि तुम्हारे नटखट मनों को दमन करने में, उन्हें दमन करके समाहित करने में और समाहित करके उस-उस स्थान में लगाए रखने तथा विज्ञान करवाने में मेरे सिर पर बहुत दबाव पड़ा है। इससे मस्तिष्क और ज्ञान-वाहक नाड़ियां, सूक्ष्म तन्तु और शिराएं कठोर होगई हैं, इस कारण सिर में वेदना होने लग गई हैं।"

मस्तिष्क रोग—यह सुनकर अभ्यासियों की सारी प्रसन्नता दुःख में परिणत होगई। ६-३० बजे सब अभ्यासी अपने-अपने स्थान पर चले गए। इस दिन महाराजजी के सिर में सारा दिन वेदना रही। सायंकाल ५ बजे सैर करने के लिए गए और ६ बजे अभ्यास किया। ८-३० बजे श्री सत्यप्रकाश, उनकी धर्मपत्नी तथा धर्मवती महाराजजी को प्रणाम करने आए और ९ बजे चले गए। ९-३० बजे महाराजजी सीढ़ियों का दरवाज़ा बन्द करने के लिए नीचे उतरे और नीचे के बरांडे में घूमने लगे। धर्मवती ने पूछा, "आज आप यहां बरांडे में क्यों घूम रहे हैं?" उन्हें पता चला कि महाराजजी अस्वस्थ हैं और स्मृति का अभाव सा अनुभव कर रहे हैं। तब ये बहुत घबराईं और सत्यप्रकाशजी को बुलवा कर डाक्टर को बुलाने के लिए कहा। महाराजजी को ऊपर ले जाकर लिटा दिया गया। प्रीतमचन्द, जगन्नाथ, महावीर आदि कई अभ्यासी वहां आगए और उपचार करने लगे। डाक्टर हंसराज ने आकर १०-३० बजे रक्त-संचार देखकर बतलाया कि रक्त चाप बहुत बढ़ गया है। इस समय २४० है और स्मृति जाती रही है। बार-बार पेशाब तथा डकारें आने लगीं। महाराजजी कभी-कभी वहां उपस्थित भक्तों तथा अभ्यासियों से पूछते थे कि मुझे क्या होगया है और कभी अपने तकिए के नीचे से घड़ी निकाल कर देखने लगते थे। प्रातः चार बजे तक इन्हें निद्रा नहीं आई। इसके पश्चात् ७ बजे तक कुछ नींद आई। ८ बजे तक रक्त-संचार ठीक होगया था। महाराजजी ने डाक्टर से कहा कि मेरा स्वास्थ्य अब ठीक है। रात्रि के ९-३० बजे से लेकर प्रातः ८ बजे तक क्या हुआ, मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। रात्रि में डाक्टर हंसराजजी के आने का भी उन्हें स्मरण नहीं था। डाक्टरजी ने इन सब कष्टों का कारण मस्तिष्क से अधिक काम लेना बताया। अभ्यास न करवाकर पूर्ण आराम करने की सलाह दी। रोग का निदान हो ही गया था। डाक्टर साहब ने इन्हें कई एक दवाइयों का प्रयोग करने के लिए कहा। इसके पश्चात् लगभग डेढ़ मास तक महाराजजी को शिर-पीड़ा रही। व्याख्यान देने, अधिक बोलने तथा मस्तिष्क से अधिक काम करने से शिर-पीड़ा बढ़ जाती थी, अतः यह कार्य इन्होंने सर्वथा छोड़ दिए।

एक सप्ताह के पश्चात् महाराजजी ने अभ्यासियों को अभ्यास करवाना प्रारंभ किया। शान्त भाव से जाकर चुप होकर बैठ जाते थे। सब भक्तों की यह सम्मति थी कि महाराजजी दिल्ली अथवा बम्बई जाकर अपना उपचार करवाएं।

दिल्ली, बम्बई आदि नगरों का पर्यटन

श्री महाराजजी ने दिल्ली, अहमदाबाद, बम्बई आदि नगरों के भक्तों को वहां जाने का वचन दिया हुआ था। सर्वप्रथम दिल्ली पधारने का निश्चय हुआ और वहां पर श्री जगदीशचन्द्रजी डावर की कोठी पर निवास करने का विचार किया। श्री डावरजी अपनी कार लेकर २५ दिसंबर को ही स्वर्गाश्रम पहुंच गए। दो मास के पर्यटन का पूरा प्रोग्राम बनाया गया और आश्रम की पूरी व्यवस्था की गई। अभ्यास का संपूर्ण कार्य श्री दत्तजी और कैप्टन साहब ने संभाला। प्रातःकाल कैप्टन साहब और सायंकाल श्री दत्तजी ने अभ्यास करवाना प्रारंभ कर दिया। महाराजजी के सब शिष्यों और शिष्याओं ने बड़े सम्मान के साथ इन्हें विदा किया। ज्वालापुर में वानप्रस्थ आश्रम में महात्मा प्रभुआश्रितजी से मिलने गए। यहां पर महात्माजी

की शंकाओं का समाधान किया और कुछ उपदेश भी दिया। दुग्धपान करके यहां से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। दोपहर के १ बजे वहां पहुंचे। यहां पर अनेक भक्त फूल-मालाएं लेकर स्वागतार्थ प्रतीक्षा में खड़े थे। महाराजजी ने सबको उपदेश देकर आशीर्वाद दिया। जनता को सत्संग और दर्शन के लिए ४ बजे से ६ बजे तक का समय दिया गया। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला को महाराजजी की अस्वस्थता का पता चल गया था, इसलिए इन्होंने बड़े-बड़े योग्य वैद्यों को उनका उपचार करने के लिए भेजना प्रारंभ कर दिया। रोग के निदान के बारे में प्रायः सभी वैद्यों की सम्मति एक थी किन्तु डाक्टरों का इनसे मतभेद था। स्वर्गाश्रम के डाक्टर हंसराजजी और दिल्ली के प्रसिद्ध मस्तिष्क रोगों के डाक्टर बलदेवसिंह दोनों की सम्मति रोग के विषय में एक थी। उन्होंने दिमाग़ी काम तथा चिन्ता न करने की सम्मति दी।

जिज्ञासु भक्तों का शंका-समाधान—पूज्य महाराजजी ने सत्संगी भक्तों को ४ से ६ बजे तक का समय देना प्रारम्भ कर दिया। जिस विषय में जो शंका जिज्ञासु लोग करते थे उसी विषय के समाधानरूप में व्याख्यान प्रारंभ कर दिया जाता था। दो घंटे में केवल दो-तीन शंकाओं का ही समाधान हो पाता था। ये व्याख्यान किसी विशेष विषय या कथा के रूप में नहीं होते थे, केवल शंका समाधान के रूप में ही होते थे। इस प्रकार एक सप्ताह तक नाना विषयों पर प्रवचन होते रहे। इस शंकासमाधान में ४-५ सौ स्त्री-पुरुष एकत्रित होते थे।

श्री जगदीशचन्द्र डावर ने शंका उठाते हुए श्री महाराजजी से पूछा, "आप भगवान् को निर्गुण मानते हैं, फिर प्राणिमात्र के कर्मफल की व्यवस्था कौन करता है? मनुष्य को तो स्मरण भी नहीं रहता कि मैंने कौन-कौन से कर्म किए हैं और किस कर्म का क्या फल हो सकता है। न्यायाधीश भी लोक में सब के कर्मफल की व्यवस्था नहीं कर सकता जबतक कोई व्यक्ति किसी अपराधी के विषय में न्यायालय में जाकर दावा दायर न करे। मनुष्य पाप करके स्वयं भी उसका दुःख रूप फल भोगना पसन्द नहीं करता, अतः आप इसका स्पष्टीकरण करने की कृपा करें।"

प्राणिमात्र के कर्मफल की व्यवस्था—पूज्य महाराजजी ने कर्मफल के विषय में निम्न प्रकार से इस शंका के समाधानरूप में अपना प्रवचन प्रारंभ किया :—

यदि हम ईश्वर को कर्मफलदाता मानते हैं तब कर्मफल प्रदान करना भी उसका गुण विशेष मानना पड़ेगा, अतः इसी प्रकार और भी अनेक गुण उसमें मानने पड़ेंगे और जिसमें अनेक गुण होंगे उसमें गुणों का क्रमपूर्वक उत्पन्न होना भी मानना पड़ेगा। प्रत्येक गुण का व्यापार भी क्रमभेद से मानना होगा। जहां क्रमपूर्वक गुणों की उत्पत्ति और क्रमपूर्वक व्यापार होगा उसको विकारवान् मानना पड़ेगा और विकारवान् पदार्थ परिणामी होता है। ईश्वर निर्गुण है, अतः वह सर्व विकारों और सर्व गुणों से रहित और अपरिणामी है। इसलिए ईश्वर कर्मफल की व्यवस्था नहीं कर सकता। जब हम इसे सृष्टिकर्ता नहीं मानते तब इसे कर्मफलदाता मानने की क्या आवश्यकता है? जीवात्मा भी इस कार्य को नहीं कर सकता। जब इसे अपने ही कर्म स्मरण नहीं रहते तब दूसरों के कर्म को कैसे स्मरण रखकर उनका फल प्रदान करेगा? आत्मा एकदेशी है। वह सारे जगत् के प्राणियों के कर्मफल प्रदान करने में कैसे समर्थ हो सकता है, अतः यह भी कर्मफलप्रदाता नहीं हो सकता। अनेक

आत्माएं मिल कर भी कर्मफल प्रदान नहीं कर सकतीं क्योंकि उनमें भी एकदेशिता है। सब देशों के प्राणियों के कर्मफल का विभाग किस प्रकार करेंगे ?

कर्म का फल कर्म में निहित—इसका समाधान इस प्रकार है। कर्म का फल सूक्ष्मरूप से उसमें ही निहित रहता है। एक विद्यार्थी विद्याध्ययन करता है, उसका फल विद्याप्राप्ति होता है। पाचक भोजन बनाता है, उसका फल क्षुधा निवृत्ति होता है। कृषक खेती करता है, उसका फल अन्नोत्पत्ति होता है। एक गृहस्थी विवाह करके पत्नी सहवास करता है, तो इसका फल सन्तानोत्पत्ति होता है। आम या सेव का बीज बोया जाता है, ये अंकुरित होकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं और समय आने पर फल देते हैं। फल आने से प्रथम ही इन बीजों में अंकुर, तना, शाखा, पत्ते, फूल, फलादि निहित थे अर्थात् सूक्ष्म रूप से कारण रूप में उसमें विद्यमान थे। देश, काल, निमित्त, और सामग्री उपस्थित होने पर स्वयं ही फल देने लगते हैं। अतः प्रत्येक कर्म अपने फल को साथ लिए ही होता है। जब उसे देश, काल, निमित्त, सामग्री आदि साधन जुट जाएंगे तब ही वह कर्म अपने फल को प्रदान करेगा। कर्मफल प्रदान करने में ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। जब गन्ने का फल गन्ना और आम का फल आम ही होता है तब इसमें ईश्वर की आवश्यकता भी क्या है और वह करेगा भी क्या ? यदि गन्ने से आम और आम से गन्ने लगाने होते, अथवा घोड़े से गाय बनाना होता या बैल को हाथी या गैंडा बनाना होता, तब शायद् ईश्वर की जरूरत पड़ती। इस विपरीत फल के लिए भगवान् की आवश्यकता हो जाती। जब मनुष्य से मनुष्य ही उत्पन्न होता है, हाथी से हाथी और आम के पेड़ के फल आम ही होते हैं, तब भगवान् की क्या आवश्यकता है ? जब पाप-कर्म का फल दुःख और पुण्य-कर्म का फल सुख ही होता है तब फल प्रदान के लिए ईश्वर की क्या आवश्यकता है ? पाप और पुण्य, अधर्म और धर्म जब देश, काल, निमित्त और सामग्री प्राप्त कर लेंगे तब ही दुःख और सुख के रूप में अपना फल देने में स्वयं ही समर्थ हो जाएंगे। इनके लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। यदि आप कहें कि कर्म जड़ पदार्थ है, अतः स्वयं फल देने में समर्थ नहीं हो सकता, तब इस कर्म-फल की व्यवस्था करने वाला कोई अन्य चेतन होना चाहिए। यदि रूढ़िवाद से आपकी बात को ही मान लें तब भी चेतन को देश, काल और निमित्त तथा सामग्री की अपेक्षा होगी। फिर उस चेतन तत्त्व ईश्वर का महत्व ही क्या रहा ? हमारे सिद्धान्त के अनुसार कर्म उचित देश, काल, निमित्त और सामग्री पाकर स्वयं ही फल प्रदान करने में समर्थ होता है, ईश्वर की अपेक्षा नहीं करता। आपका ईश्वर फल प्रदान करने में इन चारों की अपेक्षा करता है।

देश—देश का अर्थ है भूमि, जिस भूमि में उपजाने की सामर्थ्य हो। अथवा देश का अर्थ है प्राणियों के शरीर, जिनमें कर्मफल का उपभोग होगा अर्थात् जिनमें कर्मफल भोगने की सामर्थ्य हो। जहां पर ऐसे साधन या उपभोग बहुत मात्रा में या न्यून मात्रा में उपलब्ध होते हों अथवा पुरुषार्थ या कर्मवश या प्रारब्धवश जहां पहुंचकर भोग अथवा फल भोगने हों अथवा किसी भू-भाग विशेष में पहुंचकर दुःख, सुख रूप कर्मफल भोगना हो, उसे देश कहते हैं।

काल—काल का अर्थ है समय। जैसे वर्षा ऋतु में विशेष रूप से वनस्पतियां-औषधियां उत्पन्न होती हैं या वसन्त ऋतु में नवपल्लव, पुष्पादि किनलते हैं अथवा

वर्षा ऋतु में ही विशेष रूप से वर्षा होती है। अपने नियत समय पर ही वनस्पति, फूल, फल, अन्नादि पककर तैयार होते हैं। नियत समय पर ही दश मास में बालक स्वस्थ और भली प्रकार से उत्पन्न होता है। काल कर्मफल का माप तोल करके उसे प्रदान करता रहता है। कर्मफल के लिए उचित काल की प्रतीक्षा करनी होती है।

निमित्त--निमित्त वह है जो देश, काल और सामग्री को संयुक्त कर देता है अथवा संयोग का कारण बन जाता है। निमित्त कारण को भी कहते हैं, जैसे शरीर में आत्मा सान्निध्य मात्र से निमित्त कारण बना हुआ है अथवा जिस प्रकार ब्रह्म प्रकृति के सान्निध्य से सृष्टि रचना का निमित्त कारण बना हुआ है। इन दोनों स्थितियों में निमित्त का अर्थ संयोग है अथवा निमित्त का अर्थ चेतन भी हो सकता है क्योंकि शरीर और प्रकृति दोनों में चेतन निमित्त बने हुए हैं। इनके सम्बन्ध से शरीर और प्रकृति में कर्तृत्व धर्म उत्पन्न हो रहे हैं। ये दोनों कूटस्थ, अचल, निर्विकार, निष्क्रिय, संगदोष से रहित होकर स्थित हैं। निमित्त का अर्थ यहां जड़ पदार्थ भी समझा जाता है, जैसे आंधी बहुत वेग से चली और एक या इससे अधिक वट या पीपल के बीज को भूमि से उठाकर गगन मण्डल में से लेजाकर दूर देश में फेंक दिया—किसी दीवार के सुराख में या किसी पर्वत पर। वहां मिट्टी, जलादि के संयोग से वह बीज उपजकर एक बृहत्काय पेड़ के रूप में बन गया। इसमें वायु मुख्य रूप से निमित्त बन जाता है। कर्मफल भोग की प्राप्ति में कभी-कभी स्त्री-पुरुष, परिवार, ग्राम तथा देश के निवासी भी निमित्त बन जाया करते हैं। इनके मिलन या संयोग से प्रारब्ध अथवा वर्तमान काल में किए हुए कर्म के फल की उपलब्धि हो जाया करती है। अतः निमित्त भी अनेक अर्थों में कर्मफल प्रदान करने में देश तथा काल के समान सहयोगी होता है।

सामग्री--सामग्री का तात्पर्य है इस प्रकार के पदार्थ युक्त साधन जो कर्मफल प्रदान करने में सहायक होते हैं। देश, काल, निमित्त के अनुकूल होने पर भी कभी-कभी काम नहीं बनता। मान लीजिए, कहीं बड़ा आरोग्यप्रद स्थान है। यहां बहुत बड़ा अस्पताल है। डाक्टर बड़ा योग्य और कर्त्तव्य-परायण है। परन्तु रोगी के रोग की निवृत्ति के लिए सामग्री रूप औषध का अभाव है। ऐसी स्थिति में आरोग्यता रूप फल प्राप्त नहीं हो सकता। अतः कर्मफल प्रदान में औषधिरूप सामग्री की आवश्यकता है। इसे दूसरे प्रकार से भी समझो। फसल बोनी है। हलादि चलाकर भूमि तैयार कर दी गई है। फसल बोने का समय भी आ गया है, अतः समय भी अनुकूल है। निमित्त रूप से कृषक जो बीज बोएगा वह भी है। परन्तु कृषक का हल, बैल, फावड़ादि जो बीज बोने के लिए सहायक सामग्री थी उसे चोर चुराकर लेगए। सामग्री के अभाव में कृषक को जो विशेषरूप से फसल का लाभ होना था वह नहीं हो सका। अतः कर्मफल-भोग में सामग्री होना अत्यन्त उपयोगी और सहायक है। इससे यह सिद्ध होता है कि देश, काल, निमित्त और सामग्री कर्मफल प्रदान करने में समर्थ हैं। इसके लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं। भले ही कर्म जड़ हैं, परन्तु हम तो इनका फल भी जड़ रूप में ही मानते हैं अर्थात् जड़ रूप कर्म से जड़ रूप फल की उत्पत्ति हो रही है और इस फल प्रदान करने में ये चारों ही कारण बने हुए हैं। आत्मा और

परमात्मा का चित्त और प्रकृति के साथ सर्वत्र और सर्वदा सान्निध्य तो हम मानते ही हैं। सान्निध्य होने से कर्तापन या फलप्रदान कर्तापन सिद्ध नहीं होता।

चेतन के आश्रय से कर्म स्वयं फलप्रदाता—चित्त और प्रकृति में कर्म चेतन के आश्रय से होता है, अतः चेतन के आश्रय से ही कर्म स्वयं ही अपना फल प्रदान करने में देश, काल, निमित्त तथा सामग्री के सम्बन्ध से समर्थ हो जाएगा। इस कर्मफल की व्यवस्था करने में किसी की कर्तृत्वरूप में या न्यायाधीश के रूप में आवश्यकता नहीं है। जब कर्म चित्त का ही एक गुण या धर्मविशेष या क्रियाविशेष या व्यवहारविशेष ही है तो फल भी तो चित्त का ही गुण या धर्म विशेष मानना पड़ेगा। जिस फल को यह चित्त दुःख या सुख के रूप में मान रहा है, ये दुःख और सुख फल के रूप में इसी चित्त के ही धर्मविशेष हैं। इसलिए इस चित्त के कर्मफल प्रदान करने में किसी चेतन की आवश्यकता नहीं है। यदि हम चेतन में कर्म का होना मान लें और उसका फल प्रदान करने वाला किसी अन्य चेतन विशेष को मानें तब दोनों ही परिणामवाले सिद्ध हो जाएंगे क्योंकि दोनों में कर्म उत्पन्न हो रहा है। एक में इच्छापूर्वक कर्म उत्पन्न हो रहा है, दूसरे में फलप्रदान रूप कर्म उत्पन्न हो रहा है। वैशेषिकदर्शन में कर्म के ५ लक्षण किए हैं—'उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि।'

आत्मा और ईश्वर में कर्म का अभाव—श्री कणाद ने आत्मा और ईश्वर को द्रव्य मान कर इनमें ५ प्रकार के कर्म का अभाव माना है। हमारे सिद्धान्त में भी आत्मा और परमात्मा दोनों चेतन हैं, अतः इनमें कर्म का अभाव है, क्योंकि उत्क्षेपण अर्थात् ऊपर उठना, अवक्षेपण अर्थात् नीचे पड़ना, गिरना रूप कर्म ईश्वर में नहीं होता अथवा आकाश और पाताल में कर्म करना रूप धर्म भी नहीं बनता। आकुंचन अर्थात् सुकड़ना तथा प्रसारण व फैलना रूप कर्म आत्मा और परमात्मा दोनों में ही नहीं होता। यदि ये दोनों कर्म इनमें मानेंगे तो संकोच और विकास रूप होने से विकारवान् बन जाएंगे। गमनरूप धर्म भी ईश्वर में पैदा नहीं होता और न यह धर्म स्वाभाविक रूप से इसमें है क्योंकि गमन एकदेशी में होता है या जिसमें अवकाशरूप धर्म हो उसमें होता है। गति या गमन वहीं संभव है। आत्मा और परमात्मा में अवकाश रूप धर्म नहीं है। ये दोनों कूटस्थ, निरवयव हैं। जो सावयव होगा उसी में अवकाश रूप धर्म पैदा हो सकता है। चित्त और प्रकृति में ही ऐसा हो सकता है। आत्मा और परमात्मा दोनों निष्क्रिय हैं, इसलिए इनमें कर्तृत्व धर्म या फलदातृत्व धर्म नहीं है। संभव हो सकता है कि आप जीवात्मा के एकदेशी होने पर यह शंका करें कि इसमें गमनागमन रूप धर्म है। इस सूक्ष्म आत्मा को कोई अणु मानते हैं तथा कई आचार्य परमाणुवत् मानते हैं। कोई इसे बाल के अग्रभाग का दशसहस्रवां भाग मानते हैं, किन्तु हम इसको इतना सूक्ष्म मानते हैं जिसमें किसी प्रकार का कोई अवकाश न हो तथा जिसका कोई विभाग न हो सके। यह आत्मा भी इसलिए ईश्वर के समान निरवयव है। इसमें स्वयं गमनरूप धर्म नहीं है। एकदेशी होने से स्थूल, सूक्ष्म कारण-शरीर द्वारा इसका गमन हो जाता है। शरीरों द्वारा उठा कर ले जाया जा सकता है। गमनागमन रूप धर्म शरीरों का है, आत्मा का नहीं। आत्मा गमनरूप कर्म से रहित है। इससे सिद्ध होता है कि ये पांच प्रकार के कर्म चित्त और सर्व जगत् के उपादान

कारण रूप प्रकृति में ही होते हैं, आत्मा और परमात्मा में नहीं, क्योंकि ये दोनों कूटस्थ और निरवयव हैं।

श्री जगदीशचन्द्र डावर ने दूसरे दिन यह शंका की कि ईश्वर में अनेक गुण नित्य मानने में क्या दोष है ?

भगवान् में नित्य गुणों का अभाव

श्री महाराजजी ने इनकी शंका का समाधान करने के लिए निम्नलिखित प्रवचन किया :—

सर्वप्रथम यह समझने की आवश्यकता है कि ईश्वर में ये गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं या स्वरूप सम्बन्ध से अथवा तादात्म्य भाव सम्बन्ध से अथवा संयोग सम्बन्ध से रहते हैं।

समवाय सम्बन्ध—समवाय सम्बन्ध का अभिप्राय यह है कि जहां पर इस सम्बन्ध के होने से कार्य हो और न होने से न हो, जैसे सूत्र और वस्त्र का परस्पर समवाय सम्बन्ध है। सूत्र वस्त्र के प्रति समवायी कारण है और वस्त्र इसका कार्य है। सूत्र का समवायी सम्बन्ध होगा तभी वस्त्र बनेगा, अन्यथा नहीं। सूत्र अपने कार्य में वर्तमान है और विकार भाव को प्राप्त होकर कार्यरूप में विद्यमान है। क्या ईश्वर गुणों के प्रति समवायी कारण है और गुण उसके कार्य हैं ? यदि ऐसा मानोगे तो कार्य-कारण-भाव होने से ईश्वर परिणामी और परिवर्तनशील हो जाएगा।

स्वरूप सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध का तात्पर्य है गुण और गुणी का अभेद सम्बन्ध। इसी अभेद का नाम स्वरूप सम्बन्ध है। पंचतन्मात्राओं के संघात से जब पृथ्वी महाभूत उत्पन्न होता है तब इसमें क्रमपूर्वक निम्न धर्म उत्पन्न होते हैं :— आकार, स्थिरता, गुरुता, कठिनता, आच्छादन, विदारण, रूक्षतादि। यहां पृथ्वी और इन गुणों का परस्पर स्वरूप सम्बन्ध है। पृथ्वी गुणी है, गुरुता, कठिनतादि गुण हैं। ये गुण परिणत होती हुई पृथ्वी की अवस्था विशेष हैं। गुरुत्व परिणत होती हुई अवस्थाओं में गुण के रूप में रहता है। गुण और गुणी पृथक् नहीं रहते। गुण और गुणी में सदा अभेद रहता है। इस अभेद को ही स्वरूप सम्बन्ध कहा गया है। क्या ये गुण ईश्वर में कारण रूप से नित्य रहते हैं ? क्या ईश्वर परिणाम भाव को प्राप्त होकर इन गुणों को क्रमपूर्वक उत्पन्न करता है ? यदि आप नित्य गुणों का अभेद मानते हैं तो अभेद तभी सिद्ध होगा जब गुणी गुणों में पहुंच कर ठहर जाए। जैसे पृथ्वी गुणी है और गुरुत्व इसका गुण है। पृथ्वी गुरुत्व भाव को प्राप्त होकर गुरुत्व गुण में स्थित है, इसीलिए इसका गुण से अभेद सिद्ध होता है। गुणी गुणान्तरों के रूप में परिणत हो गया। क्या आपका ईश्वर इस प्रकार के अभेद रूप में गुणों में रहता है ? यदि ऐसा मानोगे तब ईश्वर भी पृथ्वी के समान विकारवान् बन जाएगा।

तादात्म्य-भाव सम्बन्ध—यदि तादात्म्य-भाव सम्बन्ध का अर्थ हम यह करते हैं कि ईश्वर और गुणों की तद्रूपता है अर्थात् दोनों का अभेद है, एकरूपता है, ईश्वर और उसके गुणों में एकरूपता है, तब उपरोक्त समवाय सम्बन्ध और स्वरूप सम्बन्ध के समान ही या तो कार्यान्तर अर्थात् कारण-कार्य-भाव मानना पड़ेगा अथवा द्रव्य की परिणत होती हुई अवस्था का परिणामान्तर मानना पड़ेगा। इसको योग की

परिभाषा में स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं और वैशेषिक की परिभाषा में समवाय सम्बन्ध कहते हैं, वेदान्त की परिभाषा में तादात्म्य-भाव सम्बन्ध कहते हैं। जब आप ईश्वर और इसके गुणों का तथा आत्मा और इसके गुणों का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध मानते हैं तो एक प्रकार से समवाय सम्बन्ध और स्वरूप सम्बन्ध का यह तादात्म्य सम्बन्ध भी पर्यायवाचक शब्द है और उपरोक्त दोनों के अर्थ का द्योतक है। या तो ईश्वर का अवस्थान्तर रूप परिणाम गुणों को मानो अथवा कार्यान्तर मानो। तादात्म्य-भाव सम्बन्ध भी ईश्वर में विकार भाव को ही सिद्ध करता है।

संयोग सम्बन्ध––इसका अभिप्राय है दो पृथक्-पृथक् पदार्थों का सम्बन्ध। ईश्वर और गुण दो पृथक्-पृथक् द्रव्य या पदार्थ हैं। द्रव्य और पदार्थ में हमारे ग्रंथों में भेद नहीं माना गया अर्थात् सबको पदार्थ रूप से ही वर्णन किया गया है। न्याय तथा वैशेषिक की परिभाषा में पृथ्वी, जलादि को द्रव्य माना है परन्तु हमने इन सब को पदार्थ ही माना है। यदि गुणों को अलग मानते हो तो इन दोनों अर्थात् ईश्वर और गुणों का नित्य संयोग होगा।

ईश्वर में नित्य गुणों के अभाव की सिद्धि––आप पुनः शंका करेंगे कि इन गुणों का उपादान कारण कौन है? यदि आप कहोगे प्रकृति है, तब ये गुण प्रकृति के हुए, ईश्वर के नित्य गुण नहीं हुए, अतः ईश्वर के नित्य गुण सिद्ध नहीं होते। आप कहोगे कि जैसे दाह और प्रकाश अग्नि के स्वाभाविक गुण हैं, ऐसे ही ईश्वर में भी उसके गुण स्वाभाविक हैं। किन्तु आपको यह समझना चाहिए कि अग्नि उत्पन्न हुआ है, अतः उसके गुण भी उत्पन्न हुए हैं और उसके साथ ही उत्पन्न हुए हैं, किन्तु ईश्वर तो उत्पन्न नहीं हुआ। जिसमें विकार धर्म नहीं है उसमें गुणान्तर की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। अग्नि का दृष्टान्त इसलिए दृष्टान्ताभास ही है, यथार्थ दृष्टान्त नहीं। संयोग सदैव दो पदार्थों का होता है, चाहे वे नित्य हों या अनित्य, इसलिए ईश्वर और गुण दो सिद्ध होते हैं। संयोग सम्बन्ध मानने से ईश्वर में भी ममेदं की भावना हो जाएगी और वह भी मनुष्य के समान बद्ध हो जाएगा। ईश्वर के विकारवान् हुए बिना गुण उसमें सिद्ध नहीं होते और यदि होंगे भी तो अनित्य होंगे, नित्य नहीं। गुणों में अनेकत्व है तो क्या ईश्वर भी अनेक प्रकार से विकारी बना रहेगा? जहां अनेकत्व होगा वहां भेद होगा और नानात्व होगा। क्या ईश्वर में नित्य गुणों के कारण नानात्व मानोगे? जहां और जिसमें नानात्व है वहां विकारभाव अवश्य मानना पड़ेगा।

विकार रहित होने से क्रिया का अभाव––आप उपनिषद् वाक्य का प्रमाण देंगे—"तस्य स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया।" यदि ईश्वर में ज्ञान, बल, क्रिया स्वाभाविक मानते हो तो क्रिया पांच प्रकार के कर्मों के अन्तर्गत आ जाती है। जहां गति है, कर्म है तथा व्यापार है, वहां परिवर्तन, परिणाम, गमनादि विकार मानने पड़ेंगे। नित्य क्रिया ईश्वर में रहने से वह भी प्रकृति के समान परिणत होता रहेगा। तब प्रकृति और ईश्वर में क्या अन्तर रहा? वह जड़ होकर परिणत हो रही है, यह चेतन होकर परिणत हो रहा है। अतः नित्य निष्क्रिय ईश्वर में कोई भी नित्य या अनित्य गुण सिद्ध नहीं होता। इस उपनिषद् वाक्य में जो ये गुण ईश्वर में स्वाभाविक कह दिए हैं उसके विषय में यह समझो कि प्रकृति भी नित्य है और ईश्वर

भी नित्य है। सदा दोनों का व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध रहता है। तीनों गुण प्रकृति में ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनको ईश्वर में आरोप कर दिया गया है, ईश्वर पर थोप दिया गया है, क्योंकि इन दोनों का सदा सम्बन्ध रहता है। इस वाक्य में इनको ज्ञान, बल, क्रिया कहा है और सांख्य में सत्व, तम और रज कहा गया है और ये प्रकृति के ही गुणविशेष या कार्यविशेष अथवा अवस्थाविशेष ही माने गए हैं। इसलिए ये तीनों गुण ईश्वर के न मानकर प्रकृति के मानने चाहिएं। ऐसा मानने से ही संसार की उत्पत्ति हो सकती है। ईश्वर को कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। केवल मात्र ईश्वर की या ब्रह्म की निर्विकार, कूटस्थ रूप में स्थिति रहनी चाहिए। इसके सान्निध्य से संसार के सब कार्य होते रहेंगे। हम चेतन ब्रह्म या ईश्वर का अभाव तो नहीं मानते, हम तो केवल मात्र उसको निर्गुण, निष्क्रिय तथा निरवयव सिद्ध करना चाहते हैं।

सब श्रोतागण पूज्य महाराजजी के पांडित्यपूर्ण, तर्कसंगत और युक्तियुक्त समाधान को सुनकर सन्तुष्ट होगए।

वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम रोहतक को प्रस्थान

इसी प्रकार अनेक शंका-समाधानपूर्वक पूज्य महाराजजी के ८ दिन तक सारगर्भित व्याख्यान् होते रहे और दिल्ली निवासियों ने इनसे आशातीत लाभ उठाया। दो तारीख को एक बजे के लगभग महाराजजी के सैकड़ों भक्त दर्शनार्थ आए। इनको पूज्य स्वामीजी महाराज ने लगभग एक घण्टा तक अपने उपदेशामृत का पान करवाया। अढ़ाई बजे सबने श्रद्धापूर्वक सम्मान से रोहतक के लिए विदा किया। रोहतक से महात्मा प्रभुआश्रितजी तथा उनके शिष्यों ने बार-बार वहां पधारने के लिए प्रार्थना की थी, अतः वहां जाना आवश्यक था। श्री जगदीशचन्द्र डावर अपनी कार में पूज्य गुरुदेव को रोहतक ले गए थे। स्वामी विज्ञानानन्दजी, ओम्प्रकाशजी तथा शान्ता और कई भक्त, शिष्य और शिष्याएं गईं। वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम में महाराजजी का बड़ा भारी स्वागत किया गया। पूज्य गुरुदेव का ईश्वरभक्ति और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधनों पर उपदेश हुआ। वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम की ओर से आपको निम्नलिखित एक अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया :—

अभिनन्दन-पत्रम्

ओउम् स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव सचस्व नः स्वस्तये।

श्रीब्रह्मर्षिवरस्य योगिराजस्य श्रीस्वामिनो योगेश्वरानन्दमहाराजस्य सेवायाम् :—

अद्य नववर्षारम्भस्य शुभे दिवसे वयं सर्वे रोहतकनिवासिनः परमसौभाग्यशालिनः यदस्मिन् शुभावसरेऽखिलविश्वमाननीयस्य योगिसम्राजो ब्रह्मर्षेः श्रीस्वामिनो योगेश्वरानन्दमहाराजस्य शुभदर्शनानि प्राप्य कृतार्थतां लभामहे!

भवदीयदर्शनं सम्प्रति नः मानसानां दुर्भावनां हरति अतः शुभस्य हेतुः, पुराकृतानां शुभकर्मणां च परिणामः यत् भवदीयदर्शनं अस्माकं त्रैकालिकीं सौभाग्यसमृद्धिं प्रदर्शयति। वयमेतादृशस्य महापुरुषस्य शुभदर्शनं प्राप्नुवन्तःस्म यः अष्टादशवर्षपर्यन्तं गंगोत्रीपर्वते निवासं कृतवान्, येन चाष्टादशवर्षपर्यन्तं कदाचिदपि

पर्वतादधः पदं न रक्षितम्, यो बाल्यादेव ब्रह्मचर्यं पालयन् योगसाधनेन विविधाः योगसिद्धयः प्राप्तवानस्ति, यश्चेश्वरजीवप्रकृतीनां साक्षात्कारं प्राप्तवान्, येन चामर-ग्रन्थाः आत्म-विज्ञानम्, बहिरङ्गयोगः, ब्रह्मविज्ञानञ्चेति नामानो विरचिताः जगतश्च महानुपकारः कृतः ।

आत्म-विज्ञानं हि हिन्दीभाषायामाङ्गलभाषायां च ५०० पृष्ठेषु लिखितमस्ति । बहिरङ्गयोगे २५० आसनानि योगसम्बन्धीनि सन्ति । एवं ब्रह्मविज्ञाने चातिगुह्यज्ञानं विशदीकृतम् यदद्यपर्यन्तं केनापि एतावत्या सरलतया न स्पष्टीकृतम् ।

यस्य चोत्तरकाश्यां स्वर्गाश्रमे च योगनिकेतनौ स्तः यश्च प्रतिवर्षं देशे विभिन्न-स्थानेषु योगशिवराणि संस्थाप्य योगं प्रचारयति । एतादृशं महान्तं पुरुषं योगिसम्राजं वयं रोहतकनिवासिनो हार्दिकस्वागतेन संमानयामः अभिनन्दयामश्च, तदीयपवित्र-चरणारविन्दयोः साष्टाङ्गं दण्डवत्प्रणामं कुर्मः । सविनयं प्रार्थयामश्च यन्महोदया भवन्त एतादृशमुपदेशामृतं पाययन्तु येनास्माकं सर्वेषां परमकल्याणं भवेत् ।

वैदिक भक्ति-साधना-आश्रम, निवेदका भवतां कृपाभिलाषिणः
रोहतक १.१.६५ रोहतकनिवासिनो जनाः

सायंकाल चायपान करके अपने कई भक्तों के निवासस्थानों पर आशीर्वाद देने गए और तत्पश्चात् दिल्ली लौट गए ।

अहमदाबाद गमन

यहां से पूज्य महाराजजी को अहमदाबाद पधारना था । विदा होने से पूर्व एकत्रित सब भक्तों और शिष्यों को उपदेश दिया । हवाईजहाज़ में अहमदाबाद के लिए स्थान नियत करवा दिया गया था । एरोड्रोम पर श्री जगदीशचन्द्रजी, उनकी धर्मपत्नी, श्री ओमप्रकाशजी, शान्ताजी, द्वारिकानाथजी, सुदर्शनजी, शंकर-लालजी, लक्ष्मीदेवीजी आदि बहुत से भक्त और शिष्य महाराजजी को सम्मान-पूर्वक विदा करने गए । तीन बजे हवाईजहाज़ रवाना हुआ और छः बजे अहमदाबाद पहुंच गया । वहां पर सेठ रमणलाल लल्लूभाई, सेठ भोगीलाल बालाभाई, सेठ मोहन-लाल फूलचन्द शाहादि अनेक सज्जन स्वागतार्थ आए । सेठ रमणलालजी ने अचले-श्वर महादेव के एकान्त स्थान में पूज्य महाराजजी को ठहराया तथा भोजन आदि की बड़ी उत्तम व्यवस्था की । ये १२ वर्ष पूर्व यात्रार्थ गंगोत्री आए थे और महाराजजी के पास योगनिकेतन में ३-४ दिन तक अपने मित्रों के साथ रहे थे । तब से ये योग-निकेतन की सहायता करते रहते हैं । महाराजजी के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति रखते हैं । इन्होंने पूज्य स्वामीजी महाराजजी से अहमदाबाद में कई भाषण देने के लिए प्रार्थना की जिससे हिमालय के योगी के विशेष आत्म-ज्ञान सम्बन्धी अनुभवों से अहमदाबाद की जनता भी लाभ उठा सके । श्री महाराजजी के कई दिनों से सिर में पीड़ा रहती थी इसलिए केवल एक व्याख्यान 'योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार' विषय पर रखा गया । सेठ रमणलाल यहां के संन्यासाश्रम के ट्रस्टी थे । इस आश्रम में नित्य प्रति सत्संग और व्याख्यान होते थे । स्वामी कृष्णानन्द मण्डलेश्वर यहां के अध्यक्ष थे । ये सत्संगियों को शास्त्र भी पढ़ाते थे और कथा भी करते थे । महाराजजी के

व्याख्यान की सर्वत्र घोषणा करवा दी थी और विज्ञापन भी बंटवा दिए गए थे। व्याख्यान सायंकाल ६ बजे से ७ बजे तक संन्यासाश्रम में हुआ।

योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार

लगभग छः हज़ार की संख्या में लोग महाराजजी के भाषण में उपस्थित हुए। इन्होंने 'अयन्तु परमो धर्मः यत्योगेनात्मदर्शनम्' से अपना प्रवचन प्रारंभ किया।

प्रत्याहार––जिज्ञासु को चाहिए कि सर्वप्रथम प्रत्याहार के द्वारा अपनी विषयों में गमन करती हुई इन्द्रियों को रोके।

धारणा––भ्रूमध्य में धारणा पक्की करनी चाहिए। कुछ काल तक धारणा के पक्की हो जाने के अनन्तर इसी स्थान पर ध्यान को दृढ़ करे। इसके दो साधन हैं। एक तो नेत्रों को खुले रखकर, दूसरा नेत्रों को बन्द करके। दोनों साधनों से ध्यान की दृष्टि को अन्दर की ओर मोड़े। कुछ दिनों के पश्चात् एक प्रकाश या ज्योति सी दीखने लगती है। यदि नेत्र खोलकर साधक अभ्यास करता है तब यह ज्योति स्थिर और निर्भ्रान्त सी प्रतीत होती है। यह ज्योति वास्तव में अन्दर के सूक्ष्म नेत्र की होती है। यदि साधक नेत्र बन्द करके ध्यान द्वारा इसको देखता है तब यह ज्योति बाहर को निकलना चाहती है। नेत्रपटल बन्द होने से यह पटलों के साथ टक्कर खा-खाकर गुब्बारे सी या फूलझड़ियां सी बनकर रंग-बिरंगे रंग-रूप तथा आकार की दिखाई देने लगती है। नेत्रपटल के साथ टकरा-टकरा कर यह कभी सूर्य के प्रकाश के समान, कभी चन्द्र के प्रकाश के समान, कभी जुगनु के प्रकाश के समान और कभी-कभी छोटे सूर्य और कभी छोटे से चन्द्र के समान दिखाई देने लगती है। वास्तव में यह सूक्ष्म नेत्र का प्रकाश सूक्ष्म प्रकाश वाहिनी नाड़ियों के द्वारा स्थूल नेत्र से बाहर निकलकर कुछ देखना चाहता है किन्तु नेत्र बंद होने से यह वहीं टकरा कर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकाश उत्पन्न करने लगता है। यह कभी-कभी साधक को भ्रांन्त सा भी बना देता है और मनोरंजन का एक साधन सा भी बन जाता है। इस भ्रांति को दूर करने के लिए अभ्यासी को नेत्र खोलकर अभ्यास करना चाहिए। इसे उन्मुनी मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार नेत्र खोलकर अन्दर भ्रूमध्य और ब्रह्मरंध्र में ध्यान करने से वह ज्योति यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष होने लगती है। उससे जो पदार्थ या दृश्य भीतर देखना चाहता है उसे दिखाने में वह समर्थ हो जाती है। अपने मनोबल से उसको शरीर में जिस ओर को या शरीर के जिस किसी प्रदेश में ध्यानस्थ साधक घुमा देता है उसी स्थान पर वह उस पदार्थ का ज्ञान करवा देती है। जिस प्रकार बाहर के स्थूल नेत्र बाहर की ओर सब पदार्थों को दिखाते हैं इसी प्रकार अन्दर का सूक्ष्म नेत्र अन्दर के सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को दिखाने में समर्थ हो जाता है। देखे हुए पदार्थ का बुद्धि निर्णय करेगी कि उस पदार्थ का रंग-रूप, आकार-प्रकार किस प्रकार का है, अतः अभ्यासी अपने सूक्ष्म नेत्र से, जिसे दिव्य चक्षु या तृतीय नेत्र भी कहते हैं, काम ले। इसके साथ मन की दूरबीन लगाकर इससे मूलाधार में देखे। मूलाधार में साधक के ध्यान बल से दो शक्तियां पैदा होंगी :—एक प्रकाशात्मक कुण्डलिनी शक्ति और दूसरी स्पर्शात्मक प्राण शक्ति।

कुण्डलिनी शक्ति--कुण्डलिनी शक्ति यहां की सब नाड़ियों को प्रकाशित कर देगी अर्थात् स्थूल शरीर की सब रचना दिखा देगी।

प्राणोत्थान शक्ति--प्राण शक्ति या प्राणोत्थान शक्ति उत्पन्न होगी, वह स्पर्श करती हुई उर्ध्व गमन करेगी तथा आनन्ददायक स्पर्श करती हुई, रीढ़ की हड्डी के साथ होती हुई कंठ के ऊपर लघु मस्तिष्क से ऊपर को उठकर ब्रह्मरंध्र में जाकर वहां पर मधुर और आनन्ददायक स्पर्श का अनुभव कराती रहेगी। बहुत काल तक स्थिरता और आनन्द स्पर्श दायक समाधि जैसी स्थिति बनाए रखेगी। जब प्राण-शक्ति मूलाधार से उठकर चलती है तब यह स्थूल शरीर की नस-नाड़ियों और इडा, पिंगला सुषुम्णादि का स्पर्श करती हुई रोमांचित करती हुई सी चलती है और इन सबका स्पर्श के द्वारा ज्ञान करवाती चलती है। ब्रह्मरंध्र में पहुंचकर अनेक आनन्द-दायक स्पर्श करवाती रहती है और सब प्रकार के दिव्य स्पर्श की अनुभूति करवाती रहती है। जब यह मूलाधार से गमन करती है तब सब चक्रों के केन्द्रों का स्पर्शानु-भूति द्वारा साक्षात्कार कराती हुई चलती है और सहस्र-दल-कमल में पहुंचकर योगी को दिव्य स्पर्श द्वारा आह्लाद और आनन्द का हेतु बहुत काल तक बनकर विशेष ब्रह्मरंध्र के पदार्थों का अनुभव करवाती है। एक चक्षुहीन पुरुष अपने हाथ के स्पर्श द्वारा जिस प्रकार बड़े से बड़े भवन को स्पर्श के द्वारा जानने में समर्थ होता है उसी प्रकार प्राणोत्थान शक्ति सारे शरीरगत पदार्थों का स्पर्श के द्वारा अनुभव करवाती है। योगी इस प्राणोत्थान शक्ति द्वारा अर्थात् इसके स्पर्श द्वारा सर्व विज्ञान प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह स्पर्शानुभूति रूप को नहीं दिखाती पर स्पर्श से सारे विज्ञान को प्राप्त करवाने में समर्थ है। इस प्रकार से यह स्पर्श द्वारा पदार्थों के प्रत्यक्ष विज्ञान का हेतु बनती है। कुण्डलिनी शक्ति से भी यह अधिक सूक्ष्म शक्ति है और यह शरीर में वायु महाभूत का कारण स्पर्श तन्मात्रा की दिव्य स्पर्शानुभूति करवाती है। मूलाधार में प्राणोत्थान होकर दिव्य स्पर्श को पैदा कर देता है। अतः यह स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के स्पर्शों का हेतु बन जाता है। स्थूल शरीर में यह नस-नाड़ियों आदि की स्पर्श से अनुभूति करवाता है और सूक्ष्म दिव्य स्पर्श से सूक्ष्म शरीर के पदार्थों को प्रत्यक्ष कर देता है। जिन योगियों ने इस प्राण विज्ञान से काम लिया है, इसके स्पर्श द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के पदार्थों के प्रत्यक्ष करने का अभ्यास किया है, उनको कुण्डलिनी शक्ति द्वारा या दिव्य चक्षु द्वारा दोनों शरीरों को देखने की आवश्यकता नहीं रहती। उन योगियों को इस दिव्य स्पर्शानुभूति द्वारा सब पदार्थों का साक्षात्कार हो जाता है। जिस प्रकार नेत्रहीन आकारवान् पदार्थों को अपने हाथ के स्पर्श द्वारा देख लेता है, समझ लेता है, उसके आकार-प्रकार को कथन करके बता सकता है, समझा सकता है, उसी प्रकार योगी दिव्य स्पर्श द्वारा पदार्थों को प्रत्यक्ष कर सकता है, समझ सकता है। अतः कुण्डलिनी शक्ति जिस प्रकार पदार्थों का प्रत्यक्ष करवाती है इसी प्रकार प्राणोत्थान शक्ति भी स्पर्श के द्वारा पदार्थों का साक्षात्कार करवाती है। प्राण की गति स्पर्श करती हुई चलती है। यदि योगी को इस विद्या का विज्ञान समझ में आजाए तो इसके द्वारा ही वह सब कुछ प्रत्यक्ष कर सकता है। जैसे नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष करता है ऐसे ही स्पर्शेन्द्रिय द्वारा भी पदार्थों का प्रत्यक्ष कर सकता है। इस प्राण विद्या के विज्ञान का अभाव हो जाने से कुण्डलिनी

शक्ति पर अर्वाचीन योगियों ने विशेष बल दिया है। यह भी अग्नि महाभूत के उपादान कारण रूपतन्मात्रा का ही कार्यविशेष है जिसे कुण्डलिनी शक्ति के नाम से कहा जाता है। इसको अग्नि महाभूत का कार्य या दिव्य तेज ही कह सकते हैं। यह स्थूल शरीर की रचना में सहकारी हुआ है। यह भी प्राण के समान है। अग्नि महाभूत का कार्य तेज स्थूल शरीर की रचना को दिखाता है और रूपतन्मात्रा का कार्य सूक्ष्म की रचना को दिखाता है। यह विज्ञान प्राणोत्थान विज्ञान की अपेक्षा स्थूल है। जिन योगियों को दिव्य चक्षु द्वारा अन्दर के पदार्थों को देखने में कठिनाई होती है या इस विद्या का विज्ञान समझ में नहीं आता है उनको दिव्य स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अन्दर के पदार्थों का अनुभव या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्पर्शेन्द्रिय सारे स्थूल शरीर के बाहिर और भीतर व्याप्त सी है, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में भी स्पर्शेन्द्रिय व्याप्त होकर स्थित है। शरीर के बाहिर तो स्पर्श द्वारा ज्ञान होता ही है परन्तु अन्दर भी स्पर्श की अनुभूति होती है। इस प्राणोत्थान गति द्वारा दश प्रकार के प्राणों का भी प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

कुण्डलिनी शक्ति का जागरण या उत्थान—ध्यान की दिव्य दृष्टि से जब योगी मूलाधार में प्रवेश करता है तब यह दिव्य ज्योति प्रकट होती है। यह ज्योति हमारे शरीर में जो स्थूल महाभूत अग्नि के रूप में शरीर के निर्माण में सहयोगी कारण है और इसी का उपादान कारण जो रूपतन्मात्रा है उसीका यह एक कार्यरूप में विशेष दिव्य प्रकाश होता है जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों के पदार्थों को दिखाने में वा प्रत्यक्ष करवाने में सहायक होता है। जब योगी मूलाधार स्थित अग्नि का मंथन ध्यान की दिव्य दृष्टि से करता है तब वह इसी का सूक्ष्म रूप बनकर पंचतन्मात्रा के रूप में प्रकट होकर उर्ध्व गमन करती है अथवा यहीं स्थिर रहकर इस स्थान को प्रकाशित कर देती है। यदि यह रूपतन्मात्रा का कार्य न होती तो यह सूक्ष्म चक्रों को कैसे प्रकाशित कर सकती थी ? ये चक्र प्रकाश के रूप में ही दिखाई देते हैं। ये स्थूल अग्नि का कार्य तो नहीं होते, यद्यपि प्रकट तो नस-नाड़ियों के गुच्छों पर ही होते हैं। जैसे ब्रह्मरंध्र में सूक्ष्मेन्द्रियों के कम्पन या क्रिया का प्रभाव सूक्ष्म ज्ञान-वाहक नाड़ियों पर पड़ता है इसी प्रकार दिव्य रूपतन्मात्रा का प्रभाव चक्रों पर पड़ता है, तभी तो ये नाड़ियों के गुच्छे भिन्न-भिन्न रंग के आकारों और प्रकारों के रूप में भासमान होने लगते हैं। अतः यह कुण्डलिनी शक्ति भी रूपतन्मात्रा का ही कार्य होती है। इसका सम्बन्ध मुख्य रूप में सूक्ष्म शरीर और गौण रूप में स्थूल शरीर के नस, नाड़ी, अस्थि आदि से है। आप पूछेंगे कि यह अग्निभूत का कार्य है या रूपतन्मात्रा का ? यदि केवल अग्निभूत का ही कार्य होती तो सूक्ष्म शरीर के अंग-प्रत्यंग को दिखाने में समर्थ न होती, केवल स्थूल शरीर को ही अन्दर से दिखाती। परन्तु यह तो सूक्ष्म शरीर के निवास-स्थान ब्रह्मरंध्र और हृदय प्रदेश को भी दिखाती है। सूक्ष्म रूपतन्मात्रा सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों को दिखाने में समर्थ होती है, किन्तु स्थूल अग्नि नहीं। अतः इससे सिद्ध होता है कि यह दिव्य रूपतन्मात्रा का ही रूप होनी चाहिए। अब यह शंका हो सकती है कि दोनों शक्तियां प्राणोत्थान और कुण्डलिनी-उत्थान यहां मूलाधार में ही क्यों प्रकट या उत्पन्न होती हैं ? वास्तव में मूलाधार इनके प्रकट होने का मध्य प्रदेश है। नाभि से लेकर पाद तल तक इन दोनों

का प्रदेश है। ये दोनों यहां तमःप्रधान रूप में वर्तमान रहती हैं। यहां के प्रदेश में प्राण और अग्नि दोनों ही तमःप्रधान रूप में वास करती हैं।

कुण्डलिनी स्थूल और सूक्ष्म शरीरों को प्रकाशित करती है––ध्यान बल से उठी हुई यह कुण्डलिनी की शक्ति स्थूल शरीर के भीतर और सूक्ष्म शरीर के भीतर प्रकाश करती है। योगी को इसे लेकर स्थूल शरीर की रचना का और सूक्ष्म शरीर की रचना का साक्षात्कार करना चाहिए। मनुष्य की आंख देखने में समर्थ है क्योंकि यह प्रकाशयुक्त है और इसमें देखने की शक्ति है परन्तु इसको भी इतर प्रकाश की अपेक्षा है अर्थात् सूर्य, चन्द्र, दीपकादि की रोशनी की। यदि ये न हों तो यह देखते हुए भी नहीं देखती। इसी प्रकार से अन्दर का दिव्य-चक्षु भी इतर प्रकाश की अपेक्षा रखता है। यहां इतर प्रकाश का अभिप्राय है रूपतन्मात्रा के अनेक रूपवान् पदार्थ। इतर प्रकाश में कुण्डलिनी शक्ति का भी रूप है जो सूक्ष्म दिव्य-नेत्र को दिखाने में सहयोगी होता है। योगी इस मूलाधार में स्थित तमःप्रधान अग्नि-रूपतन्मात्रा का संवर्षण करके प्रदीप्त करता है, तब ये दोनों ज्योतियां इतर पदार्थों के दर्शन में सहायक हो जाती हैं। ये दोनों शक्तियां ब्रह्मरंध्र और हृदय में भी विद्यमान हैं। सात्विक, राजस भेद से प्राण और अग्नि के रूप में।

इस ज्योति से प्रथम स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त करो––योगी को इस ज्योति को लेकर सर्वप्रथम स्थूल शरीर का विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आत्मा के ऊपर सबसे प्रथम आवरण स्थूल शरीर का है। इसको भेदन करके प्राणमय कोश में प्रवेश करें क्योंकि इस स्थूल शरीर के जीवन का आधार यह प्राणमय कोश ही है। तत्पश्चात् ब्रह्मरंध्र में मनोमय कोश का प्रत्यक्ष करें। इसमें पांच तन्मात्राओं के स्वरूप और दश कर्म और ज्ञान इन्द्रियों के स्वरूप का साक्षात्कार करें। तदनन्तर मन का प्रत्यक्ष करें। इस प्रकार इस मनोमय कोश में १६ पदार्थ हैं। यह ब्रह्मरंध्र का दिव्य चक्षु इन सबको दिखाने में समर्थ होता है। इसके पश्चात् योगी इस मनोमय कोश के तीसरे आवरण को उल्लंघन करके आगे विज्ञानमय कोश में प्रवेश करे। १६ पदार्थ मनोमय कोश के और एक बुद्धि मिलकर विज्ञानमय कोश बनता है। यह ब्रह्मरंध्र में है। इसमें बुद्धि की ही विशेषता है। इसके सम्बन्ध से यह विज्ञानमय कोश सर्व पदार्थों का साक्षात्कार करवा देता है।

ऋतम्भरा बुद्धि––इन पदार्थों के विज्ञान-काल में ऋतम्भरा बुद्धि उत्पन्न हो जाती है जो आत्म-साक्षात्कार का हेतु बनती है। इस मनोमय तथा विज्ञानमय कोश में ही स्थूल भूतों और सूक्ष्म भूतों का साक्षात्कार योगी कर लेता है। यहां पर ही योगी सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा आहंकारिक सृष्टि का साक्षात्कार करके परम वैराग्य को दृढ़ करता है। इन सब पदार्थों को वैराग्य द्वारा हेय समझने लगता है। इनके बंधन से मुक्त होने की भावना को दृढ़ करता है। बहुत काल के अभ्यास से यह दृढ़-भूमि होता है। इस सूक्ष्म शरीर ने अपने गर्भ में कारण-शरीर को धारण किया हुआ है। कोश के लिहाज़ से आत्मा के ऊपर यह चौथा आवरण है और शरीर के लिहाज से दूसरा आवरण है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के ही आकार-प्रकार का है।

आनन्दमय कोश—इसके पश्चात् योगी को और आगे बढ़कर पंचम आवरण का भेदन करना चाहिए अर्थात् हृदय प्रदेश में कारण-शरीर को भेदन करे। पंचम

कोश में प्रवेश करे। सर्वप्रथम यहां तीन ज्योतियां दिखाई देंगी। प्रथम सूक्ष्म प्राण का मण्डल, दूसरा अहंकार का मण्डल, तीसरा चित्त का मण्डल। सूक्ष्म प्राण-मण्डल हलके से गुलाबी रंग का होता है और अहंकार का मण्डल हलके से नील वर्ण का तथा चित्त मण्डल श्वेत वर्ण का होता है। चित्त के स्फटिक के समान शुभ्र मण्डल के मध्य में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुवत् चेतन तत्त्व के दर्शन होंगे। यह दिव्य ज्योतिर्मय है, निष्क्रिय है, अडोल और कूटस्थ है। इस अत्यन्त सूक्ष्म चेतन तत्त्व का पता लगना कठिन है। साधक को चित्त में अत्यन्त जहां कुछ गति सी हो रही हो, कुछ क्रिया-सी की अनुभूति हो, उसी स्थान पर चेतन तत्त्व की खोज करनी चाहिए। क्योंकि चित्त को ज्ञान और क्रिया इस चेतन तत्त्व से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए चित्त के जिस भाग में क्रिया या स्पन्दन सा मालूम हो वहीं पर चेतन तत्त्व के दर्शन करें। यह स्थान चित्त के मध्य में है। इस चित्त-रूपी दर्पण पर अहंकार-रूपी वृत्ति के द्वारा या भावना के द्वारा जब योगी को अहमस्मि का बोध होता है तब उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस आनन्द के विषय में उपनिषद् में वर्णन किया है—"न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।" इसका भाव यह है कि जो आत्मा स्वयं अन्तःकरण के द्वारा साक्षात्कार किया जाता है उसको वाणी वर्णन नहीं कर सकती। इन चारों तत्त्वों के ऊपर इनको आवरण करके एक और कोश के रूप में प्रकृति का आवरण है। यह जीवात्मा और परमात्मा का परस्पर भेद सिद्ध करता है। यह प्रकृति का आवरण अहंकार व चित्त के गर्भ में आत्मा को अंडे के समान गर्भ में धारण करके रखता है। यदि प्रकृति का आवरण आत्मा के ऊपर न हो तब आत्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व भेद करना, पृथक् जानना या अनुभव करना कठिन हो जाए क्योंकि दोनों चेतन तत्त्व समान से ही हैं। केवल सूक्ष्मता और महानता का ही अन्तर है। योगी आत्म-साक्षात्कार के अनन्तर इस कारण रूप प्रकृति के आवरण को भेदन करके या उल्लंघन करके या इसको पृथक् रूप से साक्षात्कार करके ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार करता है। इसके स्वरूप को देखकर चेतन आत्मा का अनुभव करता है कि जैसा चेतन तत्त्व मैंने आत्मा को देखा था तद्वत् या वैसा ही यह ब्रह्म भी है। योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने का मार्ग छोटा और सुगम है। इसके द्वारा आप बहुत शीघ्र अपने वास्तविक स्वरूप का और ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार कर सकेंगे। इसकी अपेक्षा एक और साधन या मार्ग जो बहुत गहन और दुस्तर है, अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, उसका वर्णन विस्तारपूर्वक मैंने 'आत्म-विज्ञान' और 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थों में किया है।

पूज्य गुरुदेव के इस उपदेश को अहमदाबाद की जनता ने बड़ी शान्ति से सुना। इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और हज़ारों श्रोताओं ने इससे लाभ उठाया।

श्री महाराजजी को रमणलाल लल्लुभाई नित्यप्रति अढ़ाई बजे से साढ़े पांच बजे तक अहमदाबाद के मुख्य-मुख्य आश्रमों, मंदिरों और ऐतिहासिक स्थानों को दिखाने के लिए ले जाया करते थे। वहां के मण्डलेश्वरों से भी परिचय करवाया। नगर के प्रतिष्ठित सेठ नरसिंहलाल लल्लुभाई, अमृतलाल हरगोविन्ददास, मोहनलाल मूलचन्द शाह, भोगीलाल बालाभाई शाह आदि कई सेठों से परिचय करवाया और

इनके निवासस्थानों पर ग्राशीर्वाद दिलवाने के लिए भी लेगए। यहां पर महाराजजी ५ दिन तक विराजे।

पेटलाद गमन

ग्रब इन्हें पेटलाद पधारना था। वहां से रमणलाल केशवलाल राजमित्र दातार के पुत्र श्री ग्रमृतलाल ग्रपनी कार लेकर पूज्य स्वामीजी महाराज को लेने के लिए ग्रागए। ग्रहमदाबाद के सभी भक्तों, शिष्यों, सेठों ग्रौर जनता ने बड़े सम्मान के साथ महाराजजी को विदा किया। प्रातः सात बजे ग्रहमदाबाद से चलकर लगभग ग्यारह बजे पेटलाद पहुंच गए। यहां पर तीन दिन निवास करना था। यहां पर सेठ ग्रमृतलाल के पास ठहरे। इनके पिताजी सेठ रमणलालजी के साथ महाराजजी का बड़ा स्नेह भाव था। इन्होंने चार बार गंगोत्री ग्राकर योगनिकेतन में वास किया था। ग्रब ये तीन-चार साल से कहीं ग्राते-जाते नहीं थे। शरीर कमजोर ग्रौर शिथिल होगया था। बड़े शांत भाव से वीतराग होकर जीवन्मुक्तों के समान रहते थे। दो सेवक इनकी सेवा में रहते थे। इनको किसी से ग्रब मोह तथा ममता नहीं रही थी। न इन्हें कोई हर्ष था न शोक। इन्हीं के साथ मिलता-जुलता जीवन ग्रहमदाबाद में नरसिंहलाल लल्लुभाई का था। महात्माग्रों के दर्शन ग्रौर सत्संग की रुचि थी। स्वाध्याय से प्रेम था ग्रौर दान में प्रवृत्ति थी। ग्रन्य किसी भी सांसारिक कार्य में इनकी रुचि नहीं थी। श्री ग्रमृतलाल ग्रपना सारा कारोबार छोड़कर निरन्तर पूज्य गुरुदेव की सेवा में रहे क्योंकि यह योगनिकेतन ट्रस्ट के मैम्बर थे। इन्होंने ग्रपने दोनों कारखाने दिखाए, डाकोरजी के मंदिर के दर्शन करवाने लेगए तथा ग्रन्य ग्रनेक दर्शनीय स्थान दिखाए। पेटलाद में पूज्य महाराजजी के दो व्याख्यान हुए। इनके विषय थे 'ईश्वर भक्ति तथा सुखी गृहस्थ के साधन'।

सूरत प्रस्थान

तीसरे दिन सूरत के सेठ चैतन्यदेव ग्रौर मंगलसेन चोपड़ा ग्रपनी कार लेकर सायंकाल पधारे। इन्होंने रात्रि को यहीं विश्राम किया ग्रौर प्रातःकाल सेठ ग्रमृतलाल रमणलाल ने बड़े सम्मान के साथ विदा किया। सूरत में महाराजजी ७ दिन तक विराजे। इन्हीं दिनों सेठजी ने श्री ग्रानन्दस्वामी सरस्वती को भी ग्रामंत्रित किया हुग्रा था। श्री ग्रानन्दस्वामीजी १२ बजे ग्रौर महाराजजी भी १२ बजे सूरत पहुंचे। दोनों के निवास का प्रबन्ध एक ही स्थान पर किया गया।

सन् १९५२ में तपोवन में दोनों गुरु ग्रौर शिष्य इकट्ठे रहे थे। उसके पश्चात् सूरत में १९६५ में समागम हुग्रा। लगभग एक सप्ताह तक दोनों यहां रहे। सेठजी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला, 'जो दिल्ली गई हुई थीं, इस ग्रवसर पर दोनों महात्माग्रों की सेवा ग्रौर सत्संग के लिए वहां ग्रागई थीं। दिन भर दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। दोनों महात्माग्रों के १० से १६ तारीख तक एक मंदिर में छः बजे से ग्राठ बजे तक प्रवचन होते थे। पूज्य महाराजजी का प्रवचन छः बजे से सात बजे तक ग्रात्म-विज्ञान के विषय में होता था। श्री ग्रानन्दस्वामी सरस्वतीजी का प्रवचन सात बजे से ग्राठ बजे तक होता था। इनका विषय 'ईश्वर-भक्ति ग्रौर उसकी प्राप्ति के उपाय' था। लगभग दो तीन हज़ार स्त्री-पुरुष प्रवचन सुनने के लिए ग्राते थे। गुरु ग्रौर शिष्य

दोनों ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में बड़े-बड़े सूक्ष्म रहस्यों को समझाया। नाना प्रकार के उपाख्यानों और प्रमाणों से अपने प्रवचनों को अत्यधिक रोचक बनाया। दोनों के प्रवचनों का सूरत की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। १६ जनवरी को सायंकाल साढ़े आठ बजे श्रोताओं ने बड़े हर्ष और सम्मान के साथ दोनों महात्माओं को श्रद्धांजलि भेंट की और धन्यवाद अर्पण किया। महाराजजी और श्री आनन्द स्वामीजी बीच में एक दिन के लिए नवसारी भी पधारे। श्री आनन्दस्वामीजी सूरत में ही ठहर गए, क्योंकि यहां वार्षिकोत्सव होने वाला था और नवसारी में उन्हें कथा भी करनी थी। महाराजजी ने १७ तारीख को प्रातःकाल साढ़े पांच बजे बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

बम्बई प्रस्थान

१७ ता० को सूरत से बम्बई के लिए प्रस्थान किया और साढ़े दस बजे बम्बई पहुंचे। वहां पर इनके भक्त और शिष्य तथा वहां के गण्यमान्य और प्रतिष्ठित सज्जन महाराजजी के स्वागतार्थ स्टेशन पर पधारे। इनमें से प्रमुख ये थे :— सेठ हरबंसलाल मरवाह, सेठ अमीरचन्द, सेठ मोहनलाल बागड़ी, सेठ भागचन्द, ओमप्रकाश अग्रवाल। स्वागतार्थ आए हुए सभी महानुभावों को महाराजजी ने आशीर्वाद दिया। ये सेठ हरबंसलाल मरवाहा के पास ठहरे। स्वामीजी महाराज ने सेठ मरवाहाजी से व्याख्यान आदि यहां रखने के लिए निषेध कर दिया क्योंकि बहुत थके हुए थे। इनसे मिलने का समय ३ बजे से ६ बजे तक नियत कर दिया गया। सेठ मरवाहाजी का परिवार बहुत बड़ा है, ६-७ भाई और २ बहिनें हैं। कई भाई बम्बई में ही निवास करते हैं। इन सबकी महाराजजी में बड़ी भक्ति है। इनकी श्रद्धा और भक्ति बहुत ऊंचे दर्जे की है। किसी ज्योतिषी ने सेठ हरबंसलाल मरवाहाजी को बताया था कि मणिपुर (आसाम) में श्री स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती पूर्वजन्म में आपके गुरु थे। इसलिए इनकी श्रद्धा इनके प्रति और भी अधिक है। तन, मन तथा धन से सदैव इनकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी वीरांदेवी सदैव इनकी सेवा में रहती थी। ये अत्यन्त सुशीला, साध्वी और सौम्य मूर्ति हैं। कई सेवक होते हुए भी ये महाराजजी का सब काम स्वयं अपने हाथों से करती थीं। इनके पुत्र श्री गोर्धनदासजी थाना में निवास करते थे। ये नित्य सपरिवार महाराजजी के सत्संग में आते थे। मरवाहाजी के पौत्र प्रवीण इनसे नित्यप्रति आसन और प्राणायाम सीखा करते थे, और नवीन भी इनके साथ आया करते थे। मरवाहाजी नित्य आध्यात्मिक विषयों पर महाराजजी से वार्तालाप करते थे और अनेक शंकाओं का समाधान करवाते थे।

सेठ तुलसीरामजी के पुत्रों में प्रेम सम्बन्ध की स्थापना—महाराजजी के शिष्य सेठ तुलसीरामजी (जिन्हें एक बार इन्होंने जीवनदान दिया था) के पुत्रों में कई वर्षों से आपस में सम्पत्ति के बटवारे के विषय में झगड़ा सा रहता था। इन सभी भाइयों की पूज्य गुरुदेव के प्रति बड़ी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम था। बड़े लड़के का नाम सेठ गोपालदास, दूसरे का नाम हरिकिशनदास, तीसरे का नाम अमीरचन्द और चौथे का ओमप्रकाश है। चारों भाइयों को बुलाकर इन्होंने बहुत उपदेश दिया और विविध प्रकार से समझाया। इनके पिताजी का महाराजजी से गत ३५-४० साल का

सम्बन्ध था। सभी भाइयों ने महाराजजी से निवेदन किया कि "आप सारा मामला भली प्रकार से समझ लें और हम सबकी बात पृथक्-पृथक् तथा सम्मिलित रूप से सुन लें, इसके पश्चात् जो कुछ भी आपका आदेश होगा उसे हम पालन करेंगे। कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। आपके समक्ष हम सब कोरे कागज पर हस्ताक्षर कर देंगे और उस पर जो निर्णय आप दे देंगे वही हम सबको स्वीकृत होगा।" महाराजजी ने सेठ हरबंसलाल को इस कार्य के लिए अपना प्रतिनिधि बना दिया, क्योंकि ये इनकी अपेक्षा अधिक व्यवहारकुशल और व्यापारादि और सम्पत्ति के झगड़ों के विषय में अधिक समझते थे। चारों भाइयों ने इसे स्वीकार किया। सब भाइयों और उनकी पत्नियों के समक्ष सबकी सम्मति लेकर निर्णय किया गया, समझौता होगया। वकील भी बुला लिए गए थे। फैसले पर सबने अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिए। सेठ मरवाहा ने अपनी कोठी पर एक सहभोज रखा। सबने मिलकर प्रीतिपूर्वक भोजन किया। छोटे भाइयों ने तथा उनकी पत्नियों ने बड़े भाइयों और भोजाइयों के पांव स्पर्श किए और उन्होंने बड़े प्रेमभाव से उनका आलिंगन किया। अब सब प्रीतिपूर्वक रहने लगे। सेठ अमीरचन्द की लड़की के विवाह में सभी भाई सम्मिलित हुए। इस सारे परिवार की महाराजजी के प्रति अनन्य भक्ति है। सब प्रकार से ये इनकी सेवा करते हैं। योगनिकेतन की भी आर्थिक सहायता बड़ी उदारता से करते रहते हैं।

योगनिकेतन ट्रस्ट की सभा—सेठ अमीरचन्द, सेठ हरबंसलाल मरवाहा, तथा सेठ मोहनलाल बागड़ी योगनिकेतन ट्रस्ट के सदस्य हैं। पूज्य महाराजजी ने ट्रस्ट के प्रधान की हैसियत से उपरोक्त तीनों महानुभावों की एक सभा बुलाई और उसमें यह प्रस्ताव रखा कि ऋषिकेश या स्वर्गाश्रम में योगनिकेतन का कोई अपना स्थान न होने के कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। गत १८ वर्ष से साधना-शिविर यहां लग रहे हैं। सैकड़ों साधक इनसे लाभ उठा चुके हैं। योगनिकेतन के लिए भूमि ली जा चुकी है, अतः आप इस पर भवन निर्माण की योजना बनावें। महाराजजी ने भवन निर्माण की योजना योगनिकेतन की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर सभा के सामने उपस्थित की :—५०×४० फीट का एक सत्संग भवन, इसके आस पास दो-दो कमरों के मकान जिनमें सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं प्राप्त हों। इस प्रकार के १२ या १५ मकान हों। इस दृष्टि से एक नक्शा तैयार करवाकर निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया जाए। सेठ हरबंसलालजी के छोटे भाई ने नक्शा तैयार करके उसका आनुमानिक व्यय भी बता दिया। सेठ मरवाहा ने महाराजजी के निम्न धनाढ्य भक्तों को बुलाकर कार्य के लिए तैयार किया :—सेठ गोपालदास, सेठ अमीरचन्द, सेठ ओमप्रकाश, श्री मनोहरलाल मरवाहा, सेठ भागचन्द मिलक, सेठ मोहनलाल बागड़ी, श्री हरबंसलाल, सेठ गिरधारीलाल, सेठ ताराचन्द, श्री गोर्धनदास मरवाहादि। कई भक्तों ने एक-एक कुटिया का खर्चा देने का वायदा किया। भवन निर्माण का सारा कार्यभार सेठ मरवाहाजी के सुपुर्द किया गया।

इन्हीं दिनों आनन्दस्वामी सरस्वतीजी भी सेठ हरबंसलाल मरवाहा की कोठी पर १० दिन के लिए पधारे। यहां पुनः गुरु और शिष्य का समागम होगया। नित्यप्रति घण्टों तक आध्यात्मिक गूढ़ विषयों पर विचार होता रहता था। दोनों

महात्माओं के शिष्यों और भक्तों की भीड़ सी दर्शनार्थ लगी रहती थी। सेठ मरवाहा की धर्मपत्नी बड़ी आतिथ्यप्रिया थीं। जो भी दर्शनार्थ आते थे उनका बड़ी उदारता से आतिथ्य करती थीं। दो यतियों का संगम सेठ मरवाहा की कोठी पर हुआ था, अतः जिज्ञासु और भक्त लोग ज्ञान, ध्यान, सत्संग की गंगा में नित्य ही स्नान किया करते थे। भारत के दो महान् योगियों के समागम से लाभ उठाकर सभी भक्त नाना प्रकार की अध्यात्म-सम्बन्धी शंकाएं लेकर आते थे और उनके समाधान से आत्मतुष्टि अनुभव करते थे। ३१ जनवरी तक यहां पर मेला सा लगा रहा।

श्री महाराजजी नित्य ही एक दो घण्टे के लिए अपने भक्तों और शिष्यों को आशीर्वाद देने जाया करते थे। यहां पर इनके सैंकड़ों भक्त और शिष्य थे। प्रातःकाल ७ बजे से ८ बजे तक पूज्य गुरुदेव और सेठ मरवाहा दोनों समुद्र के तट पर भ्रमणार्थ जाया करते थे।

सेठ अमीरचन्द की सुपुत्री के विवाह पर वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए पधारे। इनके और इनके भाइयों के कारखाने देखने भी गए। वहां पर सब कर्मचारियों को उपदेश दिया। लाला शिवसहायमल की सुपुत्री गौरांदेवी के मकान पर दो बार भोजन करने के लिए पधारे। श्रीमती कैलाश मिलक महाराजजी की बड़ी भक्त थीं। इनके मकान पर भी भोजनार्थ गए। यह देवी योगनिकेतन की धन से सहायता करती रहती थी।

ओमप्रकाशजी की रोग मुक्ति—ओमप्रकाशजी सेठ तुलसीरामजी के कनिष्ठ पुत्र हैं। इनका यज्ञोपवीत संस्कार महाराजजी ने प्रयाग में किया था। ओमप्रकाश की इनके प्रति अनन्य भक्ति थी। जब महाराजजी अभी बम्बई में ही थे तब ये और इनकी पत्नी दिल्ली किसी विवाह में गए। ये वहां पर होटल में भोजन कर रहे थे, वहीं पर इन्हें दिल का दौरा पड़ गया। तुरन्त उपचार किया गया किन्तु तबीयत ठीक नहीं हुई। इनकी पत्नी विमला देवी ने महाराजजी को तार दिया और प्रार्थना की कि आप अपने शिष्य को आकर संभालें, तबीयत अत्यन्त खराब है। महाराजजी ने तार द्वारा सूचित किया, ठीक हो जाएंगे, घबराओ मत, मेरे आने की आवश्यकता नहीं है। इन्होंने उसी समय अपने योगबल का प्रयोग किया और ओमप्रकाशजी बिलकुल स्वस्थ होगए और कुछ दिनों में बम्बई आगए।

श्री आनन्दस्वामी सरस्वती तो मद्रास पधार गए और महाराजजी ३० जनवरी को कलकत्ता जाने का विचार करने लगे।

शंका समाधान—३० ता० की रात को महाराजजी और मरवाहाजी बैठे हुए थे। इनमें प्रायः नित्य ही आध्यात्मिक वार्तालाप होता रहता था। यूं तो सेठ मरवाहा महाराजजी के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित थे किन्तु उन्होंने शंका की कि "आपने आत्म-विज्ञान ग्रंथ में प्राणमय कोश पर ही क्यों विशेष बल दिया है, जब कि अन्य भूत भी इस शरीर के उपादान कारण हैं ?" पूज्य गुरुदेव ने इस शंका का समाधान करने के लिए निम्न प्रवचन किया :—

वैसे तो उपनिषदों में तथा अन्य आचार्यों ने भी प्राणमय कोश का कोशों में वर्णन किया है। आग्नेय कोश की अपेक्षा प्राणमय कोश का महत्त्व इसलिए अधिक

है कि यह आत्मा और चित्त के सान्निध्य से जो सूक्ष्म-प्राण की गति या क्रिया प्रारम्भ होती है उस सूक्ष्म-प्राण या जीवनी शक्ति को ग्रहण करके स्थूल शरीर में यही सर्व-प्रथम जीवन का संचार या प्रसार करता है। इस जीवन का संचार करने में अग्नि तत्त्व या जल तत्त्व इतने उपयोगी नहीं हैं जितना कि यह स्थूल प्राण है। शरीर के जिस-जिस भाग में प्राण का संचार बन्द हो जाता है वहां रुधिर का संचार होना भी बन्द हो जाता है यद्यपि वहां पर तेज और जल तत्त्व होते हैं। वायु तत्त्व ही अग्नि, जल और पृथ्वी का वहन करता है। इनकी अपेक्षा यह सूक्ष्म है। इस प्राण की गति ही शरीर में इतस्ततः तेज और रुधिर को पहुंचाती है। इसी कारण से शरीर में सर्वत्र उष्णता और रुधिर का संचार होता है। रुधिर जल का अंश तथा परिणाम है। इसी प्रकार पसीना भी जल का ही विकार होता है जो रोम-कूपों से संपूर्ण शरीर से निकलता है। जब शरीर का निर्माण हुआ था, तब सर्वप्रथम प्राण ही ने इसमें प्रवेश किया था। यह वायु का ही कार्य है। जब माता के गर्भ में वीर्य और रज का आधान होता है उस समय इस रज-वीर्य में सूक्ष्मशरीराभिमानी जीवात्मा का प्रवेश होता है। इससे पूर्व सूक्ष्मशरीर की गति का हेतु सूक्ष्मप्राण होता है। जब रज और वीर्य गर्भाशय में स्थिर होता है, उस समय इसमें सूक्ष्मशरीर प्रवेश करता है। इससे रज-वीर्य और स्थूल-शरीर में गति प्रारम्भ हो जाती है। यहां स्थूल प्राणवायु महाभूत का ही कार्यविशेष होता है जो प्राण के रूप में शरीर में प्रविष्ट होता है। तभी वह रज-वीर्य कलल भाव को प्राप्त होकर बढ़ने लगता है। जब शरीर की रचना हो रही थी तब वायु महाभूत प्राण भाव को प्राप्त होकर जीवन का आधार बना और सहकारी उपादान कारण भी। प्राण ही शरीर को धारण किए हुए है। इसके बिना शरीर नहीं रह सकता। यद्यपि इसमें पृथ्वी का तथा जल का अंश तो रहता ही है किन्तु प्राण के बिना शरीर शव तथा मिट्टी के समान गिना जाता है। यह शरीर भूमि का कार्य है और जल ने इसे संगठित किया हुआ है। इन दोनों का धर्म गुरुत्व है, अतः ये तो शरीर के रूप में मरने पर पड़े रहते हैं, परन्तु अग्नि और वायु में गुरुत्व धर्म नहीं है इसलिए ये गगनमण्डल में गमन कर जाते हैं। इसलिए शरीर में प्राण की ही विशेषता है। अतः इसे विशेष महत्व दिया गया है। वास्तव में प्राणमय कोष के समान तेज भी शरीर में एक कोष के ही समान है। जिस प्रकार गुरुत्व होने से पृथ्वी और जल का परस्पर सम्बन्ध है इसी प्रकार लघुत्व होने से तेज और प्राण का भी परस्पर सम्बन्ध है। मृत्यु के समय तेज और प्राण दोनों ही साथ गमन करते हैं और पृथ्वी तथा जल के भाग शरीर के दाह के समय भस्म हो जाते हैं।

कलकत्ता प्रस्थान

३१ जनवरी को महाराजजी के अनेक शिष्य और भक्त दर्शनार्थ आए क्योंकि १ फरवरी को प्रातः इन्हें हवाईजहाज़ से कलकत्ता पधारना था। कई भक्त ऐरो-ड्रोम पर भी पहुंचे थे। सेठ मरवाहा तथा उनका परिवार ५-३० बजे महाराजजी को साथ लेकर सान्ताक्रुज के हवाई अड्डे पर पहुंच गए। जहाज़ के उड़ान लेने से पूर्व ही पूज्य गुरुदेवजी ने सबको आशीर्वाद दिया। हवाईजहाज़ २३००० फीट की ऊंचाई पर उड़ा। मार्ग में विभिन्न प्रकार के दृश्यों को देखते हुए ९ बजे महाराजजी

कलकत्ता पहुंच गए। वहां पर सेठ जुगलकिशोर बिरला के निजी सचिव अन्य कई महानुभावों के साथ स्वागतार्थ आए हुए थे। सेठजी ने श्री महाराजजी के भोजन आदि की सब व्यवस्था अपने निवास स्थान पर ही की थी। एक कार इनके इतस्ततः भ्रमण करने के लिए नियत कर दी थी। यहां ६ दिन ठहरने का प्रोग्राम बनाया था। सेठजी के छोटे भाई और इनके अन्य सभी पारिवारिक जन नित्य दर्शनार्थ और सत्संग के लिए आते रहते थे। महाराजजी के यहां पर अन्य कई भक्त, शिष्य और परिचित थे जिनमें से प्रमुख ये थे—सेठ केवलचन्द मिमाणी, सेठ राजकुमार बागड़ी, सेठ रामकुमार, सेठ बालमुकन्द, श्रीमती मीनादेवी, बरकतराम जौहरादि। सेठ बिरलाजी के आदमियों ने तारापुर, कम्पनी बाग, वेलोर मठ, चिड़ियाघर, अजायबघर इत्यादि सभी दर्शनीय स्थान दिखलाए। एक दिन के लिए नवदीप भी गए। सेठ केवलचन्दजी मिमाणी भी साथ गए। वहां पर बड़े-बड़े मंदिरों के दर्शन किए। वहां के भजनाश्रम देखे। एक भजनाश्रम में दोपहर का भोजन किया। दो बजे गंगा के किनारे सन्तों और साधुओं के दर्शनार्थ गए। यहां पर महाराजजी के बहुत पुराने परिचित एक योगी मिले। इनके साथ एक घण्टा तक योग के विषय में बातचीत की। ये वही योगी थे जो कई-कई घण्टे की समाधि लगाया करते थे। आजकल ये मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं। महाराजजी से मिलकर इनको बड़ी प्रसन्नता हुई और गंगोत्री इनके पास आने की इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजजी ने इन्हें अपने पास ठहरने के लिए आमंत्रित किया। अब ये कई-कई दिन की ससाधि नहीं लगाते थे क्योंकि युवावस्था में इसकी अधिक आवश्यकता रहती है, वृद्धावस्था में उतनी नहीं रहती। अब ये सब प्रकार से सन्तुष्ट थे। जो बात समझने और जानने के योग्य थी उसे समझ लिया था। अब कुछ और जानने की इच्छा नहीं रही थी। जीवन की साध पूरी हो चुकी थी। अब कोई अभिलाषा शेष नहीं रही थी। इनकी आयु ७० वर्ष से ऊपर थी। इन्हें अपने जीवन की कोई चिन्ता नहीं थी। यदि आज चला जाए तो चिन्ता नहीं थी और १० साल में जाए तो भी कोई फिक्र नहीं था। जब महाराजजी ने इनके निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता करनी चाही तो इन्होंने कहा, "इसकी आवश्यकता नहीं है। इस शरीर के लिए सभी व्यवस्था ठीक है।" इसके पश्चात् योगीराजजी सायंकाल ४ बजे चलकर ७ बजे कलकत्ता पहुंच गए। इससे अगले दिन बिरलाजी की मोटर फैक्टरी में एक मंदिर का उद्घाटन करने बंगाल के प्रधानमंत्री पधारने थे, अतः बिरलाजी के पारिवारिक सदस्य महाराजजी को भी साथ ले गए। इस मंदिर का उद्घाटन बड़े समारोह के साथ हुआ। कई हजार नर-नारी उपस्थित हुए। सबको मिष्ठान्न वितरण किया गया।

आसनसोल प्रस्थान

७ फरवरी को महाराजजी ने आसनसोल के लिए प्रस्थान किया। डीसरगढ़ से त्रिलोकचन्द आनन्द, कमलादेवी तथा उसके पति लेने के लिए कलकत्ता आए हुए थे। यहां पर महाराजजी तीन दिन तक विराजे। यहां पर कई कोयले की खानें देखीं। एक दिन दामोदर घाटी के बांध को देखने के लिए गए। यहां पर नदी के जल को रोककर झील बनाई गई है और जल से बिजली निकाली गई है। यहां का दृश्य बड़ा मनोहर था। आनन्द साहब के परिवार ने तीन दिन तक सत्संग से लाभ

उठाया। आनन्द दम्पती के विचार उत्तम हैं और ये बड़े सज्जन हैं। महाराजजी में इनकी बड़ी भक्ति है।

धनबाद गमन

श्रीमती प्रेमदेवी तनेजा अपनी कार लेकर महाराजजी को स्वयं लेने आगई थीं। ६ फरवरी सायंकाल धनबाद पधारे। इन्होंने अपनी ही कोठी पर पूज्य गुरुदेव को ठहराया। इनके सुपुत्र विजयप्रताप तथा नन्दकिशोर दोनों इनके अनन्य भक्त हैं। नन्दकिशोर कलकत्ता कालिज में विद्याध्ययन कर रहे थे। बड़े सौम्य और शान्त प्रकृति के नवयुवक हैं। विजयप्रताप २४ वर्षीय नवयुवक हैं। बड़े भावुक और श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और साथ ही बहुत योग्य हैं। अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् सारा कारोबार इन्होंने बड़ी योग्यतापूर्वक संभाला हुआ है। इनके पास ५ कोयले की खानें हैं और विशाल फैक्टरी का निर्माण उस समय कर रहे थे। ये श्री महाराजजी को सब परिचितों को आशीर्वाद दिलाने के लिए लेगए थे। श्री प्रेमदेवीजी ने इनके दो स्थानों पर भाषण करवाए। ये महाराजजी की अनन्य भक्त थीं और इनको वर्षों से अपना गुरु मानती थीं। स्वर्गाश्रम में कई बार साधना शिविर में अभ्यासार्थ आती रही हैं।। प्रथम दिन बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ पूज्य गुरुदेव के सामने झोली फैला कर प्रार्थना की: "मेरी कोई लौकिक कामना नहीं है और न कोई लौकिक पदार्थ ही आपसे मांगती हूं। अनेक जन्मों से आत्म-ज्ञान की पिपासा है। अब वृद्धा होगई हूं। मृत्यु के समीप पहुंच गई हूं। क्या आप इस पिपासा को बुझाने की कृपा नहीं करोगे? क्या इस जीवन और इस संसार से मैं निराश ही चली जाऊंगी? आपने आनन्दस्वामी, प्रभुआश्रितजी जैसे अनेकों को भवसागर से तरने की योग्यता प्रदान की है। क्या मुझे डूबती हुई देखकर आपको दया नहीं आवेगी? मैं कई वर्षों से आशा लगाए बैठी हूं कि योगीराजजी मुझे भी भव-पाश से मुक्त करेंगे। मेरी कुटिया में आज आप भगवान् के रूप में पधारे हैं। मेरी झोली में आत्म-विज्ञान रूपी अपना प्रसाद डालना ही पड़ेगा।" इन शब्दों के साथ उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। महाराजजी का हृदय भी द्रवित सा होगया। इन्होंने कहा, "बेटी, व्याकुल मत हो, रोना बन्द करो। कल प्रातः ५ बजे आपकी आत्म-ज्ञान की पिपासा शान्त कर दी जाएगी।" इन्होंने कृपापूर्वक प्रातः ५ बजे से ७ बजे तक दो-दो घण्टे अभ्यास में बिठाकर आत्म-साक्षात्कार करवा दिया। प्रेमदेवी को बड़ा सन्तोश लाभ हुआ और वह अपने को धन्य तथा कृतकृत्य समझने लगी।

ब्रह्मचारी अखिलानन्द का समागम—ब्रह्मचारी अखिलानन्द उत्तरकाशी तथा स्वर्गाश्रम में कई बार महाराजजी के दर्शन कर चुके थे। इनकी महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और स्नेह है। इन चार दिनों में भी यह कई बार दर्शन करने आए। बड़े विद्वान् हैं और बहुत वर्षों से धनबाद में ही निवास करते हैं। यहां की तथा आस-पास की जनता का आपने बड़ा उपकार किया है। बड़े वीतराग और निःस्पृह व्यक्ति हैं। यह प्रायः महाराजजी के साथ भ्रमणार्थ जाते थे। मार्ग में दोनों में बड़ा रोचक वार्तालाप होता था। वार्तालाप का विषय सदैव आध्यात्मिक होता था। धनबाद में महाराजजी के कई सज्जन प्रेमी भक्त बन गए थे। महेन्द्रप्रताप तथा शाहजी इन्हें अपने घर पर भी ले गए थे।

श्रीमती प्रेमदेवी की श्रद्धा—धनबाद से प्रयाग के लिए प्रस्थान करने से पूर्व श्रीमती प्रेमदेवी ने हाथ जोड़कर पूज्य गुरुदेवजी से गुरुदक्षिणा स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। इन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "क्या आत्म-ज्ञान प्रदान करने के लिए रिश्वत दे रही हो ?" यह सुनकर जितने भी दर्शनार्थ भक्त तथा शिष्य वहां उपस्थित थे सब कहकहा लगाकर हंसने लगे और कहा—'शिष्या की भेंट तो स्वीकार करनी पड़ेगी।' सभी उपस्थित महानुभावों ने इस भेंट को स्वीकार करने के लिए इनसे आग्रह किया, इस पर महाराजजी ने स्वीकृति दे दी। प्रेमदेवी ने निर्माणोन्मुख योगनिकेतन के नवीन आश्रम में एक कुटिया बनाने का सारा व्यय देने और 'हिमालय का योगी' नामक जिस नए ग्रंथ का प्रकाशन होने वाला था, उसके प्रकाशन का कुल व्यय देने का वचन दिया और शेष जीवन हिमालय में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त प्रेम तनेजा ने कहा था कि श्री महाराजजी की सेवा में १०० रु० मासिक जीवन पर्यन्त भेंट के रूप में पहुंचता रहेगा।

प्रेमदेवी के दामाद श्री महेन्द्रप्रताप नारंग ने भी एक कुटिया बनवाने का वचन दिया, क्योंकि इनके वानप्रस्थ का समय समीप आ रहा था और यह अपना शेष जीवन पूज्य महाराजजी के चरणों में ही व्यतीत करना चाहते थे।

प्रयाग के लिए प्रस्थान

प्रयाग में कुम्भ का मेला था, इसलिए महाराजजी १५ ता० को साढ़े आठ बजे वहां पहुंच जाना चाहते थे, अतः रात्रि के बारह बजे धनबाद से प्रस्थान किया। दिल्ली वाले श्री द्वारिकानाथजी सोंधी भी प्रयाग आए हुए थे। उन्होंने स्वामीजी महाराज के निवास का प्रबंध अपने एक मित्र के मकान पर पूर्व से ही कर दिया था।

संगम स्नान—संगम पर बड़ी भीड़ थी। लाखों नर-नारी स्नानार्थ आए हुए थे। महाराजजी ११ बजे के लगभग संगम पर किश्ती द्वारा स्नान के लिए पधारे। श्री द्वारिकानाथ, योगीराजजी तथा इनके सेवक सूरतराम ने बड़े आनन्दपूर्वक स्नान किया और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा भी दी। प्रयाग में सरदार पी०पी० सिंह और सरदारनीजी की सन्तों और महात्माओं के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। इन्होंने महाराजजी की बड़ी सेवा की। सरदारजी द्वारिकानाथजी सोंधी के मित्र थे और ये उन्हीं के पास ठहरे थे। इन्होंने स्वामीजी को भी वहीं ठहराया।

दिल्ली लौटना

महाराजजी को भ्रमण करते लगभग दो मास होने को थे। अब कुछ श्रान्त से होगए थे, अतः बनारस, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मथुरा, वृन्दावनादि जाना अब स्थगित कर दिया और द्वारिकानाथ सोंधी के साथ हवाई जहाज़ से वापिस दिल्ली लौट गए। वहां पर सोंधीजी की कोठी पर ही निवास किया। दिल्ली में आपके सैकड़ों भक्त और शिष्य हैं। दर्शनार्थियों का बड़ा तांता सा बंधा रहता था। बड़ी भीड़ सारा दिन बनी रहती थी, अतः सत्संगियों और जिज्ञासुओं के लिए ३ से ६ बजे का समय नियत कर दिया गया था। नित्यप्रति सत्संग और शंका-समाधान होता रहता था। मन को एकाग्र करने के नाना प्रकार के साधन पूज्य योगीराजजी साधकों, जिज्ञासुओं और सत्संगियों को बताते रहते थे। ५ दिन के पश्चात् द्वारिकानाथजी

सोंधी ने ५०० आदमियों को भोजनार्थ तथा महाराजजी का वचनामृत पान करने के लिए निमंत्रित किया था।

श्री महाराजजी का दिल्ली में उपदेश—पूज्य गुरुदेव ने अपना प्रवचन इस वेद मंत्र से प्रारंभ किया :—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।
(यजु० ३१।१८)

अर्थात् आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार किए बिना मृत्यु पर विजय नहीं पाई जा सकती, सर्व दुखों से निवृत्ति नहीं हो सकती। मैं बहुत वर्षों के पश्चात् हिमालय से नीचे उतरा हूं और ८ मास से भारत के मुख्य-मुख्य नगरों में अनेक आध्यात्मिक विषयों पर व्याख्यान दिए हैं। बड़े-बड़े नगरों में साधना शिविर लगाकर योगाभ्यास करवाने और सत्संग लगाने के उद्देश्य से मैं हिमालय से नीचे उतरा था जिससे हमारे देश की जनता को विशेष लाभ पहुंच सके। किन्तु मेरा यह विचार निरर्थक ही रहा। प्रथम तो बड़े-बड़े नगरों में कोई एकान्त स्थान ही प्राप्त नहीं होता। यदि कहीं पर किसी कोठी अथवा धार्मिक संस्था में मिल भी जाए तो लोग प्रातः ४-५ बजे शीतकाल में उठकर आ नहीं सकते। धर्म तथा ईश्वर के प्रति लोगों में श्रद्धा और भक्ति की भावना ही नहीं है। डेढ़ मास हुआ जब मैं यहां से बम्बई गया था; जगदीशचन्द्र डावर की कोठी पर लोगों के बहुत आग्रह पर प्रातः ५ बजे मैंने साधना की कक्षा लगानी प्रारम्भ की थी। उसमें केवल १२ स्त्री-पुरुष आते थे। मुझे उस समय दिल्ली की जनता पर बड़ा तरस आया था। जिस ब्राह्ममुहूर्त में उठकर उन्हें जाप, पूजा, पाठ और साधना करनी चाहिए थी उस समय को ये आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा और निद्रा में खो रहे थे। इससे तो हमारा योगाश्रम ही श्रेष्ठ है जहां पर कम से कम ४०-५० स्त्री और पुरुष अभ्यास करने आते हैं। वहां पर सच्चे जिज्ञासु तत्वज्ञान की अभिलाषा लेकर आते हैं। वहां पर निश्चिन्त होकर साधना करते हैं और ये बड़ी सफलता लाभ करते हैं। हमारा योग साधना शिविर प्रति वर्ष १ नवम्बर से ३१ मार्च तक ५ मास के लिए लगता है। नित्यप्रति तीन बार अभ्यास करवाया जाता है। इसी प्रकार योग निकेतन गंगोत्री में भी १५ जून से १५ सितम्बर तक अर्थात् तीन मास तक साधना शिविर लगाया जाता है। वहां लोगों को विशेष शान्ति और तत्व-ज्ञान की प्राप्ति होती है। सब लोग यम तथा नियमों का पालन करते हैं और निश्चिन्त भाव से अभ्यास करते हैं तथा मानव जीवन की पूर्ण सफलता लाभ करते हैं।

भोग और विलास का त्याग—यहां नगरों में मनुष्य सारा दिन किसी न किसी कारोबार में लगा रहता है। सारा दिन लौकिक व्यापार करते-करते श्रान्त होकर घर लौटता है। जहां शरीर और मस्तिष्क दोनों अत्यन्त थके हुए हों, भला उनसे ध्यान तथा समाधि की संभावना कैसे की जा सकती है ! यह विज्ञान तो साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा युक्त साधक ही प्राप्त कर सकता है। इस आठ मास के प्रचार कार्य के समय बड़े-बड़े सम्पन्न गृहस्थों के पास रहने का अवकाश मिला। प्रायः सभी, सत्तर और अस्सी साल के गृहस्थ भी, भोग और विलास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ५० वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना

चाहिए । इससे विषयासक्ति कम हो जाती है तथा मोह और ममता का अभाव होने लगता है । सदाचार का जीवन बन जाता है । आदर्शयुक्त जीवन का दूसरों के ऊपर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है । "यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तद् तदेवेतरे जनाः" की मर्यादा साक्षात् रूप धारण कर लेती है । बल, पराक्रम और बुद्धि में वृद्धि होती है । श्रेय-मार्ग के पथिक बन जाते हैं और ज्ञान तथा वैराग्य को प्राप्त करते हैं । शास्त्र-मर्यादा का पालन भी ठीक रूप से होने लगता है । ५०-५५ वर्ष की आयु के पश्चात् वानप्रस्थियों के समान जीवन व्यतीत करना चाहिए और ७५ वर्ष की आयु तक अर्थात् २५ वर्ष तक किसी आत्म-ज्ञानी गुरु के पास अथवा किसी अच्छे वानप्रस्थाश्रम में निवास करके पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण पूर्वक यम-नियम का पालन करते हुए योग साधना करनी चाहिए और धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहिए । यदि इस मानव जीवन को सफल बनाना है और यदि आवागमन के चक्र से मुक्तिलाभ करने की इच्छा है तो भोग और विलास के जीवन का परित्याग करके श्रेय-मार्ग को अपनाओ, जिसे अपनाकर बुद्धिमानों, विद्वानों, सन्तों और महापुरुषों ने सुख, शान्ति और शाश्वत आनन्द प्राप्त किया है । जिस मनुष्य ने नचिकेता के इस वाक्य को पढ़ा और सुना है :—

श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।।

उसकी भोग-विलास के प्रति कभी रुचि नहीं हो सकती । ये भोग और विलास कभी स्थायी रहने वाले नहीं हैं । ये इन्द्रियों के तेज को नष्ट करते हैं । बुद्धिमान् व्यक्ति कभी इनकी कामना नहीं करते । जिन्होंने इस रहस्य को समझ लिया है वे भोगों से उपराम हो जाते हैं और आत्म-साक्षात्कार करने में ही अपने जीवन की सफलता समझते हैं । वेद बार-बार हमें हमारे कर्त्तव्य का स्मरण दिलाता है : 'यस्तं न वेद किं तस्य ऋचा करिष्यति' अर्थात् इस मानव देह को प्राप्त करके जिसने आत्म-साक्षात्कार नहीं किया उसको वेद, शास्त्र तथा अन्य ग्रंथ पढ़ने से क्या लाभ है ! यह जीवन तो वास्तव में अपने यथार्थ रूप को जानने और सर्व दुःख निवृत्ति के लिए प्राप्त हुआ है, परन्तु यह मूढ़ मनुष्य हीरे के बदले कांच की मणि खरीदता फिरता है । आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं । वह तो आपके अत्यन्त समीप है । आपके भीतर ही है, आपके भीतर ही आपको इसकी उपलब्धि होगी, किन्तु इसके लिए तपस्या, त्याग, साधना और वैराग्य की आवश्यकता है । आंख के अंजन को आंख स्वयं नहीं देख सकती यद्यपि वह उसके अत्यन्त समीप है । इसको देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता होती है । इसी प्रकार आपका आत्मा और परमात्मा आपके हृदय प्रदेश में चित्त रूपी मण्डल में विद्यमान है, किन्तु इसका साक्षात्कार ज्योतिष्मती बुद्धि और ऋतम्भरा बुद्धि रूपी दर्पण के बिना होना असंभव है । इस बुद्धि की प्राप्ति का साधन ध्यान और समाधि हैं । इन्हीं के द्वारा यह बुद्धि प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं । अतः आपको किसी विद्वान् योगी से ऋतम्भरा बुद्धि को प्राप्त

करने के साधन सीखने की आवश्यकता है। इसके प्राप्त होने पर ही आत्म-साक्षात्कार लाभ होगा, स्वरूप की उपलब्धि होगी और मानव जीवन कृतकृत्य हो जाएगा।

ऋतम्भरा बुद्धि की प्राप्ति के साधन—ऋतम्भरा बुद्धि को उत्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम ध्यान को भ्रूमध्य में लगाना चाहिए। कुछ काल के अभ्यास से यहां एक दिव्य ज्योति उत्पन्न होने लगती है। इस प्रकाश को लेकर ऊपर ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करें। इस स्थान में दीर्घ काल तक अभ्यास करने से और मन के समाहित होने से इस ज्योति द्वारा शनैः-शनैः ब्रह्मरंध्र के स्वरूप और पदार्थों को देखने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न अथवा अभ्यास ऋतम्भरा बुद्धि को उत्पन्न कर देता है। सर्वप्रथम भ्रूमध्य में जो ज्योति उत्पन्न हुई थी यह पदार्थों को अर्थात् अन्दर के सूक्ष्म पदार्थों को दिखलाने में काम देगी और ऋतम्भरा बुद्धि इन पदार्थों का निर्णय करेगी और यथार्थ निश्चयात्मक साक्षात्कार करवाएगी और यह नितान्त निर्भ्रान्त होगा। ब्रह्मरंध्र में सूक्ष्म शरीर के पदार्थ जिनका व्यवहार यहीं पर होता है, अर्थात् दस इन्द्रियां और मन और इनके विषयों का पूर्णरूपेण साक्षात्कार करवा देती है। इसके पश्चात् साधन-चतुष्टय-सम्पन्न योगी इस ज्योति और ऋतम्भरा बुद्धि को लेकर हृदय-प्रदेश में प्रवेश करे।

आत्मा के तीन आवरण—यहां आपको आत्मा के ऊपर तीन आवरण दृष्टि-गोचर होंगे—सूक्ष्म प्राण, अहंकार और चित्त। प्रथम आप ऋतम्भरा बुद्धि द्वारा सूक्ष्म प्राण का प्रत्यक्ष करें और इसके पश्चात् अहंकार के स्वरूप को देखें जिसके द्वारा 'अहमस्मि' अर्थात् अहं-विशिष्ट आत्मा के स्वरूप का बोध होता है। इस अहंकार के मण्डल को भेदन करके या इसके स्वरूप को जानकर ऋतम्भरा द्वारा चित्त के मण्डल में प्रवेश करें।

चित्त में आत्मा का अन्वेषण—यहां अत्यन्त समाहित होकर सूक्ष्म बुद्धि द्वारा अर्थात् इस ऋतम्भरा ज्ञान द्वारा चित्त में अपने आत्मा का अन्वेषण करें। यह देखें कि चित्त के किस प्रदेश में परमाणु से भी सूक्ष्म यह आत्मा निष्क्रिय और अचल होकर निवास कर रहा है क्योंकि यह चित्त कभी-कभी विकास भाव को प्राप्त होकर बहुत बड़ा दिखाई देने लगता है। यदि उस चित्त का विभाग किया जाए तो उसके अरबों हिस्सों के एक खण्ड से भी आत्मा सूक्ष्म है। चित्त की यह अवस्था उस समय होती है जब यह विकास रूप होकर क्रियाशील होता है। तब यह एक समुद्र के समान विशाल मालूम होने लगता है। उस समय इसमें परमाणु से भी सूक्ष्म इस आत्मतत्त्व को ढूंढना उतना ही कष्टसाध्य होता है जितना कि विशाल समुद्र में मोती को ढूंढ कर निकाल लाना कष्टसाध्य होता है। परन्तु जब यह चित्त संकोच भाव को प्राप्त होता है तब यह भी बहुत छोटा सा और अत्यन्त सूक्ष्म आत्मा की अपेक्षा कुछ ही बड़ा होता है; तब आत्म-साक्षात्कार करना सुगम होता है। चित्त की यह संकोचावस्था अत्यन्त सात्विक होती है और विकास की अवस्था रजःप्रधान होती है। इसलिए योगी को सात्विक अवस्था में चित्त और आत्मा का पृथक्-पृथक् स्वरूप देखने में सुविधा होती है और ठीक-ठीक अनुभूति होती है। इस अवस्था में अपने स्वरूप का जो आभास प्रत्यक्ष होता है, उस समय जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे लेखनी से लिखा नहीं जा सकता और वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन चारों पदार्थों की अर्थात् सूक्ष्म प्राण, अहंकार, चित्त और आत्मा की प्रकृति के अण्डाकार में

अंगुष्ठमात्र पुरुष के रूप में अनुभूति होती है। यही आनन्दमय कोष या कारणशरीर है। इससे आगे यदि आत्मज्ञानी योगी ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहे तो यहां धर्ममेघ समाधि की अवस्था में इस कोष रूप प्रकृति के आवरण को उल्लंघन करके या इसका साक्षात् करके ब्रह्म के मण्डल या स्वरूप में उपस्थित होता है। वहां पहुंच कर आनन्दमय कोष अथवा कारणशरीर का उपादान कारण अर्थात् साम्यावस्था रूप प्रकृति में ब्रह्म के व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध का प्रत्यक्षीकरण करे। प्रकृति और ब्रह्म के स्वरूप को पृथक्-पृथक् अनुभव करे। इसके मध्य में उपस्थित होकर उसे आत्म-विस्मृति हो जाती है, वह खोया सा जाता है। वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह है आत्मा की मोक्षावस्था। इसको चाहे आप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा समझें अथवा प्रकृति के रूप में प्रतिष्ठा समझें या ब्रह्म के रूप में स्थिति समझें।

विशाल जनसमुदाय जो पूज्य महाराजजी के उपदेशामृत का पान कर रहा था उसकी भी समाधि सी लग गई थी। उपदेश समाप्त होगया था किन्तु सब स्तब्ध होकर बैठे थे। किसी का न उठने को दिल चाहता था, न बोलने को, और नाही हिलने को। जब महाराजजी इस उपदेश को दे रहे थे तब उनके नेत्र बन्द थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे अपने भीतर सब कुछ देखकर उपदेश दे रहे थे। ये धारा-प्रवाह से बोल रहे थे और जनता एकाग्र भाव से सुन रही थी। श्रोतागण सभी विद्वान् थे। विशेष निमंत्रण देकर सबको बुलाया गया था जिससे बुद्धिमान् और विद्वान् लोग ही आएं जो उपदेश का तत्त्व समझ सकें। पर तो भी महाराजजी का नाम सुनकर सैंकड़ों लोग बिना निमंत्रण के भी उपस्थित होगए थे। सैंकड़ों ही श्रोतागण ने इस बात को अनुभव किया कि इस प्रकार का हृदयग्राही, सारगर्भित तथा आध्यात्मिक उपदेश उन्होंने कभी नहीं सुना था।

स्वर्गाश्रम लौटना

इस उपदेशामृत का दिल्ली की जनता को पान करवाने के पश्चात् पूज्य स्वामीजी महाराज केवल दो दिन वहां और ठहरे और इसके पश्चात् २५-२-६५ को स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान किया। प्रातः ७ बजे द्वारिकानाथजी के परिवार तथा अन्य भक्तों और शिष्यों ने बड़े सम्मानपूर्वक महाराजजी को विदा किया। श्री सोंधी और श्री तलवाड़ कार में इन्हें स्वर्गाश्रम पहुंचाने आए। महात्मा प्रभुआश्रितजी ने पूज्य गुरुदेव को वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में भोजनार्थ निमंत्रित किया था। वहां पहुंचकर १२ बजे भोजन करके महात्माजी से कुछ काल वार्तालाप किया। तदुपरान्त २ बजे वहां से प्रस्थान करके ३ बजे स्वर्गाश्रम पहुंच गए।

पूज्य योगीराजजी ने २५ फरवरी को स्वर्गाश्रम पहुंचकर २६ ता० से साधना-भ्यास करवाना प्रारंभ कर दिया। गत दो मास से इनके भक्त तथा शिष्य इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय अभ्यासियों की संख्या ४०-४५ तक थी। एक मास तक अभ्यास करवाने के बाद ३१ मार्च १९६५ को साधना शिविर की समाप्ति पर उत्सव मनाया गया। एक बहुत बड़ा भण्डारा दिया गया और महाराजजी ने अभ्यासियों को बड़ा सारगर्भित और शिक्षाप्रद निम्न उपदेश दिया।

पूज्य महाराजजी का उपदेश

उपस्थित ७०-७५ अभ्यासियों को सम्बोधित करते हुए महाराजजी ने कहा :—
मुझे स्वर्गाश्रम में अभ्यास करवाते हुए १८ वर्ष होगए हैं। इसके पूर्व मोहन आश्रम में साधना शिविर लगाया करता था। भारत के विभाजन के समय स्वर्गाश्रम में निवास प्रारम्भ कर दिया। तब से यही स्थान योग विद्यालय बन गया। ५ वर्ष पूर्व तो ४ मास का शिविर लगाया जाता था और अब ५ महीने तक अभ्यास करवाया जाता है। इस संस्था से सैकड़ों ही नहीं किन्तु सहस्रों अभ्यासियों ने लाभ उठाया है। अनेकों योगी यहां से तैयार होकर निकले हैं।

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति—यहां की साधना के द्वारा साधक शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति प्राप्त करते हैं। आसन, प्राणायाम और योग की क्रियाओं से शरीरिक उन्नति, यम-नियम और प्रत्याहार के द्वारा मानसिकोन्नति तथा धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा आत्मिकोन्नति लाभ करते हैं। इन साधना शिविरों से जनता का बड़ा उपकार हुआ है। इन शिविरों से लोक और परलोक दोनों का सुधार होता है। आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है। जितने काल तक यहां साधक और साधिकाएं निवास करती हैं तब तक पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन होता है, चरित्र का निर्माण होता है और तप, त्याग और वैराग्य की भावना दृढ़ होती है।

निःशुल्क शिक्षा—इस योग विद्यालय की यह विशेषता है कि यहां पर किसी भी साधक या साधिका से योग प्रशिक्षण शुल्क नहीं लिया जाता, अपितु निर्धनों, ब्रह्म-चारियों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों की आर्थिक सहायता की जाती है। इस योग विज्ञान की परंपरा चलाने के लिए 'बहिरङ्गयोग', 'आत्म-विज्ञान' और 'ब्रह्म-विज्ञान' नामक ग्रंथों की रचना करके मनुष्यमात्र का कल्याण-साधन किया है। अनेक प्रकार के सुगम और सरल साधन बताकर सर्व साधकों को अध्यात्म ज्ञान करवाया जाता है।

देश तथा विदेश में योग प्रचार—योगनिकेतन योग विद्यालय ने कई योगाचार्य तैयार किए हैं जो देश-देशान्तरों में जाकर योग का प्रचार करते हैं।

सब मतों और संप्रदायों में समानता—इस योग विद्यालय में सब संप्रदायों के जिज्ञासु योग-साधना करने आते हैं। सबको समान रूप से योग शिक्षा दी जाती है। किसी भी प्रकार का भेद-भाव कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, राधास्वामी, इतना ही नहीं, मुसलमान और ईसाई आदि सभी योग सीखने के लिए आते हैं और सभी यहां से लाभ उठाकर जाते हैं।

योग की सार्वभौमिकता—योग ही एक सार्वभौम धर्म है जिसको वसुधातल पर रहने वाले सभी नर-नारी अपनाते हैं। योग मनुष्यमात्र के लिए उपयोगी, हित-कारी और कल्याणदायक है।

आज आप सब ५ मास की साधना के उपरान्त यहां से विदा हो रहे हैं। यहां से जाकर भी आपको इसी प्रकार अभ्यास करते रहना चाहिए। यदि इससे आगे उन्नति संभव न हो तो कम से कम ५ महीने में यहां जो कुछ सीखा है उसे तो कभी

नहीं भुलाना चाहिए। इसे दृढ़भूमि करते रहें। मेरा आशीर्वाद तथा शुभकामनाएं सदैव आपके साथ रहेंगी। मैं आशा करता हूं कि आप सब उन्नति के पथ पर अग्रसर होंगे और कल्याण के भागी बनेंगे।

भवन की आधार-शिला—३१ मार्च को सभी अभ्यासी योगनिकेतन से विदा हो जाते हैं, इसलिए योगनिकेतन का भवन मुनीकीरेती पर गंगा के किनारे निर्माण की जो एक बड़ी योजना बनाई गई थी उसका प्रारंभ प्रथम मार्च को ही कर दिया था। इस पावन दिवस पर आश्रम की आधारशिला रखी गई और श्री वी० एन० दत्तजी, कैप्टन जगन्नाथजी तथा शंकरलालजी शर्मा ने निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया।

उत्तरकाशी गमन—योग विद्यालय बन्द होने के पश्चात् पूज्य गुरुदेव ने एक मास तक स्वर्गाश्रम में निवास किया और ३० अप्रैल को वहां से चलकर पहली मई को साढ़े तीन बजे उत्तरकाशी योगनिकेतन में पहुंच गए। महात्मा प्रभुआश्रितजी भी कुछ दिनों के लिए यहां आगए। यहां रहकर कई प्रकार की अपनी शंकाओं का समाधान करवाते रहे और ज्ञान तथा विज्ञान में वृद्धि करते रहे। श्री महात्माजी जब योगनिकेतन पहुंचे तब घाट से उतरकर गंगाजी में हाथ-मुंह प्रक्षालनार्थ गए किन्तु दैववशात् पैर फिसल जाने से गिर गए और गले की हड्डी (कालर बोन) टूट गई। विधिवत् इनका उपचार करवाया गया और प्रभु-कृपा से इन्हें आराम आगया। महात्माजी अपने एक शिष्य श्री इन्द्रसेनजी को अपने साथ लाए थे। एक दिन इन्होंने महाराजजी से निवेदन किया कि "महात्माजी तो बड़ी भक्ति और श्रद्धा से आपके दर्शन और सत्संग करने आए थे। यह चोट किस कर्म का फल है?" महाराजजी ने हंसते हुए उत्तर दिया, "अपना नियम भंग करके आए हैं। गुरु की आज्ञा लेकर आना चाहिए था। उसीकी यह सजा है। और दर्शन तथा सत्संग की भावना पूरी हो ही रही है।" महात्माजी कुछ दिवस उत्तरकाशी निवास करने के पश्चात् रोहतक पधारगए।

गंगोत्री में तीन साधकों को योगाभ्यास की शिक्षा—इस वर्ष गंगोत्री के योग-साधना-शिविर में दो साधिकाएं डाक्टर कुमारी रामप्यारी और श्रीमती शान्ति देवी तथा एक साधक श्री शंकरलाल शर्मा सम्मिलित हुए। डा० रामप्यारी की सेविका ललिता बाई भी कुछ दिवस तक अभ्यास में बैठी किन्तु आसन की अस्थिरता के कारण कुछ दिवस तक अभ्यास करके साधना में आना तो छोड़ दिया किन्तु अपनी कुटिया में अभ्यास करती रही। ३० मई को सब तैयारी करके ३१ मई को प्रातः ६ बजे उत्तरकाशी से प्रस्थान करके भटवाड़ी पहुंचे। इससे आगे गंगोत्री तक सारी यात्रा पैदल की। भटवाड़ी से चलकर सायंकाल गंगणानी पहुंच गए, दूसरे दिन हरसिल और तीसरे दिन गंगोत्री पहुंच गए। ३-४ दिन के पश्चात् डाक्टर कुमारी रामप्यारी शास्त्री तथा श्री शंकरलाल शर्मा से पूज्य महाराजजी ने कहा, "आप दोनों को बड़ी तत्परता के साथ साधना और अभ्यास में लग जाना चाहिए। और शीघ्र ही आत्म-विज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें क्योंकि आप दोनों को भविष्य में योगनिकेतन के आचार्य बनकर योग प्रशिक्षण करना होगा। हम बहुत शीघ्र ही आप दोनों को तत्त्व-ज्ञान करवा देंगे, अतः अभी से तत्त्व-ज्ञानियों के समान आचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिए।" अभी साधना शिविर के प्रारम्भ होने में ८ दिन शेष थे परन्तु पूज्य महाराजजी ने ७ जून से ही अभ्यास करवाना प्रारम्भ कर दिया।

श्री शंकरलालजी शर्मा——श्री शर्माजी महाराजजी के पास १९६१ के फरवरी मास में आए थे। आप रावलपिंडी निवासी थे किन्तु अब कई वर्षों से दिल्ली में रहते थे और एलेम्बिक कैमिकल कम्पनी में कार्य करते थे। एक हज़ार रुपया इन्हें वेतन मिलता था। इसके साथ कम्पनी ने इन्हें और भी अनेक सुविधाएं दे रखी थीं। एक कन्या को जन्म देकर युवावस्था में ही इनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया था। इनकी माता सौतेली थी। श्री शर्माजी यद्यपि युवक थे किन्तु इन्होंने द्वितीय विवाह करना उचित नहीं समझा। अपनी पुत्री को भली प्रकार से सुशिक्षित करके उसका योग्य वर के साथ विवाह कर दिया। यह एक ही इनका उत्तरदायित्व था। इसे पूर्ण करके इनका चित्त कुछ उपराम सा रहने लगा। अध्यात्म ज्ञान की रुचि जागृत होगई, अतः अध्यात्म ज्ञान के प्रदाता किसी महापुरुष की खोज करने में व्यस्त होगए। सर्व-प्रथम विनोबा भावे के पास गए और कुछ काल तक उनके पास निवास भी किया किन्तु किंचिन्मात्र भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई, अतः वहां से लौट आए। इनकी पुत्री के श्वसुर कई वर्षों से ऋषिकेश में रहते थे। श्री शंकरलालजी ने अध्यात्म-पथ में मार्गदर्शन करने के योग्य किसी महात्मा का नाम बताने के लिए कहा। पंडित शिवदत्तजी का पूज्य महाराजजी से बहुत पुराना परिचय था। इनकी बड़ी ख्याति इन्होंने सुन रखी थी। अतः वे श्री शर्माजी को स्वर्गाश्रम में योगनिकेतन में ले आए और इन्हें महाराजजी के अर्पण कर दिया। तब से पंडित शंकरलालजी शर्मा इनके ही बनकर इनके पास निवास कर रहे हैं।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीजी शास्त्री—डाक्टर कुमारी रामप्यारी देवीजी शास्त्री लुधियाना के पास पायल निवासिनी हैं। जब इनकी आयु केवल १६-१७ साल की थी तभी से इन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। इसके लिए इन्हें अपने माता-पिता तथा परिवार का बड़ा कोप-भाजन बनना पड़ा और विविध कठिनाइयों को सहन किया, किन्तु ये अपने व्रत पर हिमालय पर्वत के समान अटल रहीं। आपने १० वर्ष तक कन्या महाविद्यालय जालंधर में शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् हिन्दु विश्वविद्यालय बनारस में पांच साल तक निवास करके बी०ए०, बी०टी० और शास्त्री परीक्षाएं पास कीं और इतिहास में एम० ए० प्राईवेट पास किया और राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से पी-एच०डी० की उपाधि ग्रहण की। प्रथम रियासत कोटा के तथा इसके बाद राजस्थान के शिक्षा विभाग में राजसेवा करती रही हैं। वर्षों तक चीफ इन्स्पैक्ट्रेस, असिस्टैंट डायरेक्ट्रेस और डिग्री कालेजों के प्रिन्सिपल के पदों पर कार्य कर चुकी हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय की एकेडेमिक कौंसिल, सिनेट तथा सिंडीकेट की वर्षों तक सदस्या रही हैं। आप हिन्दी की अच्छी लेखिका हैं और कई ग्रंथों की रचना की है। शिक्षा, समाज, धर्म तथा राजनैतिक क्षेत्रों में आपने बहुत काम किया है। राजसेवा से निवृत्त होने के पश्चात् कन्या महा-विद्यालय जालंधर में एक वर्ष तक आचार्या के पद पर अवैतनिक सेवा की।

पूज्य महाराजजी २८ अक्टूबर १९६४ को काश्मीर से लौट रहे थे। जालंधर के स्टेशन पर श्रीमती डाक्टर विद्यावतीजी, जालंधर कन्या महाविद्यलय की प्रबंध-कर्त्री सभा की उपप्रधाना कुमारी लज्जावतीजी और डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी इनके दर्शन करने आईं। स्टेशन पर आने से पूर्व डाक्टर विद्यावतीजी ने डाक्टर

कुमारी रामप्यारीदेवीजी से एक उच्च कोटि के महात्मा के दर्शनार्थ स्टेशन पर चलने के लिए कहा। डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवी ने उपेक्षा दर्शाते हुए कहा, "क्या लाभ होगा? मैंने बहुतेरे सन्तों के पहिले ही दर्शन कर रखे हैं।" इस पर डाक्टर विद्यावतीजी को कुछ निराशा सी हुई किन्तु इन्होंने पुनः कहा, "आपने इस प्रकार के महान् सन्त नहीं देखे होंगे। ये हिमालय के योगी हैं। दर्शन मात्र से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। बहुत वर्षों से आपकी जो योग सीखने की अभिलाषा है वह पूर्ण हो जाएगी। आपका अन्तःकरण निर्मल हो जाएगा और मुक्ति लाभ करोगी।" ये बातें सुनकर डा० रामप्यारीदेवी भी साथ चलने के लिए तैयार होगईं। स्टेशन पर केवल १० मिनट ही दर्शन किए थे। दर्शन करते ही उनका मन आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा। योग सीखने की अभिलाषा प्रबल हो उठी। विद्यालय के कार्य को परित्याग करने का एकदम निश्चय किया और आजीवन आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करने का अटल निर्णय कर लिया। डाक्टर विद्यावतीजी तथा कुमारी लज्जावतीजी आपकी बड़ी समीपवर्ती थीं; डाक्टर कुमारी रामप्यारीजी से कहने लगीं कि महात्माजी के आपको दर्शन करवाने में हमने बड़ी भूल की क्योंकि अब आप योग सीखने के लिए चली जाओगी और हम आपसे वंचित ही रह जाएंगी। आपने तो एकदम ही अपने भविष्य का कार्यक्रम बना लिया। कुमारी लज्जावतीजी ने विद्यालय में रहने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु इन्होंने उनकी बात नहीं मानी। विद्यालय के आचार्या के पद से त्यागपत्र देने का निश्चय कर लिया। अपना शेष जीवन हिमालय में रहकर योग द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के दर्शनों का इनके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। विद्यालय से प्रथम १५ दिन का अवकाश लेकर स्वर्गाश्रम के साधना शिविर में सम्मिलित होने का निश्चय किया। पूज्य योगीराजजी से प्रवेश के लिए आज्ञा मांगी तथा १५ दिन के लिए योग-साधना-शिविर में सम्मिलित होगईं। इन्होंने थोड़े ही दिनों में बहुत उन्नति कर ली। भ्रूमध्य में दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होगया और ब्रह्मरंध्र का तथा उसके पदार्थों का साक्षात्कार होने लगा। इससे इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और जीवन की सफलता के चिन्ह दिखाई देने लगे।

श्री महाराजजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और विश्वास उत्पन्न होगया। एक दिन इन्होंने महाराजजी से नम्र निवेदन किया कि मैं योगनिकेतन में स्थायी रूप से रहकर आत्म-विज्ञान प्राप्त करना चाहती हूं। मुझे पेन्शन मिलती है। सेवा के लिए सेवक या सेविका अपने पास रखूंगी, आपके ऊपर मेरा कोई भार नहीं होगा। आप मुझे अपनी पुत्री समझकर तत्त्व-ज्ञान का उपदेश करें तथा आत्म-ज्ञान के साक्षात्कार का साधन बतावें। मेरी आयु इस समय ६० वर्ष की है। जीवन का कुछ भरोसा नहीं, अतः आप मुझ पर दयादृष्टि करें।

श्री महाराजजी ने कहा, बेटी! एक शर्त पर हम आपको आत्म-ज्ञान का उपदेश देंगे और उसका साक्षात्कार भी शीघ्र ही करवा देंगे तथा आपको योग की आचार्या बना देंगे। वह शर्त यह है कि आप इस विज्ञान को प्राप्त करके योगनिकेतन में स्थायी रूप से रहकर देवियों को योग की शिक्षा दें। भूली भटकी देवियों को योग मार्ग पर चला कर अध्यात्म-ज्ञान प्रदान करो। डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवी ने

पूज्य महाराजजी के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन आपकी आज्ञा का पालन करती रहूंगी।

योगनिकेतन में बहुत वर्षों से स्त्री और पुरुष इकट्ठे ही योग-साधना कर रहे हैं। पुरुष योगाचार्य तो कई तैयार होगए हैं, किन्तु देवी आज तक कोई तैयार नहीं हो पाई थी जो देवियों को साधना करवा सके। इसलिए महाराजजी ने डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी को आजन्मब्रह्मचारिणी, विदुषी, सांसारिक झण्झटों से निवृत्त, आयु तथा धनवृद्ध, अनेक गुणों से सम्पन्न, उच्चादर्श प्रिय तथा उदात्तभावना युक्त और योग प्रशिक्षण के लिए योग्य जानकर इस कार्य के लिए प्रतिज्ञा ली।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी ने स्वर्गाश्रम, उत्तरकाशी तथा गंगोत्री के योगनिकेतनों में साधना करने का नियम बना लिया था। इसीलिए गंगोत्री भी अभ्यासार्थ आई थीं। महाराजजी सायंकाल सब साधकों को इकट्ठे ही साधना करवाते थे परन्तु डाक्टर रामप्यारीदेवीजी को दिन के १० बजे से ११ बजे तक विशेष समय देते थे क्योंकि इन्हें शीघ्र योगाचार्या बनाने का ये निश्चय कर चुके थे। यह देवी शीघ्र उन्नति करने लगी। ब्रह्मरंध्र और हृदय के विज्ञान में अच्छी प्रगति होने लगी। विशोका ज्योतिष्मती बुद्धि उत्पन्न होकर ऋतंभरा के रूप में परिणत होने लगी। नाना प्रकार के पदार्थों का साक्षात्कार करने लगीं। अब पूज्य गुरुदेव ने विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को समझाना प्रारंभ किया। साधना करवाने के उपाय, दूसरों के मनों पर प्रभाव जमाने के उपाय, अपने अनुकूल दूसरों की बुद्धि को करने के उपाय, अन्तः-करणों के गुणों में परिवर्तन करने की विधि आदि समझाने लगे।

डाक्टर कुमारी रामप्यारीदेवीजी ने एक बार पूज्य गुरुदेवजी से प्रश्न किया कि मुझे किसी-किसी समय ध्यान काल में या समाधि की अवस्था में विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। यह आनन्द ईश्वर का है या आत्मा का अथवा चित्त का ही धर्मविशेष या गुणविशेष है?

आनन्द धर्म किसका है?

पूज्य महाराजजी ने शंका-समाधान करते हुए उपदेश दिया :—

स्थूल शरीर में आनन्दाभाव—जब योगी बुद्धि की वृत्तियों को समाहित करके संप्रज्ञात समाधि द्वारा स्थूल शरीर में प्रवेश करता है तो उसको इसके भीतर रस, रुधिर, मांस, मेद, मज्जा, नस, नाड़ियां, अस्थि आदि ही अपनी दिव्य दृष्टि से दिखाई देते हैं। आनन्द का आभास अथवा अनुभूति इस अन्नमय कोष में नहीं मिलती।

प्राणमय कोष में भी अभाव—इसके आगे जब योगी प्राणमय कोष में प्रवेश करता है तब इसको १० प्रकार के प्राण, इनके स्थान या कार्य अथवा रूप, रंग तथा आकार दिखाई देते हैं, परन्तु इस कोष में भी आनन्द नहीं प्राप्त होता है।

मनोमय कोष में भी आनन्द नहीं—यहां से निराश होकर योगी आनन्द की खोज करता हुआ मनोमय कोष में प्रवेश करता है, परन्तु इसमें भी स्थूल और सूक्ष्म भूत, ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों का ही प्रत्यक्ष होकर रह जाता है, आनन्द के स्रोत का कहीं पता नहीं चलता। यहां पर भी उसकी जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हुई।

विज्ञानमय कोष में भी अभाव—अब योगी यहां से भी आगे बढ़ता है और विज्ञानमय कोष में प्रवेश करके भी केवल भूतों, इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि के ही स्वरूपों का साक्षात्कार करता है, किन्तु आनन्द उसे यहां भी प्राप्त नहीं होता। इसकी प्राप्ति की उत्कण्ठा पूर्ववत् बनी रहती है।

आनन्दमय कोष में आनन्द प्राप्ति—अब योगी संप्रज्ञात समाधि द्वारा और आगे बढ़ता है और आनन्दमय कोष में प्रविष्ट होता है। जब वह इसमें जाता है तो उसे आनन्द की झलक सी तो आती है परन्तु उसे यह निर्णय नहीं हो पाता कि इसका वास्तविक स्रोत है कहां। अतः वह कुछ भ्रान्त सा हो जाता है। उसके मन में ऊहापोह, तर्क-वितर्कादि होने लगते हैं। वह आनन्द के अन्वेषण के लिए प्रयत्नशील रहता है। आनन्दमय कोष में मिले-जुले कई पदार्थ हैं।

सूक्ष्म प्राण में आनन्द नहीं—सर्वप्रथम योगी सूक्ष्म प्राण को ही अपनी समाधि का विषय बनाता है, क्योंकि इसी के द्वारा जीवन का संचार होता है। जीवनी शक्ति यहां से ही निकल कर ऊपर के कोषों में संचारित होती है। क्या इसी जीवनी शक्ति या सूक्ष्म प्राण को ही आनन्द का स्रोत समझ लें? क्या जीवनी शक्ति और आनन्द में अन्तर नहीं? अन्तर अवश्य मानना पड़ेगा क्योंकि जीवन का स्रोत तो कोई और ही है, अतः आनन्द का स्रोत भी कहीं और ही होना चाहिए।

अहंकार में भी नहीं—जब अहंकार में प्रवेश करके देखता है तो योगी को यहां भी आनन्द का स्रोत दृष्टिगोचर नहीं होता। जिसके द्वारा ममेदम् की भावना होती हो उसमें आनन्द रह ही कैसे सकता है! अब इसके आगे चार पदार्थ रह जाते हैं जिनमें योगी को आनन्द के स्रोत का अन्वेषण करना है। आनन्द अनित्य है, शाश्वत नहीं। यदि यह नित्य होता तो इसकी उपलब्धि सदा बनी रहती। इसलिए आनन्द को उत्पन्न होने वाला मानना पड़ेगा। अब जो चार पदार्थ अवशेष हैं वे ये हैं:—चित्त, आत्मा, प्रकृति, और ब्रह्म।

ब्रह्म आनन्द का स्रोत नहीं—सर्वप्रथम योगी ब्रह्म में आनन्द की खोज करता है। यहां पर उसने देखा कि यहां किसी प्रकार का कोई परिणाम नहीं हो रहा जिससे आनन्दरूप धर्म या गुण उत्पन्न हो। समाधि द्वारा चित्त को ब्रह्म के साथ जोड़ा जाता है, तो क्या इस अवस्था में आनन्द को ब्रह्म से आया हुआ मान लें? जब ब्रह्म में किसी भी प्रकार का विकार ही नहीं है तो उससे आनन्द का आना कैसे मान लिया जाए? यदि उससे आया हुआ मानें तब ब्रह्म को विकारवान् मानना पड़ेगा। वह चित्त या प्रकृति के समान परिणामयुक्त या विकारयुक्त बन जाएगा। आनन्द का कभी उत्पन्न होना और कभी न होना इसके अनित्यत्व को सिद्ध करता है। यदि कोई शंका उठावे कि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, जब-जब चित्त उसके साथ संयुक्त होगा तब-तब ही आनन्द की उपलब्धि होगी, तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह आनन्द चित्त का है या ब्रह्म का? इन दोनों में आनन्द का उपादान कारण कौन हुआ, चित्त या ब्रह्म? ब्रह्म तो निर्विकार है इसलिए वह किसी का उपादान कारण बन नहीं सकता और यदि ब्रह्म को आनन्द रूप मान लें तब यह शंका होती है कि वह आनन्द उससे भिन्न है या अभिन्न? यदि भिन्न है तो वह उसका नहीं हुआ और यदि अभिन्न है तब वह अवस्थान्तर रूप से है या कार्य रूप से? अवस्थान्तर रूप और

कार्यरूप दोनों ही परिणाम को सिद्ध करते हैं। यदि कहो, ब्रह्म चेतन रूप है और चेतन ही आनन्द रूप हो सकता है, तो चित्त जड़ है इसमें आनन्द नहीं हो सकता। यदि आप चेतन ब्रह्म को ही आनन्द रूप मानते हैं तो चित्त का सम्बन्ध तो सदा ही ब्रह्म से बना रहता है। सदा ही चित्त में आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए पर यह सदा होती नहीं। अतः आनन्द को अनित्य ही मानना पड़ेगा। जहां और जिस वस्तु में प्राप्ति की बात बनती है वहां उस प्राप्ति को भी अनित्य ही मानना पड़ेगा। क्योंकि आनन्द प्राप्त होता है, अतः उसको अनित्य और सावधि मानना पड़ेगा। इसलिए ब्रह्म से आनन्द की प्राप्ति सिद्ध नहीं होती। यदि ब्रह्म आनन्द रूप है तो आनन्द चित्त में होता है या ब्रह्म में? समाधिस्थ योगी समाधि से व्युत्थान होने पर कहता है कि आज मुझे बड़ा आनन्द लाभ हुआ। आनन्द का आना जाना ब्रह्म में है या चित्त में? ब्रह्म तो आनन्द रूप ही है। ब्रह्म यह नहीं कहता कि मुझे आनन्द आया या प्राप्त हुआ, यह कहने वाला तो चित्ताभिमानी आत्मा है न कि ब्रह्म। इस पर यह शंका होती है कि ब्रह्म में और आत्मा में कोई अन्तर है या नहीं? इन दोनों में अन्तर है और महान अन्तर है। एक अणु है और दूसरा महान है। आत्मा अणु तथा ब्रह्म महान है। अतः ब्रह्म भी आनन्द का स्रोत सिद्ध नहीं होता। उससे आनन्द निकल कर या बहकर नहीं जाता है। उसे आनन्द रूप स्रोत का उपादान कारण नहीं कह सकते हैं।

आनन्द जीवात्मा का भी धर्म नहीं—तो क्या जीवात्मा को आनन्द का स्रोत मानें? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए योगी पुनः सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा जीवात्मा में आनन्द की खोज करने लगता है। अपने चित्त को आत्मा के साथ जोड़ता है। समाधि की इस अवस्था में आनन्द का प्रादुर्भाव तो अवश्य होता है परन्तु यह निश्चय नहीं हो पाता कि इन दोनों में से आनन्द किसमें है। यदि आत्मा का आनन्द मानते हैं तो इसको भी चित्त के समान् विकारवान् मानना पड़ेगा। बहुत से विद्वान् आत्मा को सत् और चित् ही मानते हैं, आनन्द रूप नहीं मानते। उनसे पूछना चाहिए कि आप ब्रह्म को ही क्यों आनन्द रूप मानते हैं? इसका उत्तर वे यह देते हैं कि ब्रह्म चेतन है, नित्य है, सत् है, अतः वह आनन्द रूप भी है। हम भी जीवात्मा को सत्, चित् और आनन्द मानते हैं। जब चेतन होने से और सत् होने से आपका ब्रह्म आनन्द रूप हो सकता है तो आत्मा भी चेतन होने से और सत् होने से आनन्द रूप हो सकता है। जिन हेतुओं से आप ब्रह्म को आनन्द रूप मानते हैं उन्हीं हेतुओं से हम भी आत्मा को आनन्द रूप मानते हैं। यदि आप कहें कि तब ब्रह्म और आत्मा में अन्तर ही क्या हुआ, दोनों एक समान और एक रूप बन गए, तब हमारा कथन है कि समानता दो पदार्थों में होती है परन्तु एकरूपता नहीं होती। एकरूपता कार्य की कारण में या कारण की कार्य में हो सकती है। आत्मा और परमात्मा का कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध भी नहीं है जिससे एकरूपता मानी जाए। चित्त की भी आत्मा के साथ एकरूपता नहीं बनती क्योंकि दोनों विजातीय हैं। तब समान जाति वालों की एकरूपता मान ली जाए क्योंकि आत्मा और परमात्मा दोनों चेतन हैं, अतः समान जाति वाले होने से एकरूपता हो जाएगी। लेकिन क्या जीवात्मा ब्रह्म से उत्पन्न हुआ था जो उसकी ब्रह्म के साथ एकरूपता सिद्ध हो सके? यदि ऐसा मान भी लिया जाए

तो कार्य-कारणात्मक भाव सिद्ध हो जाएगा और दोनों विकारवान् बन जाएंगे। चेतनत्वेन निःसंदेह ब्रह्म और जीवात्मा की समानता है किन्तु व्यक्तिरूप से दोनों भिन्न हैं। जैसे दो पुरुष हैं, दोनों की जाति तो चेतनत्वेन एक है, किन्तु व्यक्ति तो दोनों भिन्न हैं। अतः ब्रह्म और जीव की जाति तो भले ही एक है परन्तु व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न हैं। जीवात्मा अणु और ब्रह्म महान है। यहां पर महानता और अणुता का भेद है, जाति का भेद नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि जाति एकत्व में रहेगी या अनेकत्व में ? जाति को तो अनेकत्व में ही मानना पड़ेगा, जैसे मनुष्य जाति, पशु जाति आदि। तो क्या जीवात्मा और परमात्मा की पृथक्-पृथक् जाति मान लें ? जीवात्मा अनेक हैं, अतः इनकी जाति सिद्ध हो जाएगी। परन्तु परमात्मा तो अनेक नहीं हैं, उसकी जाति कैसे सिद्ध होगी ? अतः परमात्मा को भी चेतनत्वेन जीवात्मा की जाति में ही मानना पड़ेगा। शंका :—ब्रह्म महान है और प्रकृति भी महान है, अतः इन दोनों को एक जाति वाला मानने में क्या आपत्ति है ? इसका समाधान यह है :—इनमें एक जड़ है और दूसरा चेतन है, अतः ये दोनों समान जाति वाले नहीं हो सकते। हमने तो जीव और ब्रह्म में अणु और महानता का भेद माना है। अणु और महानता कोई गुण नहीं हैं, इनके स्वरूप ही हैं, इसलिए अणुत्व और महानता से जाति भेद नहीं हो सकता। पुरुषत्व रूप से एक जाति होने पर भी एक पुरुष वामन होता है और एक खूब लम्बा और ऊंचे कद का होता है, किन्तु पुरुष वे दोनों कहलाएंगे। लघुता और महानता शरीर के धर्म हैं न कि आत्मा के। हम तो चेतनत्वेन जाति मानते हैं न कि शरीरों के छोटे बड़े धर्मों से। अतः जीवात्मा का भी आनन्द धर्म नहीं बनता। यदि इसका धर्म मानोगे तो इसे विकारवान् मानना पड़ेगा। इससे अनित्य आनन्द की उत्पत्ति माननी होगी। जो दोष ब्रह्म में आनन्द मानने में आते थे वे आनन्द को आत्मा का धर्म मानने में भी उपस्थित हो जाएंगे। इसलिए कोई ऐसा पदार्थ होना चाहिए जिससे आनन्द की उत्पत्ति हो सके और वह विकारवान् हो सके।

प्रकृति में भी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है—तब क्या आनन्द प्रकृति का ही गुणविशेष है ? इस शंका को लेकर योगी संप्रज्ञात समाधि द्वारा और आगे बढ़ता है। प्रकृति आत्मा और परमात्मा पर एक प्रकार का आवरण है। प्रकृति का मुख्य रूप से सम्बन्ध ब्रह्म के साथ है। यदि इस सम्बन्ध से आनन्द की उत्पत्ति मानें तो ब्राह्मी सृष्टि में उस आनन्द का उपभोक्ता किसको माना जाए, क्योंकि उस समय तक जीवों के स्थूल शरीरों की उत्पत्ति ही नहीं हुई होती। यदि उस प्रकृति से उत्पन्न हुए आनन्द का भोक्ता ईश्वर को मानते हैं तब वह भी जीवात्मा के समान बद्ध हो जाएगा और उसमें तथा जीव में कोई विशेषता न रहेगी। जैसे जीवात्मा और चित्त के संयोग से आनन्द की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार प्रकृति और ब्रह्म के संयोग से भी आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। परन्तु उस आनन्द का उपभोग करने वाला उस काल में कौन हो ? ब्रह्म तो हो नहीं सकता और जीवात्मा ने अभी शरीर ही धारण नहीं किया है। इसलिए उस समय प्रकृति से आनन्द की उत्पत्ति निरर्थक ही हो जाएगी। मूल कारण रूप प्रकृति ही आनन्द का उपादान कारण हो सकती है। यदि इसमें यह गुण न हो तो इसके कार्यों में भी यह नहीं हो सकता क्योंकि जो गुण

कारण में होते हैं वे कार्य में अवश्य होते हैं। यह आनन्द सूक्ष्म रूप से कारण में पड़ा रहता है। इसकी अभिव्यक्ति चित्त रूप कार्यों में जाकर होती है।

आनन्द चित्त का धर्म है—चित्त में जैसे और अनेक गुणों की उत्पत्ति होती है, यथा—सुख, राग, स्नेह, चिन्तन, स्मृति, शांति, आदि, इसी प्रकार इसमें आनन्द की उत्पत्ति भी होती है। जब चित्त का सम्बन्ध इन्द्रियों के विषयों के साथ होता है तब सुख की उत्पत्ति होती है। जब इसका सम्बन्ध आत्मा या ब्रह्म के साथ समाधि की अवस्था में करते हैं तब इसमें आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। जब संस्कारों या वृत्ति का निरोध करते हैं तब भी इससे आनन्द की उत्पत्ति होती है। जैसे सुख-शान्ति की अवस्था चित्त की एक स्थिति है या अवस्था है, इसी प्रकार आनन्द भी चित्त की एक अवस्था विशेष या इसका यह धर्म अथवा गुण विशेष है। योगी जब संकल्प और विकल्प का अभाव करके शून्यता में स्थित होता है तब अन्धकार और शून्यता उत्पन्न होती है। इसके पश्चात् एक दूसरी अवस्था आती है, वह है शून्यता और मन्द-मन्द आलोक या प्रकाश। इसके पश्चात् एक तीसरी अवस्था और आती है जो सत्व प्रधान होती है, वह है शून्यता और आनन्द की अभिव्यक्ति। ये सब चित्त की ही अवस्थाएं हैं क्योंकि इसमें ही अवस्थान्तर परिणाम होता है। यह आनन्दरूपा-वस्था इसकी सात्विक और अन्तिमावस्था है। इसकी सत्व प्रधान अवस्था में ही आत्मा के सान्निध्य से आनन्द की अभिव्यक्ति और आत्म-दर्शन होता है, अतः चित्त का ही यह धर्मविशेष मानना पड़ेगा। यह चित्त की सत्व प्रधान अवस्था होती है। यही इसकी आनन्द रूप अवस्था मानी जाती है। जब इसमें रज प्रधान होता है तब क्रियाशील अवस्था बनी रहती है। जब यह तमःप्रधान होता है तब जड़ता रूप स्थिति या अवस्था होती है। शरीर के रहते हुए इसमें क्रिया का अभाव नहीं हो सकता। वैसे क्रिया धर्म रजोगुण का है परन्तु उस वक्त रजोगुण दबा हुआ सा मन्द क्रिया का हेतु बना रहता है। ज्ञान रूप या आनन्द रूप अवस्था सत्व की प्रधानता में ही होती है। इस प्रकार की आनन्द रूप स्थिति को बहुत से योगी आत्मा का ही आनन्द समझ लेते हैं परन्तु वास्तव में वह आनन्द चित्त में ही होता है और यह आनन्द चित्त की ही एक अवस्था विशेष है। आत्मा निर्विकार, निरवयव, कूटस्थ, निष्क्रिय है, अतः इसमें आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं होती। यह आनन्द चित्त की ही अवस्था है। एकाग्रावस्था या निरोधावस्था में इस आनन्द की अभिव्यक्ति या उत्पत्ति होती है। यह आनन्द चित्त का धर्म होने से किसी इन्द्रिय का विषय नहीं होता। न यह रसना का विषय बनता है, न रूप का ही और न स्पर्श और शब्द का ही। इसका कोई रंग, रूप, आकार, प्रकार नहीं होता, इसलिए यह चित्त का ही एक परिणाम विशेष है। जब चित्त में इस आनन्द की अभिव्यक्ति होती है तब ऐसा मालूम होता है मानो आनन्द का स्रोत बहकर तीनों शरीरों, पांचों कोषों में प्रवाहित हो रहा है। सूक्ष्म प्राण इसको लेकर चल रहा है और इसके साथ जीवन का संचार कर रहा है। यह आनन्द जब ब्रह्मरंध्र में पहुंचता है तब इन्द्रियों और विषयों के साथ मिलता है और तब इसकी सुख संज्ञा हो जाती है। जब यह केवल चित्त में रहता है और उस समय आत्मा या परमात्मा के साथ चित्त का संपर्क बना रहता है उस समय इसकी मुख्य रूप से आनन्दरूपावस्था कहलाती है। किन्तु बहुत से आचार्यों ने इस आनन्द को

आत्मा या परमात्मा का ही गुण विशेष माना है अथवा आत्मा और परमात्मा में आरोप किया है। किन्तु हम आत्मा और परमात्मा को निर्गुण, निर्विकार, निष्क्रिय, निरवयव, कूटस्थ, अविचल मानते हैं, प्रकृति और चित्त के संग रहते हुए भी उनका विकारवान् होना नहीं मानते। अतः आनन्द चित्त की ही एक अवस्था विशेष है और चित्त का ही धर्म विशेष है।

पंच कोषों का पंचकोषात्मक स्थूल-शरीर

पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने एक दिन अपने शिष्य शंकरलाल शर्मा को गंगोत्री में उपदेश देते हुए बताया कि हमने 'आत्म-विज्ञान' में स्थूल शरीर के दो ही कोषों का निरूपण किया है, अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का। अन्य आचार्यों ने भी इन्हीं दो का वर्णन किया है। परन्तु आज हम आपके सामने इस पंचकोषात्मक स्थूल-शरीर का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। आप अच्छी तरह से ध्यान देकर श्रवण करें।

वास्तव में इस दृश्यमान स्थूल शरीर में पांच कोष हैं--पार्थिव कोष, जलीय कोष, आग्नेय कोष, वायवीय कोष, और आकाशीय कोष। अन्नमय कोष के स्थान में पार्थिव कोष और प्राणमय कोष के स्थान में वायवीय कोष का भिन्न प्रकार से कथन करेंगे। पृथ्वी का कार्य होने से इस शरीर को पार्थिव कोष कहा जाएगा। इस शरीर में मुख्य भाग पृथ्वी का ही है। अन्नरूप आहार इस शरीर के जीवन का आधार है। अन्न से ही यह पुष्ट और शक्तिशाली होकर बहुत काल तक जीवन धारण करता है। अन्न से ही इसमें वीर्य उत्पन्न होता है जो सन्तानोत्पत्ति का मुख्य हेतु होता है। इसीलिए इसे अन्नमय कोष कह दिया है परन्तु अन्न भी तो पृथ्वी से उत्पन्न हुआ है और पृथ्वी का ही विकार या कार्य है। अतः यह शरीर पार्थिव ही सिद्ध होता है। इसमें अस्थि आदि जो पदार्थ हैं वे भी पृथ्वी के ही कार्य हैं। इसलिए इसे पार्थिव कोष कहना ही उचित होगा। इसके दस भेद हैं।

दश प्रकार का पार्थिव कोष

अस्थि दान्त, नख केश दाढ़ी मूंछ रोम, मांसपेशिएं, नाड़ी आंतें फुप्फुस, ज्ञान और गति वाहक सूत्र, त्वचा घ्राणेन्द्रिय, रस रुधिर के सूक्ष्म भाग, मेद मज्जा, रज वीर्य में सूक्ष्म भाग, मलादि। इन दश भागों से युक्त पार्थिव कोष कहलाता है। इन पदार्थों की स्थूल शरीर में प्रधानता है।

१. अस्थि और दान्त—मानव शरीर में कठोरतम भाग अस्थियों का है। इनकी संख्या २०६ है। अस्थियों से मिल कर यह शरीर बना है। यदि इनको मांसादि से पृथक् कर दिया जाए तब कंकाल या अस्थिपंजर कहलाता है। मुंह में कुल ३२ दान्त हैं। किसी-किसी व्यक्ति के कम भी होते हैं। महात्मा बुद्ध के मुंह में केवल २८ दान्त ही थे। सब इन्द्रियों का सम्बन्ध मृत्यु पर्यन्त बना रहता है परन्तु दान्त पीछे उत्पन्न होते हैं और प्रथम निकल जाते हैं।

२. नख, केश, डाढ़ी, मूंछ, रोम—मनुष्य देह में २० नख हैं। इनसे अंगुलियों की रक्षा होती है और चीरने, फाड़ने, कुरेदने आदि के काम आते हैं। केश, डाढ़ी, मूंछ सिर और मुंह की रक्षा करते हैं और शोभा बढ़ाते हैं। गर्मी और शीत से

बचाते हैं। सिर की प्रहार से रक्षा करते हैं। रोम कूप से शरीर की शुद्धि होती है जिससे अनेक रोगों का निवारण होता है।

३. मांसपेशियां—शरीर का सब अस्थिपंजर मांसपेशियों से ढका हुआ है। सारे शरीर में गतियां या क्रियाएं—हाथ पैर गर्दनादि का हिलना चलनादि कार्य इनके द्वारा ही होते हैं। भोजन का परिपाक, आंतों में आहार का गमन, मल-मूत्र वहन, हृदय की धड़कनादि सभी इन्हीं के द्वारा होता है। मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों को पेशियां कहते हैं। ब्रह्मरंध्र से नाड़ियों द्वारा मांसपेशियों को गति प्राप्त होती है।

४. नाड़ी, आंतें आदि—नाड़ियों का सारे शरीर में जाल-सा फैला हुआ है। इनका सब इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध है। सहस्रों की संख्या में नाड़ियां शरीर में विभिन्न कार्य करती हैं। रक्त परिभ्रमण तथा रक्त को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में ले जाना इन्हीं का कार्य है। सुषुम्ना, इड़ा, पिंगलादि ज्ञान का संचार करती हैं। भिन्न-भिन्न अंगों की अलग-अलग नाड़ियां हैं और भिन्न-भिन्न इन्द्रियों की नाड़ियां भी पृथक्-पृथक् हैं। इन सबका 'आत्म-विज्ञान' में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शरीर में इन नाड़ियों के रंग, रूप, आकार, प्रकार तथा कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं। ये सारे शरीर में व्याप्त हो रही हैं। नाड़ियों के भीतर पोल होता है किन्तु ज्ञान और गति वाहक सूत्र ठोस होते हैं। उनमें पोल नहीं होता। खाद्य तथा पेय पदार्थ और श्वास-प्रश्वास का कार्य भी ये नाड़ियां ही करती हैं। वास्तव में पक्वाशय तथा आमाशय भी एक प्रकार की मोटी नाड़ियां ही हैं। ये अन्नादि के पाकादि का कार्य करती हैं। इन्हें ग्रंथि भी कहते हैं। पतली तथा बारीक नाड़ियां रक्त संचार और ज्ञान क्रिया का संचार करती हैं। इनमें अस्थियां नहीं होतीं। ये सारे शरीर को जोड़ कर बांध कर रखती हैं। शरीर की सारी अस्थियां इनसे बंधी हुई हैं। मांसपेशियां अस्थियों को बांध कर रखती हैं, किन्तु नाड़ियां अस्थियों और मांसपेशियों को भी बांध कर रखती हैं। फुप्फुस भी इनके अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि ये भी कोष्ठ के रूप में होते हैं और ये कोष्ठ लाखों की संख्या में हैं।

५. ज्ञान और गति वाहक तन्तु—ज्ञान और क्रिया गतिसूत्रों या ज्ञानतन्तुओं का सम्बन्ध मस्तिष्क और सुषुम्ना से होता है। ये सूत्र विद्युत तार के समान समस्त शरीर में ज्ञान और क्रिया का संचार करते हैं। इन्हीं के द्वारा सारे शरीर में जीवन का संचार होता है। ये अन्दर से टेलीफोन के तार के समान ठोस होते हैं। ब्रह्मरंध्र से संवेदन सुषुम्ना द्वारा सारे शरीर में पहुंचते हैं और सारे शरीर के संवेदन सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध्र में पहुंचते हैं। ज्ञानप्रधान ब्रह्मरंध्र और भावप्रधान हृदय प्रदेश इन दोनों के संवेदन परस्पर आदान-प्रदान करते रहते हैं। सारा शरीर इन सूत्रों से व्याप्त रहता है। इनके द्वारा सारे शरीर में ज्ञान और क्रिया का वहन हो रहा है। ये ज्ञान और गति सूत्र नाड़ियों, ग्रंथियों तथा मांसपेशियों के सहारे सारे शरीर में पहुंचे हुए हैं।

ये ज्ञान और गति वाहक तन्तु घ्राणेन्द्रिय के अन्दर बाल से भी सूक्ष्म निकले हुए गन्ध का ज्ञान करवाने में समर्थ होते हैं, क्योंकि गन्ध पृथ्वी का गुण है और इसका वास नासिका में है। नासिका ही गन्ध को ग्रहण करती है किन्तु सूक्ष्म गन्ध का वहन घ्राणेन्द्रिय में लगे हुए ये सूत्र ही करते हैं। नासिका के नथनों के अन्दर ब्रह्मरंध्र की या मस्तिष्क की ओर को लगभग डेढ़ इंच वर्गफल घ्राणेन्द्रिय के साथ बना हुआ होता

है। साम्वेदनिक सूत्र स्थूलेन्द्रिय और सूक्ष्मेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध बनाए रखकर गन्ध ज्ञान का आदान-प्रदान करते-कराते रहते हैं। इसी प्रकार ये सूत्र सर्वेन्द्रियों के ज्ञान और कर्म व्यापार या संवेदनात्मक ज्ञान और क्रियात्मक गति का कार्य इतस्ततः आदान-प्रदान करते रहते हैं। ज्ञान वाहक सूत्रों का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से, गति वाहक सूत्रों का कर्मेन्द्रियों से होता है। ये दो रंग के होते हैं, श्वेत और धूसर। श्वेत तन्तु कुछ मोटे होते हैं। क्रिया और गति इनका कार्य है। धूसर रंग के सूत्र इनसे कुछ पतले होते हैं। वे ज्ञान-वाहक हैं। ये बहुत स्वच्छ होते हैं, इसीलिए ये संवेदना, चेतना या ज्ञान के वाहक होते हैं। ये ज्ञानात्मक बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों के कार्य करते हैं। श्वेत मन और कर्मेन्द्रियों के कार्य करते हैं।

६. त्वचा और घ्राण—त्वचा, अस्थि, मांस, नाड़ी आदि संपूर्ण शरीर का आच्छादन करने और रक्षा के लिए होती है। यह सात प्रकार की है। यह स्पर्शेन्द्रिय का भी काम देती है। नख, रोम, स्वेद ग्रन्थियां त्वचा में ही होती हैं। इनके द्वारा शरीर के अनेक प्रकार के विष स्वेद में मिलकर निकलते रहते हैं। त्वचा ने संपूर्ण शरीर को व्याप्त किया हुआ है। शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में पतली, मोटी तथा कोमलादि कई प्रकार की होती है। इसके नीचे वसा या चर्बी जमी रहती है जो सदा इसे चिकनी बनाए रखती है। त्वचा ऊपर से पीत, गौर, कृष्ण तथा गुलाबी आदि कई वर्ण की होती है। इससे मानव सौन्दर्य में वृद्धि होती है। यदि त्वचा किसी प्रकार विकृत होजाए तो यह शरीर को विकृत बना देती है। कण्डू, श्वेत कुष्ठ, गलित कुष्ठ, दाद, चम्बल आदि अनेक प्रकार के फोड़े-फिन्सी आदि रोग इसमें होकर विकार कर देते हैं। इनसे प्रायः कुरूपता हो जाया करती है। त्वचा सारे शरीर की रक्षा भी करती है।

नासिका-घ्राणेन्द्रिय—पृथ्वी गन्धवती है, यह ज्ञान घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ही होता है। घ्राण पृथ्वी का कार्य या अंश है। पृथ्वी मुख्य रूप से घ्राण के अन्दर स्थित है। वैसे तो संपूर्ण शरीर में जो कुछ हम यहां वर्णन कर रहे हैं सब पृथ्वी के ही कार्यरूप हैं। इसलिए दस प्रकार के भेदों में घ्राणेन्द्रिय भी एक है। इसी में गंध की उपलब्धि होती है।

७. रस और रुधिर में सूक्ष्म पार्थिव भाग—इन दोनों में कुछ-कुछ पार्थिव अंश रहता ही है। यदि रक्त को सुखाया जाए तो इसमें से जल का भाग सूखकर शेष श्वेत, पीत और लाल द्रव्य पृथ्वी का ही अंश है।

८. मेद, मज्जा—मेद को वसा कहते हैं। यह त्वचा के नीचे पीले से रंग की चिकनाहट होती है। इसे चर्बी भी कहते हैं। यह स्त्रियों के शरीर में अधिक होती है। हथेली, तलवे और वृक में तो इसकी गद्दियां सी जमी रहती हैं। यह गर्मी और शीत से शरीर की रक्षा करती है। जो व्यायाम तो करते नहीं किन्तु खाते बहुत हैं, उनके पेट, ठोड़ी के नीचे, कपोलों और नितम्बों में चर्बी भरने लगती है। हृदय में वसा या चर्बी अधिक हो जाने से रक्त का प्रभाव या गति बन्द हो जाती है और यह मृत्यु का हेतु बन जाती है।

मज्जा—यह अस्थियों के पोले भागों में पीतवर्ण तरल सी होती है और कसेरुकाओं, घुटने के ऊपर की अस्थियों, कलाई की अस्थियों, वक्षस्थल की अस्थियों

ग्रौर पसलियों के सिरों पर गुलाबी से रंग की होती है। इससे शरीर में लचक ग्रौर शक्ति बनी रहती है। जब यह उचित मात्रा से बढ़ जाती है तब शरीर में दर्द उत्पन्न कर देती है।

९. **वीर्य ग्रौर रज**––इन दोनों में भी पार्थिव ग्रंश होता है। भुक्त-पीत का पाक होकर ४० दिन में वीर्य बनता है तथा रज का भाग ३० दिन में बन जाता है। यदि इन दोनों को सुखाया जाए तो जल का भाग सूखकर जो शेष रहता है वह पार्थिव ग्रंश होता है। रज ग्रौर वीर्य में पार्थिव ग्रंश हैं ग्रौर यह शरीर के निर्माण में सहकारी हैं।

१०. **मल**––यह भी पृथ्वी का विकार है। इसके बिना भी शरीर नहीं रह सकता। विषूचिका रोग में मल के निकल जाने से मृत्यु हो जाती है। शरीर के निर्माण में यह भी ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। शरीर में पृथ्वी का यह ग्रन्तिम परिणाम या विकार है।

इस प्रकार से पार्थिव कोष के १० भेद हुए। इसे ग्रन्नमय कोष भी कहते हैं। पृथ्वी शरीर के निर्माण में मुख्य रूप से उपादान कारण है। इन दस रूपों में परिणत होकर पार्थिव कोष बना है। यह मनुष्य के भोग ग्रौर ग्रपवर्ग का हेतु है।

पृथ्वी के ११ गुण—इस कोष में परिणत हुई पृथ्वी के ११ गुणों का भी ग्रध्यात्म रूप में समावेश हो जाता है।

१. **ग्राकार**—जब माता-पिता के संयोग से गर्भाशय में रज ग्रौर वीर्य का ग्राधान होता है तब वह बहुत थोड़ा सा मिलकर संघात को प्राप्त होकर कलल रूप में वृद्धि को प्राप्त होता है ग्रौर ग्राकार भाव को प्राप्त कर लेता है।

२. **स्थिरता**––इसके पश्चात् इसमें स्थिरता रूप धर्म ग्राता है। ग्रपने स्वरूप में स्थिर रहते हुए वृद्धि को प्राप्त होता है।

३. **गुरुत्व**—तदनन्तर इसमें गुरुत्व ग्राने लगता है।

४. **काठिन्य**—तदुपरान्त ग्रस्थि ग्रादिक का निर्माण प्रारंभ होता है ग्रौर शरीर में काठिन्य ग्राने लगता है।

५. **ग्राच्छादन**––इसके पश्चात् इसमें ग्राच्छादन रूप धर्म पैदा हो जाता है। इसमें ग्रंग-प्रत्यंगादि पैदा होने लगते हैं। सूक्ष्म तथा कारण शरीर को ग्रपने भीतर ग्राच्छादन करने की सामर्थ्य उत्पन्न होने लगती है।

६. **विदारण**—तदनन्तर शक्ति, बल ग्रौर पराक्रम का प्रवेश होता है ग्रौर हाथ-पैरों में तोड़ने फोड़ने की सामर्थ्य ग्राती है। इस ग्रवस्था को विदारण रूप धर्म कहा जाता है। इस समय शरीर का परिणाम रूप धर्म चल रहा है, ग्रतः यह भी एक प्रकार का विदारण ही है।

७. **रूक्षता**––शरीर में खुश्की हो जाना स्वाभाविक ही है।

८. **कृशता**––शरीर का सूखकर पतला होना। रूक्षता तथा कृशता ये दोनों धर्म साथ में लेकर उत्पन्न होता है।

९. **आधार**--यह स्थूल शरीर मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों का आधार है। ये सब इसमें ही ओत-प्रोत होकर रहते हैं।

१०. **क्षमा**--इसके अनन्तर इसमें क्षमा रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। शीत, उष्ण, भूख, प्यासादि के सहन करने की योग्यता आ जाती है।

११. **सर्वभोग्यता**--यह अन्तिम गुण या योग्यता है जो इसमें आती है। ज्ञान या अज्ञान पूर्वक यह शरीर सब पदार्थों के उपभोग करने के योग्य अथवा सब इन्द्रियों के विषयों का उपभोग करने योग्य अथवा दूसरों से भोगे जाने के योग्य हो जाता है। भोग और अपवर्ग को प्रदान करता है।

उपरोक्त ११ धर्म शरीर में पृथ्वी से आते हैं, क्योंकि कारण के धर्मों का कार्य में आना अवश्यम्भावी है। इस स्थूल शरीर में अन्य भूतों की अपेक्षा पृथ्वी ही प्रधान है। शेष भूत सहकारी कारण हैं। इस प्रकार ११ धर्म तथा दस भेद युक्त पार्थिव कोष बनता है। इसकी विषद व्याख्या दूसरे ढंग से अन्नमय कोष के रूप में 'आत्म-विज्ञान' में की गई है।

पार्थिव कोष अन्य कोषों अर्थात् जलीय कोष, आग्नेय कोष, वायवीय कोष, आकाशीय कोष का आधार है। यह कोष सर्वाधिक स्थूल है, अतः शेष चारों इसमें ही ओतप्रोत हैं।

दश प्रकार का जलीय कोष

शरीर की रचना में जब प्राण और अन्न को आवश्यक मान कर प्राणमय तथा अन्नमय कोष माने गए हैं तो जलीय कोष भी पृथक् क्यों न माना जाए? जल भी तो शरीर के निर्माण में वैसा ही सहायक है जैसे प्राण और अन्न। जल पार्थिव विकारों या तत्त्वों को मिलाता है, संयुक्त करता है। इसके द्वारा पार्थिव तत्त्व संघात को प्राप्त होकर शरीर का रूप बनाते हैं। जल ही बिखरे हुए पार्थिव सूक्ष्म अंशों को संघटित करके धारण करता है। इनमें व्याप्त होकर पिण्डाकार बनता है। यह जल अपने दश भेदों और गुणों से इस शरीर में जलीय कोष के रूप में विद्यमान है। इसके दश भेदों का वर्णन नीचे किया जाता है:—

१. **अमृत**—यह ब्रह्मरंध्र में रहकर मन, इन्द्रिय तथा बुद्धि का तर्पण करता है। खेचरी मुद्रा की अवस्था में एक विलक्षण प्रकार का मधुर तथा आनन्ददायक रस झरता या टपकता हुआ अनुभव हुआ करता हैं। इस रस की अनुभूति योगी को तब हुआ करती है जब वह समाधि अवस्था में खेचरी मुद्रा करता है।

२. **प्रभा**—जल इन्द्रियों, शरीर तथा त्वचा में चमक पैदा करता है। शरीर, मुख और इन्द्रियों पर कान्ति बनाए रखता है। नेत्र और कपोलों पर विशेष रूप से इसकी प्रभा होती है।

३. **रसना**--इसमें से लाला-रस निस्सरण होता रहता है। यह रस ग्रास के साथ मिलकर पाचन-कार्य करता है और जिह्वा, मुख तथा कंठ को तरल रखता है। इस रस को श्वेतसार रस भी कहते हैं। यह जिह्वा की ग्रंथियों से निकल कर ग्रास को तरल बनाता है। यद्यपि जिह्वा पार्थिव तत्त्व से बनी है परन्तु रसनेन्द्रिय होने से इसकी उत्पत्ति जल से ही होती है क्योंकि यही सब रसों का ज्ञान करवाती है।

४. **मधुर**--यह रस यकृत् में निवास करता है। इस मधुर रस में अन्य कई क्षार मिले रहते हैं। यह पाचन-कार्य के लिए बड़ा उपयुक्त होता है। यह पक्वाशय तथा आमाशय में पहुंच कर पाचन करता है।

५. **क्षार**—आमाशय और पक्वाशय में रह कर पाचन-कार्य करता है। अन्न को पीसने या गलाने में सहयोग देकर उसे द्रवीभूत करता है। इसमें अनेक लवण, अम्ल आदि भी मिश्रित रहते हैं। पक्वाशय में यह भुक्त-पीत को पतला बना कर रस निकालने में सहायक होता है। यह कुछ भूरे या पीत वर्ण का होता है। इसीसे रक्त बनता है।

६. **कफ**—यह भी जल का ही परिणाम विशेष है। यूं तो यह संपूर्ण शरीर में ही रहता है परन्तु मुख्य रूप में इसका वास वक्षस्थल में है। जब पाचक रस शरीर में कम होता है अथवा जब मंदाग्नि हो जाती है अथवा शीत लग जाता है तब इसकी वृद्धि छाती में विशेष रूप से हो जाती है। आयुर्वेद में वात, कफ और पित्त के आधार पर ही रोग का निदान किया जाता है। यदि कफ अधिक बढ़ जाए तो इससे २० प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह शरीर के निर्माण में सहायक है।

७. **रक्त**--यह भी जल का ही परिणाम विशेष है। द्रव पदार्थ होने से जल का भाग है। रंग इसमें अग्नि के पाक से आया है। शरीर की नाड़ियों में बह कर चलता है, इससे भी सिद्ध होता है कि यह जल का ही परिणाम विशेष है। इसके निर्माण में जिगर, मेदा, तिल्ली, हृदय तथा आन्तें सहायक होती हैं। यह सारे शरीर के जीवन और पोषण का आधार है। हृदय को तो इसीसे पोषण प्राप्त होता है। हृदय से नलिकाओं में बहकर सारे शरीर में जीवन का संचार करता है। हृदय रक्त को शुद्ध करता है।

८. **स्नेह**—यह भी जल का ही परिणाम होकर रूपान्तर से स्नेह के रूप में परिणत हो जाता है। इससे शरीर में स्निग्ध, मृदुता, लावण्य और चमक पैदा होती है। इसी के कारण से शरीर में चमक, चिकनापन, लचक आती है। मेद, मज्जा, वीर्य में इसकी चिकनाहट है। वास्तव में मेद, मज्जा और वीर्य का यही अपने इस गुण के कारण निर्माण करता है अथवा निर्माण में सहायक होता है। इसकी स्निग्धता वात तथा पित्त को शान्त बनाए रखती है। यही शरीर में बल, शक्ति, पराक्रम, उत्साह, कर्मण्यतादि बनाए रखता है।

९. **स्वेद**--यह भी जल का ही कार्य रूप से विकार है। यह शरीर के अनेक दोषों को रोमकूपों से बाहिर निकालता है। शरीर की शुद्धि करता है। अधिक ताप, परिश्रम अथवा भय से यह रोमकूपों से बह निकलता है। त्वचा के सूक्ष्म छिद्रों से भी निकलता रहता है। मस्तिष्क, ग्रीवा, छाती, बगलों और घुटनों के नीचे से अधिक निकला करता है।

१०. **मूत्र**--यह भी जल का ही विकृत रूप या परिणाम है। इसमें सब प्रकार के क्षार और रस मिले होते हैं। शरीर के अनेक रोगों तथा दोषों को बाहर निकालता है। इसके निर्माण और निवास का स्थान गुर्दे हैं। यह जल का अन्तिम विकृत परिणाम है।

जलीय कोष के १० गुण—इस जलीय कोष में जल के परिणत होते हुए १० गुण या धर्म भी आगए हैं। इसके गुण निम्न हैं :—

१. **स्नेह**—यह वसा, मज्जा और वीर्य में विशेष रूप से है।

२. **सूक्ष्म**—यह शरीर और भूमि में शीघ्र प्रवेश कर जाता है।

३. **शुक्ल**—जल श्वेत ही देखने में आता है। स्वेद और मूत्र के रूप में भी श्वेत ही होता है।

४. **मृदु**—शरीर अन्दर और बाहर से मृदु है, कोमल है। बच्चों और स्त्रियों के शरीर प्रायः कोमल होते हैं। यह कोमलता मृदु गुण के कारण से ही आई है।

५. **गुरुत्व**—शरीर में भारीपन जल और पृथ्वी से ही आया है।

६. **शीतत्व**—शरीर में अग्नि के संयोग से ही उष्णता है। मृत्यु के समय मनुष्य की उष्णता निकल जाती है। उसमें जल का भाग रहता है, इसीलिए वह ठण्डा हो जाता है। जल में शीतता रूप धर्म स्वाभाविक है।

७. **रक्षा**—शरीर की पुष्टि करता है। इसके बिना जीवन नहीं रह सकता। तृषा को शान्त करता है।

८. **प्रभा**—शरीर में सर्वत्र इसी की चमक और कान्ति है। स्नानादि करने से इसमें कान्ति आती है।

९. **पवित्रता**—शरीर में इससे ही पवित्रता बनी रहती है।

१०. **सन्धान**—जब तक पार्थिव अंशों के साथ जल का मेल न होगा तब तक ये पिण्डाकार नहीं बन सकते, अतः शरीर में सर्वत्र इसका पार्थिव पदार्थों से मेल है। इसी कारण से जल शरीर-रचना में सहकारी उपादान कारण बना। यह दश भेद तथा १० गुण युक्त जलीय कोष, पार्थिव कोष में स्थित है। अन्नमय तथा प्राणमय कोषों के समान यह भी अपना कार्य कर रहा है।

दश प्रकार का आग्नेय कोष

हमारे स्थूल शरीर में अन्य कोषों के समान एक आग्नेय कोष भी है। पूर्वाचार्यों ने प्राणमय कोष के समान इस आग्नेय कोष पर ध्यान नहीं दिया। यदि दिया होता तो प्राणमय कोष के समान इसका भी आध्यात्मिक ग्रंथों में वर्णन होता। पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज ने अपने निजी अनुभव के आधार पर पंच भूत निर्मित इस शरीर में कोषों का विशेष रूप से अनुसंधान किया है। इसके दश भेद नीचे दिए जाते हैं :

१. **ओजस**—यह तेज ब्रह्मरंध्र में विद्यमान है। यहां पर यह बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों को तर्पण करता है। इनमें बल, शक्ति और पराक्रम बनाए रखता है। मानव को बुद्धिमान और ओजस्वी बनने में सहायक होता है। ब्राह्मण प्रायः ओजस्वी होते हैं, अतः उनमें बुद्धिबल अधिक होता है। इसी गुण के द्वारा वेदशास्त्र, उपनिषद्, दर्शनादि के प्रकाण्ड पण्डित होते हैं। यह ओज मनुष्य के तेजस्वी बनने में सहायक होता है। बुद्धि इससे पुष्टि प्राप्त करती है, सूक्ष्मता लाभ करती है तथा ज्योतिष्मती

बनती है। बुद्धि और इन्द्रियों में दूरदर्शिता उत्पन्न होती है। इसी कारण ब्राह्मणों को मुख या मस्तिष्क के समान दर्जा दिया गया है। शारीरिक और बौद्धिक शक्ति इस गुण के कारण प्राप्त होती है।

२. **भास्वर**——यह तेज या अग्नि ब्रह्मरंध्र स्थित बुद्धि, मन, पांच ज्ञान तथा पांच कर्म इन्द्रियों को दीप्तिमान बनाता है। एक प्रकार की विलक्षण सी चमक पैदा करता है। मुख, मस्तिष्क, कपोलों पर इसीका तेज और चमक होती है। शरीर की त्वचा में भी इसकी चमक होती है। इसका मुख्य स्थान ब्रह्मरंध्र में ही है।

३. **चाक्षुष**——स्थूल आंख के गोलक में जो देखने की शक्ति है वह अग्नि का कार्य है। गोलक पार्थिव है। इसमें देखने की शक्ति अर्थात् रूपवान् पदार्थों को दिखाने की शक्ति अग्नि के तेज से प्राप्त हुई है, अतः नेत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति अग्नि से ही जाननी चाहिए। अग्नि इसमें मुख्य रूप से विद्यमान है। अग्नि ही नेत्रों में स्थित होकर रूपवान पदार्थों को दिखाने का कार्य करती है। यह स्थूल नेत्र में कार्य रूप से स्थित है और कारण रूप से रूपतन्मात्रा के रूप में सूक्ष्म या दिव्य नेत्र में स्थित है। एक बार स्वर्गाश्रमस्थ योगनिकेतन में अमेरिका के दो डाक्टर आए। ये अमेरिका से एक मशीन लाए थे और भारत के योगियों की समाधि-अवस्था में उनके मस्तिष्क की गतियों को देखने के लिए उस मशीन से काम लेते थे। श्री महाराजजी ने उनसे कहा कि "हमारे एक शिष्य इस समय हमारे पास अभ्यासार्थ आए हुए हैं। आप इस मशीन को इनके लगाकर देखें।" उन्होंने इन्कार कर दिया क्योंकि उस समय वे मशीन अपने साथ नहीं लाए थे। इसके बाद न वे दुबारा आए और न मशीन लगवाई।

हम ब्रह्मरंध्र के तेजों का वर्णन कर रहे थे। चाक्षुष तेज नेत्र को रूप दिखाने का काम जीवनपर्यन्त नेत्र में करता रहेगा। इस तेज का सम्बन्ध सूक्ष्म नेत्र से लेकर स्थूल नेत्र तक ब्रह्मरंध्र में रहता है। यह रूप-वाहक ज्ञान-तन्तुओं में भी गमन करता है। जिस प्रकार बाह्य विद्युत तार में गमन करती है इसी प्रकार यह चाक्षुष तेज ज्ञान-वाहक तन्तुओं में गमनागमन करता है। यद्यपि ये स्थूल नेत्र पार्थिव हैं परन्तु इनमें अग्नि रूप के रूप में निवास करता है। इसी लिए इसे चाक्षुष कहा है।

४. **जठर**——यह तेज या अग्नि यकृत में निवास करता है। यह यकृत में माधुर्ययुक्त रस के पाक करने में सहायक बना रहता है। यह तेज भुक्त-पीत से बनी शर्करा को आमाशय और पक्वाशय में भेजकर पाचन-कार्य के लिए उपयुक्त होता है। जब यह विकृत हो जाता है तब यह यकृत में तथा अन्यत्र अनेक रोग उत्पन्न कर देता है। यकृत में पित्त युक्त शर्करा रस बनता है। यह पीतिमा लिए हुए कुछ हरित से रंग का द्रव होता है। इसमें लवण भी मिश्रित रहते हैं। यकृत के दाएं-बाएं भागों में पित्त वाहक नालिकाएं यकृत में मिल कर पित्त प्रणाली बनाती हैं। इनके द्वारा पित्त आमाशय और पक्वाशय की क्रिया को प्रबल कर देता है और स्निग्ध पदार्थों को पचाने में सहायक होता है। आंतों में पहुंचे हुए अम्लयुक्त आहार को क्षारयुक्त बनाता है। यदि किन्हीं कारणों से पित्त की कमी या अभाव हो जाएगा तो पक्वाशय और आंतों के अन्न-जलादि में दुर्गंध आने लगेगी और मल में भी दुर्गंध आने लगती है।

५. **पाचक**––पाचक तेज या अग्नि आमाशय में रहकर भुक्त-पीत को पकाती है। अन्न आमाशय में लगभग ४-५ घण्टे तक रहकर पिसता रहता है। आमाशय की अग्नि आहार को पतला बनाने में सहायक होती है। आहार इसमें रस निकालने के योग्य पतला बन जाता है। यह पाचक अग्नि अन्न को पीसकर रस निकालने में सहायक होती है। यह रस रुधिर बनने में काम आता है।

६. **रंजक**––यह अग्नि या तेज रस से रुधिर बनाने में, रस को पकाकर रक्त-वर्ण करने में सहायक होती है। भुक्त-पीत लेह्य-चोष्यादि से जो रस बनता है इसमें कई प्रकार के लवण, शर्करा, वसा तथा जल मिश्रित रहते हैं। इन सबका परिणत हुआ सा ही रुधिर होता है। रंजक रस के परिवर्तन की क्रिया को करती है। यह क्रिया पक्वाशय और आंतों में होती है। इस रक्त की शुद्धि हृदय में जाकर होती है, अतः रंजक का निवास हृदय तक है।

७. **तैजस**––यह अग्नि या तेज मज्जा, मेद और वीर्य के पाक या निर्माण में सहायक होती है। ये तीनों शरीर की पुष्टि में मुख्य हेतु होते हैं। जिस शरीर में ये तीनों ठीक-ठीक मात्रा में सुरक्षित रहते हैं उसमें आभा, कान्ति, लावण्य, सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में होते हैं।

८. **विभाजक**––यह आन्तों में पहुंचे हुए अवशेष को मल और मूत्र के रूप में विभक्त करने में और इनके ठीक निर्माण और पाक में सहायक होती है। गुर्दों तथा छोटी और बड़ी आन्तों में यही काम करती है।

९. **पोषक**––यह अग्नि या तेज शिश्न, योनि और गर्भाशय में कामोत्पत्ति, वीर्य और रज के निर्माण में सहायक होती है। यह गर्भ का पोषण करती है। वीर्य, रज और गर्भ के पाक में भी यह सहायता करती है।

१०. **विसर्जक**––यह अग्नि या तेज रज, वीर्य, मूत्र और मल के त्याग में सहायक होती है। मूलाधार से पाद तल तक इसका निवास है।

यह आग्नेय कोष प्राणमय कोष के समान ही शरीर की रक्षा करता है, इसका पोषक है और जीवन का आधार है तथा शरीर के निर्माण में सहकारी उपादान कारण है।

आग्नेय कोष के ८ गुण––दस प्रकार के भेद से युक्त यह आग्नेय कोष ८ प्रकार के गुणों से युक्त भी सिद्ध होता है। वे निम्न हैं :–

१. **उर्ध्व गमन**––इस गुण के कारण शरीर में उछलकूद की शक्ति रहती है। जब पित्त प्रधान होता है तो सिर दर्द, वमन, आंखों में पीलापन, मुख में कड़वाहट, मस्तिष्क का तपना आदि होने लगता है।

२. **पावक**––शरीर को पवित्र रखता है तथा अनेक प्रकार के दोषों को दूर करके शुद्ध बना देता है।

३. **दग्ध**––भुक्त-पीतादि को तथा विविध दोषों को दग्ध करता है।

४. **पाचक**––आमाशय, पक्वाशय, आंतों के अन्न-जलादि का पाक करता है।

५. लघु––शरीर को हल्का रखता है। स्थूल नहीं होने देता। स्फूर्ति बनाए रखता है।

६. भास्वर––शरीर तथा इन्द्रियों में ग्राभा लाता है।

७. प्रध्वंस––कफ ग्रौर वात की वृद्धि का नाश करता है ग्रौर शरीर के दोषों को भस्मसात् करता है। तोड़-फोड़ की शक्ति इसी गुण से ग्राती है।

८. ग्रोज––शारीरिक बल, इन्द्रिय बल तथा बुद्धि बल उत्पन्न करता है। सम्पूर्ण शरीर में इससे ही बल बना रहता है।

इस प्रकार ग्राग्नेय कोष के दश प्रकार के भेद हैं ग्रौर इसके ग्राठ गुण हैं। यह ग्राग्नेय कोष पार्थिव ग्रौर जलीय कोषों को व्याप्त करके स्थित है।

वायवीय कोष

इस कोष के दश भेद हैं। इस कोष का वर्णन 'ग्रात्म-विज्ञान' में प्राणमय कोष के रूप में किया जा चुका है। जब संपूर्ण वायु शरीर में प्राण के रूप में सहकारी उपादान कारण बना तब इसका ग्रावास शरीर के इन दश स्थानों में हुग्रा। इन्हीं से यह वायवीय कोष बनता है।

१. त्वचास्थ प्राण––यद्यपि त्वचा की रचना में पृथिवी तत्व ही प्रधान है परन्तु इसमें भीतर बाहर सर्वत्र जो स्पर्श की शक्ति है वह वायु महाभूत परिणाम को प्राप्त होकर ग्रपने मुख्य स्पर्श रूप गुण के द्वारा इस त्वचा में वर्तमान हुग्रा है। व्यान प्राण जो कि वायु महाभूत का ही कार्य या परिणाम विशेष है वह त्वचा में सर्वत्र स्पर्श का संचार करता है। ब्रह्मरंध्र में जो सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय है वहां से चलते हुए ज्ञान वाहक तन्तु इस त्वचा में सर्वत्र फैले हुए हैं जो त्वचा में स्पर्शरूप ज्ञान का संवेदन करते हैं। इसमें धनंजय नामक उपप्राण भी कार्य करता है। ग्रन्य प्राणों का सम्बन्ध भी इसके साथ है। परन्तु इनमें व्यान ग्रौर धनंजय मुख्य हैं।

२. मस्तिष्कस्थ प्राण––व्यान ग्रौर धनंजय संपूर्ण शरीर में व्यापक हैं। वास्तव में ये मस्तिष्क या ब्रह्मरंध्र से प्रारंभ होकर पाद तल तक ग्रपना कार्य करते हैं। व्यान ही ब्रह्मरंध्र से ज्ञानवाहक तन्तुग्रों द्वारा सारे शरीर में ज्ञान पहुंचाता है। यही सूक्ष्म ज्ञानवाहक तन्तुग्रों तथा सूक्ष्म नाड़ियों में ज्ञान ग्रौर रक्त का संचार करता है। मस्तिष्क के पास ही नेत्र हैं, इनमें कूर्म नामक उपप्राण कार्य करता है। ग्रांखों को खोलना, बन्द करना, निमेषोन्मेषादि कार्य यह ही करता है। उदान भी मस्तिष्क तक कार्य करता है।

३. कण्ठस्थ प्राण––कण्ठ के साथ मुख तथा नासिका का विशेष सम्बन्ध है, ग्रतः यहां नाग, कृकल ग्रौर देवदत्त उपप्राण ग्रपना कार्य करते हैं। नाग मुख-स्थानीय है। इसका काम डकार लाना है। कंठस्थानीय कृकल जंभाई लाता है ग्रौर नासिकास्थानीय देवदत्त छींक लाता है। इसी कण्ठ प्रदेश में उदान प्राण भी निवास करता है। इसका कार्य ग्रामाशय पर्यन्त होता है। वमन के समय यही भुक्त-पीत को बलपूर्वक खींचकर बाहिर फेंक देता है। कुंजर क्रिया में यही जल के निकालने में सहायक होता है। उदान ही मुख में जो खाद्य या पेय पदार्थ होता है उसे ग्रन्दर

धकेलता है। यही शरीर को उठाए रखता है, गिरने नहीं देता। जब योगी उदान प्राण पर विजय प्राप्त कर लेता है तब वह जल पर पैरों से चल सकता है और आकाश गमन भी कर सकता है।

४. **हृदयस्थ प्राण**––हृदय में प्राण वायु रहती है। हृदय प्रदेश में जो कारण शरीर है इसमें जीवात्मा के संयोग से चित्त में से जो सूक्ष्म प्राण रूप क्रिया प्रारम्भ होती है इस जीवनी शक्ति रूप क्रिया को लेकर यह प्राण ही सर्वप्रथम इसका प्रसार करता है। श्वास, प्रश्वास के द्वारा इसे अन्दर-बाहिर, ऊपर-नीचे पहुंचाने में सहायक होता है। इसका स्थान हृदय से मुख तक है। हृदय में लुपडुप की क्रिया और रक्तपरिभ्रमण में यह मुख्य रूप से कार्य करता है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा जीवन बनाए रखता है। भूख तथा प्यास यही लगाता है। इसीके द्वारा सब प्राणयाम किए जाते हैं। यही रुधिर को रक्तवर्ण बनाता है। शरीर में बल के द्वारा जितने भी कार्य होते हैं वे इसे रोककर किए जाते हैं। सब प्राणों की अपेक्षा इसमें बल और शक्ति अधिक है।

५. **नाभिस्थ प्राण**––हृदय से लेकर नाभि तक समान का कार्य है। किन्तु यकृत, आमाशय, पक्वाशय और आन्तों को नियंत्रण में रखकर कार्य करता है। इसकी सहायता से सब बड़ी ग्रंथियां अपने-अपने कार्य ठीक रूप से करती हैं। शरीर की मध्य-स्थानीय नाभि है, अतः यह ऊपर तथा नीचे के शरीर को नियंत्रण में रखती है। गर्भस्थ बालक इसीके द्वारा रस और प्राण वायु को ग्रहण करके पुष्ट होता है और जीवन धारण करता है। इसीलिए नाभि में स्थित प्राण को विशेष महत्त्व दिया गया है।

६. **वस्तिस्थ प्राण**––वस्ती का स्थान गुदा द्वार से ऊपर है। यह गुर्दे में मूत्र धारण करने का स्थान है। इसमें जो अपान रूप वायु रहती है यह मूत्र का अवरोध या विसर्जन करती है। मूत्र के वेग को धारण करके रखती है अथवा प्रक्षेपण करती है। इसके विकृत हो जाने पर मूत्र को रोकने की शक्ति कम हो जाती है।

७. **गुदास्थ वायु**––नाभि से लेकर पादतल तक अपान प्राण का स्थान है परन्तु मुख्य रूप में मूलाधार के पास गुदा में ही अपान प्राण का वास है। गुदा-स्थानीय अपान प्राण यहां के सब कार्य करता है।

८. **मांसस्थ प्राणवायु**––मांस में प्राण और व्यान कार्य करते हैं, तभी इसकी पुष्टि होती है। रस और रुधिर इसको पुष्ट करते हैं। इसके कम हो जाने अथवा सूख जाने से बल, शक्ति, तेज, पराक्रमादि सब क्षीण हो जाते हैं। यदि इसमें प्राण शक्ति कार्य करती है तो इसका क्षय नहीं होता। इसकी पुष्टि से बड़े-बड़े बलयुक्त कार्य होते हैं। पहलवानों में जो अधिक मांसल होता है उसी में अधिक बल होता है। मांस के शक्तिशाली होने से या पुष्ट होने से प्राणशक्ति ठीक कार्य करती है।

९. **रुधिरस्थ प्राण वायु**––रुधिर में प्राण प्रवेश करके इससे गमन करवाता है। प्राण शक्ति के बिना रुधिर का प्रसार नहीं हो सकता। व्यान, धनंजय और प्राण इसके साथ मिल कर गमन करते हैं और संपूर्ण शरीर का पालन, पोषण और तर्पण करते हैं। इससे सिद्ध है कि रक्त में भी प्राण निवास करता है। अहर्निश

प्राण रुधिर में रहकर अपना कार्य सम्पन्न करता है। जिस व्यक्ति का भार डेढ़ मन हो उसमें तीन सेर रुधिर रहता है। इसके अभाव में मनुष्य मृतवत् हो जाता है।

१०. शुक्रस्थ प्राण——शुक्र में अपान और व्यान दोनों मिल कर कार्य करते हैं। जिस प्रकार रक्त मानव जीवन का आधार है इसी प्रकार वीर्य भी जीवन का मुख्य आधार है। सप्त धातुओं में यह सर्वप्रधान धातु है। इसके साथ जीवनी शक्ति मिलकर संपूर्ण शरीर और पांचों कोषों का पोषण करती है। यह सन्तानोत्पत्ति का कारण है। इस शुक्र के अधिक क्षीण होजाने से प्राण में भी क्षीणता आ जाती है। शरीर निस्तेज हो जाता है। शरीर में इसका वही स्थान है जो दीपक में तेल का है। शुक्र से ब्रह्मरंध्र की पुष्टि होती है। बल, शक्ति, पराक्रम, तेज तथा बुद्धि की वृद्धि होती है। प्राण इसकी गति का हेतु है। शुक्र की रक्षा करना परम धर्म है। इसकी रक्षा से प्राण भी बलवान होता है और मनुष्य दीर्घजीवी बनता है। शुक्र का अन्तिम परिणाम ओज या बल होता है। ओज को व्यान प्राण लेकर शरीर में सर्वत्र विचरता है। ओज दो प्रकार का होता है—ज्ञानात्मक और क्रियात्मक। ज्ञानात्मक ओज चित्त, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियों को बल प्रदान करता है और क्रियात्मक ओज अहंकार, मन, कर्मेन्द्रियों और शरीर को शक्तिमान और बलवान बनाता है। इस ओज को प्राण ही धारण करता है। इसका प्रथम पोषक और प्रेरक व्यान है, तत्पश्चात् इसका प्रसार दूसरे प्राण तथा उपप्राण करते हैं।

यह प्राण इस प्रकार दश स्थानों में विभिन्न नामों से रहता है। इसका विस्तृत उल्लेख 'आत्म-विज्ञान' में भी किया गया है।

वायवीय कोष के ८ गुण——जब वायु महाभूत शरीर की रचना में सहकारी उपादान कारण के रूप में परिणाम भाव को प्राप्त हुआ और प्राण के रूप में शरीर में प्रवेश कर रहा था उस समय यह अपने अष्ट गुणों को लेकर ही परिणत हुआ था। ये अष्ठ गुण उत्पत्ति काल में ही इसे प्राप्त हुए थे। उन आठ गुणों का इस वायवीय कोष में भी समावेश हुआ जो निम्न प्रकार हैं :—

१. कम्पन——जब गर्भाशय में शुक्र और शोणित का आधान होता है उसी काल में जीवात्मा का प्रवेश सूक्ष्म शरीर के साथ होता है तथा प्राणरूप वायु भी प्रविष्ट होता है। यह प्राण वायु शुक्र और शोणित को गतिशील या कम्पायमान कर देता है। जब तक शुक्र और शोणित में कम्पन रूप धर्म उत्पन्न नहीं होगा तब तक उसमें वृद्धि नहीं होगी। प्राण ही कम्पन को उत्पन्न करता है। प्राण का विस्तार शरीर की वृद्धि के साथ होता रहता है। ज्यों-ज्यों अंग-प्रत्यंग बनते जाएंगे त्यों-त्यों प्राण भी बढ़ता चला जाएगा और अपने दश स्थानों में शनैः-शनैः पहुंच जाएगा।

२. तिर्यक् गमन——शरीर के हस्त-पाद-मुखादि स्थानों में प्राण का गमन टेढ़ा या तिरछा होता है। जिस प्रकार सर्प बल खाता हुआ टेढ़ा चलता है तथा आकाश में वायु टेढ़ी चला करती है, उसी प्रकार से यह चलता है।

३. चंचलता——प्रतिक्षण इसमें गति और चंचलता बनी रहती है। किसी समय भी शान्त नहीं रहता। प्राणायाम काल में भी कुछ समय के लिए ही श्वास-प्रश्वास का निरोध होता है, दूसरे प्राण-अपानादि तो अपना कार्य करते ही रहते हैं।

जब तक जीवन हैं तब तक प्राण की चंचलता का अभाव नहीं होता। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि में भी प्राण में कुछ न कुछ गति बनी ही रहती है।

४. **रूक्षता**--वायु में रूक्षता धर्म होने के कारण प्राण में भी रूक्षता धर्म अनिवार्य है क्योंकि कारण के गुण कार्य में अवश्यम्भावी हैं। परिश्रमपूर्वक कार्य करने से प्यास अधिक लगती है। प्राण की गति तेज होने पर यह शरीर में जल का शोषण अधिक करता है। इसी खुश्की के कारण शुष्कता पैदा होती है और प्यास अधिक लगती है। यह रूक्षता धर्म अग्नि और पृथ्वी में भी वायु से ही गया है। भस्त्रिकादि प्राणायाम अधिक करने से शरीर में रूक्षता आती है।

५. **पवित्रता**--प्राण में पवित्रता रूप धर्म का प्रत्यक्ष प्राणायाम करने में होता है। प्राणायाम शरीर के मलों की शुद्धि करता है। बढ़े हुए कफ और वायु को बाहिर निकाल देता है तथा अन्य शारीरिक दोषों को भी दूर करता है। जिस मकान में बहुत दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदानादि हों उस मकान का वायु शुद्ध रहता है। और जो बिलकुल बन्द रहता है उसका वायु अशुद्ध रहता है। प्राण की गति ठीक रहने से शरीर स्वस्थ रहता है।

६. **आच्छादनाभाव**--जिस प्रकार वायु किसी पदार्थ को ढकती नहीं, सब पदार्थों के अन्दर से होकर निकल जाती है, सूक्ष्मता के कारण सब पदार्थों में प्रवेश कर लेती है और निकल भी जाती है, इसी प्रकार प्राण भी पार्थिव, जलीय तथा आग्नेयादि कोषों में आता जाता रहता है, इसलिए प्राण में आच्छादन का अभाव है। प्रत्येक नस नाड़ी आदि में प्राण कार्य करता है। इसके लिए कहीं भी रुकावट नहीं है।

७. **बल**--शरीर में प्रधानतया प्राण का ही बल है। जब मनुष्य कोई ऐसा कार्य करता है जिसमें शक्ति की आवश्यकता हो तब वह उस कार्य को प्राणों को कुछ रोककर ही करता है। राममूर्ति जब मोटर रोका करते थे तब पूरक करके आभ्यन्तर कुंभक किया करते थे। मृत्यु के समय जब प्राण की गति मन्द हो जाती है तो बल का सर्वथा अभाव हो जाता है। पूज्य गुरुदेव भी अपनी युवावस्था में अमृतसर में जब नहर के किनारे सन्त बुद्धिप्रकाश के बगीचे में रहते थे तो प्राणायाम करके छाती में श्वास भर कर बड़े-बड़े बलवान् लोगों से छाती पर मुक्के लगवाया करते थे और कभी-कभी प्राणवायु को हाथ में भरकर अपनी कोहनी या हाथ को मोड़ने के लिए कहा करते थे पर कोई भी उनको मोड़ नहीं सकता था। कुंभक करके, दोनों हाथों में रस्सियां बंधवाकर, दोनों ओर से बड़े शक्तिशाली बलवानों से खिंचवाया करते थे। हृदय की गति तथा नाड़ी की गति का अवरोधादि सब प्राणायाम के बल पर ही किया करते थे। प्राण में वास्तव में बड़ा बल है।

८. **आक्षेप**--आक्षेप का अर्थ है धक्का देना। हृदय में जब रक्त शुद्धि होती है तब लुपडुप के रूप में प्राण का ही धक्का लगा करता है। प्राण, तथा अपान की गति को रोकना भी आक्षेप है। श्वास-प्रश्वास की गति का प्राण, अपान, और समान से टक्कर खाकर वापस आना भी प्राण का आक्षेप है। पूरक, रेचक तथा अन्य प्रकार के प्राणायामों के करने में भी आक्षेप होता है। आक्षेप धर्म प्राण में वायु महाभूत से आया है।

अन्य कोषों के समान इस प्रकार इसके भी दस भेद तथा आठ गुण हैं।

आकाशीय कोष

आकाश उत्पत्ति धर्म वाला तथा सावयव है, अतः इसकी भी कोष संज्ञा होती है, क्योंकि इस स्थूल शरीर के निर्माण में यह भी सहकारी उपादान कारण है। अन्य कोषों के समान इसके भी दस भेद हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है :—

१. **ब्रह्मरंध्रस्थाकाश**——इस स्थान में इसके अवकाश में बुद्धि, मन और इन्द्रियां अपने सब कर्मों का संपादन करती हैं। इनकी गतिविधि, व्यापारादि ब्रह्मरंध्र के आकाश में होते हैं।

२. **कर्णेन्द्रियस्थाकाश**——यद्यपि यह कर्ण-शुष्कली पृथिवी से ही उत्पन्न हुई है, यह पार्थिव तत्व ही है, परन्तु इसमें जो शब्द सुनने की शक्ति है इसके प्रति उपादान कारण आकाश है, अतः इस कर्ण-शुष्कली के अवकाश में शब्द का आघात होने से जो शब्द की प्रतीति होती है यही इस आकाश की विशेषता है। वधिर व्यक्तियों की यह इन्द्रिय काम नहीं देती, अतः शब्द ज्ञान भी नहीं होता। शब्द की उत्पत्ति आकाश में ही होती है और इसका ज्ञान कर्णेन्द्रिय में होता है, इसीलिए कर्णेन्द्रियस्थाकाश को इतना महत्व दिया गया है।

३. **कण्ठ, मुख, आहार, श्वास प्रणाली, नासिकास्थ प्रणाली**—कण्ठ में आकाश होने से वाणी द्वारा शब्दों का उच्चारण होता है। आहार को चबाकर कंठ द्वारा ही नीचे उतारा जाता है। इसके लिए अवकाश रूप आकाश की जरूरत है। मुख और नासिका दोनों में ही पोल है। इन दोनों के कार्य भी भिन्न-भिन्न हैं। आहार प्रणाली और श्वास-प्रश्वास प्रणाली का सम्बन्ध भी कंठ से है। इनमें भी पोल होने से आकाश इनमें वर्तमान है। इस आकाश के कार्य भिन्न-भिन्न हैं। वाणी में भी मुख्य रूप से आकाश वर्तमान है, इसीलिए शब्दों का उच्चारण ठीक रूप से होता हैं। वाणी के प्रादुर्भाव के लिए आकाश की ज़रूरत है, इसलिए इसका उपादान कारण भी आकाश ही है।

४. **फुप्फुस्थाकाश**——फुप्फुस में अनेक कोष्ठक होते हैं। दो फेफड़े हैं। ये शाखाओं तथा प्रशाखाओं के रूप में झाड़ियों के समान दिखाई देते हैं। इनमें सहस्रों कोष्ठक हैं जिनमें से प्राण छन कर आता है। जब बाहर से प्राण आता है तब ये कोष्ठक भर जाते हैं और जब भीतर से बाहर निकलता है तब ये खाली हो जाते हैं। इन सब में पोल है, अतः इनमें भी आकाश वर्तमान है। इन कोष्ठों में अवकाश है। भले ही इन कोष्ठों में प्राण भरता है परन्तु अवकाश होने से यहां आकाश रहता है। यही यहां के आकाश की विशेषता है।

५. **हृदयस्थाकाश**——इसके सम्बन्ध में उपनिषद् में कहा है—"हृदि ह्येष आकाशः।" अर्थात् इस हृदय के आकाश में कारण शरीर का आवास है, जिसमें आत्मा का निवास है। इसीलिए यहां के आकाश को विशेष महत्व दिया जाता है।

६. **यकृतस्थाकाश**——यकृत एक बहुत बड़ी ग्रंथि है। इसका वज़न लगभग दो सेर का है। इसके अन्दर भी पोल है, इसमें आकाश विद्यमान है। इसी ग्रंथि को जिगर कहते हैं। इसमें मधुर रस रहता है। आवश्यकतानुसार यकृत सारे शरीर में

इसे भेजता रहता है। रक्तादि के शरीर में परिभ्रमण करते हुए अनेक प्रकार के दोष जब इसमें से होकर निकलते हैं तो यह ग्रंथि उन्हें शुद्ध करती है।

७. **आमाशयस्थाकाश**—यह ग्रंथि भी बहुत बड़ी है। इसमें कई सेर तक खाद्य तथा पेय पदार्थ समा जाते हैं। यदि इसमें कुछ दिन तक भोजन अथवा पेय पदार्थ न डाला जाए तो इसमें काफी बड़ा पोल रहता है। इसमें आकाश वर्तमान रहता है। यह अवकाश भोजन के पीसने और पकाने में सहायक होता है।

८. **पक्वाशयस्थाकाश**—आमाशय से भोजन पिसकर पक्वाशय में जाता है। इस ग्रंथि का आकार पिस्तौल के समान है। यह भी बहुत बड़ी ग्रंथि है। इसमें कई प्रकार के क्षारादि के मेल से पाचन कार्य होता है और रस बनकर रुधिर के रूप में परिणत हो जाता है। इसमें भी बड़ा पोल है। यदि इसमें पोल न होता तो आहार इसमें नहीं आ सकता था। इस पोल में आकाश है ही। आकाश ही इसका सहकारी उपादान कारण है।

९. **बड़ी व छोटी आन्तों तथा शरीर की नाड़ियों में स्थित आकाश**—इन सबके अन्दर पोल होने से खाद्य तथा पेय पदार्थों का गमनागमन, पाक तथा रक्त संचार और मल तथा मूत्रादि का निस्सरणादि कार्य होते हैं। ये सब पोल-युक्त होती हैं और इनके पोल में आकाश तत्त्व रहकर इनके कार्यों में सहायक होता है।

१०. **नाभिस्थाकाश**—बड़ी व छोटी आंतों और गुर्दे के अतिरिक्त यहां पोल रहता है और इस पोल में आकाश रहने से यहां आकाश वर्तमान है और यह पाद तल तक अपना कार्य करता रहता है। नाभिचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार चक्र इसी आकाश में स्थित हैं। गुदा, शिश्न तथा योनि के पोलों में यही आकाश इनके कार्यों में सहायक होता है।

आकाशीय कोष के ३ गुण, जो निम्न प्रकार से हैं :—

१. **सर्वत्र गति**—जब शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होने लगती है तब इसमें पहिला परिणामात्मक धर्म सर्वत्र गति रूप में उत्पन्न होता है। इसका अभिप्राय यह है कि इस आकाश में जो भी अन्य पदार्थ उत्पन्न होंगे, चाहे वे किसी भी देश में उत्पन्न हों, उनमें यह अपने सर्वत्र गति रूप धर्म से पहिले ही वर्तमान रहेगा। इसी गुण के कारण यह इस स्थूल शरीर में आकाशीय कोष के दस भेदों में सर्वत्र वर्तमान है। इस शरीर में कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां आकाश न हो।

२. **अव्यूह**—इस गुण के कारण यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग को भेद करने वाला है अर्थात् इसी गुण से इस आकाशीय कोष के दस भेद हो जाते हैं अथवा इस गुण से इस शरीर में पांच कोषों के ५ भेद हो जाते हैं क्योंकि यह गुण प्रत्येक कोष को एक दूसरे से पृथक् करने में समर्थ होता है। पार्थिव कोष को जलीय कोष से और जलीय कोष से आग्नेय कोष को और आग्नेय कोष से प्राणमय कोष को और प्राणमय कोष से आकाशीय कोष को विभक्त करता है।

३. **अवकाशप्रदानता**—तीसरा गुण परिणामात्मक है। इसमें अवकाशप्रदान उत्पन्न होता है। इसी गुण के आधार पर आकाश सब पदार्थों को अपने अन्दर अवकाश देता है और आगे होने वाले संसार के सब पदार्थों को भी अवकाश देगा।

इसी गुण से इस शरीर में चारों कोषों को अपने अन्दर धारण किया हुआ है। इस पर शंका हो सकती है कि आकाशीय कोष कहीं पढ़ा और सुना नहीं है। जब आकाश उत्पन्न होने वाला पदार्थ है तब इसका कोष भी होना अनिवार्य है। यह शंका तो तब हो सकती थी जब यह नित्य पदार्थ होता और परिणाम रहित होता। जब यह अनित्य और परिणामी है तब इसका कोष होना ही चाहिए। इसी कारण से हमने इसे दस भेद युक्त तथा तीन गुणों से युक्त आकाशीय कोष माना है। इस प्रकार से स्थूल शरीर के पांच कोष हैं जिनमें से प्रत्येक के दस भेद होकर कुल ५० भेद हो जाते हैं और ये सब मनुष्य के बंध और मोक्ष का हेतु हैं।

श्री शंकरलाल शर्मा पूज्य महाराज के बड़े योग्य शिष्यों में से हैं। अध्यात्म में इनकी रुचि है और प्रायः इस विषय के ग्रन्थों का अध्ययन करते रहते हैं। ज्ञान और कर्म के विषय में आचार्यों के विभिन्न मतों को पढ़कर एक बार ये बड़ी उलझन सी में पड़ गए और इनसे कर्म और ज्ञान के विषय में जिज्ञासापूर्वक निवेदन किया, "पूज्य गुरुदेव! इन दोनों विषयों पर विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत पढ़कर मेरी बुद्धि में कुछ अनिश्चयात्मकता सी बढ़ रही है। किस आचार्य का मत ग्राह्य है और किसका अग्राह्य, इसका मैं कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा हूं। आप अपने विचारों के द्वारा मुझे इस उलझन से निकालने की कृपा करें।" इनकी शंका का समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने दो उपदेश दिए—एक कर्म पर तथा दूसरा ज्ञान पर।

पूज्य महाराजजी का कर्म के विषय में उपदेश

ब्रह्म और प्रकृति के साथ कर्म का सम्बन्ध—कर्म के सम्बन्ध में सर्वप्रथम शंका होती है कि कर्म नित्य है या अनित्य। जब कर्म की उत्पत्ति संयोग से मानी जाती है तब तो इसे अनित्य ही मानना पड़ेगा। जब इसे उत्पत्तिमान मान लिया जाता है तब इसका कोई उपादान कारण मानना भी आवश्यक है। जब हम ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से कर्म की उत्पत्ति मानते हैं तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्म और प्रकृति में से किसको कर्म का उपादान कारण मानना चाहिए। ब्रह्म तो कर्म का उपादान कारण कभी हो नहीं सकता क्योंकि वह निर्विकार और निरवयव है, अतः प्रकृति ही इसका उपादान कारण माननी पड़ेगी। प्रकृति को उपादान कारण मानने से प्रकृति तो कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य माननी पड़ती है क्योंकि इसे हम प्रत्यक्ष रूप से विकारवान् देखते हैं। विकारवान् होते हुए भी इसका ब्रह्म के साथ नित्य सम्बन्ध है और ब्रह्म के साथ नित्य सम्बन्ध होने से इसमें कर्म को भी नित्य ही मानना पड़ेगा। प्रलय काल में जब प्रकृति की साम्यावस्था होती है तब भी इसमें सूक्ष्मरूप से कर्म वर्तमान रहता है क्योंकि चेतन ब्रह्म का प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध है। ब्रह्म की चेतना ही जड़ प्रकृति में कर्म का हेतु बनी है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति में ही कर्म उत्पन्न होता है। कर्म वास्तव में प्रकृति का ही गुण विशेष है अथवा इसका अवस्थान्तर रूप है। अब इसमें एक शंका उपस्थित होती है कि जब प्रकृति की साम्यावस्था में भी कर्म वर्तमान था और कार्यरूप अथवा विषमता में भी कर्म विद्यमान है तब तो कर्म नित्य ही सिद्ध होता है। वास्तव में प्रकृति की साम्यावस्था में कर्म सूक्ष्मरूप में था और प्रकृति की कार्य-रूपावस्था में प्रकृति की विषमता अथवा स्थूलता के साथ कर्म में भी विषमता अथवा

स्थूलता आ जाती है। कर्म जड़ है और प्रकृति का गुण विशेष या कार्य विशेष अथवा अवस्थान्तर विशेष है।

कर्म कारण रूप से नित्य तथा कार्य रूप से अनित्य है—उपरोक्त कथन से यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि कर्म कारण रूप से नित्य तथा कार्य रूप से अनित्य है। यह सदा प्रकृति में ही वर्तमान रहता है। ज्यों-ज्यों प्रकृति अवस्थान्तर को प्राप्त होती हुई चलती जाएगी, कर्म भी इसके साथ चलता जाएगा। यह कर्म ही इसकी विकृति का हेतु अथवा अवस्थान्तर का हेतु बनता चला जाएगा। कर्म सदा चेतन ब्रह्म के संयोग से ही उत्पन्न होता रहेगा परन्तु यह होगा प्रकृति में ही। ब्रह्म के अभाव में प्रकृति में कभी भी इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, अतः कर्म के प्रति ब्रह्म निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। जब सूक्ष्म कारण रूप प्रकृति सृष्टि का सृजन प्रारंभ करती है तब वह विषम भाव को प्राप्त होकर अवस्थान्तर रूप में परिणत होती हुई अन्त में पृथ्वी के रूप में स्थिर हुई। कर्म भी इसके साथ ही परिणत होता गया। यही प्रकृति सर्व जगत् और लोक-लोकान्तरों का उपादान कारण है। पृथ्वी के रूप में स्थिर हो जाने के पश्चात् इसका अन्य कोई परिणाम नहीं हुआ। यही प्रकृति का अन्तिम परिणाम है। इसके बाद कोई परिणामान्तर प्रकृति का नहीं हुआ। कर्म भी इसके साथ ही इसके अन्दर आनकर ठहर गया। आकाश मण्डल में दृश्यमान ये सब लोक-लोकान्तर सब पृथ्वी के अंश हैं। इन सब में कर्म हो रहा है और सभी सदा गति करते रहते हैं। इन सब में कर्म वर्तमान है और यह सदा बना रहेगा। शंकराचार्यादि आचार्यों ने इसी कर्म को अविद्या माना है। जब प्रकृति ही अविद्या रूप है तब इसके कार्य और गुण भी तो अविद्या रूप ही होंगे। प्रकृति के साथ ब्रह्म का शाश्वत सान्निध्य होने से कर्म भी सदा नित्य बना रहता है।

जीवात्मा के सम्बन्ध से कर्म का निरूपण—इस दृश्यमान स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म और कारण शरीर हैं। इन तीनों में कर्म विद्यमान है। अब यहां पर एक विचार उपस्थित होता है कि शरीर में प्रत्यक्षरूपेण गमनागमन रूप जो धर्म या क्रिया देखने में आ रही है यह शरीर का धर्म है अथवा आत्मा का। यदि इसे शरीर का कर्म मानें तब तो मृत्यु को प्राप्त हुए शरीर में भी गमनागमन कर्म होना चाहिए, परन्तु होता नहीं हैं। अतः यह गमनागमन रूप कर्म स्थूल शरीर का नहीं है। यदि गमनागमन रूप कर्म आत्मा का धर्म माना जाए तब यह विकारवान् हो जाएगा। वैशेषिक दर्शन में कर्म के ५ लक्षण बतलाए हैं—उत्क्षेपण (ऊपर उठना), अवक्षेपण (नीचे आना), आकुंचन (सिकुड़ना), प्रसारण (विकसित होना, या फैलना), गमन (जाना), आगमन (आना)। यदि कर्म आत्मा का धर्म माना जाएगा तो उसे संकोच और विकास धर्म युक्त मानना पड़ेगा और विकारवान् भी। बुद्धि और मन के समान इसे भी उत्पत्तिमान और विनाशवान् मानना पड़ेगा। अतः उपरोक्त ५ प्रकार के कर्म का जीवात्मा में अभाव है।

कर्म चित्त का धर्म है—जब चित्त का आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है तब कर्म की उत्पत्ति होती है क्योंकि संयोग ही कर्म का जनक है। आत्मा में कर्म की उत्पत्ति नहीं होती, इसे पूर्व सिद्ध किया जा चुका है। चित्त में ही संकोच और विकास रूप कर्म होता है, इसलिए चित्त ही कर्म का उपादान कारण बनेगा। कर्म की उत्पत्ति

में आत्मा निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। जब आत्मा का सम्बन्ध चित्त से होता है तभी कर्म उत्पन्न हाता है। जब तक सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का सम्बन्ध जीवात्मा के साथ रहेगा तब तक चित्त में या इन दोनों शरीरों में कर्म बना रहेगा। यदि आप यह शंका उठाएं कि जब प्रयलकाल या मोक्ष की अवस्था में सम्बन्ध विच्छेद होता है तब क्या चित्त में कर्म उत्पन्न होता है, इसका समाधान यह है कि चित्त का उपादान कारण समष्टि चित्त है और समष्टि चित्त का उपादान कारण महत् सत्व है और महत् सत्व का उपादान कारण प्रकृति है और इसके साथ चेतन ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। चेतन ब्रह्म के व्यापक रूप सम्बन्ध से प्रकृति में जो कर्म उत्पन्न हो रहा है वह कर्म इसकी परिणत होती हुई अवस्थाओं से समष्टि चित्त में भी पहुंचा है। अतः जब व्यष्टि चित्त अपने उपादान कारण में विलीन हो जाता है तब ब्रह्म के सान्निध्य से उस समष्टि चित्त में जो कर्म हो रहा होता है वही इस व्यष्टि चित्त का भी कर्म हो जाता है और आत्मा प्रलय काल या मोक्ष काल की अवस्था में स्थित हो जाता है। आत्मा के संयोग के अभाव के कारण चित्त में भी कर्म का अभाव हो जाता है। केवल ब्रह्म की व्यापकता का ही समष्टि चित्त में सामान्य कर्म रह जाता है जो समष्टि चित्त के परिणाम का हेतु होता है जिससे समष्टि चित्त अपने उपादान कारण में प्रवेश कर सके।

कर्म मनुष्य के बंध और मोक्ष का हेतु—ब्रह्म या ईश्वर के सान्निध्य से प्रकृति में तथा जीवात्मा के सम्बन्ध से चित्त में जो कर्म होते हैं वे प्राणियों के बंध और मोक्ष का हेतु होते हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं—पुण्य कर्म और पाप कर्म। पुण्य कर्म मोक्ष का हेतु होते हैं और पाप कर्म बंध का। ये पाप और पुण्य रूप कर्म चित्त में उत्पन्न होते हैं, इसलिए ये चित्त के ही धर्म या गुण विशेष हैं। इन दोनों प्रकार के कर्मों का अभाव या सम्बन्ध विच्छेद ही मोक्ष है। चित्त का धर्म होने के कारण ये ५ प्रकार की अविद्या के अन्तर्गत आ जाते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश को योगदर्शन में क्लेश कहा गया है। ये सब बुद्धि और चित्त के ही धर्म विशेष हैं। चित्त में जो भी कर्म उत्पन्न होता है वह बंध का ही कारण है। जब तक चित्त और आत्मा का सम्बन्ध बना रहता है तब तक इसमें कर्म उत्पन्न होता ही रहेगा। परम वैराग्य ही इस कर्म रूप अविद्या से मुक्त करने में हेतु बनेगा। राग ही बंध को उत्पन्न करता है और कर्म का जनक भी है। संयोग से राग भी उत्पन्न होता है और कर्म भी। ज्ञान और वैराग्य ही इन दोनों का अभाव करने के साधन हैं। अतः सर्व दुःखों और कर्म की निवृत्ति के लिए ज्ञान और वैराग्य आवश्यक हैं। ज्ञान और परम वैराग्य के बिना पाप और पुण्य युक्त कर्म का अभाव नहीं हो सकता, इसलिए मोक्ष के इच्छुक योगी को ज्ञान और परम वैराग्य की प्राप्ति के लिए अहर्निश यत्नशील और सावधान रहना चाहिए। इन दोनों के द्वारा संयोगाभाव होगा, संयोग के अभाव से कर्म का अभाव होगा और इसके अभाव से आत्मा को मोक्ष प्राप्त होगा।

तपः पूत ब्रह्मनिष्ठ महाराजजी का ज्ञान पर उपदेश

ज्ञान के विषय में भी अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित होते हैं। इसका उपादान कारण कौन है ? आत्मा, परमात्मा या प्रकृति ? चित्त के साथ इसका क्या सम्बन्ध

है ? यह नित्य है या अनित्य ? ईश्वर और जीवात्मा का यह गुण विशेष है या इनसे इसका संयोग-सम्बन्ध है ? क्या यह स्वतन्त्र रूप से कोई पदार्थ है अथवा किसी के साथ इसका आश्रय-आश्रयी सम्बन्ध है ? यह जड़ है या चेतन ?

इन सब शंकाओं का समाधान करते हुए पूज्य महाराजजी ने फरमाया :—

हम तीन पदार्थ नित्य मानते हैं—परमात्मा, आत्मा और प्रकृति । इन तीनों के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है । इन तीनों में से ज्ञान किसका कार्य है यही यहां पर विचारणीय विषय है ।

ब्रह्म और प्रकृति के साथ ज्ञान का सम्बन्ध—सर्वप्रथम जब सृष्टि की उत्पत्ति होने लगी तब इस दृश्यमान जगत् का उपादान कारण बिलकुल शान्त और स्थिर था तथा सब प्रकार की विषमताओं से रहित था । इस अवस्था को न्याय और वैशेषिक ने परमाणुरूपावस्था माना है । अद्वैतवादियों ने इस अवस्था को माया अथवा अविद्या कहा है । शून्यवादी इसे शून्य मानते हैं । विज्ञानवादी इसे विज्ञान कहते हैं और योग तथा सांख्य में इसे प्रकृति की साम्यावस्था कहा गया है । हम प्रकृति की उस साम्यावस्था में भी सूक्ष्म कर्म का विद्यमान होना मानते हैं । प्रलय काल की अवस्था में चेतन ब्रह्म का सम्बन्ध प्रकृति के साथ विद्यमान था । इन दोनों का सम्बन्ध ज्ञान और कर्म का जनक बना । जिस प्रकार संयोग से कर्म की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार संयोग से ही ज्ञान का भी प्रादुर्भाव होता है । विद्यार्थी गुरु के पास रहकर विद्याध्ययन करते हैं । यहां गुरु और शिष्य का संयोग विद्यार्थी के ज्ञान की वृद्धि का हेतु होता है । अध्यापक के बिना ज्ञान की उत्पत्ति या वृद्धि नहीं हो सकती । यदि एक नवजात बालक को आप वन में छोड़ दें या किसी ऐसे मकान में रख दें जहां किसी मनुष्य या पशु आदि का सम्बन्ध उसके साथ न हो सके, ऐसे स्थान में वह पचासों ही वर्ष तक भले ही क्यों न रहे किन्तु उसे कभी किसी प्रकार का ज्ञान नहीं हो सकेगा । खाने पीने आदि का सामान्य ज्ञान भले ही हो जाए, क्योंकि यह सभी प्राणियों में समान रूप से होता है । इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान की उत्पत्ति संयोग से ही होती है । आदि-सृष्टि में ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से ज्ञान की उत्पत्ति हुई और ब्रह्म और प्रकृति ही इसके उपादान कारण हो सकते हैं, किन्तु यदि दोनों को ज्ञान का उपादान कारण मानते हैं तब ये दोनों ही विकारवान् हो जाते हैं । जड़ प्रकृति भी विकारवान् और चेतन ईश्वर भी विकारवान् । ऐसी स्थिति में इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता । उपादान कारण तो एक ही मुख्य होता है, शेष सभी सहकारी उपादान कारण हुआ करते हैं । तब क्या जड़ और चेतन दोनों को उपादान कारण मान लें ? यदि ऐसा मानेंगे तो ज्ञान के दो रूप हो जाएंगे । ऐसी स्थिति में ज्ञान जड़ भी होगा और चेतन भी । दो विरुद्ध धर्म एक पदार्थ में नहीं रह सकते । दो परस्पर विरोधी धर्म ज्ञान में नहीं रह सकते । इसमें एक ही धर्म मानना पड़ेगा । यदि जड़ मानते हो तब इसका उपादान कारण प्रकृति को मानना होगा और यदि चेतन माना जाए तब ईश्वर उपादान कारण होगा । ईश्वर के विकारवान् होने से वह निर्गुण नहीं रह सकता । प्रकृति के समान यह भी परिणामी हो जाएगा । यदि ब्रह्म से इसका आगमन मानते हैं तब यह प्रश्न पैदा होता है कि यह ज्ञान उसका कार्य है या गुण अथवा उसका अंश विशेष है । ऐसा मानने से ब्रह्म सावयव हो

जाएगा और अवस्थान्तररूप से परिणामी हो जाएगा। विकारी होने से प्रकृति के समान हो जायगा। प्रकृति जड़त्वेन परिणामी है और ब्रह्म चेतनत्वेन परिणामी हो जाएगा, अतः यह मानना पड़ेगा कि ज्ञान न तो ईश्वर का कार्य है, न उसका अंश है और न ही उसका गुण है। जब प्रकृति साम्यावस्था से विषम भाव या कार्यभाव को प्राप्त होने लगी तब इसमें सूक्ष्म रूप से ज्ञान भी विद्यमान था। जिस प्रकार उस अवस्था में कर्म सूक्ष्म रूप से विद्यमान था उसी प्रकार सूक्ष्म रूप से ज्ञान भी विद्यमान था। जो गुण या धर्म कारण में होंगे वे उसके कार्य में अवश्य आते हैं। ज्ञानपूर्वक ही सृजन होता है और ज्ञानपूर्वक ही कर्म होता है, अतः सर्वप्रथम ज्ञान ही होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम ज्ञान और क्रिया ही प्रकृति में प्रकट हुए। ब्रह्म के सर्वव्यापक रूप प्रकृति के सान्निध्य में रहने से प्रकृति में विशेष रूप से परिणाम धर्म पैदा होने से आकाश, काल तथा दिशा के अनन्तर ज्ञान महत् सत्व के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। इसी द्वारा आगे चलकर सर्व प्रकार के ज्ञान की व्यवस्था चलेगी। यह ब्राह्मी सृष्टि इस महत् सत्व के आधार पर ज्ञानपूर्वक चलेगी। ईश्वर तो केवल सन्निधान मात्र से निमित्त कारण बना रहेगा और इसके सन्निधान में रहकर प्रकृति जगत् का सृजन करती रहेगी। यहां पर यह शंका हो सकती है कि क्या ब्रह्म में ज्ञान का अभाव है जो प्रकृति अपने से उत्पन्न हुए ज्ञान के द्वारा संसार का सृजन और व्यवस्था करती है? इस विषय में यह विचारणीय है कि यदि रूढ़िवाद से हम ईश्वर को सृष्टि का स्रष्टा मानते हैं तब उसमें सृजन रूप धर्म अथवा गुण मानना पड़ेगा। इस दशा में वह निर्गुण सिद्ध नहीं हो सकता। यदि यह कहा जाए कि भगवान् भले ही निर्गुण न रहे परन्तु सृजन रूप व्यवस्था उसीके द्वारा होती है, ऐसी स्थिति में उसका कोई करण भी मानना पड़ेगा। यदि आप कहें कि एकदेशी को करण की आवश्यकता होती है, सर्वदेशी को नहीं। हम भी तो ईश्वर को सर्वदेशी और सर्वव्यापक मानते हैं। इसीलिए प्रकृति से सर्वत्र ही उसका सान्निध्य रहता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्म के सन्निधान मात्र से प्रकृति में सर्वत्र क्रिया या कर्म होता रहेगा। इसलिए ब्रह्म को कर्ता अर्थात् सृष्टि का स्रष्टा मानने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल निमित्त रूप से उसका सान्निध्य बना रहेगा, अतः ब्रह्म को किसी प्रकार की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं होगी। व्यवस्थापक भी एकदेशी ही होता है। ब्रह्म को व्यवस्थापक मानने से वह एकदेशी हो जाएगा, फिर उसमें सर्वव्यापकता न रहेगी। ब्रह्म का सर्वत्र सान्निध्य है इसलिए उसके कर्ता या व्यवस्थापक बनने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान, गुण, या धर्म ईश्वर में नहीं अपितु यह प्रकृति का ही गुण या धर्म विशेष है क्योंकि यह परिणामात्मक है, इसमें वृद्धि और ह्रास होता है तथा उत्पत्तिमान है। साम्यावस्था में ज्ञान और कर्म सूक्ष्म रूप से विद्यमान थे, इसी सूक्ष्म रूप से ज्ञान और कर्म का प्रकृति की विषमावस्था में इनका विस्तार हुआ।

अब तो आपको ब्रह्म के सान्निध्य से प्रकृति में ज्ञान और क्रिया का प्रादुर्भाव और प्रकृति के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति समझ में आगई होगी।

आत्म-तत्त्व के सान्निध्य से चित्त में ज्ञान और कर्म का प्रादुर्भाव

ज्ञान शरीर का धर्म नहीं—यह विषय भी पूर्ववत् गहन है। इसे ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करो। ज्ञान शरीर का धर्म नहीं है। यदि स्थूल शरीर में ज्ञान

होता तो फिर उसके शव में इसका अभाव क्यों होता ? शव में भी ज्ञान रहना चाहिए था। इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शरीर में ज्ञान नहीं होता।

ज्ञान जीवात्मा का धर्म नहीं है—ज्ञान जीवात्मा का भी धर्म नहीं है क्योंकि ज्ञान में उत्पत्ति और विनाश धर्म हैं। ज्ञान उत्पन्न होता है और उसका विनाश भी होता है। यदि ज्ञान को आत्मा का धर्म माना जाएगा तो आत्मा को परिणामी मानना पड़ेगा और उसमें परिवर्तनों का होना भी स्वीकार करना होगा। पहिले आत्मा में ज्ञान नहीं था, अब पैदा हो गया। बालक जन्म के साथ ही ज्ञानवान् पैदा नहीं होता। वह अनभिज्ञ होता है। ज्यों-ज्यों उसकी आयु में वृद्धि होती है त्यों-त्यों उसमें ज्ञान का विकास होता जाता है। शनैः-शनैः पढ़-लिखकर विद्वान् हो जाता है और ज्ञान-वृद्धों में उसकी गणना होने लगती है। यदि यह उत्पत्ति, विकास और वृद्धि आत्मा में मानी जाए तब इसमें भी संकोच, विकास, उत्पत्ति और विनाश मानना पड़ेगा। इस अवस्था में बुद्धि और आत्मा में कोई अन्तर नहीं रहेगा। चेतन होने से आत्मा ज्ञान स्वरूप है परन्तु उसके ज्ञान में उत्पत्ति, विनाश, संकोच, विकास, वृद्धि तथा ह्रास नहीं होते। इनके ज्ञान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इसका ज्ञान सदा एकरस, एकरूप और एक समान रहता है। वह उससे निकलकर कहीं अन्यत्र आता जाता नहीं, और किसी के साथ मिलता नहीं। उसमें से ज्ञान का आना जाना मानने से आत्मा को सावयव और विकारी मानना पड़ेगा। इसलिए ज्ञान आत्मा का भी गुण या धर्म नहीं है।

ज्ञान बुद्धि या चित्त का धर्म है—ज्ञान बुद्धि या चित्त का धर्म हो सकता है, क्योंकि इनमें ज्ञान, वृद्धि और ह्रास दृष्टिगोचर होते हैं। जब आत्मा के साथ चित्त का संयोग होता है तब चित्त में ज्ञान रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। आत्मा के संयोग से चित्त में ज्ञान और क्रिया उत्पन्न होते हैं। चित्तोत्पन्न ज्ञान और क्रिया के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सर्व कार्यजात सिद्ध होते हैं। ज्ञान के होने पर कर्म उत्पन्न होता है और कर्म के होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। जब मानव किसी कर्म को करना चाहता है तब सर्वप्रथम बुद्धि द्वारा उसके विषय में विचार करता है। पहिले ज्ञानपूर्वक विचार करता है तब कर्म करने में प्रवृत्त होता है। जब तक बुद्धि में किसी कर्म करने का विचार नहीं आएगा तब तक मनुष्य कर्म करने में प्रवृत्त नहीं होता। चित्त और बुद्धि को हम ज्ञान-प्रधान मानते हैं। इनके ज्ञान-प्रधान होने से ही तो इनमें ज्ञान की वृद्धि और विकास होता है। जो कारण में धर्म होता है वह कार्य में भी आवेगा। आम से आम की ही उत्पत्ति होगी, अनार की नहीं। इसी प्रकार ज्ञानयुक्त चित्त से ज्ञान की ही उत्पत्ति होगी। चित्त का परिणाम ज्ञान रूप में ही होगा। जब आत्मा का संयोग चित्त से हुआ तो चित्त से ज्ञान की ही तो उत्पत्ति होगी। ज्ञान चित्त का धर्म है, आत्मा का नहीं। चित्त परिणामी है, अतः ज्ञान रूप चित्त ज्ञान को ही उत्पन्न करेगा। जिस प्रकार चित्त में सुख, आनन्द, भय, चिन्तनादि अनेक गुण उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार चित्त में ज्ञान भी उत्पन्न होता है। इसलिए ज्ञान अनित्य है। ज्ञान ही प्रकृति, आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का हेतु होता है। इसीसे मोक्ष-लाभ होता है। अनित्य ज्ञान से नित्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती और इस अनित्य ज्ञान से मुक्ति भी अनित्य ही प्राप्त होगी। यह ज्ञान भी अन्त में

अज्ञान रूप ही है क्योंकि यह चित्त का धर्म है। चित्त भी तो प्रकृति अथवा अविद्या का ही कार्य है। कार्यात्मक होने से यह भी अविद्यात्मक ही है। चित्त आत्मा के बंध का हेतु बना है। अविद्या से ही बंध को प्राप्त होता है, अतः आत्मा के प्रति ज्ञान और कर्म चित्त के धर्म होने से बंध का हेतु बने हैं। जब तक चित्त के साथ आत्मा के सम्बन्ध का विच्छेद नहीं होगा तब तक आत्मा मुक्त नहीं होगा। इस सम्बन्ध विच्छेद में परम वैराग्य ही मुख्य हेतु बनेगा। प्रथम सामान्य ज्ञान से कर्म में प्रवृत्ति होगी, कर्म करने से तत्त्व-ज्ञान लाभ होगा और इसके अनन्तर परम वैराग्य द्वारा मोक्ष प्राप्ति होगी। इससे सिद्ध है कि कर्म और ज्ञान बंध और मोक्ष के हेतु होते हैं।

'हिमालय का योगी' ग्रन्थ में
'ब्रह्म-विद्या का प्रचार' नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

उपसंहार

'हिमालय का योगी' ग्रंथ में पांच अध्याय हैं ।

प्रथम अध्याय में ब्रह्मर्षि श्री १०८ स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज के बाल्यकाल की घटनाएं, प्रथम पूज्यचरण गुरुदेव श्री स्वामी रामानन्दजी का सत्संग, वैराग्य का उदय, गृहत्याग, हरिद्वार जाकर मोहनाश्रम में संस्कृताध्ययन, योग-साधना, सत्यव्रतजी से कजली बन में योग-शिक्षा प्राप्ति, उत्तराखण्ड में निवास, कठिन तपस्या, स्थानीय तीर्थाटन, दिल्ली में ४ वर्ष तक संस्कृताध्ययन, काश्मीर में विद्वान् योगी गुरु की खोज तथा गुरु प्राप्ति, पूज्य गुरुदेव अवधूत परमानन्दजी के दर्शनादि का उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में पूज्य गुरुदेव अवधूत परमानन्दजी द्वारा काश्मीर में अष्टाङ्ग योग की प्राप्ति, प्राथमिक योग-साधना, अमृतसर निवास, यहां पर षड् दर्शन उपनिषदादि ग्रंथों का पं० हरिश्चन्द्रजी से अध्ययन, सवा करोड़ गायत्री का पुरश्चरण, काष्ठमौन, कई-कई दिनों की समाधि, भारत के तीर्थस्थानों का कई बार पर्यटनादि का वर्णन किया गया है ।

तृतीय अध्याय में पूर्णात्मज्ञानी गुरु की खोज और पूज्यचरण ब्रह्मनिष्ठ तथा तपःपूत महान योगी आत्मानन्दजी की प्राप्ति, उनके श्रीचरणों में १७ घण्टे की सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा आत्मा, प्रकृति और ब्रह्म का साक्षात्कार, कई वर्ष तक इस विज्ञान को दृढ़भूमि करना आदि विषयों का विशद् वर्णन है ।

चतुर्थ अध्याय में मोहनाश्रम में अष्टाङ्ग योग का प्रशिक्षण, गंगोत्री, उत्तरकाशी तथा स्वर्गाश्रम में योगनिकेतनाश्रम की स्थापना, 'आत्म-विज्ञान' तथा 'बहिरङ्ग-योग' ग्रंथों की रचना, अनेक प्रकार की सिद्धियों तथा ब्रह्मचर्य से संन्यासाश्रम में प्रवेशादि का उल्लेख है ।

पंचम अध्याय में हरिद्वार में सन् १९६२ की १३ अप्रैल को संन्यास धारण करना, बद्रीनाथ प्रस्थान, ४ मास का काष्ठमौन व्रत, 'ब्रह्म-ज्ञान' ग्रंथ की रचना, इसके प्रकाशन का प्रबंध, इसके विज्ञान का प्रशिक्षण, सन् १९६४ में भारत के मुख्य-मुख्य तीर्थों तथा नगरों का ८ मास तक भ्रमण, इन स्थानों पर व्याख्यानों द्वारा योग का प्रचार और साधना करवाना, पुनः हिमालय में निवास, शिष्यों को आत्मज्ञान प्राप्ति की साधना करवाना और आध्यात्मिक सूक्ष्मतम गूढ़ रहस्यों के उपदेशादि का वर्णन है ।

हमारी हार्दिक कामना है कि पूज्यचरण श्री गुरुदेव चिरायु हों । इस ग्रंथ के आगामी संस्करणों में हम इनके भावी नवीनतम अनेक प्रकार के गहनतम आध्यात्मिक सूक्ष्म विज्ञानों का समावेश करते रहेंगे ।

इति शुभम् ।

ॐ

योगनिकेतन

स्वर्गाश्रम : मुनिकीरेती ऋषिकेश : उत्तरकाशी : गंगोत्री

—संस्थापक—

श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज
(भूतपूर्व राजयोगाचार्य श्री ब्रह्मचारी व्यासदेवजी महाराज)

योग ही सार्वभौम धर्म है

योगाभ्यास में आने वाले साधकों के लिए संक्षिप्त सूचना

१. योगनिकेतन में अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के साधनों का विशेष रूप से क्रियात्मक अभ्यास कराया जाता है, इसलिए योग के जिज्ञासु प्रत्येक साधक को यहां आकर लाभ उठाना होता है।

२. कम से कम एक घण्टे तक किसी एक आसन से निश्चल बैठने का अभ्यास करके यहां आना चाहिए।

३. प्रत्येक मुमुक्षु साधक से यह आशा की जाती है कि वह योग में सर्वथा वर्जित धूम्रपान बीड़ी आदि, अभक्ष्य मांस, मदिरा, प्याज, लहसुन आदि का सेवी और दुर्व्यसनी न हो। वह यहां ब्रह्मचर्य व्रत पालन, तप और योगानुष्ठान के उद्देश्य से आये। प्रत्येक सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष आ सकते हैं।

४. **योगविद्यालय की साधना में बैठने का समय :—**

प्रातः ४ से ६॥ बजे तक धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास।

प्रातः ८ से ९ बजे तक आसन, प्राणायाम, हठयोग की क्रियायें।

सायं ६ से ८ बजे तक आत्म-विज्ञान सम्बन्धी अभ्यास। अन्नमय कोष में कुण्डली-उत्थान, प्राणोत्थान, चक्र-विज्ञान, प्राणमय कोष का विज्ञान। मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष के पदार्थों अर्थात् सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर में आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान।

५. स्वर्गाश्रम या मुनिकीरेती में १ नवम्बर से ३१ मार्च तक अभ्यास के शिविर का समय है। मई और अक्तूबर में उत्तरकाशी में तथा १५ जून से १५ सितम्बर तक गंगोत्री में अभ्यास होता है।

६. प्रत्येक साधक को यहां पर पूरे ५ मास तक रहना चाहिए। मास दो मास ही रहने वाले साधक स्थायी और विशेष लाभ नहीं उठा सकते।

७. योगनिकेतन के सब नियम पालन करते हुए प्रत्येक साधक के रहने के लिए एक कुटिया, दोपहर-मध्याह्न में १२ बजे सात्त्विक सादे भोजन, प्रातः व रात्रि को पीने के लिए एक सेर दूध की व्यवस्था है। एक समय के भोजन और दो समय के दूध का दैनिक व्यय लगभग दो रुपया स्वर्गाश्रम में आता है, उत्तरकाशी में अढ़ाई रुपये और गंगोत्री में तीन रुपये। इसके अतिरिक्त अन्य व्यय साधक अपनी शक्ति के अनुसार कर सकता है।

८. १५ दिन से कम समय के लिए अभ्यासी को प्रविष्ट नहीं किया जाता है, क्योंकि इससे विशेष लाभ नहीं होता।

९. साधक को शीत के पूरे वस्त्र, छाता, लोटा, बिस्तरा, लैम्प, टार्च, रुई की गद्दी का आसन, लंगोटा, जांघिया साथ लाना आवश्यक है।

१०. योगाभ्यास श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज और इनके शिष्य कराते हैं।

११. प्रत्येक महानुभाव को स्वीकृति लेकर ही आना चाहिए ; स्वीकृति-पत्र साथ में लायें।

विशेष पूछताछ इस पते पर करें—

व्यवस्थापक :—

योगनिकेतन, स्वर्गाश्रम

डाकघर—स्वर्गाश्रम, रेलवे स्टेशन—ऋषिकेश,

जिला देहरादून।

योगनिकेतन, मुनिकीरेती

डाकघर—ऋषिकेश, जिला टिहरी गढ़वाल।

योगनिकेतन, उत्तरकाशी

जिला उत्तरकाशी।

योगनिकेतन, गंगोत्री

जिला उत्तरकाशी।

(उत्तराखण्ड, हिमालय।)

गंगोत्री के महान् सन्त ब्रह्मज्ञानी योगाचार्य्य श्री १०८ ब्रह्मर्षि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज (भूतपूर्व बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेवजी)

के रचित ग्रन्थ

आत्म-विज्ञान

आत्मा का साक्षात्कार करने की क्रियात्मक व्यवस्था

जिसमें आर्ट पेपर पर २६ पचरंगे चित्र सूक्ष्म और कारण शरीरों तथा उनके अवयवों की वास्तविक अवस्थाओं के दर्शन हैं। कपड़े की सुन्दर जिल्द, छपाई तथा सज्जा उत्तम।

हिन्दी बढ़िया संस्करण	**मूल्य १५) रुपए**
हिन्दी साधारण संस्करण	**मूल्य १०) रुपए**
अंग्रेजी संस्करण	**मूल्य १२) रुपए**

बहिरंग योग (हिन्दी)

पातंजल योगशास्त्र के यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार अंगों की विशद और अपूर्व व्याख्या। आसनों आदि के ३२५ चित्र आर्ट पेपर पर। ३०० से ऊपर बड़े आकार के पृष्ठ, सुन्दर कपड़े की जिल्द। **मूल्य १०) रुपए**

ब्रह्म-विज्ञान (हिन्दी)

यह पूज्यपाद स्वामीजी महाराज की नवीन कृति है, ब्रह्मदर्शन की प्रक्रिया और जीवन को कृतकृत्य करने का साधन है। सम्पूर्ण सृष्टि का विज्ञान भी इसी में वर्णन किया है। १८ बहुरंगे चित्र आर्ट पेपर पर, सुन्दर कपड़े की जिल्द, पृष्ठ ५०० से ऊपर। **मूल्य १४) रुपए**

प्रत्येक पुस्तक पर डाक व्यय पृथक्। चारों ('बहिरङ्ग योग', 'आत्मविज्ञान', 'ब्रह्मविज्ञान' और 'हिमालय का योगी') पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय पृथक् नहीं होगा।

योगनिकेतन ट्रस्ट

डाकघर—स्वर्गाश्रम

रेलवे स्टेशन ऋषिकेश, जि० देहरादून (भारत)